का आधुनिक जीवन-मूल्यों के संदर्भ में पुनराख्यान हो रहा है और कन्नड़ तथा तेलुगु में नवीन रामायणों की रचना हुई है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में रामायण का सर्वश्रेष्ठ रूप रामचरितमानस उपलब्ध है। खड़ी बोली में भी एक दर्जन से अधिक काव्य राम-कथा को उपजीव्य बनाकर लिखे गये हैं। संक्षेप में भारतीय जन-मानस के सबसे अधिक समीप यदि कोई काव्य सतत रहा है तो वह रामायण है और आज भी किसी न किसी रूप में इस देश की जनता से वह जुड़ा हुआ है।

रामचरितमानस की रचना मुगल शासन-काल में हुई। गोस्वामी तुलसीदास ने इस युग को म्लेच्छ युग कहा है किन्तु स्वयं वे उस युग की कालिमा से सर्वथा असंस्पृक्त और अनासिक्त रहे। उनकी दृष्टि देशकालातीत शाश्वत जीवन-मूल्यों पर केन्द्रित रही और वाल्मीकि से प्रेरित होने पर भी तुलसी ने युगसत्य की अवहेलना नहीं की। इस्लामी संस्कृति के प्रबल प्रहार को हिन्दू जाति जिस रूप में झेल रही थी वह क्रान्तदर्शी कवि तुलसी की आँखों से ओझल नहीं था। फलतः तुलसी ने त्रास और पीड़ा से कराहती हुई हिन्दूजाति को आस्था और विश्वास की थाती के रूप में रामचरितमानस की भेंट दी। सत्य के लिए संघर्ष करने की शक्ति तुलसी के राम में इसीलिए अधिक प्रबल हुई कि उस युग का राम तभी लोकनायक बन सकता था जब वह आत्म-संयम और आत्म-शक्ति के चरम प्रभाव से जनता को विमुग्ध कर सके। तुलसी ने इसी प्रकार के रामचरित का अंकन कर अपनी कृति को सर्वाधिक लोकप्रिय बना दिया। रामचरितमानस की लोकप्रियता ने रामायण के विविध संस्कृत काव्य-रूपों को भुला-सा दिया और उत्तर भारत में रामचरितमानस केवल काव्य-ग्रंथ न रहकर धार्मिक उपासना का पूज्य-ग्रन्थ बन गया। इस ग्रन्थ की लोकप्रियता ने भारतीय परिवेश को बड़ी गहराई के साथ स्पर्श किया और पिछले चार सौ वर्षों में इस ग्रंथ ने उत्तर भारत की जनता का जितना उपकार किया उतना किसी दूसरे ग्रंथ ने नहीं किया[1]।

रामचरितमानस के स्वान्तःसुख की यह व्यापक परिकल्पना संभवतः तुलसी ने भी नहीं की होगी—उनका स्वान्तःसुख जितने व्यापक रूप में समष्टि-सुख में परिवर्तित हुआ उतने व्यापक रूप में किसी प्रचारोद्दिष्ट कृति का भी शायद न हुआ हो। तुलसी प्रचार से सर्वथा निर्लिप्त 'राज्याश्रय से विमुख' एकान्त-साधना में लीन रहकर भी लोकनायक बन सके, यही उनकी नैसर्गिक प्रतिभा का ज्वलंत प्रमाण है। रामचरितमानस के द्वारा तुलसी ने समाज को अपने अंक में जिस समग्रता के साथ समो लिया था उतनी समग्रता से कोई दूसरा कवि समाज को न तो ग्रहण कर

सका था और न प्रभावित ही। आज हिन्दी साहित्य में रामचरितमानस केवल महाकाव्य मात्र न होकर साहित्य के आदर्शों का प्रतीक बन गया है, जीवनादर्शों का प्रतीक तो वह प्रारम्भ से ही रहा है।

रामचरितमानस के सदृश ही भारत की अन्य भाषाओं में राम-कथा पर आधृत काव्य लिखे गये। यदि सभी अंचलों और प्रदेशों के रामकाव्यों का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो भारत की भावात्मक एकता का पक्ष पुष्ट होगा और भारतीय जन-मानस की धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना के अध्ययन में बहुत योग मिलेगा। किन्तु यह कार्य बहुत विशाल और साधन-समय-सापेक्ष है। केवल पूर्वांचलीय रामकाव्यों का अनुशीलन करना भी एक विराट् योजना का अनुष्ठान समझना चाहिए। बड़े हर्ष का विषय है कि डा० रमानाथ त्रिपाठी ने पूर्वांचलीय रामचरित-काव्य और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके दो अंचलों की प्रति-भाओं के मूल्यांकन का स्तुत्य प्रयास किया है।

पूर्वांचलीय भाषाओं में बंगला, उड़िया और असमिया के लिखित रामचरित काव्यों का समावेश होता है। डा० त्रिपाठी ने इन तीनों भाषाओं के रामकाव्यों का अध्ययन कर उनका तुलनात्मक विवेचन इस शैली से किया है कि हिन्दी का पाठक इन रामकाव्यों का हार्द ग्रहण करता हुआ रामचरितमानस के साथ उनके साम्य-वैषम्य से परिचित हो जाता है। डा० त्रिपाठी ने अपने अध्ययन में मूल भाषा की प्रतियों का आश्रय लिया है, अनूदित कृतियों का नहीं। अतः उनके विवेचन और विश्लेषण में प्रामाणिकता है। हिन्दी के पाठक बंगला के कृत्तिवासी रामायण, असमीया के माधव-कन्दली, शंकरदेव-माधवदेव रचित सप्तकाण्ड रामायण और उड़िया के बलरामदास के दाण्डि-रामायण से यत्किंचित् परिचित हैं। सामान्य पाठक इनके नाम तो शायद जानता है किन्तु उनके प्रतिपाद्य, शैली, कलात्मक सौन्दर्य आदि का उसे कोई ज्ञान नहीं है। डा० त्रिपाठी ने विद्वत्तापूर्वक इन पक्षों का वैज्ञानिक पद्धति से विवेचन अपने शोध-प्रबन्ध में किया है। उन्होंने बंगला-रामायण के अध्ययन के लिए बंगला भाषा में लिखे गये लगभग २५ ग्रंथों का पर्यालोचन किया है। कृत्तिवासी रामायण की तुलनात्मक समीक्षा से कई विस्मयजनक तथ्य उजागर हुए हैं जो भारत के लोकमानस की एकता के परिचायक हैं। इसी प्रकार एक दर्जन असमिया रामकथा की रामचरितमानस के साथ तुलना प्रस्तुत की गयी है। उड़िया के आधे दर्जन ग्रंथ उनके अनुशीलन में समाविष्ट हैं और उनकी तुलनात्मक दृष्टि को सार्थक बनाते हैं। डा० त्रिपाठी ने तटस्थ रहते हुए तीनों भाषाओं की रामकथा को

ग्रहण किया है। तुलना में भी उनकी दृष्टि स्वच्छ और अनाविल है। सत्य का संधान जिस अनुसंधान का प्राण होता है वह ध्येय तक पहुँचने वाला शोध है। जो अवितथ तथ्य को साथ ले चलने में असमर्थ है वह अनुसंधाता का कर्त्तव्य-कर्म ही नहीं समझता। तुलनात्मक समीक्षा के लिए तटस्थता पहली शर्त है। रामचरितमानस के प्रति मोह होने पर भी उसकी शक्ति-सीमा का ध्यान डा० त्रिपाठी को सतत बना रहा है और उन्होंने मानस के प्रति अपनी निष्ठा को अक्षुण्ण रखते हुए ही उसकी तुलनात्मक समीक्षा की है।

मुझे विश्वास है कि यदि पूर्वांचलीय भाषाओं के मनस्वी विद्वान् डा० त्रिपाठी के शोध-प्रबन्ध को पढ़ें तो उन्हें पक्षधर नहीं कहेंगे। उनकी विवेचन-शैली पर प्रहार करने का किसी को अवसर नहीं मिलेगा। कृत्तिवासी-रामायण की हिन्दी में चर्चा हुई है, सराहना भी हुई, उसे एक श्रेष्ठ कृति समझा जाता है किन्तु तुलना के निकष पर कुछ ऐसे तथ्य उभरकर सामने आये हैं जो साहित्य-चिन्तन के लिए उपयोगी हैं। इसी प्रकार असमिया और उड़िया के रामकाव्यों को भी त्रिपाठी जी ने तुलनात्मक कसौटी पर परखने का प्रयास किया है। मैं उनके इस शोध-प्रबन्ध को भारतीय भाषाओं—विशेषतः पूर्वांचलीय भाषाओं—और हिन्दी के मध्य एक सेतु मानता हूँ। एक ऐसा सेतु जो राम के माध्यम से भाषा की भिन्नता को भुलाने में समर्थ है। जो भाव के स्तर पर भाषा के वैविध्य को विस्मृत करा देता है। इस प्रकार के सेतु-बंध की आज भारत को आवश्यकता है। साहित्यिक क्षितिज का आयाम राजनीतिक संकीर्ण दलबन्दी से बहुत व्यापक होता है। भाषा की सीमाएँ यदि कहीं विलीन होती हैं तो वे साहित्यिक भाव-बोध के व्यापक क्षितिज में ही विलीन होती हैं। डा० त्रिपाठी ने इस दिशा में सराहनीय प्रयास किया है, वे हिन्दी-जगत् के ही नहीं वरन् पूर्वांचलीय प्रदेशों के भी साधुवाद के पात्र हैं। मैं उनकी साहित्य-साधना की प्रशंसा करता हूँ और आशा करता हूँ कि वे इस दिशा में और दूर तक आलोक विकीर्ण करेंगे।

—विजयेन्द्र स्नातक

विजयादशमी
१७-१०-७२

आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विषय-सूची

४. युगीन परिवेश का प्रतिबिम्ब : १३६

राजनीतिक प्रतिबिम्ब—शासकों के अत्याचार और हिन्दी-बँगला रामायणों में उसकी झलक । रणचातुर्य-ज्ञान । उड़िया-रामायण में रण-नीति एवं कौशल का सुन्दर परिचय—गरम तेल आदि की तैयारी, चुम्बक द्वारा बाण निकालने की पद्धति, वज्रबाण बनाने की पद्धति, तालपत्र पर पत्र-लेखन—१३६ ।

धार्मिक प्रतिबिम्ब—शिव—रामायणों में शिव—रक्तमय उपासना की ओर संकेत, समन्वित शुद्धरूप, शैव-वैष्णव समन्वय । शक्ति—कोमल एवं उग्र दो रूप । कृष्ण—रामायणों में कृष्ण भक्ति का प्रभाव, उड़िया पर जगन्नाथ स्वामी का प्रभाव । अब्राह्मण्य साधनाओं की उपेक्षा, उड़िया-रामायण की योग-साधना एवं तंत्र-मंत्र, अन्य देव एवं सामान्य विश्वास—१४४ ।

सामाजिक प्रतिबिम्ब—वर्ण—उड़िया में वर्ण, विद्रोह-नारी-विषयक धारणाओं में समानता, उड़िया नारी का माधुर्य । स्नान-प्रसाधन—सिन्दूर, काजल, आलता, हिंगुल, पत्रावली—'अलकातिलका' । संस्कार—१२ संस्कार, विवाह संस्कार तथा रोचक पद्धतियाँ / असमीया०—आगबढ़ि, अधिवास, कन्या सम्प्रदान, पुष्पशय्या, बासि-बिहा / बँगला०—अधिवास, हरिद्रा, छायामण्डप, शुभदृष्टि, षष्ठी-पूजन—हास-परिहास, बासा-घर, बासि-बिये, विदा—स्वागत, मुखदर्शन, काल-रात्रि, कसुमशय्या / उड़िया०—वधू मुखदर्शन, वर की सज्जा, हास-परिहास हल्दी-लेप लवण-चउँरी, कन्यादान, प्रेमक्रीड़ाएँ—द्यूत, सहभोजन, मधुशय्या और चतुर पत्नी की प्रतिज्ञाएँ । मानस—लग्नपत्रिका, वर की सज्जा और शोभायात्रा, अगवानी, द्वारचार, पाणिग्रहण और कन्यादान, लौकिक-आचार—लहकौर, कोहबर, जेवनार, कन्या-विदा, वधू-स्वागत, प्रेमक्रीड़ाएँ—चतुर्थी —१५० ।

मनोरंजन—पृथक्-पृथक् अनेक मनोरंजन । विशेष—उड़िया० में मृगया का सजीव वर्णन, मानस में चौगान तथा बाज द्वारा मृगया—१६९ ।

स्थानीय चित्रण—चारों ग्रन्थों के पृथक् चित्रण के अतिरिक्त पूर्वांचल की कुछ समान विशिष्टताएँ—उलुध्वनि, नेत्र और शंखचूड़ी / —१७१ ।

५. चरित्र-चित्रण : १७९

मूलगत तथा पारस्परिक साम्य-वैषम्य—१७९ । मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण—राम—१८२ / लक्ष्मण—२०२ / भरत—२१० / दशरथ—२१४ /

प्रथम अध्याय

पूर्वांचल-परिचय

पूर्वांचल का इतिहास और भूगोल

निरुक्तकार यास्क (७-८ वीं शताब्दी ई० पू०) एवं पाणिनि (५वीं शताब्दी ई० पू०) दोनों ने ही मगध की ओर के प्रदेश को प्राच्य कहा है। अपनी शुद्ध-वाणी का दर्प करने वाले आर्यों की दृष्टि में प्राच्यदेश के लोग सुसंस्कृत न थे।

पंच-गौड़ और पूर्व-भारत—महाभारत में जिन पांच राज्यों का वर्णन हुआ है उन्हें हम प्राच्य-देश के अन्तर्गत रख सकते हैं। महाभारत के अनुसार दीर्घतमा ने सुदेष्णा के गर्भ से पाँच पुत्र—अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म उत्पन्न किये। वे परस्पर-संलग्न पाँच राज्यों के सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। राज्यों का नामकरण उनके ही नामों के अनुसार हुआ। श्री शैलेन्द्रकुमार घोष ने इन पंच-राज्यों के क्षेत्र इस प्रकार बताये हैं[1]—

(१) अंग—भागलपुर, पूर्वमुंगेर, सन्थाल-परगना, मालदह और वीरभूम का कुछ अंश। इसकी राजधानी चम्पा बतायी गयी है।
(२) वंग—वर्तमान बांग्लादेश का लगभग सम्पूर्ण प्रदेश।
(३) कलिंग—सुवर्णरेखा से गोदावरी तक फैला हुआ समुद्रतटवर्ती प्रदेश।
(४) पुण्ड्र—उत्तर वंग।
(५) सुह्म—वीरभूम से वंगोपसागर पर्यन्त वर्तमान पश्चिम वंग।

इन पाँचों राज्यों को मिला कर पंच-गौड़ कहा जाता था। गौड़ देश के समुन्नत दिनों में आसपास के कुछ अन्य राज्य भी अपने को गौड़ देश के अन्तर्भुक्त मानते थे। पंचगौड़ तथा इसके उत्तर में प्राग्ज्योतिष एवं पश्चिम में मगध और

---

१. शैलेन्द्रकुमार घोष—भारत-ज्योति—वैशाख २७, वंगाब्द १३६५।

मिथिला को सम्मिलित-रूप से पूर्वभारत[1] कहते थे। यहाँ का शासक जरासंध था जिसका वध भीम ने किया।

इस पूर्वभारत के अन्तर्गत बिहार, असम, बंग और उड़ीसा प्रान्त का अधिकांश क्षेत्र आ जाता है। यहाँ बोली जाने वाली बोलियों का मूलस्रोत भी एक ही है—मागधी प्राकृत और अपभ्रंश।

पूर्वांचल—मागधी अपभ्रंश की पूर्वी-शाखा की भाषाओं के क्षेत्र असम, बंग, और उड़ीसा प्रदेशों की भाषाओं के रामचरित-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन मैंने प्रस्तुत किया है और इसी क्षेत्र को पुकारने की सुविधा के लिए पूर्वांचल कहा है।

प्राचीन असम :

आसाम—असम राज्य का आसाम नाम-परिवर्तन अंग्रेजी के कारण हुआ। 'असम' नाम भी बहुत प्राचीन नहीं है। इरावदी नदी के समीप बसी शान जाति के आहोम लोगों ने १३वी शताब्दी में इस प्रदेश पर अधिकार किया था। इस जाति के लोग असम-शक्ति के कहलाये होंगे और इसीलिए देश का नाम असम हुआ।[2] असमीया-भाषा के उच्चारणानुसार असम को आहोम ही कहेंगे। मेरी सम्मति में आहोम जाति का यह नाम असम का ही अपभ्रंश है। कुछ लोग थाइ जाति के स्याम शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। उनके अनुसार असमीया-भाषा में बहुत से शब्दों के साथ अनर्थक 'अ' का प्रयोग होता है। स्याम में अ जुड़ने पर आस्याम, आस्यम, अस्यम हो कर पीछे आसाम, आसम अथवा असम हुआ।[3] कुछ भी हो यह नाम ढाई-तीन सौ वर्ष से पुराना नहीं है।

प्राग्ज्योतिषपुर—असम का यह नाम प्राचीन है। महाभारत के अनुसार प्राग्ज्योतिष की सीमा आधुनिक असम तथा उत्तरी-पूर्वी बंगाल के कुछ भाग तक थी। पार्जिटर के अनुसार इसका विस्तार करतोया नदी तक था। महाभारत में यह म्लेच्छ और असुर देश बताया गया है। यहाँ नरकासुर का पुत्र भगदत्त राज्य करता था, जो कि हाथियों, किरात और चीनी लोगों की सेना लेकर कौरवों की ओर से कुरुक्षेत्र में लड़ा था। वाल्मीकि-रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में भी प्राग्ज्योतिषपुर नाम आया है। पुराणों और राजतरंगिणी में भी इसका उल्लेख है। नामकरण के तीन कारण अनुमानित किये जाते हैं— (१) इसका शाब्दिक अर्थ है पूर्व की ओर प्रकाश का नगर। पूर्व की ओर सूर्योदय होने के कारण यह नाम प्रचारित हुआ।

---

१. शैलेन्द्रकुमार घोष—भारत-ज्योति—वैशाख २७, बंगाब्द १३६५।
२. हेम बरुआ—दि रेड रिवर एंड दि ब्लू हिल—१२ (सब से पहले एडवर्ड गेइट ने असम का अर्थ अनईक्वल्ड या पियरलेस बताया था)।
३. वाणीकांत काकती—आसामीज इट्स फार्मेशन, पृ० २। डिम्बेश्वर नेओग—असमीया साहित्यर बुरञ्जि—३।

(२) कालिकापुराण (५१-६४) के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम तारों की यहीं सृष्टि की थी। यहाँ ज्योतिषशास्त्र की प्रधानता रही है। गौहाटी का नवग्रह मन्दिर इसकी पुष्टि करता है। (३) डा० वाणीकान्त काकती इस शब्द का उद्गम आस्ट्रो-एशियाटिक के 'पगर-जुह (जो) तिक' शब्द में खोजते हैं, जिसका अर्थ है 'ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों का देश।'

कामरूप — मध्ययुग में असम देश का कामरूप नाम प्रचलित हुआ। शंकर की कोपदृष्टि से भस्मीभूत काम ने यहीं रूप प्राप्त किया था। इसीलिए इसे कामरूप कहा गया। कालिदास ने रघुवंश[1] में प्राग्ज्योतिष और कामरूप दोनों नामों का प्रयोग किया है। प्रयाग में समुद्रगुप्त के स्तम्भ—लेख (३५० ई०) में कामरूप को प्रत्यन्त देश कहा गया है। कालिका-पुराण और योगिनीतन्त्र में कामरूप नाम आया है। चीनी-यात्री ह्वेनत्सांग और अलबरूनी ने भी इसका उल्लेख किया है। इन यात्रियों के समय में कमरु अथवा कामरूप नाम प्रचलित रहे होंगे। चौथी शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक देश के दोनों नाम मिलते हैं—प्राग्ज्योतिषपुर एवं कामरूप।

नीललोहित—इस देश की पहाड़ियाँ (नीलाचल) नीले रंग की हैं और नदी है लालरंग की, इसीलिए ब्रह्मपुत्र का नाम लोहित भी प्रचलित है। कहा जाता है कि परशुराम ने यहाँ अपना फरसा धोया था जिससे यह नदी लाल हो गयी थी। नदी का यह नाम महाभारत में आया है। परशुराम-कुंड पर माघपूर्णिमा के दिन आज भी मेला लगता है। यह स्थान सदिया से ४०-४५ मील दूर जंगल में है।

सदिया का प्रदेश कामरूप के इतिहास के कई स्मारक अपने गहन वनों में छिपाये है। कुण्डिल नदी के तट पर रुक्मिणी के पिता भीष्मक की राजधानी कुण्डिनपुर बतायी जाती है। मिज़्मी नामक एक पहाड़ी-जाति रुक्मिणी को अपने गोत्र की कन्या बताती है, कृष्ण से अपनी पराजय की स्मृति में यह जाति अब तक अपने सिर पर चाँदी की पट्टी बाँधती है, जिसे 'आंपाली' कहते हैं। 'प्राचीन रिपोर्टों से पता चलता है कि इस शताब्दी के आरम्भ में भी यहाँ अति प्राचीन परकोटे आदि के खण्डहर थे किन्तु जहाँ उनके पाये जाने का वर्णन था, वहाँ पर नयी सर्वे के नक्शा में लिखा है इम्पेनेट्रेबल फारेस्ट—अभेद्य जंगल।'[2]

कहते हैं कि यहीं से राजा नरकासुर के साथ कृष्ण का युद्ध हुआ था। नरकासुर ने ही कामाख्या का मन्दिर बनवाया था, जिसका जीर्णोद्धार १५६५ ई० में कोच राजा नरनारायण ने किया। जब शिव सती के प्रेम से पागल होकर उनका शव कन्धे पर लिए हुए घूम रहे थे, विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से शव के ५१ टुकड़े

१ रघुवंश ६-६४।
२. अज्ञेय—अरे यायावर, रहेगा याद, पृ० ८।

कर दिये थे। जिस स्थान पर सती की योनि कट कर पतित हुई, कामाख्या का मन्दिर बनाया गया है।

ऊषा-अनिरुद्ध की प्रेम-कथा का सम्बन्ध भी इस प्रदेश से जोड़ा जाता है। ऊषा शोणितपुर के राजा बाणासुर की पुत्री थी और अनिरुद्ध कृष्ण का पुत्र था। भागवत और हरिवंशपुराणों में दोनों पक्षों के युद्ध और ऊषा-अनिरुद्ध के परिणय के रूप में संघर्ष के अवसान का वर्णन है।

०असम का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उल्लेख चीनी यात्री—युआनच्वांग का यात्रा-वर्णन है। इसके समय में भास्कर वर्मा राज्य करता था। १०वीं से १२वीं शती का इतिहास उपलब्ध नहीं होता। ताम्रपत्रों के लेखों पर राजतरंगिणी जैसे ग्रन्थों के वर्णन से छिटपुट ऐतिहासिक संकेत मिल जाते हैं।

असम देश के राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में आहोम राजाओं की बहुत बड़ी देन रही है। इस देश में समय-समय पर कछारी, कोच, चुतीया आदि अनेक जातियों का राज्य रहा किन्तु सबसे अधिक स्थायी राज्य आहोम जाति का था। इस जाति ने हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लिया था।

आहोम जाति की सबसे बड़ी विशेषता है—वंशावली और इतिहास की रक्षा। इतिहास को इनकी आहोम भाषा में 'बुरंजी' कहते हैं और आज भी यह शब्द असमीया-भाषा में इतिहास शब्द का पर्याय है। इन लोगों ने पेड़ों की छाल पर आहोमी-भाषा में बुरंजियाँ तैयार करायी थीं, हिन्दुत्व स्वीकार कर लेने पर इनकी भाषा असमीया हो गयी थी। इनके कुल-देवता सोमदेव थे। इनके सुहनमुंग राजा ने १४७९ ई० में गोलाबारूद का परिचय प्राप्त कर लिया था और यहाँ के लोग बन्दूक और तोप के निर्माण में दक्ष हो गये थे। १६वीं शताब्दी के अन्त में इन्होंने अठकोना सिक्का भी चलाया था। स्थापत्य में भी इन राजाओं की विशेष रुचि थी।[1]

१३वीं शताब्दी से ही इस प्रदेश पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे, किन्तु सुदृढ़ सेना, प्रकृति, रोग और सघन वनों आदि के कारण यह देश बहुत कुछ दुर्जेय ही रहा।

प्राचीन बंगाल :

प्राचीन काल में बंगाल कई प्रदेशों में विभाजित था। (१) बंग, (२) राढ़ और (३) वरेन्द्र (पुण्ड्र अथवा गौड़)। मुसलमानों ने सर्वप्रथम समस्त प्रदेश का नाम बंगाल अथवा बंगाला प्रचारित किया।[2] किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मुसलमानों ने इस देश का नामकरण किया। यह नाम उनका दिया हुआ नहीं है।

---

१. हेम बरुआ—दि रेड रिवर एंड दि ब्लू हिल, ५०।

२. रमानाथ त्रिपाठी—कृत्तिवासी बँगला रामायण और रामचरितमानस—१।

'सदुक्ति कर्णामृत' नामक ग्रन्थ में बंगाल नामक कवि का नाम आया है, साथ ही बंगाल देश का भी नाम है। किसी-किसी ने बंगाल शब्द की व्युत्पत्ति बंगपाल शब्द से अनुमानित की है। बंग का अर्थ है जलपूर्ण-देश, उसका पालक बंगपाल।[1]

बंग—जिन तीन अंचलों को संयुक्त कर बंगाल गठित हुआ है, उनमें बंग प्राचीन है। बंग शब्द की उत्पत्ति बंग जाति से हुई है, ऐसा अनुमान किया जाता है। बंग शब्द का प्राचीनतम उल्लेख 'ऐतरेय आरण्यक' (२-१-१) में किया गया है, जिसमें कहा गया है कि बंग, बगध और चेरपाद के लोग पक्षी हैं। या तो इन जातियों का टोटम पक्षी था अथवा ये जातियाँ पक्षियों जैसी अव्यक्त वाणी बोलती थीं, जिसके कारण कि इन्हें पक्षी कहा गया। यह भी हो सकता है कि ये जातियाँ पक्षियों के समान ही यायावर थीं।[2] बौधायन धर्मसूत्र में पुण्ड्र, कलिंग तथा अन्य देशों के साथ बंग को भी अगम्य देश माना गया है, जहाँ जाने पर प्रायश्चित्त करना पड़ता था।[3] कुरुक्षेत्र के युद्ध के समय यहाँ के राजा समुद्रसेन ने एक विशाल हस्ती-वाहिनी के साथ कौरव-पक्ष की ओर से युद्ध किया था। इस प्रदेश पर शिशुनाग, मौर्य, शुंग, कण्व और गुप्त वंशों का राज्य रहा था। समुद्रगुप्त ने शासन की सुविधा के लिए बंग को समतट और देवक नामक दो सामंत-शासित प्रदेशों में विभाजित किया था। यहाँ पराक्रमी वर्मन-वंश का भी राज्य रहा। बंगाल के प्रसिद्ध स्मृतिकार भवदेव भट्ट (राढ़ निवासी) इस वंश के मन्त्री थे।

सम्पूर्ण बंगाल ही बंग कहलाता है किन्तु प्राचीन काल में बंग का अर्थ केवल पूर्वी बंगाल था। अब यह प्रदेश बांग्लादेश में है।

राढ़—राढ़ और सुह्म जातियों के नाम पर पश्चिम बंग को राढ़ और सुह्म कहते थे। जैनों के प्राचीन ग्रन्थ आचारांग सूत्र में (१-१-६-४) में यहाँ के निवासियों की निन्दा की गई है। राढ़ शब्द राष्ट्र का अपभ्रंश है। महाभारत-युग में यह अंग और सुह्म नामक दो राज्यों में विभाजित था। सुह्मराज द्रौपदी के चीर-हरण के समय राजसभा में उपस्थित थे, कुछ समय पश्चात् अंगराज कर्ण ने इस पर अधिकार कर लिया। राढ़ भागीरथी के पश्चिम में है। उत्तर राढ़ को ब्रह्म और दक्षिण राढ़ को सुह्म भी कहते थे।

वरेन्द्र (पुण्ड्र)—उत्तरी बंग को वरेन्द्र कहते थे। वरेन्द्र का प्राचीन नाम पुण्ड्र है। ऐतरेय-ब्राह्मण (७-१८) में आन्ध्र, पुलिन्द, शबर आदि जातियों के साथ पुण्ड्रों को भी दस्यु कहा गया है। आज भी यहाँ पूंड नामक जाति रहती है। डा० सुकुमार सेन का कहना है कि सम्भवतः इनके ईख की खेती में निपुण होने के कारण

---

१. सुकुमार सेन—बाङ्गाला-साहित्येर-इतिहास (१), पृष्ठ ५।
२. वही, पृ० १।
३. रमानाथ त्रिपाठी—कृत्ति० बँगला-रामायण और रामचरितमानस, पृ० २।

ही ईख का नाम पूंड़ हुआ। यह भी हो सकता है कि ईख का ही नाम पहले पुण्ड्र हो और इसकी खेती करने के कारण इस जाति को पुण्ड्र या पूंड़ कहा गया हो।[1] यही सम्भव है, क्योंकि उत्तर प्रदेश में भी कहीं-कहीं ईख को पौंडा कहते हैं। वरेन्द्र का एक और नाम गौड़ है। यदि यह शब्द गुड़ से बना हो तो डा० सेन पुण्ड्र शब्द का ईख से सम्बन्धित होना अधिक पुष्ट मानते हैं।

गौड़—छठी शताब्दी में गुप्त-राज्य के पतन होने पर एक नूतन गुप्तवंश ने राढ़ और वरेन्द्र को एकत्र कर राज्य किया था। लिखित इतिहास का यही प्रथम सार्वभौम गौड़ राज्य है।[2] सातवीं शताब्दी में वराह-मिहिर ने गौड़ को वंग, उत्कल, काशी, कोशल से स्वतंत्र जनपद बताया है। शक्तितंत्र में वंग से भुवनेश्वर तक का देश गौड़ देश कहा गया है। ८वीं शताब्दी के 'अनर्घराघव' नाटक में गौड़ की राजधानी चम्पा बतायी गयी है, जो किसी समय अंग की राजधानी थी। ११वीं शताब्दी के एक शिलालेख के अनुसार अंगदेश भी गौड़-राज्य के अन्तर्भुक्त था। हिन्दू-शासन युग के शेषांश में सारा बंगाल गौड़ और वंग इन दो प्रधान भागों में विभक्त हो गया था।

बँगला-भाषा का प्रथम देशी नामकरण गौड़ भाषा हुआ, जो कि १६वीं शताब्दी से १९वीं शताब्दी तक प्रचलित रहा। मधुसूदन दत्त ने बंगाल के निवासियों को गौड़-जन कहा है। विदेशियों द्वारा बांगला या इससे मिलते-जुलते नाम प्रचारित हुए। श्रीरामपुर के मिशनरी प्रेस से कृत्तिवासी रामायण प्रथम बार प्रकाशित हुई थी, जिसके मुखपृष्ठ पर लिखा था—'कीर्त्तिवास बाङ्गालि भाषाय रचित।'

०प्राचीन बंगाल की अधिकांश भूमि दलदल एवं मच्छरों से पूर्ण थी। यहाँ के रहनेवाले कुरूप, काले, कुरुचियुक्त, भक्ष्याभक्ष्य-ग्राही एवं असभ्य जंगली थे। बंगाल देश में आर्य सभ्यता सर्वप्रथम जैन-श्रमणों ने पहुँचायी। जैनों के प्राचीनतम ग्रन्थ आचारांग-सूत्र में उल्लेख है कि जब महावीर जी (छठी शती ई० पू०) राढ़ एवं सुह्म देश में धर्म-प्रचार के लिए गये, तो वहाँ के निवासियों ने 'छू-छू' ध्वनि कर इनके पीछे कुत्ते दौड़ा दिये। अहिंसा-प्रिय जैन भिक्षुकों को भी दुश्चर राढ़ देश-वासियों एवं कुत्तों के डर से बाँस की लाठी लेकर चलना पड़ता था।[3] ऐतरेय-आरण्यक, ऐतरेय ब्राह्मण, बौधायन-धर्मसूत्र, महाभारत, शीलांकाचार्य कृत आचारांग-सूत्र की टीका के अनुसार यहाँ के निवासी क्रमशः पक्षी, दस्यु, संकीर्णयोनि, ('आंशिक

---

१. सुकुमार सेन—बाङ्गाला-साहित्येर-इतिहास, पृ० २।
२. शैलेन्द्रकुमार घोष—भारत-ज्योति—वैशाख २७, १३६५ बंगाब्द, लेख—गौड़ेर अभ्युदय।
३. आचारांग सूत्र—१-१-६-४ (८३ से ८६ छन्द)।

आर्यीकृत ?) म्लेच्छ और अनार्य बताये गये हैं।[1] यहां की निम्न-जातियों में नृतत्ववेत्ताओं ने किरात (तिब्बत बर्मी) निषाद (आस्ट्रिक) और द्रविड़ जातियों का रक्त-सम्बन्ध खोज निकालने का प्रयास किया है।

मौर्यकाल से ही आर्य सभ्यता का प्रसार पूर्व की ओर जोर पकड़ चला था, गुप्त-काल में पौराणिक संस्कृति का विकास हुआ। पाल-वंशीय बौद्ध-शासकों ने कई शताब्दी तक बंगाल पर राज्य किया। उनके पश्चात् सेनों के राज्य-काल में स्मृति-शासित हिन्दू-धर्म ने विशेष प्रतिष्ठा लाभ की। सेनों को पराभूत कर मुस्लिम शक्ति बंगाल पर अधिकार कर सकी थी।

प्राचीन उड़ीसा :

उड़ीसा राज्य तीन प्रदेशों से मिल कर बना है—(१) उड़ या ओड्र या ओड्र, (२) उत्कल और (३) कलिंग। ये तीनों नाम पुरानी तीन जातियों के नाम के आधार पर हैं। कलिंग या उत्कल जातियाँ अब या तो लुप्त हो गयी हैं अथवा आत्मसात् कर ली गयी हैं। उड़िया लोगों को अभी भी उत्कल एवं कलिंग नामों के प्रति मोह है। भुवनेश्वर का विश्वविद्यालय अपने नाम के साथ उत्कल विशेषण जोड़े हुए है। यहाँ जो पुरस्कार दिये जाते हैं उनका नाम कलिंग होता है।[2] विद्वानों का मत है कि ओक्कल एवं ओड्डुरश द्रविड़ शब्दों से संस्कृत उत्कल एवं ओड्र शब्द बने हैं। डा० हरेकृष्ण मेहताब कन्नड़ के शब्द ओक्कलगार (कृषक) एवं तेलुगु शब्द ओड्डुलु (श्रमिक) के आधार पर यहाँ की पुरानी जन-जातियों को कृषक या श्रमिक बताते हैं। इसी प्रकार वे चिल्का झील के दक्षिणी तट पर बसी हुई जाति कलुस और कलिंग अथवा कालिंजी का सम्बन्ध कलिंग जाति से जोड़ते प्रतीत होते हैं।[3]

ओड्र—इस प्रदेश की प्राचीन सीमा महानदी की घाटी एवं सुवर्णरेखा नदी के मध्य थी। इसके अंतर्गत कटक, सम्बलपुर के जिले तथा मेदिनीपुर का कुछ अंश आता है। इसके पश्चिम में गोंड़वाना, उत्तर में जशपुर और सिंहभूम के वन्य-पर्वतीय राज्य, पूर्व में समुद्र एवं दक्षिण में गंजाम की स्थिति थी। प्रतापी राजाओं के शासन-काल में सीमा का विस्तार भी हो जाया करता था। श्री नीलकंठ दास ने ओड्र देश

१. ऐतरेय आरण्यक (२-१-१), ऐतरेय ब्राह्मण (७-१८), बौधायन धर्मसूत्र (१-२-१४), महाभारत (सभापर्व, ३०-२५) विशेष विवरण के लिए देखिए लेखक का ग्रंथ—कृत्तिवासी बँगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३,४।

२. डा० मायाधर मानसिंह—हिस्ट्री ऑफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० ६।

३. डा० हरेकृष्ण मेहताब—हिस्ट्री ऑफ़ ओरिसा, पृ० १।

को बौद्धों का उड्डीयान देश बताया है।[1]

उत्कल—यह प्रदेश बालासोर से लोहारडागा तक रांची और सरगुजा (म०प्र०) के बीच था। यह उत्तर एवं उत्तर-पूर्व उड़ीसा का क्षेत्र था। उत्कल जाति कपिशा(कसाई) नदी तक फैली हुई थी। बालासोर के पण्डित लोग उत्कल शब्द का अर्थ बताते हैं उत्+कल=कलित=कटा हुआ। गंगा की घाटी से कटा होने के कारण इसका उत्कल नाम आख्यात हुआ।[2]

कलिंग—हंटर[3] कलिंग को गोदावरी और महानदी के डेल्टा के मध्य-भाग में स्थित मानते हैं। डा० मेहताब[4] ह्वान्त्सांग के वर्णन के आधार पर लिखते हैं कि यह दक्षिण-पश्चिम में गोदावरी और उत्तर-पश्चिम में इन्द्रावती की शाखा गाय्रोलिया के बाहर नहीं था। यह पश्चिम में आन्ध्र और दक्षिण में वनकटक से जुड़ा हुआ था।

उड़ीसा में एक-दो और भी नाम प्रचलित रहे हैं—कोंगद एवं त्रिकलिंग। कलिंग और ओड्र को मिलाकर कोंगद कहा जाता था। यह राज्य नया था, जिसके अन्तर्गत पुरी का दक्षिणी भाग और गंजाम थे। त्रिकलिंग के विषय में विभिन्न मत हैं, डा० मेहताब का मत है कि कलिंग के राजा कभी-कभी अपने को कलिंग, उत्कल एवं कोंगद का राजा मानकर इसी देश को त्रिकलिंग कहते थे, किन्तु वे सच में तीनों के राजा होते नहीं थे।[5]

१२वीं शताब्दी में गंगवंशी राजा अनन्तवर्मा चोड गंगदेव ने सभी पृथक प्रदेशों को एक शासनसूत्र में बांधा था। इन राजाओं के शासन में उड़िया-भाषा का जन्म हुआ एवं जगन्नाथ को केन्द्र मान कर नयी संस्कृति का भी विकास हुआ। जब गंग-वंशीय राजाओं की राजधानी कलिंग नगर से कटक हो गयी, तो उत्कल अथवा ओड्रदेश का महत्त्व बढ़ गया और धीरे-धीरे कलिंग नाम लुप्त हो गया। ९-१०वीं शती के लेखों में ओड्र अथवा ओड नाम प्रयुक्त हुए हैं, कालान्तर में इन्हीं शब्दों से ओड़िशा अथवा अंग्रेजी का Orissa नाम प्रचारित हुआ।

स्वयं रामायण-लेखक बलरामदास ने कहा है—भरतखण्ड में उड़राष्ट्र पृथ्वी का सार है। इसी को पुराणों में उत्कल देश कहा गया है।

भारतखण्डरे उड़राष्ट्र सारामही।
उत्कल देश नाम पुराणे याहा कहि॥७-१॥

०वैदिक साहित्य में उड़ीसा के किसी भी नाम का उल्लेख नहीं है। कुछ विद्वानों के मत से कलिंग का नाम ऐतरेय-ब्राह्मण में है। महाभारत में कलिंग, ओड्र, और

---

१. श्री नीलकंठदास—सभापतीय भाषण, पृष्ठ ६।
२. श्री हंटर—हिस्ट्री ऑफ़ ओरिसा, पृष्ठ ३।
३. वही, पृ० ५०।
४. डा० मेहताब—हि० ऑफ़ ओरिसा, पृ० ४।
५. वही, पृ० ७।

उत्कल का उल्लेख है। शान्तिपर्व में कलिंग के राजा चित्रांगद की कन्या के स्वयम्वर का वर्णन है। द्रौपदी के स्वयम्वर में कलिंग का राजा उपस्थित था। श्रुतायुः नाम का राजा १० हजार हाथी ले कर पांडवों से लड़ा था। अर्जुन ने अंग, वंग और कलिंग की यात्रा की थी। महाभारत में कलिंग-निवासियों को क्षत्रिय किन्तु साथ ही दुर्धर्म भी कहा गया है, शायद इसलिए कि उन्होंने दुर्योधन का साथ दिया था।

उत्कल और ओड्र नाम कम आये हैं। कर्ण द्वारा उत्कलीयों को हराने का उल्लेख हुआ है। उड्र या उड्देश के लोगों ने युद्ध में पाण्डवों का साथ दिया था।

स्पष्ट है कि महाभारत के रचना-काल में उड़ीसा के तीनों विभाग बिल्कुल स्पष्ट थे।

बौद्ध- जातकों में कलिंग और उत्कल के साथ ही उक्कल या ओक्कल जाति और देश का भी वर्णन है।[1]

भविष्यपुराण, मत्स्य-पुराण एवं वायुपुराण में कलिंग का नाम आया है। बौधायन ने बंगाल के साथ ही कलिंग की यात्रा भी वर्जित की थी।

पूर्वांचल की भौगोलिक-स्थिति :

पूर्वांचल वन, जन्तु, नदी, आदिम-जातियों एवं खनिज-पदार्थ से सम्पन्न मानसूनी-जलवायु का प्रदेश है।

असम का क्षेत्रफल २,२०,१८० व० किलो०, जनसंख्या १.१८ करोड़ है। इसके उत्तर में भूटान और तिब्बत, पूर्व में ब्रह्मा तथा मणिपुर, पश्चिम एवं दक्षिण-पश्चिम में बांग्लादेश और त्रिपुरा है। इसका सामरिक महत्त्व है। चीन, भूटान और ब्रह्मा को जाने वाले व्यापारिक मार्ग यहीं से होकर जाते हैं।

इसका आधा भाग पहाड़ी और आधा भाग मैदानी है। बहुत बड़े भूभाग पर वन हैं। यहाँ अनेक प्रकार की जलवायु के वन हैं। पानी बहुत बरसता है, समस्या सिंचाई की नहीं अपितु अतिरिक्त पानी के निकास की है। अफ्रीका को छोड़ कर अन्य कहीं ऐसी वनस्पति, जीव-जन्तु एवं पशुपक्षी नहीं हैं। गैंडा, हाथी, जंगली भैंसे, मेठन (जंगली साँड़) अनेक प्रकार के हिरण, भयंकर साँप, अजगर, चीता, बाघ आदि जीव-जन्तुओं से इसके वन-प्रदेश भरपूर हैं। यहाँ अनेक प्रकार की आदिम-जातियाँ निवास करती हैं, जिनकी जनसंख्या का प्रतिशत तीनों प्रदेश के प्रतिशत से अधिक है।

बंगाल का क्षेत्रफल ८६,१९२ व० किलो० है और जनसंख्या ३.४९ करोड़ है। पश्चिम में बिहार, पूर्व में बांग्लादेश और असम, उत्तर में भूटान और सिक्किम के राज्य तथा उत्तर-पश्चिम में नेपाल की पूर्वी सीमा और दक्षिण की ओर लहराता हुआ महासागर है।

अधिकांशतः नदियों की लायी हुई कछारी मिट्टी से बना है। केवल उत्तरी

---

१. श्री हंटर—हिस्ट्री ऑफ़ ओरिसा, पृ० १०—श्री एन० के० शाह की पाद-टिप्पणी।

तथा पश्चिमी भागों में कुछ ऊँचाई है। उत्तरी भाग नेपाल, सिक्किम तथा भूटान का निचला प्रदेश है। पश्चिम की उच्चभूमि छोटा नागपुर का पठारी भाग है। मैदानी भाग में नदियों का जाल बिछा है। डेल्टा प्रदेश में सुन्दरवन महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश वन साफ कर खेती की जाती है। जूट और चावल की उपज महत्त्वपूर्ण है। लोहा, चूना आदि खनिज पदार्थ भी पाये गए हैं।

उड़ीसा का क्षेत्रफल १,५५,७५१ व० किलो० एवं जनसंख्या १·७५ करोड़ है।

इसका आधे से अधिक भाग दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तर में स्थित ऊँचा भूभाग है। पठारी भाग बहुत पुरानी चट्टानों से निर्मित है। धरातल के धसाव के कारण तटीय मैदानों का निर्माण हुआ है। नदियों ने भी पठार को काट कर मैदानों का निर्माण किया है। जल-वृष्टि की अधिकता के कारण साल, सागौन, शीशम, बाँस आदि वृक्षों के मानसूनी वनों से यह प्रदेश आच्छादित रहता है। कई उपयोगी लकड़ियाँ एवं लाख इसके वनों से प्राप्त होती हैं। इसके ४२.३० प्रतिशत भाग पर वन हैं। खनिज पदार्थों का भी प्राचुर्य है। यह सुन्दर प्राचीन मन्दिरों का देश है।

पूर्वांचल के जन और उनका प्रभाव :

'आदिवासी' शब्द पृथकतावादी है, इसमें राजनीति की दुर्गन्ध आती है। जब अनेक जातियाँ भारत के बाहर से ही आती रहीं—ऐसा माना गया, तो केवल अर्ध-सभ्य जनों को ही आदि-वासी किस आधार पर माना जाए ! श्री भगवानदास केला[1] ने इनके लिए आदिम-जाति शब्द का प्रयोग किया है जो कि अंग्रेजी शब्द Primitive का अर्थ-द्योतन करता है। ये जातियाँ अभी भी तो सभ्यता के विकास-क्रम की आदिम-अवस्था में पड़ी हुई हैं।

अपने देश के आदिम-जनों को २१२ समूहों में विभाजित किया गया है। पूर्वांचल में ही भारत के आदिम-जनों का प्रतिशत सबसे अधिक है, सम्भवतः इन्हीं के कारण यह प्रदेश व्रात्य-प्रदेश कहलाया और यहाँ की यात्रा वर्जित की गयी। आदिम-जनों का प्रभाव भाषा और धर्म दोनों पर है। असमीया, बँगला और उड़िया भाषाओं पर ही नहीं हिन्दी आदि अन्य भारतीय भाषाओं पर भी इनका प्रभाव है। धर्म के क्षेत्र में शिव और शक्ति से सम्बन्धित रक्तमय-उपासनाओं का प्रयोग भी आदिम-जातियों की देन बताया जाता है। इस दृष्टि से इनका परिचय प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

श्री डी० एन० मजुमदार ने भारत की आदिम-जातियों की खोज का कार्य जटिल बताया है। इन जातियों का वर्गीकरण तीन दृष्टियों से हो सकता है—भौगो-

---

१. श्री भगवानदास केला—हमारी आदिम-जातियाँ, पृ० १०-११।

निक, रक्त-सम्बन्धित और भाषात्मक। तीनों ही दृष्टियों से अध्ययन-कार्य कठिन है, क्योंकि प्रागैतिहासिक-युग से ही आदिम-जातियाँ यात्रा करती रही हैं। उनमें पारस्परिक रक्त-सम्बन्ध भी हुआ एवं पारस्परिक भाषाओं अथवा उनके शब्दों को भी ग्रहण किया गया। कुछ आदिम-जातियाँ तो रक्त एवं भाषा की दृष्टि से एकदम किसी अन्य प्रबल-जाति के मध्य खो गयी हैं —जैसे कि भारत में नीग्रो। उड़ीसा के खड़िया लोगों और शबरों में मंगोली बनावट पायी जाती है, उनकी इस विशेषता का कारण बता सकना कठिन है।

रिजले, कून, आइक्स्टेड, सरकार, हेमन्डॉर्फ, हटन, गुहा, मजूमदार आदि अनेक विद्वानों ने आदिम-जातियों के वर्गीकरण आदि का प्रयास किया है। डा० गुहा ने भारत की प्रजातियों (Races) को मुख्य छह भागों में बाँटा है[1]—(१) निग्रिटो, (२) प्राथमिक-दक्षिणाकार (Proto-Austroloid), (३) मंगोलायड, (४) भूमध्य-सागरीय, (५) पश्चिमी-वृत्तकपालक और (६) नार्डिक।

शताब्दियों से पारस्परिक-मिलन होने पर भी कुछ स्थानों पर कुछ जातियाँ युगों से अपरिवर्तित जीवनयापन करती हुई अपने रक्त, भाषा और संस्कारों की रक्षा कर सकी हैं।

गुहा ने भौगोलिक-दृष्टि से भारत के आदिम-जनों को तीन भागों में बाँटा है—(१) उत्तरी-पूर्वी-प्रदेश, (२) मध्यप्रदेश और (३) दक्षिण-प्रदेश। हमारा पूर्वांचल प्रदेश केवल प्रथम दो भागों से सम्बन्धित है, अतएव यहाँ केवल इन्हीं दो भागों का वर्णन होगा। उत्तरी-पूर्वी प्रदेश में सिक्किम के लेपचा और असम सीमान्त के कुकी लुशाई आदि कई नाग व्यक्ति आते हैं। ये असम की दुर्गम पहाड़ियों और हिमालय के दक्षिणी ढालों पर बसे हुए हैं। उत्तर-पूर्वी प्रदेश के पश्चिमी-भाग में भी असंख्य जंगली जातियाँ बसी हुई हैं। सुबागिरी (सुवर्णश्री) के पश्चिम में आका, डफला, मीरी आदि जातियाँ हैं। दिहांग और लोहित नदियों के मध्य मिश्मी और पूर्व में दिगारा तथा मेच जातियाँ हैं। बर्मा देश से पूर्व की ओर नदिया के सीमान्त में स्यामनी तथा सिंहफो लोग हैं। और आगे पूर्व में मणिपुर तक धनगिरि (धनश्री) से लेकर रेंगमा पहाड़ियों तक नागा लोग निवास करते हैं- इनके २१ भेद हैं। असम में आदिम जातियों के वैविध्य एवं बाहुल्य के कारण ही श्री हेम बरुआ ने इसे जाति एवं आदिमजाति-समूह का जीवित संग्रहालय कहा है।[2]

मध्यप्रदेश के आदिम जन अधिकांशतः नर्मदा और गोदावरी नदियों के मध्यवर्ती पर्वतीय-भाग में बसते हैं। गंजाम जिले की शबर, गदब और डोम्बो,

---

१. श्री डी० एन० मजुमदार और मदन —एन इंट्रोडक्शन टु सोशल एन्थ्रोपोलोजी, पृ० २५७-५६।

२ हेम बरुआ—दि रेड रिवर एंड दि ब्लू हिल, पृ० ५६।

उड़ीसा के पर्वतीय-भाग में हो तथा भूमिज, छोटा-नागपुर के पठारी-भाग में संथाल, ओरांव और मुंडा-जातियाँ बसी हैं। मध्यवर्ती पहाड़ी श्रेणियों के केन्द्र और पश्चिमी-भाग की सबसे मुख्य जातियाँ कोल, गोंड और भील हैं।[1]

इन तीनों प्रदेशों में रहने वाली आदिम-जातियों को रक्त एवं भाषा-परिवार की दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) नीग्रो, (२) निषाद, (आस्ट्रिक), (३) द्रविड़ और (४) किरात (मंगोलाइड)।

(१) नीग्रो लोग मोटे ओंठ, चिपटी नाक, घुंघराले ऊन जैसे केश वाले और कृष्णवर्ण थे। अब शुद्ध रूप में ये केवल अन्दमान निकोबार में रह गये हैं। दक्षिण भारत की केवल कादिर, पनियान, इरुल एवं कुरुम्ब जातियाँ इस वर्ग के अंतर्गत कही जा सकती हैं। हटन असम की नगा (अंगामी) जाति के साथ इनका रक्त-मिश्रण मानते हैं।[2] ये लोग भाषा एवं रक्त की दृष्टि से अपना अस्तित्व खो बैठे हैं। भारतीय-भाषाओं पर इनका प्रभाव नहीं रह गया है।

(२) भारत की अनार्य जातियों में निषाद-वर्गीय जातियों का ही प्रभाव अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनका रंग काला, नाक चपटी और सिर लम्बा माना गया। इनकी एक शाखा सिंहल में वेद्दा या व्याध है। इनके दल बर्मा, मलय, पूर्वी द्वीपों एवं आस्ट्रेलिया तक पहुँचे थे। भारत में निषाद-जातियाँ मुख्यतः मध्य-भारत में फैली हुई हैं। उड़ीसा की भूमिज, मुंडा, शवर, संथाल, हो, कोरा खड़िया, खरवार, गदब, जुआंग, परजा आदि जातियाँ इसी वर्ग की हैं। बंगाल में भी मुंडा, संथाल, खड़िया और भुइयाँ आदि निषाद-वर्गीय जातियाँ हैं। असम की खासी जाति का मूल स्पष्ट नहीं किन्तु इसने निषाद-वर्गीय भाषा अपना ली है।

(३) दक्षिण-भारत के तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, तुलु और तोदा भाषी लोगों में द्रविड़ रक्त है। उड़ीसा के ओरांव, खोंढ़ (अथवा कन्ध) गोंड और कोंडाडोरा द्रविड़-वर्ग की भाषाएँ बोलते हैं। बंगाल में भी ओरांव और गोंड हैं। असम के मालतो-भाषी इसी वर्ग के हैं।

(४) किरातों (मंगोलाइड) का प्रभाव भारत पर बहुत कम है, किन्तु असम के समस्त प्रदेश तथा बंगाल के कुछ अंश पर ये छाये हुए हैं, इसलिए पूर्वांचल के लिए इनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। इनकी दो शाखाएँ थीं—तिब्बती-चीनी एवं तिब्बती ब्रह्मी। तिब्बती-ब्रह्मी भाषाओं का प्रभाव असम पर अधिक है। भारत में मंगोल जातियों को किरात कहा गया, महाभारत में विदेह राज्य के आगे किरात का वास-स्थान बतलाया गया है। मनु ने किरातों को व्रात्य क्षत्रिय कहा है। कालिका-पुराण (३९-१०४) में यहाँ के निवासियों को किरात बताया गया है, जिनके सिर घुटे हुए

१. श्री भगवानदास केला—हमारी आदिम-जातियाँ, ५, ६ से।
२. हटन—कास्ट इन इंडिया, पृ० ३।

और रंग सोने जैसा पीला है। नेपाल, सिक्किम और जिला दार्जलिंग (बंगाल) तथा असम में किरात जाति के चीनी-तिब्बती भाषी लोग बसे हुए हैं। चीनी-तिब्बती परिवार की कई भाषाएँ बहुत ही अल्प संख्या वाली जातियों के मध्य प्रचलित होने के कारण महत्त्वहीन हैं।[1] इस भाषा-परिवार को दो भागों में विभाजित किया जाता है—१. तिब्बत-ब्रह्मी, २ श्यामी-चीनी। नेपाल, जि० दार्जलिंग (बंगाल) और असम की बहुत-सी भाषाएँ तिब्बती ब्रह्मी हैं, केवल असम के पूर्व में जहां नामटी बोली जाती है स्यामी-चीनी परिवार भी है, असम की एक विजेता शासक जाति आहोम का सम्बन्ध भी भाषा-परिवार की इसी शाखा से है।[2]

उत्तर बंगाल, पूर्व बंगाल (त्रिपुरा राज्य), असम की ब्रह्मपुत्र घाटी, गारो पहाड़ियाँ और कछार जिला में बोडो लोग रहते हैं। बोडो शाखा के अन्तर्गत कई आदिम-जातियों की बोलियाँ सम्मिलित हैं। उत्तरी असम के सीमांत पर अन्य तिब्बती-ब्रह्मी आदिम-जातियां मीरी और डफला रहती हैं। नगा-लोगों की अनेक बोलियां हैं जो परस्पर भिन्न हैं। नगा-जनों के दक्षिण में तिब्बती-ब्रह्मी कुकी-चीनी रहते हैं। ये ब्रह्मी भाषा-परिवार से सम्बन्धित हैं, इनमें प्रमुख हैं मैतेइ या मणिपुरी। ये सुसंस्कृत और शिक्षित हैं तथा शताब्दियों से वैष्णव हिन्दू हैं। बंगाल में लेपचा, मग और चकमा (शाक्य+मोंग, मोंग का अर्थ ब्रह्मी भाषा में सरदार है—यह जाति आर्य-मंगोल मिश्रित है) आदि प्रायः बौद्ध धर्मावलम्बी जातियों के अतिरिक्त बोडो, मेच, कोच, कचारी, राभा, गारो आदि जातियां भी हैं, जो कि त्रिपुरा में आ कर बसी थीं।

किराती शाखा का प्रभाव असम-बंगाल तक ही सीमित है किन्तु इसके कुछ चिह्न गोंड़, माड़िया आदि में भी मिल जाते हैं।[3]

असम की किराती वंशलता को डा० टिम्बेश्वर नेओग ने इस प्रकार वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया है, जो कि असम्पूर्ण है।

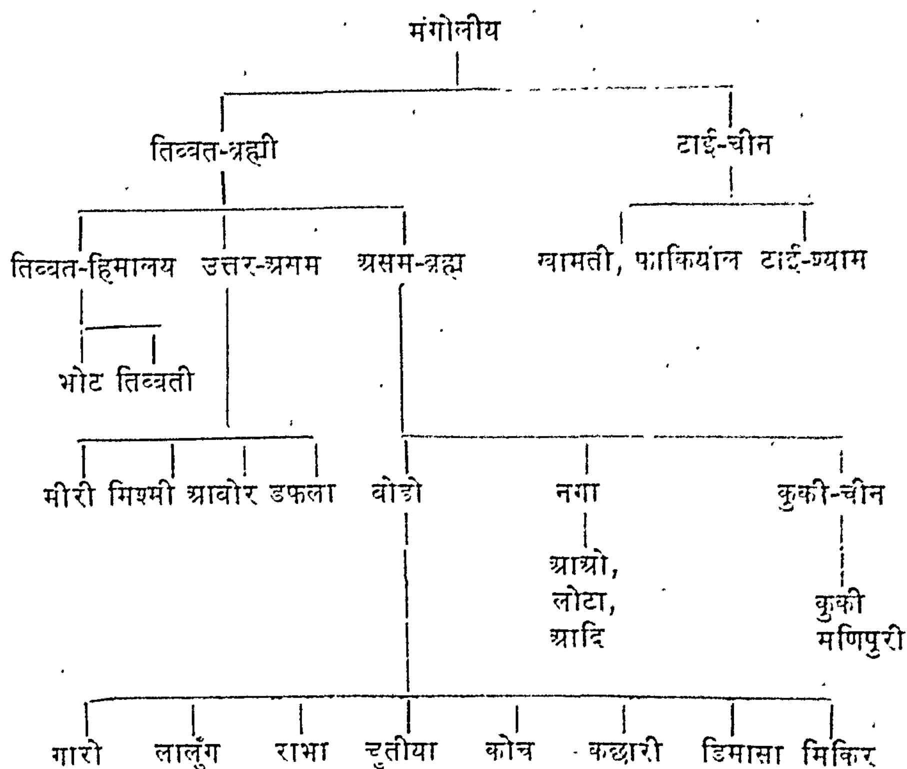
(पृ० ३० देखिए)

आदिम-जातियों का प्रभाव—सिन्दूर दान, पुनर्जन्मवाद-विश्वास, हस्तीपालन आदि अनेक बातें आदिम-जनों की देन बतायी जाती हैं। उपासनाओं में रक्त, मदिरा और नारी का प्रयोग भी इन्हीं की देन बताया जाता है।

आदिम-जनों की अनेक जातियों में नर-बलि की प्रथा रही है। नगाओं में विवाह-योग्य उसी को समझा जाता है जो दो-चार हत्याएँ कर लेता है। नगा

---

१. सुनीतिकुमार चटर्जी—भारत की भाषाएँ और भाषा-सम्बन्धी समस्याएँ, पृ० २२।
२. वही, ट्राइबल लैंग्वेजज, पृ० ७१, पुस्तक—दि आदिवासीज़।
३. श्री श्यामाचरण दुबे—मानव और संस्कृति, पृ० ६७।



लोग सृष्टि, रोग और वात-वृष्टि के देवताओं को संतुष्ट करने के लिए वलि देते रहे हैं। कुकी लोग नगाओं से भी अधिक हिंसक हैं। ये भी शत्रुओं के सिर काट लेते हैं, ये युद्ध के लिये सदैव आकुल रहते हैं। ताम्रेश्वरी-देवी के मन्दिर में कुछ आदिम-जातियाँ नर-बलि देती रही हैं, इसी कारण इस देवी का नाम 'कचाईखाती' (कच्चा खाने वाली) प्रसिद्ध हुआ। खासी जाति में 'उथ्लेन' नामक सर्प देवता के नाम पर नर-बलि दी जाती है।[1] बलि के लिए कोई व्यक्ति मन-ही-मन चुन लिया जाता है, फिर एक दिन मन्त्र-पूत हो कर बलि देने वाला व्यक्ति लोहे के अतिरिक्त किसी धातु के अस्त्र, लाठी आदि से बलि-पात्र पर आकस्मिक आक्रमण कर उसे गिरा लेता है और चाँदी की कैंची से उसके केशाग्र एवं नख काट लेता है। उसके नथुनों से रक्त निकाल कर सर्प-देवता को अर्पित कर देता है। उड़ीसा की कन्ध-जाति नरबलि एवं शिशुहत्या के लिए प्रसिद्ध रही है। उड़ीसा में आज भी कई ऐसे स्थान हैं जो उन व्यक्तियों के नाम पर हैं, जिनकी कभी बलि दी गयी है। नरबलि को मेरिआ कहते हैं।[2] यह प्रथा उड़ीसा में १८४८ ई० तक चलती रही।[3] अब नरबलि

---

१. श्री महेश्वर नेओग—पुरणि असमीया साहित्य, पृ० १०६।
२. श्री भगवानदास केला—हमारी आदिम-जातियाँ, पृ० ६०।
३. श्री अनन्त पद्मनाभ पट्टनायक—उपेन्द्र भंज-परिचय, पृ० ३२।

के स्थान पर भैंसों का वध होता है ।

आदिम-जातियों की रक्त-पिपासा का प्रभाव उनकी पूजा-पद्धति पर पड़ा । हिन्दू-देवताओं को भी उन्होंने अपने ढंग से ही पूजा । उनके इस प्रभाव की झलक हमें प्रस्तुत ग्रंथ के अगले अध्याय में मिलेगी ।

पूर्वांचलीय-भाषाओं पर प्रभाव—(१) निषादप्रभाव—निषाद-वर्ग में आने वाली भाषाओं को पहले कोल एवं अब मुंडा भाषाएं कहा गया है । मुण्डा भाषाएं तीन प्रकार की हैं—मुण्डा, खासी एवं निकोबारी । वस्तुओं में कोड़ी की गिनती, बंगला में बीस को कुड़ी (कुड़ि) कहना पूर्वांचल-भाषाओं की क्रिया में लिंग-सूचक उपकरण का अभाव इसी भाषा-परिवार की देन बताया जाता है । असमीया भाषा का सोलंग (एक खट्टा फल) खासी के Soh-Long से बना है, सोह् का अर्थ खासी भाषा में फल है । असमीया और उड़िया का लंग (भोग, अभिमान) खासी शब्द बताया जाता है । बंगला में 'नोंग' शब्द है, जिसका अर्थ विकार अथवा गन्दे को 'नों-नों' है । बंजाल भी तीनों पूर्वांचलीय-भाषाओं एवं हिन्दी में है, इसे भी खासी के जिजर शब्द से उत्पन्न माना गया है । मुण्डा शब्द मद (बांस) से बंगला मादुर (चटाई) बना है । मुण्डा नाना शब्द का अर्थ है बड़ी बहिन तथा नाना । उड़िया में नना का अर्थ है बड़ा भाई । मुण्डा आजा (दादा), उड़िया अजा (दादा और नाना) है, हिन्दी प्रदेश में भी कहीं-कहीं दादा को अजा कहा जाता है । सम्भव है यह शब्द 'आर्य' का अपभ्रंश हो ।

द्रविड़-प्रभाव—मूर्धन्य-ध्वनियों की स्वीकृति, ल और र का विपर्यय (गला—गर, हरिद्रा=हल्दी) मोलह पर भाषान्वित साग आदि द्रविड़-भाषा का प्रभाव है । भारतीय-भाषाओं में प्रचलित अटवी, नीर, मीन, नाग, नारिकेल, कम्बु आदि शब्द भी द्रविड़-मूल के हैं । १—द्रविड़—पिल्ला (बच्चा) बंगला—छेलेपिले, उड़िया—पिला । २—द्रविड़ शिर (त०-सिर) अर्थ क्षुद्र, बंगला और असमीया में सरु । ३—द्रविड़ चिन्न और शिन्न (तमिल और तेलुगु दोनों में)=छोटा, क्षुद्र, उड़िया सान । ४—द्रविड़ ओकटि (एक) आंगांव का गोट्टान, असमीया में गोट (सम्पूर्ण अथवा एक), बंगला और उड़िया के गोटा का भी यही अर्थ है । ५—द्रविड़ पल (समूह) बंगला पाल, उड़िया 'पल' का अर्थ भी समूह है, असमीया में भी पाल शब्द का प्रयोग देखा जाता है । ६—कन्नड़ जोलु, तेलुगु झोल, पूर्वांचलीय भाषाओं में साग आदि के रस के लिए प्रयुक्त होता है । बंगला-उड़िया में झोल, असमीया में जोल[1] (असमीया हेमकोश इसे संस्कृत-जल से उत्पन्न मानता

---

१. श्री बी०सी० मजुमदार ने कुछ बंगला-शब्दों को मूल द्रविड़ बतलाया है, उनमें कुछ शब्द मुझे असमीया एवं उड़िया-भाषाओं में भी उपलब्ध हुए, उन्हीं का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है । देखिए—हिस्ट्री ऑफ़ दि बेंगाली लेंग्वेज, पृ० ८३ से ८६ । कुछ मेरी अपनी खोज है ।

है)। उड़िया में कर्म और सम्प्रदान की विभक्ति 'कु' तेलुगु के सम्प्रदान की विभक्ति 'कु' से गृहीत वतायी जा सकती है।

किरात-प्रभाव—समस्त पूर्वांचल में डाक-खना के वचन प्रचलित हैं। ये वचन हिन्दी-प्रदेश में प्रचलित घाघ भड्डरी की कहावतों जैसे हैं। श्री नगेन्द्रनाथ चौधरी तिव्वती ग्डाग (Gdag=प्रज्ञा) शब्द से डाक शब्द एवं एक अन्य तिव्वती शब्द म्खान (Mkhan) से खना की व्युत्पत्ति वताते हैं। वंग एवं डोम्बी शब्द को भी वे तिव्वती मानते हैं।[1]

पूर्वांचल में ह्रस्व अ का उच्चारण अल्प-परिवर्तन के साथ ओ जैसा होता है। गारो भापा में भी छात्र, गल्प और मन्त्र क्रमश: छात्रो, गोल्पो एवं मंत्रो हो जाते हैं। हो सकता है कि वँगला एवं असमीया भापाओं का इस प्रकार का ध्वन्यात्मक-परिवर्तन किराती-प्रभाव की देन हो (साथ ही इस वात की भी संभावना है कि पाली प्राकृत की परम्परा में पूर्वांचलीय भापाओं में ओकार आया हो और उनकी भापा में छात्र के लिए छात्रो सुनकर गारो आदि लोग भी ऐसा ही उच्चारण करने लगे हों)।

किराती प्रभाव सवसे अधिक असमीया-भापा पर देखा जाता है। कामरूप तथा उत्तरी-पूर्वी वँगाल में च और छ के दन्त्य और ऊष्म-ध्वनियों के 'ह्' उच्चारण में तो निश्चय ही किराती प्रभाव है। किराती भापाओं की कई शाखाओं का असमीया पर प्रभाव पड़ा है, कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'आहोम' भापा के ये शब्द असमीया में आत्मसात् हो चुके हैं—वुरञ्जि (इतिहास) रंगघर (प्रासाद), कारेंग (ऊँचा पक्का घर) वोडो के वड़ा-वाचक मा और छोटा-वाचक सा प्रत्यय असमीया में प्रचलित हैं।[2] वोडो का सिरि शब्द नदी-वाचक है—धनसिरी, सुवनसिरी। गारो भापा के कई शब्दों का असमीया के शब्दों से साम्य है।

गारो	असम
जाजोंग (चन्द्र)	जोन (चन्द्र) (कश्मीरी भापा में भी चन्द्र के लिए जोन शब्द का प्रयोग है, संभव है ज्योत्स्ना शब्द का यह तद्भव हो)।
मोना (थैला)	मोना (थैली)
पिलाक (सव)	विलाक[3] (वहुवचन-सूचक परसर्ग)

---

१. श्री नगेन्द्रनाथ चौधरी—डाकार्णव तंत्र, पृ० ७।

२. डा० वाणीकान्त काकती—आसामीज इट्स फार्मेशन एण्ड डेव०, पृ० ५०।

३. श्री वाणीकान्त काकती इसे किराती वर्ग की मलय भापा के व-लु, व+लुत से उत्पन्न वताते हैं, जिसका अर्थ है वहुत—एस्पेक्ट्स ऑफ़ अर्ली आसामीज लिटरेचर, पृ० ११।

बाह (हाथ)	बाह (हाथ)
बेजी (सुई)	बेजी (सुई), सं० वेधी ? (मराठी में बेजि का अर्थ सुई का छेद है)
डेका (बच्चा)	डेका (युवक) सं० डिंभक ?

यदि पूछा जाए तो पूर्वांचल की भाषाओं की व्याकरण-रचना पर अनार्य प्रभाव नहीं के बराबर है। शब्द-भण्डार भी बहुत प्रभावित नहीं है। संस्कृत-पाली-प्राकृत-अपभ्रंश के विकास-क्रम में भाषाओं ने शब्दों के जो नये रूप उपलब्ध किये हैं वे मूलतः बहुत-कुछ आर्य हैं। पिछले कई दशकों में अनुसन्धित्सु-विद्वान् योरोपीय-विद्वानों के सुझाये गये पथ पर अग्रसर होते हुए ऐसी खोजें करते रहे हैं, जिनमें वे भारतीय-संस्कृति की नव-परीक्षा कर अधिक-से-अधिक अनार्य-तत्त्व के मिलने का रहस्योद्घाटन कर सकें। विद्वद्वर श्री बी० सी० मजुमदार बँगला के 'जोरजोर' शब्द के जोर को द्रविड़ 'सोर' से उत्पन्न मानते हैं[1] जबकि यह फ़ारसी भाषा का शब्द है। वे बँगला के खाल (खाड़, सं० खन्या) शब्द को द्रविड़ मानते हैं[2], जबकि यह शब्द असमीया एवं उड़िया भाषाओं के साथ ही किराती-भाषा गारो में भी है। वे बँगला काला (बधिर) की व्युत्पत्ति भी द्रविड़ केल—सुनना (तमिल में केलु) से मानते हैं[3], यह शब्द असमीया (काला), उड़िया (काला) और निषादवर्गीय भाषा मुंडा (काला) में भी है। असमीया का ठिराक पर्याय द्रविड़ बताया गया है,[4] जबकि यह किराती-भाषा गारो के ठिराक से उत्पन्न प्रतीत होता है। शब्दों का बहुत आदान-प्रदान हुआ है। अनार्य भाषाओं में भी आर्य भाषाओं के शब्द प्रचलित हैं—मुंडा में अभागा, अकला, अयोग, अगन्ती, आनन्द, दाक (सं० दाक=नगाड़ी), तुला (सं० तुला=तराजू) आदि शब्द और गारो में बोन्धोक (असमीया और बंगला में बन्धक, उच्चारण बोन्धोक, सं० बन्धक=गिरवी), छुरी, दोन (दोण), दुक (दुःख), हानि आदि शब्द प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त अरबी, फ़ारसी के शब्द भी इनमें समाविष्ट हो गये हैं। 'गारो' तरीक (तारीख़), मोगोत (मदद), रोसीद (रसीद), कोलोम (कलम), मुण्टा—आमदनी, आन्दाज (अंदाज), नसीब, आर्जी (अर्ज़ी) आदि। उदाहरणों से स्पष्ट है कि जिसे हम एक भाषा-वर्ग से आगत शब्द मान रहे हों वह किसी अन्य भाषा-परिवार का हो, अथवा जिसे हम अनार्य भाषा मान रहे हों वह आर्य-भाषा के विकास-क्रम में ही परिवर्तित हुआ कोई नया रूपधारी शब्द हो।

आदिम-जातियों पर भी आर्य-संस्कृति और भाषा का प्रचुर प्रभाव है। अनेक

१. श्री बी०सी० मजुमदार—ए हिस्ट्री ऑफ़ बेंगाली लेंग्वेज, पृ० ८४।
२. वही, पृ० ८६।
३. वही, पृ० ८२।
४. वही, पृ० ८८।

आदिम-जातियाँ राम या कृष्ण से अपना सम्बन्ध जोड़े हुए हैं। उन्होंने आर्यों के व्रत-त्योहार एवं संस्कार-पद्धतियाँ अपना ली हैं। ओराँव अपना सम्बन्ध वन्दर से जोड़ते हैं, वे वन्दर का मांस नहीं खाते। राम के प्रति इनके हृदय में अगाध-श्रद्धा है, उनके प्रति अपमानजनक शब्द ये नहीं सह सकते।[1] कोल भी शवरी के नाते अपना सम्बन्ध राम से जोड़ते हैं। परजा नग्न रहते हैं और नग्नता का कारण सीता का शाप वताते हैं। ऐसा ही गोंड कहते हैं। जुआंगों की स्त्रियाँ रात में नग्न रहती हैं और जाड़े में आग तापती रहती हैं। कहते हैं कि उन्हें अपने सुन्दर वस्त्रों पर गर्व हुआ, इसलिए सीता ने शाप दिया। जुआंग पितरों का तर्पण करते हैं और गाय का मांस नहीं खाते।[2] माँडिया गोंड सीता को देवी के रूप में मानते हैं। असम के मिशमी लोग अपने को रुक्मिणी के वंश का वताते हैं। मीरी और आवोर जातियाँ नामघरों में एकत्र होकर शिव-पार्वती की पूजा करती हैं। ईसाई-पादरियों ने रोमनलिपि एवं इनकी भाषा में वाइविल का प्रचार किया, किन्तु महाभारत एवं रामायण के प्रभाव की जड़ें इतनी गहरी हैं कि ईसाई-धर्म इनके वीच असफल रहा।[3] इन दोनों जातियों पर शंकरदेव एवं माधवदेव वैष्णव-संतों का भी गहरा प्रभाव है। मणिपुर की मैथेइ-जाति वैष्णव है, पुरुम भी इनके सम्पर्क में आ कर वैष्णव हो गये हैं, वे कृष्ण, राम एवं महादेव के परम भक्त हैं।[4] मातृसत्ताक गारो गन्दे तथा भक्ष्याभक्ष्यग्राही होने के कारण रुग्ण एवं दरिद्री हैं, इनमें ईसाई-धर्म का प्रचार अधिक हुआ है। ये लोग भी कर्मफल और पुनर्जन्मवाद मानते हैं, इनमें शव-दाह की प्रथा है। कर्ण-छेदन, मुण्डन आदि संस्कार भी मनाये जाते हैं।[5] नगा जैसे रक्त-पिपासु जन तक आर्य-देवताओं की उपासना करते हैं, निस्सन्देह इनकी उपासना रक्तरंजित है। आहोम-जनों की बुरंजी (इतिहास) में लिखा है कि वसिष्ठ के शाप से इन्द्र ने दैत्य वन कर दैत्य-नारी से पुत्र उत्पन्न किया, इसी की सन्तान आहोम हैं। गौहाटी से १० मील दूर वसिष्ठाश्रम है।[6] असम में आर्य सभ्यता के प्रसार के लिए किसी वसिष्ठ नामक ऋषि का प्रमुख योग रहा है, क्योंकि पौराणिक गाथाओं में उनका नाम कई वार आया है।

आदिम-जनों ने अधिकांशतः आर्यों के व्रत-त्योहार, देवी-देवता एवं संस्कार-पद्धतियों आदि को स्वीकार कर लिया है और वे अपने को हिन्दू मानते हैं, किन्तु अंग्रेजों की कूटनीति से इनमें पार्थक्य-भावना का विषवपन किया गया। देश का करोड़ों रुपया

---

१ श्री जनक अरविन्द—भारत के आदिवासी, पृ० १२७।

२. श्री वेरियर एलविन—जुआंगों के देश में—संगम, (४-२०)।

३. डा० एन० सी० पेगू—दि मीरीज, पृ० ६२।

४. श्री तारकचन्द्र दास—दि पुरुम, पृ० २०७।

५. श्री वी० एन० चौधरी—सम कल्चुरल एण्ड लिंग्विस्टिक एस्पेक्ट्स ऑफ़ गारो, पृ० १५-४३।

६. डा० वाणीकान्त काकती—मदर गाडेस कामाख्या, पृ० ३०।

उन धर्म-प्रचारकों पर व्यय किया गया, जिन्होंने भोले-भाले निर्धन आदिम-जनों को धर्मान्तरित कर उन्हें पश्चिम-मुखापेक्षी बनाया, तथा उन्हें देशभक्ति से विरत करने की चेष्टा की गयी।[1] अंग्रेज लोग ईसाइयों के अतिरिक्त अन्य किसी को आदिम-जातियों के मध्य जाने नहीं देते थे। वे उनकी संख्या अतिरंजित कर बताते थे ताकि सिद्ध किया जा सके कि वे हिन्दुओं से भिन्न हैं तथा उनकी संख्या भी बहुत अधिक है। अब सरकार अपनी है, किन्तु भारतीय-परम्पराओं से जोड़ने वाले आदिम-जनों के तत्त्वों को प्रोत्साहित कर उन्हें राष्ट्रभक्त नागरिक बनाने में इस सरकार को सफलता नहीं मिल रही है, दुष्परिणाम सामने हैं। राजनीतिक नेताओं की सत्ता-लोलुपता एवं दोषादियों की आलस्य खोजों के फलस्वरूप पार्थक्यवादी अराष्ट्रीय तत्त्वों के सिरोत्तोलन का भय समुपस्थित है।

संक्षेप में यही कहा जायगा कि निषाद, द्रविड़ एवं किरात जातियों की भाषा एवं उपासना-धाराओं का प्रभाव आर्य-भाषाओं एवं धर्म पर किसी सीमा तक अवश्य पड़ा है, इससे आर्य-संस्कृति की प्रबल धारा कहीं बाधित, कुण्ठित एवं प्रभावहीन नहीं हुई है। उसने कुछ नये मोड़ों का अनुभव अवश्य किया किन्तु प्राबल्य उसी का रहा।

पूर्वांचल की भाषाएँ और अवधी

आर्यों के मूल-स्थान के सम्बन्ध में अभी तक दो पक्षपातपूर्ण विचारधाराएँ प्रचलित हैं। प्रथम विचारधारा यूरोपीय-विद्वानों की है, जोकि आर्यों से अपने को संयुक्त कर भारतीयों से अपने को श्रेष्ठ घोषित करने के लिए पश्चिम से पूर्व की ओर आर्यों का अभियान बताते हैं। दूसरी विचारधारा में देशभक्ति का आग्रह अधिक है। हम सब भारतीय बाहर से आये, भारत हमारा अपना मूल देश नहीं है, ऐसा सोच कर मन पर आघात लगता है, अतएव डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० फतेहसिंह तथा कुछ अन्य विद्वानों ने भी भारत को ही आर्यों का वासस्थान स्वीकार किया है। ईरान के निवासी भी आर्यों का भारत से पश्चिम की ओर बहिर्गमन मानते हैं।[2]

आश्चर्य होता है यह पढ़कर कि भारत में प्रजातियाँ बाहर से ही आती रहीं, यहाँ कोई जाति रहती ही नहीं थी। किन्तु प्रथम विचारधारा पर बहुत कार्य हुआ है और अधिकांश भारतीय-विद्वान् भी इससे ही सहमत प्रतीत होते हैं। अभी तक जो कुछ भी खोजें हुई हैं, सबका मूल-आधार यही है कि आर्य बाहर से आये। यदि यह सच

---

१. सन्त ईसा एवं उनके सच्चे अनुयायियों के विषय में कुछ नहीं कहना है किन्तु भारत में ईसाई-धर्म का प्रचार अधिकांशतः राजनीतिक-उद्देश्य से हुआ है और बहुत कुछ अब भी हो रहा है।

२. श्री धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा और लिपि- द० सं०, पृ० १९।

न हो तो हमें अपने कई निष्कर्ष बदलने होंगे।

आर्यों का प्रसिद्ध एवं प्राचीनतम ग्रंथ है ऋग्वेद। इसकी रचना शताब्दियों पूर्व हो चुकी थी। ऋक् संहिता के सूक्तों की भाषा को अविकल रखने का निरन्तर प्रयास देखा जाता है। किन्तु आर्यों की कथित भाषा में निरन्तर परिवर्तन हो रहे थे। भारतीय आर्यभाषा-परिवार को विकास-क्रम की दृष्टि से मोटे रूप में तीन भागों में विभक्त किया जाता है—

(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा।
(२) मध्य-भारतीय आर्यभाषा।
(३) नव्य भारतीय आर्यभाषा।

अनार्यों के निरन्तर सम्पर्क से प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में निरन्तर नये ध्वनि तत्त्व, शब्द आदि आ रहे थे। तक्षशिला-निवासी आचार्य पाणिनि ने उपनिषद्-काल तक विकसित हुई भाषा को व्याकरण के नियमों में बांध दिया। यही भाषा संस्कृत कहलायी। वैदिक-भाषा प्रदेश-प्रदेश में रूप-परिवर्तन करती गयी, किन्तु संस्कृत का व्याकरण-बद्ध रूप सर्वत्र एक-सा रहा, अतः संस्कृत भाषा बहुत समय तक समस्त भारत की राष्ट्रभाषा बनी रही।

संस्कृत-भाषा के जन्म के पूर्व ही देश में अनेक बोलियाँ प्रचलित थीं जिन्हें उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या कहा जाता रहा है। **उदीच्या** आधुनिक पेशावर प्रदेश और उत्तरी पंजाब की भाषा थी। ब्राह्मण-ग्रंथों में इस भाषा को शुद्ध माना गया है। **प्राच्या** के बोलने वाले वैदिक-मर्यादाओं और सामाजिक व्यवस्थाओं से अधिक प्रभावित नहीं थे। इन्हें व्रात्य कहा जाता था। इनके उच्चारण आदि के बारे में 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में इनकी निन्दा की गयी है। **मध्यदेशीया** भाषा दोनों के मध्य की भाषा थी।

गौतम बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जनसमाज में प्रचलित भाषाओं को अपनाया। इससे इनका महत्त्व बढ़ता गया। पाणिनि द्वारा परिमार्जित भाषा की ओर शिक्षित जनता आकृष्ट हो रही थी किन्तु सामान्य जनता व्याकरण की जटिलता के कारण इसे अपना न सकी और उसके मध्य अनेक बोलियों का विकास होता गया। बौद्ध-साहित्य अधिकांशतः पालि में लिखा गया। अशोक के शिलालेखों में पूर्वी प्राकृत का प्रयोग हुआ।

पालि के साहित्यिक-भाषा हो जाने पर उसका भी सम्बन्ध जनता से छिन्न होने लगा और इस समय देश में प्रचलित उदीच्या, प्राच्या और मध्यदेशीया बोलियों के विकसित रूपों पर आधारित प्राकृतों का जोर बढ़ चला। मुख्य प्राकृतें ये हैं—शौर-सेनी, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री और पैशाची।

शूरसेन (मथुरा) प्रदेश के आसपास शौरसेनी प्राकृत बोली जाती थी। मध्य-

देशीय भाषा होने के कारण इस पर आर्य संस्कृति तथा संस्कृत भाषा का अधिक प्रभाव था। संस्कृत नाटकों के स्त्री और मध्यकोटि के पात्रों की भाषा यही थी। यही भाषा साहित्यिक-रूप में चिरकाल तक भारत के बड़े भू-भाग पर प्रचलित रही।

मागधी-प्राकृत—यह भाषा प्राच्या पर आधारित थी। आर्यों द्वारा तिरस्कृत निम्न-वर्गों के नाटकीय-पात्रों को इस भाषा का प्रयोग करता हुआ दिखाया गया है। इसमें साहित्य उपलब्ध नहीं होता। नाटकों के संवादों के अतिरिक्त इसका प्रयोग व्याकरण-ग्रन्थों में है। इसमें वर्ण-विकार बहुत अधिक हुए हैं। निम्न दो विकारों का प्रभाव आज की बंगला पर देखा जा सकता है।

(१) संस्कृत ऊष्मवर्णों के स्थान पर श का प्रयोग, सप्त = शत्त।

(२) र के स्थान पर ल का प्रयोग, राजा = लाजा।

बंगला भाषा में तीनों ऊष्म ध्वनियों के लिए प्रायः श का प्रयोग होता है। बंगाल के किसी-किसी अंचल में र का उच्चारण ल होता है। बंगला रामायण का रत्नाकर दस्यु (वाल्मीकि महर्षि) राम का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाया इसीलिए उससे मरा-मरा कहलाया गया था।

काशी-कोशल प्रदेश की लोकभाषा अर्धमागधी प्राकृत में शौरसेनी एवं मागधी दोनों भाषाओं के लक्षण मिलते हैं। महाराष्ट्रीय प्राकृत शौरसेनी के विकास का उत्तरकालीन रूप है। इसमें कहीं-कहीं ऊष्म व्यंजन-ध्वनि के स्थान पर 'ह' हो गया है—असमीया भाषा में भी ऊष्म ध्वनियों के ऐसे परिवर्तन की प्रवृत्ति पायी जाती है।

प्राकृत भाषाएँ भी जब लोकभाषा से साहित्यिक-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुईं तो साहित्यकारों ने उनकी निधि को नवीन शब्दों से भरना प्रारम्भ किया। जन-ग्राह्य शब्दों को छोड़कर संस्कृत-शब्दों को ही तोड़-मरोड़कर अधिकाधिक अपरिचित बनाकर, प्राकृत बनाने की उन्हें धुन समायी।[1] फलतः व्याकरण से बँध जाने पर इनकी भी वही दशा हुई जो संस्कृत की हुई। बोलचाल की साधारण भाषाएँ और आगे बढ़ीं और अपभ्रंश के नाम से ख्यात हुईं। धीरे-धीरे अपभ्रंश ने भी साहित्य में स्थान प्राप्त कर लिया।

म० भा० आ० भाषाओं का अन्त्य पर्व अपभ्रंश काल है। पतंजलि ने ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में 'अपाणिनीय' प्रयोगों के लिए अपभ्रंश का व्यवहार किया था। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग ईसा की छठी शताब्दी से मिलता है। किन्तु यह काल तो अपभ्रंश की विकसित अवस्था का है, उसकी परम्परा निश्चय ही अत्यंत प्राचीन होगी। आठवीं शताब्दी तक साहित्यिक भाषा के रूप में अपभ्रंश प्रतिष्ठित हो चुकी थी। १२वीं शताब्दी में आचार्य हेमचन्द्र ने अपभ्रंश के व्याकरण की रचना की थी। उन्होंने अपभ्रंश और ग्राम्यभाषा का भेद किया है, स्पष्ट है कि इस काल

---

१. राय रामनारायण—अवन्तिका, नवम्बर-दिसम्बर, १९५६, पृ० ४३३।

में अपभ्रंश साहित्यिक भाषा थी। अपभ्रंश भाषाएँ भी उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या भाषाओं के ही विकसित रूप थीं। इन अपभ्रंशों में मध्यदेशीय शौरसेनी तथा प्राच्यदेशीय मागधी और अर्धमागधी अपभ्रंशो ने ही व्यापक रूप से प्रसिद्धि प्राप्त की। शौरसेनी-प्राकृत के समान ही शौरसेनी-अपभ्रंश उत्तर भारत की साहित्यिक-भाषा प्रतिष्ठित हुई, इसे *नागर-अपभ्रंश भी कहते थे। १२-१३वीं शताब्दी में तमिल प्रदेश* को छोड़ कर समस्त देश की राष्ट्र-भाषा होने का गौरव शौरसेनी को ही प्राप्त था। मध्यकाल के गहड़वार, चन्देल, चौहान, गुर्जर, चालुक्य आदि राजपूत नरेशों के बाहु-बल के कारण उन्हीं की विजय के साथ शौरसेनी-अपभ्रंश भी पनपता गया। इसी शौरसेनी-अपभ्रंश से कालान्तर में हिन्दी (ब्रजभाषा) का विकास हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश का क्षेत्र शौरसेनी प्राकृत के क्षेत्र से अधिक विस्तृत था। इसका प्रभाव पूर्वांचल में रचित चर्या-पदों की भाषा पर लक्षित किया जा सकता है। इस अपभ्रंश के अतिरिक्त अन्य प्रादेशिक अपभ्रंश-भाषाएँ अपनी-अपनी परिधि में सीमित रह कर भी निरन्तर विकास कर रही थीं, जिनसे कि आगे चल कर आधुनिक भाषाओं का जन्म हुआ।

शुद्ध संस्कृत-भाषा सीखने के लिए सहस्रों सूत्रवार्तिकों को कंठस्थ करने की आवश्यकता होती है। व्याकरण की इस जटिलता से रहित हो कर शब्दों के मुख-सरल उच्चारण के कारण पालि और प्राकृत का विकास हुआ था, अपभ्रंश ने भी इन्हीं भाषाओं की ये विशेषताएँ अपनायीं, साथ ही कारकों के चिह्न, छन्द, ध्वनि रचना-रीति आदि में आमूल परिवर्तन हुए। काव्य-चरणान्तों में तुक तथा भणिता के प्रयोग भी हुए।[1]

ईसा की १०-११वीं शताब्दी तक भारतीय-आर्य-भाषा आधुनिक काल में प्रवेश कर चुकी थी। इस काल में भी सर्वाधिक परिवर्त्तन प्राच्य-देश की भाषाओं में ही देखे जाते हैं। उदीच्य देश की भाषा पंजाबी और सिन्धी ने म० भा० आ० काल की ध्वनियों को फिर भी सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

पूर्वांचल का आर्यीकरण एवं आर्यभाषा-प्रवेश

महाभारत और पुराणों आदि के वर्णन से प्रतीत होता है कि ईसा की कई शताब्दी पूर्व ही पूर्वांचल में आर्यो की पहुँच हो चुकी थी। बौधायन-धर्मसूत्र जैसे ग्रन्थों में पूर्वांचलीय-प्रदेश की ओर गमन करने वालों पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। तीर्थ-यात्रा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य-वश जाने पर लोगों को प्रायश्चित करना पड़ता था। कारण यह जान पड़ता है कि वैदिक-प्रभाव के बहुत पूर्व ही राढ़, सुह्म और कलिंग की ओर जैन और बौद्ध भिक्षुओं का पदार्पण हो चुका था। वैदिक मर्यादाओं और

---

१. राय रामनारायण—*अवन्तिका, नव० दि०, १९५६, पृ० ४३५।*

आर्य-संस्कृति से हीन हो कर ये व्रात्य हो गये थे, जिसके कारण ये लोग मध्यदेशीय आर्यों द्वारा उपेक्षित हुए। संस्कृत-साहित्य में मागधी प्राकृत का प्रयोग राक्षसों, भिक्षुओं, क्षपणकों, दासों, नपुंसकों, किरातों, म्लेच्छों, आभीरों, बौने-कुबड़ों, पिशाच एवं नीच जातियों के मुख से कराया गया है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में उड़ीसा से आया हुआ दूत मागधी बोलता है।[1]

निस्सन्देह बहुत पहले पूर्वांचल-प्रदेश में द्रविड़, निषाद और मंगोल जातीय भाषाएँ बोली जाती थीं, किन्तु आर्यों के सम्पर्क में आ कर उनकी सुदृढ़ एवं विकसित भाषा और उच्च संस्कृति के प्रभाव के कारण ये भाषाएँ धीरे-धीरे प्रभावहीन होती गयीं। आर्यभाषी जब बंगाल में बस रहे थे, उसी समय से उनकी भाषा संस्कृत से प्राकृत रूप धारण कर रही थी। राजकाज की भाषा संस्कृत ही थी, जिसका एक लाभ यह हुआ कि अति प्राचीन काल से ही भारत में सांस्कृतिक एकता का सूत्रपात हो गया था। बगुड़ा जिला के महास्थान गढ़ में ब्राह्मी-अक्षरों में उत्कीर्ण एक मौर्यकालीन लेख मिला है, जिसकी भाषा पूर्वी-प्राकृत है और जिसका रचनाकाल तीसरी या दूसरी शताब्दी ई० पू० है। गुप्त-काल में अनेक ब्राह्मणों को बंगाल और मध्य-उड़ीसा में बसाने के लिए भूमिदान किये गये थे, इस सम्बन्ध के अनेक ताम्रपत्र मिले हैं। गुप्तों के समय तक पूर्वांचल के अधिकांश पर आर्य-संस्कृति की पूरी छाप लग चुकी थी। कालान्तर में भी अनेक कान्यकुब्ज ब्राह्मण पूर्वांचल की ओर बसाये गये थे। ५०० ई० में केसरी राजाओं ने १०,००० ब्राह्मण उड़ीसा में बसाये थे। एक हजार ई० के आसपास बंगाल के राजा आदिशूर ने भी कई ब्राह्मणों को बसाया था। नवः आगत ब्राह्मण अपने से पहले बसे हुए ब्राह्मणों को आचार-हीन पा कर उन्हें लौकिक एवं स्वयं को वैदिक कहा करते थे।

छठी शताब्दी तक आर्य-भाषा का प्रभुत्व समस्त प्रदेश पर हो गया था। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने अंग, पुंड्र, कामरूप, समतट, कर्णसुवर्ण, ताम्रलिप्ति, ओड्र, और कलिंग का भ्रमण कर एक ही भाषा का प्रचार देखा था। उसने स्वीकार किया है कि यद्यपि कामरूप एवं ओड्र आदि प्रदेशों की भाषा में मध्यदेशीया का प्रभाव था, किन्तु फिर भी यहाँ की बोलियों में मध्यदेश की भाषा से कुछ अन्तर भी था।

मागधी अपभ्रंश के तीन भाग किये जा सकते हैं—

(१) पूर्वी मागधी—असमीया, बँगला और उड़िया।

(२) मध्य मागधी—मैथिली और मगधी।

(३) पश्चिमी मागधी—भोजपुरिया, नागपुरिया।

पूर्वी मागधी का प्रसार—पूर्वांचल की भाषा, संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था पर मिथिला का गहरा प्रभाव रहा है। आर्य-जन भागीरथी एवं दामोदर नदी की

---

१. पिशल—प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० ४४।

तीर-भूमि की ओर अग्रसर हो कर वरेन्द्र (उ० बंगाल) और राढ़ (मध्य-पश्चिमी बंगाल) की ओर गये थे। विद्वान् लोग मध्य-बंगाल को पूर्वांचलीय संस्कृति का केन्द्र बताकर मानते हैं कि यहीं से वे उत्तरी बंगाल हो कर कामरूप की ओर बढ़े और दूसरी ओर राढ़ और सुह्म हो कर उत्कल की ओर गये। यही कारण है कि आरम्भिक अवस्था में असमीया, बँगला एवं उड़िया भाषाओं में पारस्परिक साम्य है। गौड़ अथवा प्राच्य अपभ्रंश का केन्द्र गौड़ (आधुनिक मालदा जिला) था, यहीं से इसका विस्तार असम और उड़ीसा की ओर हुआ था। आर्यों के कामरूप एवं ब्रह्मपुत्र की घाटी की ओर बढ़ते जाने पर तिब्बती-ब्रह्मी और शान भाषाओं के प्रभाव के कारण इनकी भाषा में विकार आते गये और यह भाषा कामरूप-अपभ्रंश कहलायी। मुसलमानों के आक्रमण (१२०० ई०) के पूर्व तक असमीया एवं बँगला (विशेषतः उत्तरी बँगला) में विशेष अन्तर नहीं था। समान भाषा बोलने वाले लोगों के दो दल एक ही समय में दो ओर—असम और उड़ीसा की ओर बढ़े थे। आज भी इन दोनों प्रदेशों की भाषा में कुछ ऐसी समानताएँ हैं जो बँगला से नहीं मिलतीं। उड़ीसा पर आर्यों का प्रभाव दो ओर से पड़ा था। एक ओर के प्रभाव का वर्णन हो चुका है, दूसरा प्रभाव कोसल की ओर से पड़ा था। इसीलिए उड़िया भाषा पर पूर्वी मागधी के प्रभाव के साथ-साथ मध्य एवं पश्चिमी मागधी का भी प्रभाव है। भोजपुरिया एवं छत्तीसगढ़ी भाषा के ही समान उड़िया भाषा की क्रिया में एकवचन और बहुवचन पाये जाते हैं, जबकि असमीया और बँगला में ये रूप नहीं हैं। इसी प्रकार इन भाषाओं का बहुवचन-सूचक प्रत्यय 'मान' भी उड़िया में है। १२वीं शताब्दी के कृष्ण पण्डित ने २७ अपभ्रंशों में उड्र-अपभ्रंश का भी नाम लिया है। उड़िया भाषा मागधी की इसी उप-शाखा का विकास है। इसका जन्म तो पालि और स्थानीय बोलियों के सम्मिश्रण से हुआ किंतु जगन्नाथ मन्दिर के प्रभाव से इस पर संस्कृत की छाप निरन्तर पड़ती गयी। उड़िया विद्वान् ११वीं शताब्दी के अनन्त वर्मा वज्रहस्त देव के लेख को उड़िया का प्राचीनतम लेख मानते हैं। १३वी शती का भुवनेश्वर का लेख तो उड़िया के विकास को एकदम स्पष्ट कर देता है।[1] १४वीं शताब्दी के नृसिंह देव के ताम्रलेख में उड़िया शब्दों का बाहुल्य देख कर डा० सुनीतिकुमार चटर्जी भी अनुमान करते हैं कि इस काल तक उड़िया का जन्म हो चुका था। उन्होंने कई प्राचीन लेखों का उदाहरण दे कर सिद्ध किया है कि वर्तमान उड़िया का स्वरूप १५ वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में स्थिर हो चुका था।[2]

पूर्वीमागधी अथवा प्राच्य अपभ्रंश का केन्द्र बंगाल को मान कर डा० सुनीति-कुमार चटर्जी ने बँगला, असमीया और उड़िया का पारस्परिक साम्य दिखाते हुए बंगाल

---

१. मायाधर मानसिंह—हिन्दी ऑफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० ३१।
२. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी—दि ओरिजन एण्ड डेव० ऑफ़ बेंगाली लेंग्वेज, पृ० १०७-१०८।

की बोलियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है[1]—

(१) वंगी बोलियाँ (पूर्वी बंगाल की बोलियाँ)।

(२) कामरूपी-बोलियाँ (उत्तरी बंगाली तथा असमीया)।

(३) पुंड्र अथवा वरेन्द्र-बोलियाँ (उत्तर-मध्य बँगला)।

(४) राढ़ की बोलियाँ (पश्चिमी और द० प० बँगला तथा उड़िया)।

इनमें बँगला-भाषियों की संख्या सर्वाधिक है। १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार पूर्वांचलीय भाषा-भाषियों की संख्या इस प्रकार है—

बँगला-भाषी—३,३८,८८,९३९।

उड़िया-भाषी—१,५७,१९,३९८।

असमीया-भाषी—६८,०३,४६५।

पूर्वीमागधी-भाषाओं की पारस्परिक समानता

(१) अ का उच्चारण ओ जैसा, ए का अंग्रेजी के दैन (then) की भाँति, ऐ का ओई जैसा। ण का न (उड़िया को छोड़ कर) व का ब, य का ज, क्ष का (ख) क्ख अथवा प्रारम्भ में ख। पूर्वांचल में स ध्वनि ट और श की सम्मिलित ध्वनि मानी जाती है। य को सर्वत्र ज ही पढ़ा जायगा। जहाँ य को य ही पढ़ा जाता है वहाँ उसके नीचे चिह्न लगाते हैं, अन्यथा ट्य का प्रयोग करते हैं, इसी प्रकार व की भी स्थिति है। असमीया में भी प्रत्येक व को प्रायः ब ही पढ़ा जाता है किन्तु इस भाषा में व के नीचे पड़ी लकीर खींच कर व बना लेते हैं। यह ध्वनि बँगला और उड़िया में नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर ओय लिख कर काम निकालते हैं। वैसे उड़िया में द के ऊपर बिन्दी लगाकर व बना लिया जाता है।

(२) षष्ठी में कार्य—केर-कर से बनी हुई र विभक्ति का प्रयोग।

(३) भूत एवं भविष्य् कृदन्त इल एवं इब का प्रयोग, जबकि अन्य मागधी-भाषाओं में उनके स्थान पर अल और अब आते हैं।

(४) बँगला एवं असमीया के कर्त्ता में ए तथा अधिकरण में ए एवं त का प्रयोग। क्रिया में लिंग-वचन का अभाव। दोनों भाषाओं की सकर्मक एवं अकर्मक क्रियाओं के तृतीय पुरुष में भूतकाल का पार्थक्य—क्रमशः इले (सक०) एवं इल (अक०) का प्रयोग।

(५) बहुवचन-सूचक विभक्तियों का अलग से जोड़ा जाना—

असमीया—बिलाक, बोर, हँत।

बंगला—एरा, रा, दिग, गुल-गुला-गुलि।

उड़िया—माने (मानवक), गुड़िक।[2]

---

१. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी—ओरिजिन एण्ड डेव० ऑफ बंगाली लेंग्वेज, पृ० १४०।

२. वही, पृ० ९३-९४।

ध्वन्यात्मक विशिष्टताएँ—असमोया की :

(१) च और छ का उच्चारण दन्त्य जैसा—स की भाँति ।

(२) दन्त्य एवं मूर्धन्य में भेद नहीं, दोनों का उच्चारण दन्त्यमूल । ट और त का उच्चारण अंग्रेजी के T जैसा । भारतीय—भारटीय, धारणा—ढारना ।

(३) ड़ का र उच्चारण ।

(४) ऊष्म ध्वनियों— श,ष,स का उच्चारण शब्द के आरम्भ में ह और ख़ के बीच की ध्वनि जैसा, जिसे ग्रीक के एक्स से प्रकट किया जा सकता है, अन्य स्थलों पर ह उच्चारण होगा ।[1] आवश्यकता होने पर ये ऊष्म ध्वनियाँ च के द्वारा व्यक्त की जाती हैं—चरकार (सरकार) । संयुक्त वर्णों में ऊष्म ध्वनियों का उच्चारण होता है—स्कूल, विष्णु (विष्णु) आदि ।

वहिरंग-ग्रुप की भाषाओं में स का प्रायः ह हो जाता है । यह ध्वनि-परिवर्त्तन राजस्थानी, पूर्वी पंजावी, सिन्धी एवं ईरानी भाषाओं में भी देखा जाता है । च—वर्गीय वर्णो का दन्त्य उच्चारण पूर्व-वंग की भाषा एवं कुछ हिमाली वोलियों में भी पाया जाता है ।[2] असमीया के शब्द-भंडार एवं ध्वनितत्त्व पर कुछ ऐसे भी प्रभाव देखे गये हैं, जो न संस्कृत-परिवार के हैं और न निकटस्थ किसी अनार्य-भाषा के । संस्कृत शतम परिवार की भाषा है, असमीया में केंटुम-परिवार के शब्द मिलते हैं असं० वतर (वादल), जर्मन वेतर; असं० लाहे (धीरे), लैटिन लाहाछु; असं० गेरि (चिल्लाना), ग्रीक गेरि । ऊष्म ध्वनियों का असमीया उच्चारण भी केल्ट-परिवार की ग्रीक से मिलता है । श्री वापचन्द्र महन्त ने डा० हर्नली आदि के प्रमाण दे कर ईरानी, पिशाची, कश्मीरी, मराठी, राजस्थानी भाषाओं से भी असमीया की समानता दिखायी है । अपादान की परा विभक्ति असमीया और ईरानी दोनों में है । असमीया का वहुवचन हँत हैं, ईरानी में हेंति । असमीया एवं मराठी के अधिकरण की विभक्ति त है । इन दोनों भाषाओं के वर्तमान काल की क्रमशः विभक्तियाँ—ओं, आ, ए होती हैं ।[3]

उड़िया की विशिष्टताएँ :

(१) ऋ का उच्चारण असमीया एवं वँगला में रि के समान होता है, जबकि उड़िया में रु जैसा संस्कृति—संस्कुति ।

(२) ण का उच्चारण शुद्ध होता है ।

(३) असमीया वँगला एवं हिन्दी के शब्दों में प्रायः अन्तिम वर्ण हलन्त हो

---

१. वी० के० काकती – एस्पेक्ट्स ऑफ़ अर्ली आसामीज़ लिटरेचर, पृ० १४ ।
२. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी—राजस्थानी-भाषा, पृ० ५३ ।
३. वापचन्द्र महन्त—अवन्तिका, अक्टूबर १९५४, पृ० ७७ ।

जाता है जैसे कि गीत का गीत् Git किन्तु उड़िया में पूरा उच्चारण होगा—गीत= Gita।

(४) मराठी एवं द्रविड़ भाषाओं में उपलब्ध ळ् ध्वनि उड़िया में भी है। यह ध्वनि वैदिक है।

(५) ह्रस्व अ का उच्चारण बँगला एवं हिन्दी के उच्चारण के बीच का है।

(६) श,ष,स का उच्चारण प्रायः स के समान है।

बँगला की विशेषताएँ :

सम्मिलित रूप में बँगला की उच्चारण-सम्बन्धी विशेषताओं का वर्णन हो चुका है। शेष कुछ विशेषताओं का यहाँ उल्लेख किया जाएगा।

(१) ऊष्म ध्वनियों का उच्चारण श की भाँति—सात-शात, रोष-रोश। किन्तु इसके अपवाद भी हैं—स के साथ त, थ, न और र का योग होने पर उच्चारण शुद्ध रहता है—स्तब्ध, प्रशस्त, स्निग्ध, अस्थि। साथ ही श के साथ र और ल का योग होने पर स का उच्चारण भी स जैसा होता है—श्रम-स्रम, श्लथ-स्लथ।

(२) रेफ का लोप—दुर्गा-दुग्गा, सर्व-शव्व।

(३) पश्चगामी-समीकरण—य अथवा व के पूर्व किसी वर्ण का योग होने पर उस वर्ण का द्वित्व एवं य और व का लोप होता है—विद्या-विद्दा, विद्वान-विद्दान्। असमीया में भी ऐसा होता है, किन्तु उड़िया में नहीं।

म के साथ किसी वर्ण का योग होने पर मकार का लोप हो जाता एवं वर्ण सानुनासिक द्वित्व होता है—पद्म-पँद्दों, लक्ष्मण-लक्खॅन। असमीया एवं उड़िया में ऐसा नहीं होता, किन्तु उड़िया में म का उच्चारण कुछ-कुछ वँ जैसा जान पड़ता है। असमीया में क्ष्म का क्ख होकर म अल्प हो जाता है—लक्ष्मण-लॅक्खॅन।

पारस्परिक रूपात्मक भेद—तीनों पूर्वांचलीय-भाषाओं में इल एवं इब प्रत्ययों का भी भेद है।[1]

	असमीया	बँगला	उड़िया
मैं	इम	इब	इबि (ब०व० इबुँ)
तू	इबि	इबि	इबु
तुम	इबा	इबे	इब
वह	इब	इबे	इब (ब०व० इबे)

---

१. यहाँ केवल बँगला साधु-भाषा (लिखित साहित्यिक-भाषा) के इल और इब कृदंत दिये गये हैं, बोलचाल की भाषा में इ छूट जाएगा और केवल ल और ब रह जाएँगे। बँगला-उच्चारण के विस्तृत परिचय के लिए देखिए लेखक की 'हिन्दी बँगला प्रकाश' पुस्तक।

	असमीया	बँगला	उड़िया
आदर सूचक	इव	इवेन	इवे
मैं	इलो	इलाम	इलि (व०व० इलुँ) लि (व०व० लुँ)
तू	इलि	इलि	इलु
तुम	इला	इले	इल, ल
वह	इले	इल	इला, ला
आदरसूचक	इले	इलेन	इले, ले

बहुवचन की विभक्तियों का वर्णन ऊपर हो चुका है। कारक की विभक्तियों में कही समानता है एवं कहीं विभिन्नता।

	असमीया	बँगला	उड़िया
कर्त्ता	..., ए	..., ए	...
कर्म	क	के, रे, य	कु, ङ्कु
करण	एरे, दि, द्वारा	द्वारा, दिया	(क, ङ्क) द्वारा
सम्प्र०	क् (अक) लै	के (कर्म की भाँति)	(कर्म की भाँति)
अपा०	परा	हइते; थेके	उ, रु, ठारु
सम्बन्ध	र	रं, एर	ङ्क, र
अधि०	त	ते, ए, ये, य्	ए, रे, ठारे

वाक्य-स्थिति के अनुसार कारकों के कुछ विशिष्ट-रूपों का भी प्रयोग होता है। यहाँ प्रायः प्रचलित विभक्तियाँ ही प्रस्तुत की गयी हैं।

पुरुषवाची सर्वनामों में प्रायः साम्य है। असमीया भाषा में तृतीय पुरुष का स्त्रीलिंग भी है 'ताइ' जोकि अंग्रेजी के (She) के समान है। उड़िया में प्रथम पुरुष के दो रूप हैं, साधारणतः 'मुं' और 'आमे' (मैं और हम) का प्रयोग होता है, किन्तु राजा लोग अथवा अपने को गौरव दे कर बोलने वाले लोग आम्भे और आम्भेमाने शब्दों का प्रयोग करते हैं।

शब्द-भण्डार में समानता होते हुए भी भेद है। मागधी अपभ्रंश के ही शब्दों के विकसित रूपों की दृष्टि से समानता है, किन्तु अनार्य भाषाओं से गृहीत शब्दों के कारण वैषम्य है। असम पर किराती-प्रभाव अधिक है तो उड़िया पर निषादी एवं द्राविड़ी अधिक है। बंगला-भाषा पर तीनों प्रभाव देखें जाते है। फलतः तीनों के प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द प्रचलित हो गये हैं। यहाँ कुछ ऐसे शब्द दिये जाते हैं जिससे पारस्परिक साम्य-वैषम्य स्पष्ट हो सकेगा।

असमीया	बँगला	उड़िया
चका	चाका	चक (चक=पहिया)
गछ	गाछ	गछ (सं० गच्छ=पेड़)
छाति	छाता	छता (सं० छत्र=छाता)
भालो	भालो	भल (सं० भद्र=भला)
कला	कालो	कला (काला)
चुलि	चुल	बाल (केश)
हात	हात	हात (हस्त)
टोपनि	घुम	निद (नींद)
सेलेका	सालिका	सालुआ (मैना)
तिता	भिजा	ओदा (भीगा)
चेंचा	ठाण्डा	थण्डा (ठण्डा)
तलत	नीचे	तले (नीचे)
कला	काला	काला (बधिर)
बेजि	सुच, छुँच	छुञ्चि (सूची-सुई)
लग	काछ	पाख (पास)
दिठि	धार	धेक (धीरा)
पखिला	प्रजापति	प्रजापति, पार्वती (तितली)

अर्धमागधी से उत्पन्न अवधी एवं पूर्वीमागधी-भाषाओं से समता

पूर्वी हिंदी—शौरसेनी और मागधी प्राकृतों के क्षेत्रों के मध्यभाग में अर्ध-मागधी प्राकृत बोली जाती थी, इसी से कालान्तर में अर्धमागधी-अपभ्रंश और उससे पूर्वी हिन्दी विकसित हुई।

पूर्वी-हिन्दी के उत्तर में पहाड़ी बोलियाँ, पूर्व में मागधी बोलियाँ (पश्चिमी भोजपुरी तथा नागपुरिया), दक्षिण में मराठी और पश्चिम में शौरसेनी बोलियाँ, (कन्नौजी और बुन्देलखण्डी) स्थित हैं। पूर्वी हिन्दी का क्षेत्रफल १,८७,५०० व०मी० है, इसके अन्तर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी आती हैं, जोकि उत्तर प्रदेश, बघेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, छोटा नागपुर तथा मध्य-देश में फैली हुई है। अवधी और बघेली में पर्याप्त समता है किन्तु छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़िया भाषाओं का प्रभाव पड़ गया है।

अवधी—अवधी के अन्य नाम पूर्वी, कोसली (अथवा कोशली) और बैसवाड़ी हैं। पूर्वी और कोसली व्यापक शब्द हैं और बैसवाड़ी का क्षेत्र अवधी के क्षेत्र के भीतर का ही है। उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली, तथा फतेहपुर के कुछ भाग को बैस

राजपूतों की प्रधानता के कारण वैसवाड़ा कहते हैं, वहीं की वोली वैसवाड़ी कहलाती है। अवधी सम्पूर्ण अवध-प्रदेश की वोली है किन्तु इसकी सीमा के अन्तर्गत हरदोई, खीरी तथा फैजावाद के कुछ भाग नहीं आते हैं। यह भाषा अवध के वहिर्भूत प्रदेश फतेहपुर, प्रयाग, केराकल तहसील छोड़ कर जौनपुर तथा मिर्जापुर के पश्चिमी भाग में भी वोली जाती है।[1] लगभग २१ करोड़ की भाषा है। प्राचीनकाल में यह प्रदेश कोसल कहलाता था।

प्रेममार्गी कवि—कुतुवन, मंझन, जायसी, नूर मुहम्मद, उस्मान आदि ने अवधी के साहित्य को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया है। गो० तुलसीदास ने वैसवाड़ी हिन्दी में मानस की रचना की।

पूर्वी मागधी भाषाओं से अवधी की समता :—

व्रज और अवधी दोनों में ही मागधी भाषाओं की भाँति ही य, व और ण का शुद्ध उच्चारण न होकर क्रमशः ज, व और न होता है। तीन ऊष्म ध्वनियों में केवल स का प्रयोग है, पूर्वी मागधी में श का। अवधी में क्ष का उच्चारण भी शुद्ध न हो कर छ है।

मागधी में व प्रत्यय भविष्य कृदन्त एवं क्रियार्थक संज्ञा दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। अवधी में भी इसका प्रयोग दोनों प्रकार से हुआ है। भविष्यकाल के अधिकांश रूप अवधी में मूलधातु के साथ व प्रत्यय लगाने से वनते हैं।[2] तीनों पुरुषों में व कृदन्त का रूप एक जैसा रहेगा, जवकि पूर्वी-मागधी भाषाओं में यह परिवर्त्तित होता है।

पूर्वकालिक क्रिया में इ एवं ऐ का प्रयोग होता है, कहि, राखि, लै आदि। पूर्व-मागधी भाषा में सम्वन्ध की विभक्ति र अथवा एर है—र-एर-कर-केर-कार्य। अवधी में इसके लिए केर कर और कै का प्रयोग हुआ है। अवधी के पुरुष-वाची सर्वनामों का भी पूर्वी-मागधी भाषाओं से ही क्या समस्त भारोपीय भाषाओं के इस प्रकार के सर्वनामों से साम्य है।

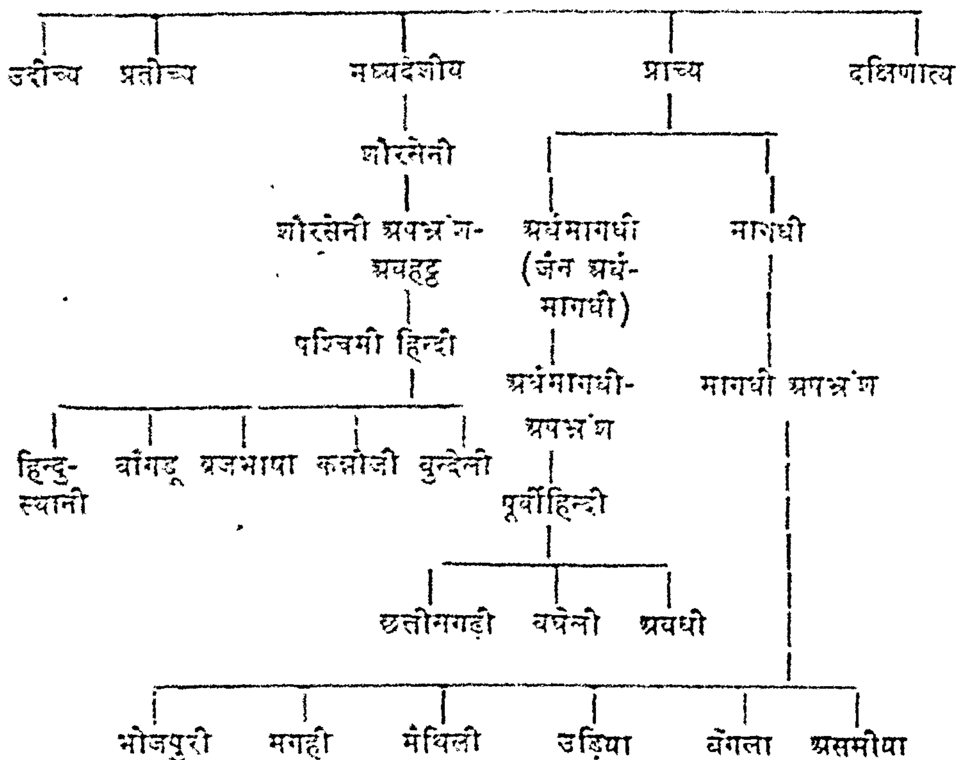
शव्द-भंडार की दृष्टि से भी अवधी का पूर्वमागधी से कहीं-कहीं साम्य है। 'चर्यागीतिकोश' के कई शव्दों की पद-टिप्पणी में सम्पादक श्री प्रवोधचन्द्र वागची ने उन्हें अवधी शव्द वताया है।

---

१. डा० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य, उपोद्घात, पृ० १४०।

२ देवकीनन्दन श्रीवास्तव—तुलसीदास की भाषा, पृ० २२५।

पूर्वांचलीय-भाषाओं एवं अवधी का पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट करने के लिए चार्ट प्रस्तुत है—



पूर्वांचलीय-भाषाओं के साहित्य का इतिहास

सम्पूर्ण साहित्य के इतिहास के वर्गीकरण का रूपरेखा :—

पूर्वांचलीय-भाषाओं के साहित्य के इतिहास के वर्गीकरण में बहुत कुछ समानता है। तीनों मुख्य-युगों की एक सी शताब्दियाँ हैं। इनके सम्पूर्ण-इतिहास की रूपरेखा दे कर आगे केवल रामायण-रचनाकाल के पूर्व तक का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया जाएगा।

असमीया-साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण

(१) आदियुग या प्राक्वैष्णव-काल—(···१२०० ई० तक समाप्ति)—चर्यापद-डाकखना-वचन और लोकगीत।

(२) मध्ययुग—१२००-१८२५ ई०—
 १. वैष्णवकाल (१२००-१६५० ई०)—क-प्राक्शंकर-युग, ख-शंकरदेव-युग।
 २. बुरंजी या इतिहास-काल—१६५०-१८२५ ई० (आहोम-राजाओं द्वारा इतिहास लिखाया जाना)।

(३) आधुनिक युग—अंग्रेजों के सम्पर्क—१८२६ ई० के पश्चात् से।

बँगला-साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण

(१) आदि-युग—९५०-१२०० ई०—चर्यापद, डाकखना-वचन, पौराणिक एवं लौकिक उपास्य काव्य।

(२) मध्य युग १२००-१८०० ई०।
 क—युगान्तर-काल—१२०० से १३०० ई०।
 ख—पूर्वमध्ययुग (प्राक् चैतन्य-युग)—१३००-१५०० ई०।
 ग—उत्तरमध्ययुग (चैतन्य-युग)—१५०० से १८०० ई०।

(३) आधुनिक युग—१८०० ई० के पश्चात्।

उड़िया-साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण

(१) आदियुग—(अथवा सारलादास युग)—९५०-१२०० ई० (चर्यापद, डाकखना-वचन, शिलालेख)।

(२) मध्ययुग—१२००-१८०० ई०
 क—पंचसखा-वैष्णव-काल—१२००-१६५० ई०
 ख—काव्ययुग या रीतिकाल—सत्तरहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं के द्वितीयार्ध तक।

(३) आधुनिक युग—१. राधानाथ युग, २. राधानाथोत्तर युग।

आदियुगीन-साहित्य :

प्रत्येक भाषा-साहित्य के आदिकालीन इतिहास का वर्णन करने के पूर्व **बौद्ध-गान ओ दोहा** तथा **डाकखना-वचन** की चर्चा कर लेना समीचीन होगा, क्योंकि प्रत्येक पूर्वांचलीय-भाषाओं के विद्वानों का दावा है कि बौद्ध-गान ओ दोहा अथवा चर्यागीति के संग्रह की भाषा उनके अपने प्रदेश की भाषा का आरम्भिक-रूप है। ऐसा ही दावा हिन्दी-भाषाओं का भी है। डाकखना के वचनों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के कथन हैं।

चर्यागीति :

चर्यागीति की प्राप्ति—म०म० हरप्रसाद शास्त्री नामक एक बंगाली विद्वान्

को १९०७ ई० में नेपाल के पुस्तकालय से बौद्ध-सिद्धों के गीति और दोहों की पोथी प्राप्त हुई थी, इसे उन्होंने १९१६ ई० में 'हाजार बछरेर पुराण बांगाला भाषाय बौद्धगान ओ दोहा' नाम से बंगाक्षरों में प्रकाशित कराया था। इसमें तीन प्रकार की रचनाएं संकलित थीं—(१) चर्याचर्य-विनिश्चय, (२) सरोज वज्र (सरह पाद) और कृष्ण पाद (कान्हपा) के दोहाकोश, (३) डाकार्णव। श्री प्रबोधचन्द्र बागची ने १९३८ ई० में सरहपाद और तिल्लोपाद के दोहाकोशों का एक संग्रह पाया था, जिसे १२वीं शताब्दी का बताया जाता है। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने दोहाकोश की भाषा पूर्वी अपभ्रंश मानी है। स्व० श्री राहुल सांकृत्यायन ने दोहाकोश को आदि-हिन्दी का काव्य स्वीकार कर इसे प्रकाशित भी कराया है।

चर्यागीति-लेखक – विवाद चर्याचर्य-विनिश्चय को लेकर है। इसका अर्थ है—चर्य = आचरणीय + अचर्य = अनाचरणीय + विनिश्चय = निरूपण। यह बौद्ध-धर्म के विधि-निषेध का सार है, जिसमें कि विभिन्न बौद्धसिद्धों के ५० चर्यागीतों का संग्रह है।

प्रसिद्ध ८४ सिद्धों की सूची के अन्तर्गत आने वाले २४ सिद्धों के ५० पद इसमें संकलित हैं। इनमें पहले केवल ४६ पद पाए गये थे। श्री बागची ने इसका एक तिब्बती अनुवाद भी खोज निकाला, जिसमें लुप्त-पदों का अनुवाद भी मिल गया। तिब्बती अनुवाद से चर्यापदों की भाषा समझने में सुविधा हुई है।

इनका रचना-काल सुनीति बाबू ९५० से १२०० ई० स्वीकार करते हैं। राहुल जी सिद्धों का आविर्भाव कुछ इससे भी पुराना मानते हैं, उन्होंने सरहपाद को ८वीं शताब्दी का माना है।

पदों के रचयिताओं के स्थान के सम्बन्ध में भी मतभेद है। बिहार के विक्रमशिला (भागलपुर), उदन्तपुरी (बिहारशरीफ़) और नालन्दा स्थान बौद्ध-साधनाओं के केन्द्र थे। यहीं बौद्धों के वज्रयान, सहजयान आदि सम्प्रदायों का प्रसार हुआ था। श्री राहुल जी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी और श्री शिवपूजन सहाय अधिकांश सिद्धों की निवास-भूमि मगध या इसके आसपास का प्रदेश मानते हैं। श्री हरप्रसाद शास्त्री ने लुइपाद, भुसुकपाद, कान्हपाद, सरहपाद और शबरपाद आदि को बंगाल का माना है। असमीया और उड़िया भाषाओं के विद्वान् इन्हीं में कई को अपने प्रदेश का सिद्ध करते हैं। 'आजि भुसु (क) बंगाली भइली। णिअ घरणी चण्डाली लेली'—४९ से सिद्ध किया जाता है कि भुसुक बंगाली नहीं थे, वे बंगाल में जाकर बसे थे और उन्होंने किसी चंडालिका को अपनी घरवाली बना लिया था। अन्य कई सिद्ध भी बंगाल पहुँचे होंगे, क्योंकि उन्हें वहां के शिथिल-समाज में साधन-प्रेमिका खोजने में कठिनाई नहीं हुई होगी। ऐसा लगता है कि कम्बलाम्बरपाद, लुइपाद, भुसुकपाद, शबरपाद, सरहपाद, कान्हपाद आदि कतिपय सिद्धों का सम्बन्ध निश्चय ही पूर्वांचल से था। वे या तो वहां जन्मे थे अथवा वहां जाकर बसे थे।

श्री हरप्रसाद शास्त्री ने चर्यापदों की भाषा को आदि-बँगला माना है। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने इनका समर्थन कर भाषा की व्याकरण-विषयक गवेषणा की है। प्राचीन बँगला भाषा से चर्यापदों की भाषा के साम्य के लिए कुछ ये तर्क दिए गये हैं— (१) सम्बन्धकारक की विभक्ति **एर** और **र** (२) सम्प्रदानकारक की विभक्ति **रे** (३) अधिकारण की विभक्ति त (४) परसर्ग —माझ आदि (५) भूत और भविष्य कृदन्त इल और इब (बिहारी भाषा का अल और अब नहीं), (६) असमापिका-क्रिया की विभक्ति इआ तथा इले।

बँगला-तर्कों की परीक्षा— (१) सम्बन्ध कारक की विभक्तियों एर और र का प्रयोग चर्यापदों के शब्दों में प्राप्य है—डोम्बी-एर-१९, रूमेर-२ बाहिर-५० । किन्तु र विभक्ति असमीया और उड़िया भाषा में भी जुड़ती है। एरि विभक्ति विद्यापति के पदों में भी मिल जाती है। (२) सम्प्रदान की विभक्ति रे प्राचीन बँगला में एवं आधुनिक बँगला के काव्य में प्रयुक्त हुई है। (३) अधिकरण की त विभक्ति के स्थान पर बँगला में ते और कहीं-कहीं ए का प्रयोग होता है, असमीया में आज भी त विभक्ति चलती है। अतएव चर्या के हाड़ित एवं टालत - -३३ शब्दों में असमीया से साम्य है। (४) भूत और भविष्य कृदन्त इल और इब केवल बँगला में ही नहीं है, असमीया एवं उड़िया में भी हैं। पुरुषवाची सर्वनामों के साथ तीनों भाषाओं के कृदन्तों के भिन्न-भिन्न रूप हैं, साथ ही पूर्वांचलीय भाषाओं की क्रियाओं में लिंगभेद नहीं है, जबकि चर्यापदों की भाषा में हिन्दी के समान भेद हैं—'नाना तरुवर **मौलिल** रे गअणत **लागेली** डाली—' २८। कीर्त्तिलता और वर्ण-रत्नाकर में ल कृदन्त है और भोजपुरिया में भी इल मिल जाता है। 'इल' के आधार पर कोई एक भाषा चर्यापदों पर अपना अधिकार प्रकट नहीं कर सकती। इसी प्रकार इब कृदन्त के प्रयोग-रूपों में भी विभिन्नता है। भोजपुरिया के प्रथम पुरुष का इब चर्यापदों के प्रथम पुरुष के इब से मिलता है। (५) अधिकांश माझ आदि परसर्ग मैथिली और अवधी में भी मिल जाते हैं—जैसे माझतानी खीन।[1] मानस में प्रयोग— पहुँचाएसि छन माझ निकेता—१-१७०-७। (६) इआ और इ असमापिका क्रियाएँ तीनों पूर्वाचलीय भाषाओं में हैं। आधुनिक बँगला-भाषा की साधु-भाषा में इया एवं कथित-भाषा में ए विभक्ति मिलती है। चर्यागीतों की इ विभक्ति शुद्ध रूप में आज भी असमीया और उड़िया भाषाओं में मिलती है। इसलिए बँगला का यह दावा भी बहुत पुष्ट नहीं है। इअ अथवा इआ विभक्ति अवहट्ठ-भाषा की विशेषता थी। इसका प्रयोग पश्चिमी और पूर्वी दोनों भाषाओं में हुआ है। इ का प्रयोग आज भी अवधी और ब्रज में है। इले का प्रयोग—'रात भइले कामरु जाय'—चर्यापदों में हुआ है, किन्तु बहुत कम। ऐसा प्रयोग बँगला और असमीया दोनों भाषाओं में है।

---

१. श्री गुणानन्द जुयाल—विद्यापति का अमर काव्य, पृ० १२।

असमीया भाषा के पक्ष में तर्क और उनकी समीक्षा—चर्यापदों की भाषा को आदि असमीया सिद्ध करने के लिए डा० डिम्बेश्वर नेओग ने अनेक तर्क दिये हैं जोकि व्यर्थ हैं, जैसे कि स्त्रीलिंग प्रत्यय नी का प्रयोग (गुंडिनी), इस प्रकार के प्रयोग भारत की अनेक भाषाओं में हैं। उनके मुख्य विचारणीय तर्क तथा उनकी परीक्षा प्रस्तुत की जा रही है--(१) व्यंजनान्त कर्त्ता में ए की उपस्थिति चर्या में है--कुम्भीरे खाय, चोरे निल। असमीया में भी इनकी उपस्थिति है। किन्तु यह नियम बंगला-भाषा पर भी लागू होता है। (२) कर्म का चिह्न क—जैसे कि ठाकुरक---असमीया में है, बंगला में नहीं। किन्तु मैथिली में भी—क का प्रयोग होता है। उड़िया में कु है। यह केवल असमीया की विशेषता न होकर अधिकांश पूर्वी-मागधी-भाषाओं की विशेषता है। (३) डा० नेओग ने असमीया के पक्ष में सम्बन्ध की विभक्ति र, सप्तमी में त का प्रयोग, असमापिका-क्रिया में इया अथवा इ की उपस्थिति का तर्क दिया है, बंगला-विषयक तर्कों की परीक्षा करते समय इन पर विचार हो चुका है। इस प्रकार नेओग के अधिकांश तर्क वही हैं जो बंगला के विद्वानों के हैं। (४) असमीया वाले तर्क देते समय बंगला से अवश्य ही अपना पार्थक्य दिखाने लगते हैं, उनका एक तर्क है कि चर्या की भाषा में निषेधार्थक-क्रिया में न पहले आता है—नच्छाड़अ, नमेलइ। यह विशेषता असमीया में है किन्तु बंगला में नहीं। बंगला में ना क्रिया के पश्चात् आता है—छाड़ेना। किन्तु हिन्दी में भी तो न पहले आता है। (५) श्री वाणीकान्त काकती[1] का भी एक तर्क दिया जा रहा है--मध्यवर्ती आ का अनुसरण करने वाले आ के आने पर प्रथम का लघु हो जाता है। यह असमीया और चर्यापदों की विशेषता है—

चर्यापद	असमीया	बंगला	संस्कृत
पखा---४	पखा	पाखा	पक्ष
चका-- १४	चका	चाका	चक्र

किन्तु यह विशेषता उड़िया भाषा की भी है--कला (काला), छता (छाता), मथा (माथा) आदि। फिर चर्यापदों में ऐसे शब्दों का बहुल प्रयोग भी नहीं है।

उड़िया के पक्ष में तर्क और उनकी समीक्षा—चर्यापदों की भाषा की खींच-तान में उड़िया वाले भी पीछे नहीं हैं। पं० नीलकंठ दास ने उड्डीयान देश के प्राचीन धर्म को जैनधर्म मान कर तथा उसे ऋग्वेद से भी प्राचीन सिद्ध कर कहा है कि सहजयानी एवं वज्रयानी सिद्धों की चर्यापदीय-भाषा शबर प्रदेश (उड्डीयान देश---उड़ीसा) की भाषा थी। वे उड्डीयान देश को शबर-संस्कृति का केन्द्र मान

१. श्री वाणीकान्त काकती—आसामीज इट्स फार्मेशन एण्ड डिवलपमेंट, पृ० ९।

कर इसका विस्तार एक ओर नेपाल और तिब्बत की ओर तथा दूसरी ओर बंगाल और उत्कल के तटों तक मानते हैं। उनका कहना है कि सिद्धों की परिनिष्ठित और धार्मिक भाषा उस समय की उड़िया भाषा थी।[1] पंडित दास ने चर्यापदों के शब्दों की सूची दे कर कोष्ठक में संस्कृत पर्याय दे कर उन्हें उड़िया शब्द बताया है—अइस (ईदृश), अहिणिसि (अहर्निशि), आईस (ईदृश), प्राण (प्राण), उएस (उपदेश), जहिं (यत्र), सेजि (शय्या)। इस प्रकार इनका सम्बन्ध संस्कृत भाषा से जोड़ कर कोई भी भारतीय आर्य-भाषा चर्यापदों की भाषा पर अपना दावा प्रकट कर सकती है। पंडित दास के इस साम्य में गम्भीरता एवं ठोसपन नहीं है। श्री दास द्वारा प्रस्तुत लम्बी सूची में केवल तीन शब्द ऐसे हैं जो उड़िया भाषा से समानता रखते हैं—**घाती-२०** (उड़िया - घाति= घातक), **एकुटि-३०** (उड़िया—एकुटिआ= एकाकी) और **ठाण-२** (उड़िया— ठणा= थाना)। उन्होंने चर्यापदों के **बांड कुरुंड-३७** और **बिआली-४** अश्लील शब्दों को उड़िया भाषा का बताया है। पहला शब्द बाण्ड[2] (शिश्न) अवश्य ही उड़िया का है किन्तु बिआली के लिए देखिए तुलसीदास की यह पंक्ति- 'सतक बांझ भल बादि बिआनी।' हाँ बिआ का अर्थ उड़िया में अवश्य ही योनि है अतएव बिआली शब्द उड़िया में सार्थक हो सकता है।

भाषा का अध्ययन व्याकरण की दृष्टि से उसके रूप-निर्माण का होना चाहिए। मैंने स्वयं चर्यापदों का अध्ययन कर चर्यापदों की भाषा में कहीं-कहीं उड़िया भाषा से समानता देखी है सम्बन्ध की विभक्ति र, भूत कृदंत इल का **भइली-४९** (प्रथम पुरुष में) एवं **पाकेला-५०** (तृ० पुरुष में) प्रयोग, असमापिका-क्रिया का इ प्रत्यय कर्मकारक में कुं—अतियाफारिकुँ-९, अव्यय एथु-२२ (अत्र), आदि प्रयोग उड़िया-भाषा से साम्य रखते हैं। लुइपाद आदि कुछ सिद्धों का उल्लेख भी प्राचीन उड़िया साहित्य में है।[3] फिर भी यही कहा जाएगा कि उड़िया के शब्द असमीया और बँगला से कम हैं।

हिन्दी के पक्ष में—कारक-चिह्नों में कई स्थलों पर मैथिली एवं अवधी के कारक-चिह्न हैं। अनेक क्रियाएं पइसइ, वहइ आदि हिन्दी की तो हैं ही अन्य कई क्रियाएँ ऐसी हैं जिन पर किसी भी आलोच्य भाषा का अधिकार सिद्ध किया जा सकता है। पूर्वी भाषाओं की क्रियाओं में लिंग-भेद नहीं होता किन्तु चर्यापदों में है। हिन्दी की भाँति चर्यापदों की प्रेरणार्थक क्रिया में आव प्रत्यय का प्रयोग है। चन्द्र-बिन्दु के रूप में विभक्तियों का प्रयोग भी देखा जा सकता है। सर्वनाम मइ, तइ, हउं, अम्हे, तुम्हे, तोहोरि, जे, ते आदि ऐसे हैं जो थोड़े ही हेर-फेर से किसी भी

---

१. पं० नीलकंठ दास का सभापतीय भाषण—ओरिएंटल कान्फ्रेन्स, पृ० १७।
२. बँगला-बाण्डा।
३. लोहिदास मठ करि थान्ति···शून्यसंहिता—अच्युतानन्द दास, द्वि० सं० पृ० ७९।

भाषा के सिद्ध किये जा सकते हैं। फिर भी झुकाव हिन्दी की ओर ही है—हउं ब्रज और खड़ी में है किन्तु पूर्वांचलीय-भाषाओं में नहीं है। इल और इब कृदन्त मैथिली आदि भाषाओं में है, तथा केवल इल खड़ी में है। शब्द-भण्डार बहुत-कुछ हिन्दी का है—सेउर-१२, थाली-३, नेह, पेडु, जागु, जिम-३०, अंकवाली (अंकवार २४) जइसों-तइसों-१३, तइसो-जइसो-२२, सहभाव-१०, कहेरि-८, साच-२९, टाल (-मटोल) -४०, कुआर, डार-४५, सेन्दूर (न्हाति)-१८, नहसक-२ आदि ऐसे शब्द हैं जो प्रायः हिन्दी में मिलेंगे, पूर्वांचलीय-भाषा में वे नहीं। कहीं-कहीं तो पूरी पंक्ति ही हिन्दी की प्रतीत होगी;—

भाव न होइ अभाव न जाइ। अइस संबोहे को पतियाइ॥

चर्यापदों के छन्द मात्रिक हैं और हिन्दी के छन्द भी मात्रिक हैं। पूर्वांचलीय-भाषाओं का प्राचीन काल में प्रचलित छन्द पयार मात्रिक नहीं है।

निष्कर्ष—चर्यापदों की पोथी का पाठ निर्धारित नहीं है, इसलिए निश्चयरूप से कुछ कह सकना कठिन है। यदि पोथी की भाषा शौरसेनी अपभ्रंश और लिपिकार पूर्वांचलीय हों अथवा इसका उलटा हो तो भी दोनों भाषाओं के मिश्रित हो जाने की सम्भावना हो सकती है। कई तर्क शौरसेनी अपभ्रंश के पक्ष में हैं। राजपूतों के प्रभाव से शौरसेनी अपभ्रंश समस्त उत्तरी-भारत की साहित्यभाषा हो गया था। पूर्वांचल के लोगों ने अपनी छाप लगाते हुए इस अपभ्रंश में रचना की होगी। फिर भी चर्यापदों की भाषा पर पूर्वांचलीय-भाषा के तत्वों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऊपर के तर्कों पर विचार करते समय सम्बन्ध की विभक्ति, असमापिका-क्रिया की विभक्ति, इल और इब कृदन्तों के कारण पूर्वांचल का प्रभाव देखा ही गया है, कुछ शब्द भी ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध भी पूर्वांचल से है जैसे—कांड चोर ४०-रगणा काना-बोबा= बधिर-मूक, ये शब्द उड़िया और असमिया में भी हैं। दाणश, कांदइ, घुमइ क्रियाएँ बंगला से मिलती हैं। कोर नेनाली कुम्भीरे खाअ-२, एक से शुण्डिनी दुइ घरे सान्धअ-६ जैसे प्रयोग भी बंगला से मिलते हैं। शबर पाद द्वारा चित्रित शबरी का रूप पूर्वांचल के पर्वतों पर प्राप्त है।[1] बंगाल में पर्ण-शबरी पार्वती की पूजा होती है। सहजयानियों की विचारधारा की परम्परा कबीर में देखने को मिलती है, किन्तु बंगाल में तो आज-तक बाउल उपासनियों जैसी उक्तियाँ कहते आ रहे हैं।

बन्द रइल गाभीर प्यारे पाहा गेल काठे
दलेर उपर सख्या पाखा जोरा धारे निद।[2]

---

१. ऊँचा ऊँचा पावत तहिं बसइ सबरी बाली।
मोरंगि पीच्छ परहिण सबरी गिवत गुंजरी माली॥
—चर्यागीति—गीति क्रमांक, २८।१।

२ मुहम्मद मनसुर - हारामणि, पृ० ८।

बाउलों में शून्यवाद, सहजवाद और गुरुवाद तथा षट्चक्र, सुषुम्ना, आदि सभी मिलते हैं। उत्तरी बंगाल के बौद्ध गानों को शब्द-ज्ञान कहते हैं।[1]

यह तो स्पष्ट है कि बौद्ध चर्यापदों की आत्मा पूर्वी है, भाषा भले ही मैथिली-मिश्रित शौरसेनी अपभ्रंश हो, जिसमें कि पूर्वांचलीय भाषा के उस रूप की भी यत्र-तत्र छाप है जो कि सम्मिलित रूप से असमीया, बंगला एवं उड़िया का प्रारम्भिक रूप था। यह भी हो सकता है कि यह भाषा उपर्युक्त भाषाओं से मिलकर गठित की गयी कृत्रिम भाषा हो, जैसी कि ब्रजबुलि थी। बंगाल और उड़ीसा में ब्रजबुलि का प्रचार १५वीं शताब्दी से ही देखा जाता है—फिर भी मैं अपने प्रथम कथन का ही समर्थन करता हूँ।

डाकखना-वचन :

बौद्ध चर्यापदों के समान ही डाकखना के वचनों के सम्बन्ध में भी मतभेद है। असम, बंगाल, उड़ीसा और बिहार में इनकी कहावतें प्रचलित हैं और इन पर चारों राज्यों की भाषाओं का अधिकार सिद्ध किया जाता है। डाक पुरुष हैं और खना महिला। डाक का सम्बन्ध वराहमिहिर (पाँचवीं-छठी शताब्दी) से जोड़ा जाता है। असम आदि प्रदेशों में इनके जन्मस्थान के खोजने की भी चेष्टा की गयी है। असम के प्रायः सभी घरों में डाक-वचन की पोथी मिल जाएगी।

श्री नगेन्द्रनाथ चौधरी दृढ़ता के साथ डाक और खना शब्दों की व्युत्पत्ति तिब्बती शब्दों से मान कर कहते हैं कि ये वचन किसी विशेष पुरुष या स्त्री के न हो कर सामान्यतः विद्वज्जनों के चतुर वचनों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[2]

हिन्दी-प्रदेश के घाघ-वचन और डाकखना-वचन में साम्य है। यदि तिब्बती ग्डाग शब्द से डाक की व्युत्पत्ति मानी जाती है तो सम्बन्ध भिड़ाने के लिए घाघ शब्द की भी मानी जा सकती है।

ये वचन सारे भारत में ही प्रचलित हैं, जिनका आधार हमारी कृषि-संस्कृति है। वर्षा के लक्षण, कृषि-विज्ञान, पारिवारिक-जीवन आदि ही इनमें चित्रित हुए हैं। एक जैसी परिस्थिति होने के कारण इनका प्रचार सम्पूर्ण-देश में समान-रूप से है। अतएव इन्हें किसी प्रदेश-विशेष की सम्पत्ति नहीं कहना चाहिए।

नेपाल में प्राप्त डाकार्णवतंत्र की नेवारी लिपि की पोथी के अनुसार इसका रचना-काल १३वीं शताब्दी मान कर इसे पूर्वांचलीय-भाषाओं से सम्बद्ध किया जाता था। अब इसकी भाषा शौरसेनी-अपभ्रंश सिद्ध हो चुकी है।

०तीनों प्रदेशों के लोग आदि-युगीन साहित्य में चर्यापद, डाकखना के वचन

१. मुहम्मद मनसूर—हारामणि, पृ० २६।
२. नगेन्द्रनाथ चौधरी—डाकार्णवतंत्र, पृ० ७।

और कुछ लोकगीतों का उल्लेख करते हैं। प्रथम दो का वर्णन हो चुका है। अब प्राक् रामचरितकाव्य-काल तक का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत है।

असमीया-साहित्य :

लिखित इतिहास से पूर्व असमीया-भाषी विद्वान् अलिखित साहित्य की भी चर्चा करते हैं। आदिम-जातियों में आज भी युगयुगान्तर से लोकगीत, कथाओं आदि का प्रचार है, जो कि उनके द्वारा लिपि-बद्ध नहीं हुए हैं। इसी प्रकार असमीया-भाषा के आदि-काल से ही लोक-साहित्य का प्रचार रहा होगा, जिसकी धारा आज तक प्रवाहित हो रही है। तीन प्रकार के लोकगीत असम में विशेष रूप से प्रचलित रहे हैं—(१) अनुष्ठानमूलक—जैसे बिहुगीत, आइनाम, बियानाम आदि। (२) आख्यान-मूलक (ballads) किसी महापुरुष के नाम पर गीतों की रचना, (३) विविध-विषयक—निचकनिगीत (छोटे बच्चों को चुप कराने की लोरियाँ), गरखीया गीत (चरवाहों के गीत), नाव खेने के गीत आदि।

बिहुगीत—बिहुगीत उत्सव गीत है। बहाग बिहु वसन्तोत्सव की अभिव्यक्ति है। कृषिजीवी-जन वसन्त ऋतु के स्वागत में नृत्य-गान द्वारा उल्लास प्रकट करते हैं। स्त्री-पुरुष यौवन का नृत्य करते हैं। 'यौवन की उद्दाम वासना, मिलन की तीव्र आकांक्षा, विरह का उत्ताप, प्रेम की विनय और चुनी हुई रूठ, जैसे उड़नशील मन की सम्यक् अभिव्यक्ति बिहुगीतों में प्राप्य है।'[1] इनका गायन पर्वत, वनप्रदेश, नदी आदि स्थानों पर काम करने वाले लोगों द्वारा अपने-अपने कार्य में संलग्न रह कर भी होता है।

आइनाम—स्त्रियों के गीत हैं और इनके कई नाम हैं। इन गीतों में स्त्री-सुलभ कोमलता और उनके सहज विश्वास के दर्शन होते हैं।

बियानाम—महिलाएँ विवाह के अवसर पर बियानाम गीत गाती हैं। भारत के अन्य प्रदेशों के गीतों के समान इन गीतों में भी राम-सीता, कृष्ण-रुक्मिणी, हर-गौरी आदि पौराणिक चरित्रों का उल्लेख होता है।

आख्यान-मूलक गीत प्रायः असम देश में उत्पन्न महती-विभूतियों को आश्रित कर गाये जाते हैं। लोरियों और पशुचारण आदि गीतों का भी आदि काल से ही प्रचार रहा है।

मंत्र-साहित्य का भी असम में प्रचार रहा है। गोपनीयता के कारण तथा शुद्ध-पाठ से लाभ-प्राप्ति की धारणा के कारण मंत्रों की भाषा प्राचीन रह सकी है। नवीं-दसवीं शताब्दी में शंकराचार्य की दिग्विजय के समय यहाँ की मंत्र-शक्ति का परिचय दिया गया है। कामरूप-कामाख्या का तंत्रमंत्र तो बहुत पहले से प्रचलित है।

---

१. सत्येन्द्रनाथ शर्मा—असमीया साहित्यर इतिवृत्त, पृष्ठ १३।

लिखित-साहित्य —वैष्णव-काल (१२००-१६५०)

१३वीं से १४वीं शताब्दी तक का साहित्य प्राप्त नहीं होता। इसके पश्चात् वैष्णव-साहित्य प्रारम्भ होता है। वैष्णव-काल के सबसे बड़े कवि शंकरदेव को मुख्य और प्रतिनिधि कवि मान कर इस काल के दो भेद किये जाते हैं—

(१) प्राक् शंकरदेव-युग (२) शंकरदेव-युग

प्राक्-शंकरदेव युग के लेखकों ने प्रायः राजाओं के आश्रय में रह कर धार्मिक महाकाव्यों और पुराणों के चरित के आधार पर काव्य-रचना की है। इनकी रचनाओं को अनुवाद नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इसमें कवियों के व्यक्तित्व, उनकी स्वतन्त्र-कल्पना और स्थानीय-वैशिष्ट्य का भी प्रतिविम्व मिलता है।

कमता के राजा दुर्लभ नारायण के राजकवि **हेम सरस्वती** ने प्रह्लाद-चरित और हरगौरीसंवाद लिखा था। ये पण्डितों की वंश-परम्परा में उत्पन्न हुए थे। **कवि-रत्न सरस्वती** राजा दुर्लभ नारायण के पुत्र इन्द्र नारायण के आश्रय में थे। उन्होंने महाभारत के द्रोणपर्व के जयद्रथ-वध पर काव्य-सृष्टि की है। **रुद्र-कन्दली** ने राजा ताम्रध्वज के आश्रय में सात्यकि-प्रवेश काव्य लिखा। हरिहर विप्र ने जैमिनी-भारत के आधार पर दो काव्य लिखे थे।

इन कवियों के पश्चात् इस युग के मुख्य कवि माधव-कन्दली आते हैं। माधव-कन्दली एवं शंकरदेव तथा उनके शिष्य माधवदेव के विषय में जीवनी वाले अध्याय में लिखा जाएगा।

बँगला-साहित्य—प्राचीन बँगला-काव्य दो प्रकार के थे—

(१) पदकाव्य (गेय), (२) मंगलकाव्य (आख्यानमूलक)

प्रथम-काव्य के अन्तर्गत चर्यापदों का समावेश होता है। परवर्त्ती प्रचलित लाउसेन की कथा, रामकृष्ण-लीला-गीत, लखीन्दर-बेहुला की कथा आदि के आधार पर अनुमान किया जाता है कि इनका प्रचार बहुत पहले से होगा। डाकखना के वचन, प्रवाद (कहावतें), छड़ा (लोरियाँ आदि) का भी प्रचार था। चैतन्य-भागवत के अनुसार प्रकट है कि मनसा, चंडी, वाशुली, शिव आदि के गीत गाये जाते थे। भोगीपाल, योगीपाल, महीपाल आदि के गीत भी गाये जाते थे। वंगाल में पाँचाली-गीतों का प्रचलन भी बहुत प्राचीन है। पाँचाली-गीत तीन प्रकार के थे—(१) लौकिक देव-देवी-माहात्म्यसूचक (मंगल और विजय-काव्य), (२) संस्कृत पौराणिक आख्यानमूलक काव्य (रामायण और महाभारत के आधार पर), (३) लौकिक नायक-नायिकाश्रित काव्य। मृदंग, मन्दिरा और चामर के साथ इन गीतों का गायन होता था। मुख्य गायक कभी गाता, कभी द्रुत आवृत्ति करता और कभी नाचता भी था, उसके साथी भी दोहार (ध्रुवकार) के रूप में उसकी आवृत्ति करते थे।

चंडीदास का कृष्णकीर्त्तन—वंगीय-साहित्य-परिषद् से १९१६ ई० में पोथी

प्रकाशित हुई थी—जिसे नाम दिया गया श्रीकृष्ण कीर्त्तन। इस पोथी के प्रथम, अन्तिम तथा एक-दो मध्य के पृष्ठ खंडित थे। इनमें भणिता बडू चंडीदास की है। बँगला-साहित्य की इससे पुरानी कोई पोथी नहीं मिली, अनुमान है कि १४५० एवं १५०० ई० के मध्य इसकी रचना हुई होगी। इस पोथी के प्रकाशन के साथ ही चंडीदास की समस्या उठ खड़ी हुई, क्योंकि बंगाल में चंडीदास नाम से एकाधिक कवियों ने काव्य-रचना की है। इनमें प्राचीन चंडीदास को खोजने का प्रयास किया गया। बडू चंडीदास ही प्राचीन माने गये। सुकुमार सेन[1] ने विद्वत्तापूर्वक प्रमाण दे कर सिद्ध किया है कि इनकी भाषा १६०० ई० के ओर की है, इनमें कुछ मिश्रण भी हुआ है। यह ग्रन्थ महाकाव्य के गुण से पूर्ण है। राधा का चरित्र सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है। सहजयानी-धारा में ही राधा के चरित्र का विकास हुआ है, ये यौवन-प्रमत्ता परकीया नायिका हैं।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इसकी भाषा उत्तरी बँगला एवं असमीया मिश्रित है, जिससे असमीया-भाषी इस पर अधिकार प्रकट करते प्रतीत होते हैं।[2]

बँगला-साहित्य का प्रथम कवि कौन?—चंडीदास की प्राचीनता स्वीकार कर डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी प्रभृति विद्वान् चर्यापदों के पश्चात् चंडीदास को प्रथम कवि होने का गौरव देते हैं, कृत्तिवास (बँगला-रामायणकार) उनके पश्चात् आते हैं। सुकुमार सेन आदि लेखकों ने कृत्तिवास को चंडीदास से पूर्व उत्पन्न माना है। इसमें सन्देह नहीं कि चंडीदास की पुस्तक की जितनी पुरानी प्रति प्राप्त है, उतनी पुरानी कृत्तिवास की नहीं। फिर भी चंडीदास और उनके कृष्णकीर्तन के काल से कृत्तिवास और उनकी रामायण का काल अपेक्षाकृत पहले का है। इसलिए प्राप्त लिखित-साहित्य के प्रथम कवि कृत्तिवास ही हैं। चंडीदास का जीवनकाल डॉ० सुकुमार सेन के मतानुसार १५२५ ई० के इधर का नहीं है। कृत्तिवास की जीवनी का अध्ययन तीसरे अध्याय में होगा।

उड़िया-साहित्य :

आदियुग—असमीया और बँगला-भाषियों के समान उड़िया-भाषी भी 'बौद्ध गान ओ दोहा' पर अपना दावा प्रकट करते हैं। नीलकंठ दास प्रभृति विद्वान् कालिकापुराण में वर्णित ओड्डियान महाशक्ति-पीठ को उड़ीसा के अन्तर्गत मान कर सिद्ध करते हैं कि सिद्धों की साधना यहाँ से ही पूर्वांचल में विकसित हुई। कान्हपा, शवरीपा, लुईपा, दारिपा और धेनकिपा यहीं के बताये गये हैं। उड़िया साहित्य के पंचसखाओं

१. डॉ० सुकुमार सेन—बांगाला साहित्येर इतिहास (१), पृष्ठ १६६।
२. डॉ० वाणीकान्त काकती—आसामीज इट्स फार्मेशन एण्ड डेव०, पृ० १०,११।

पर इनका प्रभाव पड़ा था। डाकखना के वचन एवं अनेक व्रतकथाएँ यहाँ भी प्रचलित थीं।

इसी युग में नाथपंथी साहित्य भी मिलता है। **शिशुवेद** शैवधर्म की पुस्तक है। यह बौद्ध अपभ्रंश और सारलादास के बीच की कड़ी है। इसके साथ गद्य-व्याख्या दी गयी है, जो १२-१३वीं शताब्दी के गद्य का अच्छा उदाहरण है। **सप्तांग-योग-धारणामृत** पुस्तक किसी ने गोरखनाथ के नाम पर लिख दी है। शैवमत पर एक और पुस्तक है **रुद्रसुधानिधि**; १३वीं शती के अवधूत नारायण स्वामी द्वारा यह पुस्तक लिखी गयी है और सम्पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुई है।

माँदलापंजी— यह ग्रन्थ नगाड़े के आकार में ताड़पत्रों के ढेर के रूप में जगन्नाथ मन्दिर में सुरक्षित है। कहा जाता है कि चोडगंगदेव ने इसे ११-१२वीं शताब्दी में लिखा था, किन्तु जगन्नाथ स्वामी के इतिहास के साथ ही इसमें १६वीं शती के राजाओं का भी वर्णन है, जिससे हरेकृष्ण मेहताव जैसे विद्वान् इसे १६वीं शती के पहले का नहीं मानते हैं।

उड़िया साहित्य में **कोहलि** और **चौतीसा** काव्यों की परम्परा इसी युग से चली थी। कोहलि-काव्यों में कोयल को सम्बोधित कर कविता लिखी गयी। चौतीसा में क से क्ष तक ३४ अक्षरों को प्रथम मान कर छन्द लिखे गये थे। **मारकंड-दास** का **केशवकोहलि** पुराना ग्रन्थ है। इसमें चौतीसा-पद्धति भी है, यशोदा के विरह-वर्णन से इसका सम्बन्ध है। **कलसा** चौतीसा प्रथम शुद्ध चौतीसा है। इसके लेखक **वच्छदास** का समय निश्चित नहीं किया जा सका है। इसमें शिव और पार्वती के विवाह का हास्य-मय वर्णन है।

सारलादास— सारलादेवी के भक्त सारलादास ही सच में उड़िया-साहित्य के प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका सत्य नाम सिद्धेश्वर परिडा था। इनका समय १४-१५वीं शताब्दी है। ये संस्कृतज्ञ नहीं थे, इन्हें शूद्र मुनि कहा गया है। उड़िया का विद्वद् समाज इनके ग्रंथ को व्यंगपूर्वक तेली-भागवत कहता रहा है। इनके पात्रों के चित्रण में उड़िया भूमि की गन्ध है, किन्तु चित्रण संस्कृत के उच्च धरातल पर नहीं हुआ है। द्रौपदी को साधारण नारी की तरह सौतिया-डाह से पीड़ित सिद्ध किया गया है। एक अवसर पर सत्य बोलने के लिए बाध्य हो कर वह यह भी स्वीकार करती है कि उसका मन वीर सुन्दर कर्ण की ओर आकृष्ट है।[१] चित्रण में नवीनता, मौलिकता और मनोवैज्ञानिकता है, किन्तु गौरव का अभाव है। कहीं-कहीं ब्राह्मण और चण्डाल का संघर्ष प्रस्तुत कर युगीन-समाज की झलक भी दी है। नारी को शक्तिमती चित्रित करने के लिए इन्होंने **विलंका-रामायण** लिखी थी। इनका एक और ग्रन्थ है चण्डी-पुराण।

---

१. यह प्रसंग काशीराम दास के बँगला महाभारत में भी है।

एक-दो अन्य लेखकों के भी ग्रंथ इस काल में उपलब्ध हुए हैं, जैसे कि अर्जुनदास का रामविभा और चैतन्यदास का विष्णुगर्भ-पुराण। रामविभा काव्य उड़िया का प्रथम महाकाव्य माना जाता है।

पंच-सखा-युग या वैष्णव-युग— राजा प्रतापरुद्र देव के समसामयिक पाँच कवि बलरामदास, जगन्नाथदास, यशोवन्तदास, अनन्तदास और अच्युतानन्ददास पंच-सखा कहलाये। ये वैष्णव कवि थे किन्तु इनकी भक्ति ज्ञानमिश्रा बतायी गयी है। जिसमें योग और काया-साधन पर जोर दिया है। चैतन्य देव ने इनसे सख्य स्थापित किया, इसीलिए ये पंचसखा कहलाये। इनके काव्यों पर चैतन्य का प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता, यह प्रभाव आगे रीतिकाल में स्पष्ट हुआ है। पंचसखाओं में वयोज्येष्ठ लेखक बलरामदास का जीवन-परिचय तीसरे अध्याय में प्रदत्त है।

वैष्णवकाल के पश्चात् १७वीं १८वीं शताब्दी से उड़िया-साहित्य में हिन्दी-साहित्य जैसा रीतिकाल आया। कृष्ण की भक्ति और शृंगार से संवलित मधुर और सुन्दर काव्य का सृजन हुआ। इसमें कहीं-कहीं अश्लीलता आ गयी है। इस युग के श्रेष्ठ कवि हैं श्री उपेन्द्र भंज।

द्वितीय अध्याय

धर्मसाधनाएँ और रामायण

अपने देश में देवताओं की दो श्रेणियाँ रही हैं—एक ओर प्रिय-दर्शन सुरुचि-पूर्ण देवता हैं तो दूसरी ओर हैं कुरूप एवं कुरुचि-पूर्ण देवता। दो श्रेणियाँ देख-कर ही कल्पना की गयी कि प्रथम प्रकार के देवता आर्यश्रेणी के हैं एवं द्वितीय प्रकार के अनार्य श्रेणी के। शिव एवं शक्ति के विषय में कहा गया है कि ये मूलतः अनार्य देवता थे किन्तु आर्य-देवता-मंडल में इन्हें स्वीकृति मिल गयी। ऐसा भी तो संभव हो सकता है कि ये देवता थे तो आर्य ही किन्तु अशिक्षित एवं अर्ध-सभ्य वन्य-जातियों ने इनका अपनी मनोवृत्ति के अनुसार पूजन कर इनका रूप विकृत किया हो।

निगम को आर्य-प्रभावित एवं आगम को अनार्य-प्रभावित माना गया। आगम का अर्थ आया हुआ बता कर इन्हें अनार्यों से ग्रहण करने की कल्पना की गयी। किन्तु कुछ विद्वान् आगम को मोक्ष और भोग का उपाय बताते हैं। श्री बलदेव उपाध्याय अधिकांश आगमों की भित्ति निगम को ही मानते हैं।

आगम ही तंत्र है। तंत्रों के तीन प्रमुख भेद हैं—१. ब्राह्मण तंत्र, २. बौद्ध तंत्र एवं ३. जैन तंत्र। एक समय ऐसा आया कि भारत की सभी उपासनाओं में तंत्रों का समावेश हुआ। पूर्वांचल की साधनाओं में तांत्रिक—संस्पर्श अधिक देखा जाता है।

ब्राह्मण-तंत्रों के भी पाँच भेद थे—१. वैष्णवतंत्र, २. शैवतंत्र, ३. शाक्ततंत्र ४. सौरतंत्र और ५. गाणपत्य-तंत्र। प्रथम तीन तंत्रों का ही विशेष महत्त्व रहा है।

आगे चल कर शाक्त-धर्म को ही तंत्र मानने की भूल देखी गयी। श्री गोपी-नाथ कविराज के कथनानुसार वस्तुतः तंत्र विन्दु की साधना है।[1] वीर्य को ऊर्ध्वगति प्रदान कर तेज और शक्ति सम्पन्न होना ही कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध कर सहस्रार तक पहुँचाना था। किन्तु अनधिकारियों के हाथ में पड़ कर इस सिद्धान्त का विपरीत-

---

१. श्री गोपीनाथ कविराज—तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य (नागेन्द्र नाथ उपाध्याय), भूमिका।

आचरण हुआ और यह साधना कलंकित[1] हुई । वैष्णव-धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों—शैव, शाक्त एवं बौद्धों में तंत्र के प्रवेश ने इन्हें गर्हित और ह्रासोन्मुख बनाया ।

ईसवी सन् के प्रारम्भ से ही पंच-मकारों का प्रचार पाया जाता है । चौथी—पाँचवीं शताब्दी में तंत्र-साहित्य मिलना प्रारम्भ होता है । सातवीं शताब्दी में इसका पूर्ण विकास हुआ । भिक्षु-भिक्षुणियों के दुराचार से समाज बौद्ध-धर्म को घृणा करने लगा था । जनता को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए बौद्धों ने तंत्र-मंत्र का आश्रय लिया ।[2] पूर्वांचल की ओर बौद्ध-धर्म का विकास अधिक हुआ था, वहीं तांत्रिक-साधनाओं के गर्हित रूप का और अधिक प्रसार हुआ ।

शैव और शाक्त सम्प्रदायों में अनेक विकृतियाँ आयी थीं, वैष्णव सम्प्रदाय इन विकृतियों से बहुत कुछ मुक्त रहा ।[3]

पूर्वांचल की साधनाएँ

कालिका पुराण (१०वीं शताब्दी) एवं योगिनी-तंत्र (१५-१६ वीं शताब्दी) नामक दो ग्रंथों का सृजन अधिकांश विद्वानों के मत से असम प्रदेश में हुआ था, क्योंकि इन ग्रंथों में कामरूप का वर्णन है । इन ग्रन्थों का प्रभाव पूर्वांचल के बहुत बड़े भाग पर पड़ा है । कालिका पुराण से शाक्त-धर्म का प्रभाव बढ़ा । इस उपपुराण में शाक्त-धर्म विशेषतः वामाचार के रूप की तीव्रता दृष्टिगत होती है । इसमें नरबलि एवं मदनोत्सव का भी विशद वर्णन है । योगिनी-तंत्र के रचना-काल तक शाक्तधर्म का ह्रास देखा जाता है, किन्तु राजा नरनारायण द्वारा देवी के मन्दिरोद्धार से प्रतीत होता है कि वैष्णवाचार्य शंकरदेव के पश्चात् भी शाक्तधर्म का प्रचलन था ।

कालिका-पुराण के वर्णन से ज्ञात होता है कि १० वीं शताब्दी के बहुत पहले ही किरातों एवं निषादों में प्रचलित नरबलि की प्रथा को हिन्दू-तांत्रिकों ने स्वीकार कर लिया था । इस ग्रंथ के ७१वें अध्याय को रुधिराध्याय कहा गया है । इसमें नर-बलि, पशुबलि, स्वगात्र-रुधिर एवं मांस-दान आदि का विशद वर्णन है । बलि के योग्य पशुओं एवं बलि के लिए प्रयुक्त होने वाले अस्त्रों का भी नाम दिया गया है ।

योगिनीतंत्र के षष्ठ पटल में पंच-मकारों का वर्णन है । मातृयोनि को छोड़ कर सभी रमणियों के साथ मैथुन की छूट दी गयी—'मातृयोनिं परित्यज्य मैथुनं सर्वयोनिषु' १-६-४४ । १२ से ६० वर्षों के बीच की आयुवाली स्त्रियाँ मैथुन के योग्य बतायी गयीं । रजस्वला के साथ रमण हो सकता है । वेश्या अथवा चण्डाल की लड़की भी यदि कुमारी हो तो वरेण्य है ।

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—सूर साहित्य, पृष्ठ २६ ।
२. वही, पृष्ठ २४ ।
३. देखिए, प्रस्तुत लेखक का ग्रन्थ—कृत्तिवासी बँगला रामायण और मानस, पृ० ४०

ये दोनों ग्रंथ पूर्वांचल की साधनाओं के संकेत-चिह्न हैं। अनार्य साधनाओं के पंचमकारों का सेवन, वलिप्रथा, रुधिरदान, रमणी-मैथुन आदि पद्धतियों की विकास-परम्परा तथा आर्य-संस्कृति प्रभावित जनों द्वारा इनकी विवश स्वीकृति आदि का परिचय भी इन ग्रंथों में मिल जाता है।

आर्य-पद्धतियों एवं अनार्य-पद्धतियों में निरन्तर संघर्ष चलता दिखायी पड़ता है, परिस्थितियों से विवश हो कर आर्य उपासना-पद्धतियों में अनार्य उपासना-पद्धतियों का समावेश किया गया है। तंत्र-ग्रन्थों में ब्राह्मण को पशुवलि, स्वगात्र-रुधिर अथवा मदिरा द्वारा देवी की उपासना करने का निषेध है। वह पशुओं की मूर्ति बना कर वलि दे सकता है। ब्राह्मणों ने नरवलि आदि का विरोध किया था, क्षत्रिय इसे अपनाये हुए थे।

पूर्वांचल की अनेक आदिम-जातियों की वलिदान एवं रुधिर-दान प्रथाओं का उल्लेख प्रथम अध्याय में हो चुका है। जैमिनी-अश्वमेध में कर्ण ने मांस काट कर इन्द्र को प्रदान किया था। वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड में रावण अपने दसों सिर काट कर शिव को अर्पित करता है। कालिका-पुराण (८३-६२) में ललितकान्ता देवी को स्वगात्र-रुधिर अर्पित करने का विधान है। वंगाल में यह प्रथा आज भी किसी न किसी रूप में जीवित बतायी जाती है। असम के हयग्रीव-माधव नामक देवता की पूजा बौद्ध-लोग दीपवर्तिका के साथ उंगुली जला कर करते हैं।

कालिका-पुराण आदि संस्कृत ग्रन्थों में मांस, मदिरा आदि का सेवन, रक्तमय उपासना, तथा नारी के मुक्तभोग आदि के वर्णन से प्रतीत होता है कि ब्राह्मण शास्त्र-लेखकों को कामरूप की परिस्थितियों से समझौता करना पड़ा था। उन्हें लिखने के लिए वाध्य होना पड़ा कि जिस पीठ में जो आचार प्रचलित है, वही वैध है—यस्मिन् पीठे य आचारः सः आचारो विधिस्मृतः। यो० त० २-६-१६। किन्तु उन्हें आर्य पद्धतियों के प्रसार का ध्यान था तथा उन्हीं को वे श्रेष्ठ समझते थे। तभी उन्होंने कालिका पुराण के अन्त में वसिष्ठ के मुख से कहलाया है कि जब तक विष्णु स्वयं इस स्थान पर नहीं आते, तब तक यहाँ आगमों के प्रतिपादक रहेंगे—(८४-२३)। अर्थात् वैष्णव-धर्म के **प्रचलन** से ही यहाँ की अनार्य-उपासनाओं की समाप्ति होगी। हमारे रामायण-लेखकों के प्रयास से कालिकापुराण की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। असमीया-रामायण के लेखक शंकरदेव को शाक्त, ब्राह्मण-सेवी राजा की राजसभा में वैष्णव-धर्म के पक्ष में शास्त्रीय प्रमाण देने के लिए कालिकापुराण के इसी अंश की सहायता लेनी पड़ी थी।

पूर्वांचल की साधनाओं पर बौद्ध-धर्म का भी प्रभाव है, अतएव संक्षेप में इस पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। गौतमबुद्ध के सिद्धान्त बहुत कुछ उपनिषदों के दर्शन से प्रभावित बताये जाते हैं। बुद्ध के जन्म के पूर्व ही उनके नये धर्म की पीठिका तैयार हो चुकी थी। उपनिषदों ने निवृत्तिप्रधान जीवन-यापन का उपदेश

दिया है। केवल कुछ पक्षों को छोड़ कर बुद्ध के उपदेश औपनिषद् आस्तिक-परम्परा से विच्छिन्न नहीं जान पड़ते।[1]

आरम्भ से ही बौद्ध-धर्म वैदिक-धर्म की वर्ण-व्यवस्था एवं आत्मवाद का विरोधी बन कर आया था। आरंभ से ही वर्णाश्रम-व्यवस्था से बहिर्भूत जनों अथवा निम्न-जातियों ने बौद्ध-धर्म को अपनाना प्रारम्भ किया था। वैदिक-धर्म की प्रतिद्वन्द्विता से ही यह धर्म प्रारम्भ होता है और आज तक के समस्त विकासक्रम में वेद-विरोधी स्वर सुने जा सकते हैं। वैदिकधर्म की प्रतिद्वन्द्विता में ही बौद्ध-धर्म को हीनयान से महायान एवं मंत्रयान के रूपों में विकास करना पड़ा। आगे चल कर तान्त्रिक-बिन्दु-साधना का इसमें भी समावेश हुआ। सातवीं शताब्दी में वज्रयान का विकास हुआ। निर्वाण के तीन उपादानों—शून्य, विज्ञान एवं महासुख के संयोग को ही वज्र माना गया, जोकि दृढ़, सार, अभेद्य आदि है। शून्य निरात्मा में बोधिचित्त को लीन कर चिर-सुख की बात कही गयी। भिक्षुणियों के प्रवेश से बौद्धधर्म में पहले से ही घुन लग गया था, अब शून्य निरात्मा एवं बोधिचित्त गुह्येन्द्रियों के प्रतीक हुए एवं व्यभिचार का सूत्रपात हुआ।

आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य द्वारा बौद्ध-निर्मूलन से बौद्धाचार्य भाग-भाग कर मगध एवं नालन्दा में एकत्र हुए थे। इनका सम्बन्ध अथवा प्रभाव असम, बंगाल एवं उड़ीसा पर देखा जाता है। इधर गौड़ के शासक पाल-वंशीय राजा बौद्ध थे। पूर्वाञ्चल में बौद्धधर्म तांत्रिक एवं किरातीय आदि प्रभावों से समन्वित हो कर अनेक विवर्त्तनों को प्राप्त हुआ—हीनयान, महायान वज्रयान, सहजयान, कालचक्रयान, बौद्ध-तंत्र आदि। अनेक देव-देवियों की उपासना बौद्ध-तंत्रों में गृहीत हुई। बहुत से ऐसे उपास्यों का भी आविर्भाव हुआ जोकि शाक्त एवं बौद्ध दोनों में ही देखे जाते हैं। संभव है कि शाक्त-धर्म की प्रतिद्वन्द्विता में बौद्धधर्म ने भी शैव एवं शाक्त तंत्रों में प्रचलित देवी-देवताओं को अपना लिया हो।

अनेक उपासना-पद्धतियों के पारस्परिक-सम्मिलन से अनेक जटिल-उपासनाएँ प्रचलित हो गयी थीं। एक ओर सहजयानी सिद्धों के परम्परा-मुक्त, खण्डनात्मक, सहज जीवन-यापन के उपदेश प्रचारित हुए, जिनका कुछ-कुछ रूप हमें कबीर एवं पूर्वाचल के बाउल-सम्प्रदाय में देखने को मिलता है, तो दूसरी ओर सहजिया-वैष्णव धारा प्रवाहित हुई जिसके अन्तर्गत जयदेव, चण्डीदास आदि आते हैं।

बौद्धधर्म और शैवधर्म के श्रेष्ठ-उपकरणों के मिलन से नाथपंथ का जन्म हुआ था। ये ब्राह्मण धर्म की वर्णव्यवस्था नहीं मानते थे। इनकी भी साधना गुह्य थी, किन्तु ये ऊर्ध्वरेता हो कर षट्-चक्र-भेदन का उपदेश देते थे, ये निरीश्वरवादी न हो कर शैव थे। किसी समय बंगाल में गोरक्षा-विजय एवं रानी मयनामती से सम्बन्धित

१. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय—तान्त्रिक बौद्धसाधना और साहित्य, पृष्ठ १२।

कहानियों का प्रचार था, जिनमें मत्स्येन्द्रनाथ एवं हाड़िपा आदि सिद्धों का नाम आया है, जिससे पता चलता है कि नाथपंथ सहजयान का ही विवर्त्तन था। तांत्रिक ब्राह्मण-धर्म के प्रसार के समय नाथपंथ टिक न सका। यह केवल नी-च जातियों में ही सीमित रह गया, जिन्हें हम आज जुगी (युगी) कहते हैं तथा जिनका व्यवसाय कपड़ा बुनना है।

किरातों आदि द्वारा बौद्धधर्म के ग्रहण करने से कैसी विकट साधनाएँ चल पड़ी थीं, इसकी झलक डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के चारुचन्द्र-लेख नामक युग के एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास में मिल जाती है।

अनेक प्रभाव-समन्वित बौद्ध-साधनाओं के स्वर हमारे पूर्वांचलीय-रामायण-लेखकों के रचनाकाल तक किसी-न-किसी रूप में सुनायी पड़ जाते हैं।

एक परवर्त्ती कवि राम सरस्वती ने अपने एक ग्रंथ में कलि के ब्राह्मण का वर्णन करते हुए लिखा है—बौद्ध-शास्त्र तर्क करेंगे और हरिभक्तों को दुःख देंगे। अन्याय और असत्य द्वारा ये जीविका प्राप्त करेंगे। वे कहीं-कहीं वैष्णवों का वेश धारण कर घूमेंगे, ब्राह्मणवर्ग कुछ पवित्र रहेगा, किन्तु धन पा कर ये लोग भी अधर्म में रत हो जाएँगे। ब्राह्मण लोग बौद्ध-शास्त्रों का प्रचार करेंगे और टोटका कर जीविका प्राप्त करेंगे।

सन्त शंकरदेव अनार्य एवं अब्राह्मण्य साधनाओं के घोर विरोधी थे, किन्तु उनके महापुरुषीया धर्म में भी बौद्धों के त्रिरत्न के समान चार-शरणों का वर्णन है।[1] सहजिया भक्ति आज भी बंगाल में तो प्रचलित है ही असम में भी रातिखोवा-सम्प्रदाय के रूप में यह जीवित है।

बँगला-रामायण-लेखक के पूर्व तक नारी-पूजक बौद्धतांत्रिकों का पूर्ववंग में विशेष प्रचार था। ये योगिनी, वज्र-योगिनी आदि उपाधि धारण कर घूमते थे। चण्डी-दास ने अपने पदों में इनका उल्लेख किया है, इनको किशोरी-भाजक कहा जाता था।[2] बंगाल का बाउल-सम्प्रदाय तीन प्रभावों से युक्त जान पड़ता है। पूर्ववंग के बाउल उदार सूफी साधक हैं, उत्तर के बाउलों पर बौद्धतंत्रों का प्रभाव है, वे आज भी कबीर जैसे निर्गुणियों की वाणी बोलते हैं और पश्चिम बंगाल के बाउल वैष्णव हैं। बंगाल के कई लौकिक देवताओं पर भी बौद्धों का प्रभाव है।

उड़ीसा देश में भी सबसे पहले जैन-बौद्ध धर्मों का विकास हुआ था। यहाँ भी बौद्ध-सिद्धों एवं नाथ-पंथियों का प्रभाव वैष्णव-भक्तिकाल के पूर्वार्द्ध तक देखा जाता है। बलरामदास आदि पंच-सखाओं की वैष्णव-भक्ति बौद्धतांत्रिक सिद्धान्तों से सर्वथा मुक्त नहीं है।

---

१. डिम्बेश्वर नेओग—वैष्णव धर्मर आंतिगुरि, पृष्ठ ६२।
२. रमानाथ त्रिपाठी—कृत्तिवासी बंगला-रामायण और मानस, पृष्ठ ५६।

अन्यत्र वर्णित हो चुका है कि महाभारत-काल से ही आर्यों की विचारधारा से पूर्वांचल परिचित हो चला था। गुप्तों के शासन-काल तक हिन्दू पौराणिक-धर्म का समस्त पूर्वांचल में प्रवेश हो चुका था। बौद्ध-सिद्धों एवं अनार्य-उपासनाओं के प्रभाव के मध्य भी पौराणिक धर्म पनपता रहा। बौद्ध-शासक पालों के मंत्री स्मार्त्त ब्राह्मण होते थे। सेन, वर्मन एवं केशरी वंश के राजाओं के प्रयास से पूर्वी-प्रदेशों में पौराणिक धर्म को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, मध्यकाल में ही पौराणिक-कथा, देवी-देवता, व्रत-कथा आदि के प्रचार से पूर्वांचल भी मध्यदेश की सांस्कृतिक परम्परा से अभिन्न हो गया था। मुसलमानों के आक्रमण से बौद्धधर्म और भी अधिक छिन्न-भिन्न हुआ। अनेक बौद्ध मारे गये, अनेक नेपाल आदि देशों की ओर भाग गये, अनेक भय-वश इस्लाम में दीक्षित हुए और कुछ हिन्दू धर्म में ही समा गये। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की संख्या अधिक है। कहा जाता है कि जहाँ-जहाँ बौद्धों का प्राबल्य था, वहाँ-वहाँ धर्मान्तरण अधिक हुआ। पश्चिम बंगाल में धर्मान्तरण कम हुआ। इस प्रदेश को इस्लाम के प्रभाव से मुक्त रखने में धर्मठाकुर की उपासना एवं चैतन्यदेव की वैष्णव-भक्ति का विशेष योग रहा है।

असम की धर्म-साधनाएँ :

शिवोपासना—(१) प्राचीनता—असम की दन्त-कथाओं और इतिहास से स्पष्ट है कि कबीलों एवं आर्योंकुल जातियों में बहुत पहले से शिवोपासना प्रचलित थी। असम में अभी भी शिव-मन्दिरों का बाहुल्य है। शिव के अनेक रूपों की अनेक मूर्तियाँ असम के विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुई हैं।[1] राजवंशों का सम्बन्ध भी शिवोपासना से रहा है। ७ से १०वीं शताब्दी के ताम्रलेखों में अधिकांश का ही प्रारम्भ शिव की वन्दना से होता है। कोच-विहार का राजा विश्वसिंह (१६वीं शताब्दी) अपने वंश को शिव से सम्बन्धित मानता था। महाभारत-काल के भगदत्त को शिव का सखा बताया गया है। शोणितपुर[2] का राजा बाण भी शैव था। उत्तर-बंगाल के राजा जल्पेश्वर ने कामरूप में शिवपूजा का प्रारम्भ किया था। स्कन्दपुराण में इस राजा से सम्बन्धित एक कथा आती है। जलपाईगुड़ि में इसकी राजधानी थी, वहाँ इस समय भी एक शिव-मन्दिर है।

(२) किरात-प्रभाव एवं आर्यों का विरोध—मांस-मदिरा की उपासना वाला शैवधर्म किरातों से सम्बन्धित था। आर्य-विजेताओं ने इसके प्रति घृणा प्रदर्शित कर

१. डॉ० महेश्वर नेओग—पुरणि असमीया समाज आरु संस्कृति, पृष्ठ १२-१३।
२. वर्त्तमान तेजपुर ही पुराना शोणितपुर है। असमीया में तेज का अर्थ है रक्त।

इस पर प्रतिबन्ध लगाये। साथ ही वन्य-जातियों द्वारा पूजित लिंगोपासना को प्रभाव-हीन करने के लिए उन्होंने एक स्थानीय देवी-उपासना को प्रचलित किया, जिसकी पूजा योनि-रूप से होती थी। श्री वाणीकान्त काकती कामाख्या-नामक इस देवता को खासी जैसी किसी निषाद-वंशीय जाति का बताते हैं। इसका सम्बन्ध महाभारत तथा पुराणों में वर्णित काली, दुर्गा आदि से जोड़ दिया गया था। असम की बोड़ो और मेच जातियाँ आज भी शैव हैं।

(३) सुरा-सुन्दरी और बलि— असम में पूजित शिव के साथ वासना-तुष्टि और नरबलि[1] की प्रथाएँ जुड़ी हुई हैं। इस प्रदेश के सभी कालों के मन्दिरों में देव-नटियों का वर्णन है। तेजपुर के विश्वनाथ मन्दिर से बंगाल का सेनापति सत्राजित तीन नटियों का अपहरण कर ले गया था। आहोम राजा शिवसिंह (१८वीं शताब्दी) की रानी फूलेश्वरी शिवमन्दिर की नटी थीं। मन्दिर-वेश्याएँ अब बस गयी हैं और गृहस्थाश्रम का पालन करती हैं। इन्हें नट कहते हैं। ये कभी-कभी वेश्यावृत्ति भी कर लेती हैं।

कोच-बिहार का राजा स्वयं आर्य-पद्धति का पालन करता हुआ शास्त्रीय-पद्धति से पूजन करता था, किन्तु जन-समाज में अनार्य-प्रभाव का बाहुल्य देख कर उसने आदिमजातियों की प्रथा के अनुसार पूजा करने का अधिकार दे दिया था। ये लोग बलि और सुरा के प्रयोग से उपासना करते थे। शिव-चतुर्दशी के दिन बकरे का गला घोंट कर आज भी मारा जाता है। गृह्य-सूत्र में इस प्रथा का संज्ञापयन नाम से अनुमोदन है।[2]

(४) तांत्रिक-प्रभाव—तांत्रिक (बौद्ध ?—) धर्म की अपराजिता और उग्र-तारा शैवोपासना में भी देखी जाती हैं।

कामाख्या देवी :

१. सती और शिव—गौहाटी से ३ मील दूर कामाख्या का मन्दिर है। गारो और खासी जातियों से बसी पहाड़ी से यह ५० मील दूर है। यहाँ सती की योनि गिरी थी, इसीलिए यह पहाड़ नीला हो गया और इसका नाम नीलाचल हुआ। यह भी कहा जाता है कि नीलाचल स्वयं शिव हैं। वह स्थान सती का समाधिस्थल माना जाता है किन्तु साथ ही शिव एवं पार्वती का प्रेम-स्थल भी। यहाँ प्रेमासक्ता देवी शिव से मिलने आती हैं।

२. मुसलमानों द्वारा मन्दिर-विध्वंस—कामाख्या के मन्दिर में मूर्त्ति नहीं है। मन्दिर के भीतर गुफा है, जहाँ पत्थरों का ढेर है, एक शिला पर योनि का चिह्न

---

१. बलि के लिए घोषित व्यक्ति भोगी कहलाता था, उसकी भोग-सम्बन्धी सभी इच्छाएँ पूरी की जाती थीं, वार्षिक-उत्सव के समय उसकी बलि दी जाती थी।

२. डा० महेश्वर नेओग—पुरणि असमीया समाज आरु संस्कृति, पृष्ठ १८।

अंकित है, जिसे सती के पतित-योनिमंडल का प्रस्तरीभूत-रूप माना जाता है। १६वीं शताब्दी में मुसलमानों ने मन्दिर गिरा दिया था, १६६५ ई० में नर-नारायण सिंह नामक कोच-राजा ने पुनः बनवाया था।

३. कामाख्या का निषाद-जातीय-मूल—विद्वान् लोग कामाख्या शब्द की एक-रूपता आस्ट्रिक-शब्द कमोइ (Kamoi) और शिण्टो-शब्द कमी (Kami) में देख-कर तथा पूजा-पद्धतियों के आधार पर अनुमान करते हैं कि यह उपासना किसी पूर्वजा माता (Ancestral Mother) की रक्षात्मक-शक्ति में विश्वास करने वाली आस्ट्रिक जाति की पूजा होगी।[1] कामाख्या के पूर्व-पुजारी गारो थे और वे सुअर की बलि देते थे।

शबरोत्सव—कालिका-पुराण के अनुसार साधकों को वेश्याओं, नर्त्तकियों आदि के साथ रात्रि-जागरण करना पड़ता था, दसवें दिन स्त्री-पुरुषों के गुप्तांगों का नाम ले-ले कर शृंगार-सांजन नारियों के सम्मुख अश्लील-गीत गाये जाते थे। वे परस्पर चावल, पुष्प, धूल और कीचड़ भी फेंकते थे। विन्ध्य की पहाड़ियों से यह शबरोत्सव लिया गया होगा। दक्षिण-भारत में आज भी देवी से सम्बन्धित अश्लील-गीत और मूर्त्ति के सम्मुख नग्न-स्त्रियों का नृत्य प्रचलित है। शबरोत्सव से भी देवी का निषाद-जातीय मूल सिद्ध किया जाता है।

४. नरक द्वारा शाक्त-पूजा का प्रचार—रामायण और महाभारत में नरकासुर का वर्णन है। दोनों महाग्रन्थों के नरक में भिन्नता है। आगे एक और नरक की कहानी आती है। यह नरक मिथिला के राजा की अवैध सन्तान था।[2] तीसरी शताब्दी में प्राग्ज्योतिष-नगर में बस कर उसने देश का नाम कामरूप रखा। इसी नरक का सम्बन्ध पुराने नरकासुर से जोड़ दिया गया है। नरक ने मांस-मदिरा-सेवी बलिष्ठ किरातों को हरा कर यहां की योनि-देवी को अपनाया था और शाक्त-धर्म का विकास किया था।

५. किरात : वामाचार : नारीतत्त्व— योगिनी-तंत्र में लौकिक-साधना को किरात बता कर मत्स्य-मांस-सेवन, स्त्रियों के साथ मुक्त-मिलन तथा युवा स्त्रियों के साथ यौन-सम्बन्ध का वर्णन है। इन जातियों में बहुपति और बहुपत्नी की प्रथा है तथा विवाह के पूर्व यौन-सम्बन्ध की स्वतंत्रता भी है। इन्हीं के सम्पर्क से वामाचार चला होगा। वामाचार में नारी का संग आवश्यक है। प्रेम-पात्री नारी के सुगमत-पूर्वक न मिलने पर धन दे कर या बलपूर्वक प्राप्त करने का भी विधान है।[3]

शाक्त-लोग नग्न-गोष्ठी का चिन्तन कर अपने को भी नारी मानने का ध्यान

---

१. डा० बी० के० काकती—मदर गॉडेस कामाख्या, पृष्ठ ४०।
२. वही, पृष्ठ २८।
. वही, पृष्ठ ४७।

करते थे। असम[1] में कौल-साधना का भी प्रचार रहा है, उत्तर-कौल तो किसी जीवित सुन्दर स्त्री की प्रत्यक्ष योनि की उपासना करते थे। भैरवी-चक्र का भी यहाँ प्रचुर प्रचार था।

देवियाँ चार प्रकार की मानी गयी हैं, चारों में मातृ-भाव की प्रधानता है—(१) मातृदेवी-कामाख्या, (२) पत्नी-रूपी पार्वती, (३) कुमारी-रूपी त्रिपुर-सुन्दरी और (४) संहार-रूपिणी केंचाइखाती—ताम्रेश्वरी। त्रिपुरबाला पुष्पवाण, पाश और पुष्पधनु धारण करने वाली कुमारी हैं, इनके साथ कुमारी-पूजा एवं शवरोत्सव का सम्बन्ध है। कुमारीपूजा में जाति नहीं होती, वेश्या की पुत्री की भी पूजा की जा सकती है। असम की प्रत्येक स्त्री देवी का अंशावतार मानी गयी है—(कालिकापुराण ६०-४१)। यहाँ घर-घर में देविया बतायी गयीं—'अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे' (यो० तं० २।६।१५०)।

६. **नर-रक्त-पिपासु क्रूर देवियों से मिलन**— असम में किरातों की अन्य क्रूर देवियों से कामाख्या देवी की एकरूपता स्थापित की गयी है।

असम के उ० पू० सीमान्त पर आर्य-अनार्य का सम्मिश्रण अधिक हुआ है। यहाँ आहोम, बराही, चुतीया, मिरी, मिस्मी, खामटि, चिंग्फो एवं नगा जातियाँ रहती हैं। इस प्रदेश को सौमारपीठ कहा गया है, यहाँ दिक्करवासिनी देवी का अधिकार है। कालिकापुराण[1] में इस देवी के दो रूप बताये गये हैं—(१) **तीक्ष्ण कान्ता** और (२) **ललित कान्ता**। नामों के अनुसार दोनों के गुण हैं। तीक्ष्णकान्ता देवी कृष्णा, लम्बोदरी एवं एक जटायुक्ता हैं। इन्हें उग्रतारा भी कहते हैं। इनकी अनुचरियाँ है—भगा, सुभगा, चामुण्डा, कराला, भीषणा और विकटा। इनकी पूजा कामाख्या के समान ही की जानी चाहिए। इन्हें तेज शराब और नरबलि बहुत पसन्द है। लड्डू, नारियल, गन्ना और मांस भी इनके प्रिय आहार हैं। ललित कान्ता देवी शुभ्रानना और नवयौवन सम्पन्ना हैं, दूर्वा और अक्षत इन्हें प्रिय हैं, किन्तु भक्त लोग इन्हें स्वशरीर के रक्त से भी पूजते हैं।[2]

ताम्रेश्वरी—तीक्ष्णकान्ता, उग्रतारा अथवा एक-जटा देवी ही ताम्रेश्वरी देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई। १३वीं शताब्दी में चुतीया नामक किरात (Mongol) जाति सदिया में रहती थी। इन लोगों ने देवी के लिए ताम्र-मन्दिर बनवाया था, किसी समय इसका ऐसा प्रचार हुआ कि यह उत्तरी-पूर्वी सीमा की सभी पहाड़ी जातियों का पूजा-केन्द्र हो गया था। यहाँ वार्षिक नरबलि दी जाती थी। इसीलिए इसे केंचाइखाती (कच्चा मांस खाने वाली) कहते थे। १८वीं शताब्दी में नरबलि की प्रथा बन्द हुई जबकि बर्मी आक्रमण के समय चुतीया पुजारी मन्दिर छोड़ कर भाग गये थे। यह मन्दिर अब नष्ट-भ्रष्ट हो कर घोर जंगल में खो गया है।

---

१. कालिकापुराण, पृ० ८३-५१।

२. महेश्वर नेओग—पुरणि अस० समाज आरु संस्कृति, पृष्ठ ६८।

मिलन-उन्नयन—तारेश्वरी एकजटा अथवा उग्रतारा बौद्ध-देवी बतायी गयी हैं, जिन्हें नागार्जुन (७वीं शताब्दी) भोट देश से लाये थे। कालान्तर में यह देवी दुर्गा अथवा काली से अभिन्न मानी जा कर हिन्दू-तंत्रों में स्वीकृत हुई। योगिनीतंत्र में लिखा है तारा और काली एक हैं। कामाख्या भी काली हैं, इन्हें अलग समझने वाला नरक जाएगा।[1] इससे प्रकट है कि स्थानीय-देवताओं को किस प्रकार आर्यीकृत करने की चेष्टा की गयी। महापुराण में देवी के अंग-पतन का वर्णन नहीं है, यह विवरण तंत्रों की देन है। कालिका, देवी-भागवत एवं बृहद्धर्म उपपुराणों में देवी के अंग-पतन का वर्णन हुआ है, योगिनीतंत्र में भी यह वर्णन नहीं है। कामाख्या का महत्त्व-विस्तार होने पर कालिकापुराण ने यहाँ सती का योनि-पतन दिखा कर इसे आर्य-प्रभावित केन्द्रों के अन्तर्गत ले लिया। तंत्रचूड़ामणि आदि ग्रंथों में सती के विभिन्न अंगों के अनुसार समस्त भारत में ५१ या किसी-किसी में इनसे अधिक पीठ बताये गये हैं। सती के अंग-पतन की कल्पना द्वारा समस्त पीठों में ऐक्य स्थापित किया गया।

स्थानीय देव-देवियों को स्वीकार कर उनकी पूजा-पद्धतियों के प्रति भी सहिष्णुता का व्यवहार किया गया।

अम्बुवाची—कामाख्या से सम्बन्धित एक व्रत अम्बुवाची का उल्लेख करना असमीचीन न होगा, इस व्रत का पालन बंगाल में भी होता है। देवी भागवत के अनुसार देवी वर्ष में एक बार आषाढ़ में ऋतुमती होती है, तब तीन दिन कामाख्या के कपाट बन्द रहते हैं, चतुर्थ दिन खुलते हैं। इस दिन मेला लगता है। इस अवसर पर पृथ्वी को कष्ट नहीं दिया जाता एवं व्रत किया जाता है।[2]

वैष्णव धर्म—असम-प्रदेश में बहुत पहले से ही वैष्णव पाञ्चरात्र-तन्त्रों का प्रचार हो चुका था। मणिकूट एवं दिक्करवासिनी पीठ में हयग्रीव एवं वासुदेव की पूजा होती थी। असम के प्राचीन राजा शैव होने पर भी विष्णु के वाराह-रूप की उपासना करते थे। बाणभट्ट के हर्ष-चरित में भास्कर वर्मा को वैष्णव-वंश का बताया गया है। असम में सातवीं-आठवीं शताब्दी की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। कालिकापुराण में विष्णु की तांत्रिक-पूजा करने का वर्णन है। इसी पुराण में विष्णु के मत्स्य, भैरव-रूपी माधव, वाराह, लिंग और शिला-रूपों के पूजे जाने का उल्लेख है।[3]

वासुदेव—दिक्करवासिनी पीठ में ही वासुदेव की पूजा आज तक चली आ रही है। इनके चतुर्भुज रूप के साथ लक्ष्मी एवं सरस्वती का भी ध्यान करना होता है। सरस्वती के ध्यान के कारण इस उपासना पर तांत्रिक-प्रभाव देखा जाता है। इनकी तुलसी एवं बिल्व-पत्र से पूजा की जाती है। इनके साथ शंभु, गौरी, ब्रह्मा, राम एवं कृष्ण की पूजा भी की जानी चाहिए। स्तुति में पुरुष-सूक्त का भी प्रयोग

---

१. योगिनी तंत्र—१-२-८ एवं १-१५-२ ।
२. श्री हेम बरुआ—दि फेयर्स एवं फेस्टिवल्स आफ आसाम, पृष्ठ २६-२७ ।
३. डा० महेश्वर नेओग—पुरणि असमीया समाज आरु संस्कृति, पृष्ठ ३५ ।

किया जाता है। निश्चय ही वासुदेव की उपासना पांचरात्र की प्राचीन-पद्धति से होती आ रही है।

असम का एक विचित्र देवता है हयग्रीव। इनके मन्दिर में वैष्णव एवं बौद्ध भोटिया दोनों आते हैं। पौराणिक साहित्य में हयग्रीव के सम्बन्ध में विभिन्न कथाएँ हैं। हरिवंश में हयग्रीव नरक का एक सेनापति है। भागवत में मत्स्यावतार धारण कर विष्णु ने हयग्रीवासुर को मार कर वेदादि का उद्धार किया। मत्स्य-पुराण में विष्णु ने हयग्रीव अवतार धारण कर वेदादि का पुनर्विभाग किया। मार्कण्डेय, वामन एवं स्कन्द आदि पुराणों के वर्णनों में भी पारस्परिक अन्तर है। वैष्णव पांचरात्र-संहिताओं में एक 'हयग्रीव-संहिता' भी है।

भोटिया लोग हयग्रीव को महामुनि कहते हैं और मत्स्यादि से पूजन करते हैं। वे दीप-वर्तिका के साथ अपनी उंगली भी जला कर उपासना करते हैं। हयग्रीव की स्थिति जगन्नाथ स्वामी जैसी है। जगन्नाथ स्वामी के जन्म की कथा के समान हयग्रीव के जन्म की कहानी भी योगिनी-तन्त्र में वर्णित है। जगन्नाथ शबर एवं आर्य संस्कृति के समन्वय हैं तो हयग्रीव भी किरात एवं आर्य संस्कृति के।

कालिकापुराण में लिखा है, 'सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मी सर्वोत्तमा तथा' (६०-४१)। कालिकापुराण यह भी अनुभव करता है कि जब तक यहाँ विष्णु नहीं आते तब तक वामाचार दूर नहीं होगा।

यहाँ की विकृत साधनाओं को उखाड़ फेंकने के लिए वैष्णव आन्दोलन 'परि-शोधक-झंझावात'[1] के समान आया था।

वैष्णव-भक्ति का परिचय इस प्रदेश से अत्यन्त प्राचीन है, इसका पूर्ण विकास शंकरदेव के प्रयत्नों से हुआ। अब वैष्णवभक्ति का प्रभाव किराती-प्रभाव को पछाड़ता हुआ अग्रसर होता गया। समस्त पूर्वांचल में ही वैष्णवभक्ति (विशेषतः कृष्ण-भक्ति) जोर पकड़ती गयी।

बंगाल की धर्म-साधनाएँ :

पूर्वांचल का परिचय एवं वहाँ की धर्म-साधनाओं का वर्णन प्रस्तुत करते समय बंगाल पर बौद्ध-जैन उपासनाओं का प्रभाव संक्षेप में दिखाया जा चुका है। बौद्ध-सिद्धों एवं नाथपंथियों के प्रभाव के अवशेष आज भी बंगाल में विद्यमान हैं। यहाँ बंगाल की प्रमुख ब्राह्मण्य-साधनाओं एवं लौकिक उपासनाओं का स्वल्प परिचय दिया जा रहा है।

शिवोपासना—बंगाल की ब्राह्मण्यसाधनाओं में सर्वप्रथम शैवोपासना का

---

1. Vaishnavite religious movement came like a cleansing storm—Hem Barua—The Red River and the Blue Hill, पृ० ६३।

प्रचार हुआ। सभी ब्राह्मण अथवा अब्राह्मण धर्मों ने शिव को महत्ता प्रदान की है। धर्म-मंगल, मनसामंगल, गोरक्ष-विजय आदि अनेक साम्प्रदायिक रचनाओं में उनका आदर के साथ वर्णन है।

बंगाल में शिवायन-धारा के शिव-पार्वती का भी रूप मिलता है। वे साधारण कृषक पति-पत्नी के रूप में चित्रित हुए हैं। अनेक छड़ा (लोरी) गीतों में उन्हें धान की खेती करते, जोंके मारते, मच्छर नष्ट करते तथा अन्य कई कृषि-सम्बन्धी अनुष्ठान करते हुए दिखाया गया है। भँगेड़ी, निखट्टू और कामुक होने के कारण पार्वती से इनकी झड़प होती रहती है। शंकर के रूप में बंगालियों ने अपने ही कृषि-जीवन को प्रतिबिम्बित किया है। शंकर न तो 'धर्म-ठाकुर' के समान अपने भक्तों की रक्षा करते और न 'मनसा' के समान विरोधियों को दण्डित करते थे, अतएव बंगाली जनता न उनसे भय करती थी और न कुछ प्राप्त करने की आशा रखती थी। 'मनसा' ने अपनी पूजा करवाने के लिए शैवों को बड़े कठोर एवं अमानुषिक-दण्ड दिये, तथापि वीर शिवोपासक अन्त तक आन पर डटे रहे। शंकर उनकी ओर से एकदम निश्चेष्ट रहे। फलतः लोक-रुचि मनसा आदि की ओर उन्मुख होती गयी। मुसलमानों के प्रबल आघात के समय शंकर की यह निश्चेष्टता कार्योपयोगी सिद्ध न हुई। शरणागत-वत्सल भगवान् की शरण इस समय श्रेय थी, अतएव शाक्त एवं वैष्णव-धर्म विशेषरूप से पुष्ट हुए।

अनार्यतत्त्व-चड़क—श्मशान-चारी शिव का रूप यहाँ भी मिल जाता है। बंगाल में शिव की चड़क-पूजा के समय शरीर को कष्ट देने वाले अनेक अनुष्ठान किये जाते हैं, जो प्राचीन नरबलि के प्रतीक हैं। साधक-लोग अंगारों पर चलते, काँटे-छुरी के ऊपर छलाँग लगाते, जीभ काट कर चढ़ाते और शरीर में बाण चुभाते हैं। जल-भरे पात्र में शिवलिंग की पूजा होती है, इसे 'बूढ़ो शिव' कहा जाता है। पूजा श्मशान में अथवा गाँव के बाहर होती है और पुरोहित पतित ब्राह्मण होते हैं। हरिवंश (विष्णुपर्व, अ० १८) में उल्लेख है कि शोणितपुर के राजा बाण का कृष्ण से युद्ध हुआ, वे जब उसका वध करने लगे तो शिव ने बचाया। वह क्षतविक्षत अवस्था में ही नृत्य कर स्तुति करने लगा। शिव ने उसे इस स्थिति में स्तुति करने के लिए प्रसन्न हो कर वर दिया। बृहद्धर्म-पुराण में भी इस प्रकार की पूजा का वर्णन है। इससे ही चड़क-पूजा का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, अर्थात् जो साधक अपने अंगों को क्षतविक्षत कर स्तुति करता है उससे शिव प्रसन्न होते हैं। कुछ लोग चड़क शब्द की व्युत्पत्ति चक्र शब्द से मानते हैं।[1] दो बाँसों को धनात्मक स्थिति में गाड़ कर चक्र बनाया जाता है और इस पर स्थित हो कर साधक कष्टमय साधना करता है। अंग्रेज सरकार ने इस प्रकार की उपासना पर रोक लगाने की चेष्टा की थी।

---

१. एन० बी० राय—ए नोट ऑन दि चरक-पूजा इन बेंगाल—दि जरनल ऑफ़ दि विश्वभारती स्टडी सर्किल—११, (१९५९)।

हिन्दी भाषी क्षेत्र में नवरात्रि के अवसर पर जवारे (यवांकुर) निकाले जाते हैं, उस समय भी लोग अपने को अनेक प्रकार से कष्ट देते हैं—जैसे कि काँटे के कोड़े से अपने को पीट कर लहूलुहान होना, नुकीले लम्बे त्रिशूल से अपने कपोलों को बेध कर नाचना आदि।

शक्ति—कामाख्या एवं किराती संस्कृति के निकट होने के कारण बंगाल की शक्तिपूजा पर भी असम जैसी अनार्य-पद्धतियों का प्रभाव पड़ा था। तांत्रिक-शाक्त पंच-मकारों का सेवन करते थे, चक्रपूजा होती थी, कौलों के नारी की प्रत्यक्ष-योनि के पूजन आदि जैसे अनुष्ठान भी होते थे। नरबलि की भी प्रथा थी। नरोत्तम-विलास के सातवें अध्याय में वर्णन है कि तांत्रिक लोग नरबलि दे कर काली के सामने नंगी तलवारें ले कर तथा भयंकर रूप से उन्मत्त हो कर नाचते थे। उस समय मन्दिर के पास से निकलने वाले की कुशल न होती थी। ब्राह्मणों तक को पकड़ कर बलिदान कर दिया जाता था।[1]

शक्ति के कई ग्राम्य-रूप बंगाल में प्रचलित थे— शीतला, दुर्गा, अनेक प्रकार की चण्डी, नरमुण्डमालिनी एवं श्मशान-चारी काली पर्णशवरी। वज्रकुण्डल-धारिणी, व्याघ्र-चर्म एवं वृक्षपत्र परिहिता पर्णशवरी का रूप शबर-कन्या जैसा लगता है। अतएव यह देवी शबरों से सम्बन्ध रखती है। उड़ीसा में भी इसका प्रचार है।

बंगाल पर ब्राह्मण्य-संस्कृति का प्रबल प्रभाव पड़ा था। कान्यकुब्ज से आकर बसे हुए ब्राह्मणों के प्रयास से वहाँ सृष्टि की आदि देवी माता दुर्गा का प्रभाव अधिक पड़ा और शाक्त बंगाल पुराणानुमोदित दुर्गा के इसी रूप को आर्य-पद्धति के अनुसार उपासना करता आ रहा है।

वैष्णव-धर्म—गुप्तों के द्वारा बंगाल में वैष्णव-धर्म का विस्तार हुआ था। बाँकुड़ा जिला की शुशनिया पहाड़ की एक गुहा में चौथी शताब्दी का विष्णुचक्र उत्कीर्ण है। पहाड़पुर मन्दिर के प्रस्तर-फलकों पर कृष्ण की अनेक लीलाओं का चित्रण है। बंगाल में पाँचवीं-शताब्दी के ऐसे अनेक मन्दिरों का पता चला है, जिनमें विष्णु-वाचक स्वामी नामधारी देवों की उपासना होती थी, जैसे गोविन्दस्वामी कोकामुखस्वामी आदि।

बौद्ध पाल-राजाओं के समय (८-१२ वीं शती) उनके वैदिक ब्राह्मण-मंत्रियों द्वारा पौराणिक वैष्णव-धर्म का प्रचार होता रहा। सेन-राजा दक्षिण से आये थे। वर्मनवंश के राजा सेनों के समसामयिक थे और दोनों ही वंश वैष्णव थे। इनके काल में वाराह और नृसिंह की पूजा होती थी। सेन-वंशीय राजा लक्ष्मण सेन के राजाश्रय में जयदेव ने गीत-गोविन्द की रचना की थी।

सहजिया-प्रभाव—बँगला-रामायण लेखक के पूर्व तक वैष्णव-धर्म बहुत कुछ सहजिया कृष्णभक्ति के रूप में था। गीतगोविन्दकार जयदेव और उन्हीं के पद-

---

१. दीनेश चन्द्र सेन—चैतन्य एंड हिज एज, पृष्ठ ११।

चिह्नों पर चलने वाले चण्डीदास सहजिया वैष्णव-धर्म के अन्तर्गत आते हैं। दोनों के काव्यों में राधातत्त्व को प्रधानता मिली। चण्डीदास जैसे साधक भी रामा रजकी को मुद्रा बना कर साधना करते थे, वे उसे वेदमाता गायत्री तक कहते थे। पुराणानुमोदित कृष्णभक्ति का प्रबल प्रचार बँगला-रामायण-लेखक कृत्तिवास के पश्चात् चैतन्य महाप्रभु द्वारा हुआ। जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति का परकीयातत्त्व उन्हें भी मान्य था, फिर भी उनकी कृष्णभक्ति का बहुत-कुछ रूप श्रीमद्भागवत पर आश्रित था।

लौकिक उपासनाएँ :

किसी समय सारे बंगाल में अरण्य-देवी मंगलचण्डी, व्याघ्रदेवता-दक्षिणराय, कुंभीरदेवता-कालूराय, बिड़ालदेवता-षष्ठी एवं हंसदेवता-सुवचनी की पूजा होती थी। बंगलारामायण-लेखक के समय भी ग्रामदेवताओं के कई नाम और कई रूप थे। भिन्न-भिन्न स्थानों पर उन्हें काली, भैरवी, वनदुर्गा, चण्डी आदि कहा जाता था। आर्य-संस्कृति उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से न देखती थी। बंगाल की व्रत-कथाओं में भूषा, भादाली, घाताकाता आदि अनेक देवताओं का वर्णन है, ये सभी ग्राम-देवता थे और जनता उनकी पूजा किया करती थी। तेरहवीं शताब्दी के मुसलमानी आक्रमण एवं अत्याचारों से पीड़ित हो कर उच्च-श्रेणी के हिन्दुओं को डोम, चंडाल आदि निम्न-श्रेणी के हिन्दुओं से सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा।[1] उनके अनेक देवी-देवता कुछ-कुछ रूपान्तरित हो कर गृहीत हुए। उनमें से कुछ ने साहित्य में भी स्थान प्राप्त किया।

दो विशेष उपासनाएँ - (१) मनसा (सर्पदेवी)—बंगाली साहित्य और समाज में मनसा को समादृत स्थान मिला है। समस्त पृथ्वी पर नागों की पूजा होती रही है, मनसा भी सर्प देवी है। उनकी प्राचीन मूर्तियों के साथ साँप भी है। अब उनकी पूजा घट अथवा पट के रूप में होती है। पाल-शासन के पूर्व ही ये ब्राह्मणधर्म में स्वीकृत हो गयी थी। ब्राह्मणों ने उन्हें समुन्नत करने की चेष्टा की है तथा उन्हें हंसवाहिनी एवं पुस्तक-अमृतकुंभ-धारिणी सरस्वती का रूप दिया है। उनका लौकिक रूप सुन्दर नहीं है, वे एक आँख से कानी एवं कुरूप है। उन्हें बलात् पूजा ग्रहण करने की बड़ी रुचि है। चांद सौदागर की कहानी से उनके ये गुण प्रकट हो जाते हैं।[2] मनसा के साथ कई देवियों का एकीकरण हुआ है। बौद्धों की तरिता उनके साथ मिल गयी है।[3] एक और सर्पदेवी जांगुली के साथ भी उनका मिलन हुआ है। जांगुली-देवी बौद्धों की वज्रेश्वरी तारा तथा विषदेवी भी मानी गयी है। ये शुक्लवर्णा,

१. श्री जाह्नवी कुमार चक्रवर्ती—शाक्त पदावली ओ' शक्तिसाधना, पृष्ठ ३०।

२. रमानाथ त्रिपाठी—कृत्ति० बं० रामायण और मानस, पृष्ठ १५।

३. श्री जे० सी० घोष—बंगाली लिटरेचर, पृ० २२।

चतुर्भुजा, जटामुकुटिनी, शुक्लोत्तरीया, सितरत्नालंकारवती और शुक्ल सर्पभूषिता हैं। जांगुली देवी अथर्ववेद की किरात-कन्या की प्रतिभू कही जा सकती है।

असम और उड़ीसा में भी मनसा की पूजा का प्रचलन है। असम की खासी, मिस्मी, राभा आदि जातियाँ सर्पपूजक हैं। १०-११ वीं शताब्दी की मनसा मूर्त्तियाँ नवगाँव और गौहाटी में पायी गयी हैं।

बंगाल में मनसा देवी पर कई मंगलकाव्य लिखे गये हैं।

(२) **धर्मठाकुर**—ये राढ़-प्रदेश के आंचलिक-देवता हैं। असम एवं किसी-किसी रूप में उड़ीसा में भी इनकी पूजा का प्रचार है। १२वीं शताब्दी से पूर्व ही इनकी पूजा का प्रचार रहा होगा। मध्यकाल में साहित्यिक-दृष्टि से इनका महत्त्व बढ़ गया था। इनके नाम पर अनेक पुराण, मंगल एवं छड़ागान लिखे गये। बंगाल के अनेक लौकिक देवता धर्मठाकुर से सम्बन्धित हैं। ये आदि देव निरंजन हैं, मनसा इनकी पुत्री बना दी गयी और चण्डी इनकी पत्नी। कृषि एवं शिल्प से सम्बन्धित सभी कार्यों में भी इनकी पूजा मान्य थी किन्तु आज तक यह निर्णीत न हो सका कि इनका मूलरूप क्या था।

शून्य-निरंजन—इन्हें शून्य-निरंजन कहे जाने के कारण हरिप्रसाद शास्त्री और दीनेशचन्द्र सेन इन्हें बौद्धों के शून्यवाद से सम्बन्धित मानते हैं, किन्तु डा० महेश्वर नेओग शून्य का अर्थ बाहर-भीतर से शुक्ल बता कर इस मत का खण्डन करते हैं।

अनार्य व्युत्पत्ति—कूर्म एवं पादुका इनके चिह्न होने के कारण तथा उपासना का प्रचार डोम, कपाली एवं हाड़ी जाति में अधिक होने से नीहाररंजन राय आदि इन्हें आदिवासी अनार्यदेवता मानते हैं। इनके थान निर्जन पेड़ के नीचे और कभी-कभी फूस की झोपड़ी एवं मन्दिर में होते हैं। पुजारी डोम-जातीय होते हैं जो ताँबे के यज्ञोपवीत धारण करते हैं तथा पंडित अथवा देवांशी कहलाते हैं। अभी कुछ समय पूर्व तक मुर्शिदाबाद तथा वर्धमान के एकाध अंचलों में मुर्दे के सड़े-गले नरमुंड को ले कर धर्म के गाजन (उत्सव) के समय वीभत्स नृत्य का प्रचार रहा है।[1] श्री सुनीतिकुमार चटर्जी धर्मठाकुर के 'धर्म' शब्द को संस्कृत का न मान कर इसकी व्युत्पत्ति आस्ट्रोएशियाटिक भाषा के दुल या दुली से मानते हैं, जिसका अर्थ कछुवा होता है। इस मत के विद्वानों का अनुमान है कि ये आदिवासियों के ग्राम-देवता थे किन्तु पालों के समय बौद्धों के प्रभाव बढ़ने पर ये बौद्ध-धर्म से रँग गये।

सूर्य देवता—डा० सुकुमार सेन धर्म देवता की जड़ वैदिक-साहित्य में खोजते हैं। धर्मपुराण एवं ऋग्वेद में सृष्टि-तत्त्व की कहानी एक जैसी है। धर्मदेवता एवं

---

१. विनय घोष—पश्चिम बंगेर संस्कृति, पृ० ५०।

वैदिक सूर्यदेवता दोनों का प्रतीक कर्म है—(स यत् कूर्मो नाम—शतपथ ब्रा०) अतएव धर्मठाकुर प्रधानतः सूर्यदेवता हैं। उनके साथ अन्य देवताओं का मिलन हो गया है।

बौद्ध एवं ब्राह्मण देवताओं से एकीकरण ये इतने अधिक शक्ति-सम्पन्न हो गये थे कि बौद्धों ने इन्हें बौद्ध माना और ब्राह्मणों ने सूर्य, विष्णु, शिव आदि। इन्हें गौड़ देश में कूर्म एवं कल्कि का अवतार मान कर पूजा जाता है।

मुसलमान एवं अंग्रेज शक्ति के प्रतीक—शून्यवादियों ने इन्हें मुसलमानों के आने पर काली टोपी और तीरकमान धारण करने वाला यवन देवता माना, जोकि ब्राह्मणों को दण्ड देने के लिए आया था। यही नहीं अंग्रेजों के आने पर ये सौदागर वेशधारी अंग्रेजी शक्ति के प्रतीक हो गये।

असम में धर्मठाकुर—धर्मठाकुर का उत्समूल कुछ हो किन्तु इनकी पूजा में अनार्य-तत्त्वों की उपस्थिति अवश्य थी।

असम में प्रचलित पूजनविधि से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है। पश्चिम असम में मनसा-पूजा के साथ-ही-साथ धर्मपूजा होती है। मनसा-देवी की वेदी के पास ही पूर्णघट रखा जाता है, जिसे धर्मघट कहते हैं। यह धर्मठाकुर का प्रतीक है। कभी-कभी देओधा[1] घट के ऊपर नृत्य करता है। उसके हाथ में दो श्वेत कबूतर होते हैं। एक को वह उड़ा देता है और दूसरे का कण्ठ चीर कर लोहू पीता है। मंगलदै मुहकमा में चैत की संक्रान्ति के दिन देउल के नाम से यह अनुष्ठान होता है।

धर्मघट (हड़ताल) शब्द का इतिहास—बंगाल में हड़ताल को धर्मघट कहा जाता है। धर्मठाकुर के एक पूजा-अनुष्ठान में लोग घट की स्थापना कर संकल्प करते थे, इसी से प्रेरणा ले कर बंगालियों ने हड़ताल के लिए धर्मघट शब्द का प्रयोग किया।

उत्कल की धर्म-साधनाएँ :

अब्राह्मण्य साधनाएँ : (जैन बौद्ध)—भारत में अवैदिक-तत्त्वों की खोज के आग्रहीजनों का कथन है कि प्रागैतिहासिक-काल के उड़ीसा में जैन धर्म का प्रचलन था। ऋग्वेदकालीन आर्यों के विस्तार के कुछ पूर्व से ही कुछ आर्य-जन पूर्व की ओर आ बसे थे, जो आगे चल कर व्रात्यों में परिगणित हुए। जैनों का सम्बन्ध जगन्नाथ की आराधना से भी स्थापित किया जाता है।[2]

भुवनेश्वर से कुछ दूर उसके आस-पास चार पहाड़ियाँ हैं, जिनमें अनेक गुफाएँ हैं। लोगों का विश्वास है कि सेतु-निर्माण के लिए हनुमान जो पर्वत लाये थे, उनमें इसे यहीं फेंक दिया गया था। यहाँ जैनों द्वारा पूजित पारसनाथ का मन्दिर है, जिसमें

---

१. देओधा—वह व्यक्ति जिसके सिर पर देवता आते हैं।

२. डॉ० नीलकण्ठ दास—सभापतीय भाषण, पृ० ९-१३।

नग्न-मूर्तियाँ हैं ।[1] यहाँ का राजा खारवेल (प्रथम शताब्दी ई० पू०) जैन था, जिसने अर्हतों के रहने के लिए हाथीं-गुम्फा आदि अनेक गुफाएँ बनवायी थीं ।

बौद्ध—उड़ीसा की गुफाओं को कम से कम २०० ई० पू० का बताया जाता है। यहाँ की गुफाएँ १० शताब्दियों (५०० ई० पू०—५०० ई०) के मानव-वास को प्रकट करती हैं। इन गुफाओं में बौद्ध धर्म तीन विकास-क्रमों को प्राप्त हुआ था। सीलोन की एक पुस्तक में बुद्ध के दाँत की एक चमत्कारिक कथा है। यह दाँत कलिंग भेजा गया था। कथा सत्य प्रतीत नहीं होती, किन्तु यह अवश्य प्रकट होता है कि बौद्ध धर्म बुद्ध की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् निश्चय ही उड़ीसा पहुँच गया था। इसका व्यवस्थित प्रचार अशोक की प्रसिद्ध कलिंग-विजय (२५६-५५ ई० पू०) के पश्चात् से हुआ होगा।

सहजयानी—यहाँ भी महायान, वज्रयान, सहजयान और शून्यवाद आदि का प्रचार रहा था। प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में कुछ का सम्बन्ध उड़ीसा से भी था। श्री नीलकण्ठ दास का तो यहाँ तक कहना है कि सहजयान का प्रचार उड़ीसा से ही हुआ।

तांत्रिक-संस्पर्श-युक्त नाथधर्म—८-९ वीं शताब्दी में बौद्धधर्म पर तांत्रिक प्रभाव पड़े। कटक जिला में रत्नगिरि और ललितगिरि के विहारों के खण्डहरों से अनेक ऐसी बौद्ध-मूर्तियों का उद्धार हुआ है, जिन पर तंत्रों का प्रभाव स्पष्ट है। तंत्र-प्रभावित महायान तांत्रिक शिवशक्ति-धर्म में परिणत हो गया।[1] तांत्रिक महायान और शैवधर्म के योग से नाथपंथ का उदय हुआ था। नाथपंथी साधु उड़ीसा के गाँव-गाँव में घूम कर तथा पुराने गीत गा कर नैतिकता का प्रचार करते रहे हैं। इस पंथ की दो पुस्तकें थीं—शिशुवेद और सप्तांग।

जगन्नाथ पर बौद्धों का प्रभाव—जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलराम की मूर्त्तियाँ बौद्धों के बुद्ध, धर्म और संघ की प्रतीक मानी जाती हैं। कोई-कोई शून्य और अलेख को जगन्नाथ के साथी मानते हैं। मेरे मत से तो यही हो सकता है कि जगन्नाथ के बढ़ते हुए महत्त्व को देख कर बौद्धों ने भी उनके साथ समन्वय कर लिया, जैसा कि उन्होंने तांत्रिक हिन्दू देवियों को अपना कर किया था। विद्वान् लोग एक प्रथा की ओर जो संकेत करते हैं वह अवश्य ही विचारणीय है। प्रत्येक बारहवें वर्ष जगन्नाथ नवीन शरीर धारण करते हैं। एक ब्राह्मण आँखों पर पट्टी बांध कर पुरानी मूर्त्ति के उदर से रेशम में लिपटी हुई कोई रहस्यमय वस्तु निकाल कर नयी मूर्त्ति के उदर में रख देता है। बहुतों का मत है कि यह रहस्यमय वस्तु बौद्धों का कोई रहस्यमय

---

१. श्री मायाधर मानसिंह—ए हि० ऑफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० ३२।

प्राचीन अवशेष है।[1] किन्तु वस्तुतः यह क्या है कैसे कहा जाए। अनुमान अनुमान ही होता है। श्री हरेकृष्ण मेहताब भी इन तीनों मूर्तियों के नाक-कान को पालि के अक्षर बताते हैं, जो बौद्धों के त्रिशरण के सूचक हैं, चौथी मूर्ति सुदर्शनचक्र सद्धर्म-चक्र कही जाती है। पुष्ट-प्रमाणों के अभाव में डा० मेहताब के मत को भी अनुमान ही मानना चाहिए।

ब्राह्मण्य-साधनाएँ—वैतरणी नदी से चिलका झील तक के प्रदेश की एक-एक इंच भूमि पवित्र मानी गयी है। यहाँ स्थान-स्थान पर असंख्य मन्दिर हैं। कपिल-संहिता में कहा गया है—'उत्कलो समो देशो देशो नास्ति महीतले', कम से कम मन्दिरों की दृष्टि से तो यह कथन पूर्ण सत्य है। समस्त उत्कल पाँच पवित्र क्षेत्रों में विभाजित है—१. हरक्षेत्र, २. विष्णु अथवा पुरुषोत्तम-क्षेत्र ३. अर्क अथवा पद्म क्षेत्र, ४. विरजा अथवा पार्वती क्षेत्र और ५. विनायक-क्षेत्र।

शैवोपासना—भौम-वंशीय राजा बौद्ध थे। इनके पश्चात् १०वीं शताब्दी से सोमवंश का प्रभाव बढ़ा, जिसके एक राजा ययाति केशरी ने कान्यकुब्ज देश के एक सहस्र ब्राह्मण बुला कर जाजपुर में बसाये। भुवनेश्वर के आस-पास का क्षेत्र हर क्षेत्र कहलाता है। यहाँ कई सहस्र आराधनास्थल थे और एक करोड़ लिंग। भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर वास्तुकला का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसका निर्माण १०वीं शताब्दी के मध्यभाग में हुआ। उड़ीसा के ब्राह्मण आज भी शैव हैं और इन्होंने शैवसाधना को विकृत नहीं होने दिया है। इन पर तंत्रों का प्रभाव अवश्य पड़ा है।

शाक्तोपासना—जाजपुर गाँव के आस-पास पाँच कोस का क्षेत्र पार्वती क्षेत्र कहलाता है। जाजपुर की प्रसिद्धि गयासुर के विष्णु द्वारा वध किये जाने के कारण है। उसके सिर का पतन गया में और नाभि का यहाँ हुआ। वैतरिणी नदी के तट पर उन्नत दीपिका है, जिसमें सात मातृकाओं – काली, इन्द्राणी, रुद्राणी आदि के चित्र अंकित हैं। सहस्रस्कन्ध रावण का भी चित्र है, जिसका वध सीता देवी ने किया था। यहाँ शाक्त-साधना पर तंत्रों का प्रभाव है। जगन्नाथ मन्दिर के भीतर विमला देवी के प्रति क्वाँर की अष्टमी के दिन एक बकरे की बलि दी जाती है।

सूर्योपासना - पुरी से १८-१९ मील दूर उत्तर-पश्चिम में कोणार्क का मन्दिर है। यह अर्क क्षेत्र कहलाता है। कृष्ण-पुत्र साम्ब कोढ़ी हो कर यहाँ आ कर ठीक हुआ था। राजा नरसिंह ने १२४१ ई० में इसका निर्माण कराया था। मुसलमानों ने इसके शिखर को नष्ट किया था, क्योंकि चुम्बक-शक्ति के कारण यह जहाजों को अपनी ओर रेत पर खींच लेता था। भग्न होने पर यह मन्दिर अपवित्र माना गया। लोग लोहे के लालच में इसकी तोड़-फोड़ करते रहे हैं। यह भारत के सुन्दरतम मन्दिरों में एक था। इस क्षेत्र के लोग आज भी अपना व्रत तब तक नहीं तोड़ते जब

---

१. डा० मायाधर मानसिंह—ए हिस्ट्री ऑफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० ७१।

तक कि वे सूर्य का दर्शन नहीं कर लेते । कभी-कभी उन्हें बरसों के दिनों में अनाहार रह जाना पड़ता है ।

वैष्णव धर्म—[illegible] के देवता जगन्नाथ स्वामी :

उड़ीसा के वैष्णवधर्म के केन्द्र हैं जगन्नाथ स्वामी । वे समन्वय के साकार देवता हैं । उनमें कृष्ण, राम और बुद्ध आदि का [illegible] हुआ है । उनके स्वरूप पर वैदिक एवं अवैदिक उपासना-पद्धतियों का समन्वय हुआ है । शाक्त-उपासना का भी उनमें समाहार है, जिसके अनुसार मत्स्य, मांस और मदिरा प्रसाद रूप में उन्हें अर्पित किये जाते हैं । मांदलापांजि में अन्य पीठों के आचारों के साथ [illegible] के पुरुषोत्तम-क्षेत्र के आचारों का वर्णन [illegible] है कि यहाँ [illegible] पालन करना चाहिए । यहाँ के लिए बताया गया है कि यहाँ छुआछूत, [illegible] एवं उच्छिष्ट-दोष नहीं होता है ।

भारत की प्रायः सभी साधनाएँ जगन्नाथ में एकत्र समन्वित हुई हैं । भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य यहाँ आये और उन्होंने अपने-अपने सम्प्रदायों का प्रचार करना चाहा । आचार्य शंकर, रामानुज, रामानंद, चैतन्य और वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों का सम्मिलित प्रभाव यहाँ की जगन्नाथ-साधना पर पड़ा है । जैन और बौद्ध साधनाओं की समानता दिखायी जा चुकी है । कोई-कोई जगन्नाथ के नाम [illegible] में नाथपंथी प्रभाव देखते हैं ।

वैष्णव-कवियों ने जगन्नाथ को राम और कृष्ण से अभिन्न माना है । [illegible]-रामायण लेखक राम की वन्दना करते हुए उन्हें जगन्नाथ कह कर स्तुति-वंदना करते हैं । उड़ीसा में लिखित लगभग सभी ग्रन्थों के आरम्भ में जगन्नाथ की स्तुति मिलती है । जगन्नाथ की भक्ति में जाति-पाँति नहीं मानी गयी । ऊँच-नीच का भेद भी दूर करने की चेष्टा की गयी । पुरी का राजा परम्परा से जगन्नाथ का भक्त होता आया है । उपासनाओं के समन्वय का परिचय प्राप्त करने के लिए जगन्नाथ के मन्दिर की कहानी सहायक होगी ।

जगन्नाथ के मन्दिर की कहानी :

उड़ीसा में जगन्नाथ-मन्दिर और मूर्तिस्थापन की कहानी प्रचलित है । इसी से प्रेरणा ले कर कुछ कवियों ने गान लिखे । कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

मालवा के राजा इन्द्रद्युम्न ने विष्णु की खोज में चतुर्दिक् ब्राह्मण भेजे । एक ब्राह्मण[1] पूर्व की ओर गया, वहाँ उसने एक शबर को गुप्त रूप से एक नील-शिला की आराधना करते हुए देखा । शबर ने ब्राह्मण का सौन्दर्य देख उसे मार डालने की ठानी

---

१. सारलादास ने ब्राह्मण का नाम विश्ववसु बताया है और नीलाम्बर मिश्र ने अपने 'देउल तोला' काव्य में ब्राह्मण का नाम विद्यापति और शबर का नाम विश्ववसु बताया है । डा० मायाधर मानसिंह—हि० ऑफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० ७५ ।

दे कर अपनी पुत्री का विवाह बलात् कर दिया। कालान्तर में ब्राह्मण ने राजा को सूचना दी, उन्होंने उस स्थान पर जा कर मूर्त्ति नहीं देखी, तब राजा के आदेश से सेना ने शबर-ग्राम घेर लिया। आकाशवाणी हुई कि राजा के अहंकार से नीलमाधव की मूर्त्ति अन्तर्धान हुई है। मन्दिर बनवाने पर पुनः प्रकट हो सकती है। राजा ने मन्दिर बनवाया और मूर्त्ति की स्थापना के उपयुक्त ब्राह्मण केवल ब्रह्मा को ही मान कर उनके लोक के लिए प्रस्थान किया। ब्रह्मा ध्यानमग्न थे। उनके ध्यानमग्न होने में पृथ्वी पर कई युग बीत गये। तब तक मन्दिर भूगर्भ में समा गया। शिकार खेलते समय किसी अन्य राजा को मन्दिर का सन्धान मिला। उसने उसे खोद निकाला। इसी समय ब्रह्मा को ले कर इन्द्रद्युम्न आ पहुँचे। दोनों राजाओं में मन्दिर के निर्माण के विषय में झगड़ा हुआ। निकटवर्त्ती कछुओं ने इन्द्रद्युम्न के पक्ष में साक्षी दी। ब्रह्मा प्रतिमा की प्रतिष्ठा के लिए प्रस्तुत हुए, किन्तु प्रतिमा तो थी ही नहीं। राजा इन्द्रद्युम्न ने व्रत किया और उन्हें दिव्य संदेश मिला कि पास की नदी के मुहाने पर ब्रह्म की प्राप्ति लकड़ी के कुन्दे के रूप में होगी। राजा और उसके समस्त सैनिक उस कुंदे को उठाने के प्रयास में असफल रहे। पुनः आकाशवाणी हुई कि एक ओर शबर और दूसरी ओर वह ब्राह्मण उठायें तभी वह उठेगा।

इस प्रकार आर्य और अनार्य प्रयास से इस देवता की प्रतिष्ठा हुई।

इन्द्रद्युम्न की रानी ने कुंदे को मूर्त्ति का रूप देना चाहा। अनेक शिल्पकारों के अस्त्र टूट गये, अंत में एक बूढ़ा शिल्पकार बन्द द्वारों में बैठ कर काठ को आकार देने में लग गया। कुछ दिन पश्चात् अस्त्रों की ध्वनि न सुन पा कर शंकित रानी ने निश्चित समय से पूर्व ही किवाड़ खोल कर देखा तो शिल्पकार लुप्त था और तीन अधबनी मूर्त्तियाँ पड़ी हुई थीं। वे उसी रूप में आज भी अपूर्ण है, इन्हीं की ब्रह्मा द्वारा प्रतिष्ठा हुई। जगन्नाथ स्वामी ने राजा को निम्न पद्धति से उपासना करने का आदेश दिया—

१—उपर्युक्त शबर के उत्तराधिकारी ही मन्दिर के सच्चे सेवक होंगे।

२—उपर्युक्त ब्राह्मण-ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्रों के उत्तराधिकारी ही पुरोहित होंगे।

३—इस ब्राह्मण के शबर-पत्नी के पुत्र से उत्पन्न उत्तराधिकारी मन्दिर के रसोइए होंगे।

कहानी से निष्कर्ष निकलता है कि मन्दिर का उपास्य शबर एवं आर्य देवताओं का समन्वय है। लकड़ी के कुंदे को शबर और ब्राह्मण दोनों ने साथ-साथ उठाया था तभी वह उठा था। इसमें दो कथाएँ जुड़ी प्रतीत होती हैं। मन्दिर का निर्माता कोई अन्य राजा था, भूगर्भ में निहित हो जाने पर उद्धार किसी अन्य राजा ने किया। श्री एन० के० साहु के मतानुसार चोडगंगदेव (१०७८,११४७ ई०) ने मंदिर

का नवनिर्माण कराया था, जो उसके पुत्र अनंगवर्मा ने पूरा किया। श्री नीलकंठ दास[1] मन्दिर-निर्माण में रामानुज की प्रेरणा मानते हैं।[2]

शवर-संस्कृति से समन्वय के फलस्वरूप ही यहाँ जाति-पाँति, खानपान का बन्धन नहीं है। शूद्रों को भी वेदपाठ का अधिकार है। बलराम शूद्र ही थे, जिनका रामायण ग्रंथ उड़ीसा में सर्वत्र आदृत है। योनिदोष को अनुपस्थिति तथा मन्दिर की भित्तियों के चित्र वामाचार एवं तंत्रो की ओर संकेत करते हैं। ये प्रभाव भी शवर-मूलक हो सकते हैं।

उड़ीसा की वैष्णव-भक्ति—उड़ीसा की वैष्णव-भक्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व हैं जगन्नाथ स्वामी, जयदेव का 'गीत गोविन्द' और चैतन्य महाप्रभु तथा उनसे प्रभावित उड़ीसा के पंचसखा। जगन्नाथ के मन्दिर में गीतगोविन्द का पाठ-गायन हुआ करता है। जयदेय सहजिया वैष्णवों की परम्परा में आते हैं। इस प्रकार के प्रभाव से जगन्नाथ स्वामी भी वंचित नहीं है। उनके मन्दिर के चित्रांकन पर तांत्रिक प्रभाव है ही।

राजाश्रय—गजपति शासकों के समय से जगन्नाथ भक्ति के रूप में वैष्णव-भक्ति का विशेष विकास हुआ। इस वंश के कपिलेन्द्र देव ने बंगाल के सुलतान को हरा कर जगन्नाथ स्वामी को बहुमूल्य साड़ी भेंट की थी। १४६७ ई० में इसका पुत्र पुरुषोत्तमदेव गद्दी पर बैठा, जोकि पिता के समान ही पराक्रमी था। प्रतापरुद्र देव के समय में वैष्णव-भक्ति अपनी पूर्णता पर पहुँच गयी। इसके राज्यकाल में चैतन्य उड़ीसा पहुँचे। उड़ीसा के इतिहास-लेखकों का आक्षेप है कि चैतन्य महाप्रभु की विह्वल भक्ति से आविष्ट हो कर यह क्षत्रियत्व के तेज से रहित हो गया, फलतः विजयनगर के राजा ने उड़ीसा पर प्रभाव विस्तार किया। चैतन्य देव के कारण पंचसखाओं को भी प्रसिद्धि मिली किन्तु चैतन्य का प्रभाव पंचसखाओं पर न पड़कर अगली शताब्दियों के कवियों पर अवश्य ही पड़ा। उड़िया लोग चैतन्यमहाप्रभु को इसलिए भी अपनाते हैं कि उनके पूर्वज उड़ीसा के ही रहने वाले थे।

गाँवों में स्थिति—जगन्नाथ स्वामी को केन्द्र मान कर भागवत की कृष्णभक्ति का प्रचार ही उड़ीसा में अधिक हुआ। सारलादास और जगन्नाथ दास के ग्रंथों ने इस कार्य में विशेष योग दिया।

डा० मायाधर मानसिंह ने उड़ीसा के गावों की नवीनता का वर्णन करते हुए लिखा है—यहाँ छप्परों की लम्बी पंक्ति होती है, बीच में सड़क रहती है। सड़क के एक छोर पर तालाब और मन्दिर तथा दूसरे छोर पर भागवत घर होते हैं। घरों में चित्रकारी का परिचय मिलता है। प्रत्येक घर में ताड़पत्र की लिखी पोथियाँ मिल जाएँगी। धार्मिक-समारोहों में अभी भी हस्तलिखित पोथियों का महत्त्व है। प्रत्येक घर में जगन्नाथदास के भागवतपुराण और पुरोहित का प्रभाव देखा जाता है।[3]

---

१. हंटर और एन० के० साहु—ए हिस्ट्री ऑफ़ ओरिसा, पृ० ११, १२, १७।
२. श्री नीलकंठ दास—सभापतीय भाषण, पृ० २०।
३. डा० मायाधर मानसिंह—ए हिस्ट्री आफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० १२।

हिन्दी-भाषी क्षेत्र की धार्मिक साधनाएं

सारे भारत की धर्मसाधनाओं में बहुत कुछ एकरूपता है। इस प्रदेश में भी उन्हीं उपास्य देवों की उपासना होती थी, जिनका कि वर्णन पूर्वांचलीय धर्मसाधनाओं के प्रसंग में हो चुका है।

हिन्दी-क्षेत्र मध्यदेश है एवं आर्य-सभ्यता का यह हृदय-देश है, अतएव यहाँ भयंकर प्रकार की साधनाओं का प्रचार नहीं हो पाया। यहाँ की शैव-शाक्त साधनाएँ भी निर्दोष नहीं थी किन्तु उनके गर्हित रूप का अधिक प्रचार नहीं था। यहाँ तक किराती संस्कृति की विजय नहीं हो सकी थी।

फिर भी यहाँ कुछ ऐसी प्रथाएँ थीं जो किराती अथवा निषादी संस्कृति की छाप लिए हुए हैं। क्वार की दुर्गानवमी के दिन यहाँ जवारों (यवांकुर) की शोभा-यात्रा निकलती है जिसमें नर-नारी देवी के गीत गाते हुए नाचते हैं। कुछ लोग नुकीले त्रिशूल, लौहकंटकों के कोड़े एवं लौह-शृंखलाओं से अपने शरीर को क्षतविक्षत करते हैं। नुकीले त्रिशूल को अपने गालों के आर-पार चुभो कर साधक आवेश-मय नृत्य सा करता है। ये क्रियाएँ बंगाल की चड़क-पूजा के समान नरबलि की प्रतीक-सी जान पड़ती हैं। देवी के यज्ञ में आज पूर्णाहुति के समय नारियल चढ़ाया जाता है, जो संभवतः नरमुंड का प्रतीक है। देवी के मन्दिरों में कभी-कभी बकरे के कान का थोड़ा भाग कुतर कर चढ़ा दिया जाता है।

हिन्दी-क्षेत्र की प्रमुख साधनाएँ निर्गुण और सगुण साधनाएं थीं। निर्गुण साधना की कबीरपंथी शाखा में बौद्ध सहजयानियों के कुछ उपादान जीवित थे, किन्तु नाथपंथ के सुधरे हुए नैतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण पंच मकारों वाली साधना हिन्दी में नहीं आ सकी। कबीर स्वयं भी इन सबके विरोधी थे। निर्गुण-सम्प्रदाय-वादियों में हिन्दू-मुस्लिम-समन्वय का प्रयास भी देखा जाता है, किन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से उनका प्रभाव व्यापक नहीं था। इस्लाम की कट्टर असहिष्णुता के कारण मुसलमानों पर समन्वयात्मक-साधना का नगण्य प्रभाव पड़ा। कबीर-पंथ का प्रभाव समाज के केवल उस वर्ग पर देखा गया, जिसके मन में उच्च-वर्ण के प्रति प्रति-क्रिया थी।

निर्गुण-पंथियों में एक खोखला दंभ-भाव प्रवेश करने लगा था, जिसका खंडन सूरदास ने भ्रमरगीत लिख कर किया। हिन्दू-जनता को विष्णु की साकार-उपासना अधिक पसन्द आयी।

जयदेव-विद्यापति की परम्परा में हिन्दी का कृष्ण-साहित्य कुछ अधिक शृंगार-रंजित हो गया था। तुलसीदास को यह स्थिति पसंद नहीं आयी, उन्होंने रामभक्ति का प्रचार करते समय उच्छृंखल शृंगार का परोक्ष विरोध किया था।

लौकिक-उपासनाओं के सम्बन्ध में यह कहना है कि यहाँ का समाज विशेषतः स्त्री-समाज अनेक प्रकार के अंधविश्वासों से ग्रस्त रहा है। यहाँ भी भूत-प्रेत, थान,

पीर आदि की पूजा होती रही है। प्राचीन यक्ष-पूजा का रूप जखई के रूप में आज भी जीवित है। मारण, वशीकरण आदि की कल्पित-शक्ति के अलीक भय से आज भी ओझा आदि जनसमाज को आतंकित एवं प्रभावित किये रहते हैं। हाँ, इस प्रकार की साधनाएँ अशिक्षित एवं निम्न वर्ग में ही अधिक प्रचलित हैं ।

राम-कृष्ण की जन्मभूमि वाले इस प्रदेश की उपासनाएँ फिर भी पर्याप्त सुधरी हुई रही हैं। यहाँ की काशी, प्रयाग, मथुरा-वृंदावन, अयोध्या आदि नगरियाँ समस्त भारत को आकृष्ट कर आर्य शुद्ध-भक्ति की प्रेरणा देती रही हैं। पूर्वांचल के धर्माचार्यों को भी ये पवित्र स्थान प्रायः खींच लाये हैं।

राम के चरित्र का महत्त्व

आर्यों का चरित्र शुद्ध, सरल एवं नियम-शासित था, उनका प्रत्येक कार्य एक मर्यादा से बँधा था। उनका धार्मिक एवं सामाजिक जीवन परस्पर-सम्बन्धित एवं उच्च धरातल पर अधिष्ठित था। आर्य-प्रभावित क्षेत्र से दूर होने के कारण पूर्वांचल अपनी ही विकट-साधनाओं के जंजाल में उलझा रहता था। यहाँ की भूमि एवं जलवायु तक पहुँचते-पहुँचते आर्य-संस्कृति विकृत हो जाती थी। बार-बार ब्राह्मण बुलाये जाते थे, बार-बार वैदिक क्रियाओं का लोप होता था और समाज पुनः अपने संयम-शिथिल पथ पर चल पड़ता था। इसीलिए यहाँ की आरम्भिक-उपासनाएँ उज्ज्वल नहीं थीं।

सामाजिक चरित्र के उत्थान में धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। वैदिक-कर्म-काण्ड के प्रतिक्रियास्वरूप बौद्ध-धर्म का जन्म हुआ था, वह भी एक प्रकार का सामाजिक सुधार था। लोक के नैतिक-चरित्र के उन्नयन के लिए उच्चकोटि के चरित्र की आवश्यकता रहती है, चाहे वह धर्म के माध्यम से ईश्वर बन कर आये अथवा काव्य एवं राजनीति का नायक बन कर।

भारत देश में एक ही ब्रह्म की विभिन्न-रूपों में अभिव्यक्ति देखी गई है। साधक अपने मनोनुकूल आदर्श के अनुसार ब्रह्म की किसी एक अभिव्यक्ति को स्वीकार कर उसकी साधना करता हुआ लक्ष्य की प्राप्ति करता है। इस नाते शिव, शक्ति, विष्णु, सरस्वती, हनुमान, लक्ष्मी आदि किसी भी उपास्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी की भी परस्पर तुलना कर हेय या वरेण्य सिद्ध करना उचित नहीं होगा।

फिर भी विगत विश्लेषण से स्पष्ट है कि शिव और शक्ति स्वयं में कितने ही तेजस्वी एवं अखंड-शक्ति सम्पन्न क्यों न हों, उनके उपासकों ने अपनी रक्त-पिपासा मांस-मदिरा-मुद्रा के प्रति लोलुपता एवं क्रूरता को इन उपास्यों के साथ सम्बद्ध कर इनके गौरव की वृद्धि नहीं की है।

गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों में सदाचार और जीवमात्र के प्रति करुणा का भाव था। उनके विचार मानवता के पोषक और उत्तम थे, किन्तु उनका अनात्मवाद या

शून्य-वाद सामान्य जनों के लिए किसी आदर्श-विशेष का मूर्तरूप प्रस्तुत न कर सका। इधर तन्त्र-धर्म उसमें प्रविष्ट हो कर उसके शून्य को भरने लगा। बौद्धधर्म के करुणा और शून्य पता नहीं किस-किस बात के प्रतीक माने जा कर अन्त में योनि और लिंग के प्रतीक पद्म और वज्र मात्र रह गये और पंच मकारों को यहाँ भी स्वीकृति मिली। वज्रयानी-बौद्धों की चरम-विकृति नीलपट-दर्शनियों की साधना थी। स्त्री-पुरुष के नग्न जोड़े एक नीले वस्त्र में लिपटे हुए घूमते रहते थे। खुल कर खाने-पीने एवं भोग करने का इनका आदर्श था। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं राहुल सांकृत्यायन दोनों ने इनका वर्णन किया है।[1] १०-११ वीं शताब्दी में सम्भवतः इसी मत के नीलवस्त्र-धारी भिक्षु लोग तिब्बत में घूम घूम-कर वहाँ के नर-नारियों की मति-गति परिवर्तित कर रहे थे। इनका प्रचार बंगाल में दिखाया जा चुका है। बौद्ध सिद्ध परम्परा-मुक्त एवं स्वतन्त्र विचारक थे, किन्तु चरित्र की दृष्टि से वे शिथिल ही कहे जाएँगे। उनके द्वारा स्वस्थ समाज का गठन असम्भव था।

वाममार्गीय उपासनाओं एवं इनके उपास्य-उपासकों में सामाजिक चरित्र की उच्चता कहाँ थी। ये अपने संस्कार छिपकर करते थे। वैदिक एवं पौराणिक धर्म प्रकाश-रूप में जनता के सामने आते थे, उनका मार्ग सीधा था। यदि वामाचारियों की भाषा सांकेतिक मानी जाए तथा इनकी उलटबाँसियों जैसी उक्तियों का अर्थ अन्य कुछ निकाला जाय तब भी ये उपासनाएँ कलंक-मुक्त नहीं हो सकतीं और न सामाजिक मान्यता का गौरव प्राप्त कर सकती हैं, क्योंकि साधारण जनों के लिए इनकी उलटबाँसियाँ सीधा अर्थ रखती थीं, उनके लिए मुद्रा मुद्रा थी और मदिरा मदिरा ही; अन्य कोई यौगिक क्रिया नहीं।

लौकिक उपास्यों में सामाजिक आदर्श खोजना ही व्यर्थ है, क्योंकि ये देवता अर्धसभ्य अथवा बर्बर जाति के मस्तिष्क से प्रसूत थे। इन जातियों के भय, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या आदि मनोभावों के प्रतिबिम्ब ही लौकिक देव थे।

आर्य-देवताओं में भी अनार्य-तत्त्व समाविष्ट हो गये थे। एक विष्णु ही ऐसे देवता थे, जो वैदिक थे तथा जिनमें विदेशी एवं अवांछनीय तत्वों का समावेश न हो सका। विष्णु के रूप में श्मशानचारी कापालिक तुल्य शिव अथवा विकट रूपा देवियों के समान अशोभनत्व नहीं था। उनके अस्त्र-शस्त्र और शृंगार भी खप्पर, नरमुंड, रक्तरंजित खाँडा आदि न होकर शंख-चक्र-गदा-पद्म एवं मणिहार आदि थे। साधुओं के परित्राण एवं दुष्टों के विनाश का सामर्थ्य उनमें था।

विष्णु के कृष्णावतार का भारत में अधिक प्रचार हुआ। महाभारत के शक्ति-मय कृष्ण की अपेक्षा भागवत के ललित-कृष्ण जनता को अधिक प्रिय एवं ग्राह्य हुए। इनके साथ सहजिया वैष्णव भक्ति का योग हुआ। गोपियों के पीन पयोधर मर्दन

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० १२-१३।

करने वाले तथा नितंबिनी राधा के लिए मचचित नेत्र पत्र-शय्या निर्माण करने वाले जयदेव के कृष्ण बंगाल, उड़ीसा और हिन्दी क्षेत्र के आदर्श हो गये थे। असम में अवश्य कृष्ण के चरित्र से राधातत्त्व को दूर करने का प्रयास किया गया था।

सामाजिक-दृष्टि से राम का चरित्र निष्कलंक था। वे ऐतिहासिक महापुरुष थे, जिन्होंने कर्तव्य के आगे सदैव अपने क्षुद्र स्वार्थों की बलि दी। समाज को संयमित एवं मर्यादित रखने के लिए ब्राह्मणों ने व्यवस्थाएँ बनायी थीं। राजा का कर्त्तव्य था कि वह समाज से उनका पालन कराए। राम ने आदर्श राजा बनकर प्रजा-पालन किया। अपने विशुद्ध त्यागपरायण चरित्र से उन्होंने न केवल समाज की सामूहिक उन्नति का आदर्श रखा, अपितु अपने स्नेहशील और कर्त्तव्य-परायण चरित्र द्वारा हिन्दुओं के एक-एक परिवार के लिए शाश्वत प्रेरणा प्रदान की। राम आज घर-घर में परिवार के समस्त सम्बन्धों के आदर्श हो गये हैं। वे स्वयं महान् थे, जिनके अवतार स्वीकार किये गये वे विष्णु भी महान् थे। दैवी एवं मानवी गुणों के समन्वय इस विराट् पुरुष के टक्कर की कल्पना विश्व की अन्य जाति नहीं कर सकी।

राम के चरित्र में ऐसी कोई दुर्बलता न थी जो समाज को पतन की ओर ले जाती। उनका एक पत्नीव्रत आदर्श उच्छृंखलता दूर करने वाला था। सीता उनकी पत्नी थीं, उनका अस्तित्व ऐतिहसिक था। न वे परकीया थीं और न तांत्रिक साधना को सफल-बनाने वाली देव-शक्ति अथवा मुद्रा। फलतः उनके नाम पर रागानुगा-भक्ति का विशेष प्रचार न हो सका। समस्त भारतीय साधनाओं में इसी दृष्टि से राम की भक्ति का विशेष महत्त्व है।

साधारण-समाज वेद-स्मृतियों के अतुल भंडार से परिचित न हो पाता था। सभी साधारणजनों से ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती थी कि वे जीवन के मूल्यों का स्वयं निर्धारण करें। पूर्वांचल ही नहीं समस्त देश की उपासनाओं के जंजाल में राम के सुदृढ़-चरित्र-सम्पन्न आदर्श की आवश्यकता थी। उनकी कथा एवं चरित्र से साधारण लोक में भी श्रुति एवं स्मृतियों द्वारा निर्धारित जीवन-मूल्यों को समझा। जहाँ-जहाँ राम की कथा पहुँची, वहाँ तक का समाज एक सभ्यता एवं एक-संस्कृति में ग्रथित हो गया।

भक्त लोग राम को नारायणत्व से नरत्व तक अवतरित मानते हैं और अनेक प्रबुद्ध जन उन्हें नरत्व से नारायणत्व तक उन्नत। वे चाहे नारायण हों या नर, उनका सबसे बड़ा गुण है मानवीयता। मनुष्य समाज से विच्छिन्न नहीं रह सकता। समाज बनता है परिवारों से। परिवार की स्थिति भी समाज में रहेगी, भले ही उसका आकार लघु हो जाए। राम समाज के समस्त सम्बन्धों के योग्य और सक्षम आदर्श हैं।

उन्होंने अपने सात्त्विक-चरित्र से भारतीय-समाज एवं परिवारों को शुद्धाचार एवं मर्यादित-जीवन की शिक्षा दी है। विश्वमात्र के उपास्य देवों एवं श्रद्धेय-जनों

में उनका चरित्र महान् है। उनकी कथा और उनका चरित्र समस्त विश्व के लिए अनुकरणीय एवं उपादेय है।

रामायणों का अपने क्षेत्रों में महत्त्व

सभी रामायण-लेखक संस्कृत के पंडित थे, जैसा कि उनकी भाषा से भी प्रकट होता है। इच्छा करने पर वे वाल्मीकि-रामायण का शब्दशः अनुवाद कर सकते थे, किन्तु तब वे जन-मानस का स्पर्श न कर पाते। परिवेश, लोकाचार चरित्र-चित्रण, उपमान-संग्रह आदि दृष्टियों से वाल्मीकि-रामायण का शब्दशः अनुवाद जनमानस को उतना उद्वेलित न करता जितना कि इन भाषा-रामायणों ने किया। वाल्मीकि के चरित्र और चित्रण महान् हैं, साथ ही चिरंतन भी, किन्तु उनके रसास्वादन के लिए संस्कृत लोक-रुचि भी चाहिए।

भाषा-रामायण-लेखकों ने कथा के पात्रों को अपने प्रदेश के परिवेश में ढाल कर प्रस्तुत किया, फलतः उच्चवर्ण से लेकर निम्नतम वर्ग के समाज ने रामकथा के पात्रों को अपना समझा। वाल्मीकि की महीयसी सीता अपने-अपने देशकाल की सलज्ज कुलवधू के रूप में प्रस्तुत की गयीं। जनता ऐसी सीता के प्रति अपनत्व की अनुभूति करती है।

प्रत्येक भाषा-रामायण के क्षेत्र में और भी अनेक सम्पूर्ण अथवा खण्ड रामायणें लिखी गयीं, इनके अतिरिक्त रामकथा की अभिव्यक्ति साहित्य की अन्य विधाओं एवं लोक-साहित्य के रूप में भी हुई, तथापि इन प्रमुख रामायणों का अपना स्थान आज भी अक्षुण्ण है। राम-कथा का जो भी प्रयोजन है, उसका जो भी संदेश है, वह इन भाषा-रामायणों के माध्यम से आज भी झोपड़ी-झोपड़ी तक पहुँच रहा है।

०असमीया-रामायण में अन्य भाषा-रामायणों की भाँति अवान्तर-कथाओं का समावेश नहीं है। कथा की दृष्टि से वह वाल्मीकि-रामायण के निकट है, चरित्र-चित्रण में अवश्य ही लेखक ने स्थानीय-परिवेश का ध्यान रखा है। इसी का परिणाम है कि वह असम में जनप्रिय हो सकी। आज भी 'ओजा' लोग समस्त रामायण को कण्ठस्थ कर जन-समाज में इसका गायन करते हैं।[1] श्री हरिनारायण दत्त बरुवा ने भूमिका में लिखा है, यह रामायण हमारे देश के आबाल-वृद्ध सभी के हृदय का धन एवं सेवा की वस्तु है, क्योंकि यह हमारी जाति के आचार-व्यवहार, रीति-नीति एवं सामाजिक-जीवन के तथ्य से युक्त है।

असमीया-भाषी लेखक कभी-कभी आवेश में आकर अपनी रामायण की श्रेष्ठता बताने में कभी-कभी अनावश्यक हठ दिखा जाते हैं।

१. उपेन्द्र लेखारु--असमीया-रामायण की भूमिका।

(१) प्रसिद्ध विद्वान् डिम्बेश्वर नेओग असमीया-रामायण की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए तुलसी और कृत्तिवास के जीवन-काल को पीछे धकेलने का प्रयास करते हैं। कृत्तिवास के रामायण-रचना-काल को भी अधिकांश असमीया लेखक १६वीं शती का मध्य भाग बताते हैं।

(२) इन विद्वानों को गर्व है कि असमीया-रामायण में वाल्मीकि का अनुसरण अधिक है। माधव कन्दली की रामायण में भक्तितत्त्व नहीं था, इसीलिए अनन्त कन्दली ने अलग प्रयास करना चाहा था। असमीया-लेखक यह दावा करते हुए भी परिताप प्रकट करते हैं कि असमीया-भाषी लोग अपनी रामायणों के प्रचार के अभाव में 'रंग् चीया बङ्गाली रामायण' (अर्थात् अनेक अवान्तर प्रसंगों से युक्त कृत्तिवासी रामायण) की ओर अधिक आकृष्ट रहते हैं।

साधारण जनता कृत्तिवासी-रामायण की ओर इसीलिए आकृष्ट हो गयी कि उसमें लोकरंजन-कारी तत्त्व अधिक थे। फिर भी एक सुगठित साहित्यिक कृति के रूप में असमीया-रामायण का अपना विशिष्ट स्थान है।

०**बँगला-रामायण** पाँचाली शैली में लिखी गयी थी। जनता में इसका गान होता था। प्रमुख गायक बायें हाथ में चामर, दाहिने में मंजीर और पैरों में नूपुर धारण कर पाँचाली-काव्य का गायन करते थे। उनके साथ मृदंग-वादक और दोहार (ध्रुवकार) भी रहते थे। दोहार प्रमुख गायक के साथ तान अलापता था।

कवि के जीवनकाल में एवं इससे पहले भी बंगाल में लोकगीतों की नाना पद्धतियों का प्रचार था। भाषा-रामायण का सम्बल पाकर लोकगीत-कारों की बन्या बंगाल में उमड़ पड़ी। रामायण की विषयवस्तु लेकर फुल आखड़ाई, हाफ़ आखड़ाई, उस्ताद कवि, पाँचाली, तर्ज्जा और झूमुर गायक आदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों ने बड़ी-बड़ी जनसभाओं में रंग जमा कर राम-कथा का विस्तार किया।[1]

लेखकों में सम्मान—परवर्ती अनेक बंगाली रामायणकारों ने अपनी पुस्तक के आदि या अंत में बँगला-लेखक कृत्तिवास का नाम आदरपूर्वक लिया है। अनेक कवियों ने स्वयं कविता लिख कर कृत्तिवास की भणिता दे दी है। माइकेल मधुसूदन दत्त ईसाई होने पर भी कृत्तिवास का आदर करते थे। गुरुदास बन्द्योपाध्याय एवं राय कृष्णदास जैसे विद्वज्जन भी कृत्तिवास के कृतित्व के प्रशंसक थे।

कृत्तिवास का जन्म-स्थान फुलिया ग्राम उजड़ गया है। इनके भग्नावशिष्ट स्थान पर हिन्दुओं की कौन कहे मुसलमान तक हल नहीं चलाते थे। फलतः इस स्थान पर जंगल उग आया। अब यहाँ कवि का जन्म-स्तंभ बनवा दिया गया है, जिस पर उनकी प्रशंसा में कविता उत्कीर्ण है।

---

१. रमानाथ त्रिपाठी—कृत्तिवासी बँगला-रामायण और रामचरितमानस, पृ० ६१-६२।

नलिनीकांत भट्टशाली ने कहा है कि पांचाली-गायकों ने इस रामायण का प्रचार असम से उड़ीसा तक तथा चटगांव से लेकर राजमहल तक किया था। बंगाल में केवल दो ग्रंथ ही राष्ट्रीय कहे जाते हैं—१. कृत्तिवासी-रामायण और २. काशीदासी महाभारत। अपढ़ लोगों में भी रामायण सुनने का इतना चाव रहा है कि ये इसे पढ़वा कर सुनते रहे हैं।

आज भी वृक्षों की छाया में समवेत हो कर कृषकगण परम रुचि के साथ राम-कथा सुनते हैं। आज भी स्वामी-पुत्र के मधुमय-संसार से घिरी बंग-ललनाएँ दोपहर के कार्य से निश्चिंत होकर रामायण-पाठ करती हैं। भोली निरक्षर वधुएँ भी सीता का वनवास सुन कर रो पड़ती हैं। आज भी बंगाल की धूसर-वसना विधवाएँ एकादशी के अपराह्न में समवेत हो कर किसी ललित-कंठ बालक द्वारा रामायण पढ़ा कर सुनती हैं, उनका उपवास-क्लिष्ट हृदय भक्ति-रस से उच्छ्वसित हो उठता है।[1]

विकट साधनाओं के जंजाल के मध्य जन-जन को आर्य-संस्कृति का संस्कार दे कर उसे एक सूत्र में बांधने का कार्य तो बंगाल में इसी रामायण ने किया है। दीनेशचन्द्र सेन का कहना है—यदि चन्द्र-सूर्य के समान बंगाल के कोने-कोने का अन्धकार दूर करने वाले कृत्तिवास न होते तो विश्व के आदि-कवि वाल्मीकि जनता के लिए दुर्लभ आकाश-कुसुम ही रह जाते।[2]

०उड़िया-रामायण-लेखक बलरामदास को उनके देशवासी उत्कल का वाल्मीकि कहते हैं तथा उनके ग्रंथ को संस्कृत-रामायण का अनुवाद न बता कर स्वतंत्र ज्ञान-कोश कहते हैं। मध्यकालीन उड़िया साहित्य के कवि-सम्राट् उपेन्द्रभंज ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में बलरामदास का अति आदर के साथ उल्लेख किया है। पं० नीलकंठदास उड़िया राष्ट्र के निर्माण में तीन पुस्तकों का नाम लेते हैं— (१) सारलादास का महाभारत, (२) बलरामदास की रामायण और (३) जगन्नाथदास का भागवतपुराण। वे बलराम दास को उड़िया के प्रसिद्ध वैष्णव-भक्तकवि पंचसखाओं में वयोज्येष्ठ और सर्वाधिक प्रतिभाशील (the oldest and most talented) बताते हैं।[3]

विंटरनित्स ने उड़िया-रामायण को लोकप्रिय काव्य के साथ ही अलंकृत काव्य भी माना है—the Ramayan appears to as a work that is popular epic and ornate poetry at the same time.[4]

उड़िया-रामायण की लोकप्रियता के सम्बन्ध में निम्न दो विद्वानों के कथन उद्धृत कर रहा हूँ—

---

१. श्री आशुतोष मुखोपाध्याय—सभापतीय भाषण (फुलिया ग्राम), पृ० २२, २३।
२. दीनेशचन्द्र सेन सम्पादित कृत्ति० रामायण की भूमिका।
३. नीलकंठ दास—हिस्ट्री ऑफ ओरिया लिटरेचर।
४. एम० विंटरनित्स—ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, वा० १, पृ० ४७६।

वलरामदासाङ्क रामायण गोटिए लोकप्रिय महाकाव्य। पल्लीर घरे-घरे तार आदर। शिक्षित, मूर्ख, धनी, निर्धन प्रति ओड़ियार हृदयसिंहासनरे तार आसन।[1]

(वलरामदास की रामायण एक लोकप्रिय महाकाव्य है। गाँवों के घर-घर में उसका आदर है। शिक्षित-मूर्ख, धनी-निर्धन प्रत्येक उड़िया के हृदय-सिंहासन पर उस का आसन है।)

लोके एहि दर्पणरे निजर वहिर्जगत ओ अन्तर्जगतर प्रतिमूर्ति देखिले, ए हेला गृहे-गृहे हृदयर निधि, पूजा पाइला खटुलीरे, पढ़ा हेला भागवत टुङ्गिरे। समाजर शिरा प्रशिरारे भेदिला एहार चेर। समाजर मन वन रे फुटिला एहार फूल।[2]

(जनता ने इसके (उड़िया-रामायण के) दर्पण में अपने वहिर्जगत् एवं अन्तर्जगत् की प्रतिमूर्ति देखी, यह हो गयी गृह-गृह में हृदय की निधि, इसने पूजा प्राप्त की पवित्र काष्ठासनों पर, यह पढ़ी गयी भागवत-कुटीरों में समाज के शिरा-प्रशिरा में समाविष्ट हुए इसके सूक्ष्म तन्तु। समाज के मन-वन में विकसित हुए इसके पुष्प।)

० विश्व में ऐसा कौनसा ग्रंथ है जो कोटि-कोटि कंठों में वास करने के कारण लोकप्रियता के श्रेष्ठ उपादान धारण किए है और साथ ही इतने उच्चकोटि का महाकाव्य भी है कि वड़े-वड़े विद्वान् उस पर निरंतर खोज करते रहते हैं। विल्सन, तासी, ग्राउज़, ग्रियर्सन, ग्रीव्ज, टेसीटोरी, कारपेण्टर, केई, एटकिंसन, हिल, वारान्निकोव, आल्चिन और वुल्के आदि विदेशी विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथ **मानस** के अतिरिक्त और किस ग्रंथ में हो सकती है!

इस महाकाव्य की तुलनात्मक श्रेष्ठता इस वात से भी प्रकट है कि वँगला एवं उड़िया भाषाओं में इसके दर्जन से ऊपर अनुवाद हो चुके हैं। इन प्रदेशों की भाषा के अनेक कवियों ने पिछली शताब्दियों में तुलसीदास के इस ग्रंथ के वर्ण्य-विषय एवं शैली से प्रेरणा ग्रहण कर लिखने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, नेपाली, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम और असमीया भाषाओं में भी इसके दो दर्जन से ऊपर अनुवाद हो चुके हैं।

भारत की साधारण हिन्दू-जनता वेद-शास्त्रादि का नाम-मात्र ही जानती है, वस्तुतः इस सम्वन्ध में उसका स्वार्जित ज्ञान कुछ नहीं होता। विभिन्न प्रान्तीय-भाषाओं में भी कुछ ऐसे धार्मिक-ग्रंथ हैं जो हिन्दू समाज की परंपरागत कड़ियों को जोड़े रहते हैं। उत्तर-भारत की जनता को ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र आदि का ज्ञान कराने वाला मानस है। घर-घर में इसकी प्रति मिल जाएगी, कंठ-कंठ में इसकी चौपाई का वास है।

तुलसीदास ने उत्तर-भारत को राममय कर दिया। उन्होंने हिन्दीभाषी-क्षेत्र

---

१. नरेन्द्रनाथ मिश्र—वलरामदास ओ ओड़िया-रामायण, पृ० १२०।

२. डा० कुंजविहारी दास—वलरामदास ओ ओड़िया-रामायण, भूमिका, पृ० ९।

में प्रचलित सभी काव्य-पद्धतियों एवं लोकगीतों में रामकथा का समावेश कर रामभक्ति का प्रचार किया। इसी का फल है कि कोई व्यक्ति जँभाई लेगा तो राम कहेगा, शोकसूचक ध्वनि करेगा तो 'राम-राम' करेगा तथा अभिवादन में तो प्रायः 'जयराम जी की' प्रचलित ही है। मानस के कारण राम यहाँ के जीवन में घुलमिल गये हैं। मानस का परिचय यहाँ उन किसानों से है, जो कि वैज्ञानिक-आविष्कारों से इतने दूर हैं कि संभवतः उन्होंने जीवन में ट्रेन भी न देखी हो। प्रस्तुत लेखक अनेक निरक्षर किसानों को जानता है, जिन्हें लगभग सम्पूर्ण मानस कंठस्थ है।

मुसलमानों एवं अंग्रेजों के शासनकाल में जब कि जनभाषा में अरबी, फ़ारसी और अंग्रेजी के शब्द बलात् प्रवेश पा रहे थे, मानस की चौपाइयों ने साधारण, निम्न एवं अपढ़ जनता की बोलचाल की भाषा में भी संस्कृत-शब्दों का प्रचार किया और हमारी संस्कृति की रक्षा भी की।

उत्तर-भारत में रामभक्ति के प्रचार का प्रथम श्रेय रामानन्द जी को है। उनके पहले सवर्ण-हिन्दुओं को संन्यास लेने का अधिकार था, किन्तु रामानन्द ने वर्णमात्र के लिए रामभक्ति का मार्ग खोल दिया। फलतः संकट-कालीन स्थिति में रामानन्द के वैरागी-सम्प्रदाय ने वर्ग-वर्ग में रामभक्ति का प्रचार कर समस्त-समाज को संगठित किया। डर लगता है कि समाज का निम्न-वर्ग उच्च-वर्ग की उपेक्षा के कारण धर्मांतरण कर लेता अथवा कबीर-पंथ आदि का अनुसरण कर उच्चवर्ग के प्रति द्वेष प्रकट करता। किन्तु सभी वर्ग के लोग वैरागी होने और अपने-अपने वर्ग में रामभक्ति का प्रचार कर स्वयं शक्ति-लाभ कर समाज को सशक्त करने लगे। रामानन्द का प्रयास स्तुत्य था, किन्तु यदि उनके सम्प्रदाय को मानस का सम्बल न मिला होता तो संभवतः आज भी वह इस रूप में जीवित न होता।

रामभक्ति के प्रचार के लिए तुलसी ने स्वयं रामलीला का प्रचार किया था, आज भी काशी में उन्हीं स्थानों में लीला चली आ रही है। कई छोटे-बड़े नगर-गाँवों में आश्विन-मास की प्रथमा से ले कर विजयादशमी तक रामलीलाएँ होती हैं। इस अवसर पर प्रायः अयोध्याकाण्ड और उससे आगे की कथा का अभिनय होता है। वसन्त-पंचमी के पाँच-छः दिन पूर्व से 'धनुष यज्ञ' नामक अभिनय चलता है, जिसमें बालकाण्ड तक की कथा अभिनीत होती है। वसंत-पंचमी के दिन धनुषभंग, रामसीता विवाह एवं परशुराम-लक्ष्मण संवाद होता है। तुलसीदास द्वारा प्रवर्तित अभिनयों का रूप लगभग चार सौ वर्षों से ज्यों का त्यों चला आ रहा है। पात्रों के संवाद प्रायः मानस के गेय-छंदों में होते हैं, अथवा पहले समाजी-लोग सुरताल-सहित पद्यों का पाठ करते हैं, फिर पात्र उनका गद्यानुवाद करते हैं। नृत्य अथवा संवाद के अनुपयुक्त वर्णनात्मक-प्रसंगों का गायन समाजी-लोग वाद्य-यंत्रों के साथ जल्दी-जल्दी करते जाते हैं। लीलाओं के प्रभाव के कारण हिन्दी-भाषी क्षेत्र के बच्चे अपने शैशव-काल में ही राम की पारिवारिक-कथा से परिचय प्राप्त कर लेते हैं। विजयादशमी के

पश्चात् प्रायः अनेक स्थानों पर छोटे-छोटे बच्चे तीर-कमान ले कर उछलते दिखायी पड़ते हैं। वे विधिवत रावण-वध करते हैं, मार्मिक-प्रसंगों पर विलाप करते हैं तथा मानस की चौपाइयाँ गा कर पढ़ते हैं। गाँव के युवकों की कई महत्त्वाकांक्षाओं में एक आकांक्षा रामायण के अच्छे गायक होने की भी होती है। अनेक युवक हनुमान, अंगद, दशरथ आदि के सफल एवं ख्याति-प्राप्त अभिनेता बनने की भी अभिलाषा करते हैं।

तुलसीदास ने रामकथा के साथ ही रामभक्त हनुमान को भी अमर कर दिया है।

तृतीय अध्याय

रामचरित-लेखकों का जीवन-परिचय

असमीया-रामायण-लेखक

दो काण्डों का लोप :

असमीया-रामायण के मुख्य-लेखक हैं श्री माधव कन्दली। इनके द्वारा लिखी हुई रामायण के आदि और अन्त रहित केवल पाँच काण्ड शेष हैं। इनके लोप होने के विषय में निम्न कारण बताये जाते हैं[1]—

(१) आहोम और कछारी जातियों के युद्ध के समय ये काण्ड नष्ट हुए।

(२) कोई कहता है कि आग में जल गये।

(३) किसी का कहना है कि मूल वाल्मीकि-रामायण भी पाँच काण्डों की थी, उसके दो काण्ड प्रक्षिप्त हैं। इसी प्रकार असमीया-रामायण भी पाँच काण्डों की थी। लेखक ने लंका-काण्ड के अन्त में अपना परिचय देकर रामायण को समाप्त किया था। वह सीता-विवाह से सीता-उद्धार तक लिखना चाहता होगा।[2]

शंकरदेव और माधवदेव द्वारा पूर्ति :

इन दोनों काण्डों को कालान्तर में परवर्ती दो कवियों ने पूरा किया। 'कथा-गुरुचरित' में कहा गया है कि अनन्त कन्दली नामक कवि माधव कन्दली की रामायण में कुछ इधर-उधर की जोड़-तोड़ कर रामायण लिखना चाह रहे थे। माधव कन्दली ने अपनी रामायण के लुप्त होने की सम्भावना से रक्षा करने के लिए शंकरदेव को स्वप्न दिया। शंकरदेव ने स्वयं उत्तर-काण्ड की रचना की और अपने शिष्य माधवदेव से आदि-काण्ड की रचना करवायी। ये दोनों काण्ड माधव कन्दली की रामायण में जोड़ दिये गये।

---

१. श्री डिम्बेश्वर नेओग—असमीया साहित्यर बुरंजि, पृ० १८८।
२. श्री उपेन्द्रनाथ लेखारु—असमीया रामायण साहित्य, पृ० ४२।

पश्चात् प्रायः अनेक स्थानों पर छोटे-छोटे बच्चे तीर-कमान ले कर उछलते दिखायी पड़ते हैं। वे विधिवत रावण-वध करते हैं, मार्मिक-प्रसंगों पर विलाप करते हैं तथा मानस की चौपाइयाँ गा कर पढ़ते हैं। गाँव के युवकों की कई महत्त्वाकांक्षाओं में एक आकांक्षा रामायण के अच्छे गायक होने की भी होती है। अनेक युवक हनुमान, अंगद, दशरथ आदि के सफल एवं ख्याति-प्राप्त अभिनेता बनने की भी अभिलाषा करते हैं।

तुलसीदास ने रामकथा के साथ ही रामभक्त हनुमान को भी अमर कर दिया है।

रामचरित-लेखकों का जीवन-परिचय

असमीया-रामायण-लेखक

दो काण्डों का लोप :

असमीया-रामायण के मुख्य-लेखक हैं श्री माधव कन्दली। इनके द्वारा लिखी हुई रामायण के आदि और अन्त रहित केवल पाँच काण्ड शेष हैं। इनके लोप होने के विषय में निम्न कारण बताये जाते हैं[1]—

(१) आहोम और कछारी जातियों के युद्ध के समय ये काण्ड नष्ट हुए।

(२) कोई कहता है कि आग में जल गये।

(३) किसी का कहना है कि मूल वाल्मीकि-रामायण भी पाँच काण्डों की थी, उसके दो काण्ड प्रक्षिप्त हैं। इसी प्रकार असमीया-रामायण भी पाँच काण्डों की थी। लेखक ने लंका-काण्ड के अन्त में अपना परिचय देकर रामायण को समाप्त किया था। वह सीता-विवाह से सीता-उद्धार तक लिखना चाहता होगा।[2]

शंकरदेव और माधवदेव द्वारा पूर्ति :

इन दोनों काण्डों को कालान्तर में परवर्ती दो कवियों ने पूरा किया। 'कथा-गुरुचरित' में कहा गया है कि अनन्त कन्दली नामक कवि माधव कन्दली की रामायण में कुछ इधर-उधर की जोड़-तोड़ कर रामायण लिखना चाह रहे थे। माधव कन्दली ने अपनी रामायण के लुप्त होने की सम्भावना से रक्षा करने के लिए शंकरदेव को स्वप्न दिया। शंकरदेव ने स्वयं उत्तर-काण्ड की रचना की और अपने शिष्य माधवदेव से आदि-काण्ड की रचना करवायी। ये दोनों काण्ड माधव कन्दली की रामायण में जोड़ दिये गये।

---

१. श्री डिम्बेश्वर नेओग—असमीया साहित्यर बुरंजि, पृ० १८८।
२. श्री उपेन्द्रनाथ लेखारु—असमीया रामायण साहित्य, पृ० ४२।

स्वमत—ऐसा कहना कि वाल्मीकि-रामायण मूलतः पाँच काण्डों की थी, इसलिए माधव-कन्दली ने भी पाँच काण्डों की ही रामायण लिखी, भ्रमपूर्ण है। कन्दली के जन्म से कई शताब्दी पूर्व ही वाल्मीकि-रामायण के सातों काण्डों का प्रचार हो चुका था। आक्रमण अथवा अग्निकाण्ड के कारण आदि-अन्त के काण्डों के लोप होने के पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते। फिर भी ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि किसी कारणवश ये दोनों काण्ड विकृत हुए और उनके कुछ अंश ही शेष रह गये, अनन्त कन्दली इन्हें अपने दृष्टिकोण के अनुसार नवीन रूप देना चाह रहे होंगे। शंकरदेव को चिन्ता हुई और उन्होंने दोनों काण्डों को माधव कन्दली की रामायण में जोड़ कर उसे वैष्णवभक्ति के प्रभाव से सम्पृक्त कर प्रचारित किया। शंकरदेव असम में कृष्णभक्ति के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक हुए हैं।

जीवनवृत्त-प्राप्ति का कठिनाइयाँ :

(१) **प्रमाणाभाव**—अपने देश के अन्य लेखकों के समान ही माधव कन्दली ने भी कुछ ऐसा नहीं कहा जिससे कि उनके जीवन-काल आदि पर प्रकाश पड़ता। शेष दो लेखकों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। यह अवश्य है कि शेष दो कवियों पर उनकी शिष्य-परम्परा ने चरित-ग्रन्थों में कुछ प्रकाश डाला है, किन्तु यह सामग्री भी साम्प्रदायिक होने के कारण शत-प्रतिशत शंका-मुक्त नहीं है।

(२) **भाषा-विवाद**—दूसरी कठिनाई असमीया और बँगला के परस्पर विवाद की है। असमीया-भाषी बँगला-भाषी लोगों से इसलिए असन्तुष्ट हैं कि वे लोग अंग्रेजी पढ़ कर अंग्रेजों के साथ रह कर उन्हें निरन्तर भ्रमित करते रहे और बताते रहे कि असमीया बँगला की ही एक गँवारू भाषा है। इसके फलस्वरूप असमीया का विकास न हो सका।

बंगालियों का दावा—कुछ बंगाली आज भी माधव कन्दली और शंकरदेव को १६वीं शताब्दी में उत्पन्न बँगला लेखक मानते हैं। डा० सुकुमार सेन के विचारों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

'पन्द्रहवीं शताब्दी के विषय में नहीं जानता, किन्तु सोलहवीं शताब्दी में माधव कन्दली और शंकरदेव को छोड़ कर कृत्तिवास का और कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। माधव कन्दली ने छः काण्ड रामायण की रचना की थी, शंकरदेव ने उत्तर-काण्ड लिख कर काव्य को सम्पूर्ण किया। इस काव्य का प्रसार उत्तर-पूर्व बंग, आधुनिक कोच-विहार-असम अंचल में सीमा-बद्ध था। माधव कन्दली और शंकरदेव इस समय असमीया-भाषी लोगों के हिस्से में पड़ गये हैं। इन्होंने जिस भाषा में लिखा है, वह बंगाल देश की उत्तरपूर्वी **कथ्य उपभाषा** है। इस उपभाषा से बाद में असमीया भाषा प्रवर्तित की गयी। १६वीं-१७वीं शताब्दी तक इस भाषा की स्वतंत्र-सत्ता नहीं थी। अतएव माधव कन्दली और शंकरदेव बँगला के ही प्राचीन-

कवि हैं।"[1]

असमीया वालों का आवेश—सुकुमार सेन कन्दली के छः काण्डों का उल्लेख करते हैं, जबकि असमीया-लेखक पाँच का। क्या यह सेन का अज्ञान है या असमीया वालों का सीमा-तोड़ आवेश। असमीया-लेखक कन्दली को १४वीं शताब्दी का मानते हैं। उनमें सत्यता है या उनका भ्रम, कहा नहीं जा सकता। लगता है प्रतिक्रिया-वश वे अपने भाषा-साहित्य की स्वतंत्र सत्ता प्राचीन से प्राचीनतर सिद्ध करना चाहते हैं। असमीया के एक उत्कृष्ट आलोचक श्री डिम्बेश्वर नेओग असमीया रामायण को बँगला और हिन्दी रामायणों से सौ से तीन सौ वर्ष पुराना बताते हैं। वे तुलसीदास का जन्म १५८९ ई०, मृत्यु १६८० ई० और रामायण-रचनाकाल का समय १६३१ ई० बताते हुए उपर्युक्त निर्णय देते हैं।[2] उन्होंने विक्रम संवत् को ईस्वी समझा और लिखा है। मैंने उन्हें लिखा था किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। खैर, यह तो भ्रम की बात हुई, जिन्हें भ्रम नहीं है, वे भी असमीया रामायण के लेखक का जन्म १४वीं शताब्दी में ही मानते हैं, कोई प्रथमार्द्ध में कोई द्वितीयार्द्ध में।

माधव कन्दली :

(१) कालनिर्णय— लंका-काण्ड की समाप्ति पर कन्दली ने लिखा है—

रामायण सुपयार, श्रीमहामाणिके ये,
वराह राजार अनुरोधे।

वराह राजा श्री महामाणिक्य के अनुरोध से उन्होंने रामायण लिखी। महामाणिक्य कहाँ का राजा था और कहाँ रहता था—इसकी खोज का आधार ले कर ही असमीया विद्वानों ने कन्दली के स्थान और काल का अनुमान लगाया है।

शंकरदेव ने उत्तरकाण्ड लिखा, साथ ही उन्होंने इस कांड में माधव कन्दली का नाम आदर से लिया है, इससे स्पष्ट है कि कन्दली उनसे पूर्व उत्पन्न हुए थे। शंकरदेव का जीवनकाल १४४९ से १५६८ ई० है। डा० सुकुमार सेन ने भी मृत्यु-सन् तो कम से कम स्वीकार कर ही लिया है। जन्म का सन् संदिग्ध हो सकता है। अतएव यह निश्चित है कि कन्दली पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध से पहले ही उत्पन्न हुए होंगे।

कन्दली के आश्रयदाता महामाणिक्य को भिन्न-भिन्न विद्वानों ने जयन्तापुर, त्रिपुरा और सोनपुर का कछारी राजा बताया है। महामाणिक्य उपाधि जयन्तापुर एवं त्रिपुरा दोनों स्थानों के शासकों की रही है किन्तु ये लोग अपने को वराही नहीं

---

१. डा० सुकुमार सेन—बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१), पृ० १०५।
२. डिम्बेश्वर नेओग—असमीया साहित्यर बुरंजी, पृ० १९४।

कहते थे। कछारी जाति की एक शाखा वराही थी, इस शाखा के राजा महामाणिफा[1] ने उजनि अंचल के सोनपुर में राजधानी स्थापित कर १४वीं शती के मध्य राज्य किया। श्री हेमचन्द्र गोस्वामी इसी राजा को कन्दली का प्रेरणादायक राजा मानते हैं। श्री वेणुधर शर्मा श्री गोस्वामी का समर्थन कर शिवसागर जिला के सोनारि को भी सोनपुर बताते हैं, यहाँ बरही नाम का चाय-बगीचा और स्थान है। त्रिपुरा एवं जयन्तापुर कवि के जन्मस्थान से दूर भी हैं।[2]

श्री माधवचन्द्र वरदलै, पं० कनक शर्मा, श्री कालिराम मेधी, स्व० कनकलाल बरुवा, डा० वाणीकान्त काकती आदि विद्वान् कन्दली को १४वीं शती का ही मानते हैं, अन्तर यही है कि कोई उन्हें इस शती के आदि का, कोई मध्य का और कोई अन्त का मानता है। जन्मस्थल नौगाँव अंचल भी सर्व स्वीकृत है, केवल गाँव के नाम के विषय में मतभेद है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ब्राह्मण-वंशीय माधव कन्दली ने १४०० ई० के आसपास असम के नौगाँव अंचल में कहीं जन्म लिया, उन्होंने महामाणिक्य नामक या उपाधिधारी किसी वराही राजा के अनुरोध से रामायण-रचना की। अब उनकी रामायण के मूल पाँच काण्ड प्राप्य हैं। आदि एवं उत्तर काण्डों की रचना अन्य कवियों ने की है, जिनका परिचय आगे दिया जाएगा।

कन्दली उपाधि—अब असम में इस उपाधि का प्रयोग नहीं होता, किन्तु वैष्णव एवं प्राक् वैष्णव-युग में इसका व्यवहार अनेक पंडितों ने किया है। लेखारु महाशय कहते हैं कि कन्दली उपाधिधारी पंडितों ने अलग-अलग स्थानों पर जन्म लिया, अतएव कन्दली शब्द स्थानवाचक नहीं हो सकता है। यह उपाधि वंशगत भी प्रतीत नहीं होती, क्योंकि अनन्त कन्दली के पिता का नाम रत्न पाठक एवं रुचिनाथ के पिता का नाम कृष्ण आचार्य था। लेखारु असमीया-भाषा में कन्दल शब्द का अर्थ वाद मान कर कहते हैं कि कन्दल करने में पटु व्यक्ति कन्दली हुआ। शास्त्रार्थ में पारदर्शी लोग ही कन्दली उपाधि पाते होंगे।[3] सत्येन्द्रनाथ शर्मा ने भी न्यायशास्त्र में व्युत्पत्ति रखने वाले व्यक्ति को कन्दली माना है।[4] श्रीधर नाम के एक पंडित की न्यायदर्शन पर उपलब्ध एक पोथी का नाम न्याय-कन्दली है। अनन्त कन्दली नामक कवि ने स्वीकार किया है कि तर्क करने से उन्हें कन्दली नाम प्राप्त हुआ—'तर्कत लभिला नाम अनन्त कन्दली।' माधव कन्दली जन-समाज में कविराज कन्दली कहलाते थे—

---

१. महामाणिफा आगे महामाणिक्य कहलाये, फा उपाधि क्य अथवा क में परिणत हुई।
२. सत्येन्द्र नाथ शर्मा—असमीया साहित्यर इतिवृत्त, पृ० ४२।
३. उपेन्द्रनाथ लेखारु—असमीया रामायण साहित्य, पृ० २४-२६।
४. सत्येन्द्रनाथ शर्मा—असमीया साहित्यर इतिवृत्त, पृ० ४२।

कविराज कन्दली ये आमाके से बुलि कय,
माधव कन्दली मोर नाम।

बँगला-रामायण में 'हर-पार्वती कोन्दल' प्रसंग आया है, यहाँ भी कोन्दल का अर्थ पारस्परिक वाद-विवाद अथवा कलह प्रतीत होता है।

कन्दली के ग्रन्थ और व्यक्तित्व—कन्दली के नाम से प्रचलित दो अन्य ग्रन्थ भी हैं—(१) देवजित और (२) ताम्रध्वज। देवजित में अर्जुन और इन्द्र के युद्ध का वर्णन है। इस काव्य में यज्ञ और तपस्या आदि की अपेक्षा भक्ति और नामधर्म का माहात्म्य दिखाया गया है। असम में नामधर्म की महत्ता का प्रचार करने वाले हैं शंकरदेव, अतएव निश्चय ही यह ग्रन्थ परवर्ती किसी अन्य माधव कन्दली की रचना है। ताम्रध्वज जैमिनी महाभारत का अनुवाद है। यज्ञाश्व के लिए पाण्डवों और ताम्रध्वज के मध्य हुए युद्ध का इसमें वर्णन है। यह पुस्तक भी परवर्ती-रचना सी प्रतीत होती है। ये दोनों पुस्तकें इतिहास और पुरातत्त्व विभाग में संरक्षित हैं।[1]

रामायण—माधव कन्दली ने रामायण-रचना-विषयक अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है। वाल्मीकि-रामायण को पढ़ कर उसे अपने प्रबन्ध में जिस प्रकार प्रस्तुत किया है उसे उन्होंने इन पंक्तियों में प्रकट किया है—

आपोनार बुद्धि अर्थ यि मत बुजिलो। संक्षेप करिया ताक पद विरचिलो॥
समस्त रसक कोने जानिवाक पारे। पक्षी सब उरह येन पला अनुसारे॥
कवि सब निबन्धय लोक व्यवहारे। कतो निज कतो लम्भ कथा अनुसारे॥

मैंने (वाल्मीकि की कथा का) जैसा अर्थ समझा उसे संक्षिप्त कर लिखा। समस्त रस को कौन जान सकता है। सभी पक्षी अपने-अपने परों (की शक्ति) के अनुसार उड़ते हैं। सभी कवि लोक-व्यवहार के अनुसार रचना करते हैं, वे कुछ अपनी ओर से और कुछ विस्तृत कथा के अनुसार कथा ग्रहण करते हैं—[३६६७-८]।

कन्दली ने सच में ऐसा ही किया है। उनकी रामायण भारतीय-संस्कृति की असमदेशीय विशिष्टता का दर्पण है। इस ग्रन्थ में वाल्मीकि के दृष्टिकोण को अपनाने की चेष्टा की गयी है। असमीया विद्वान् श्री कृष्णकान्त सन्दिकै ने एक बार कहा था—'संस्कृत-रामायण के पाठ-निर्णय और इतिहास-आलोचना के लिए प्राचीन असमीया-रामायण की सहायता आवश्यक होगी।'[2] कथन में आंशिक सत्यता तो है ही। लेखारु के इस कथन में भी आंशिक सत्यता है—'उन्होंने काव्य-प्रचार के मूल-उद्देश्य से रामायण लिखी, रामभक्ति का प्रचार उनका उद्देश्य न था।' कहा जाता है कि भक्ति-विषयक अंश प्रक्षिप्त हैं। यदि ऐसा नहीं है तो यह मानना पड़ेगा कि कन्दली

१. सत्येन्द्रनाथ शर्मा—असमीया साहित्यर इतिवृत्त, पृ० ४८।
२. उपेन्द्रनाथ लेखारु—असमीया रामायण-साहित्य, पृ० ३८।

उत्तर एवं मध्य भारत के धर्म-प्रचारकों एवं अध्यात्म-रामायण से प्रभावित थे।

इस कवि के सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। लेखक राम का भक्त है, वह स्थान-स्थान पर राम की वन्दना करता है। रामायण के मर्मस्पर्शी-स्थलों की उसे पहचान है। जिस शैली एवं पद्धति में उसने राम-कथा प्रस्तुत की, शंकरदेव एवं माधवदेव ने उसी का अनुसरण कर उत्तर एवं आदि काण्ड लिखे हैं।

शंकरदेव (असमीया उत्तरकाण्ड-लेखक—१४४९-१५६८ ई०)

श्रीमन्त शंकरदेव असमीया-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट लेखक, भक्त, समाज-सुधारक और सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक हैं। इनके जीवन पर अनेक चरित-ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनके अनुसार यहाँ उनका संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

प्रायः सभी असमीया विद्वान्[1] शंकरदेव का जीवन-काल शक संवत् १३७१ से १४९० अर्थात् १४४९ ई० से १५६८ ई० मानते हैं।

वरदोवा सत्र के कथाचरित (१४६७ ई०) के अनुसार इनका जन्म कार्तिक मास वृहस्पतिवार अमावस्या शक-सम्वत् १३७१ में हुआ।

दैत्यारि एवं अनिरुद्ध ने १४९० शक (१५६८ ई०) में मृत्यु होना लिखा है। मृत्यु का संवत् निर्विवाद है तथा अनेक लेखकों ने स्वीकार किया है कि उनकी आयु ११९ वर्ष थी—

वरिषेक मन्द आयु भैल छय कुरि।

(६ कोड़ी=१२० में एक मन्द=११९ वर्ष—रामचरण-३९३५)

एक वाम छय विंश वरिष भैलन्त।

(६×२०=१२० में एक वाम=११९ वर्ष।—शंकर-चरित-सा० भट्टाचार्य, २०६)

इस प्रकार मृत्यु-शक १४९० में ११९ वर्ष कम करने पर उनका जन्म-शक १३७१ निकलता है और वरदोवा-सत्र के कथाचरित में दिये गये शक की पुष्टि हो जाती है।

शंका—शंकरदेव को जन्म-तिथि के सम्वन्ध में शंका रह जाती है। उनके चार मुख्य चरित-लेखकों में दैत्यारि ठाकुर एवं भूषण द्विज ने जन्म-तिथि के बारे में नहीं लिखा। रामचरण आश्विन मास में जन्म का होना बताते हैं और रामानन्द फाल्गुन

१. हरिनारायण दत्त वरुआ—चित्रभागवत, पृ० ११।
डिम्बेश्वर नेओग—असमीया साहित्यर बुरञ्जि, पृ० २५०।
जैराम दौलतराम—नामघोषा-सन्देश, पृ० १५।

मास में । केवल बरदोवा गत के कथाचरित में १३७१ शक दिया है और जन्म का मास कार्तिक बताया है । श्री डिम्बेश्वर नेओग १३७१ शक आश्विन मास में जन्म-तिथि स्वीकार करते हैं ।[1] इस प्रकार मासादि तिथियों के सम्बन्ध में मतभेद है ।

अनिरुद्ध नामक एक और परवर्ती लेखक शंकरदेव का जन्मकाल १३८५ शक मानते हैं । इनकी पोथी १६७७ शक (१७५५ ई०) में लिखी गयी थी और श्री नेओग के मत से इसका १३८५ शक निश्चय ही भूल है । किन्तु यही विद्वान् अनिरुद्ध के मृत्यु-शक १४९० को ठीक मानते हैं । साथ ही वे ऐसा भी उल्लेख करते हैं कि किसी-किसी ने 'एक बरिष मन्द आयु छय कुरि' के स्थान पर 'डेर बरिष' (डेढ़ वर्ष) एवं किसी-किसी ने 'तेर बरिष' (१३ वर्ष) करके अनिरुद्ध की आधुनिक पोथी से इसे ठीक बिठालने का अनुचित और निराधार कार्य किया है ।[2]

शंकरदेव जैसे असाधारण पुरुष की आयु ११९ वर्ष की हो सकती है, किन्तु साधारणतः यह असम्भव प्रतीत होती है । यदि स्वाभाविकता की ओर ध्यान दिया जाए तो अनिरुद्ध का जन्म शक १३८५ अधिक समीचीन प्रतीत होता है । इधर छः कोड़ी में एक के स्थान पर तेरह वर्ष कम करने पर १०७ वर्ष की आयु भी विश्वसनीय प्रतीत होती है । डॉ० सुकुमार सेन मृत्यु-शक पर तो विश्वास करते प्रतीत होते हैं किन्तु जन्म-शक पर वे मौन हैं ।[3]

किन्तु शंकरदेव की आयु के ११९ वर्ष होने और उनकी मृत्यु १४९० शक में होने का उल्लेख ही अधिकांशतः हुआ है । यदि असमीया-भाषी विद्वान् प्रादेशिकता के आवेश में अपने देश में उत्पन्न इस भारतीय संत की जन्मतिथि को पीछे धकेलने का प्रयास नहीं करते तो जन्म-शक १३७१ स्वीकार किया जा सकता है ।

जीवन-परिचय—प्राप्त जीवन-परिचय के अनुसार इनका जन्म १४४९ ई० में असम के नौगांव जिला के बटद्रवा के निकट आलिपुखुरी नामक स्थान पर हुआ । पिता कुसुमवर शिरोमणि भुञा और माता सत्यसन्धा दोनों इनके जन्म के कुछ ही वर्षों के भीतर परलोकगामी हुए । पालन नानी खेरसुती ने किया । नानी की डाँट-डपट खाकर बड़ी कठिनाई से ये १३ वर्ष की आयु में महेन्द्र कन्दली की पाठशाला में पढ़ने गये और अत्यल्प काल में इन्होंने व्याकरण, काव्यकोश, पुराण, रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया । इन्होंने एक-एक कर दो विवाह किये, किन्तु दोनों पत्नियाँ इन्हें आध्यात्मिक एवं साहित्यिक जगत में विकसित होने का अवकाश दे कर इन्हें संसार में अकेला छोड़ गयीं । शंकरदेव को पिता बनने का

१. डॉ० डिम्बेश्वर नेओग—असमीया साहित्यर बुरञ्जि, पृ० २५० ।
२. वही, पृ० २४९-५० ।
३. डॉ० सुकुमार सेन—हिस्ट्री ऑफ़ बेंगाली लिटरेचर, पृ० ११६ ।

सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

इन्होंने लम्बी-लम्बी यात्राएं कर गया, पुरी, वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, काशी, प्रयाग, सीताकुंड, वाराहकुंड, अयोध्या और बदरिकाश्रम आदि तीर्थों का भ्रमण किया था। ये अनेक साधु-संन्यासियों के सम्पर्क में आये थे और अनेक वैष्णवाचार्यों के साथ इनका विचार-विमर्श हुआ था।

जीवन-दर्शन—इनके समय में बौद्धधर्म पूर्ण ह्रास को प्राप्त हो कर अनेक विकृत रूप धारण कर चुका था। समस्त असम में हिंसात्मक शाक्तधर्म प्रचलित था। अनेक प्रकार के तांत्रिक व्यभिचार और अनाचार प्रचलित थे। शंकर ने एक ईश्वर के ध्यान का प्रचार किया। उन्होंने कृष्णलीला के पट अंकित कर सबको भगवन्मुखी करने का प्रयास किया। कलि का परमधर्म हरिनाम-जप बता कर ब्राह्मण से ले कर चण्डाल तक का संगठन किया। कई मुसलमान और मीरी, गारो, आहोम, भोटिया आदि पहाड़ी-जन इनके भक्त बन गए। अहिंसा, अस्पृश्यता, मादक-द्रव्य-वर्जन, प्राणी-मात्र पर दया आदि इनके धर्म की मूल नीति थी।[1]

एकदेव एक सेव, एक विने नाइ केव।
नाहि भकतित जाति आचार विचार ॥ (कीर्तन)

शंकरदेव ने भक्ति में दास्यभाव को प्रधानता दे कर राधाकृष्ण-तत्त्व की उपेक्षा की और निष्काम भक्ति पर जोर दिया। कृष्ण ही परब्रह्म हैं, वे सनातन तथा ज्ञानमय हैं। अन्य देव-देवी मिथ्या हैं। तांत्रिक-उपासनाओं से लोगों को विरत करने के लिए उन्होंने विष्णु के अतिरिक्त किसी की भी उपासना करने अथवा किसी भी अन्य उपास्य के मन्दिर में जाने का वर्जन किया। उनकी भक्ति 'एक शरणीया-भक्ति' कहलाती है। उनके ऊपर रामानुज एवं शंकराचार्य दोनों का प्रभाव है। इनके धार्मिक दर्शन के विषय में मतभेद है। कोई उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी, कोई अद्वैतवादी एवं कोई सारग्राही दार्शनिक मानता है।[2]

भागवती-धर्म के प्रचार द्वारा जनता की रुचि परिष्कृत रखने के लिए उन्होंने बौद्धों के संघारामों की पद्धति पर सत्र नाम के मठ बनवा कर बहुत से विरक्त और गृहस्थ भक्तों को बसाने की चेष्टा की थी। उन्होंने सत्रों को गणतांत्रिक-पद्धति से चलाया। इनमें औषध बनाने की शिक्षा, चित्रविद्या तथा कारीगरी आदि अनेक विद्याओं की चर्चा आदि की भी व्यवस्था थी।[3] असम के गाँव-गाँव में नामघर हैं, जहाँ कृष्ण का नाम-जप तो होता ही है साथ ही ये नामघर गाँव की पंचायत का

---

१. हरिनारायण दत्त बरुआ—चित्रभागवत (भूमिका), पृ० १२।
२. वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य—धर्मयुग (५ सितम्बर, ६५), पृ० १८।
३. हरिनारायण दत्त बरुआ—चित्रभागवत (भूमिका), पृ० ६५।

कार्य भी सम्पादित करते हैं। नामघर में कोई मूर्ति अथवा चित्र नहीं होता, वेदी के सिंहासन पर एक कीर्तन पुस्तिका तथा मिट्टी का एक दीपक होता है।

शंकरदेव असमीया साहित्य-जगत् के सूर्य हैं। असम के धर्म, ललितकला और साहित्य के क्षेत्र में उनका दान अतुलनीय है। वे कवि, समाजसंस्कारक, धर्मप्रवर्त्तक, नाट्यकार, अभिनेता, संगीतज्ञ और भक्त थे। उन्होंने संस्कृतग्रंथों के सहारे जनसाधारण की भाषा में काव्य, नाटक, गीत आदि की स्वयं रचना की और अनेक लोगों को भी इस कार्य में लगाया।[1]

माधवदेव ने इनके शारीरिक-रूप का जैसा वर्णन किया है उससे प्रकट होता है कि ये अत्यन्त नाग्दर्शन एवं प्रभावी व्यक्तित्व वाले थे। इनके भव्य और दिव्य व्यक्तित्व से भी प्रभावित हो कर बहुतेरे शिष्य बने होंगे।

ब्राह्मण-विरोध—अनेक ब्राह्मणों ने इनका विरोध कर आहोम और कोच राजाओं से शिकायत की, किन्तु इन्होंने अपने पांडित्य से राजाओं को संतुष्ट किया। शंकरदेव ने स्वयं कभी ब्राह्मण जाति का विरोध नहीं किया। अनेक ब्राह्मण इनके शिष्य हो गये थे। ये ब्राह्मण-शिष्य को स्वयं नाम-मंत्र दे कर पोथी को प्रणाम कराते थे, ब्राह्मणों की संख्या बढ़ने पर मंत्र देने आदि का कार्य इन्होंने गुरु को सौंप दिया। ब्राह्मणों के कहने पर कि शूद्र को मंत्र देने का अधिकार नहीं है, ये तथा इनके ब्राह्मण-शिष्य कह दिया करते थे कि ठीक है, शूद्र ब्राह्मण को मंत्र देने का अधिकार नहीं रखता किन्तु अन्य को तो मंत्र दे सकता है।[2]

ग्रंथ :

काव्य—(१) हरिश्चन्द्र उपाख्यान, (२) रुक्मिणीहरण काव्य, (३) बलि-छलन, (४) अमृत-मंथन, (५) गजेन्द्र-उपाख्यान, (६) अजामिल-उपाख्यान और (७) कुरुक्षेत्र।

भक्तितत्त्व-प्रकाशक संग्रह—(१) भक्ति-प्रदीप, (२) भक्तिरत्नाकर (संस्कृत) (३) निमिनवसिद्ध-सम्वाद।

अनुवाद-मूलक—(१) भागवत (१, २, १०, ११, १२, स्कन्ध), (२) उत्तराकाण्ड-रामायण।

अंकीया नाट—(१) पत्नी प्रसाद, (२) कालियदमन, (३) केलिगोपाल, (४) रुक्मिणी-हरण, (५) पारिजातहरण और (६) रामविजय।

गीत—(१) बरगीत, (२) भटिमा।

नाम-प्रसंग—(१) कीर्तन और गुणमाला।

---

१. सत्येन्द्रनाथ शर्मा—असमीया साहित्यर इतिवृत्त, पृ० ८१।

२. वाणीकान्त काकती—दि मदर गॉडेस कामाख्या, पृ० ७६-७७।

शंकरदेव के 'कीर्तन' का असम में वही स्थान है जो तुलसीदास के रामचरित-मानस का हिन्दी-भाषी क्षेत्र में है।

भाषा-साहित्य के प्रथम नाट्यकार और अभिनेता—शंकरदेव असमीया-साहित्य में तो प्रथम नाट्यकार हैं ही, साथ ही उत्तर भारत की समस्त भाषाओं के भी प्रथम नाट्य-लेखक है। संस्कृत-नाटकों की शैली के अनुरूप ही इन्होंने गद्य-पद्य में नाटकों का सृजन किया है। विद्यापति की मैथिली-हिन्दी से प्रभावित हो कर इन्होंने भी अपने नाटकों में कृत्रिम ब्रजबुलि भाषा का प्रयोग किया है। इनका गद्य लयात्मक है। उन्होंने नाटकों के अभिनय का भी प्रबन्ध किया था। वे स्वयं ही नाट्य के अनुरूप पदों का निर्माण करते थे, स्वयं अभिनय भी करते थे। अभिनय में कभी-कभी नृत्य और संगीत की प्रधानता रहती थी।

इनकी प्रौढ़ रचना कीर्तन है। भक्ति-तत्त्व को अत्यन्त सुचारुरूपेण प्रस्तुत किया गया है। कवि ने भक्ति-विभोर हो कर स्तुतियाँ भी की है। सुन्दर अभिव्यक्ति, चित्रात्मक वर्णन, मौलिक शैली एवं लयात्मक प्रवाह के कारण यह ग्रन्थ आधुनिक पाठकों को भी अत्यधिक आनन्द देता है। 'बच्चे इसके गीत और कथा से प्रसन्न होते हैं, युवकों को काव्य-सौन्दर्य का रस मिलता है और वृद्धजनों को इसमें धर्म और ज्ञान की चर्चा मिलती है'।[1] शंकरदेव ने इतना अधिक एवं इतना उत्कृष्ट लिखा है कि असमीया-साहित्य के इतिहास-ग्रंथों का लगभग आधा कलेवर इन्हीं की चर्चा से भर जाता है। इनकी सम्पूर्ण प्रतिभा का परिचय देना प्रस्तुत ग्रंथ में सम्भव न होगा।

रामायण का उत्तरकाण्ड—माधव कन्दली की रामायण में शंकरदेव ने उत्तर-काण्ड जोड़ा था। इन्होंने भी आख्यान को भक्ति-परक दृष्टिकोण दिया है। वाल्मीकि-रामायण से केवल भक्ति-परक-दृष्टिकोण का ही अन्तर नहीं है, चरित्र-चित्रण में भी मौलिकता का परिचय दिया है। करुणा-प्लावित विरह का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए इन्होंने सीता को कुछ नवीनता के साथ चित्रित किया है। सीता अपनी छीछालेदर के कारण राम से अत्यन्त कुपित हो कर साधारण पतिव्रता नारी के समान राम को खूब जली-कटी सुनाती हैं। राम उनके क्रोध से भयभीत हो जाते हैं। फिर भी उनके क्रोध को परिचालित करने वाला भाव उग्र पति-प्रेम ही है। वात्सल्य का भी हृदयद्रावक चित्रण है। सीता के पाताल-प्रवेश की मार्मिकता का निर्वाह कवि ने जिस कुशलता से किया है, उससे ही उसमें महाकवि के पूर्ण लक्षण मिल जाते हैं। भोजन-भट्ट दुर्वासा को प्रस्तुत कर लेखक ने हास्य की सृष्टि की है। इतना सब होते हुए भी लेखक ने मूलकथाकार कन्दली के वर्णन से साम्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

---

१. श्री विरिंचि कुमार बरुआ—शंकरदेव वैष्णवाइट सेंट ऑफ़ असम, पृ० ३१।

माधवदेव (कायस्थ) (१४८९ ई०-१५९६ ई०) :
(आदिकाण्ड-लेखक)

शंकरदेव के एक चरित-लेखक रामानन्द का कहना है कि शंकरदेव और माधवदेव के पूर्वज कन्नौज से आये थे। शंकरदेव के आन्दोलन को सबल बनाने का श्रेय माधवदेव को है। गुरु के अनुसार चेला भी कृष्ण भक्त था, किन्तु इन्होंने भी रामायण के एक काण्ड की पूर्ति की है, इसी नाते असमीया-रामायणकार के रूप में इनका भी संक्षिप्त जीवन-वृत्त प्रस्तुत है।

जीवनकाल—१४११ शक (१४८९ ई०) में लखीमपुर के नारायणपुर अंचल में लामकणा अथवा गोविन्दगिरि भुइयां के औरस और मनोरमा के गर्भ से इनका जन्म हुआ है। दैत्यारि नामक चरित-लेखक ने इनका मृत्यु-शक १५१८ (१५९६ ई०) दिया है। इस प्रकार इनकी आयु १०८ वर्ष की होती है।[1]

जीवन-परिचय और ग्रन्थ :

माधवदेव शाक्तधर्मी एवं शक्ति विद्वान् थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् व्यापार का भार इन्होंने सँभाल लिया था। माता बीमार पड़ी, तब इन्होंने मनौती मानी थी। उनके रोगमुक्त होते ही देवी की बलि के लिए दो श्वेत बकरों के क्रय के लिए इन्होंने अपने बहनोई रामदास को बाजार भेजा। वे शंकरदेव के भागवतीधर्म से प्रभावित हो कर हिंसा से विरत हो उठे। माधवदेव ने पाण्डित्य के दर्प में आ कर शंकरदेव से बहस की, उसमें वे परास्त हो कर शंकरदेव के शिष्य हो गये।

वे शंकर की बहुत सेवा करते थे। गमछा, गरम जल, तेल-वस्त्र आदि की व्यवस्था वे ही करते थे। गुरु की सेवा के लिए माधव ने आजन्म कौमार्य-व्रत स्वीकार कर लिया था।[2]

राजा रघुदेव ने इन्हें शिष्य-मण्डली सहित एक बार पकड़ लिया था, क्योंकि कुछ लोगों ने जा कर राजा से अनुरोध किया था कि एक शूद्र अनाचार कर रहा है। वागीश भट्टाचार्य के अनुरोध पर वे छोड़ दिये गये।

श्री सत्येन्द्रनाथ शर्मा ने इनकी प्रतिभा को भी बहुमुखी बताया है, वे धर्म-प्रचारक, शास्त्रवेत्ता, भक्त, कवि, नाट्यकार और सुगायक थे।

ग्रन्थ—

१. रामायण (आदिकाण्ड)
२. बरगीत
३. राजसूयकाव्य
४. जन्म-रहस्य
५. नामघोषा
६. नाममालिका का अनुवाद

---

१. डिम्बेश्वर नेओग—असमीया साहित्यर बुरञ्जि, पृ० ४१०।
२. सत्येन्द्रनाथ शर्मा—असमीया साहित्यर इतिवृत्त, पृ० ६४।

७. भक्ति-रत्नावली	८. चोरधरा
९. पिपरागुचोवा	१०. भोजन-विहार
११. भूमि लेटोवा नाट	१२. दधि-मथन
१३. अर्जुन-भंजन	१४. नृसिंह-यात्रा
१५. गोवर्द्धन-यात्रा	१६. रामयात्रा

नामघोषा—माधवदेव का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ नामघोषा है। स्व० वाणीकान्त काकती ने कहा है—इसमें तीन धाराएँ मिल कर विशाल आनन्दसागर की ओर प्रवाहित हो रही हैं—(१) श्री शंकरदेव की स्मृति, (२) माधवदेव की आत्मनतिमा और (३) कृष्णभक्ति का माहात्म्य।

इसके हजार घोषा छन्दों में ६०० छन्द विभिन्न पुराणों के भक्ति-प्रधान श्लोकों के अनुवाद हैं, शेष ४०० छन्द इनके स्वयं के रचे हुए हैं। अनुवाद को भी उन्होंने मूल को आत्मसात् कर ही प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में कृष्ण-नाम का माहात्म्य, भक्ति की श्रेष्ठता और उसका स्वरूप, गुरु-महिमा, नाम-रूप का अभेद, व्यभिचारी व्यक्ति की निन्दा, कवि की विनीत-स्तुति आदि का वर्णन कवित्वमयी शैली में हुआ है।

काव्य की दृष्टि से **राजसूय** काव्य भी उत्कृष्ट है। बरगीतों में ललित भाषा के माध्यम से कृष्ण की बाल-लीलाओं का सुमधुर वर्णन किया गया है। इनमें कवि के मर्म की सफल अभिव्यंजना हुई है।

संख्या ८ से १६ तक की पुस्तकें नाटक हैं। इनमें से अधिकांश नाटकों में कृष्ण की बाल-लीलाओं, वात्सल्य और हास्यरस के वर्णनों के साथ ग्राम्य-जीवन का प्रतिविम्ब उपलब्ध है। आधुनिक एकांकी से इनका सादृश्य भी है। अन्तिम तीन नाटकों का अभिनय भी किया गया था, नृसिंह का अभिनय स्वयं माधवदेव ने किया था। अब ये तीन नाटक उपलब्ध नहीं हैं।

आदिकाण्ड—रामायण के आदिकाण्ड के लिखते समय माधवदेव ने कन्दली के दृष्टिकोण को भली प्रकार हृदयंगम कर लिखने का प्रयास किया है। वर्णन-पद्धति, कथा प्रस्तुत करने के दृष्टिकोण एवं अप्रस्तुत-योजना आदि की दृष्टि से उन्होंने अपने काण्ड को कन्दली-रामायण में खपा देने का प्रयास किया है।

पता नहीं कन्दली ने रामायण के प्रारम्भ करने में क्या दृष्टिकोण अपनाया होता, माधवदेव का प्रारम्भ तो बँगला-रामायण के प्रारम्भ से समानता रखता है। या तो माधवदेव ने अपने पूर्ववर्ती बँगला-रामायणकार कृत्तिवास का ग्रंथ पढ़ लिया था अथवा दोनों के प्रेरणाग्रंथ एक ही थे।

काव्य-प्रतिभा के सुन्दर परिचय के लिए तो माधवदेव के कृष्ण-विषयक साहित्य का ही अध्ययन करना होगा। वहीं उनकी प्रतिभा अपने को मुक्त-रूप से अभिव्यक्त करती है।

बँगला-लेखक कृत्तिवास

कृत्तिवास का प्रामाणिक जीवन-वृत्त नहीं मिलता। कृत्तिवास द्वारा लिखित आत्म-परिचय मिला है, जिसकी सर्वप्रथम सूचना स्व० श्री हाराधन दत्त ने स्व० श्री दीनेशचन्द्र सेन को दी। उन्होंने दीनेश बाबू को मूल पोथी न दे कर उसकी प्रतिलिपि दी थी, इसी को दीनेश बाबू ने अपनी पुस्तक 'वंग भाषा ओ साहित्य' के द्वितीय संस्करण में प्रकाशित किया। लगता है हाराधन के कारण बड़ी गड़बड़ हुई, जैसा कि आगे के वर्णन से स्पष्ट है। हारावन ने पोथी का लिपिकाल १५०१ ई० बताया था। उन्होंने नगेन्द्र बाला नामक एक महिला को पोथियाँ बेच दीं, इस महिला ने आत्म-हत्या कर ली, अब मूल पोथी अप्राप्य थी। विद्वानों ने आत्मचरित वाली पोथी तथा इसके बताये गये लिपिकाल (१५०१ ई०) पर सन्देह किया और इसे अप्रामाणिक माना जाने लगा।

ज्ञात हुआ कि नगेन्द्रनाथ वसु के पास कृत्तिवास के आदिकाण्ड की पोथी के आरम्भ के तीन पत्र थे, उसमें कृत्तिवास का आत्म-परिचय था। डॉ० नलिनीकान्त भट्टशाली तथा अन्य विद्वानों को वसु महाशय ने न तो पोथी दी और न उसकी नकल करने दी। जिस समय कृत्तिवास के जन्म संवत् को ले कर इतनी चर्चा हो रही थी, इनका चुप बैठे रहना रहस्य माना गया।

वसु की मृत्यु के पश्चात् इनके उत्तराधिकारियों से भट्टशाली ने जो पोथियाँ खरीदीं, उनमें आत्मपरिचय वाले तीन पत्र भी थे। इनमें कई स्थलों पर काटछाँट है, तथा कुछ अंश जोड़े भी गये हैं। सन्देह यह किया जाता है कि यह हाराधन वाली पोथी है और उन्होंने ही इसमें काट-छाँट की थी। विशेषता यह है कि हाराधन ने दीनेश बाबू के पास जो नकल भेजी थी, उसमें तथा इस काटछाँट में भी तालमेल नहीं है। यह भी रहस्य बना है कि वे तीन पृष्ठ नगेन्द्रनाथ वसु के पास कैसे पहुँचे!

इन तीन पत्र वाली पोथी का शेषांश वंगीय-साहित्य-परिषद के पुस्तकालय में प्राप्त हुआ। इसकी पुष्पिका में लिपिकाल १२४० बंगाब्द (१८३३-३४ ई०) दिया हुआ है। इस प्रकार हाराधन द्वारा घोषित इसका लिपिकाल १५०१ ई० भी खण्डित हो जाता है।[1]

भट्टशाली ने १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनुलिखित चार पोथियों में भी कृत्तिवास का आत्मपरिचय प्राप्त किया है। इनमें अल्प परिवर्तन के होते हुए भी बहुत साम्य है। इन पोथियों के आधार पर भट्टशाली द्वारा प्रस्तुत 'आत्मपरिचय' विश्वसनीय माना गया। इसी के आधार पर कृत्तिवास के जीवन-वृत्त को उपलब्ध करने का प्रयास हो रहा है। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व सर्वप्रथम प्राप्त आत्मपरिचय की मुख्य बातें नीचे दे देना समीचीन होगा।

---

१. असितकुमार बन्द्योपाध्याय—बांग्ला साहित्येर इतिवृत्त, पृ० ४७९-८२, द्रष्टव्य।

पूर्वी बंगाल में प्रमाद (उपद्रव) होने से कृत्तिवास के पूर्व-पुरुष नरसिंह ओझा जो कि वेदानुज (पाठान्तर 'थे दनुज') राजा के पास थे, गंगा (हुगली) के पूर्वी तट पर आये। यहाँ एक गाँव में माली जाति रहती थी। उस गाँव का नाम उन्होंने इसीलिए फुलिया रख दिया। यह वंश इस प्रकार आगे बढ़ा—नरसिंह ओझा—गर्भेश्वर—मुरारी—वनमाली। वनमाली ओझा पिता और माता मालिनी (पाठभेद मेनिका आदि भी) के पुत्र कृत्तिवास ने आदित्यवार श्री पंचमी पुण्य (हाराधन वाले परिचय में 'पूर्णपाठ') माघ मास में जन्म लिया। पितामह मुरारी ने उत्तम वस्त्र में लपेट कर इन्हें गोद में लिया। पितामह दक्षिण की ओर जाने वाले थे, इसलिए (दक्षिण के प्रधान उपास्य शिव के एक नाम के आधार पर) उन्होंने पुत्र का नाम कृत्तिवास रखा।[1] ११ वर्ष की आयु शेष कर कृत्तिवास बड़ी गंगा (पद्मा) पार कर उत्तर की ओर पढ़ने गये और विद्या समाप्त कर घर लौट आये।

कृत्तिवास की भेंट गौड़ेश्वर से हुई थी। सप्तघटी व्यतीत होने की वेला (लगभग ६॥ बजे प्रातः) घोषित हुई। उस समय हाथ में स्वर्ण-यष्टि ले कर दूत ने कृत्तिवास को राजा से साक्षात् करने के लिए बुलाया। वे नौ ड्योढ़ी पार कर राजा के पास पहुँचे। राजा का वैभव देख कर वे चमत्कृत हुए। जगदानन्द, सुनन्द, केदार खाँ, नारायण, गन्धर्वराय, केदार राय, तरणी, श्रीवत्स तथा कुछ अन्य सभासदों के साथ राजा धूप खाते हुए हास-परिहास कर रहे थे। कृत्तिवास ने राजा से ४ हाथ दूर खड़े हो कर सात श्लोक पढ़े। राजा ने प्रसन्न हो कर पुष्प-माल, चन्दन और रेशमी चादर से सम्मान कर धन भी देना चाहा, किन्तु कवि ने धन की उपेक्षा कर केवल गौरव माँगा। बाहर आने पर जनता ने अभिनन्दन कर कहा—फुलिया के पंडित धन्य हो, मुनियों में वाल्मीकि की ख्याति है और पंडितों में गुणी कृत्तिवास की। बाप-माँ के आशीर्वाद, गुरु के कल्याण और वाल्मीकि के प्रसाद से उन्होंने सातकाण्ड-रामायण की रचना की।[2]

कृत्तिवास ने तिथि-वार और मास का उल्लेख तो किया किन्तु संवत् का नहीं, इसलिए उनका जन्म-संवत् प्राप्त करना कठिन है। उन्होंने गौड़ेश्वर के वैभव का पर्याप्त वर्णन तो दिया किन्तु उनका नाम नहीं दिया। अतएव उनके समसामयिक गौड़-शासक का काल अज्ञात होने से भी उनका जीवन-काल निर्धारित करना कठिन है। सुखमय मुखोपाध्याय का कहना है कि बंगला के किसी प्राचीन कवि ने आत्मकथा में अपने जन्म-संवत् का उल्लेख नहीं किया है, समसामयिक राजा के नाम का उल्लेख भी प्रायः नहीं किया गया है।[3]

---

१. सुकुमार सेन—हिस्ट्री ऑफ़ बेंगाली लिटरेचर, पृष्ठ ६३।

२. भारतवर्ष (ज्येष्ठ १३४६ बंगाब्द, पृ० ५४७-४८) में प्रकाशित भट्टशाली वाली पोथी के आलोक-चित्र से सार गृहीत।

३. श्री सुखमय मुखोपाध्याय—कृत्तिवास-जीवन-परिचय, पृ० ५२।

जीवनी के लिए विचारणीय विषय :

(अ) **वेदानुज महाराज और नरसिंह ओझा** 'वेदानुज' पाठ को 'ये दनुज' पढ़ कर 'दनुज मर्दन' नामक अथवा उपाधिधारी कुछेक राजाओं के जीवनकाल के आधार पर उनके पात्र नरसिंह ओझा के जीवनकाल का अनुमान लगाया गया, फिर उनके आधार पर पाँचवीं पीढ़ी में उत्पन्न कृत्तिवास का। अग्राह्य मतों का उल्लेख न कर केवल दो मतों का उल्लेख समीचीन होगा। डॉ० सुकुमार सेन कृत्तिवास के पूर्व-पुरुष नरसिंह ओझा को राजा गणेश (१४१७-१८) का पात्र स्वीकार करते हैं। किन्तु इनके पूर्व विद्वज्जनों ने राजा गणेश को कृत्तिवास का गौड़ेश्वर मान कर काल-निर्धारण की चेष्टा की है। सुखमय मुखोपाध्याय 'वेदानुज' पाठ को सही मान कर कहते हैं कि हो सकता है इसी नाम का कोई राजा हुआ हो, जिसके काल-स्थान के सम्बन्ध में हमें कोई पता नहीं हो।

(आ) **आदित्यवार श्रीपञ्चमी पुण्य माघ मास**—हाराधन वाले विवरण में 'पूर्ण' शब्द था, भट्टशाली वाले में 'पुण्य'। आचार्य योगेशचन्द्र राय ने पूर्ण माघ का अर्थ माघी संक्रान्ति-२९ माघ ले कर आदित्यवार श्री पञ्चमी पूर्ण माघ मास का संवत् बताया १३५४ शक (१४३२ ई०)।[1] बहुतों ने इसी संवत् या इसके आसपास के संवत् को स्वीकार कर लिया। किन्तु इसमें एक असंगति थी। जो लोग कृत्तिवास का स्वागत करने वाले गौड़ेश्वर को राजा गणेश (१४१७-१८ ई०) मानते थे, उनका मत मिथ्या सिद्ध हो जाता था, क्योंकि तब इस समय तक कृत्तिवास का जन्म ही नहीं हुआ था। उधर यह खोज हुई कि शब्द पूर्ण नहीं पुण्य है। बँगला में 'ण' और 'न' दोनों ही हिन्दी के न से मिलते-जुलते हैं। बँगला 'ण' की नोक जरा ऊपर निकाल दी जाती है, इसके रेफ जैसी हो जाने के कारण ऐसा पढ़ा गया। अब आ० योगेशचन्द्र ने पुण्य शब्द के आधार पर गणना कर जन्मसंवत् १३२० शक (१३९८-९९ ई०) की प्राप्ति की। इस जन्मसंवत् की संगति गौड़ेश्वर गणेश के शासनकाल से ठीक बैठ जाती थी। नलिनीकान्त भट्टशाली आदि ने इसी संवत् को स्वीकार कर लिया था।

श्रीपंचमी वसंतपंचमी को कहते हैं। यह माघ मास में ही पड़ती है। रविवार के योग से गणना हुई है किन्तु रविवार को वसन्तपंचमी तो अनेक वर्षों में पड़ी है। अतएव इससे किसी निर्दिष्ट संवत् की प्राप्ति नहीं हो सकती।

(इ) **कृत्तिवास के समसामयिक गौड़ेश्वर**—कृत्तिवास ने गौड़ेश्वर से भेंट का उल्लेख किया है। उनकी नौ ड्योढ़ी और राज-ऐश्वर्य आदि से प्रकट होता है कि वे

---

१. श्री योगेशचन्द्र राय ने वस्तुतः इस गणना द्वारा दो संवत् खोजे थे—१२५९ शकाब्द अथवा १३५४ शकाब्द। उन्होंने दूसरे शकाब्द १३५४ अर्थात् १४३२ ई०, ११ फरवरी रविवार रात्रि में कृत्तिवास का जन्म स्वीकार किया।

बंगाल के प्रतापशाली राजा थे। इनका काल १४१७-१८ ई० माना गया। कृत्तिवास के पृष्ठपोषक और उनके पूर्वपुरुष नरसिंह के पृष्ठपोषक के सम्बन्ध में बंगाली विद्वानों की धारणाएँ समय-समय पर बदलती रहीं। यहाँ उनकी नवीन खोजें ही दी जाएँगी। डॉ० सुकुमार सेन वैष्णवाचार्य जीव-गोस्वामी के साक्ष्य के आधार पर गणेश-दनुजमर्दन को नरसिंह का पृष्ठपोषक स्वीकार कर कृत्तिवास के समय को १५वीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में स्वीकार करते हैं। उनके मत से कृत्तिवास पठान सुलतान की सभा में गये थे, यह सुलतान रुकनुद्दीन बारबक शाह अथवा यूसुफशाह अथवा हुसेनशाह भी हो सकते हैं। वे तर्क देते हैं कि कृत्तिवास द्वारा वर्णित अनेक मंत्री आदि हुसेन शाह की राजसभा में थे, जैसे केदारराय, नारायण और जगदानन्दराय। कृत्तिवास ने केदार खाँ सभासद का नाम लिया है। हिन्दुओं को 'खाँ' की उपाधि १५वीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध से ही दी गयी।[1]

डॉ० सुकुमार सेन से एक वर्ष पूर्व ही श्री सुखमय मुखोपाध्याय ने केदार राय को बारबक शाह का नायब बता कर माना है कि कृत्तिवास बारबक शाह की राजसभा में गये थे। बारबक शाह विद्या और साहित्य के विख्यात संरक्षक थे। श्रीकृष्णविजय के रचयिता मालाधर वसु और बृहस्पति मिश्र को इनका आश्रय मिला था। मुखोपाध्याय कहते हैं कि बारबकशाह का राजत्वकाल सर्वसम्मति से १४५९-१४७४ ई० माना गया है। इनके द्वारा संवर्धित कवि कृत्तिवास १४६० ई० में जीवित थे इसमें सन्देह नहीं है।[2] श्री सुखमय बन्द्योपाध्याय ने मुझे एक पत्र में सूचित किया था कि वे इनका जन्मकाल १४४० और १४५० ई० के बीच मानते हैं।

गौड़ेश्वर की राजसभा का तथा कृत्तिवास के सम्मानित होने का जैसा वर्णन है उससे तो यही प्रकट होता है कि वे किसी हिन्दू राजा के यहाँ गये थे, हो सकता है वह कोई साधारण राजा अथवा बड़ा जमींदार रहा हो और कवि ने आदरवश उसे गौड़ेश्वर कहा हो। अस्तु, आश्रयदाता के आधार पर कृत्तिवास का जीवनकाल निर्धारित करना उचित नहीं है, फिर भी कुछ अन्य साधनों पर भी विचार किया जा सकता है।

अन्य साधन—(१) कृत्तिवास की रचना में चैतन्य महाप्रभु जैसे महान् व्यक्तित्व का उल्लेख स्पष्ट अथवा संकेत किसी भी रूप में नहीं हुआ, जबकि उनके शिष्यों की रचनाओं में कृत्तिवास का हुआ है। अतएव कृत्तिवास को चैतन्य महाप्रभु से वयोज्येष्ठ माना जाता है। महाप्रभु का जन्म १४८६ ई० में हुआ।

(२) कृत्तिवास की एक उत्तर-काण्ड की पोथी की पुष्पिका में १५०२ शकाब्द (१५८१ ई०) तिथि दी है, चूँकि यह पोथी बहुत पुरानी प्रतीत नहीं होती इसलिए डॉ० सुकुमार सेन इसके शकाब्द को आदर्श-पोथी का शकाब्द मानते हैं। इससे कम-

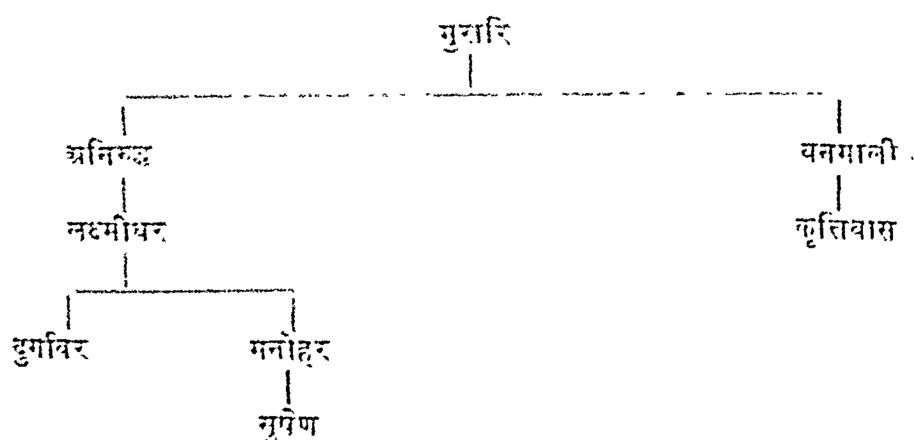
---

१. सुकुमार सेन—हिस्ट्री ऑफ़ बेंगाली लिटरेचर, पृ० ६८।
२. सुखमय मुखोपाध्याय—कृत्तिवास परिचय, पृष्ठ ४९।

कम-से-कम एक बात निश्चित हो जाती है कि कृत्तिवास १५८१ ई० से पूर्व ही रामायण-रचना कर चुके होंगे।

(३) जयानन्द ने चैतन्य-मंगल नामक काव्य १६वीं शताब्दी के सप्तम दशक में लिखा था, उसमें उन्होंने कृत्तिवास का नाम आदर से लिया है।[1]

(४) चैतन्य-मंगल में ही उनके काल-निर्धारण का एक सूत्र मिलता है। इसमें लिखा है कि चैतन्य महाप्रभु ने फुलिया के हरिदास को नीलाचल जाने के लिए कहा। जब हरिदास चले तो उनके प्रिय पण्डित सुषेण आदि को बहुत शोक हुआ। ध्रुवानंद की महावंशावली में सुषेण का यह स्थान है।



सुखमय मुखोपाध्याय ने अनुभव किया है कि हरिदास ने फुलिया ग्राम का परित्याग लगभग १५१६ ई० में किया होगा, इस समय कृत्तिवास के सम्पर्कित-पौत्र सुषेण जीवित थे और फुलिया में ही रहते थे। यदि पितामह और पौत्र के काल के स्वाभाविक व्यवधान को ५० वर्ष माना जाए तो कृत्तिवास १४६६ ई० में जीवित थे।[2] मोटे रूप में वे १४६० से १४९० ई० के मध्य जीवित थे। उन्होंने अन्य अनेक साक्ष्यों के आधार पर अपने मत की पुष्टि की है। मेरा भी अनुमान है कि वे पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अवश्य ही जीवित थे।

ग्यारह वर्ष बीतने पर कृत्तिवास बारहवें वर्ष में बड़ी गंगा पार कर आचार्य चूड़ामणि के पास पढ़ने उत्तरराढ़ गये थे। अध्ययन समाप्त कर वे घर आये, इसके पश्चात् और भी उच्चशिक्षा पाने के लिए वे द्वितीय बार वरेन्द्र गये थे। उन्होंने अवशिष्ट छात्र-जीवन सम्भवतः वहीं बिताया था।

रामायण लिखने की प्रेरणा—राजाज्ञा या गुरु आज्ञा—कृत्तिवास की हाराधन

---

१. रामायण करिल वाल्मीकि महाकवि। पाँचाली करिल कृत्तिवास अनुभवी॥

२. कृत्तिवास जीवन-परिचय ३४-३६।

वाली पोथी के अनुसार ज्ञात होता है कि राजा की आज्ञा से उन्होंने रामायण लिखी :

बाप-मायेर आशीर्वादे गुरु आज्ञा दान। राजाज्ञाय रचि गीत सप्तकाण्ड गान ॥

डा० सुकुमार सेन को 'राजाज्ञा' शब्द पर सन्देह है, वे इसे आधुनिक प्रक्षेप मानते हैं।

नलिनीकान्त भट्टशाली द्वारा प्राप्त पोथी में पाठ इस प्रकार है---

बाप-माएर आशीर्वाद गुरुर कल्याण। वाल्मीकि प्रसादे रचे रामायण-गान ॥

श्री सुखमय मुखोपाध्याय रामायण-रचना में गुरु की प्रेरणा स्वीकार करते हुए कहते हैं— लगता है ये वही गुरु हैं जिनसे कृत्तिवास ने सबसे अन्त में शिक्षा पायी और जिनको उन्होंने व्यास, वसिष्ठ, वाल्मीकि और च्यवन के समान बताया है।[1]

मुखोपाध्याय के इस दृष्टिकोण से भी मैं सहमत हूँ कि राजा से भेंट के पूर्व ही उन्होंने रामायण का कुछ अंश लिख लिया था, जिससे कि जनता में कवि रूप में उनकी ख्याति हो गयी थी और वे वाल्मीकि के समान समझे जाने लगे थे

कृत्तिवास की प्रामाणिक पोथी का अभाव :

कृत्तिवास की विपुल ख्याति उनकी रामायण के शुद्ध-पाठ के लिए घातक होती गयी। रामायण-गायकों ने अपनी-अपनी बोलियों के अनुसार रामायण की भाषा परिवर्तित कर दी। उन्होंने अनेक आख्यानों का समावेश कर दिया। चैतन्यकालीन अनेक वैष्णव कथाएँ भी इस रामायण में समाहित कर दी गयीं, फल यह हुआ कि १७वीं शताब्दी तक लेखक के नाम तथा कुछ विकीर्ण छन्दों के अतिरिक्त मौलिक रचना का और कुछ शेष न बचा।[2] कलकत्ता विश्वविद्यालय, बंगीय साहित्य-परिषद एवं शान्ति-निकेतन में कृत्तिवासी-रामायण की कम से कम १५०० पोथियों का संकलन हुआ है, इनमें अधिकांशतः अठारहवीं या उन्नीसवी शताब्दी की हैं। सत्तरहवी शताब्दी के अन्त से प्राचीन कोई पोथी नहीं है, इन पोथियों में परस्पर भिन्नता भी है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कृत्तिवासी रामायण की सप्तकाण्ड पोथियाँ बहुत ही कम उपलब्ध है। गायक लोगों के लिए पूरी रामायण का गान कर सकना असम्भव था, इसलिए वे एक-एक काड का गायन करते थे। यही कारण है कि रामायण के भिन्न-भिन्न कांडों की पोथियाँ ही अधिक मिली हैं।[3]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों को बँगला सिखाने के लिए श्रीरामपुर के मिशनरी प्रेस से सन् १८०२-३ ई० में कृत्तिवासी-रामायण सर्वप्रथम प्रकाशित हुई।

---

१. श्री सुखमय मुखोपाध्याय—कृत्तिवास-जीवन-परिचय, पृ० २७।
२. डा० सुकुमार सेन—हिस्ट्री ऑफ़ बेंगाली लिटरेचर, पृ० ६८।
३. श्री असितकुमार वन्द्योपाध्याय - बांग्ला साहित्येर इतिवृत्त (१), द्वि० सं०, पृ० ५१३-१४

१८३०-३४ ई० में स्व० जयगोपाल तर्कालंकार ने इस प्रथम संस्करण को संशोधित कर इसी प्रेस से इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया। तर्कालंकार पण्डित थे, उन्होंने कृत्तिवास की भाषा को सँवार कर नया रूप दिया। कई स्थलों पर इन्होंने तत्सम शब्द कर दिये, कई छन्द भी सुधार दिये। बटतला के एक पुस्तक-विक्रेता श्री मोहन चाँद शील ने १३ पंडितों की सहायता से तर्कालंकार के संस्करण का भी संशोधन कराया। इस प्रकार बाजार में उपलब्ध संस्करण अधिकांशतः बटतला से प्रकाशित एवं तर्कालंकार द्वारा संशोधित संस्करणों के पुनरुद्धार मात्र हैं।

सर्वप्रथम स्वर्गीय हीरेन्द्रनाथ दत्त ने निबन्ध लिख कर प्रमाणित किया कि बाजार में प्रचलित रामायण के संस्करण वस्तुतः कृत्तिवास की रचना नहीं है। उन्होंने वंगीय-साहित्य-परिषद् की प्रेरणा से रामायण के अयोध्याकाण्ड और उत्तरकाण्ड लिखे। १३०७ और १३१० बंगाब्द में उनका प्रकाशन हुआ। कई पुरानी पोथियों के आधार पर सम्पादित इन दोनों काण्डों की प्रामाणिकता पर सन्देह किया गया।[1] स्व० नलिनीकान्त भट्टशाली ने भी परिश्रम कर १५०२ शकाब्द वाली प्रति के अधार पर १९३६ ई० में आदिकाण्ड प्रकाशित किया। वे सम्पूर्ण रामायण का सम्पादन करना चाह रहे थे, इसी बीच उनकी मृत्यु हो गयी। अब वह पोथी भी लापता है। डा० सुकुमार सेन ने इस प्रकार सम्पादित काण्डों को (composite text)[2] कहा है। भेंट होने पर उन्होंने काण्डों की मौलिकता का खण्डन किया और कहा कि जिन पोथियों को इन्होंने उपजीव्य माना है, उनमें से अनेक पर पड़ा हुआ संवत् उतना पुराना नहीं है।[3] सच पूछा जाए तो इन विद्वानों ने कई पोथियाँ सामने रख कर अपनी दृष्टि से कुछ इसका और कुछ उसका ले कर आवश्यकता से अधिक सम्पादन कर दिया है। यदि पोथियों की प्राचीनता स्वीकार कर ली जाए तो भी ये सम्पादित-संस्करण मौलिक नहीं हो सकते।

डॉ० सुकुमार सेन श्रीरामपुर के प्रथम संस्करण को Editio princeps (आदि प्रतिलिपि) की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि वह संस्करण कई पुरानी पोथियों और परवर्ती छपे हुए संस्करणों से उत्तम है।[4] खेद है कि अब यह प्राप्य नहीं है।

अब रामायण के मूल-पाठ का उद्धार दुष्कर और असम्भव प्रतीत होता है। कृत्तिवासी रामायण के इस वर्त्तमान रूप में जनता ने अनेक परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करते हुए भी कृत्तिवास के उन अंशों को अवश्य सुरक्षित रखा होगा जो कि सुन्दर और उत्कृष्ट थे।[5] रामायण का यह रूप बंगाल की अनेक विशेषताओं को समाहित कर

---

१. भूदेव चौधरी—बांगला साहित्येर इतिकथा, पृ० १२०।
२. सुकुमार सेन—बं० सा० इतिहास (१), पृ० १०५ फुटनोट।
३. कृत्तिवासी बंगला रामायण और मानस (र० न० त्रिपाठी), उपोद्घात, पृ० १६।
४. डा० सुकुमार सेन—हि० ऑफ बेंगाली लिटरेचर, पृ० ६६।
५. मन्मनाथ गुप्त—बँगला साहित्य दर्शन—३७।२८।

अपने प्रदेश में जनप्रिय हुआ तथा अन्य प्रदेश के भारतीयों के लिए बंगाल की सांस्कृतिक विशिष्टता ज्ञात करने का साधन भी बना। कृत्तिवास की मूल पोथी सम्भवतः इतना प्रचार न कर पाती।

व्यक्तित्व—कृत्तिवास मुखटि-वंश में उत्पन्न हुए थे, इसका उन्हें अभिमान था। उनके पूर्वज राजाओं द्वारा सम्मानित हुए थे। कुल-शील में वे आदर्श थे। ब्राह्मण तथा सज्जन आ कर उनसे आचार सीखते थे।

वे अपने शरीर में सरस्वती एवं पंचदेव का अधिष्ठान मानते थे। अपनी रामायण में भी उन्होंने स्थान-स्थान पर कहा है—'कृत्तिवास पण्डित कवित्वे विचक्षण।'[1]

वे स्वाभिमानी ब्राह्मण थे। गौड़ेश्वर से सम्मानित हो कर उन्होंने धन लेना अस्वीकार कर केवल गौरव मांगा था।

वाल्मीकि के प्रति स्थान-स्थान पर भक्ति प्रदर्शित की है, किन्तु उनका निम्न-कथन अत्यन्त उपयुक्त है—

मुनिर वाक्य शुनिते केह ना करिह हेला।
इहाते अमृत आछे कत रसकला॥
पोथार भितर कवित्व छिला केहो नाञि बुझे।
कृत्तिवासेर कवित्व सर्व्वलोके पूजे॥

(मुनि के वाक्य सुनने में किसी को भी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इनमें कितना ही रसमय अमृत है। (वाल्मीकि के) पोथे का कवित्व कोई समझ न पाता था, कृत्तिवास के कवित्व को सभी ने सम्मानित किया।)

सच ही संस्कृत से अपरिचित लोग वाल्मीकि के पोथे का रस नहीं ले पाते होंगे, भाषा में पूत रामकथा प्रस्तुत कर कृत्तिवास ने ही नहीं अन्य रामायणकारों ने भी जनता का कल्याण किया है और इसके लिए वे सम्मानित भी हुए हैं।

बलरामदास (उड़िया-रामायणकार)

उड़ीसा में पंचसखा वैष्णव-भक्त हुए हैं, इनमें बलरामदास और जगन्नाथदास को क्रमशः बलराम एवं जगन्नाथ का अवतार माना गया। फलतः इनकी महिमा अतिरंजित हो कर चमत्कारपूर्ण किम्वदन्तियों का रूप धारण करती गयी और सत्य जीवन-परिचय आच्छन्न हो गया।

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इतना ही ज्ञात होता है कि वे महामन्त्री सोमनाथ

१. मन्मथनाथ गुप्त—बंगला साहित्य दर्शन, पृ० ४०८।

महापात्र के पुत्र थे, इनकी माता का नाम मनमाया था। उनका जन्म शूद्र-योनि में हुआ था।[1] वे अपने को जन्मतः मूर्ख एवं अल्पवयस्क कह कर ३२ वर्ष की आयु में रामायण रचने की बात कहते हैं। उन्होंने दारा-सुत आदि का सुख-भोग किया था।

जन्मरु मूरुख मोर अलप वयस । ग्रन्थ काला काले मोते वरष वतिश ॥
दारा सुत धन जन सुख भोग शिरी । अलपे आपणे देइ आछन्ति ता हरि ॥[2]

वे सदैव राम-नाम का स्मरण करते थे। नीलगिरिनाथ जगन्नाथ में उनकी अत्यन्त भक्ति थी, उन्हीं की प्रेरणा से यह रामायण लिखी गयी, जिसका नाम उन्होंने जगमोहन-रामायण रखा। इसी को दाण्डि-रामायण भी कहते हैं।[3]

उन्हें तुलसीदास के समान ही दुष्टों की निन्दा की चिन्ता थी। उन्होंने प्रत्येक काण्ड विशेषतः सुन्दर, लंका एवं उत्तर में अपने विषय में कुछ-न-कुछ अवश्य कहा है, किन्तु बार-बार जगन्नाथ के प्रति भक्ति-भाव के अतिरिक्त जीवनी के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं होता।

जीवन-काल -- बलरामदास के जन्म और मृत्यु तथा रामायण-रचनाकाल के विषय की कोई भी तिथि ज्ञात नहीं है। उनकी रामायण पर चैतन्य का प्रभाव नहीं है और चैतन्यदेव १५०९ ई० में पुरी आये थे। इससे स्पष्ट है कि इसके पूर्व ही बलरामदास रामायण लिख चुके थे। समकालीन राजा प्रतापरुद्रदेव ने १५१० ई० (१७ अंक मकर-मास, शुक्ल-पक्ष) में बलरामदास से वेदान्त-सार गुप्त-गीता सुनी थी और इन्हें अपना गुरु स्वीकार किया था। इससे भी स्पष्ट होता है कि इस समय तक रामायण लिख कर वे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। चैतन्यदेव (१४८६ ई०) अवश्य ही अवस्था में इनसे छोटे रहे होंगे, क्योंकि उन्होंने जगन्नाथदास को बलरामदास द्वारा दीक्षा दिलायी। उस समय जगन्नाथदास की आयु १८ वर्ष की थी। इन्हीं कुछ आधारों के सूत्र से उड़िया विद्वान् उनके जन्म-सन् का अनुमान लगाते हैं। सूर्यनारायण दास १४७३ या १४८२ ई०, मृत्युञ्जय १४७० ई० के आसपास, पं० विनायकराव मिश्र १४८० ई० के कुछ पूर्व एवं डा० मायाधर मानसिंह १४७२ ई० में इनका जन्म होना मानते हैं। १५४० ई० में प्रतापरुद्र के अवसान के पश्चात् इनका जीवित रहना सन्दिग्ध माना गया है।

अनुमानतः ये १४७० एवं ८० सन् के मध्य कभी उत्पन्न हुए तथा १५४० के

---

१. महापात्र मन्त्रि सोमनाथ महापात्र । बलरामदास से ताहार मुहिं पुत्र ॥
मननाया अटे मोर जननीर नाम । जनम होइण मुं पाइलि महाज्ञान ॥ ७-२१४ ।
मुहिं हीन पापी ये विशेषे शूद्र योनि । सुज्ञ जने कोप न करिब एहा शुणि ॥ ६-३४ ।

२. उड़िया-रामायण—७-२१५ ।

३. दाण्ड शब्द के अर्थ के लिए देखिए सातवें अध्याय का छन्द प्रसंग ।

आसपास मृत्यु को प्राप्त हुए। १५०० ई० के दो-चार वर्ष पश्चात् तक वे रामायण लिख चुके थे।

इनके ग्रन्थों की संख्या अनिर्णीत है।[1] उनके ऊपर एक ओर हठयोग, राजयोग और वेदान्त-दर्शन का प्रभाव है, जो कि उनके ग्रन्थों वेदान्तसारगीता, गुप्तगीता, विराट्-गीता और सप्तांग योग सारगीता में प्रकट होता है, दूसरी ओर वटअवकाश में वे जगन्नाथ की राजसभा में तैंतीस कोटि देवताओं के साथ ही लौकिक देवताओं की उपस्थिति भी दिखाते हैं। भवसमुद्र में रथ-यात्रा से विताड़ित बलरामदास का आक्रोश-मय भक्ति-प्रकाश है। उनके मृगुनी-स्तुति एवं लक्ष्मी-पुराण नामक ग्रन्थों का अभिनय जनता द्वारा आज भी होता है।[2]

व्यक्तित्व - जगन्नाथ स्वामी के परमभक्त बलरामदास प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होंने धार्मिक साहित्य का ज्ञानार्जन किया था। उनके ग्रन्थ में अनेक पुराणों, साम्प्रदायिक ग्रन्थों एवं शास्त्रीय-काव्यों का प्रभाव देखा जाता है। वे कहीं भी शब्द-कृपण नहीं दिखायी पड़ते, जो कुछ लिखते हैं जम कर लिखते हैं। कई बार आधिकारिक कथा से हट कर अनेक प्रासंगिक कथाओं का उल्लेख करने में उन्होंने रुचि दिखायी है।

बहुज्ञता—सम्पूर्ण रामायण में उन्होंने अनेक स्थलों पर ज्योतिष, राग-रागिनी, विभिन्न तीर्थ, पत्थरों के रंग, धातु, रत्न, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फूल, देश, नगर, द्वीप, स्वप्न-विचार, सुलक्षिणी-लक्षण आदि की विस्तारसहित चर्चा की है। भीड़ का मनो-विज्ञान, युद्ध-विद्या, घोड़ा-हाथियों के स्वभाव आदि का भी वर्णन किया है।

काम-विज्ञान का उन्हें अच्छा ज्ञान था। स्त्री-पुरुष के उत्तेजित कामालाप एवं रतिक्रीड़ा के चित्रात्मक वर्णन में लेखक की रसिकता प्रकट होती है। लेखक चुन-चुन कर प्रसंग प्रस्तुत करता है एवं रस में डूब कर श्लीलता-अश्लीलता का विचार न कर सम्भोग-शृङ्गार के माधुर्य में निमज्जित हो जाता है।

स्वयं शूद्र होने पर भी लेखक ने ब्राह्मण-वर्ग एवं स्व-संस्कृति के प्रति विद्वेष का भाव प्रकट नहीं किया है। तपःपूत ब्राह्मणों के आगे उसने मस्तक नत किया है, किन्तु निरक्षर एवं ढोंगी ब्राह्मणों पर व्यंग्य कसने में वह चूका नहीं है।

पूर्वांचलीय रामकथाकारों की पंक्ति में वह अपनी विशिष्टता के साथ शोभित है, ऐसा कहा जा सकता है, किसी-किसी क्षेत्र में वह इनसे बढ़ कर ही है।

---

१. श्री आर्त्तवल्लभ महान्ति के अनुसार उनके रचित-ग्रन्थ ये हैं—रामायण गीता, वेदान्तसार, वट अवकाश, भावसमुद्र, गुप्त गीता, ब्रह्माण्ड भूगोल, वेढ़ा परिक्रमा, कमल लोचन, चौतिशा और कान्त कोइली।

२. डॉ० मायाधर मानसिंह—हिस्ट्री ऑफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० ९२-९४।

तुलसीदास का जीवन-परिचय

अन्य कवियों के समान तुलसीदास जी ने भी अपने जीवनकाल, जन्म-स्थान एवं कुल-परिवार आदि के सम्बन्ध में परिचय देने वाले संकेत कम ही दिये हैं। तुलसीदास के समय का अथवा कुछ वर्षों के बाद का भी पर्याप्त वहि:साक्ष्य नहीं मिलता। उनके ऊपर जो जीवन-चरित लिखे गये, वे प्राय: विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के हैं तथा किंवदन्तियों और जनश्रुतियों पर आधारित है। इनमें ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णन है जिन पर सहज विश्वास नहीं किया जा सकता। इनके तथ्य भी परस्पर-विरोधी हैं। ये चरित इस प्रकार हैं—(१) तुलसी-चरित, (२) मूल-गोसाईं-चरित, (३) घट-रामायण, (४) गोसाईं-चरित, (५) गौतम-चन्द्रिका और (६) तुलसी-प्रकाश। मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, पीताम्बर बड़थ्वाल, श्यामसुन्दरदास, रामनरेश त्रिपाठी और डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इनमें से कुछ अथवा सभी चरितों की आलोचना कर इन्हें प्राय: पूर्णत: अप्रामाणिक ठहराया है।

इन चरितों में १ से ३ तक में तुलसीदास का जन्मस्थान राजापुर बताया गया है। ४ और ६ इस विषय में मूक हैं। २ से ५ तक के चरित सूकरखेत की स्थिति सरयू-घाघरा के संगम पर बताते हैं। केवल छठा चरित सोरों-सामग्री के अनुकूल है।[1]

अन्त:साक्ष्य पर गढ़ी हुई किम्वदन्तियाँ—तुलसीदास ने अपने ग्रन्थों में कहीं-कहीं अपने सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उनमें से कुछ संकेतों का छोर पकड़ कर जन-श्रुतियाँ चली हैं। या तो इनके आधार पर किम्वदन्तियाँ गढ़ी गयीं, या अनुमान लगाये गये। जनश्रुतियों की सीमा नहीं होती। सामान्य-सा अनुमान ही विश्वास के नये-नये रूप धारण करता गया। मूलगुसाईं-चरित तथा अधिकांश अन्य ग्रन्थों में भी तुलसीदास के इन्हीं जीवन-संकेतों की संगति बैठायी गयी है। तुलसीदास के महत्त्वपूर्ण जीवन-संकेत निम्न हैं—

(१) बंदउँ गुरुपद कंज कृपासिन्धु नर रूप हरि। (बा० का०)
(२) मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बाल पन तब अति रहेउँ अचेत ॥ १-३०-क
(३) मातु पिता जग जाइ तज्यो। कविता० ७-५७।
(४) दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर। वि० प० १३५।
(५) कुछ स्थलों पर हुलसी का उल्लेख।
(६) एक-दो स्थलों पर रामबोला शब्द का उल्लेख होने से उनके नाम का अनुमान।

---

१. डा० रामदत्त भारद्वाज—गो० तुलसीदास, पृ० ३८।

चरित-लेखकों तथा स्थान के पक्षपातियों ने 'नरहरि' और 'सूकरखेत' को ले कर तरह-तरह की कथाओं का प्रचार कर लिया तथा नरहरिदास अथवा नरहर्यानन्द अथवा नृसिंह की शिष्य-परम्परा भी ढूंढ़ निकाली गयी। शोरों-सामग्री में तो उपरि-लिखित बातों का सुचारु रूप से तारतम्य प्रस्तुत करने वाली पुस्तकें भी प्राप्त हैं।

संक्षिप्त जीवन-परिचय प्रस्तुत करने के पूर्व उनके जन्म-संवत्, मृत्यु-संवत् एवं जन्मस्थान पर सविस्तार विचार कर लेना आवश्यक है।

जन्म-संवत् :

(१) संवत् १५६० —'रामभुक्तावली' नामक कृति गो० तुलसीदास की बतायी जाती है और स्वर्गीय जगन्मोहन वर्मा ने निम्न पंक्ति के आधार पर तुलसी की जन्म-तिथि सं० १५६० बतायी—

पवन तनय मो सन कह्यो पांच बीस अरु बीस।

वर्माजी ने 'पाँच बीस अरु बीस' का अर्थ ५×२०+२०=१२० लगाया और गोस्वामी जी के मृत्यु-संवत् १६८० में इसे घटा कर उपर्युक्त संवत् प्राप्त किया। डा० माताप्रसाद पहले तो 'राममुक्तावली' को शैली, विचारधारा तथा छन्द-योजना आदि के आधार पर तुलसीकृत नहीं मानते, फिर उनका यह भी कहना है कि उपर्युक्त पदांश का अर्थ ५+२०+२०=४५ भी हो सकता है।[1]

(२) संवत् १५५४—(१) 'मानस-मयंक' के रचयिता और (२) मूल-गोसाईं-चरित के लेखक बाबा वेणीमाधवदास ने जन्म-संवत् १५५४ माना है।

४ ५ ५ १
मन ऊपर सर जानिये सर पर दीन्हें एक।
तुलसी प्रकटे रामवत, राम जनम की टेक।।[2]
पन्द्रह सौं चउवन विषे कालिंदी के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ शरीर।।

श्री चंदन पाठक ने भी इस तिथि को स्वीकार किया है और श्री रामबहोरी शुक्ल भी इसे स्वीकार करते प्रतीत होते हैं।[3] डा० माताप्रसाद गुप्त ने मूलगोसाईं-चरित की तिथि संवत् १५५४, श्रावण शुक्ल सप्तमी की गणना की और यह तिथि शुद्ध नहीं ठहरी। यदि संवत् १५५४ सत्य मान भी लिया जाए तो डा० गुप्त आयु की दीर्घता के आधार पर इसका खण्डन करते हैं, क्योंकि तब गो० तुलसीदास की आयु १२६ वर्ष की हो जाती है। किसी-किसी मनुष्य की आयु दीर्घ होती है किन्तु

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० १२८।
२. श्री रामनरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ८४, तृ० सं०।
३. श्री राम बहोरी शुक्ल—तुलसीदास, पृ० ७।

यहाँ कठिनाई यह है कि मानस का रचनाकाल संवत् १६३१ निश्चित है और जन्म-संवत् १५५४ ठीक मान लेने पर मानस के प्रणयन के समय गोस्वामी जी की आयु ७७ वर्ष की सिद्ध होती है।[1] डा० भगीरथ मिश्र गुप्त जी के इस तर्क को स्वीकार नहीं करते, वे संवत् १५५४ का ही समर्थन करते हैं।[2]

(३) संवत् १६००—विलसन (ए स्केच ऑफ़ दि रिलीजस सेक्ट्स ऑफ दि हिंदूज) और उनके आधार पर तासी (इस्त्वार द ला लितरेत्योर हिंदुइ ए हिंदुस्तानी, ३-२३६) ने मानस का रचना-काल ३१ वर्ष की अवस्था में मान कर जन्म १६३१-३१=१६०० विक्रमी में माना है। गौतम चन्द्रिका तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर भी रेवरेंड आल्विन भी यही संवत् स्वीकार करते हैं। ऐसी अपरिपक्वावस्था में डा० गुप्त इसकी रचना संभव नहीं मानते।[3] डा० रामदत्त भारद्वाज इसे इसलिए स्वीकार नहीं करते कि सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामी जी १६०४ वि० में सोरों छोड़ कर चले गये थे, जबकि उनकी पत्नी २७ वर्ष की थी।[4]

(४) संवत् १५८३—शिवसिंह सेंगर (सरोज, पृ० ४२७) ने लिखा है—यह महाराज सं० १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए। सेंगरजी ने 'गोसाईं चरित' का आधार लिया है किन्तु उसमें जन्म-संवत् १५५४ दिया है। ऐसा क्यों हुआ? इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। इस संवत् में एक विशेषता यह है कि दीर्घ-काल वाली समस्या इसमें नहीं है। इस कारण गुप्तजी ने लिखा है—फिर भी यह तिथि किसी प्रकार असम्भव नहीं कही जा सकती।[5] स्व० श्री रामनरेश त्रिपाठी ने रानी कमलकुँवरि देवजू (रियासत सरीला, जिला हमीरपुर) के पद्यात्मक तुलसीदास-जीवन-चरित का उल्लेख किया है। इसमें भी तुलसी का जन्म १५८३ वि० माना है। साथ ही और भी महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख है। (१) तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे, (२) उनका जन्म राजापुर में हुआ और उन्हें गंगा पार कर मधुराज जाना पड़ा (किन्तु राजापुर में यमुना है), (३) नन्ददास और तुलसीदास गुरु-भाई थे। त्रिपाठीजी ने सं० १९५२ की छपी हुई इसकी प्रति देखी थी।

(५) संवत् १५८९—ग्रियर्सन ने लिखा है—सबसे अधिक विश्वस्त विवरणों से यह बात प्रकट होती है कि कवि का जन्म सं० १५८९ में हुआ था (इंडियन एंटीक्वेरी, १८९३ ई०, पृ० २६४) किन्तु विश्वस्त-विवरण का उन्होंने कोई परिचय

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० १३९।
२. तुलसी (संपादक : उदयभानुसिंह) डा० मिश्र का लेख—तुलसी-जीवनी और युग, पृ० २४।
३. वही, पृ० १३६।
४. डा० रामदत्त भारद्वाज—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १७१।
५. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० १४०।

नहीं दिया। रामगुलाम द्विवेदी भी जो अपने को तुलसीदास की शिष्य-परम्परा में कहते थे, यही जन्म-तिथि मानते थे। स्व० रामनरेश त्रिपाठी ने भी इसे स्वीकार किया है।[1]

हाथरस वाले तुलसी साहब ने 'घटरामायण' (४१५) में लिखा है कि जब उन्होंने पूर्व-जन्म में मानस की रचना की, उनका जन्म सं० १५८९, भादों सुदी ११, मंगलवार को हुआ था। गणना से इस तिथि को शुद्ध मान कर डा० गुप्त ने लिखा—'यह अधिकांश में संभवतः किसी प्राचीन, स्वतंत्र और निरपेक्ष परम्परा के साक्ष्य के आधार पर लिखा गया है, फिर इस तिथि को मानने में कोई असम्भावना भी नहीं दिखायी पड़ती, इसलिए इस तिथि को हम कवि की जन्मतिथि के रूप में ग्रहण करते हैं।[2] चन्द्रवली पाण्डे लिखते हैं—'तो भी उपलब्ध-सामग्री में मूंड़ मारने से जो कुछ सूझ पड़ा, उसका निष्कर्ष यह निकला कि तुलसी का आविर्भाव हुमायूँ के शासन में सं० १५८९ में अयोध्या में हुआ।[3] डा० रामदत्त भारद्वाज इस तिथि पर विश्वास नहीं करते। उनका कहना है कि यदि ग्रियर्सन साहब को 'घटरामायण' का ज्ञान होता तो घटरामायण में दी हुई पूर्णतिथि का वे उल्लेख करते। ग्रियर्सन साहब ने किसी जनश्रुति का आश्रय लिया होगा। भारद्वाजजी घट-रामायण की तिथियों वाले अंश को ग्रियर्सन से पेरणा ले कर लिखा हुआ मानते से प्रतीत होते हैं।[4] घट-रामायण में सात तिथियों का उल्लेख है जिनमें तीन की गणना की गयी है, इनमें दो अशुद्ध और एक शुद्ध है जोकि जन्मतिथि से सम्वन्धित है। इसकी सभी तिथियों के साथ मंगलवार जोड़ा गया है।

(६) सं० १५६८ वि०—इस संवत् का उल्लेख अविनाशराय के 'तुलसी-प्रकाश' में इस प्रकार है—

राम राम मही सक सित सावन मास।
रवि तिथि भृगु दिन दुतिय पद नषत विसाषा वास ॥२५॥

इनके अनुसार जन्म श्रावण शुक्ल सप्तमी शुक्रवार शक सं० १४३३ (तदनुसार १ अगस्त, १५११ ई०) में हुआ। श्री रामदत्त भारद्वाज गणना से इसे शुद्ध मानते हैं। इससे उनकी आयु ११२ वर्ष की होती है और मानस का रचनाकाल ६३ वर्ष ठहरता है। सोरों-सामग्री के अनुसार सं० १५८९ वि० में रत्नावली का विवाह गोस्वामी जी से हुआ था। इसलिए डा० भारद्वाज १५६८ वि० को अधिक विश्वसनीय समझते हैं।[5]

---

१. श्री रामनरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ८४।
२. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० १४०।
३. श्री चन्द्रवली पाण्डेय—तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १७५।
४. डा० रामदत्त भारद्वाज—गो० तुलसीदास, पृ० १७०।
५. वही, पृ० २४७।

स्वमत—गोस्वामी जी के जन्म के सम्बन्ध में जितने भी संवत् दिये गये हैं वे या तो जन-श्रुतियों पर आधारित हैं अथवा ऐसे ग्रंथों से गृहीत हैं जो कि अप्रामाणिक हैं। यह हो सकता है कि इनमें कोई एक सही हो। अधिकांश विद्वान् संवत् १५८९ को ठीक मानते हैं। गोस्वामी जी ने मानस की रचना का समय सम्वत् १६३१ दिया है, उनका मृत्यु-संवत् १६८० स्वीकार किया जा चुका है। इन दो तिथियों के आधार पर मानस-रचना के समय उनकी अवस्था (४२ वर्ष) और पूर्ण आयु (९१ वर्ष) का औचित्य सं० १५८९ के अनुसार अधिक सम्भाव्य प्रतीत होता है। किन्तु कठिनाई यह है कि मृत्यु-संवत् १६८० के पक्ष में ही पुष्ट प्रमाण नहीं है। स्वर्गीय रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है—'पर इसी तरह कोई तर्क करना चाहे, तो कर सकता है कि असी (अंक) और असी (नदी) का तुक मिलता देख कर किसी ने उक्त दोहे में १६८० संवत् डाल दिया है। सम्भव है, तुलसी वर्ष दो वर्ष आगे-पीछे लोकान्तरित हुए हों। इसका उत्तर ही क्या हो सकता है? मेरी राय में उक्त संवत् पंचों की राय के सिवा और कोई बल नहीं रखता।'[1] 'पुष्ट प्रमाणों के अभाव में अभी तो मुझे पंचों की राय ही ठीक जान पड़ती है।

मृत्यु-संवत् :

गो० तुलसीदास की मृत्युतिथि के सम्बन्ध में दो दोहे प्रचलित हैं—

संवत् सोरह सौ असी असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सत्तमी, तुलसी तजेउ सरीर॥
संवत् सोलह सै असी असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज शनि तुलसी तजे शरीर॥

मू० गो० चरित—११९

दोनों ही दोहों में संवत् १६८० स्वीकार किया गया है, मतभेद है तिथि और पक्ष का। प्रथम दोहा जनश्रुति के अनुसार है और उसमें श्रावण शुक्ल सप्तमी का उल्लेख है। इस तिथि के सम्बन्ध में यह आपत्ति की जाती है कि घाघ या भड्डर की अनेक कहावतों में 'सावन सुक्ला सप्तमी' का उल्लेख हुआ करता है। उसी का प्रभाव इस दोहे पर पड़ गया है।[2]

मूल गोसाई-चरित में श्रावण कृष्ण तृतीया शनि तिथि दी हुई है। इस तिथि की पुष्टि एक अन्य प्रमाण से भी होती है। श्री विजयानन्द त्रिपाठी का कथन है कि गोस्वामी जी के अखाड़े में और टोडरमल के वंशज चौ० लालबहादुर के यहाँ भी श्रावण

१ श्री रामनरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनका काव्य, तृ० सं०, पृ० १११।
२. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास (तृ० सं०), पृ० १८९।
श्री रामनरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनका काव्य (तृ० सं०), १११।

शुक्ला तीज को तुलसीदास की निधन-तिथि मनायी जाती है।[1] इस तिथि को सीधा बाँटा जाता है और वर्षी मनायी जाती है।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस तिथि की गणना की और इसे अशुद्ध पाया। 'सावन स्यामा तीज शनि' में कोई-कोई 'शनि' के स्थान पर 'को' शब्द बताते हैं। श्री रामदास गौड़ इस दिन 'शुक्रवार' होना मानते हैं।[2] डा० माताप्रसाद गुप्त के कथन से प्रतीत होता है कि वे द्वितीय तिथि को तो ठीक मानते हैं किन्तु वार को अशुद्ध, जिसके कारण सम्पूर्ण तिथि की गणना अशुद्ध हुई। उनका विश्वास है कि कवि की मृत्यु-तिथि सं० १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया थी।[3]

डा० रामदत्त भारद्वाज जनश्रुति को अधिक ठीक मानते हैं-- 'एक ओर जन-श्रुति की रक्षा और दूसरी ओर टोडर कुटुम्ब की परम्परा। व्यक्ति तो विस्मृति के कारण धोखा खा सकता है पर जनश्रुति तो बहुत से लोगों की जिह्वा पर विराजती रहती है। अतएव मेरा झुकाव श्रावण शुक्ल सप्तमी की ओर है।'[4]

स्वमत—मेरे विचार से जनश्रुति ही भ्रमित है। 'सावन स्यामा तीज' को तुलसीदास की वर्षी मनायी ही जाती रही, साथ ही जनश्रुति में भी इसका प्रचार रहा होगा। कालान्तर में इसके भ्रमित होने के दो कारण हो सकते हैं—(१) घाघ या भड्डरी के 'सावन सुक्ला सत्तमी' वाले अनेक दोहों के प्रचार के कारण अथवा सम्भवतः तुलसी के जन्म के सम्बन्ध में भी 'सावन सुक्ला सत्तमी' की एक धारणा के कारण।[5] गोस्वामी जी की मृत्यु श्रावण कृष्ण तृतीया संवत् १६८० को स्वीकार की जा सकती है।

जन्म-स्थान :

तुलसीदास के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में बहुत अधिक विवाद रहा है। उनके जन्मस्थान को निम्न स्थानों पर माना जाता रहा है—

१. हाजीपुर २. हस्तिनापुर
३. तारी ४. काशी
५. राजापुर (बाँदा) तथा दो अन्य राजापुर।

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास (तृ० सं०), पृ० १८६।
श्री रामनरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनका काव्य (तृ० सं०), पृ० १११।
२. वही, पृ० १११-११२।
३. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास (तृ० सं०), १८६।
४. डा० रामदत्त भारद्वाज—गो० तुलसीदास, पृ० १७३।
५. पन्द्रह सौ चउवन विषे कालिंदी के तीर।
सावन शुक्ला सत्तमी तुलसी धरेउ शरीर॥ —(मूल गोसाईं चरित)

६. अयोध्या—(अ) रामपुर अर्थात् अयोध्या, (आ) बाराबंकी जिले का राजापुर, बिहार का राजापुर।

७. सोरों—(अ) योगमार्ग मुहल्ला (आ) श्यामपुर (पहले का रामपुर) ग्राम।

प्रथम चार महत्त्वहीन हैं, फिर भी उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा। शेष तीन ही विचारणीय हैं। इनमें अन्तिम दो के मुख्य-आधार 'सूकरखेत' एवं वार्ता में वर्णित 'रामपुर' हैं। अयोध्या-पक्ष वाले सूकरखेत को सरयू-घाघरा संगम पर मानकर वहीं-कहीं (अर्थात् अयोध्या में) तुलसी का बचपन और जन्म स्वीकार करते हैं। एक और सज्जन ने इसी संगम के पास एक नया राजापुर खोज निकाला है जिसे ही वह तुलसी का जन्मस्थान मानते हैं।

सोरों-पक्ष के लोग सूकरखेत की स्थिति सोरों में मान कर तुलसी को योगमार्ग मुहल्ले का मानते रहे। वार्ता-साहित्य में तुलसीदास और नन्ददास के सम्बन्ध में कहा गया है—'सो वे रामपुर के हुते।' अयोध्या-पक्ष वाले इस रामपुर को अयोध्या कहते हैं और सोरों-पक्ष वालों ने अपना पूर्व मत बदल कर सोरों के पास रामपुर खोज कर कहा कि तुलसीदास पैदा तो सोरों के पास रामपुर में हुए थे किन्तु उनका बचपन योगमार्ग मुहल्ले में बीता। सोरों के पास का ग्राम श्यामपुर है रामपुर नहीं, इसके लिए सोरों वालों का कथन है कि इस ग्राम का नाम पहले रामपुर था, नन्ददास ने कृष्णभक्ति के आवेग में बदल कर श्यामपुर कर दिया था।

(१) हाजीपुर—विल्सन साहब ने जन्मस्थान चित्रकूट के निकट हाजीपुर बताया था। श्री चन्द्रबली पाण्डे ने श्री रामबहोरी शुक्ल का समर्थन कर कहा है कि विल्सन साहब को जो सामग्री मिली वह फारसी में थी और सम्भवतः राजापुर को हाजीपुर पढ़ लिया गया। उन्होंने हिन्दू कालेज के पुस्तकालयाध्यक्ष मथुरानाथ जी तथा काशी-नरेश के मुंशी सीतलसिंह जी को विल्सन साहब का सामग्री-दाता बताया है। मुंशीजी फारसी के पण्डित थे, उनकी फारसी समझने में विल्सन साहब को भूल हुई होगी।[1]

(२) हस्तिनापुर—भक्ति-सिन्धु के अनुसार हस्तिनापुर की कई स्थितियाँ स्वीकार की गयीं किन्तु यह मत चल न सका।

(३) तारी—ग्रियर्सन पहले दोआब स्थित तारी की ओर झुके प्रतीत हुए। राजापुर और सोरों वालों ने तारी ग्राम की दो स्थितियाँ प्रस्तुत कर दीं। लाला सीताराम ने राजापुर से ८-१० कोस यमुना के किनारे पर बसे ताड़ी ग्राम को तारी बताया। यमुना कभी इसके उत्तर में बही और कभी दक्षिण में, इसलिए उनके मतानुसार यह दोआब में है। सोरों के निकट तरी ग्राम को तारी बता कर डा० रामदत्त भारद्वाज ने श्री महावीरप्रसाद त्रिपाठी का समर्थन किया है कि सोरों के निकट दोआब

---

१. चन्द्रबली पाण्डे—तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० २३२-२३४।

में स्थित तरी (तारी) ग्राम में तुलसी की गर्भस्थिति हुई थी। उनकी माता हुलसी इसी ग्राम की थीं। तुलसी के माता-पिता इनके जन्म से पहले तारी में रहे थे, इसकी पुष्टि के लिए भारद्वाज जी ग्रीव्ज, केलोग, सीतारामशरण, भगवानप्रसाद, संस्कृत भक्तमाला और तुलसीप्रकाश का प्रमाण देते हैं।[1]

तारी तुलसीदास का जन्मस्थान तो है ही नहीं। हुलसी का था या नहीं, यह सोरों-सामग्री की सत्यता-असत्यता पर निर्भर करता है।

(४) काशी—तुलसी के निम्न दो उद्धरणों के आधार पर श्री रजनीकान्त शास्त्री काशी को ही जन्मस्थान मानते हैं—

यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली। वि० प० १३५
मुक्ति जन्म महि जान ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो काशी सेइय कस न॥ किष्किन्धा०

प्रथम-पंक्ति के अनुसार गंगा-तट पर अर्थात् काशी में जन्म माना गया। सोरों वालों ने काशी का खण्डन कर कहना आरम्भ किया कि सोरों गंगा-तट पर है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने निम्न छन्द से सिद्ध किया कि उनका जन्म केवल काशी में ही नहीं अपितु कदाचित गंगातट-वर्ती किसी भी स्थान में नहीं हुआ।[2] इस छन्द से तो यह प्रतीत होता है कि वे अन्य कहीं उत्पन्न हुए थे और गंगा के तट पर आ कर बस गये थे।

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर।
पाइ तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं॥ कवि० ७-१६६

इस प्रकार सोरों-साक्ष्य का भी खण्डन होता है इसलिए चन्द्रवली पाण्डे भी अयोध्या के पक्ष में इस तर्क का प्रयोग कर लेते हैं।[3]

द्वितीय छन्द में 'मुक्ति जन्म महि' का अर्थ लगाया गया—मोक्ष और (मेरे) जन्म की भूमि। यह तो अर्थ की खींचतान मात्र है।

काशी की सामग्री—काशी में तुलसी-विषयक निम्न सामग्री है—

(१) तुलसी घाट के पास पुरानी कोठरी में हनुमान जी की मूर्ति और उस नाव का काष्ठखण्ड जिससे वे गंगा पार जाते थे।

(२) एक जोड़ी खड़ाऊँ।

(३) गोपाल मन्दिर के अहाते में एक नीची कोठरी, जहाँ रह कर तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' के कुछ पद लिखे थे।

---

१. डा० रामदत्त भारद्वाज—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १५९।
२. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० १४१।
३. श्री चन्द्रवली पाण्डे, पृ० १०९।

(४) प्रह्लाद-घाट पर गंगाराम ज्योतिषी का स्थान जहाँ तुलसी काशी में सर्वप्रथम ठहरे थे ।

(५) गोस्वामी जी का एक चित्र जिसे जहाँगीर ने बनवाया था । रामकृष्ण दास इसे सं० १६५५ का नहीं मानते ।

(६) सं० १६६९ वि० का पंचायत-नामा । टोडर के एक पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारियों में झगड़ा हुआ, तुलसीदास पंच बनाये गये । पंचनामा फ़ारसी में है किन्तु सर्वप्रथम जो श्लोक लिखा हुआ है वह गोस्वामी जी का है ।

(७) वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड की एक प्रति सं० १६४१ की, जिस में लिपिकार के रूप में तुलसीदास का नाम है ।

(८) संवत् १६६६ की विनयपत्रिका की एक प्रति जिस पर तुलसीदास के संशोधन हैं ।

उपर्युक्त सामग्री वस्तुतः तुलसीदास से कहाँ तक सम्बन्धित है, कह सकना कठिन है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि काशी से उनका सम्बन्ध घनिष्ठ रहा है, फिर भी काशी को उनका जन्मस्थान नहीं माना जा सकता ।

(५) राजापुर-सामग्री :

(१) तुलसीचरित, मूलगुसाईंचरित और घटरामायण का परिशिष्ट ।
(२) माफ़ी की सनदें ।
(३) अयोध्याकाण्ड की हस्तलिखित प्राचीन प्रति ।
(४) मन्दिर और प्रतिमाएँ ।
(५) अयोध्याकाण्ड का तापस-प्रसंग ।
(६) शासकीय-विवरण ।
(७) जनश्रुतियाँ ।

१. उपर्युक्त तीनों चरित्र अप्रामाणिक हैं। ये ग्रन्थ तुलसी का जन्मस्थान राजापुर मानते हैं किन्तु तुलसी-सम्बन्धित अन्य विवरणों में पारस्परिक मतभेद है । इसलिए ये प्रामाण्य नहीं हो सकते ।

२. रामबहोरी शुक्ल का कहना है कि राजापुर में उपाध्याय (सरयूपारीण) वंश है, इस वंश के लोग अपने को गोस्वामी जी के शिष्य श्री गणपति उपाध्याय का वंशज मानते हैं । इनको माफ़ी मिली हुई है । जो कि सम्राट् अकबर की दी हुई बतायी जाती है । शिवसिंह एवं रामगुलाम द्विवेदी भी राजापुर के समर्थक हैं ।

चन्द्रबली पाण्डे इस अकबर को द्वितीय अकबर (१८०६-३७) मानते हैं । एक पट्टे में उल्लिखित – 'साईं तुलसीदास' को वे महाकवि गोसाईं तुलसीदास नहीं मानते । इन्द्रगिरि (मृत्यु १८०६) ने गोसाईं लोगों की एक सेना संगठित कर मराठों से टक्कर ली थी । पट्टा के साईं तुलसीदास के विषय में पाण्डे जी कहते हैं—'राजापुर

के उपाध्याय-वंश का सम्बन्ध है इस गिरिगोसाईं से, महात्मा तुलसीदास से कदापि नहीं।'[1]

यदि ये पट्टे सही भी मान लिए जाएँ तो अधिक-से-अधिक यह माना जा सकता है कि तुलसीदास की शिष्य-परम्परा माफी का भोग करती चली आ रही है, इससे यह सिद्ध नहीं होता कि तुलसीदास का जन्म राजापुर में ही हुआ।

३. अयोध्याकाण्ड की हस्तलिखित प्राचीन प्रति — कहा जाता है कि तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई सम्पूर्ण प्रति उपाध्याय-वंश के पास थी। चोर इसे ले कर भागा किन्तु पीछा करने पर उसे इसने नदी में फेंक दिया। पुस्तक प्राप्त कर ली गयी किन्तु केवल अयोध्याकाण्ड बचा रह गया। चन्द्रवली पाण्डे आश्चर्य करते हैं कि केवल अयोध्याकाण्ड कैसे बचा रह गया। वे इसे अपने में सम्पूर्ण पृथक् काण्ड मानते हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त इसे प्राचीन मानते हुए भी तुलसी की स्वहस्तलिखित प्रति नहीं मानते—(पृ० १४८)।

४. मन्दिर और प्रतिमाएँ - राजापुर में तुलसीदास जी द्वारा स्थापित संकटमोचन नाम की हनुमान की एक मूर्ति है। एक कच्चे घर को गोस्वामी जी का निवासस्थान बताया जाता है, जिसमें उनकी मूर्ति स्थापित है। काले पत्थर की यह मूर्ति ५० वर्ष पूर्व यमुना के तट से प्राप्त हुई थी। रामदत्त भारद्वाज इस मूर्ति को राजा साधु की बताते हैं, जिसके नाम पर गोस्वामी जी ने राजापुर का नामकरण किया।[2] चन्द्रवली पाण्डे इसे भक्तराज छीतूदास की बताते है।[3]

५ तापस-प्रसंग :

तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेज पुंज लघुबयस सुहावा॥
कवि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥

श्री विजयानन्द त्रिपाठी, आ० रामचन्द्र शुक्ल, श्री रामबहोरी शुक्ल आदि अनेक विद्वानों ने तापस-प्रकरण के आधार पर गोस्वामी जी को तापस मान कर जिस स्थान की ओर इंगित किया है उसे राजापुर समझ कर गोस्वामी जी का जन्मस्थान घोषित किया गया है।[4]

शम्भुनारायण चौबे इस प्रसंग को अप्रामाणिक मानते हैं। चन्द्रवली जी तापस को तुलसीदास मानते हुए भी इस प्रसंग को राजापुर से जोड़ने के लिए सहमत नहीं हैं।

---

१. श्री चन्द्रवली पाण्डे—तुलसी की जीवनभूमि, पृ० ८८।
२. डा० रामदत्त भारद्वाज—गो० तुलसीदास, पृ० १३३।
३. श्री चन्द्रवली पाण्डे—तुलसी की जीवनभूमि, पृ० १११।
४. डा० रामदत्त भारद्वाज—गो० तुलसीदास, पृ० १२८।

अप्रासंगिकता—प्रसंग चल रहा था ग्राम-जनों का – सुनि सविषाद सकल पछिताहीं । रानी राय कीन्ह भल नाहीं ॥ उसके पश्चात् ही तापस प्रकरण आया । फिर उसके पश्चात् तुरन्त ये पंक्तियाँ हैं

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥

इससे स्पष्ट है कि तापस-प्रसंग जोड़ा हुआ है । अब प्रश्न है कि यह तुलसीदास ने ही पुनः संशोधन कर जोड़ा है या यह प्रक्षेप है । मानस के शुद्ध-पाठ के शोधक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र अपने काशिराज-संस्करण की भूमिका में लिखते हैं—'राजापुर की प्रति में 'तापस प्रसंग' पूर्वोक्त-पत्रों के विपरीत और प्रवहमान कथा के बीच जोड़ा हुआ है । तुलसीदास के प्रत्यक्ष शिष्य रामू द्विवेद के प्रेमरामायण में भी इस प्रसंग का अनुवाद प्राप्त है । इसलिए इसकी प्राचीनता को देखते सम्भावना होती है कि स्वयं कर्त्ता ने ही इसे जोड़ा होगा । ... उक्त प्रसंग में जो तापस आया है उसे कोई अग्नि, कोई उपासक भक्त और कोई तुलसीदास मानता है । उसे तुलसीदास मानने की कल्पना ही अधिक ठीक जान पड़ती है ।'[1]

यदि यह तापस तुलसीदास ही हों तो यह कैसे कहा जा सकता है कि राजापुर से जन्मस्थान के सम्बन्ध के कारण उसे प्रस्तुत किया गया ।

६. शासकीय-विवरण—विभिन्न गजेटियर आदि सरकारी-विवरण से ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी सोरों के निवासी थे, उन्होंने अकबर के शासनकाल में राजापुर की स्थापना की । गजेटियरों का विवरण बहुत-कुछ जनश्रुति पर आश्रित है और जनश्रुति सही नहीं कही जा सकती । श्री अयोध्याप्रसाद पाण्डे ने लिखा है कि राजापुर का ही पुराना नाम विक्रमपुर था, जैसा कि उन सनदों से ज्ञात होता है, जो गणपति उपाध्याय के वंशज उपाध्याय सीताराम को सं० १८१२ तथा १८१३ में मिलीं ।[2] यदि विक्रमपुर और राजापुर एक मान लिए जाएँ तो सरकारी-विवरण सत्य प्रतीत नहीं होते ।

७. जनश्रुतियाँ महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय नहीं हैं । श्री रामनरेश त्रिपाठी एवं डा० माताप्रसाद गुप्त ने इनका खंडन किया है ।[3]

दो और राजापुरों का वर्णन आगे होगा ।

(६) अयोध्या-सामग्री :

तुलसीदास अपने इष्टदेव का जन्मस्थान होने के कारण बहुत दिनों तक

---

१. डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—मानस : काशिराज-संस्करण, भूमिका, १६ ।
२. जनभारती - भाग १ (१६४६), पृ० ४४ ।
३. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० १४६ ।

अयोध्या रहे थे। यहाँ उनके दो चिह्न हैं—तुलसीचौरा एवं सं० १६६१ में लिखी हुई बालकाण्ड की एक प्रति। पं० चन्द्रबली पाण्डे ने तुलसीचौरा को तुलसी की जन्मभूमि माना है। अयोध्या के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं—

(क) तुलसीदास ने कवितावली में लिखा है—'तुलसी तिहारो घर जायो है घर को'—(७।१२३) जिसका अर्थ निकाला गया, राम अयोध्या के हैं और तुलसी भी अयोध्या के। वार्ता की भाव-प्रकाश टीका में नन्ददास और तुलसीदास को भाई मान कर नन्ददास को 'पूरब' और रामपुर का बताया गया है। श्री चन्द्रबली पाण्डे का कथन है कि यदि टीका का यह तथ्य सत्य है तो 'पूरब' और 'रामपुर'—राम का पुर सोरों न हो कर अयोध्या है। वैसे पाण्डे जी नन्ददास को तुलसीदास का सहोदर नहीं मानते, वे गुरु-भाई हो सकते हैं। डा० रामदत्त भारद्वाज भी पीछे नहीं रहे, उन्होंने सोरों वाले रामपुर को ही तुलसी का जन्म-स्थान मान कर सिद्ध किया कि राम भी रामपुर (अयोध्या) के हैं और तुलसी भी रामपुर (सोरों) के हैं, अतएव वे राम के घर जाये हैं।[1] सोरों के पास श्यामपुर है रामपुर नहीं। सोरों वालों ने सिद्ध किया कि नन्ददास कृष्ण-भक्त थे इसलिए उन्होंने रामपुर ग्राम का नाम बदल कर श्यामपुर कर दिया है। रामपुर को ले कर खींचतान की गयी है। 'तिहारो घर जायो' उक्ति के प्रसंग में गुप्तजी ने कबीर की एक पंक्ति दे कर सिद्ध किया है कि तुलसी का यह कथन सामान्य है, उसमें जन्म-स्थान का संकेत नहीं है—कहि कबीर गुलामु घर का।

(ख) किसी अनन्य कवि की रचना का काल सं० १८६० के पहले मान कर पाण्डे जी इस कवि की एक पंक्ति के उद्धरण से सिद्ध करते हैं कि तुलसी का जन्म कोशल देश अयोध्या में हुआ—'कोसल देश उजागर कीन्हों।'

(ग) तुलसीचौरा—पाण्डे जी ने साईं मत के मोहन साईं का काल १८१२ वि० माना है। इनका एक गीत प्रसिद्ध है, जिसका सार है—'जहाँ आज तुलसी का चौरा है वहाँ एक वट-वृक्ष के नीचे एक योगिराज आसन जमाये थे। तुलसी के वहाँ आने पर योगिराज ने सब कुछ इन्हें सौंप कर अग्नि-समाधि ले ली। सं० १६३१ में तुलसीदास ने रामायण लिखी एवं सीता, राम, हनुमानादि की मूर्तियाँ स्थापित कीं।' रामनवमी के दिन यात्री यहाँ आते हैं। यहाँ तुलसीदास की एक फुट आकार की प्रस्तर-मूर्ति है। राजा मानसिंह ने वहाँ पर फर्श और छत्री बनवायी थी। पाण्डे जी का मत है कि यहीं तुलसी का जन्म-स्थान है।[2]

(घ) 'माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो'—कविता० ७-१०६ से पाण्डे जी ने सिद्ध किया है कि १५८५ वि० में राम के जन्म स्थान पर बाबरी शासन हो गया

---

१. डा० रामदत्त भारद्वाज—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १५३।
२. पं० चन्द्रबली पाण्डे—तुलसी की जीवन-भूमि, पृ० १४३।

था और मन्दिर मस्जिद बना दिया गया था। इसी के निकट कहीं तुलसी के पिता-माता रहते थे।

(ङ) सूकरखेत और नरहरिदास—डा० सीताराम ने सूकरखेत को गोंडा जिला में सरयू-घाघरा के संगम पर माना है। भवानीदास के तुलसी-चरित्र में लिखा है—

तृतिय वास अघ नास किय, पावन सूकरखेत।
प्रयोजन जो अवध ते, दास दरस सुख हेत ॥१॥
जहाँ श्री गुरु नरसिंह दास, सुनी कथा लहि ज्ञान।
जो अनादि तीरथ विदित, सगुन देव अस्थान ॥२॥
धारो वपु वाराह जब, आदि पुरुष औतार ॥३॥
सबद घुरघुरा ते भयो, घाघर सरित प्रवाह ॥४॥
—४ चरित, पृ० ६२-६३

पाण्डे जी ने लिखा है कि महन्त रामचरण की टीका (सं० १८५०) एवं रामायण-मानस-प्रचारिका (सं० १९३२) में 'सूकरखेत' की इसी स्थिति का समर्थन है। बाबा वेणीमाधवदास का मूल गोसाईंचरित भी इसी के पक्ष में है। पं० रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दरदास, श्री रामबहोरी शुक्ल और डा० भगवतीप्रसादसिंह सूकरखेत को सरयू-घाघरा के संगम पर ही मानते हैं। इसे पसका अथवा परसका-संगम बताया जाता है। यहाँ वाराह की मानवाकार प्रतिमा है, पौष मास में मेला लगता है। कई जिलों के लाखों स्नानार्थी आते हैं। डा० सिंह ने पसका (पशुका) शब्द के अर्थ बताये हैं—वह स्थान जहाँ पशु रहते हैं, वह स्थान जहाँ भगवान् ने पशु-रूप धारण किया था, कुत्सित पशु—शूकर। वे इसे उपवासिका: शब्द का अपभ्रंश भी मानते हैं, क्योंकि वाराह भगवान् के रसातल से न लौटने पर आशंका की दृष्टि से ऋषियों ने उपवास किया था।[1]

डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने शूकर क्षेत्र के मन्दिर से मिली हुई एक प्राचीन कुटी का वर्णन किया है, जिसके द्वार पर बरगद और पीपल के पुराने पेड़ लगे हैं, ये बाबा नरहरिदास के लगाए कहे जाते हैं। यह कुटी भी उन्हीं की है। डा० सिंह ने नरहरि दास की १०वीं पीढ़ी के बाबा राम अवधदास का भी नाम लिया है। ये लोग पसका के राजाओं की वृत्ति का शिष्य-परम्परा से भोग करते आ रहे हैं।

लखनऊ के शिवसिंह सरोज ने 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक'[2] में लेख प्रकाशित कर

---

१. डा० भगवतीप्रसाद सिंह—मानस-पीयूष, द्वि० सं०, भाग १, पृ० ५०५-७ (अयोध्या)।
२. श्री शिवसिंह सरोज—हिन्दुस्तान (साप्ताहिक) १२-८-६२, पृ० ६-७।

इस खोज को और आगे बढ़ाया है। ये वाराहक्षेत्र को अयोध्या से ४० मील उत्तर-पश्चिम घाघरा और सरयू के संगम पर पसुका ग्राम में मानते हैं, जिसे पसका भी कहते हैं। इन्होंने भी वाराह और वाराही के मन्दिरों एवं मेले आदि का वर्णन करते हुए लिखा है—'हिरण्याक्ष के मलकोट में नष्ट कर उसे मारने के लिए ही भगवान् को यह अवतार लेना पड़ा। यहीं से लगभग दो मील पूर्व बाराबंकी जिले में मल्ला गाँव भी है। कहते हैं यहीं पर हिरण्याक्ष ने मलकोट बनवाया था। घाघरा और सरयू के संगम की इस कछार में बनैले वाराहों के झुण्ड-के-झुण्ड अब भी लोटते रहते हुए दिखायी पड़ते हैं। बाराबंकी जिले का नाम भी इसी के आधार पर रखा गया, जो वाराह-वन का अपभ्रंश बताया जाता है।' इन्होंने भी नरहरिदास की कुटिया और पीढ़ियों आदि का वर्णन किया है। किन्तु पं० चन्द्रबली पाण्डे पहले ही नरहरिदास को गोस्वामी जी का गुरु होना अस्वीकार कर चुके हैं। ये नरहरिदास उनकी दृष्टि में अग्रदास के अखाड़े के प्राणी हैं जो बहुत बाद में उत्पन्न हुए थे।[1]

बाराबंकी का राजापुर—सूकरखेत के आधार पर तुलसी का जन्मस्थान रामपुर-सोरों अथवा रामपुर-अयोध्या माना जा रहा था, एक तीसरा दृष्टिकोण भी सामने आया जो सूकरखेत को सरयू-घाघरा संगम पर ही मान कर तुलसी का वास्तविक जन्मस्थान एक नये राजापुर को मानता है। यह गाँव वाराहक्षेत्र से लगभग ४-५ मील दूर बसा बताया गया। यहाँ भी तुलसीदास के वंशज निकल आये—श्री रामलखन दुबे। इस नये राजापुर के १२ मील उत्तर तुलसीदास की ससुराल बतायी गयी। सरोज जी का कहना है कि इस राजापुर के निवासियों ने बाँदा जिले के राजापुर को तुलसी की जन्मभूमि होने का दावा बड़ी चतुराई से काट दिया है। उन्होंने बताया कि तुलसीदास के घर से ससुराल उतनी ही दूर होनी चाहिए जहाँ नदियों को पार कर रात में ही पहुँच जाया जाए। सोरों और राजापुर (बाँदा) दोनों के पास तुलसी की बतायी गयी ससुराल के बीच नदी नहीं पड़ती। तुलसी के वंशजों के पास अब भी वंशावली सुरक्षित है और वे अब भी पितृपक्ष में तुलसीदास को पिण्ड-दान दिया करते हैं।

सरोज जी का कथन भी जनश्रुतियों पर आश्रित है, उन्होंने भाषा के आधार पर जो तर्क दिये हैं, वे व्यर्थ हैं। जनश्रुति में प्रचलित कुछ स्थानों का भी वर्णन किया गया है—वरई का सीताकूप, सराँय दुनौली का तुलसी-चबूतरा। बोलपुर-चौबीसी (बाराबंकी) नामक गाँव में अब तक उनका लोटा भूमिगत माना जाता है।

तीसरा राजापुर (बिहार) :

द्वितीय राजापुर के वर्णनक्रम में ही तृतीय राजापुर का वर्णन कर लेना

---

१. श्री चन्द्रबली पाण्डे—तुलसी की जीवनभूमि, पृ० ६५-६६।

समीचीन होगा। २०-८-६३ के हिन्दुस्तान टाइम्स (अंग्रेजी) में प्रकाशित समाचार का सार यहाँ प्रस्तुत है —

रघुनाथपुर, जुलाई २८—पटना डिवीजन के कमिश्नर श्री श्रीधर वासुदेव सोहनी ने तुलसी जयन्ती के अवसर पर बताया कि गो० तुलसीदास का जन्म बिहार के शाहाबाद जिला रघुनाथपुर ग्राम के निकटस्थ राजापुर में हुआ था। वे तुलसी-जयन्ती-विषयक सेमिनार का उद्घाटन कर रहे थे। यहाँ के तुलसी-चबूतरा पर भी सहस्रों ग्रामीण एकत्र हुए। श्री सोहनी ने अपने दावे की पुष्टि में भाषा-तत्त्व-विषयक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहा कि तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्दों से सिद्ध होता है कि वे भोजपुरिया थे। उन्होंने यह भी कहा कि विद्वान् अभी तक बाँदा एवं बारा-बंकी जिलों के राजापुर के पक्ष में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके हैं।

एक ही राजापुर का विषय लड़ाई में पड़ा हुआ है, इन दोनों के पीछे तो कोई पुष्ट आधार भी नहीं है। जनश्रुतियों पर विश्वास किया जाए तो ऐसी जनश्रुतियाँ तो अनेक स्थानों के बारे में हैं।

इधर नवभारत टाइम्स (१८-७-६८) और कादम्बिनी, (अगस्त, ६८) में समाचार प्रकाशित हुआ था नेपाल राज्य में गो० तुलसीदास के जीवन के सम्बन्ध में एक प्राचीन पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है। इससे उनके जन्मादि के बारे में प्राचीन विवाद के समाप्त होने की संभावना है।...पाण्डुलिपि में लिखा है कि गो० तुलसीदास के पूर्वज ग्राम नारटीहा मझौली रियासत के रहने वाले थे। गाँव में सूखा पड़ने पर वह राजापुर आ गये थे, जहाँ उन्हें राजपुरोहित बनाया गया। यह राजापुर बाराबंकी वाला ही है। अभी तक तो इस पोथी का कुछ हुआ नहीं।

(७) सोरों-सामग्री :

अभी तक प्राप्त सामग्रियों में सबसे अधिक व्यवस्थित सामग्री सोरों के पक्ष की है, इसके प्रमाणों में प्राचुर्य भी है। इस सामग्री के सबसे बड़े प्रचारक डा० राम-दत्त भारद्वाज हैं, उन्होंने सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग कर जो सार निकाला है उसका सार यहाँ प्रस्तुत है—गोस्वामी जी के नाना सोरों के निकट तारी ग्राम के रहने वाले थे, उनकी कन्या हुलसी का विवाह आत्माराम सुकुल के साथ हुआ था। आत्माराम भारद्वाज-गोत्रीय सुकुल-सनाढ्य सोरों के निकट रामपुर के निवासी थे। छोटे भाई जीवाराम की पत्नी और सास में झगड़ा हुआ, तुलसीदास के माता-पिता शिशु-सहित सोरों आ कर योगमार्ग मुहल्ले में रहने लगे। १४३३ शक श्रावण शुक्ल सप्तमी को तुलसी का जन्म हुआ था। हुलसी तुलसी की पूजा किया करती थीं, इसीलिए पुत्र का नाम तुलसीदास रखा। हुलसी अचानक हैजा से मरीं, अर्धमास में ही आत्माराम का भी निधन हुआ। राम-राम कहने के कारण इनका नाम रामबोला कहलाया। गंगा के किनारे नृसिंह जी के आश्रम में इनकी शिक्षा हुई, साथ में चचेरे भाई नन्ददास

पढ़ते थे। गंगा के पश्चिम में बदरिया ग्राम के वशिष्ठ-गोत्रीय दीनबन्धु पाठक ने १२ वर्ष की अपनी कन्या रत्नावली का विवाह इनसे कर दिया।[1]

डा० भारद्वाज ने समग्र सामग्री को दो विभागों में विभाजित किया है—(१) गृह्य सामग्री एवं (२) बाह्य-सामग्री। गृह्य-सामग्री के अन्तर्गत आने वाली सामग्री को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

१. **गृह्य सामग्री—(क) भवन-साक्ष्य—(१)** रामपुर ग्राम जो कि अब नन्ददास के कारण श्यामपुर के नाम से ख्यात है, सोरों से डेढ़ मील पूर्व की ओर है। इसका नामकरण बलराम के नाम पर रामपुर किया गया होगा। बलदेव-छठ पर यहाँ मेला लगता है। (२) **नृसिंह-मन्दिर**— तुलसीदास और नन्ददास के गुरु का विद्याभवन है। यहाँ हनुमान जी की मूर्ति है। नृसिंह के वंशज भी हैं। (३) **वाराह मन्दिर और घाट—** यहाँ वाराह भगवान् के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष मेला लगता है, अब गंगा जी यहाँ से हट गयी हैं। (४) **तुलसीदास-गृह**—सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में तुलसी का घर है, जहाँ उनकी दादी तथा माता-पिता शिशु-सहित आ कर बसे थे। अब यह घर मुसलमानों के अधिकार में है। कर्णमूल-रोग की शान्ति के लिए लोग इसकी पवित्र मिट्टी ले जाते हैं। (५) **सीता-रामजी का मन्दिर**—यहाँ हरिहर स्वामी नामक साधु रहते थे, जिन्होंने तुलसी और नन्ददास को संगीत की शिक्षा दी थी। (६) **बदरिया**—सोरों के सामने गंगा-पार बदरिया नामक छोटा ग्राम था जहाँ तुलसी की ससुराल थी। १६५७ वि० में गंगा की बाढ़ में यह गाँव डूब गया था। अब उसी स्थान पर वह ग्राम विद्यमान है यद्यपि गंगाजी चार मील हट गयी हैं।

(ख) **वंशज**—नृसिंह जी की पाठशाला के पास ही एक भव्य-गृह में नृसिंह जी की संतति निवास करती है। नन्ददास के वंशज पं० बाबूराम शुक्ल और भतीजे शिव-नारायण शुक्ल भी विद्यमान हैं। सुना गया है कि इनके पास भी वंशावली है।

डा० भारद्वाज ने जनश्रुति, भाषा-शैली, गोस्वामी जी का आत्म-परिचय एवं पाण्डुलिपियों पर भी विचार किया है।

२. **बाह्य सामग्री—(१)** नाभादास का **भक्तमाल** (रचनाकाल १७१५ वि० के लगभग—गुप्तजी) में केवल इतना लिखा है—कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयौ। (२) **प्रियादास** की टीका (१७६६ वि०—गुप्त जी) में रत्नावली से तुलसी के उग्र-प्रेम एवं ताड़ना का वर्णन है। (३) **सेवादास** की टीका (१८६४ वि०) में सूकरखेत और बदरी ससुराल का नाम आया है। (४) नाभादास ने नन्ददास को रामपुर ग्राम निवासी बताया था। **प्राणेश** कवि ने उन्हें तुलसी-अनुज सनौढ़िया सुकुल बताया। प्राणेश कवि के **सखामृत** की पोथी १८६५ वि० की एवं द्वितीय १७६७ वि० की है। (५) **अष्टछापी-वार्त्ता**, (६) **भावप्रकाश** वाली वार्त्ता (१७५२ वि०) और

---

१. डा० रामदत्त भारद्वाज—तुलसी का घरबार, पृ० ९५-९६।

(७) भावप्रकाश की टीका (१७२६ वि०) में वर्णित वृत्तान्त का सार है कि नन्ददास रामपुर में रहते थे तथा वे तुलसीदास के छोटे भाई थे। (८) २५२ वैष्णवों की वार्ता में भी तुलसीदास के छोटे भाई नन्ददास का सनाढ्य होना बताया गया है। इसमें तुलसीदास के माथा नवाने आदि की बात है।

एटा-बदायूं से कुछ पाण्डु-लिपियों का भी संग्रह किया गया है, जिनके विवरण से तुलसीदास की जीवनी का तारतम्य ठीक बैठ जाता है। (१) रत्नावली-चरित (दो प्रतियां) (२) रत्नावली के दोहे (चार प्रतियां) (३) रामचरितमानस के बाल-काण्ड एवं अरण्यकाण्ड - तुलसीदास ने अपने भतीजे कृष्णदास को भेंट करने के लिए मानस की दो प्रतियां कराई थी, उनके केवल एक-एक काण्ड शेष है। (४) सूकर-क्षेत्र-महात्म्य (दो प्रतियां) (५) कृष्णदास-वंशावली (६) अमरगीत (१६७२ वि०) (७) वर्ष-फल—१६५७।

सरकारी-विवरण — श्री ग्रियर्सन, ग्राउज, हण्टर आदि विद्वज्जन तुलसी का सम्बन्ध सोरों से स्थापित करते हैं। ग्रियर्सन ने जनश्रुति का उल्लेख किया है जिसमें दुबे आत्माराम, हुलसी, दीनबन्धु पाठक एवं रत्नावली का समर्थन है।

डा० भारद्वाज के अतिरिक्त पं० रामनरेश त्रिपाठी, डा० दीनदयालु गुप्त, पं हरिशंकर शर्मा, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट, पं० कृष्णदत्त भारद्वाज, डा० राजाराम रस्तोगी आदि अनेक लोग सोरों का समर्थन करते हैं। इस विषय पर पर्याप्त चर्चाएँ हुई हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त सोरों-सामग्री के आलोचक हैं। डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र सोरों के पक्ष में प्राप्त पाण्डुलिपियों को प्रामाणिक नहीं मानते। दोनों विद्वानों का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। डा० माताप्रसाद ने सामग्री की जाँच की है। डा० मिश्र ने मानस के शुद्ध पाठ के उद्धार का प्रयास किया है। डा० भारद्वाज मानस की भाषा व्रजावधी मानते हैं, जबकि अत्यन्त परिश्रम के पश्चात् मिश्रजी के सम्पादित काशिराज-संस्करण की भाषा अवधी है। यदि मिश्रजी का पाठोद्धार शुद्धता की दिशा में है तो सोरों-पक्ष के अधिकांश तर्क धराशायी हो जाएँगे एवं अधिकांश पाण्डुलिपियाँ (जैसे कि सोरों-सामग्री वाले मानस के दो काण्ड और उनका विवरण) जाली सिद्ध होंगी।

डा० माताप्रसाद गुप्त सोरों का प्राचीन नाम सीकरव मानते हैं। सूकरखेत के पक्ष में जितने भी प्रमाण हैं वे सबके सब मानस की रचना-तिथि से एक शताब्दी से भी अधिक बाद के हैं। फिर भी गुप्तजी यह तो मानते हैं कि सम्भवतः तुलसी-दास तीर्थ-यात्रा करते सूकरखेत की ओर गये हों।[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने सोरों-सामग्री की अनेक प्रकार से परीक्षा की है।

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, तृ० सं०, पृ० १५७।

उनके कुछ तर्क यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'वर्षफल की रचना सं० १६५७ में हुई बतायी जाती है, जिससे प्रकट है कि रामपुर श्यामपुर सं० १६५७ के पूर्व हो चुका होगा, किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि सम्वत् १७१५ के लगभग लिखे गये भक्तमाल में नाभादास ने नन्ददास को रामपुर-ग्राम निवासी कहा है, श्यामपुर-ग्राम निवासी नहीं। यदि १७१५ वि० तक भी रामपुर का श्यामपुर हो गया था, तो उन्हें क्या पड़ी थी कि वे सत्तर वर्ष पुराना नाम आज के सोरों-उन्नायकों की भाँति खोज निकालते और नन्ददास को उसी का निवासी बताते।'[1]

पाण्डुलिपियों में प्राप्त तुलसी के परिवार का विस्तृत एवं व्यवस्थित परिचय भी डा० गुप्त को शंकित करता है। वे कुछ पाण्डुलिपियों की तिथियों पर भी शंका करते हैं। उन्होंने एक स्थल पर व्यंग्य करते हुए लिखा है—'फलतः ऐसा लगता है कि सोरों के तुलसीदास और नन्ददास ने जो काम स्वतः नहीं किया, उसके लिए उन्होंने अपने बेटे-भतीजों को और इन बेटे-भतीजों ने अपने शिष्यों-प्रशिष्यों को उपदेश कर दिया था, ताकि उनके दिवंगत हो जाने के बाद भी उनके जन्मस्थान, जातिपाँति, वंश-परम्परा का इतिहास केवल काव्य-संग्रहों, चरितों, अन्य प्रकार की कृतियों और वर्षफलों में ही नहीं पुष्पिकाओं में भी सुरक्षित रहे।'[2]

भाषा के आधार पर मैं सोरों-सामग्री पर शंका प्रकट कर चुका हूँ। मैं यह भी बता चुका हूँ कि सोरों-सामग्री की सजगता एवं व्यवस्था ही उसे और भी अधिक संदिग्ध करती है। कई पाण्डुलिपियों का संवत् भी संदेह उत्पन्न करता है। दो स्थलों पर डा० भारद्वाज की दुर्बलता भी प्रकट होती है। अयोध्या में बालकाण्ड की एक पोथी तुलसीदास द्वारा शोधी हुई बतायी जाती है। विद्वानों को तुलसीदास द्वारा संशोधित होने में संदेह है, किंतु डा० भारद्वाज लिखते हैं—'धारणा बना लेने के पूर्व यह विचार कर लेना अच्छा होगा कि महापुरुषों के पास प्रायः समयाभाव रहता है और वे अपने अन्तेवासियों को भी कार्य सौंप दिया करते हैं।'[3] मानो इस तर्क की ओट में वे सोरों-सामग्री के दो काण्डों के संदेह को दूर कर लेना चाहते हैं। इसी प्रकार तुलसीदास के 'राम सनेही सों तै न सनेह कियो।'[4] पद के आगम, हु, सुकुल सुन्दर और थल भलो शब्दों का अर्थ वे क्रमशः आत्माराम, हुलसी, शुक्ल, सनाढ्य एवं सूकरक्षेत्र लगाते हैं।[5] 'राम कथा सुन्दर करतारी' में वे तुलसी की ननिहाल तारी

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, तृ० सं०, पृ० १२४।
२. वही, पृ० १२४।
३. डा० रामदत्त भारद्वाज—गो० तुलसीदास, पृ० ३२२।
४. विनयपत्रिका, पृ० १३५।
५. डा० रामदत्त भारद्वाज—गो० तुलसीदास, पृ० ३०८।

खोजते हैं। यह सब व्यर्थ की खींचतान है।

सोरों-सामग्री विश्वसनीय नहीं है, किंतु सर्वथा उपेक्षणीय भी नहीं है। सोरों-सामग्री पर डा० भारद्वाज ने जितना परिश्रम किया है, खण्डन करने वालों ने इस सामग्री के सत्यासत्य की खोज में उतना परिश्रम नहीं किया है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने भी सोरों-पक्ष में भाषा-सम्बन्धी जो तर्क दिये हैं, उनमें अधिकांश विचारणीय हैं। तुलसीदास ने ब्रजभाषा में जो काव्यग्रंथ लिखे हैं, उनमें मुहावरेदार कथित-भाषा का सुचारु प्रयोग है। यदि उनका जन्म पूर्व की ओर हुआ और उनका अधिकांश जीवन-काल पूर्व की ओर ही बीता, तो ब्रजभाषा पर इतना अधिकार वे कैसे कर सकते थे। यह प्रश्न भी विचारणीय है।

मैं व्यक्तिगत रूप से किसी भी सामग्री को प्रामाणिक नहीं मान पा रहा हूँ। कई स्थानों पर नृसिंह-सम्बन्धित वासस्थल, हनुमान की मूर्ति, तुलसी अथवा नृसिंह के वंशज विद्यमान हैं। लगता है जनश्रुतियाँ भ्रमित हुई हैं तथा कम-से-कम एक स्थान को छोड़कर सभी स्थानों की सामग्री जान या अनजान में एक बड़े झूठ पर आधारित है। श्री भूदेव शर्मा ने लिखा है कि तुलसी का 'बन्दौं गुरुपद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि' वाला सोरठा जाबालिसंहिता के इस श्लोक पर आधारित है—

वन्दे गुरुपदाब्जं यो नररूपः स्वयं हरिः।
यद् वाक्यसूर्योदयतस्तमो नश्यत साम्प्रतम्॥

यदि यह सत्य हो तो सोरों-सामग्री के नृसिंह मन्दिर एवं उनके वंशजों तथा अन्य उपकरणों की क्या स्थिति होगी!

खेद का विषय है कि हमारी जनता अपने महापुरुषों के स्थान आदि का स्मरण नहीं रख पाती। उनके ग्रामवासी अपने तुलसी को एकदम भूल तो नहीं गये होंगे। संभावना इसी बात की है कि कई प्रचारित-स्थानों में कोई एक स्थान उनका जन्मस्थल हो, अवश्य ही उसके सम्बन्ध से कालक्रमानुसार कई अलीक-तत्त्व भी जुड़ गये हों। ऐसा भी संभव है कि उनका जन्म किसी महत्त्वहीन ग्राम में हुआ हो, फिर वे जहाँ-जहाँ बसने गये वहाँ के लोग उन्हें वहीं का मानते गये और कालांतर में उनके नाम पर कुछ स्थान एवं पुरुषों को उनका अवशेष मानकर परम्परा जीवित किये रहे और ऐसी किंवदंतियाँ गढ़ते रहे जिनका आधार तुलसी का अंतःसाक्ष्य था, जैसे कि अचेतावस्था में नरहरि गुरु से रामकथा सुनना, रामबोला नाम होना, हुलसी का माता होना आदि। इतना तो अवश्य ही सत्य प्रतीत होता है कि अयोध्या, काशी, राजापुर (बाँदा) एवं सोरों से उनका सम्बन्ध रहा था।

प्रतीत ऐसा होता है कि उनका जन्म 'पूरब' की ओर कहीं हुआ होगा। कवितावली में उन्होंने लिखा है—

'जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोचबस,
कहैं एक एकन सों, 'कहाँ जाई का करी'। ७-९७

या तो 'चाकरी', 'कृपा करी' और 'हहा करी' की तुक के लिए 'कहाँ जाई का करी' का प्रयोग हुआ है, अथवा ऐसा माना जा सकता है कि मातृभाषा का यह वाक्य सहज ही उनके मुख से निकल गया है।

संक्षिप्त जीवन-परिचय

(१) **जीवनकाल**—१५८९-१६८० वि०।

(२) **जाति**—तुलसीदास की जाति और उनके कुल का निर्णय नहीं हो सका है। इतना निश्चित है कि उन्होंने सुकुल[1] और 'भले कुल'[2] में—अर्थात् ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया था।

(३) **नाम**—

राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यो राम। वि० प० ७६
रामबोला नामु हौं गुलामु राम साहि को॥ कविता० ७-१००

—के आधार पर उनका नाम रामबोला (डा० भारद्वाज के अनुसार मुँहबोला नाम रामबोला) बताया जाता है, किन्तु बरवै-रामायण एवं कवितावली के निम्न छन्दों से प्रतीत होता है कि उनका मूलनाम तुलसी था बाद में दास जोड़ दिया गया।[3]—

केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसी दास॥ बरवै—५९।
नाम तुलसी पै भोंडो भाँग तें कहायो दासु। कविता० ७-१३

(४) **जन्मस्थल**—उनके जन्मस्थल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने बचपन में 'सूकरखेत' में रामकथा सुनी थी। वे किसी सूकरखेत के आसपास के ही रहने वाले होंगे, किन्तु देश में अनेक वाराह-क्षेत्र हैं, इनमें तुलसी वाले सूकरखेत का निर्धारण करना कठिन है। हो सकता है वे 'पूरब' की ओर कहीं उत्पन्न हुए हों।

(५) **बाल्यकाल**—हुलसी शब्द के एकाधिक प्रयोग से कुछ विद्वानों ने उनकी माता का नाम हुलसी माना है। हुलसी का अर्थ प्रसन्न या उल्लसित ही ठीक है। इतना निश्चित है कि बाल्यकाल में ही उनके पिता-माता का देहान्त हो गया था।

---

१. दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को। वि० प०, १३५।
२. भलि भारत भूमि भले कुल जन्मु समाजु सरीरु भलो लहि कै। कवि० ७-३३।
३. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, तृ० सं०, पृ० १७९।

वे आश्रयहीन होकर परमुखापेक्षी हुए थे। इस तथ्य को उन्होंने अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है।[1] दास्य भाव की भक्ति अपनाने के कारण उन्होंने विनयपत्रिका में अत्यधिक दीनता दिखायी है। उन्हें अवश्य ही दीन-जीवन यापन करना पड़ा होगा। किन्तु उनकी दीनता में राम के महत्त्व-ज्ञापन का उद्देश्य भी था, यह भूलना नहीं चाहिए।

(६) विवाहित जीवन—

लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुने चाय।
जोवन-जुर जुवती-कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥[2]

उपर्युक्त छन्द के अनुसार उन्होंने विवाहित जीवन-यापन किया होगा। 'बाहुक' के अनुसार भी वे 'लोकरीत' में पड़े होंगे। किसी कारण-वश वे दाम्पत्य-जीवन अधिक दिन नहीं भोग सके थे, किन्तु स्त्री की फटकार से विरक्त होने वाले तथ्य की सत्यता सन्दिग्ध है।

(७) भ्रमण—अयोध्या और काशी में तो वे रहे ही, राजापुर में भी कुछ दिन रहे होंगे। राजापुर में उनकी शिष्य-परम्परा का निवास हो सकता है। सोरों के साथ इतनी जनश्रुतियों और जीवन-परिचायक काव्यों से ऐसा अनुमित होता है कि उस स्थल से भी तुलसीदास का कोई सम्बन्ध अवश्य रहा होगा, अन्यथा सोरों-सामग्री का इतना प्रचार सम्भव न होता, भले ही इस सामग्री में भ्रान्ति, अतिरंजना, दुराग्रह और अलीकता ही क्यों न हो।

(८) उनके कष्ट—रामचरितमानस आदि ग्रन्थों के सृजन के फलस्वरूप जनता

---

१. मातुपिता जग जाइ तज्यो, विधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकुर-टूकन लागि ललाई। कवि० ७-५७।
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ ॥ वि० प०, २७५।
जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु विधिहु सृज्यो अवडेरे।
फिर्‍यो ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहि हेरे।
वि० प०, २२७।
हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार परी न छार मुँह बायो।
असन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो ॥ वि० प०, २७६।
जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस
खाए टूक सबके, विदित बात दुनीं सो। कवि०, ७-७२।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को। कवि०, ७-७३।
२. विनयपत्रिका, पृ० ८३।

में तुलसीदास का प्रचार होने लगा होगा।[1] इससे काशी के पण्डितों ने उन्हें तंग किया होगा। किसी-किसी ने जाति-पाँति के विषय में कुप्रचार भी किया होगा।[2] शैवों ने भी उन्हें सताया था।[3]

तुलसीदास को अंग-पीड़ा और बालतोड़ अथवा फोड़ों के कारण अत्यन्त छटपटाना पड़ा था—

पायं पीर पेट पीर बाहु पीर मुंह पीर,
जर जर सकल सरीर पीर भई है। हनु० बा०, ३८।
तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस,
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को। हनु० बा०, ४१।

(६) व्यक्तित्व—रामभक्ति में आकंठ निमज्जित, सरल, सात्त्विक एवं निरभिमानी भक्त तुलसीदास अत्यन्त कोमल स्वभाव के थे। मानस के बालकाण्ड में ही उन्होंने अपनी विनय प्रकट कर संत-जनों के साथ ही असन्त-जनों की वन्दना की है। राजा राम की सभा में वे अत्यन्त दीन भक्त के रूप में प्रस्तुत होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे चाटुकार हैं। ऐसा होता तो वे भी प्राकृत-जनों के गुणगान करने में गिरा को सिर धुनकर पछताने देते।

वे सरल थे सज्जन के लिए, किन्तु दुष्टों को वे तेजोद्दीप्त वाणी में फटकार लगाया करते थे। राम ऐसे सुन्दर-सुशील-सशक्त आदर्श पुरुषोत्तम पर न रीझने वाले व्यक्ति के जीवन को वे खर, शूकर और श्वान समान निष्फल मान कर ऐसे जनों के प्रति अत्यन्त अनुदार हो उठते थे। अन्ध-विश्वास, वेद-विरोध, पीरों आदि की पूजा में लिप्त रहने वाले तथा मूर्तियों के धोखे सिल-लोढ़े को फोड़ डालने वाले यवनों आदि को भी उन्होंने खरी-खरी सुनायी हैं।[4]

उनका अध्ययन गम्भीर था, उन्होंने नानापुराणनिगमागम तथा नाटक-काव्यादि

---

१. हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोइ नाम गयंद चढ़ायो। कविता०, ७-६०।
२. मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति।
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को॥ कवि०, ७-१०७।
३. विनयपत्रिका, छं० ८, कवितावली, ७-१६५।
४. लही आँखि कब आँधरें बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहरायच जाइ। दोहावली, ४९६।
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहि बेद पुरान॥ ५५४।
गोंड गवाँर नृपाल महि जमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल॥ ५५६।
फोरहिं सिल लोढ़ा सदन, लागें अढुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि, घर घर सहस डहार॥ ५६०।

का अनुशीलन किया था। तत्कालीन प्रचलित दोनों साहित्यिक भाषाओं पर उनका अधिकार था। अपने समय तक प्रचलित सभी काव्य-शैलियों में उन्होंने रचना की।

उन्होंने उड़िया-रामायण लेखक के समान सूचियाँ प्रस्तुत कर बहुज्ञता का परिचय नहीं दिया है। काव्य की आत्मा को स्पष्ट करने में ही उन्होंने जहाँ-जहाँ अप्रस्तुतों की योजना की है, वहाँ उनका सूक्ष्म-निरीक्षण एवं बहुज्ञत्व स्वतः प्रकट होता है।

कथा के मार्मिक स्थलों की उन्हें अच्छी पहचान थी। उन्होंने पूर्ण तन्मय होकर विभिन्न भाव-दशाओं का चित्रण किया है।

उन्हें जीवन के घोर यथार्थ का ज्ञान था। संसार में दुष्ट लोग फलते-फूलते हैं एवं साधु-जन पग-पग में कष्ट उठाते हैं, जीवन के इन कटु सत्य से परिचित होकर उन्होंने क्षोभ-प्रकाश किया है—

फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल-पल
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं। कवि० ७-१७१

वे आदर्श-भक्त, प्रतिभाशील कवि, समन्वयवादी लोकनायक, दार्शनिक, धर्म-प्रचारक एवं समाज-सुधारक थे। उनका मुख्य ग्रन्थ मानस आज भी लक्ष-लक्ष मानसों को सुख-शान्ति एवं सान्त्वना प्रदान करता है। यह ग्रंथ हमारा राष्ट्रीय-गौरव है।

(१०) ग्रन्थ—तुलसीदास के मुख्य निम्न-ग्रंथ बताये जाते हैं। रचनाकाल डा० माताप्रसाद गुप्त के आधार पर दिया जा रहा है—

(१) रामलला नहछू (१६१६ वि०)
(२) रामाज्ञा-प्रश्न (१६२१ वि०)
(३) जानकी-मंगल (१६२६ वि०)
(४) रामचरितमानस (१६३१ वि०)
(५) पार्वती-मंगल (१६४३ वि०)
(६) गीतावली (१६५८ वि०)
(७) विनयपत्रिका (१६५८ वि० के लगभग)
(८) कृष्ण-गीतावली (१६५८ वि०)
(९) बरवै-रामायण
(१०) सतसई-दोहावली
(११) कवितावली
(१२) बाहुक

(९)–(१२): १६६१ से १६८० वि० तक

तुलसी के ग्रंथों की संख्या लगभग ४० बतायी जाती है, किन्तु श्री ग्रियर्सन, आ० रामचन्द्र शुक्ल, ला० सीताराम, पं० रामनरेश त्रिपाठी, पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र और डा० माताप्रसाद गुप्त प्रामाणिक ग्रंथों की संख्या १२ ही मानते हैं। डा० रामकुमार वर्मा—गीतावली और कवितावली का रचनाकाल सं० १६४३ स्वीकार करते हैं।

चतुर्थ अध्याय

युगीन परिवेश का प्रतिबिम्ब

भाषा-रामायणकारों ने त्रेता-युग में उत्पन्न राम की कथा का वर्णन किया है। वाल्मीकि-रामायण-लेखन के समय और इन ग्रन्थों के रचनाकाल में युगों का व्यवधान है। वाल्मीकि का वह गौरव-पूर्ण आर्य-परिवेश इन ग्रन्थों में नहीं है, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों की भूमिका में लिखी गयी ये रामायणें अपने युग के राजनीति, धर्म और समाज-संस्कृति-विषयक तत्त्वों का समावेश किये हैं। इसीलिए ये जनप्रिय भी हैं। इन रामायणों के माध्यम से असम, बंगाल, उड़ीसा और हिन्दी-भाषी-क्षेत्र की मध्यकालीन समाज-संस्कृति का अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न प्रदेशों की रोचक-पद्धतियाँ पढ़ कर हमारा ज्ञानवर्द्धन होता है, मनोरंजन होता है और साथ ही विभिन्नताओं के मध्य भारतीय-ऐक्य का सन्धान भी मिलता है। आर्यावधू सीता अपने-अपने प्रदेश की युगीन कुलवधू का रूप धारण कर कहीं शंखचूड़ी पहनकर शुभ दृष्टि करती हैं, कहीं मुख पर हल्दी मलकर शृंगार करती हैं, कहीं कोहवर में बैठ कर राम के साथ लहकौर करती हैं। इस प्रकार के असंख्य घरेलू चित्रों से रामायणें भरपूर हैं। आज के जिज्ञासु पाठकों के लिए इस प्रकार के युगीन चित्रण ही प्रस्तुत लेखक की दृष्टि से अधिक मनोग्राह्य प्रतीत होंगे।

राजनीतिक प्रतिबिम्ब

भाषा-रामायणों के रचनाकाल तक भारत का बड़ा भू-भाग मुसलमानों के शासन में आ गया था। केवल मुस्लिम होने से कोई घृणापात्र नहीं कहा जाएगा, किन्तु इतना सत्य है कि इस्लाम में घोर असहिष्णुता है और उच्च-दार्शनिक-चिन्तन का अभाव है तथा इसके अनुयायी-शासक अत्यन्त क्रूर एवं घोर स्वार्थी सिद्ध हुए हैं। हज्जाज ने इस्लाम के विजयी सामंत मुहम्मद-बिन-कासिम को जो पत्र लिखा था, उससे ही हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों की नीति का पता चल जाता है—'अल्लाह कहता है कि काफिरों को मत छोड़ो, उनके गले काट दो।...समझ लो, यह अल्लाह का आदेश है कि काफिरों को संरक्षण मत दो, क्योंकि इससे तुम्हारे कार्य की सिद्धि

में देर होगी ।[1] मुसलमान आततायी विजेता आक्रमण करने के पूर्व ही मार्ग में पड़ने वाले गाँवों को जलाते आते थे, सम्पत्ति लूट लेते थे, खड़ी फसलें उजाड़ देते थे, बुड्ढे और बच्चों को भी तलवार के घाट उतार देते थे, नारी का सम्मान नहीं करते थे, युद्ध में छल-प्रपंच करते थे, शरण में आये शत्रु को भी लाखों की संख्या में काट फेंकते थे, हिन्दुओं की अत्यन्त प्राचीन कलाकृतियों को ध्वस्त कर देते थे । उदार से उदार कहे जाने वाले अथवा कवि-हृदय बादशाहों ने भी जो निरीह जनता पर कहर ढाया, उसे फिरोजशाह, सिकन्दर लोदी, शेरशाह एवं अकबर के कारनामों में देखा जा सकता है । प्रस्तुत लेखक ने मुसलमान इतिहासकारों के प्रमाण के आधार पर ही इसे अपने अन्य ग्रन्थ में अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णित किया है ।[2] मुस्लिम-शासकों के शताब्दियों तक चलने वाले अत्याचारों की विभीषिका का अनुभव रूसी लेखक बारान्निकोव[3] एवं अंग्रेज विद्वान् रेमंड ऑल्चिन को भी हुआ है ।[4]

असम का सौभाग्य ही था कि यह आततायी-शक्ति उसके दुर्गम प्रदेश में पराभूत होकर बारबार लौट गयी । उड़ीसा ने अपने देवताओं का अपमान सहा, अनेक, मंदिर तोड़े गये, किन्तु रामायण-लेखक के समय प्रबल पराक्रमी हिन्दू राजा का ही शासन था । हिन्दी और बँगला भाषाओं के क्षेत्र बुरी तरह पददलित हुए थे । असमीया एवं उड़िया रामायणों में मुस्लिम-अत्याचारियों की प्रतिक्रिया देखने को नहीं मिलती ।

सन् १२०० ई० के आसपास बख्तियार खिलजी ने बंगाल पर आक्रमण किया था । इसने भी लूट, आग, धर्मान्तरण, मंदिर-विध्वंस एवं भयंकर जनसंहार आदि के कुकृत्य किये । सबसे अधिक क्षति बौद्धों को उठानी पड़ी । बड़े-बड़े पुस्तकालय और चैत्य-विहार जलाकर ध्वस्त कर दिये गये, असंख्य भिक्षु मार डाले गये, विशेषता यह है कि कुछ बौद्धों ने ही मुसलमानों के गुप्तचर बनकर विभीषण का कार्य

---

१. इलियट-डासन — हिस्टोरियन ऑफ़ सिन्ध, पृष्ठ ७६ ।
२. देखिए, कृत्ति० बँगला-रामायण और रामचरितमानस, पृष्ठ ८,१२ एवं २०-३७ ।
३. उन्होंने भी इन अत्याचारियों के शासन का सार निकाला है—'युद्ध-सम्बन्धी जुल्म, लूटपाट, हिंसा, शहरों और गाँवों के नाश और त्रासकारी भूख की ज्वाला और धार्मिक अत्याचार'—देखिये मानस की रूसी भूमिका, पृष्ठ १-३ ।
4. The Conquest was not accomplished without murder, pluder and rapine. In the early stages in some provinces there was large scale conversion by force to the foreign creed. Muslim rule also brought oppressive measures against non. Muslims : special taxation, religious intolerance and expropriation. Page. 17—Translation of Kavitavali.

किया था। १३वीं शताब्दी में लखनौती के बाजार में बल्बन ने तीन दिन तक ऐसा हत्याकाण्ड कराया कि देखने वाले बेहोश हो गये ।[1] फीरोज तुगलक ने एक लाख अस्सी हजार से अधिक बंगालियों के सिर कटवा डाले थे।[2] १३-१४वीं शताब्दी में उथल-पुथल के कारण बंगाल में या तो साहित्य लिखा नहीं गया अथवा वह प्राप्त नहीं होता। १५-१६वीं शताब्दी के विजयगुप्त एवं जयानन्द ने अपने बंगला-काव्यों में इन मतान्धों के अत्याचारों का जो वर्णन किया है उसका संक्षिप्त रूप यह है— ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत तोड़े जाते थे, मुँह में थूका जाता था, जिसके घर शंख की ध्वनि सुनायी पड़ती थी, उसे मार डाला जाता था, तिलक और यज्ञोपवीत देख व्यक्ति का घरबार लूटकर उसे लौहपाश से बाँध दिया जाता था। तुलसी आदि के पौधे उखाड़ दिये जाते थे। गंगा-स्नान कानूनन बन्द था।[3] ये कृत्य उन मुसलमान शासकों ने किये हैं जिन्हें आज बंगाली लेखक उदार और बँगला-भाषा का पोषक बताते हैं। विद्यापति ने भी कीर्ति-लता में खूंख्वार तुर्कों एवं उनके क्रूर अनाचारों का वर्णन किया है।[4]

स्वर्गीय रांगेय राघव ने लिखा है—'इस्लाम का फैसला तलवार का जोर था, वे बौद्धों की भाँति प्रेम से धर्म फैलाने नहीं निकले थे। वे शंकर की भाँति प्रकांड पाण्डित्य के बल पर विजयी नहीं हुए थे।'[5] किसी भी मत के प्रवर्तक ने तलवार उठाकर धर्म-प्रसार का नारा नहीं लगाया था। ईसा, बुद्ध, गुरुनानक, शंकर, रामानुज, चैतन्य आदि शान्ति और अहिंसा के सन्देश-प्रदाता थे।

इस्लाम खड्ग के बल पर जीत कर भी भारत को सांस्कृतिक-पराजय नही दे सका। जहाँ-जहाँ मुसलमानों की सेनाएँ पहुँचीं, देश के देश इस्लाम में दीक्षित होते गये, किन्तु भारत इस नये उन्मत्त-मत की टक्करें पीता हुआ वैसा ही दृढ़ बना रहा।

मानसकार गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथ में युग-चेतना अपेक्षाकृत अधिक देखी जाती है। हमारे इतिहास-लेखक शेरशाह और अकबर की प्रशंसा करते नहीं अघाते, किंतु ये दोनों भी दूध के धोये नहीं थे। सगुण-भक्ति के प्रवाह में लीन हमारा भक्त-समाज अपने अत्याचारियों में राक्षसत्व की झलक देखने लगता था। कंस कृष्ण की ही जाति का था और राम का प्रतिद्वन्दी रावण पितृपक्ष से ब्राह्मण ही था, किन्तु

१. जियाउद्दीन बर्नी (इलियट-डासन)—दि मुहम्मडन पीरियड, वॉ० ३, पृ० ११६।
२. शम्से शिराज अफ़ीफ (इलियट-डासन)—फिरोजशाह, पृ० ३२।
३. दीनेशचन्द्र सेन—वङ्ग भाषा ओ साहित्य, पृ० २४२।
जयानन्द—चैतन्य मंगल, ११६४।
४. विद्यापति—कीर्तिलता, द्वितीय एवं चतुर्थ पल्लव।
५. रांगेय राघव—प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, पृ० ४८८-४९५।

बुराइयों के साकार प्रतीक ये दोनों दुष्ट-अत्याचारी हमारी घोर घृणा के पात्र हैं, तत्कालीन नृशंस-शासकों एवं उनके साथी मतानुयायियों के दुराचरण एवं असहिष्णुता के कारण यदि हिन्दी-जनता उन पर राक्षसत्व का आरोप करे तो आश्चर्य क्या। रूसी-लेखक बारान्निकोव ने भी लिखा है—तुलसीदास ऐसे समय में हुए जबकि उनका विशिष्ट एवं प्राचीन-संस्कृति-समन्वित देश मुसलमानों से पदाक्रान्त था। हिन्दू उनको वर्बर समझते थे।[1] डा० नगेन्द्र के ये शब्द भी द्रष्टव्य हैं—सामयिक जीवन में भी ब्राह्मण का हनन करने वाले मुसलमानों के विरुद्ध विवश होकर ही तुलसी ने गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक दुष्ट-दलक राम की कल्पना की थी।[2] श्री ऑल्चिन भी इन लेखकों की उक्तियों से साम्य रखते प्रतीत होते हैं।[3]

गो० तुलसीदास ने राक्षसों का चित्रण निम्न शब्दों में किया है—

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई॥[4]
तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना॥
१-१८२ छन्द

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥ १-१८३

आगे उन्होंने स्पष्ट कह दिया—ऐसे आचरण करने वाले सभी प्राणी निशाचर हैं :—

जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥ १-१८३-२

बँगला-रामायणकार में वैसी युग-चेतना नहीं, फिर भी उनके परवर्ती

---

१. मानस की रूसी-भूमिका, पृष्ठ १।

२. डा० नगेन्द्र—विचार और अनुभूति, पृष्ठ ८।

3. These centuries may with great justification be called a dark age for the Hindus of North India and there is little doubt that when these Poets used the terms Kaliyuga, they had in mind the very real oppressions under which they themselves suffered, just as when they used such terms as Mleccha, barbarians, they referred to Muslim in vaders—P. 18.
Raymond Allchin—Translation of Kavitavali—Introduction.

४. मानस—१-१८२ ६,७।

उपर्युक्त बंगला-लेखकों के ऐतिहासिक वर्णन को स्मरण में रखकर उनकी निम्न पंक्तियों पर विचार करना होगा—

'राक्षसों के सामन्त चारों ओर घूम-घूम कर तथा आश्रम में प्रवेश कर अनेक उपद्रव करते हैं। यज्ञ आरंभ करने पर वे निकट आते हैं और यज्ञ नष्ट कर देते हैं। बेचारे ब्राह्मण डर कर भागते हैं। वे राक्षसों के डर से घरों में छिपे बैठे रहते हैं। राक्षस उनके फल-फूल छीन लेते हैं और कलसी (आदि पूजा की सामग्री) नष्ट कर देते हैं।' (पृष्ठ—१३२)

मुस्लिम-अभिवादन-पद्धति :

बंगला-रामायण-लेखक कृत्तिवास ने सम्भवतः अनजान में ही मुस्लिम-शासकों एवं रावण में साम्य स्थापित किया था। राम की राज-सभा में उपस्थित होने पर लोग उन्हें राज-व्यवहार के अनुसार केवल प्रणाम करते थे—

१. राजव्यवहारे झुककर नोआय माथा पृष्ठ ५३०।

२. हेनकाले दुइ चर येथे आगुसरे। प्रणाम करिल सबे राज व्यवहारे॥ पृ० २६१

किन्तु रावण की राजसभा का अभिवादन था तीन बार सिर झुकाना—

१. तिन बार माथा नोङाय राज्य व्यवहारे, पृ० २८७।

२. बापेर चरणे माथा नोङाय तिनबार, पृ० १३३।

तीन बार माथा झुकाकर प्रणाम करने की पद्धति में मुसलमानी प्रभाव न होता तो राम के दरबार में भी इस पद्धति का प्रयोग होता। बुगराखाँ बंगाल का सूबेदार था। अपने पुत्र बादशाह कैकुबाद के सामने अपना मस्तक झुका कर उसे तीन बार पृथ्वी चूमने की रस्म अदा करनी पड़ी थी।

Bughra Khan bowed his head to the earth and Three times kissed the ground, as required by the ceremonial of the court.[1]

आईने-अकबरी—(आईन-७४) में भी तस्लीम की पद्धति में तीन बार झुकने की प्रथा थी। दाहिने हाथ के पृष्ठ-भाग को भूमि पर रखकर धीरे-धीरे उठाते थे, फिर शरीर के बिल्कुल सीधा हो जाने पर अपनी हथेली को सिर पर रखते थे। विशेष परिस्थितियों में तीन बार तस्लीम करने की प्रथा थी।

पृथ्वीराज-रासो (१००-२०६) में वर्णन है कि जब पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को वन्दी बना लिया, तो उसी की मुसलमानी पद्धति से अपने को तीन बार सलाम कराने के उपरान्त छोड़ दिया—

'किय सलाम तिय बार'

---

१. जियाउद्दीन-बर्नी (इलियट एण्ड डासन)—तारीखे फीरोजशाही, पृ० १३१। २.

अत्याचारी मदान्ध शासक को राक्षस के रूप में देखा गया है। कोई समस्त जाति-विशेष राक्षस नहीं कही जा सकती। राम सत् के प्रतीक हैं और रावण तम का। सत्-शक्ति पर विश्वास रखने वाली सभी जातियों तथा व्यक्तियों के राम आदर्श मानव हैं, हाँ जिसे सत्-शक्ति पर विश्वास न हो उसकी बात ही दूसरी है।

पहले ही कहा जा चुका है कि असम एवं उड़ीसा प्रदेशों में इस प्रकार की समस्या नहीं थी, अतएव उनके ग्रंथों में इस प्रकार की झलक नहीं है।

०राजनीति-चित्रण के अन्तर्गत अनेक बातें आती हैं—शासक के कर्त्तव्य, सुराज्य का रूप, राजकर्मचारी-गण, साम-दाम-दंड-भेद का प्रयोग, दूत-प्रेषण, दूत की अवध्यता, गुप्तचर-व्यवस्था, युद्ध के समय ललकार एवं रण-वाद्यों के साथ प्रस्थान, चार प्रकार की सेना, अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन आदि। राम की मुख्य-कथा के साथ ही परम्परानुमोदित प्रथाएँ अपना लेने के कारण रामायणों में जो राजनीति-विषयक चित्रण हो गया है वह पारस्परिक साम्य रखता है। जहाँ कुछ विशेषता दिखायी पड़ी, उसी का चित्रण यहाँ किया गया है।

योधन-नीति (strategy) और रण-चातुर्य (tactics) आदि :

सामान्य रण (battle) में जो दक्षता दिखायी जाती है उसे रणचातुर्य एवं दीर्घकालव्यापी युद्ध (war) के प्रत्येक प्रकार के मोर्चे पर विस्तृत सामरिक तैयारी, कूटनीति, रण-चातुर्य आदि का ज्ञान योधन-नीति कहा जा सकता है। संत तुलसीदास शासकों की छाया से दूर रहे, उन्हें राजनीति या रणनीति आदि का ज्ञान नहीं था। पूर्वांचलीय-लेखकों का सम्बन्ध समसामयिक राजाओं से था। अपने काल में प्रचलित युद्ध-कौशल अथवा रण-चातुर्य-सम्बन्धी ज्ञान का परिचय उनके ग्रन्थों के मध्य कहीं-कहीं मिल जाता है। रणनीति, समरसज्जा आदि का सहज-स्वाभाविक एवं विस्तृत परिचय उड़िया-रामायण में मिलता है। यहां रामायणों के कुछ विशिष्ट वर्णन प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

०असमीया-रामायण में राम ने हनुमान से पूछा—लंका गढ़ की बात कहो। उसकी चौड़ाई और ऊँचाई कितनी है, संक्रम कितने हैं?

हनुमान गढ़ का अध्ययन कर आये थे, उन्होंने बताया—चारों फाटकों पर दृढ़ किवाड़ हैं, चारों द्वारों पर चार संक्रम हैं। द्वारों पर लोहयंत्र-संत्र लगे हैं, जिन पर दिनरात सशस्त्र राक्षसों का पहरा लगा रहता है। गढ़ के चारों ओर खाई है। (पृ० २८७)।

संक्रम—खाई के ऊपर का पुल संक्रम कहलाता था। यह प्रायः लकड़ी का होता था। दुर्ग की रक्षा के समय उसे खींच लिया जाता था।

लोहा यंत्र-संत्र—संत्र का शुद्ध शब्द संयत्र होना चाहिए। लोहा-यंत्र का अर्थ है ताला और संयत्र का बन्द ताला। इन दोनों शब्दों के अर्थोद्धार में मुझे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की सहायता प्राप्त हुई है।

० बँगला-रामायणकार ने रावण की एक महान भूल की ओर कुम्भकर्ण द्वारा इंगित कराया है। वह रावण से कहता है, राम पुल बनाकर यहाँ तक आ गया, तुमने स्वयं समुद्र के उस पार जाकर आक्रमण क्यों न किया।[1] सच ही यदि रावण ने पुल न बनने दिया होता तो राम सुगमता से विजय-लाभ न कर पाते।

यहाँ असमीया-रामायण के कुम्भकर्ण की याद आ जाती है, उसने रावण से कहा था कि इतने मंत्रियों से घिरे बैठे हो और जीवित हाथी के दांत निकालना चाहते हो। यदि सीता को हरना ही था तो पहले राम को मार डालना चाहिए था।[2]

०**उड़िया-रामायण** में युद्ध-विद्या-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। दशरथ के पास जाकर विश्वामित्र ने जो प्रश्न किये अथवा दशरथ ने अभिषेक की कामना रखकर राम को जो उपदेश दिये, उससे तत्कालीन राजनीति एवं युद्धनीति का परिचय मिल जाता है।

'शत्रु के भय की बात मन में छिपा रखनी चाहिए, पुराने अमात्यों के परामर्श पर विचार करना चाहिए। ब्राह्मण एवं गुरु के प्रिय बनना चाहिए; नित्य 'साधन' (व्यायाम) करना आवश्यक है। धनुष-बाण ले कर ही घर से बाहर निकलना चाहिए। निर्लोभी को भण्डार सौंपना चाहिए। (२-२१)

विश्वामित्र ने दशरथ से पूछा था—'क्या गढ़ के आसपास खाई है ? गढ़ के भीतर पर्याप्त जल और अन्न का संचय है ; क्या गढ़ के द्वार पर कुन्त, शावल आदि अस्त्र, लाख और तेल ('भुणा जउ तेल') तथा बारूद, गोली और पत्थर रखे हैं ?[3] किवाड़ लोहे के हैं या नहीं, उनमें काँटेदार कीलें लगी हैं या नहीं ? सैन्य-भंग होने पर प्रयोग होने के लिए क्या चोरद्वार है ? रात्रि में गढ़-द्वार पर क्या पहरा लगता है ? शत्रु के सैन्य-स्थान पर क्या 'रात्रिहणा' (रात्रि आक्रमण) होता है ? गढ़ जीतने की कोई सन्धि तो नहीं जानता ? दूसरे की सेना को गढ़ के भीतर तो नहीं रखा जाता ? मार्ग में चलते समय गुप्त बातें तो नहीं कही जातीं।' (१-६०-६१)

रावण ने राम के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करायी है। लेखक का युद्धनीति-सम्बन्धी विशद ज्ञान यहाँ भी प्रकट होता है—

---

१. बँगला-रामायण, पृ० ३१०।
२. असमीया-रामायण, ५४४०।
३. कुन्त शावेलि आवर भुणा जउ तेल। दारु गोलि पथर तु रखिकु दुआर॥ १-६०। लाख और तेल (भुणा जउ तेल) द्वारों पर रखे जाते थे, शत्रु के आक्रमण के समय इन्हें गरम कर फेंका जाता था। यहाँ सन्देह 'दारु' शब्द पर है। उड़िया-कोशों में दारु के तीन अर्थ हैं—मदिरा, काष्ठ और बारूद। लेखक ने 'दारु गोलि' शब्द का प्रयोग किया है। इस काल तक कम से कम यूरोपियों और मुगलों से उड़िया लोगों का परिचय हो गया होगा और वे बारूद का प्रयोग जान गये होंगे। यही सोच कर मैंने 'दारु' का अर्थ बारूद किया है।

'(शत्रु पर ऊपर से फेंकने के लिए) तेल गरम करो। प्राचीरों पर सांग, शावल आदि तीक्ष्ण अस्त्र रखो। निरंतर सीढ़ी लगाये रहो। चोरद्वारों पर मत्त-गज रखो। रात्रि में निरन्तर मशालें जलाते रहो। कोई अकेला न जाए, एक दूसरे की पीठ की रक्षा करो। बिना बोले मोर्चों पर जागते हुए बैठे रहो।' ऐसा भी लिखा है कि राक्षस लोग राम की सेना पर ऊपर से गरम तेल और अस्त्र-शस्त्र की वर्षा कर चोरद्वार से आक्रमण कर देते थे। (६-१६, १७ एवं ३६)

मंत्र पढ़ कर चुम्बक द्वारा वाणों के फल घावों से निकाले जाते थे। (६-८५)

वज्रवाण बनाने की सामग्री में इन वस्तुओं के उपयोग का वर्णन है—गाय की अस्थि, गव तेल (अरण्य तेल) हरिताल, गन्धक, अर्क, यवक्षार (सोडा-पोटेशियम) और लोहानली। – (६-१७)

सैन्य-प्रस्थान का भी सजीव चित्रण किया गया है—राजा हाथी की पीठ पर चलता, पीछे सेना चलती। वाद्यकार, राजकर्मचारी, भृत्य, नटभाट, ज्योतिषी, भंडारी आदि भी साथ चलते।[1] राजपुरोहित मंगल-आरती, गोरोचन-तिलक, दूर्वादल अंकुर, दधि, मत्स्य, कबूतर, हंस आदि द्वारा शकुन करते। राजा ब्राह्मण को प्रणाम कर प्रस्थान करता।[2] हाथी के सिर पर सिन्दूर एवं कान तक कस्तूरी का लेपन होता। रेशम की रंगीन डोरी, सोने की सांकल और चांदी-जड़ित कांस्य-घंटा एवं मणि-रत्नों से उसका शृंगार होता।[3]

राजकर्मचारियों के पद इस प्रकार थे—राउत, माहुन्ति, रथी, पदाति, महारथी आदि।[4]

रावण की सेना में मुकुट-बंधा योद्धा (विशेष योद्धा) अनिवार्य-वाजि, टट्टू और मत्तगज थे। योद्धा लोग स्वर्ण-आच्छादन पहनकर उसके ऊपर कसकर पगड़ी बांधते थे।[5]

पत्र लिखने की पद्धति—राम ने रावण के पास पत्र लिखकर भेजा है। यह पत्र तालपत्र पर सुषेण से लिखवाया गया। इसे श्रीमुख कहा गया है। पत्र को मुद्रा-युक्त कर हनुमान के द्वारा रावण के पास भेजा गया है। रावण हनुमान से ही पत्र पढ़ने को कहता है, वे मुद्रा तोड़कर पढ़ते हैं।[6] उड़ीसा में तालपत्र पर लिखने की प्रथा रही है। लिखने की अन्य प्रकार की सामग्रियों का भी प्रयोग वर्णित हुआ है। रावण

---

१. उड़िया रामायण, ६,१७४।
२. वही, १,१७२।
३. वही, ६,१७३
४. वही, २,६६।
५. वही, ५,१००,६-६३।
६. वही, ६,५७।

ने अपने स्मरण के लिए राम के ब्रह्मत्व-विषयक कुछ वाक्य अपने धवलपुर में गेरू से, स्वर्ण-वस्त्र पर कस्तूरी से एवं काँचपुर में खड़ी से लिखवाये थे। ५-६

०संत तुलसीदास राज-प्रभाव से बहुत दूर थे। उन्होंने राजनीति-विषयक अपनी धारणाएँ तो कहीं-कहीं प्रकट की है कि राज-प्रमुख को मुख के समान सभी अंगों को पुष्ट करना चाहिए, पराधीनता स्वप्न में भी सुखदायक नहीं है, आदि ; किन्तु उन्हें रणचातुर्य-ज्ञान नहीं था, एक भक्त एवं कवि को इसके ज्ञान की विशेष आवश्यकता भी नहीं है। तत्कालीन बारूद, गोले[1] के प्रयोग का 'काल-दोप-पूर्ण' वर्णन तुलसी ने अवश्य किया है, साथ ही मुगल-शासकों के खेल चौगान[2] का उल्लेख भी किया है।

धार्मिक-प्रतिविम्ब

भारत की अधिकांश जनता पंचदेव—विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य की उपासना करती आयी है। इसके साथ ही पुनर्जन्मवाद, तीर्थयात्रा और नदीस्नान आदि पर भी जनता का विश्वास रहा है। सभी रामायणों में इन विचारों की झलक कहीं-न-कहीं मिल ही गयी है।

(१) शिव—**असमीया रामायण** के तीनों लेखक कट्टर वैष्णव हैं, उनके ग्रंथ में शिव का सामान्य उल्लेख है। शेष तीनों रामायणों में शिव के आर्य-अनार्य रूप का मिश्रण है।

० **बँगला रामायण** के शिव आक-धतूरा सेवन करने वाले, भंगेड़ी और श्मशान-चारी हैं। इस ग्रंथ में हर-पार्वती का कोंदल (झगड़ा) दिखा कर गृहस्थ शिव का चित्रण भी हुआ है, जोकि शिवायन-धारा का प्रतीक है।[3]

० **उड़िया रामायण** में ही शिव के अपेक्षाकृत अधिक रूप स्पष्ट हुए हैं—

वेश—व्याघ्रचर्म का उत्तरीय, त्रिशूल, डमरू, कंठ में वासुकि नाग, शीश पर जटा और चन्द्र, स्फटिक-कांतितन, प्रेत-पिशाच अनुचर, अस्थि-चर्म आभूषण समन्वित रूप का वर्णन है।[4]

रक्तमय उपासना—गंगानयन के लिए भगीरथ को इस प्रकार तपस्या करनी पड़ी है—

रोममूले तम्बार ये सूचिमुन मारि। से रुधिर सङ्गे घृत देइ दीप जालि। (ताँबे की सुई की नोक से रोममूल में आघातकर रुधिर निकाल कर उसके साथ घृत मिला कर दीप जलाते हुए उपासना करना—१-८६)

---

१. मानस, ६,४८,१० छन्द।

२. वही, ६,२६,५।

३. कृत्तिवासी बँगला-रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ७८।

४. उड़िया-रामायण—१,८६ एवं ६,३२६।

शिथिल-चरित्र कामुक-पति—धनुर्भंग के समय पार्वती ने भीत होकर शंकर की छाती से कुच सटा दिये। शंकर प्रसन्न होकर बोले, चलो आलिंगन तो मिला। मुझे अब धनुर्भंग का दुःख नहीं रह गया।[1] तपस्या-रता उमा से प्रथम भेंट होने पर तथा उन्हें जन्म-जन्म की पत्नी जानकर शंकर काम-विह्वल होकर अपने को सुरति-उपवासी बताकर रति-याचना करते हैं। पार्वती ने वर्जन करते हुए कहा 'अनाहार से दुर्बलता आती है और दुर्बल शरीर रति नहीं कर सकता, फिर हमारा अभी विवाह भी नहीं हुआ है।' विवाह के पश्चात् शंकर ने आकुल-रति की।[2] यहां लेखक ने अपनी अथवा अपने प्रदेश की रसिकता का परिचय दिया।

शिव-विष्णु-विवाद—में शिव को परास्त करने की उड़िया-रामायण में बार बार चेष्टा की गयी है। एक बार नारी-रूप धारी-विष्णु के पीछे ऐसे आकुल हो कर दौड़ते दिखाये गये हैं कि रेतःस्खलित हो जाने से वे दुर्बल हो गये हैं, अब लौटा नहीं चलता, सांस फूल गयी, पसीना भर रहा है, फिर भी नारी का मोह नहीं छोड़ पा रहे हैं।

लगता है कि कुछ तो शंकर के शिथिल-चरित्र होने की परम्परा ही प्रचलित थी और कुछ यह शूद्र लेखक विष्णु के प्रति पक्षपात रखता होगा, क्योंकि उड़ीसा का ब्राह्मण-समुदाय प्रायः शैव है। वैसे समस्त उड़िया-रामायण ही शिव-पार्वती संवाद के रूप में कथित है और समस्त रामायण में सैकड़ों बार शिव-पार्वती का कथोपकथन मिल जाता है, किन्तु यह पद्धति भी विष्णु अथवा उनके अवतार को महत्ता देने के लिए अपनायी गयी प्रतीत होती है। अध्यात्म-रामायण का प्रभाव भी हो सकता है।

उड़िया का शैव संन्यासी—कालनेमि हनुमान को छलने के लिए शैव-यति का वेश धारण कर बैठता है। उसके इस वेश में तत्कालीन उड़िया शैव-साधक का रूप प्रतिबिम्बित है—

वह व्याघ्रचर्म पर आसीन और विभूति का लेप किये है। दोनों कानों में तांबे के कुण्डल हैं। कक्षा-कौपीन पहने है, बगल में अधारी है। साथ ही स्फटिक माला, कमण्डल, छाता और धोती भी धारण किये है।[3]

मानस-कार ने शिव के अशिव और शिव दोनों वेशों का वर्णन करते हुए भी उनके दोनों रूपों के ऐसे मिश्र-रूप का वर्णन किया है जो उन्हें श्रेष्ठ योगिराज का पद प्रदान करता है। जनता में भी आज उनका यही रूप मान्य है।

वन्य-उपासना की ओर संकेत :

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मन्त्र जाल जिन्ह सिरिजा॥

---

१. उड़िया रामायण, १,१५४।
२. वही, १,१०२।
३. वही, ६,१६३।

अनमिल आखर अरथ न जाप। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥
निर्गुन निलज कुवेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर व्याली ॥[१]

मंगलमय रूप :

कुन्द इन्दु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ॥ १-४

समन्वित शुद्ध-रूप :

ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा।
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव वेष सिव धाम कृपाला ॥ १,६१,३,४

(१) शैव-वैष्णव समन्वय—सभी रामायण-लेखकों ने अल्पाधिक रूप में इन उपासनाओं के मध्य समन्वय करने का प्रयास किया है। सबसे अधिक सफलता गो० तुलसीदास को ही मिली है। काकभुशुण्डि की कथा के द्वारा यद्यपि इस विवाद को उठाकर महत्ता राम की ही सिद्ध की गयी है, किन्तु फिर भी शिव को रामचरित-मानस में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

वे ऐसे योगिराज हैं जिनकी कुपित दृष्टि से कुसुम-सायक भस्म हो जाता है। वे ऐसे आदर्श पति हैं जो सती की आत्मिक ग्लानि से अत्यन्त दुःखी हैं, किन्तु संयम और दृढ़ प्रतिज्ञा से तिल भर भी विचलित नहीं होते। वे स्वयं ही अशिव वेष धारण कर लेते हैं। चरित्र-शिथिलता तो कहीं नाम-मात्र को भी देखने में नहीं आती। ये शंकर राम के विह्वल भक्त हैं और राम भी शंकर के द्रोही को सह नहीं सकते। इन शंकर के विना सिद्ध-जन अपने अंतःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। शंकर आदर्श भक्त तो हैं ही, साथ ही वे मानस पाठकों के लिए संयमी, विवेकशील एवं स्नेहालु पति के भी आदर्श हैं।

(२) शक्ति—शक्ति के दो रूप हैं—कोमल और उग्र। प्रथम रूप में वे मातृरूपिणी गणेशजननी एवं शिवप्रिया हैं। उनके द्वितीय रूप में रक्त, खाँड़ा आदि का सम्बन्ध है, यहाँ उनके नाम भी काली, कराला, उग्रचंडा आदि हैं। उन्हें सृष्टि की आदि देवी भी बहुतेरे लेखकों ने माना है।

सभी रामायणों में मातृस्वरूपिणी देवी पार्वती का थोड़ा-बहुत चित्रण है। बँगला-रामायण एवं मानस में अम्बिका पार्वती का भव्य चित्रण है। बँगला-रामायण में देवी अम्बिका की स्तुति स्वयं राम करते हैं—इस प्रसंग में शाक्त बंगाल की धार्मिक मनोवृत्ति का प्रभाव है। मानस में भी जिस गौरी का वर्णन किया गया है वे पार्वती-रूप में पतिप्राणा पत्नी एवं सीतादि भक्तों पर दया करने वाली जगत-जननी भवानी हैं। सधवा स्त्रियाँ अपने सुहाग अथवा मनोवांछित पति की प्राप्ति के लिए उनकी उपासना करती हैं।

---

१. मानस, १,१४,५,६ एवं १,७८,६।

असमीया-रामायण में भी देवी को जल-स्थल एवं त्रिभुवन की सृष्टि करने वाली कह कर स्तुति की गयी है। उड़िया-रामायण में आदर्श गृहिणी के रूप में पार्वती का चित्रण है। शुभ-कार्य करते समय दुर्गा का स्मरण भी किया गया है। अन्य कोई विस्तृत चित्रण नहीं है।

उग्ररूप—देवी के उग्ररूप का चित्रण थोड़ा-बहुत सभी रामायणों में है और विशेषता यह है कि उनके इस रूप का सम्बन्ध राक्षसों से जोड़ा जाता है।

०**असमीया-रामायण** में रावण वानरों के रक्त से चंडी माँ का तर्पण करने की इच्छा रखता है —'वानरर रुधिरें तपिवो चण्डी माव'। इन्द्रजीत यज्ञ करते समय बकरे के रक्त और उसमें डूबी हुई लकड़ियों की आहुति देता है।[1]

० **बँगला-रामायण** में उग्रचण्डा की खप्पर-खाँडा सहित, लोल-रसना, विकट-दशना व्याघ्रचर्म तथा मुण्डमाल-धारिणी प्रचण्ड मूर्ति का चित्रण है।[2]

० **उड़िया-रामायण** में षष्ठी देवी के लिए भैंसे और बकरे की भेंट दी गयी है।[3]

०**मानस** में इन्द्रजीत द्वारा किये गये यज्ञ में रुधिर और भैंसे की आहुति का वर्णन है। परोक्ष-रूप से भूतप्रेत से घिरी चामुण्डा एवं कराला-कालिका का भी उल्लेख हुआ है।[4]

(२) **कृष्ण**—कृष्ण राम के पश्चात् प्रादुर्भूत हुए इसलिए रामकथा के साथ उनका सम्बन्ध नहीं जुड़ता, किन्तु भाषा-रामायण-लेखकों के काल तक कृष्णभक्ति का प्रचार जनता में हो चुका था, अतएव इन ग्रन्थों में कृष्ण का प्रसंग किसी-न-किसी रूप में आ ही गया है।

असमीया रामायण के प्रथम और अन्तिम काण्ड के लेखक कट्टर कृष्ण-भक्त थे। वे कृष्ण को परब्रह्म मानते थे। इन दोनों ने ही अपने-अपने काण्डों में कृष्ण को ब्रह्म मान कर स्तुति की है। शंकर देव अपने को कृष्ण-किंकर कहते हैं। असमीया-रामायण के मुख्य मध्यांश में भी इन दोनों कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण का रंग देने का प्रयास किया होगा।

उड़िया-रामायण की भी यही स्थिति है। उसका लेखक बलरामदास श्री जगन्नाथ स्वामी का दास है।—'नीलगिरी जगन्नाथ मुं अटे भृत्य' तथा 'मुंहि बलरामदास श्री कृष्णर दास'।[5] राम भी एक स्थल पर कहते हैं कि अगले जन्म में

---

१. असमीया-रामायण—देखिए क्रमशः छन्द-संख्या ५२६४ और ५६४८, ४६।
२. बंगला-रामायण, पृष्ठ २२२।
३. उड़िया-रामायण, १,५५।
४. मानस—दोनों प्रसंगों के लिए देखिए क्रमशः ६,८७,८ एवं १,४६,६।
५. मैं नीलगिरी के जगन्नाथ का भृत्य हूँ।—मैं बलरामदास कृष्ण का भक्त हूँ। ४,२।

मथुरा में कृष्णावतार लूँगा। इस लेखक ने महाभारत के कई पात्रों एवं गर्ग-रामायण का भी नाम लिया है।

बँगला और उड़िया रामायणों में कृष्णभक्ति-विषयक एकसमान प्रसंग आया है। राम-लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त करने के लिए गरुड़ आये हैं, उनके अनुरोध पर राम ने अगले जन्म में होने वाले कृष्णावतार का रूप गरुड़ को दिखाया है। बँगला-रामायण का यह प्रसंग प्रक्षिप्त जान पड़ता है, क्योंकि इस पर म० चैतन्यदेव का प्रभाव स्पष्ट है। कृत्तिवास के ऊपर जयदेव वाली कृष्णभक्ति का बिल्कुल प्रभाव नहीं है।

मानस में कृष्ण का उल्लेख इस रूप में है कि जले हुए काम की पत्नी को वर दिया जाता है कि उसका पति आगे चलकर कृष्ण-तनय होगा—१-८७-२। उड़िया-रामायण को छोड़ कर शेष तीनों के राम-जन्म पर भागवत के कृष्ण-जन्म का प्रभाव है।

(४) **अब्राह्मण्य-साधनाओं की उपेक्षा** – असमीया-रामायण के तीनों लेखक अब्राह्मण्य-साधनाओं के विरोधी थे। असमीया-रामायण के अयोध्याकाण्ड में राम के पीछे प्रजाजनों के साथ दौड़ते हुए एक योगी का चित्रण है। यह नाथ योगी लगता है। लेखक इसके प्रति सहानुभूति रखता प्रतीत नहीं होता। योगी कंधे पर फटी झोली, हाथ में 'द्वादश काथि' (?) और बंगला में तूम्बी धारण किये हैं। वह थकावट से चूर शिव-शिव कहता हुआ अस्त-व्यस्त भागा जा रहा है। बँगला-रामायण में सीताहरण के समय रावण का वेश नाथ-योगी का चित्रित किया गया है। वह कान में शंख-कुँडल पहने है, रक्त-वस्त्र धारण किये है और डमरू बजाता हुआ भिक्षा माँगता है।[1] लेखक ने नाथ-योगियों की स्पष्ट निन्दा नहीं की है, किन्तु उनका पात्र अंगद जिस प्रकार इस रूप के कारण रावण की भर्त्सना करता है, उससे स्पष्ट है कि वह रावण के इस रूप की उपेक्षा करता है। राक्षसों के यज्ञ में ही रक्त-वर्ण पुष्पमाला एवं सुरक्त चंदन के साथ बकरों की बलि वाली उपासना का वर्णन है— तीक्ष्ण अस्त्रे छागल छेदिया काटि-काटि—पृ० ३२८।

गो० तुलसीदास ने श्रुति-पथ तज कर वाम-पथ पर चलने वालों की निन्दा की है।[2] कौल-मार्गियों को उन्होंने अघ-खानि पापियों की कोटि में रख कर शव के समान माना है। तत्कालीन भूत पिशाचों आदि की उपासना से भी लेखक सन्तुष्ट प्रतीत नहीं होता—

जे परिहरि हरिहर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ विधि जौं जननी मत मोर॥ २-१६७

---

१. बँगला-रामायण, पृष्ठ २७५।

२. मानस—देखिए क्रमशः २-१६७-७, ८ एवं ६-३०, २—४।

(५) उड़िया-रामायण की योग-साधना एवं तंत्र मंत्र— केवल उड़िया-रामायण पर ही तंत्र-मंत्र का प्रभाव दिखायी पड़ता है। प्रतीत होता है कि सिद्ध एवं नाथ-पंथ की परम्परा का प्रभाव होगा। कई स्थानों पर शैवयतियों का चित्रण नाथपंथियों जैसा तो हुआ ही है, मार्कण्डेय-ऋषि को भी इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे बाँस का दण्ड लिए तथा कंथा-कौपीन, रुद्राक्ष-माल और पिंगल-जटा धारण किये हैं। साथ में नवरता वेनु भी है।

हठयोग : योगदर्शन—इस रामायण में हठ-योगियों की इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना का वर्णन है।

इड़ेला पिड़ेला सिपुसुना नाड़ि वेनि। कुल कमल नाल रे हंस यहिँ चरि॥
याहा कुहि योगि जने अलपा आचरि॥ ६-७३

उत्तरकाण्ड में सीता के निर्वासन से दुःखी राम को लक्ष्मण योगदर्शन का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं ब्रह्म शरीर के भीतर है। अपने-आपको पहचानने पर ब्रह्माण्ड को पहचाना जा सकता है। वे बिन्दु अर्थात् शुक्र को ही प्राण बता कर उसके पतन को मृत्यु बताते हैं।

से महापराण ये आवोरि अछि पिण्ड। से प्राणखण्ड अटइ जाण बिन्दुखण्ड॥
येसे से निपात होइ तेणे से मरण। ७-१२४

आगे वे कहते हैं कि शुक्लवर्ण तेज ही चन्द्र है। इस महारस को ऊर्ध्वमुख करो। मन को दृढ़ कर पवन की साधना करो। धातु गुप्त कर पवन के साथ उड़ता है। यम-नियम पूर्वक मन को साधो। अष्टांग-युग में इन तत्व का वर्णन है। अजपा का जप करो, आत्मा को पहचानने वाला ही महात्मा होता है।—७-१२२

जादू-टोना—रावण का एक राक्षस ताँबे के पात्र में बायें हाथ से घोड़े की नींद लगाकर उसमें पिसी हुई मिर्च डालकर अँधेरे में अंजन बनाकर आँख में लगाता था, इससे दूर तक दिखायी पड़ता था। वह मंत्र पढ़कर बायें पैर की धूल सिर पर डालता था तो लक्ष-योजन तक का समाचार ज्ञात कर लेता था।

आक की पुरानी जड़, गोरोचन, कुंकुम आदि के प्रयोग से त्रैलोक्य वश में किया जा सकता है। (६-१२)

(६) अन्य देव एवं सामान्य-विश्वास—वैसे तो इन सभी राम-कथा-लेखकों ने हिन्दू-समाज में प्रचलित कई देवों का यत्र-तत्र उल्लेख किया है, किन्तु यह चेष्टा उड़िया-रामायण में अधिक देखी जाती है। दुर्गा, गंगा, गणेश, माधव, लक्ष्मी, नरसिंह, नवग्रह, सरस्वती, इन्द्र और छाया-माया सहित एक चक्रगामी सूर्य का स्मरण अथवा स्तवन किया गया है। प्रायः किसी शुभकार्य के प्रारम्भ अथवा उड़ीसा-देश में प्रचलित किसी व्रत-विशेष के अवसर पर इनका स्मरण है। प्रस्थान के समय मंगलाष्टक का पाठ, सिर पर त्रिशाखा-दूर्वा रखना, स्नान के पश्चात् लक्ष्मी-नारायण की प्रतिमा देखना तथा विप्रभोज एवं गृह-शान्ति आदि का उल्लेख है। मानस के पात्र भी यात्रा के पूर्व 'हर गुर गौरि गनेसु' का स्मरण कर लेते हैं।

तीर्थ, नदी-स्नान, शकुन-अपशकुन, शुभ-कार्य के प्रारम्भ में ज्योतिष-गणना आदि पर विश्वास का तत्कालीन विम्ब इन रामायणों में उपलब्ध है।

उड़िया का धर्म देवता —द्वितीय अध्याय में धर्म-ठाकुर नामक एक आँचलिक देवता का वर्णन हुआ है। संपाति और अंगद के वार्तालाप के मध्य धर्म-देवता का दो वार उल्लेख हुआ है। हो सकता है यह धर्म-देवता धर्म-ठाकुर ही हो।—४-८६, ८८।

सामाजिक-प्रतिबिम्ब

(१) **वर्ण**—अत्यन्त प्राचीन काल से हमारा समाज चार वर्णों में विभाजित रहा है। हमारे महाकाव्यों में भी वर्ण-व्यवस्था की झलक मिल जाती है। रामायणों में चारों वर्णों और उनमें ब्राह्मण के श्रेष्ठ होने का वर्णन है। प्रत्येक रामायण में वर्णानुसार आचरण पर भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जोर दिया गया है। किन्तु साथ ही सभी रामायण लेखकों ने उच्च और निम्न वर्ण के समन्वय के प्रयास दो प्रकार से किये हैं—(१) उच्चवर्णीय पात्रों वसिष्ठ, भरत आदि का चंडाल से स्नेह-मिलन, (२) अछूतों को भी रामभक्ति का अधिकार-प्रदान।

० **असमीया रामायण** की इस पंक्ति से ध्वनित होता है कि निम्न-जाति के व्यक्तियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है—हाड़ि जाति हुया पढ़िवाक चास वेद।[1] असमीया के आदिकाण्ड के लेखक कायस्थ माधवदेव भी वर्णानुसार आचरण का उपदेश देते प्रतीत होते हैं। राम के द्वारा ब्राह्मण के गुण शम, दम, दान, दया और क्षमा वता कर परशुराम से इन्हीं का आचरण करने के लिए कहा गया है। माधवदेव ब्राह्मण से द्रोह न करने की बात भी कहते हैं।[2]

इस रामायण में नट, भाट, तेली, माली, ताँती, ठठारि, सोनारि, कंसार (कांस्यकार) सेङ्खारी (शंखकार), वनिया, चमार, कमार (लोहार), सुतार (वढ़ई), धोवा (धोवी), कुंभकार और हाड़ि आदि जातियों का तथा छत्तीस जाति का नामोल्लेख भी है।

० **बँगला-रामायणकार** ने भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता दिखाकर उसकी हत्या से विषम-यातना की प्राप्ति वतायी है, तथा पात्रों द्वारा उपदेश दिलाया है कि सदैव द्विज-भक्ति करना। छुआछूत की भावना का प्रतिविम्ब भी इस रामायण में मिल जाता है। हरिश्चन्द्र ने अपने को डोम के हाथ वेचा किन्तु विनयपूर्वक यह प्रतिश्रुति ले ली कि उच्छिष्ट-भोजन खाने को न दिया जाए। दूसरी समस्या थी सुअरों के मलमूत्र से स्थान स्वच्छ करने की। शूकरों ने स्वयं ही राजा को उवार लिया, वे राजा का ध्यान रखकर दूर मल-मूत्र त्यागते थे। सीता राक्षसियों का छुआ अन्न

१. असमीया-रामायण, छं० सं० ३१७६।
२. वही, छं० सं० १४२२ एवं ३८०।

नहीं जा सकती थीं, इसलिए इन्द्र उन्हें नित्य सुधाफल दे आते थे। अहल्या के ब्राह्मणी होने से लक्ष्मण राम को पदस्पर्श देने से रोकते हैं।[1]

० उड़िया-रामायण-लेखक ने भी परम्परानुसार ब्राह्मण की श्रेष्ठता का वर्णन किया है—देवता ब्राह्मणकु करिथिब भकति:—७/२०७। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था एवं वर्णानुसार कर्मों को भी स्वीकार किया है।[2] फिर भी कहीं-कहीं ब्राह्मण के प्रति गुप्त-द्वेष उभर आया है।

उड़िया रामायणकार का वर्ण-विद्रोह—अयोध्या के एक राजकुमार सत्यवंत ने ब्राह्मणकुमारी से भोग किया। ब्राह्मण ने राजा से शिकायत की, राजा ने राजकुमार को दंडित किया। राजकुमार के इन कथन द्वारा मानो स्वयं लेखक अपने विचार व्यक्त कर रहा है—

राजाङ्कुर झिअकु त ब्राह्मण निअइ। ब्राह्मणर झिअ कि राजाकु न योगाइ॥

(राजा की पुत्री को तो ब्राह्मण ग्रहण कर लेता है, किन्तु ब्राह्मण की पुत्री क्या राजा को नहीं मिल सकती—१-१२१)

विश्वामित्र-वशिष्ठ संघर्ष में वशिष्ठ तेजस्वी तपस्वी सिद्ध न होकर सत्ता-लोलुप से दिखाये गये हैं। इसी प्रकार गया के पंडों के रूप में भी ब्राह्मणों की निन्दा है। विभीषण अपनी पवित्रता की साक्षी राम के सम्मुख देकर कहता है कि यदि मिथ्या-भाषण करूँ तो कलियुग का ब्राह्मण बनूँ। वह कलियुग के ब्राह्मणों के विषय में कहता है कि कलियुग में ब्राह्मण नरक जाएँगे। वे समय पर सन्ध्या नहीं करेंगे।

इससे तो यह प्रकट है कि लेखक ब्राह्मण के परम्परागत गुणों को मानता हुआ उनका आदर करता है, किन्तु वह अपने काल के लोभी ब्राह्मणों से सन्तुष्ट नहीं है।

इस लेखक ने भी अनेक जातियों का नामोल्लेख किया है—तंती, तेली, ताम्बली, माली, कुम्हार, गुड़िया (हलवाई) नाई, आदि।

०तुलसीदास ने पुराणों की पद्धति का अनुसरण कर कलियुग का वर्णन किया है, इस वर्णन में उन्होंने भारत की तत्कालीन-सामाजिक-स्थिति का बिम्ब प्रस्तुत किया है—

वर्णाश्रम-धर्म का पालन नहीं होता है। कोई भी वेदों का अनुशासन नहीं मानता है, दंभियों ने अनेक पंथों का प्रचार कर दिया है। जिसे जो मार्ग अच्छा लगता है उसी का अनुसरण करता है। व्यर्थ बकवास पाण्डित्य समझा जाता है। नख और जटा बढ़ाकर तापस कहलाने वालों की संख्या बढ़ रही है। तपस्वियों और विरक्तों के पद का मूल्य इतना घट गया है कि अधम-वर्ण वाले तेली, कुम्हार, श्वपच, किरात कोल, कलवार आदि स्त्री मर जाने और संपत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुड़ा कर संन्यासी हो जाते हैं, और ऐसे निकृष्ट जीव ब्राह्मणों से अपनी पूजा कराते हैं। सब

---

१. बँगला-रामायण, पृष्ठ ११, १५७, ७५ पर उपर्युक्त विभिन्न प्रसंग।

२. उड़िया-रामायण, २-६८।

जात-कुजात के लोग भीख माँगने लग गये हैं। शूद्र ब्राह्मणों से गुर्रा कर कहने लगे हैं, क्या हम तुमसे किसी प्रकार कम हैं ? वे जनेऊ धारणकर, दान ग्रहणकर, ब्राह्मणों को उपदेश देने लगे हैं। ब्राह्मण, राजा और प्रजा तीनों ही कर्त्तव्यच्युत, लोलुप, कामी और पाप-परायण हो रहे हैं।[1]

तुलसीदास ने न तो रूसी मार्क्सवाद पढ़ा था और न किसी बौद्ध भदंत का लेख। अपनी परिस्थितियों और सीमाओं के भीतर उन्होंने समाज के संगठन और उन्नयन के लिए निम्न दो साधन अपनाये थे—

(१) उन्होंने ब्राह्मणों के शुचितामय आदर्श को बढ़ावा देकर सारे समाज के सामने पुराने जीवन-मूल्यों का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना चाहा। इसके लिए उन्होंने यहाँ तक कहा—

पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥ ३,३३,२

तुलसी के समाज का आदर्श है—ब्राह्मण के चरण में प्रेम तथा वेद-रीति का अनुसरण करते हुए अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्म का पालन। बिना इसके भगवद्भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।[2] तुलसीदास यह नहीं चाहते थे कि समाज में ब्राह्मण का मूल्य घटे, क्योंकि ऐसा होने पर शुचिता एवं तप-त्याग का ही मूल्य घटता था। दूसरी ओर वे पतित और स्वार्थी ब्राह्मणों को मान्यता नहीं देना चाहते थे, इसीलिए ब्राह्मण का गुणगान करते हुए भी उन्होंने निरक्षर, लोलुप, कामी, आचार-हीन शठ, एवं वृपला-नारी के स्वामी ब्राह्मणों को छोड़ा नहीं है।[3] उन्होंने कहा है कि ब्राह्मण के पास ब्राह्मणत्व के लिए केवल जनेऊ रह गया है।[4] ब्राह्मण स्वार्थ के लिए वेदों को वेचकर जीविका अर्जित करने लगे हैं।[5]

(२) उन्होंने युग की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ब्राह्मण एवं चण्डाल का समन्वय कर भक्ति पर अछूतों का भी अधिकार स्वीकार किया। राम को केवल प्रेम प्यारा है। जो जाति-पाँति आदि त्याग कर केवल उनका भजन करता है वही उन्हें प्राप्त कर सकता है। आभीर, यवन, किरात आदि जातियाँ केवल एक बार राम का नाम लेकर पवित्र हो जाती हैं—

स्वपच, सबर, खस, जमन, जड़ पावँर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥ २,१९४

किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि जाति-पाँति की छूट केवल भक्त

---

१. मानस : कलियुग वर्णन—उत्तरकाण्ड, दोहा संख्या ९७ से १०२।
२. मानस, ३-१५-५,६।
३. विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी॥ ७-९९-८।
४. द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी, ७-१००-७।
५. द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन, ७-९७-२।

के लिए है, सामान्य संसारी व्यक्तियों का शासन तो समाज के प्रतिष्ठित नियमों द्वारा ही होगा, वे वर्णाश्रम-धर्म के नियमों से छूट नहीं पा सकते।[1]

डा० रामनिरंजन ने तुलसीदास के भीतर ब्राह्मण-जाति के प्रति पक्षपात देखा है।[2] असमीया-रामायण के आदि और अन्त काण्ड के लेखक-द्वय कायस्थ थे एवं उड़िया-रामायणकार शूद्र। इन तीनों ने ही ब्राह्मण, तपस्वी एवं गौ के प्रति आदर व्यक्त किया है, इसके लिए क्या कहा जाएगा ?

(२) नारी : स्मृति-शासित समस्त भारत में नारी-विषयक दृष्टिकोण में समानता रही है। उसके विषय में प्रायः तीन प्रकार की धारणाएँ अपने समाज में रही हैं—(१) वह कुलवधू है, उसे परिवार के सभी व्यक्तियों का ध्यान रखना चाहिए। उसके लिए पति ही एक गति है। साध्वी कुलवधू के रूप में उसे कुछ सुविधाएँ भी दी गयीं। पति एवं अन्य पारिवारिक व्यक्तियों को आदेश दिया गया कि वे नारी को प्रसन्न रखें। (२) उसे अबला समझा गया तथा उसे स्वतन्त्र न रहने देने का उपदेश दिया गया। (३) वह चंचल, अविश्वसनीय एवं पतन की ओर ले जाने वाली मानी गयी।

आलोच्य-रामायणों में यही दृष्टिकोण अल्पाधिक-रूप में व्यक्त है। पूर्वांचलीय जनों को स्त्री अधिक प्रिय होती है अतएव वे उसके प्रति उतने उग्र नहीं हो सके जितने कि संत तुलसीदास।

असमीया-रामायण की सीता को उपदेश दिया गया कि स्त्रियों का भूषण स्वामी है। राम के वचन का कभी उल्लंघन न कर सर्वक्षण एक चित्त से सेवा करना चाहिए। सास-ससुर की सेवा करना चाहिए तथा देवर लक्ष्मण की कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। नारी की गति पति है, अन्य देव नहीं—

नारीर पति से गति आन देव नाहि। १७६०

सीता के तेजस्विनी कुल-वधू का चित्रण कर नारी के प्रति लेखक ने सम्मान प्रकट किया है, किन्तु साथ ही परम्परागत उक्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। वह निदारुणी है, स्त्री जाति पराधीन है, वह स्वतंत्र नहीं है। स्त्री जाति चंचल और अस्थिर ('उवावल') और पल में पलटने वाली है।

१. हेनय स्वभाव निदारुण स्त्री जाति।
२. स्त्री जाति पराधीन नोहे स्वतंतरी।
३. स्त्री जाति उवावल सर्व्वलोके भापि।
४. स्त्री जाति चंचल क्षणे के उलटय।[3]

---

१. डा० जगदीशनारायण शुक्ल—'मानस' की 'रूसी भूमिका' की भूमिका, पृ० ६० की पद-टिप्पणी देखिए।
२. डा० रामनिरंजन पाण्डेय—रामभक्ति-शाखा, पृ० ३५२।
३. असमीया-रामायण—देखिए, क्रमशः छन्द संख्या-३११४,४३०१,५११६,५११५।

०बँगला-रामायण में भी सीता को पतिव्रत का उपदेश देकर कहा गया है कि स्वामी निर्धन या सधन हो उसके बिना स्त्रियों की अन्यगति नहीं है। लेखक ने नारी की प्रशंसा भी की है। उसको मंत्रणा सुनने का उपदेश दिया है --'मुनि गणे कहे सर्व्व शास्त्रेर विहित। रमणीर-सुमंत्रणा शुनिते उचित।' क्योंकि विपत्ति में स्त्री की सुबुद्धि से पुरुष सकुशल रहता है। नारी-हत्या को पाप बताया गया और उसके वर्जन के पाप का फल अश्वमेध-यज्ञ में राम की पराजय के रूप में दिखाया गया।

नारी की निन्दा भी की गयी है। स्त्री के वश में रहने वाले का सर्वनाश होता है। नारी हीन-बुद्धि है। उसकी माया की सन्धि पुरुष नहीं समझ सकता। वामा-जाति की नारी वाम-वचन बोलने वाली होती है। वह अबोध और अबला है।

१. स्त्रीवश ये जन तार हय सर्व्वनाश।
२. यत कह तवु तुमि हीन बुद्धि नारी।
३. नारीर मायार सन्धि पुरुषे कि पाय।
४. वामा जाति हओ तुमि तेमनि वचन।
५. अबोध अबला जाति नाहि बुझ कार्य।[1]

०**उड़िया नारी का माधुर्य**—उड़िया-रामायण में नारी की विशेष प्रशंसा एवं उसके गुण-स्वभाव का रोचक वर्णन है। सीता को जनक ने उपदेश दिया—सास को देखकर आसन से उठना, उन्हें प्रणामकर थोड़ा हटकर बैठना, उनकी विवेचना न करना, व्यर्थ हँसना नहीं। स्वामी से भली-बुरी बात न कहना। सदैव राम की आज्ञा का पालन करना। अपूर्व पदार्थ देखकर माँगना नहीं और रात्रि-दिवस विनयी रहना।

अपूर्व पदार्थ गो देखिले न मागिबु। रात्रि-दिवस गो तु विनयी होइथिबु॥

१-१०६

कौशल्या के उपदेशों में अनुभवी साध्वी-गृहिणी का प्रतिविम्ब मिलता है। वन-गमन करती सीता से उन्होंने कहा—अपूर्व पदार्थ देखकर राम से न माँगना। स्वामी को छोड़कर कहीं न जाना। विनयी होकर भर्त्ता की सेवा करना। कन्दमूल-फल एक दिन आगे के लिए रख लेना। भारतीय नारी से आशा की जाती है कि वह जन्म-जन्म में सौभाग्यवती हो तथा योग्य पुत्र प्रसव करे। कैकयी ने वनवास से लौटी सीता को यही उपदेश दिया था।

रमणी का महत्त्व—उड़िया-लेखक ने स्त्री को पुरुष की बान्धवी बताकर कहा कि बिना स्त्री के पुरुष की शोभा नहीं। स्त्री ही धर्म है, कर्म है और संसार की आदि-जन्मा ब्रह्म है। उसके बिना सृष्टि ही नहीं होती। स्त्री पुरुष का अलंकार है, वह पुत्र-कन्या उत्पन्न करती है—स्त्री पुत्र कन्या ये करइ उतपति—७-६४।

---

१. बँगला-रामायण—देखिए, क्रमशः पृष्ठ १००, ४२८, ३२७, ३५७।

०बँगला-रामायण में भी सीता को पतिव्रत का उपदेश देकर कहा गया है कि स्वामी निर्धन या सधन हो उसके बिना स्त्रियों की अन्यगति नहीं है। लेखक ने नारी की प्रशंसा भी की है। उसको मंत्रणा सुनने का उपदेश दिया है —'मुनि गणे कहे सर्व्व शास्त्रेर विहित। रमणीर-सुमंत्रणा शुनिने उचित।' क्योंकि विपत्ति में स्त्री की सुबुद्धि से पुरुष सकुशल रहता है। नारी-हत्या को पाप बताया गया और उसके वर्जन के पाप का फल अश्वमेध-यज्ञ में राम की पराजय के रूप में दिखाया गया।

नारी की निन्दा भी की गयी है। स्त्री के वश में रहने वाले का सर्वनाश होता है। नारी हीन-बुद्धि है। उसकी माया की सन्धि पुरुष नहीं समझ सकता। वामा-जाति की नारी वाम-वचन बोलने वाली होती है। वह अबोध और अबला है।

१. स्त्रीवश ये जन तार हय सर्व्वनाश।
२. यत कह तबु तुमि हीन बुद्धि नारी।
३. नारीर मायार सन्धि पुरुषे कि पाय।
४. वामा जाति हओ तुमि तेमनि वचन।
५. अबोध अबला जाति नाहि बुझ कार्य।[1]

०उड़िया नारी का माधुर्य—उड़िया-रामायण में नारी की विशेष प्रशंसा एवं उसके गुण-स्वभाव का रोचक वर्णन है। सीता को जनक ने उपदेश दिया—सास को देखकर आसन से उठना, उन्हें प्रणामकर थोड़ा हटकर बैठना, उनकी विवेचना न करना, व्यर्थ हँसना नहीं। स्वामी से भली-बुरी बात न कहना। सदैव राम की आज्ञा का पालन करना। अपूर्व पदार्थ देखकर माँगना नहीं और रात्रि-दिवस विनयी रहना।

अपूर्व पदार्थ गो देखिले न मागिबु। रात्रि-दिवस गो तु बिनयी होइथिबु॥

१-१०६

कौशल्या के उपदेशों में अनुभवी साध्वी-गृहिणी का प्रतिबिम्ब मिलता है। वन-गमन करती सीता से उन्होंने कहा—अपूर्व पदार्थ देखकर राम से न माँगना। स्वामी को छोड़कर कहीं न जाना। विनयी होकर भर्त्ता की सेवा करना। कन्दमूल-फल एक दिन आगे के लिए रख लेना। भारतीय नारी से आशा की जाती है कि वह जन्म-जन्म में सौभाग्यवती हो तथा योग्य पुत्र प्रसव करे। कैकयी ने वनवास से लौटी सीता को यही उपदेश दिया था।

रमणी का महत्त्व—उड़िया-लेखक ने स्त्री को पुरुष की बान्धवी बताकर कहा कि बिना स्त्री के पुरुष की शोभा नहीं। स्त्री ही धर्म है, कर्म है और संसार की आदि-जन्मा ब्रह्म है। उसके बिना सृष्टि ही नहीं होती। स्त्री पुरुष का अलंकार है, वह पुत्र-कन्या उत्पन्न करती है—स्त्री पुत्र कन्या ये करइ उतपति—७-६४।

---

१. बंगला-रामायण—देखिए, क्रमश: पृष्ठ १००, ४२८, ३२७, ३५७।

उसका रमण सुखदायक—लेखक कहता है कि स्त्री के साथ रमण न करने पर जन्म में सुख कहाँ है ।[१] वह ब्रह्मा, विश्वामित्र आदि महानुभावों के स्खलन-स्वरूप सन्तानों का उल्लेख करता है ।

उसका स्पृहणीय मनोहर-रूप—स्त्री के अधरों में अमृत है, मुख में चन्द्रमा, नयनों में पंचवाण । उसका यौवन स्वादु-फल है, उसकी गोद में जीवन सफल है । ब्रह्म ने उसे अत्यन्त यत्न से वनाया, इसलिए उसका **प्रमदा** नाम दिया है । देखते ही पुरुष को मोहित कर लेती है, इसलिए उसका नाम **वामा** है । युवाओं को मोहने के कारण उसका नाम **युवती** है । स्नेह का सेतु होने के कारण वह **वल्लभी** है । उससे कुटुम्ब उत्पन्न होता है इसलिए उसका नाम **कुटुम्ब** है और अंग-शोभा के कारण वह **अंगना** है । भाग्य देने के कारण वह **सौभाग्या** (सउभागी) है । उसके सहयोग से पुरुष धर्म का आचरण कर पाता है, इसलिए वह **धर्मपत्नी** है । वल न रहने से वह **अवला** है ।

यहाँ लेखक ने उसकी सिंहकटि, मृग-नयन, गजमोती-दन्त, अरुण-अधर, तिलफूल-नासिका, कृष्णभ्रमर-केश, कामधनु भ्रूलता, श्रीफल-पयोधर आदि का मोहक वर्णन भी किया है ।[२]

नारी के दोष—इस लेखक ने भी नारी के दोष दिखाये हैं । मधु-शय्या के दिन राम और सीता ने सामान्य नारी और नर के चरित्र-दोषों का वर्णन कर प्रतिज्ञाएँ करायी हैं, उस समय राम के शब्दों में नारी के ये दोष वताये गये हैं—तुम स्त्रियों का चित्त चंचल और अस्थिर होता है, मन और प्रकृति में अन्तर होता है । विद्यावान, धनवान, कुलीन, युवा, वीर, धर्मात्मा एवं असंख्य-सम्पद् स्वामी भी क्या स्त्री के शृंगार की तुष्टि कर पाता है । अपनी स्त्री को प्राणों के समान मानने वाले भर्त्ता को भी युवती छोड़कर विट-पुरुष (लम्पट) से प्रीति करती है ।[३] निर्वासिता सीता के शोक में दुःखी राम को लक्ष्मण समझाते हुए नारी की निन्दा करते हैं, उनके कथन का सार है कि स्त्रियों के कारण ही अनेक भयंकर युद्ध हुए, उनमें अपार अवगुण हैं, स्त्रियों का विश्वास करना वड़ा दोष है ।

कई स्थानों पर वलरामदास का नारी-समुदाय अत्यन्त कामुक रूप में चित्रित किया गया है । जनकपुरी की स्त्रियाँ अत्यन्त प्रगल्भ होकर तथा संयम खोकर काम-भाव का प्रकाशन करती हैं । पूर्ववर्त्ती सारलादास ने भी शृंगार-भाव के विषय में नारी का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । सम्भव है इसमें देशकाल का प्रतिविम्व हो ।

कतिपय दोषों के अतिरिक्त उड़िया-रामायण की नारी पुरुष की आदर्श एवं

---

१. स्तिरी न रमिले ये जनम सुख काहिं । उ० रा० ७-६३ ।

२. उड़िया-रामायण, ७-६३-६४ ।

३. वही, १-२०४ ।

प्रियसंगिनी के रूप में ही अधिक चित्रित हुई है। नारी के सहज-स्वभाव का भी इस ग्रंथ में चित्रण है - जाली से झाँककर देखने का कुतूहल, गुरुजनों के सामने लज्जा का अनुभव, स्त्रियों के बीच गप्प लड़ाना (सीता शबर-पत्नियों से बातें करतीं वन-पथ में राम लक्ष्मण के पीछे छूट जाती हैं), पति की जूठी पत्तल में सबके पश्चात् भोजन करना, आदि।

० मानस में अनुसूया के मुख से सीता को जो उपदेश दिये गये हैं उनका सार इस प्रकार है—

१. स्त्री को अपने माता-पिता और भाई से अधिक मान अपने पति को देना चाहिए।

२. पति के वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धे, बहरे, क्रोधी और अत्यन्त दीन होने पर भी स्त्री को उसका अनादर नहीं करना चाहिए।

३. स्त्री के लिए अन्य किसी साधन-पथ के अपनाने की आवश्यकता नहीं है, यदि वह मनसा-वाचा-कर्मणा पति के चरणों से प्रेम करती है तो बिना श्रम के ही उसका उद्धार होता है।

४. पतिव्रताएँ चार प्रकार की होती हैं— (१) **उत्तम** पतिव्रता वही है जो स्वप्न में भी पर-पुरुष का ध्यान नहीं करतीं, (२) पति के अतिरिक्त अन्य जनों से भ्राता आदि का पवित्र नाता जोड़ने वाली स्त्री **मध्यम** कोटि की पतिव्रता कही जाएगी। (३) कुल की मर्यादा और धर्म की रक्षा के विचार से पतिव्रता का निर्वाह करने वाली **निकृष्ट** पतिव्रता है। (४) **अधम कोटि** की पतिव्रता समाज के डर से पतिव्रता बनी रहती है।

नारी का सहज-स्वभाव— सती के रूप में तुलसीदास ने नारी के शंका, सहज-कुतूहल, भयवश गोपन-वृत्ति, उपेक्षिता नारी की ससुराल और मायके में दुर्दशा और पति-व्रत का तेज आदि सहजगुणों का वर्णन किया है। तुलसीदास की नारी को समझने के लिए सती और पार्वती को देखना होगा। इन दो चरित्रों में तुलसी की युगीन नारी का चित्रण है। यहाँ सीता, कौशल्या आदि पात्रों का उदाहरण नहीं रखा गया क्योंकि कहा जा सकता है कि राम के नाते तुलसी ने उनका उन्नयन किया है।

नारी के सम्बन्ध में जहाँ भी गोस्वामी जी बोले हैं, उसकी निन्दा ही की है। वह कपट, अघ और अवगुण की खान है, उसके मन को कोई नहीं जान सकता, युवती नारी को चाहे हृदय से ही क्यों न लगाये रहो, वह विश्वसनीय नहीं कही जा सकती, सुन्दर-वेश पुरुष को देखकर नारी द्रवित हो उठती है। उसमें साहस, अनृत, चपलता, माया आदि आठ अवगुण हैं। आदि-आदि।

इनमें से अधिकांश कथन क्षुब्ध-पात्रों की उक्तियाँ हैं और कुछ संस्कृत श्लोकों के अनुवाद हैं। फिर भी गोस्वामी जी नारी के प्रति उदार नहीं हैं। तत्कालीन समाज और साहित्य में उन्होंने शृंगार-मर्यादाओं का अभाव देखा था, इस स्थिति से वे

सन्तुष्ट न थे। वे सन्त-परम्परा में आते थे। नारी विरक्त-पुरुषों को साधना-भ्रष्ट भी करती है, इसीलिए उन्होंने दीपशिखा-सी ज्योतिर्मयी नारी के दाहक-सौन्दर्य में पतंग के समान जलभुन कर राख न होने के लिए मन को प्रवोध दिया है[१] तथा नारी से दूर रहने के लिए उसकी निन्दा की है।

तुलसीदासजी ने जिस नारी की निन्दा की है वह उन्हीं के द्वारा वर्णित अधम कोटि की नारी हो सकती है। डा० वलदेवप्रसाद मिश्र के कथनानुसार उसका प्रमदा-रूप ही निंद्य है।[२] अनुजा और तनुजा में भेद न देखने वाले कलिकाल के वेहाल मनुष्यों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा है, तथा नारी को कुदृष्टि से देखने वाले का वध भी उन्होंने पाप नहीं माना है।

इन्हहिं कुदृष्टि विलोकइ जोई।
ताहि वधे कछु पाप न होई॥ मानस ४-८-८

(३) **स्नान-प्रसाधन**—स्नान के पूर्व पूर्वांचलीय-जन प्रायः तेल का सेवन करते हैं। इसका वर्णन पूर्वांचलीय-रामायणों में भी मिलता है। विशेष अवसरों पर उवटन करने का उल्लेख मानस-सहित सभी आलोच्य-ग्रन्थों में है। स्नान के पश्चात् चन्दन, अगुरु, कस्तूरी आदि के लेप का भी उल्लेख है।

असमीया और हिन्दी रामायणों में नारी के प्रसाधन का विशेष उल्लेख नहीं है किन्तु वँगला तथा विशेषतः उड़िया-रामायण का वर्णन कुछ अधिक रोचक और विस्तृत है।

सिन्दूर और **काजल** का प्रचार तो सारे भारत में ही है, किन्तु पूर्वांचल में विशेष रूप से है। **नैषधीय-चरित** की नारायणीय-व्याख्या में वर्णित है—

'प्राच्यो हि सुन्दर्यो विलोचने नेत्रप्रान्तनिर्गतया कर्णोपान्तस्पर्शिन्याञ्जनरेखया भूषयन्ति'—१५-३४।

आज भी पूर्वांचलीय-नारियाँ नेत्रों में काजल लगाकर उसकी नोकें कानों की ओर निकाल देती हैं। उड़िया-रामायण में राम का वर-वेश में प्रसाधन किया गया है, उस समय उनके कानों की ओर काजल की नोकें निकाली गयी हैं।

आलता—उड़िया-रामायण में सुरंग आलता लगाने का वार-वार उल्लेख है। वँगला-रामायण में स्त्रियाँ हिंगुल से अपनी उंगलियाँ रँगती हैं।

हिंगुल—डॉ० सुकुमार सेन ने पत्र द्वारा मुझे सूचित किया था कि यह हरिताल से वना हुआ रंग विशेष होता है, इससे प्रतिमा भी रँगी जाती है, उस काल की स्त्रियाँ अपनी उंगलियाँ इसी से रँगा करती थीं। उन्होंने इसे पीत-वर्ण माना है। किन्तु मेरी समझ में यह रक्त-वर्ण था। भारतीय वैद्य हिंगुल के गुण-दोष

---

१. दीपशिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग, ३-४६ ख।
२. डा० वलदेवप्रसाद मिश्र—मानस—माधुरी, पृष्ठ १५५।

से परिचित हैं। यह तिक्त, कषाय और कटु होता है, तथा चक्षुरोग, कफ़, पित्त, कुष्ठज्वर, प्लीहा आदि के लिए रोगनाशक है। यह तीन प्रकार का होता है श्वेत, पीत और रक्त। स्त्रियाँ जिस हिंगुल का प्रयोग करती थीं, वह रक्त-वर्ण का था। बँगला-कोश इसे पारदगन्धक निर्मित घोर रक्त-वर्ण द्रव्य मानकर इसे रससिन्दूर कहते हैं। मोनियर विलियम[1] भी इसे ऐसा ही मानते हैं।

पत्रावली —बँगला और उड़िया रामायणों में पत्ररचना का वर्णन है। संस्कृत ग्रंथों में इसके कई नाम हैं पत्रावली, चन्दनचित्र, विशेषक आदि। 'ललाट, स्तन आदि पर फूल-पत्तियों के कटाव, पत्रावली अथवा पत्रलता की रचना की जाती थी।'[2]

उड़िया-रामायण में इसे पुष्परेखा (१-१७) और पत्रावली (४-३४) कहा है तथा स्तन, जानु, जघन और नेत्र पर इसके प्रयोग का वर्णन है।

अलकातिलका – बँगला-रामायण में उल्लिखित अलका-तिलका भी एक प्रकार की पत्रावली थी। हिन्दी के विद्वानों—राहुल जी, बाबूराम जी सक्सेना, डा० शिवप्रसाद सिंह, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री वसन्त कुमार माथुर एवं डा० गुणानन्द जुयाल आदि के मतों का खंडन कर मैंने इसका प्रथम बार अर्थोद्धार किया था।[3] मुख पर गोरोचन अथवा चंदन की पत्रलेखा को अलकातिलका कहते थे। बँगला रामायणकार ने लिखा है—

बिन्दु बिन्दु गोरोचना शोभा करे अति।
अलकातिलका रेखा अर्द्ध-अर्द्ध पाति॥ पृ० २००

संभवत: संस्कृत साहित्य में अलकातिलका शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। पुष्पदंत (१०वीं शताब्दी) और विद्यापति ने अपने काव्यों में इसका प्रयोग किया है। लगता है १५ वीं शताब्दी तक अलकातिलका का प्रयोग भारत के पूर्वांचल में प्रचलित था।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कीर्तिलता की अपनी संजीवनी व्याख्या में अलकातिलका का यही अर्थ स्वीकार कर प्रस्तुत लेखक को अनुगृहीत किया है।[4]

असमीया-रामायण में स्नान-प्रक्षालन का विशेष वर्णन नहीं है। इस रामायण के आदि-काण्ड और उत्तरकाण्ड के लेखक तो ब्रह्म के साथ नारी-शक्ति को स्वीकार ही नहीं करते, इनमें तुलसीदास जी जैसा ही संयम देखा जाता है। फिर भी अगुरु, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम का लेप, सुगन्ध-जल से स्नान, सिन्दूर के मध्य चन्दन का प्रयोग, काजल, तिलक आदि के प्रसाधन का उल्लेख हुआ है।

---

१. ए प्रिपेरेशन ऑफ़ मर्क्युरी विद सल्फर वरमीलियन।
२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल— पद्मावत, पृ० २८१।
३. कृत्तिवासी बँगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ११२-१३।
४. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—कीर्तिलता, (संजीवनी व्याख्या), पृ० ८५।

बँगला-रामायण में स्त्रियाँ आँवले का तेल और उबटन (पिठाली) का सेवन कर स्नान करती हैं। रेशमी वस्त्र से पानी पोंछ कर अलंकार धारण किये जाते हैं। केशों में कंघी कर फूलों से चोटी गूँथती हैं। कोई-कोई मूँगे के आच्छादन से सजाती हैं। सिंदूर और काजल का शृंगार तो करती ही हैं।

उड़िया-रामायण का प्रत्येक वर्णन विशेष रुचि के साथ होता है। पवित्र जल में सौरभ-द्रव्य भरकर पीढ़े पर बिठाकर स्वर्णकुंभ से स्नान कराया। सुगंध-तैल सिर पर लगाया, अंगों पर पुष्पवास तैल मला। तिल-आँवला के तेल का प्रयोग किया। अगुरु-कस्तूरी को मिला कर केशों में लगाया। कोमल पतले वस्त्र से अंग पोंछे। व्यजन द्वारा केश सुखा कर स्वर्ण-कंघे से विन्यास कर पुष्पों से सजाया, उसके ऊपर कर्पूर-कस्तूरी का लेप किया। श्वेत-पीत रंग की पतनी (सूक्ष्म साड़ी) पहनी। पैरों में आलता और कुचों पर पत्रावली। कस्तूरी-तिलक, ताम्बूल, कज्जल और सिन्दूर का प्रयोग किया। अनेक अलंकार यथास्थान धारण किये।[1] **शम्बर की पूँछ** से केश-प्रसाधन का भी उल्लेख है। इससे प्रकट है कि स्त्रियाँ **कृत्रिम-केशों** से अपनी केशराशि को सघन बनाया करती थीं।

चतुस्सम—उड़िया-रामायण में स्थान-स्थान पर अंगों में चतुस्सम के प्रयोग का वर्णन है। मानस में भी गलियों को 'चतुस्सम' से सींचा गया है, इसका अर्थ बताया गया है—चन्दन, केशर, कस्तूरी और कपूर से बना हुआ एक सुगन्धित द्रव्य।[2]

(४) **संस्कार**—समस्त भारत-देश में अत्यन्त प्राचीन-काल से संस्कारों का पालन होता आया है, किन्तु संस्कारों की संख्या, उनके आरम्भ का काल तथा पालन-विधि में थोड़ा-बहुत अन्तर रहा है। संस्कार मानने के उद्देश्य भी मुख्यतः तीन रहे हैं—(१) गर्भावस्था की अशुद्धि दूर करना, (२) हर्षोत्सव मनाना और (३) सन्तति का विस्तार करना।

गौतम ने संस्कारों की संख्या ४० बतायी है, जिनमें व्रत और यज्ञों से सम्बन्धित संस्कार छोड़ दिए जाएँ तो मुख्यतः १० रह जाते हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, समावर्तन और विवाह।[3]

कई स्मृतिकारों ने प्रायः षोडश-संस्कारों का उल्लेख किया है, जो गर्भाधान से प्रारम्भ होकर श्मशान तक चलते हैं। वैसे किसी-किसी ने प्रारम्भ विवाह अथवा अन्य किसी संस्कार से भी माना है। सोलह संस्कारों में यदि वेद चतुष्टय को निकाल

---

१. उड़िया-रामायण, १,१८३,८५, ३,१८, ४,३४।

२. वासुदेवशरण अग्रवाल ने कीर्तिलता की टीका (पृ० १४५-४६) मे 'चतुस्सम' शब्द का विस्तृत परिचय दिया है।

३. पी०वी०काणे—हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र, वाल्यूम २, पार्ट १—१९३।

दिया जाए तो शेष निम्न १२ संस्कार रह जाते हैं जिनमें अधिकांश सारे देश में प्रचलित हैं ।

इनके क्रमागत वर्णन के पूर्व रामायणों में वर्णित संस्कार के विषय में यह बता देना उचित है कि इन लेखकों ने संस्कारों की सूची अथवा उनका विधि-विधान-पूर्वक अनुष्ठान प्रस्तुत करने की चेष्टा नहीं की है । कथा के मुख्य पात्रों—विशेषतः राम के साथ होने वाले संस्कारों की एकाध झलक दे दी है ।

(१) **गर्भाधान** – स्त्री के प्रथम रजस्वला होने पर अथवा विवाह के तीन दिन पश्चात् चतुर्थी-व्रत के दिन स्त्री के साथ समागम किया जाता है । मंत्र पढ़ते हुए संतान की कामना से ही यह संस्कार किया जाने का विधान है ।

केवल असमीया-रामायण में गर्भाधान का वर्णन है । 'पुत्रकामना से राजा ने तीनों रानियों के पास जाकर रेत-पात किया (छं० ६५३) ।

(२) **पुंसवन** — पुत्र सन्तान की कामना से गर्भ के तृतीय-मास में बछड़े वाली गाय का दही अन्तर्वत्नी को पिलाया जाता है । इस संस्कार का समय किसी-किसी स्मृतिकार ने ५-७ या ८ वें मास में माना है ।

असमीया-रामायण में पुंसवन आठवें मास में किया गया । देवताओं से प्रार्थना की गयी कि गर्भस्थ शिशु की रक्षा करें । (छं० ६६४)

उड़िया-रामायण में 'पुंसवन' शब्द मात्र का प्रयोग है । (१-५८)

(३) **सीमन्तोन्नयन** — गर्भवती की प्रसन्नता के लिए यह हर्षोल्लासपूर्ण संस्कार मनाने का विधान है । इसका अधिक प्रचार नहीं है और रामायणों में भी इसका वर्णन नहीं है ।

(४) **जातकर्म** – जातकर्म-संस्कार संतान के जन्म लेने और उसके पश्चात् भी कुछ दिनों के विधि-विधानों से सम्बन्धित है । नाडीच्छेद, शिशु का स्नान, उसके मुख में शहद-दही देना और माँ का स्तन-दान आदि कर्म सम्पादित किये जाते हैं ।

असमीया-रामायण में शिशु को सुगन्धित-शीतल जल में स्नान कराने के पश्चात् दुग्ध पिलाकर कोमल शय्या पर सुलाया गया है ।

बँगला-रामायण में जातकर्म के सम्बन्ध में दो अन्य प्रथाएँ दिखायी गयी हैं—१. **षष्ठी** और २. **आटकौड़े** । जन्म के छठे दिन षष्ठी-पूजा और निशि-जागरण किया गया ।[1] यह संस्कार हिन्दी-भाषी क्षेत्र में भी मनाया जाता है, जिसे 'छठी' कहते हैं । इस दिन रात्रि-जागरण किया जाता है, क्योंकि विश्वासानुसार इस दिन ब्रह्मा शिशु की भाग्य-लिपि लिखते हैं । आटकौड़े प्रथा का लेखक ने नाम नहीं लिया है, केवल यह लिखा है कि शिशु-जन्म के आठवें दिन राजा ने आठ लड़कों को बुलाकर उन्हें आठ प्रकार का भुना हुआ अन्न एवं कपड़े-सोना आदि वस्तुएँ दान कीं ।

---

1. छय दिने षष्ठी पूजा निशि जागरणे, पृ० ६० ।

वंगाल में आज भी इस प्रथा का प्रचलित रूप इस प्रकार है—नवजात शिशु के मंगल के लिए आठ वालक बुलाये जाते हैं। सूप में आठ प्रकार का भुना हुआ अन्न रखकर सूप पीटा जाता है, स्त्रियाँ यह भी कहती जाती हैं—'आटकौड़े, आटकौड़े छेले, आछे भालो।' फिर अन्न-सहित यह सूप वालकों को दे दिया जाता है।

उड़िया-रामायण में नाभि-नाडि-छेद, स्नान, कुंकुम-लेप का वर्णन है। **षठी दिउन्ति** (षष्ठी देवी)की वकरे और भैंसे की वलि देकर पूजा करने एवं कान्थ (गुदड़ी) पर **मीनावतार** के अंकित करने का भी उल्लेख है। **अष्टदिन** के विधि-विधान का नाम लेकर रानियों के स्नान-प्रसाधन का वर्णन है। हो सकता है अष्ठ-द्दिन का विधान वँगला के आठकोड़े जैसा ही हो।

मानस में जातकर्म के दिन धूमधाम का वर्णन है। मानसकार ने अपने अन्य ग्रन्थ गीतावली में छठी के दिन निशि-जागरण भी दिखाया है।

(५) **नामकरण**—प्राय: दसवें दिन शिशु को नाम दिया जाता है। असमीया और उड़िया रामायण में 'नामकरण' का नाम तो नहीं है किन्तु शिशुओं के नाम रखे जाते हैं। वँगला-रामायण में ओदन-प्राशन के दिन ही नामकरण होता है। मानस में कुल-पुरोहित को बुलाकर नामकरण संस्कार कराया गया है।

(६) **अन्नप्राशन**—प्राय: छठे महीने में शिशु को पका हुआ अन्न खिलाया जाता है। केवल वँगला-रामायण में ओदन-प्राशन के नाम से इसका वर्णन है। राजा दशरथ ने पुत्रों को गोद में लेकर मिष्ठ-अन्न एवं जल दिया।

(७) **कर्णवेध**—वँगला-रामायण और मानस के क्रमश: अरण्य एवं अयोध्या-कांड में कर्णवेध का नामोल्लेख हुआ है। उड़िया-रामायण में ढाई वर्ष की आयु में कर्ण-वेध किया गया, कुछ दिन में कान सूख गये और वालक लटकते हुए स्वर्णालंकार पहन कर घूमने लगे।

(८) **चूड़ाकर्म**—शिशु के गर्भ-केश मुंडित कर प्रथम वार चोटी रखी जाती थी। यह संस्कार तीसरे या पाँचवें वर्ष में होता था और इसी दिन से **विद्यारंभ** होता था। कहीं-कहीं भेद भी देखा जाता है। 'चूड़करन' का नाम केवल मानस में है। **वँगला** और **उड़िया** रामायणों में पाँचवें वर्ष में विद्यारंभ की प्रथा को खड़ी छूना वता कर वर्णन है। मानस में विद्यारंभ यज्ञोपवीत के पश्चात् वताया गया है (मानस १-२०३-३,४)।

(९) **उपनयन**—केवल वँगला-रामायण और मानस में उपनयन संस्कार का नाम आया है।

(१०) **समावर्त्तन**—वेदाध्ययन समाप्त कर गुरु-गृह से लौटे हुए छात्र के लिए समार्तवन संस्कार होता था। वह इस दिन स्नान कर स्नातक कहलाता था। घर पर अध्ययन करने वाले अथवा आजन्म ब्रह्मचारी रहने वाले छात्र के लिए यह संस्कार आवश्यक नहीं था। केवल उड़िया-रामायण में इसका नामोल्लेख है—१/५८।

(११) विवाह—इसका रोचक वर्णन अलग से होगा।

(१२) अन्त्येष्टि—सभी रामायणों में दाह के पूर्व शव का स्नान, नदी के किनारे चिता-निर्माण, सुगन्धित पदार्थों का छिड़कना, तर्पणदान आदि का समान वर्णन है।

विवाह-संस्कार तथा रोचक पद्धतियाँ :

वरवधू की साज-सज्जा, मंगल-उत्सव, छायामण्डप के नीचे वेदी के पास यज्ञादि, कन्यादान, सखियों का हासपरिहास, कन्या की विदा और वधू-स्वागत आदि के वर्णन सामान्यतः सभी आलोच्य-ग्रन्थों में मिलेंगे। इनके अतिरिक्त कुछ विशेष पद्धतियों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

० **असमीया रामायण** में संक्षिप्त पद्धति का अवलम्बन कर लौकिक और वैदिक व्यवहारों का चित्रण है। बरात की आगवाढ़ि (अगवानी) हुई, अधिवास हुआ (इसका स्पष्टीकरण आगे होगा), सधवा स्त्रियों ने चारों वर-वधू को स्नान कराया, दिव्य वस्त्राभूषण पहनाये और हाथ में फूल, कटारी और दर्पण दिये। राजा कन्या-सम्प्रदान के लिए बैठे। तिल-कुश के साथ राजा ने राम को जानकी समर्पित की। स्त्रियों ने उरुलि(उलुध्वनि) और जयकार किया। गज, गो, मणि, वस्त्र आदि दहेज में दिये गये। वर-वधू ने पुष्प-शय्या मनायी, प्रातःकाल स्नान-दान कर **बासिबिहा**[1] हुआ। वधू को शिक्षा दी गयी। अयोध्या में दूर्वा, पुष्प और **अक्षत** की वर्षा के मध्य 'उरुलि' ध्वनि के साथ वधुओं का स्वागत किया गया। दीपघटों की शोभा के बीच सासों ने वधुओं का हाथ पकड़कर गृह-प्रवेश कराया।

० **बँगला-रामायण** में विवाह-पद्धति तथा अनेक वैदिक-लौकिक प्रथाओं का विस्तृत वर्णन है।

अधिवास—विवाह के एक दिन पूर्व वर-कन्या का अधिवास किया गया। कुशासन पर विराजमान पुरोहित ने यथाविधान घट-स्थापन किया। घट के ऊपर आम्रपत्र और नीचे दूर्वा और धान रखे। ब्राह्मणों की वेदध्वनि के मध्य नाना आभरणों से सज्जित कन्या आकर स्वर्ण-पाट पर बैठी। ब्राह्मण ने वेद-मंत्र पढ़कर कन्या के ललाट पर सुगन्धिलेप किया। उसे अनेक प्रकार के वस्त्रालंकार प्रदान किये गये। जल-धारा के साथ कन्या को घर के भीतर भेज दिया गया। **उड़िया-रामायण** में भी अधिवास का वर्णन है।[2]

क्षौर-कर्म के उपरान्त वर को यज्ञोपवीत देकर ललाट पर चन्दन लगाकर नूतन वस्त्राभूषणों से उसका भी शृंगार किया गया।

---

१. देखिये आगे—बँगला-रामायण का बासिबिये।

२. तण्डुलकु मिशाइण अधिवास सारि, १,१९७।

चण्डीमंगल-बोधिनी[1] में लिखा है कि एक डाला (सूप) में २० मंगल-द्रव्य रख कर अधिवास किया जाता था। वरवधू के पक्ष में यह प्रथा हिन्दी-भापियों के चढ़ावा-प्रथा जैसी है। बंगाल में प्रतिमा का भी अधिवास किया जाता है। अभिषेक के समय राजकुमार का भी अधिवास किया जाता था।

हरिद्रा—माता वर के हरिद्रा लगाती थी और सखियाँ उसके अंगों में पिठाली (पिसा हुआ चावल)। ये दोनों वस्तुएँ उवटन थीं। हरिद्रा लगाने को 'गाये हलुद' (गात्र हरिद्रा) कहा जाता है। पवित्र-जल से स्नान के पश्चात् वर के हाथ में मंगल-सूत्र बाँधा जाता था। तत्पश्चात् धूम-धाम से वरयात्रा प्रारम्भ होती थी।

छायामण्डप—इसके नीचे पहुँचकर वर ब्राह्मणों को प्रणाम करता था। यहाँ सखियाँ वर का 'वरण-विधान' करती थीं। रामायण में लिखा है कि स्त्रियों ने पैरों पर दही और माथे पर दूर्वाधान प्रदान कर यह विधान किया।

आज भी बंगाल में स्त्रियाँ 'वरण-डाला' सजाती हैं। यह बाँस का सूप होता है जिसे 'कुला' कहते हैं, इसमें पुष्प, दूर्वा और चन्दन आदि रखकर उपर्युक्त प्रकार से वरण-विधान किया जाता है।

इसके पश्चात् दोनों कुलों के पुरोहित अपने-अपने पक्ष का शाखोच्चार करते थे। वर-वधू के पिता परस्पर विनीत वचनों द्वारा स्वागत करते थे।

रेशमी वस्त्रों से सर्वांग ढँक कर कन्या मण्डप के नीचे आकर वर के चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित करती थी, फिर सात बार उसके आस-पास प्रदक्षिणा करती थी।

शुभदृष्टि—यह बंगाल की एक मधुर प्रथा है। वर-कन्या प्रथम बार इस अवसर पर एक-दूसरे को देखते हैं। इस रामायण में दशरथ और कौशल्या परस्पर शुभदृष्टि करते हैं। राम-सीता के विवाह के समय शुभदृष्टि का वर्णन इस प्रकार है—

अन्तःपट घुचाइल यत बन्धुगण। सीता रामेपरस्पर हैल दरशन ॥ पृ० ८७

बंगाल में इस समय शुभदृष्टि मनाने की प्रथा इस प्रकार है—वर-वधू दोनों की आँखों पर इस प्रकार पान बाँध दिये जाते हैं कि जब उन्हें आसन-सहित ऊपर उठाया जाता है तो उनकी दृष्टि परस्पर मिल जाती है। उनके सिरों पर वस्त्र भी डाल दिया जाता है, ताकि अन्य लोग न देख सकें। बँगला-रामायण के वर्णन से प्रतीत होता है कि इस प्रथा के समय वर-कन्या के मध्य वस्त्र की ओट कर दी जाती थी, इसके पश्चात् वन्धुगण वस्त्र को हटा देते थे, ताकि वर-कन्या परस्पर-दर्शन कर सकें।

गृह्यसूत्रों में इस प्रथा का वर्णन है, तथा इसका नाम **परस्पर-समीक्षण** दिया है। **आश्वलायन** गृह्यसूत्र परिशिष्ट १-२३ का वर्णन बँगला-रामायण के वर्णन से

---

१. चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय—चंडीमंगल-वोधिनी, पृ० १७८।

मिलता है। उसमें लिखा है—सब से पहले वर और कन्या के बीच एक वस्त्र से आड़ कर दी जाती है। फिर शुभ-मुहूर्त में वस्त्र हटा दिया जाता है और दोनों एक-दूसरे को देखते हैं।[1]

षष्ठीपूजन तथा हास-परिहास—षष्ठी सन्तान-प्रदात्री देवी हैं। सखियों ने सीता को अन्धकार-पूर्ण प्रकोष्ठ में लिटाकर राम से कहा, सीता को हाथ पकड़ कर उठा लाओ। सीता ने शंख-चूड़ी बजाकर संकेत कर दिया कि हाथ यहाँ है, उन्हें भय था कि कहीं राम अँधेरे में उनके चरणों पर हाथ न रख दें। सखियों ने राम से परिहास करते हुए कहा, तुमने पैर पकड़ कर उठाया है।[2]

इसके पश्चात् **कन्यादान** हुआ।

वासरघर—सखियाँ एक कमरे को खूब सजाती हैं इसे ही 'वासरघर' (८७) कहते हैं। **नैषधीयचरित** (१६-४६) का 'कौतुकागार' यही था। सखियाँ रात्रिभर वर-कन्या को वासरघर में बिठालकर हास-परिहास करती रहती हैं और उन्हें सोने नहीं देतीं। प्रातःकाल वर सखियों को अपनी स्थिति के अनुसार धन प्रदान कर ही उठ पाता है।

वासिविये—इसका शाब्दिक अर्थ है बासा विवाह अर्थात् विवाह का दूसरा दिन। बँगला-रामायण में इसका नामोल्लेख है—पृ० ३५। वास्तव में विवाह इसी दिन पूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसी दिन सप्तपदी, वरकन्या की प्रतिज्ञा आदि प्रथाएँ सम्पन्न होती हैं।

विदा, स्वागत और मुखदर्शन—कन्या की माता ने गुरुजनों की सेवा का उपदेश दिया। चतुर्दोल में बैठकर कन्या ससुराल आयी। सजल-स्वर्णकुम्भ, ज्वलंत घृत-दीप, कदलिखम्भ एवं अनेक वर्ण की पताकाओं के शोभा-संभार के मध्य तूर्यनाद के साथ वधू का स्वागत हुआ। उसके कक्ष में कलसी देकर मस्तक से खील और केला गिराते हुए गृह-प्रवेश हुआ। शुभ-क्षण में गुरुजनों ने अलंकारादि देकर वधू का मुख-दर्शन किया। पृ० ८८-९०।

कालरात्रि[3]—वासिविये के पश्चात् वर-कन्या की रात्रि कालरात्रि कहलाती थी। वंगाल में आज भी कालरात्रि के दिन वर-कन्या साथ-साथ शयन नहीं करते। दशरथ ने यह नियम नहीं माना, सुमित्रा के साथ शयन किया, इसीलिए वह दुर्भगा हो गयी। वंगाल में कालरात्रि का सम्बन्ध वेहुला की कथा से माना गया है। इसी

---

१. पी० वी० काणे—'हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र' वाल्यूम २, पार्ट १, पेज ५३३।
२. हिन्दी-भाषी-क्षेत्र की मधुर प्रथा के लिए देखिए कृत्तिवासी बँगला-रामायण और रामचरितमानस, पृष्ठ १०२।
३. कालरात्रि का वर्णन स्व० दीनेशचन्द्र सेन सम्पादित वंगला-रामायण (४२) में हुआ है, रामानन्द चट्टोपाध्याय इसे उड़ा गये हैं।

रात को बेहुला (सं० विपुला) के पति की मृत्यु सर्प-दंश से हुई थी। बासिबिये के दिन ही विदा हो जाती है। इसी दिन को रात्रि के समय वरवधू अलग रहते हैं। वर-कन्या के घरों में दूरी होने पर कालरात्रि मार्ग में ही बीत जाती है। आजकल ट्रेन के डिब्बे में मना ली जाती है।

बंगाल की यह प्रथा गृह्यसूत्रों में वर्णित **'त्रिरात्रिवृत'** का ही परिवर्त्तित रूप है। **आपस्तंब** (८-८-१०) और **बौधायन** (१-५-१६, १७) गृह्यसूत्रों में लिखा है कि वर-कन्या अपने मध्य में सुगन्धि-लेप-युक्त उदुम्बर-काष्ठ रखकर सोएँ। चौथे दिन ऋग्वेद के मंत्रों के साथ इसे पानी में फेंक दें। तीन दिन तक दोनों को छटपटा कर चकवा-चकवी जैसा जीवन व्यतीत करना पड़ता होगा। इसीलिए इसे बंगाल में काल-रात्रि कहने लगे होंगे। क्योंकि इस दिन बंगाली नव-दम्पती को भी रात्रिकाल का चक्रवाक-दम्पती बनना पड़ता था।

कुसुम-शय्या—बंगाल में सुहागरात की प्रथा कुसुम-शय्या अथवा फूल-शय्या कहलाती है। दशरथ और सुमित्रा के विवाह के समय कुसुम-शय्या का वर्णन है। 'उत्थान कौड़ि' नेग का भी वर्णन है, जिसे आजकल 'शय्या तुलुनि' कहते हैं। प्रातः-काल सखियाँ वर से नेग माँगती हैं। पुराने समय में यह नेग कौड़ियों में दिया जाता था, इसलिए इसका नाम 'उत्थान कौड़ि' हुआ।[1]—पृष्ठ ३५।

०उड़िया-रामायण का वर्णन भी विस्तृत है, उसमें साज-सज्जा एवं सामाग्रियों का भी अधिक वर्णन है, जिसे छोड़कर पद्धति का चित्रण ही यहाँ किया जाएगा। इस प्रदेश में भी मुहूर्त्त और वर-कन्या की राशियों का विचार किया जाता था। जैसा कि शान्ता और ऋष्यश्रृंग के विवाह के अवसर पर प्रदर्शित है।

श्वशुर द्वारा वधू-मुखदर्शन—सीता जनक की गोद में बैठीं। स्त्रियों की हुलि-हुलि, ज्योतिषियों का मंगलाष्टक-पाठ, ब्राह्मणों की वेद-ध्वनि एक साथ सुनायी पड़ी। वसिष्ठ ने गोत्रोच्चार किया। दशरथ ने अपने हाथ से सीता के कपाल से वस्त्र हटा कर उन्हें माता के समान देखा, शिर पर चन्दन-लेप कर केशों में कुसुम खोंसा, अनेक वस्त्रालंकार भी प्रदान किये।

वर की सज्जा—माताएँ हड़बड़ाकर कहने लगीं, प्रातः होने को है अब पुत्रों की तैयारी कैसे हो पाएगी। सात-सात कलश लेकर अँधेरे ही अँधेरे जल भर लायीं। इस **चोर पाणि** से राम नहलाये गये। उन्हें देवांग वस्त्र पहनाकर भीतर ले जा कर दशरथ की गोद में बिठाया गया। नूपुर, आलता, कज्जल आदि से राम का श्रृंगार हुआ। चन्दन-कर्पूर से ललाट पर तिलक किया गया।

प्रस्थान का शकुन—विप्रनारी-गण ने दूर्वाक्षत फेंककर, माताओं ने सिर

---

१. विशेष वर्णन पढ़िये—कृत्ति० बं० रा० और राम० मानस की पादटिप्पणी, पृष्ठ १०४।

सूँघकर, सधवा स्त्रियों ने दधि, मत्स्य, राजहंस, श्वेतघास, पूर्ण कुंभ आदि दिखा कर शकुन किया।

हास-हरिहास, हल्दी-लेप—राम को वेदी के पास बिठाकर वरुण, इन्द्र, दिग्पाल और नवग्रह की पूजा आदि के विधान के पश्चात् स्त्रियों ने मंगल-ध्वनि करते हुए राम के शरीर में हल्दी का लेप किया। वे काम-विह्वल होकर अश्लील-चेष्टाएं करने लगीं। दासियाँ दशरथ के भी पास गयीं, किन्तु हल्दी लगाने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने स्वयं ही उत्साहित किया तो उनकी श्वेत दाढ़ी में हल्दी लगा दी गयी। ऋषि भी नहीं छोड़े गये।

लवण-चउँरी—सभी बरयात्री स्नान कर भोजन पर बैठे। कन्या के पिता ने बड़े यत्न और आग्रहपूर्वक सबको भोजन कराया। इसके पश्चात् फिर वर-वधू एक स्थान पर एकत्र हुए। वधू ने वर के ऊपर लवण और चावल फेंके।

हिन्दी-भाषी-क्षेत्र में बहिन वर के ऊपर राईनमक उतार कर फेंकती है, जिसे **राईलौन या राईनून** कहते हैं, उद्देश्य होता है वर पर कुदृष्टि न पड़ने देना। वर के स्वागत के लिए तथा विवाह में अपनी सम्मति प्रकट करने के लिए कन्या-द्वारा वर के ऊपर चावल फेंके जाते थे। लगता है उड़ीसा की उपर्युक्त प्रथा इन दोनों प्रथाओं का सम्मिलित रूप-सा है।

कन्यादान—वरवधू को गोद में लेकर उनके पिता बैठे। वसिष्ठ ने कुल-गोत्र पढ़ा और राम की दक्षिण भुजा पकड़ी। सीता के हाथ में अक्षत-पुष्प देकर और मंत्र पढ़ कर कुश बाँधा। जनक ने शंख में पानी भरकर दिया और उन्होंने राम को सीता सौंपी।

प्रेम-क्रीड़ाएँ :

द्यूत—सीता और राम कौड़ियाँ फेंककर जुआ खेलने लगे। दोनों के सखा और सखियों ने कहा, जो हारे वह दूसरे का सेवक बने।

सहभोजन—दोनों साथ-साथ भोजन पर बैठे। सीता रत्न-चूड़ियों में राम का रूप देखकर मुग्ध रह गयीं और खा नहीं रही हैं। सखियाँ समझती हैं कि राम द्वारा जूठा किये जाने के कारण सीता नहीं खा रही हैं। वे समझाती हैं कि स्त्री-पुरुष एक होते हैं।

मधुशय्या—सीता को राम के पास ले जाती हुई सखियाँ उनसे गुप्त बात कहती जाती हैं—राम तुम्हारे प्राणेश्वर हैं, आज की रात उन्हें मना लेना। मधु-शय्या के दिन जो नारी अपने स्वामी को तुष्ट करती है वह सदा प्रसन्न रहती है। जो रोष उत्पन्न करती है उसके प्रति सदैव स्वामी का अमर्ष रहता है। ब्राह्मणों ने तुम्हें कुश से बाँधा है तुम उनकी दासी और प्राणसखी हो। वे सीता को केलि-क्रिया भी समझाती हैं। राम के पास पहुँचकर सखियाँ बहाना बनाकर खिसक जाती हैं। राम सीता के प्रति प्रेम की शारीरिक अभिव्यक्ति कर सहयोग करने का आग्रह करते हैं।

चतुर पत्नी की प्रतिज्ञाएँ—सीता राम से प्रतिज्ञा करा लेना चाहती हैं। राम भी स्त्री को चंचला समझ कर प्रतिज्ञा करा लेते हैं। इसका रोचक वर्णन कथाओं के तुलनात्मक-अध्ययन वाले अध्याय में होगा।

०**मानस** में शिव-पार्वती एवं राम-सीता विवाह की पद्धतियाँ मिला दी जाएँ तो जो रूप सामने आएगा, वह ज्यों का त्यों आज भी गाँव-गाँव में प्रचलित है। इन वर्णनों में लोक-जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। जनता में मानस के प्रचार पाने का यह भी एक कारण है।

लग्नपत्रिका—नक्षत्र, घड़ी एवं दिन शोध कर मुहूर्त निर्धारित किया जाता था। कन्या-पक्ष का पुरोहित वर-पक्ष के पास पत्रिका ले जाता था। वर-पक्ष का पुरोहित उसे सबके सामने पढ़ कर सुनाता था। अनेक प्रकार की वाद्य-ध्वनि, सुमनवृष्टि एवं मंगल-कलसों की सजावट से प्रसन्नता प्रकट की जाती थी। (१-६०-४-८)

वर की सज्जा और शोभायात्रा—मुकुट, मौर, कंकण और कुँडल से वर का शृंगार किया जाता था। अनेक प्रकार के वाहनों की शोभायात्रा चल पड़ती थी। सखा लोग वर के साथ उपहास करते चलते थे।

अगवानी—बरात आ जाने पर कन्या-पक्ष के लोग वर-पक्ष का स्वागत कर उन्हें जनवासा देते थे। कहार लोग काँवर भर-भर कर भोज्य-पदार्थ पहुँचाते थे। घरों में स्त्रियाँ उत्सुकता के साथ जानने की चेष्टा करती थीं कि वरात कैसी आयी है, वर कैसा है। और कहीं यह ज्ञात हुआ कि वर बूढ़ा है, कुरूप है अथवा पागल है, तो कुहराम मच जाता था। बेचारी कन्या की माता कन्या को लेकर एकांत में बैठकर रोती थी, विवाह के मध्यस्थ को कोसा जाता था।

मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी।
लीन्ही बोलि गिरीस कुमारी॥
अधिक सनेहँ गोद बैठारी।
स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहि बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा।
तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥[1]
नारद कर मैं काह बिगारा।
भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥[2]

द्वारचार—शुभ-मुहूर्त विचार कर बरात कन्या के द्वार पर प्रथम बार जाती थी। सजी-बजी स्त्रियाँ गीत गाती हुई परिछन की तैयारी करती थीं। वर की आरती कर अर्घ्य दिया जाता था, तब वर को मंडप के पास आसन पर बिठाया जाता था। वहाँ

१. मानस, १-६५-६-८।
२. वही, १-६६-१।

उसकी आरती की जाती थी। समधी भी परस्पर भेंट कर मंडप के पास आते थे। सभी वरातियों का सम्मानकर आसन दिया जाता था।

पाणिग्रहण और कन्यादान— सखियाँ मंगलगान करती हुई कन्या को मंडप के पास ले आती थीं। दोनों ओर के कुल-गुरु आचार कराते थे। गौरी और गणपति की पूजा करायी जाती थी। कन्या के माता-पिता वर का पद-प्रक्षालन करते थे।

वरकन्या के कुल-गुरु दोनों के हाथ मिलाकर शाखोच्चार करते थे। कुश और जल के साथ कन्या का पिता कन्यादान करता था। विधिपूर्वक वर-कन्या की गाँठ जोड़ कर भाँवरें डाली जाती थीं। सबको उचित नेग देने के पश्चात् वर कन्या की माँग में सिन्दूर भरता था। अब गुरु की आज्ञा से वर-वधू एकासन पर बैठते थे।

लौकिक आचार— वैदिक आचार की समाप्ति पर सखियाँ मंगल-गान करती हुई वर-वधू को कोहवर (कोष्ठवर) के लिए ले जाती थीं। दोनों को आसनों पर बिठा कर हास-परिहास के साथ लहकौर (लघुकौर) करायी जाती थी।

कोहवर—मानस में केवल इतना लिखा है कि सखियाँ वर-वधू को कोहवर में ले आयीं और शारदा आदि सखियाँ वरवधू को लहकौर सिखाने लगीं। प्रथा यह है कि इस समय वर सोने की सलाई से दो अलग-अलग जलती हुई वत्तियों को मिलाकर एक कर देता है। लहकौर में वर-वधू अपने-अपने हाथ पर खीर अथवा मिष्ट पदार्थ रखकर परस्पर खिलाते हैं।[1]

जेवनार—जेवनार के लिए सभी वरातियों को बुलाकर तथा उनके चरण पखार कर उन्हें पीढ़ों पर बिठाया जाता था। वर के पिता के चरण स्वयं कन्या का पिता पखारता था। सबके आगे पत्तल डालकर अनेक प्रकार के व्यंजन परोसे जाते थे। इस समय स्त्रियाँ वराती पुरुषों तथा उनकी स्त्रियों का नाम ले-ले कर गाली के मधुर-गीत गाती थीं। आचमन के पश्चात् पान चबाते हुए सभी वराती जनवासे लौट जाते थे।

कन्या विदा—कन्या अपने पोषित पशु-पक्षी, माँ-बाप, सखियों आदि से भेंटती थी। बड़े-बड़े धैर्यशाली-पिताओं का धैर्य भी इस समय भाग जाता था। माँ अपनी बेटी को योग्य वधू बन कर सभी की सेवा करने का उपदेश देती थी। बार-बार हृदय से लगाकर बेटी को पालकी में बिठा दिया जाता था। दोनों पक्षों के लोग भी आपस में सम्मान प्रदर्शित कर विदा होते थे।

वधू-स्वागत— वर-पक्ष की स्त्रियाँ हरिद्रा, दूर्वा, दधि, पान, सुपाड़ी अक्षत आदि मांगलिक-वस्तुएँ ले कर वधू का परिछन कराती थीं। पुर-नारियाँ अपना कुतूहल दमित न कर पाती थीं, वे पालकी का उघार हटाकर बार-बार नव-वधू का मुख देखा करती थीं। वर-वधू को अर्घ्य-पाँवड़े देकर भीतर ले जाया जाता था, वहाँ आरती, धूप-दीप और नैवेद्य से उसका स्वागत होता था।

---

१. विशेष वर्णन के लिए देखिए कृत्ति० बँ० रा० और राम मानस, पृ० १०६।

प्रेम क्रीड़ाएँ :

चतुर्थी—मानस में लिखा है—'सुदिन सोधि कल कंकन छोरे।'[1] 'चतुर्थी' का नाम नहीं लिया है, किन्तु जिस पद्धति के अनुसार कंकण छोड़े जाते हैं उसे 'चतुरसी' कहते हैं। यह 'चतुर्थी' का ही विकृत रूप जान पड़ता है। धर्म-शास्त्रों में वर्णित 'चतुर्थी-कर्म' से प्रकट होता है, इसी दिन वर प्रथम बार अपनी पत्नी से समागम करता था। हिन्दी-भाषी क्षेत्र में भी 'चतुरसी' के पश्चात् ही वर-वधू की भेंट होती है। बंगाल की 'कालरात्रि' के वन्धन के समान ही वन्धन लग जाता है।

'चतुरसी' के दिन प्रायः विवाह-सम्बन्धी सभी मंगल-विधानों की समाप्ति होती है। ब्राह्मण पुरोहित इस दिन वर-वधू को अपने सामने विठा कर हार-जीत के कुछ खेल कराता है। वर-वधू के बन्धु-वान्धवी लोग दोनों के कंकणों में अनेक गांठें लगा देते हैं। इन दोनों में जो एक दूसरे की गाँठ नहीं खोल पाता, वह हारा माना जाता है। खुले हुए कंकणों के साथ वर के किसी स्वर्ण-आभूषण को ऊपर उछालना, वर-वधू का उन्हें छीनना, हारना, जीतना, दोनों का एक-दूसरे की पीठ पर सात-सात कोड़े लगाना, वधू का आटे की मछली को घुमाना और वर द्वारा सींक के वाण से लक्ष्य-वेध करना आदि अनेक प्रथाएँ सम्पादित की जाती हैं।

(५) **मनोरंजन**—मनोरंजन के अनेक ऐसे साधन हैं जो समस्त देश में समान रूप से प्रचलित हैं। चारों रामायणों में भी कुछ मनोरंजनों का वर्णन हुआ है।

असमीया-रामायण में नटी का नाट, पक्षी-पालन, पासा खेलना, और मल्लयुद्ध के साथ कुछ खेलों का भी वर्णन है जिनका सम्बन्ध बच्चों से अधिक है—कपड़े की बनी गेंद का खेल (भण्टा-टोप) गोली का खेल (झुण्टि) ग्वाल-ग्वालिन (**गुवाल-गुवाली**)।[2]

बँगला-रामायण में रामादि की दिनचर्या-वर्णन में तत्कालीन कुछ मनोरंजनों का परिचय मिल जाता है—मल्ल-विद्या, गुल्ली-डंडा (**गुलि-दांडा**) लाठी का खेल (लाठरि) एवं मृगया। (पृ० ६३)

उड़िया-रामायण में अनेक मनोरंजनों का वर्णन—नृत्य-गीत-नाट्य, मेढ़ा-युद्ध घुड़-दौड़, कबूतर उड़ाना, अस्त्रशस्त्र का अभ्यास, मल्लयुद्ध, रात में कथा कहना-सुनना, जलक्रीड़ा, पासा, 'शकटा' नामक द्यूत-क्रीड़ा जो अब ताशों से खेली जाती है। **मृगया** का विस्तृत-वर्णन यहां संक्षेप में प्रस्तुत है।

मृगया का सजीव-वर्णन—राम तूणीर में वाण भर-कर घोड़े पर आरूढ़ हो कर चले। लोधा, शवर आदि शिकारी साथ में चले। शार्दूलों को आगे कर लिया गया। शिकार की सामग्री—रस्सी, काठ, कीला आदि साथ में ले लिये, वन में आग

---

१. मानस, १-३५६-१।

२. असमीया-रामायण, छं० ४०७५-६७।

लगाने के लिए मशाल भी साथ ले ली। अनेक आयुध एवं रेशमी रुमाल (पाट चउ-तना) भी लिये गये। नर-नारियों ने उलुध्वनि की। घोर जंगल में प्रवेश कर कन्ध, लोध और शबर लोगों ने कीलें गाड़कर फन्दे लगा दिये। भालू और बाघों को बाँध कर जंगल में आग लगा दी। भिन्न-भिन्न वन्य-पशुओं के समान लोधा लोग बोलने लगे। कुत्तों को आगे कर वे चारों ओर से घेरा डालने लगे। एक ओर शार्दूल आक्रमण करते और दूसरी ओर से बाणों की वर्षा की जाती। सर्प, खरगोश, हाथी, बाघ, शूकर, मृग, गेंडा, जंगली भैंसा, साँभर, अनेक प्रकार के हरिण आदि आदि अनेक जन्तुओं का शिकार किया जाने लगा। राम की आज्ञा से शार्दूल मृगों के झुंड पर छोड़ दिये गये। अँगूठा दिखाकर कुत्तों को ललकारा गया, वे भी जानवरों पर टूट पड़े। राम ने अलग-अलग शिकारियों को आदेश दिये, शिकार की प्रथा के अनुसार पालन भी हुआ। पृ० ७,२३२-३४

तुलसीदास ने मानस में मनोरंजन के विषय में केवल दो का ही चित्रण किया है—मृगया एवं चौगान। उन्होंने गीतावली में कुछ अधिक मनोरंजनों का वर्णन किया है, जैसे—गोली, भौंरा एवं चकई-डोरी।

चौगान—मानस की अपेक्षा गीतावली (१-४३) में इस खेल का विस्तृत वर्णन है। ब्रिग्स के अनुसार यह खेल तत्तार लोगों ने दक्षिण एशिया में प्रारंभ किया था। कुतुबुद्दीन की मृत्यु (१२१० ई०) इसी खेल के कारण हुई।[1]

आईने-अकबरी[2] में इस खेल का विशद वर्णन है। इस खेल में दस खिलाड़ी एक बार में खेलते थे, शेष प्रतीक्षा करते थे। एक घड़ी बीत जाने पर दो बैठ जाते थे और दो नये खिलाड़ी खेलने लगते थे। पलास की लकड़ी हलकी होती है और जलाने पर देर तक जलती रहती है। अकबर ने इस लकड़ी से रात के समय खेलने के लिए जलती हुई गेंदों का आविष्कार किया था। अकबर खेलने के बल्ले में सोना-चाँदी लगवाता था, बल्ले के टूट जाने पर वह जिसके हाथ पड़ता, वही ले जाता। बल्ले को हेंगुर कहते थे।[3]

मृगया बाज द्वारा—बाज की आँख पर आच्छादन रहता है। शिकार करने वाला व्यक्ति शिकार के योग्य चिड़िया के पीछे बाज को उसका आच्छादन हटाकर तथा उसकी ओर इंगित कर उड़ा देता है। बाज झपट कर चिड़िया को पंजों से पकड़ कर अपने स्वामी के पास ला देता है। उसकी चोंच बँधी रहती है इससे वह स्वयं

---

१. ब्रिग्स-हिस्ट्री ऑफ़ दि मोहेम्डन पावर इन इण्डिया, पृ० १९९।

२. आईने-अकबरी (ब्लाखमान)—आईन, २९।

३. पद्मावत-जायस (डा० वासुदेवशरण सम्पादित)—इस खेल का विस्तृत वर्णन ४८६-६, ६२६-९ एवं ६२८-८।

महाकवि विहारी ने भी इस खेल का उल्लेख किया है, देखिए, दोहा सं० १७७।

चिड़िया खा नहीं सकता। तुलसीदास ने दुष्ट विचार एवं भयंकर वचनों की उपमा वाज से देकर दो स्थलों पर मृगया की इस पद्धति को अप्रस्तुत-योजना के रूप में प्रस्तुत किया है—

कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली—२,२७,८

भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति वचन भयंकर बाजु २,२८।

स्थानीय-चित्रण (Local colour)

वाल्मीकि-रामायण युग-युग तक शाश्वत प्रेरणा देगी, उसके चरित्रों में प्राण हैं, उनमें ऐतिहासिक-सत्य हैं, किन्तु भाषा-रामायणों की भी अपनी विशेषता है। राम-कथा को भाषा-लेखकों ने अपने युग और प्रदेश के जनों के परिवेश के अनुकूल ढाल लिया है, फल यह हुआ कि साधारण-जन में वाल्मीकि की ही कथा नूतन आस्वाद के साथ प्रचारित हुई। जनता ने भी स्थानीय-चित्रण-समन्वित काव्य के प्रति अपनत्व की अनुभूति की।

प्रायः संस्कार, प्रसाधन, वस्त्रालंकार, भोज्य-पदार्थ, पशुपक्षी, वनस्पति, जा- धर्म-साधना एवं स्थान-विशेष का वर्णन करते समय कवि-गण अपने-अपने परिवेश की झलक दे गये हैं। आर्य-राम एवं आर्या-सीता के चरित्र-चित्रण में भी तत्कालीन तत्स्थानीय राजा-रानी अथवा जमींदार-दंपती का रूप ही अधिक उभरा है।

०**असमीया-रामायण** में वहुत-कुछ वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण है, एवं अन्य रामायणों की अपेक्षा इसमें स्थानीय-परिवेश का चित्रण कम मिलता है। हि- संस्कार के समय **वासरघर** और **वासिबिया** के लोकाचार[1] और नारियों द्वारा 'त- **जोकार**' (उलुध्वनि) किये जाने का वर्णन है। सीता जी को 'शाङ्ख' (शंखचूड़ह- नायी गयी है। स्थान-स्थान पर सन्देश, भात आदि भोज्य-पदार्थों का उल्लेख है। असम में पायी जाने वाली '**सान्धिक**' (पृ० १३४) आदि जातियों का वर्णन वन का वर्णन करते समय **मेठोन** (जंगली सांड—bison) **घोंग** (black-panther) **गुइ** (सुनहरी पीठ वाला एक छिपकली-जातीय जीव), **राजगोम** और माण्डलीक आदि जीव-जन्तुओं का नाम आया है। रामायण के रचना-काल तक तथा इसके पूर्व में शाक्त-धर्म का ही अधिक प्रचार था, असमीया-रामायण में इसकी झलक एगा के वार-वार प्रयोग में मिल जाती है—अष्टमी का छाग (वकरा) होना—

आमि भैलो कैकेयीर अष्टमीर छाग—छं० २१०३

०**बँगला-रामायण** में भी रामायण के पात्र वंगाल की प्रथाओं पालन करते हुए **शुभदृष्टि, षष्ठी-पूजन, वासरघर, वासिविये** और **कालरात्रियों** का

---

१. रामायणों में पायी जाने वाली प्रथाओं आदि का वर्णन या तो अध्याय में हो चुका है अथवा आगे होगा।

पालन करते हैं। स्त्रियाँ उलुध्वनि करती हैं। सीता 'शाङ्खा' (शंखचूड़ी) और पाशुलि'[1] पहने हैं। वीर लोग गंगाजल-वस्त्र की वीरधुति पहनते हैं। राम के सम्मुख उपस्थित होने पर रावण बंगाली-पद्धति से गले में वस्त्र डाल कर प्रणाम करता है—

कर जुड़ि करे स्तब वस्त्र दिया गले—पृ० ४१५

इस रामायण के पात्र विशेषतः ब्राह्मण पात्र डरपोक चित्रित किये गये हैं।

भोज्य-पदार्थों में प्रायः सन्देश, चावल, मछली, कटहल, नारिकेल, तालफल, खजूर आदि बंगाली खाद्य-वस्तुओं का वर्णन किया गया है। सगर-पुत्रों के उद्धार के सम्बन्ध में गंगावतरण का वर्णन करते समय उन छोटे-छोटे गाँवों का भी वर्णन है जो कि लेखक के समय में उसके गाँवों के समीप बसे थे।

शाक्त-बंगाल में बहु प्रचलित राम की शक्ति-पूजा का परिचय भी इस रामायण में विस्तार से मिल जाता है।

०उड़िया-रामायण की स्त्रियाँ आज भी हल्दी मल कर मुख धोती हैं और वेणों को फूलों से सजाती हैं। नयनों में कज्जल लगातीं और पान का भी प्रयोग करती हैं। उड़िया-रामायण की दासियां, विश्वामित्र को लुभाती हुई मेनका और सजी-बजी कुबड़ी के साथ ही सीता के शृंगार-प्रसाधन में भी इन्हीं वस्तुओं का उल्लेख है—

गाले हलदी ये पुणि नयने कज्जल् ।
पुण पुण भिड़ि करि बान्धुथान्ति बाल् ॥[2]
काख पाख देखाइण घषइ हलदी ।
विश्वामित्र मनकु से मदने दगधि ॥[3]
तुण्डे तार पान ये मथारे फुल खोसा ।
लोकंकु देखिण ये दिशइ मुड़ि हसा ।
गालरे हलदी चुन नयने कज्जल् ।
नाक ङिआइँ से कुजी चाहें जलजल् ॥[4]

---

१. पाशुलि नामक अलंकार कैसा था कहा नहीं जा सकता— इसके पाजेव, कड़ा एवं नूपुर आदि कई अर्थ किये जाते हैं। कवि कंकण की चण्डीबोधिनी में इस शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए अर्थ दिया है पदालंकार; सं०—पाशक-पाशली, पाशुली।

२. दासियाँ गाल में हल्दी और नेत्रों में काजल लगाये हैं। वे बार-बार खींचकर केश बाँध रही हैं—१-५५।

३. मेनका विश्वामित्र को अंग-प्रत्यंग दिखाकर हल्दी लगा रही है और उनके मन को मदन से दग्ध कर रही है—१-१३७।

४. मंथरा के मुँह में पान है और वह सिर में फूल खोंसे है। लोगों को देखकर वह मुड़कर हँसती है। गाल में हल्दी, नेत्र में काजल लगाये है, वह नाक सिकोड़ कर एकटक देख रही है—२-२४।

रावण सीता से कहता है—तेल के विना तेरे केश, हल्दी के विना सरीर, आलता के विना चरण, कज्जल के विना नयन और पान के विना मुख शोभा को प्राप्त नहीं होते ।

आदिम-जनों की उपस्थिति—उड़िया-लेखक ने गुह को शवर जाति का बताया है । उसके साथियों का वर्णन करते समय लेखक ने शवर और कन्ध जाति के लोगों का वर्णन किया है । उड़ीसा में ये दोनों जन-जातियाँ प्रचुर संख्या में पायी जाती हैं । गोपीनाथ महान्ति ने कन्ध जाति पर 'अमृतर सन्तान' नामक एक वृहत् एवं रोचक उपन्यास लिखा है । बलरामदास ने उड़ीसा की गोंड जाति का भी उल्लेख किया है ।

उड़िया-रामायण में गुह की सेना में उड़ीसा के आदिम-जनों को प्रस्तुत किया है । कोई ललाट पर गुंजामाल पहने, कोई जूड़ा बाँधे, कोई लम्बी चोटी बनाये घूम रहा है । कोई कौड़ियों की माला पहने है । अजगर का यज्ञोपवीत, नाक के छेद में पीतल की अँगूठी, भुजाओं में लोहे की जंजीर (शिकुली), सिर पर 'टोपर', कटि में भालू की खाल और घंटियाँ, पैरों में 'घागुरी' (घंटियाँ) धारण किये हैं । इनकी भयंकर आँखें हैं । किसी-किसी की पूंछ इतनी लम्बी है कि दूसरे को छू रही है । इनके देह के रोम भी भयोत्पादक हैं । इनकी भाषा समझ में नहीं आती । कोई-कोई शवर साँकल में कुत्ते को बाँधे है । सभी विभिन्न अस्त्रशस्त्र लिये हैं । (२-४८)

लंका-काण्ड की समाप्ति पर राम के अयोध्यागमन के अवसर पर पुनः जंगली-जाति का चित्रण है । यहाँ इसे कन्ध कहा है । वेशभूषा भी वही है, कहीं-कहीं थोड़ा सा परिवर्तन मात्र है—

गले में टसर का सूत पहने हैं । गले में पीतल की कंठी है, वे नाक फुलाकर और आँख फाड़कर देखते हैं तो दोनों ओर खड़े लोग डरकर भागने लगते हैं—

नाक फुलाइ के चाहें तराटिण आखि ।
बेनि पाख लोकमाने पलान्ति त देखि ।। ६-३५५

अयोध्या की नारियाँ देखकर हर्षित हो रही हैं और कह रही हैं, देखो सखी ये वन के मनुष्य हैं—

अयोध्या नारीए देखि हुअन्ति हरष ।
बोलन्ति देख गो सखि बनरमनुष्य ।। ६-३५५

स्थान-तीर्थादि—लेखक को जहाँ भी अवकाश मिला, उसने अपने प्रदेश के तीर्थादि का वर्णन कर दिया है । किष्किन्धाकाण्ड में कोणार्क और भास्करक्षेत्र के भी बन्दर आते हैं । इसके अतिरिक्त पंचधारा पर्वत, यमनगिरि वारणावत, एकामरवन, कपिलास गिरि, विरजामंडल, वामण्डा आदि का उल्लेख है । ४-७१ एवं ७६ ।

भगीरथ की तपस्या के प्रसंग में गोकर्णिका, विरजामण्डल में वाराह-नारायण, वैतरणी नदी, लिंग-त्रिलोचन एवं विरजादेवी आदि पवित्र स्थानों का वर्णन

किया है और उड़ीसा की ढेंकानाल पहाड़ी को शिव का कैलाश बताया है। इसी प्रकार पुष्पकविमान पर लौटते समय राम ने सीता को विभिन्न-स्थल दिखाते हुए उड़ीसा के स्थान भी दिखाये, जिनमें जगन्नाथ-स्वामी का नीलगिरि पर्वत भी है। उड़ीसा देश की अनेक चंडी-देवियों-बुलाइचंडी, रामचंडी, पाषाणचंडी तथा अनेक शिव-लिंगों—रामेश्वर, वालुकेश्वर, तुम्वेश्वर एवं वरुणाक्ष का वर्णन हुआ है। महादेव का स्थान कैलास पर्वत न बताकर उड़ीसा का कपिलास पर्वत बताया गया है। रावण विरजाक्षेत्र में तपस्या कर वर प्राप्त करता है।

जगन्नाथ-स्वामी की छाप तो समस्त रामायण पर है। इन्द्र ने राम के पास सहायतार्थ जो गरुड़ध्वज-रथ भेजा है उसे भी नंदीघोष[1] (जगन्नाथ के रथ का नाम) कहा है। नन्दिकेश्वर इसके पहियों में बैठकर घोष करते हैं इसीलिए इसका यह नाम हुआ।[2] राम और जगन्नाथ में अभिन्नता स्थापित कर बार-बार उनकी वन्दना भी की गयी है। पुष्पक-विमान पर आरूढ़ होकर लौटे हुए राम-लक्ष्मण-सीता की तुलना नन्दीघोष-रथ में बैठे हुए जगन्नाथ-सुभद्रा-वलभद्र से की गयी है।[3] वनवास के समय राम, सीता और लक्ष्मण उड़ीसा देश भी जाते हैं, वहाँ वे जगन्नाथ के मन्दिर में जाकर क्रमशः जगन्नाथ, सुभद्रा एवं वलभद्र के सम्मुख खड़े होते हैं।

तुलसीदास का जन्म राम के जन्म-प्रदेश में हुआ। उन्होंने अयोध्या, चित्रकूट आदि राम-सम्बन्धित स्थानों से निकट का परिचय प्राप्त किया था। चरित्र-चित्रण एवं भक्तिपरक दृष्टिकोण तथा 'क्वचिदन्यतोऽपि'-उपलब्ध प्रसंगों के ग्रहण के कारण कथा का रूप कुछ बदला है, किन्तु उनके वर्णन पर इन कवियों जैसा स्थानीय प्रभाव नहीं है। जो कुछ भी प्रभाव कहा जा सकता है वह युगीन-चित्रण के अन्तर्गत कहीं न कहीं वर्णित हो चुका है। फिर भी युगों पूर्व लिखी गयी रामायण और मानस के परिवेश आदि में अन्तर अवश्य था और वह मानस में व्यक्त हुआ है। विवाह-पद्धति में उत्तर-प्रदेश की प्रथाओं का पालन हुआ है। लग्न-सोधना, लग्न-पत्रिका भेजना, बरात की अगवानी के समय बच्चों की उत्सुकता, स्त्रियों का परिछन करना, वर के मनोनुकूल न होने पर मध्यस्थ को कोसना, आदि। साथ ही सीता को सरस्वती आदि देवियाँ 'कोहबर' में ले जाती हैं एवं 'लहकौर' कराती हैं।

---

१. हंटर एवं साहु द्वारा संपादित 'ए हिस्ट्री ऑफ़ ओरिसा' में मन्दिर के रथों का वर्णन इस प्रकार है—

जगन्नाथ का रथ—नन्दीघोष-१६ पहिये, वेदी से ऊँचाई २३ हाथ
वलभद्र का रथ—तालध्वज-१४ पहिए, ,, ,, २२ ,,
सुभद्रा का रथ—देवदलन–१२ पहिए, ,, ,, २१ ,,

'पद टिप्पणी पृ० ३७'

२. उड़िया-रामायण, पृ० ६-२८०।

३. वही, पृ० ६-३२१।

स्त्रियों की वेश-भूषा का विशेष चित्रण नहीं है, किन्तु जो है वह भी प्रादेशिक है। बच्चों के परिधान में 'झंगुला' एवं पीत चौतनी का अवश्य प्रयोग हुआ है। राम के वर-रूप का भी ऐसा चित्रण है जैसा कि आज भी हमारे गाँवों में उपलब्ध है।

तुलसीदास मुगल-शासन में जीवन-यापन कर रहे थे। शासक के मनोविनोद 'चौगान' एवं गोला (गोलाबारूद) का प्रयोग उन्होंने त्रेतायुग के राम के समय दिखा दिया है।

पूर्वांचल के कुछ समान स्थानीय-चित्रण :

पूर्वांचलीय-रामायण में उपलब्ध कुछ समान रीति एवं वस्तुओं का विस्तृत-परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

१. **उलुध्वनि**—स्त्रियों की एक रोचक मंगल-ध्वनि।

जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के मंगल-अवसरों पर पूर्वांचल की नारियाँ मुँह के भीतर कपोलों की ओर जिह्वा को द्रुत-गति से ताड़ित कर 'ऊ ऊ ऊ' जैसी ध्वनि करती हैं, इसे ही उलुध्वनि कहते हैं। संस्कृत में इसे मुख-घंटा भी कहा गया है। इस अवसर पर कुछ स्त्रियाँ शंख भी बजाती जाती हैं। बंगला-उपन्यासों एवं चलचित्रों के सम्पर्क में रहने वाले अथवा बंगालियों के मंगलोत्सव में सम्मिलित होने वाले सज्जनों को इस ध्वनि का परिचय मिला होगा। असमीया एवं उड़िया-भाषी जनता में भी इसका प्रचार है।

प्राचीन-उल्लेख—**नैषधीय-चरित** के लेखक श्रीहर्ष बंगाली माने जाते हैं।

दमयंती के विवाह के अवसर पर उनके काव्य की स्त्रियाँ भी उलुध्वनि करती हैं—

सैवाननेभ्यः पुरसुन्दरीणामुच्चैरुललुध्वनिरुच्चचार। १४-५१

इस ग्रन्थ की नारायणीय-टीका में उल्लु (उलु) ध्वनि को गौड़ देश में विवाहादि अवसरों पर प्रयुक्त स्त्रियों की अव्यक्त वर्ण-ध्वनि माना गया है—

विवाहाद्युत्सवे स्त्रीणां धवलादिमंगलगीति विशेषा गौडदेशे उलूलुः इत्युच्यते। सोप्यव्यक्तवर्ण उच्चार्यते स्वदेशरीतिः कविनोक्ता।

अनर्घराघव-नाटक में भी पूर्वांचल में प्रचलित इस ध्वनि का ही चित्रण है। वैदेही के हाथ में मंगलसूत्र बाँधने के समय ब्राह्मण यजुःसूक्त पढ़ रहे थे और स्त्रियाँ कपोलों को कन्द की तरहफुला कर उलूलुः ध्वनि कर रही थीं।

वैदेही करबन्धमङ्गलयजुः सूक्तं द्विजानांमुखे।
नारीणां च कपोलकन्दलतले, श्रेयानुलूलुध्वनि॥ ३-५५

वैदिक-साहित्य में—छान्दोग्य-उपनिषद् (३-१९-३) में वर्णित 'उलूलव' शब्द के सम्बन्ध में शांकर-भाष्य में बताया गया है—'उलूलव उरुरवो विस्तीर्णरवा'

(अर्थात् सुदूर-व्यापी शब्द वाले घोष) अथर्ववेद (४-१६-६) में आये हुए 'उलुलय' के सम्बन्ध में सायण का कहना है कि ये अनुकरण शब्द हैं।

पूर्वांचल में प्रचलित ध्वनि का वैदिक-वाङ्मय में वर्णित उलुलय अथवा उलुलय से पार्थक्य प्रकट होता है। हो सकता है कि यह वैदिक-ध्वनि ही परिवर्तित हो कर पूर्वांचल की वर्तमान ध्वनि के रूप में जीवित रही हो।

तांत्रिक-प्रभाव—शंकर की पूजा के समय उपासक लोग मुख से बकरे के स्वर जैसी ध्वनि निकालते हैं। दक्ष का सिर काटकर शंकर ने उसके स्थान पर बकरे का सिर लगा दिया था। शंकर को उस घटना का स्मरण दिलाकर उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए इस प्रकार की ध्वनि की जाती होगी। शिव से सम्बन्धित साहित्य में मुख-वाद्य करने के उदाहरण मिल जाते हैं— गन्ध पुष्पनमस्कारैर्मुखवाद्यैश्च सर्व्वशः।[1] इस ध्वनि और उलु-ध्वनि में साम्य है। शंकर के साथ इस ध्वनि का सम्बन्ध देखकर विचार उठता है कि कहीं यह तांत्रिक-पद्धति न हो। यहाँ यह स्मरणीय है कि शंकर की उपासना-पद्धति पर किराती एवं तांत्रिक प्रभावों का बाहुल्य है।

पूर्वांचल में ध्वनि का स्वरूप—असमीया, बंगला और उड़िया रामायणों में उलुध्वनि के लिए क्रमशः 'उरुलि', 'हुलाहुलि' और हुलहुलि' शब्दों का प्रयोग हुआ है। मोनियर-विलियम, आप्टे और वाचस्पति तारानाथ के संस्कृत-कोशों के अनुसार ये सभी शब्द उलुध्वनि (या उलूलुध्वनि) के ही समानार्थक हैं।

०असमीया रामायण में :

उरुलि जोकार बहुविध जय रव—छं० १३५५।

ढाक ढोल उरुलि मृदंग लंका जुरि—छं० ४४८४।

असमीया हेमकोश में उरुलि का अर्थ दिया गया है—'मुखेर करा शब्द-विशेष, तिरोताइ मङ्गलकार्यत जिभा लारि करा शब्द अर्थात् मुख से किया गया शब्द-विशेष, स्त्रियों का मंगल-कार्यों में जीभ हिला कर किया गया शब्द।

० **बंगला-रामायण** में भी राम के जन्म के समय स्त्रियाँ हुलाहुलि करती हैं, किन्तु बन्दर लंका को घेर कर हुलाहुलि करते हैं, जिससे प्रकट होता है कि पूर्वांचल के पुरुष भी जयध्वनि के रूप में इसका प्रयोग करते थे अथवा उनके जयकार को भी हुलाहुलि कहा जाता था। वैसे यह ध्वनि है स्त्री-ध्वनि ही (पूजा शुभकर्म आनन्दानुष्ठान प्रभृति ते हिन्दूनारी-गण जिह्वा ओ तालुर साहाय्ये ये शब्द करे, उलु, जोकार-बंगला-कोश) और आज भी स्त्रियों द्वारा ही यह प्रयुक्त होती है।

० **उड़िया-रामायण** में जन्म के पूर्व (देखिण युवतीमाने द्यन्ति हुलहुलि) युवतियाँ, स्वर्ग में अप्सराएँ और राम को देखकर जनकपुरी की स्त्रियाँ तो हुलिहुलि करती ही हैं, साथ ही इस रामायण में भी युद्ध करते समय वानर तथा लंका-नगरी

---

१. लिंग पुराण (तिथितत्त्व)।

के नागरिक भी हुलिहुलि करते हैं। यहाँ भी पुरुषों के लिए इस ध्वनि का अर्थ होगा कोलाहल या जयकार। उड़िया-कोशों में भी इसे स्त्रियों द्वारा जीभ से की गयी मुखध्वनि बताया गया है—'स्त्री मानङ्कु द्वारा जिह्वाकृत मुख वाय।'

रामचरितमानस में पंच-शब्द और पंच-ध्वनियों[1] का वर्णन है। टीकाकार पंच-ध्वनियों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—वेदध्वनि, जयध्वनि, वंदिध्वनि, शंखध्वनि एवं हुलूध्वनि। यदि मानस की पंच-ध्वनियाँ यही हों, तब भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि तुलसीदास पूर्वांचल की इस विशेष-ध्वनि से परिचित थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती-साहित्य के आधार पर इसका उल्लेख कर दिया होगा।

वैदिक एवं लौकिक साहित्य से प्रकट होता है कि किसी समय भारत के अनेक जनपद उलुध्वनि से परिचित थे, किन्तु कम से कम मध्यकाल से यह ध्वनि पूर्वांचल की अपनी विशेषता होकर रह गयी है। इस विशेषता का उल्लेख पूर्वांचल के रामायण-कारों ने अपनी कृतियों में किया है।

(२) **नेत्रवस्त्र**—तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में नेत्रवस्त्र का उल्लेख किया गया है। **असमीया-रामायण**[2] में नेतवस्त्र, नेत-कामलि और नेतक्षौम्य शब्दों का प्रयोग हुआ है। **बंगला-रामायण**[3] के अनुसार नेत-वस्त्र की पताकाएँ और कनातें बनायी जाती थीं। स्त्रियाँ इसकी साड़ी अथवा ओढ़नी धारण करती थीं। पुरुष भी नेत की धोती पहनते थे। नेत की पाछुड़ी बिछायी भी जाती थी। **उड़िया-रामायण** में भी पलंग की चद्दर, तकिया, पताका एवं परिधेय-वस्त्र के रूप में नेत के प्रयोग का वर्णन है।[4]

नेत को संस्कृत में नेत्र कहेंगे। डा० मोतीचन्द्र[5] इसे बंगाल में १४वीं शताब्दी तक प्रचलित मजबूत रेशमी वस्त्र मानते हैं, किन्तु उड़िया-रामायण में इसके वर्णन से सिद्ध होता है कि पूर्वांचल में इसका प्रचार १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक तो था ही। बाणभट्ट के हर्ष-चरित में प्रयुक्त नेत्र के वर्णन के आधार पर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल[6] इसे महीन रेशमी वस्त्र मानते हैं।

विद्यापति की पदावली में भी 'नेतक वसन' शब्द आया है, जिसका अर्थ

---

१. पंच सबद धुनि मंगल गाना—१-३१८-३।
२. असमीया० छं० सं० १४४८, ४११२, ५१२८।
३. देखिए, प्रस्तुत लेखक का ग्रन्थ कृत्ति० बँगला-रामायण और राम० मानस, पृ० ११४।
४. उड़िया-रामायण, १-१६, १-२०, ५-१०।
५. डा० मोतीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १५७।
६. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्ष-चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २३।

नूतन वस्त्र अथवा उत्तरीय किया गया है। एकाध लोगों ने यह सोचकर कि यह स्त्रियों से सम्बन्धित है इसका अर्थ अनुमान के आधार पर रेशमी वस्त्र कर दिया है।

(३) शंखचूड़ी—सधवा बंगालिने शंख से निर्मित श्वेत चूड़ी पहनती हैं। नैषधीय चरित में कम्बु-वलय अर्थात् शंख-वलय का वर्णन आया है। नारायणी-टीका में इसे स्पष्ट किया गया है—गौड़ देश में विवाह के समय शंख-वलय धारण करने का आचार है।[1] असमीया-रामायण में इसे 'शाङ्ख' एवं बंगला-रामायण में शंख और 'शाँखा' कहा गया है। सीता इसे धारण करती हुई दिखायी गयी है। उड़िया-रामायणमें इसका वर्णन नहीं है।

---

१. नैषधीय-चरित (१५-४५) नारायणीय-टीका—गौडदेशे विवाहकाले शङ्खवलय धारणमाचारः।

पंचम अध्याय

चरित्र-चित्रण

कथा एवं चरित्र दोनों ही दृष्टिकोणों से रामायणों का मूल-आधार वाल्मीकि रामायण ही है। चरित्र की मूलगत-विशेषताएँ समान हैं। मूल की रक्षा करते हुए भी प्रत्येक भाषा-रामायण में चरित्रों का स्वतन्त्र विकास भी हुआ है। वाल्मीकि के चरित्रों से भिन्नता के मुख्य चार कारण हैं, रामायणों के पारस्परिक-वैषम्य के भी बहुत कुछ यही कारण हो सकते हैं—

(१) राम के ब्रह्मत्व का कालान्तर में प्रचार।
(२) युग का प्रभाव।
(३) स्थानीय-परिवेश एवं लोक-प्रचलित आख्यान।
(४) व्यक्तिगत-दृष्टिकोण।

(१) वाल्मीकि रामायण में आर्यों की गौरवमयी संस्कृति की झलक है। राम एक आदर्श गृहस्थ एवं शासक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। वे अपने सद्गुणों के कारण नर से नारायणत्व तक उन्नत हुए और परवर्ती-युग में उन्हें ब्रह्म का अवतार माना जाने लगा। यहीं उनके चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया। यह दृष्टिकोण अन्य पात्रों और राम के पारस्परिक-सम्बन्धों पर भी आरोपित हुआ। वाल्मीकि के राम अथवा कैकेयी आदि पात्रों के गुण-दोष मानवीय थे, उनमें दुर्बलताएँ थीं तो वे भी मानवीय थीं। भाषा-रामायणों के रचनाकाल तक राम के ब्रह्मत्व का प्रचार हो जाने के कारण राम अथवा राम से सम्बन्धित कई पात्रों की दुर्बलता को ढँकने की चेष्टाएँ की गयीं। अनेक आख्यानों की कल्पना कर उनके चरित्रों को नया रंग दिया गया।

राम को अवतार मान लेने से चरित्र-विषयक दृष्टिकोण में एक नया परिवर्तन यह भी देखा गया कि उन्हें अत्यन्त मधुर एवं सुकुमार चित्रित किया गया। वाल्मीकि की कौशल्या को चिन्ता है कि राम लौहदण्ड (परिघ) के समान कठोर भुजाओं का तकिया बनाकर कैसे सो पाते होंगे। वाल्मीकि के ऐसे पुष्ट-सशक्त राम क्रोध करने

पर नाग के समान फुफकारते हुए, धनुष-बाण लेकर कालाग्नि के समान पर्वत की चोटियाँ काट गिराने, सागर को सोख लेने तथा हरे-भरे वनों को जला कर भस्म कर देने को प्रस्तुत हो जाते हैं। भाषा-रामायणों में ऐसे उग्र-आवेशमय राम सजल-जलद-कान्ति, पुष्प-सुकुमार एवं नवनीत-कोमल चित्रित हुए। भक्तों को सुख देने के लिए वे अवतरित हुए थे न। कोमल-मन न होंगे तो आर्त्तजनों की पीड़ा की अनुभूति उन्हें कैसे होगी? मन की छाया तन पर भी होती है, अतएव उनका तन भी कोमल हो गया। कहाँ परिघ-सा तन और कहाँ दूर्वादल-श्याम सुकोमल शरीर!

इस ब्रह्मत्व के दृष्टिकोण के कारण ही अग्नि के समान तेजस्वी एवं आदित्य के समान दुष्प्रेक्ष्य उद्दण्ड अत्याचारी रावण भाषा-रामायणों में शाप-ग्रस्त भक्त बना दिया गया। वाल्मीकि का रावण केवल भोगी है, भाषा रामायणों का भोगी और भक्त दोनों ही। वह अपने उद्धार के लिए राम से विरोध करता है।

युग-युग से प्रचारित भक्ति-भावना अनेक आचार्यों एवं भक्त-कवियों के बुद्धि-मन का सम्बल पाकर जन-मानस में इतनी अधिक सशक्त हो गयी है कि भक्तिपरक-दृष्टिकोण से पृथक् राम और समस्त रामायणी-चरित्रों की हम कल्पना नहीं कर सकते। भले ही ऐतिहासिक राम को हमने खोया हो किन्तु हमने जो कुछ पाया है, उसका मूल्य कम नहीं है।

(२) वाल्मीकि के पात्र बलिष्ठ आर्य एवं तपःपूत ऋषि हैं। वे अपने काल के अनुरूप विपुलांस, महाबाहु एवं महोरस्क हैं। उनके नेत्र रक्तवर्ण हैं, स्वर नगाड़े जैसा (दुन्दुभिस्वन) है। भाषा-रामायणों में चित्रित ऋषि अथवा ब्राह्मण वर्ग पर युगीन-प्रभाव अधिक है। मध्यकाल के शक्तिहीन दुर्बल ब्राह्मण ही रामायणों के ऋषि एवं ब्राह्मण-वर्ग के रूप में प्रतिबिम्बित हुए हैं। असमीया-रामायण में भोजन भट्ट दुर्वासा मथुरा के चौबे जैसे प्रतीत होते हैं, बँगला-रामायण के ऋषि ताम्रपात्र और तुलसी लेकर तपस्या करते दिखाये गये हैं, जो कभी क्रोध में चिड़चिड़ाते हैं और कभी भय उपस्थित होने पर ऊर्ध्व-शिख पलायन करते हैं। विश्वामित्र मरी हुई ताड़का के पास नहीं जाते, उनकी साँस फूल गयी है, छाती जोर से धड़क रही है। उड़िया रामायण के ऋषि भी छाता, पोथी, डंडा आदि लिए उड़िया ब्राह्मण की तरह जीवनयापन करते देखे जाते हैं। मानस का यह वर्ग निश्चय ही लघुचरित्र रहित है, उसमें गाम्भीर्य है, किन्तु नहीं है तो वाल्मीकि का तपःतेज। नारियों के चरित्र में भी युगीन प्रभाव दृष्टिगत है। मध्यकालीन नारी का सहज कुतूहल, भय, दुराव, छुईमुई होने का भाव आदि गुण विशेष रूप से चित्रित हुए है। उड़िया रामायण की सीता एवं मानस की सती में ये गुण विशेष रूप में मिल जाएँगे।

(३) स्थानीय परिवेश का प्रभाव प्रथाओं के चित्रण तथा सांस्कृतिक वर्णन में अधिक है। चरित्रों पर जो प्रभाव पड़ा है वह युगीन प्रभाव के अन्तर्गत आ जाता है। फिर भी प्रत्येक लेखक की अपनी आंचलिक विशिष्टता है जो कि चित्रण में दिखायी

पड़ती है। ब्राह्मण एवं स्त्रियों का आंचलिक वैशिष्ट्य-युक्त प्रभाव प्रत्येक रामायण के पात्रों में लक्षित होता है।

स्थानीय परिवेश के साथ ही स्थानीय लोक-प्रचलित आख्यानों का प्रभाव भी चरित्रों पर पड़ा है। हनुमान की अज्ञता, राम की दयालुता, लक्ष्मण की उग्रता प्रकट करने के लिए अनेक आख्यानों की सहायता ली गयी है, जिनमें पशु-पक्षियों एवं जन-जातियों से सम्बन्धित आख्यान भी सम्मिलित हैं। यह प्रभाव बँगला एवं उड़िया रामायणों पर अधिक है।

(४) चरित्र-चित्रण में लेखक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण विशेष महत्त्व रखता है। उसके अनुभव में जैसे चरित्र आये हैं अथवा वह जैसे चरित्र की आदर्श कल्पना करता है, उन्हें उसी रूप में चित्रित करने का उसका प्रयास रहता है। राम-कथा-विषयक अनेक ग्रन्थों से भी वह अपने इच्छानुकूल चरित्रों का चुनाव भी करता है। असमीया-लेखक मन्थरा के चित्रण में उसे भरत के प्रति प्रणय-भाव युक्त दिखाता है। उड़िया लेखक अधिकांश पात्रों की कामुकता का अत्यन्त रस-सिक्त चित्रण करता है। बँगला लेखक के पात्रों में अश्रु-विगलित भावुकता अधिक प्राप्य है। मानसकार भक्ति-रस में तन्मय होकर तारा एवं मन्दोदरी आदि पात्रों को भी उसी रस से ओतप्रोत कर प्रस्तुत करता है।

०अन्य रामायणों एवं मानस के पात्रों में पारस्परिक अंतर की मुख्य विशेषता है मानसकार के अद्भुत संयम-चित्रण की। अन्य भाषा-रामायणों में राम के ब्रह्मत्व एवं नरत्व का गड़बड़-घोटाला है। एक ओर वे वाल्मीकि के राम की भाँति आवेश का परिचय देते हैं, तो दूसरी ओर वे ब्रह्म भी हैं। मानस में वे सदैव ब्रह्म हैं, इसलिए उनके चरित्र में विरोधाभास नहीं है। मानस के राम हर्ष-विषाद से रहित प्रतीत होते हैं, किन्तु भाषा-रामायण में उन्हें हर्ष-विषाद का यथार्थ अनुभव करते देखा जाता है। वनवास का समाचार पाकर असमीया के राम का मुख गोधूलि के सूर्य सा मलिन हो गया था। सीता के पाताल-प्रवेश कर जाने पर वे रात-रात भर सो न पाते थे एवं सोते हुए बच्चों को कंठ से लगाकर रोते रहते थे। बँगला-रामायण के राम अभिषेक एवं वनवास के समाचारों से क्रमशः प्रसन्न एवं क्षुब्ध हुए हैं। रावण द्वारा फेंकी गयी शक्ति को लक्ष्मण की ओर जाता देख वे गिड़गिड़ा कर शक्ति की प्रार्थना करते हैं। ये राम उस ब्रह्म के अवतार हैं जो अवतार-ग्रहण की प्रतिज्ञा कर विच्छेद के भय से लक्ष्मी के गले में बाँहें डाल कर रोये हैं। उड़िया के राम भी साधारण मनुष्य जैसा सत्य-व्यवहार करते हैं। वे एकांत-मिलन में सीता के प्रति प्रेमाकुल भाषा का प्रयोग करते हैं और एक साधारण कामुक पति से प्रतीत होते हैं। सीता के विरह में यही राम सुध-बुध खोकर प्रमत्तों की भाँति प्रलाप भी करते हैं। मानस के राम के चित्रण में पूर्ण ब्रह्मत्व है, उसमें असंगति नहीं है। वे सर्वत्र ही ब्रह्म रहते हैं। जहाँ वे शोक-हर्ष के आवेग का प्रकाश करते हैं, वहाँ स्मरण दिला दिया जाता है कि वे नर-लीला कर रहे हैं।

वाल्मीकि-रामायण एवं भाषा-रामायणों के अन्य पात्र भी आवेश-पूर्ण हैं। प्रेम, शोक अथवा क्रोध के आवेश में कहनी-अनकहनी कह जाते हैं। वनवास का समाचार ज्ञात कर कौशल्या और लक्ष्मण क्रोध-शोक-पूर्ण अविवेक का परिचय देते हैं, सीता मारीच की कपट-ध्वनि से व्याकुल होकर लक्ष्मण के प्रति कटु-वचनों का प्रयोग करती हैं। यह अविवेक-पूर्ण भाव-चित्रण मानवीय सहज-व्यक्तित्व-चित्रण की दृष्टि से अत्यंत उत्तम है। मानस के पात्र ऐसे प्रसंगों पर भावों के आवेग का उग्र अनुभव करते हुए भी असंयम एवं अविवेक का परिचय नहीं देते। यहाँ कौशल्या न तो दशरथ को कोसती है और न कैकेयी को। वे राम के साथ चलने का हठ कर उन्हें धर्म-संकट में भी नहीं डालना चाहतीं। अन्य रामायणों का अंगद सीता न खोज पाने पर सुग्रीव के विरुद्ध षड्यंत्र करता है, बँगला-रामायण में तो वह राम पर भी संदेह करता है, किंतु मानस में कोई भी पात्र राम के ब्रह्मत्व एवं उनकी सत्यता पर शंका नहीं करता। अत्यंत साधारण पात्रों में भी विवेकमय संयम देखा जाता है। तुलसीदास की यह विशेषता अन्य ग्रंथों के चरित्रों में दुष्प्राप्य है। इस दृष्टिकोण से उनके पात्र वाल्मीकि के पात्रों से भी विशिष्ट हैं।

राम

०वाल्मीकि के राम दुर्द्धर्ष-वीर, कर्त्तव्य-परायण, व्यावहारिक, शील-सम्पन्न एव सत्यसंध उदात्त नायक हैं, जो अपने पारिवारिक प्रेम एवं सहज मानवीय गुणों के कारण पुरुषोत्तम कहलाये। उनके गुणों में देवत्व की झलक देख कर ही कालान्तर में उन्हें ब्रह्म का अवतार माना जाने लगा।

०कहा गया है कि राम गम्भीरता में समुद्र, धैर्य में हिमालय, वीरता में विष्णु, सौंदर्य में चंद्रमा, क्रोध में कालाग्नि और क्षमा में पृथ्वी के समान थे।[1] उनके कंधे चौड़े, भुजाएँ लम्बी एवं सीना चौड़ा था।[2] उनका समस्त शरीर साँचे में ढला हुआ था। उनकी कंठध्वनि नगाड़े के स्वर के समान थी—'दुन्दुभिस्वननिर्घोषः।' जो वीर क्रोध में कालाग्नि-सदृश हो और क्षमा में पृथ्वी के समान, वही सच्चा वीर है।

०दशरथ प्रतिज्ञा में बँधे थे, किंतु उनसे जो वर माँगे गये, उनमें दशरथ का समर्थन नहीं था। बिल में बैठे साँप की भाँति फुसकारते हुए लक्ष्मण राम का साथ देने को तैयार थे। उपेक्षिता वृद्धामाता कौशल्या राम को निरंतर उकसा रही थीं किंतु

---

१. स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानंदवर्द्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवी समः ॥
—वाल्मीकि-रामायण, १।१।१७,१८।

२. वाल्मीकि-रामायण, ४-३५।१५,१६।

राम कर्तव्यच्युत नहीं हुए। वे चाहते तो वन न जाते, किंतु तब सम्भवतः राजधानी में गृहयुद्ध हो जाता। उन्होंने दशरथ के सत्य की रक्षा कर अलौकिक पारिवारिक-आदर्श की स्थापना की।

०उनकी कर्त्तव्य-परायणता में व्यवहार-कुशलता है। सीता को वनवास का समाचार देकर उन्होंने भरत के प्रति शंका भी प्रकट की थी—

भरतस्य समीपे तु नाहं कथ्यः कदाचन ॥ २४
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ॥ २५(२-२६)

०वे शील-सम्पन्न थे। दुःख के आवेश में वे भले ही कुछ का कुछ कह जाएँ, वैसे वे किसी के विरोध में कटु शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे। विराध के चंगुल में में फँसी हुई सीता को देख कर उन्हें इतना दुःख हुआ था कि पिता की मृत्यु एवं राज्यत्याग पर भी उन्हें इतना दुःख नहीं हुआ था। (३।२।२१) इसलिए वे क्षुब्ध हो कर कह उठे थे—आज दूरदर्शिनी कैकेयी के मन की हो गयी। (३।२।१८।२०) व्यथित-अवस्था में कैकेयी को उन्होंने कोसा है। अरण्य-काण्ड में लक्ष्मण ने भरत की प्रशंसा कर कैकेयी को क्रूरदर्शिनी कहा, तब राम बोल उठे थे—'हे भाई, तुम मझली माता कैकेयी की निंदा मत करो। तुम तो केवल इक्ष्वाकुनाथ भरत की चर्चा करो।'[1]

०सत्यसंध राम ने स्वयं भी कहा था— वीर, मैं बड़ी-बड़ी कठिनाइयों में पड़ कर भी झूठ नहीं बोला—अनृतं नोक्तपूर्वं मे वीर कृच्छ्रेऽपि तिष्ठता। ४।१४।१४

पिता, माता कौशल्या, कैकेयी, भरत आदि सभी के प्रति वे स्नेहमय कर्तव्य का पालन करते रहे। सीता-हरण पर वे लक्ष्मण से बोले थे, तुम अयोध्या लौट जाओ, मैं सीता के बिना जीवित न रह सकूँगा।[2] और लक्ष्मण के जब शक्ति लगी तो रावण की भयंकर बाणवर्षा के बीच वे लक्ष्मण को पर फैलाये हुए पक्षी की भाँति ढँके खड़े थे।

उनकी मानवीयता सहज, सरल एवं अनुकरणीय है। विभिन्न परिस्थितियों में पड़ कर राम पर तदनुकूल प्रभाव पड़ता है। उन्हें प्रसंगानुसार क्रोध और हर्ष की अनुभूति होती है। वे अपने भावों का प्रकाशन उग्रता के साथ करते हैं। किंतु शील और सत् उनके रज और तम को नियंत्रित करते हैं। अग्नि-परीक्षा से पूर्व उनका व्यवहार जितना कठोर है, वैसा भाषा-रामायणकार प्रयास करने पर भी नहीं बना पाये हैं। वाल्मीकि के राम अपवाद के भय से कठोर हैं किंतु मन ही मन सीता पर उन्हें अगाध विश्वास और प्रेम है, जिसे उनका समुद्र-सा गम्भीर-मन प्रकट नहीं करता। सीता के अग्नि-प्रवेश पर उनके नेत्र वाष्प-व्याकुल हुए थे और वे एक मुहूर्त के लिए कुछ

---

१. न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कथञ्चन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥ ३।१६।३७ ॥

२. वाल्मीकि-रामायण, ४।१।११४।

सोचने लगे थे, लघु-पुरुषों के समान फफक-फफक कर रो नहीं दिये थे, जबकि पूर्वांचलीय-रामायणों में वे प्राय: संयमहीन से प्रतीत होने लगते हैं।

वाल्मीकि ने उनसे कहा था—तुमने अपनी प्रियतमा को विशुद्ध समझते हुए भी केवल लोकापवाद के भय के कारण छोड़ा है—

लोकापवाद कलुषीकृत चेतसा या।
त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥ ७।९६।२३

राम ने इस तथ्य को स्वीकार किया था। लोकापवाद के इसी भय एवं कठोर कर्तव्यनिष्ठा के कारण उन्होंने साध्वी सीता को निर्वासित किया, फिर वाल्मीकि की साक्षी पर भी सभा के मध्य सीता से शुद्धता का प्रमाण माँगा। सीता धरतीमाता की गोद में समा गयीं, तब मानो समस्त पुंजीभूत क्रोध और क्षोभ पृथ्वी देवी पर उतरा था, उस समय वे समुद्र से गम्भीर नहीं, कालाग्नि के समान कठोर हो गये थे। उनकी इस उग्रता की पृष्ठभूमि में सीता के प्रति उनके अगाध प्रेम की प्रतिक्रिया थी। अत्यधिक क्षमाशील, उदार, सहनशील और संयमी राम ने उस समय अपना संयम खो दिया है, जबकि उन पर या उनके किसी प्रिय व्यक्ति पर महत् विपत्ति टूट पड़ती है। यहाँ उनका असंयम और क्रोध बड़ा ही स्वाभाविक और प्रिय लगता है। इससे उनका महामानवत्व ही प्रकट होता है और वे अपने सद्गुणों के कारण मानवता के स्तर से देवता के स्तर तक पहुँचते-पहुँचते मानो रह जाते हैं।

राम जैसे चरित्र की कल्पना विश्व के किसी काव्य में नहीं मिलेगी। होमर के महाकाव्यों का कोई भी वीर पात्र राम के समक्ष नहीं हो सकता।

(१) वाल्मीकि-रामायण में राम का ब्रह्मत्व प्रक्षिप्त है, रामायण के शेष वर्णन में कहीं ऐसा प्रकट नहीं कि राम ब्रह्म हैं, अतएव प्रक्षेपों के अतिरिक्त सभी स्थलों पर राम मानव हैं। पूर्वांचलीय-रामायणों में राम के मानवत्व को भी दिखाया गया और साथ ही उन्हें ब्रह्म भी माना गया, अतएव नरत्व और नारायणत्व का सम्यक् निर्वाह नहीं हो पाया। तुलसीदास ने अध्यात्म-रामायण से प्रेरणा ली और उन्होंने नर-लीला करने वाले राम के सारे कार्यकलापों में संगति स्थापित की। इस संगति का बँगला-रामायण में एकदम अभाव है। उड़िया-रामायण में भी अभाव हो सकता था किंतु उसमें 'अज्ञान' के प्रसंग की कल्पना कर इस दोष को दूर करने की चेष्टा की है। असमीया-रामायण का दृष्टिकोण मूल से साम्य रखता है।

(२) भाषा-रामायणों के रचनाकाल तक राम के प्रति पूज्य-भाव के उदय होने और भक्ति के प्रचार के कारण इष्टदेव में दया, दाक्षिण्य, क्षमाशीलता आदि गुणों को दर्शित करने के लिये उन्हें तन और मन दोनों से सुकुमार दिखाया गया है।

असमीया-रामायण के राम :

०इस रामायण में भी अन्य पात्रों के मुख से राम के उन्हीं गुणों का उल्लेख

हुआ है जिनका कि वाल्मीकि-रामायण में है।

परम विनीत वेदशास्त्रत कुशल। धनुर्व्वेद आदि विद्या जानन्त सकल ॥
क्रोधे यमकाल येन क्षमाइ वसुमती। गम्भीरे सागर येन बुद्धि बृहस्पति ॥
सर्व्वगुणे विधि येन वेशत गन्धर्व्व। राजार लक्षण रामतेसे आछे सर्व्व ॥[1]

०राम ब्रह्म हैं। कवि स्थान-स्थान पर उनकी स्तुति करता जाता है। असमीया-लेखक तुलसी की भाँति कहते हैं कि राम परमेश्वर और सीता जगतमाता हैं। वे विषयी लोगों जैसा रूप दिखा रहे हैं।

परम ईश्वर राम सीता जगन्माव। देखाइलन्त विषयी जनर इटो भाव ॥ ३३१६

ऋषि लोग राम के दर्शन से अपना जन्म सफल मानकर उनके चरणों में भक्ति माँगते हैं—'रहोक भकति प्रभु तोमार चरणे।'[2] राम को ब्रह्म मानकर भी उनके चरित्र पर कहीं भी ब्रह्मत्व का प्रभाव नहीं दिखाया गया। स्वयं राम अपने ब्रह्मत्व से परिचित प्रतीत नहीं होते। ऐसा ही वाल्मीकि-रामायण में है। ब्रह्मत्व के साथ ही राम सुकुमार भी दिखाये गये हैं—**'लवनु पुतलि येन सुकोमल तनु'**—मक्खन की पुतली जैसा कोमल तन है—१२००। वे दूर्वादल श्याम भी हैं—छंद ३३६३।

०राम की वीरता में सन्देह नहीं। रावण को युद्धक्षेत्र में प्रथम वार देखकर वे वोल पड़े थे—स्त्री-चोर आज तेरी कुशल नहीं। —पृ० ३३४

वे आत्मप्रशंसा भी करते हैं। कैकेयी द्वारा वर माँग लिये जाने पर दशरथ आकुल अवस्था में पड़े हुए थे। राम उनके दुःख के कारण से अपरिचित थे, तब उन्होंने पिता को धैर्य वँधाने के लिए कहा था—गज, अश्व, रथ या पैदल मेरे समान कोई नहीं है। सभी को नष्ट करने में मैं साक्षात् यम हूँ। मैं खाँडे के प्रहार से सप्तद्वीपा पृथ्वी को रुधिरमय कर सकता हूँ। २१ वार क्षत्रियों का संहार करने वाले परशुराम का कुठार भी मेरे आगे उनके कंधे पर स्थिर होकर रह गया था।[3] अन्य लेखकों की तुलना में राम की इस उक्ति में शील की कुछ कमी प्रतीत होती है। पिता दशरथ के आगे किसी रामायण के राम ने ऐसी दर्पोक्ति नहीं की।

फिर भी वे सच्चे वीर हैं और उनकी वीरता में क्षमाशीलता एवं दयाभाव है। उन्होंने समस्त राक्षसों के संहार के लिए प्रस्तुत लक्ष्मण से कहा था—उस राक्षस को मत मारना जो शरण ले, जो दाँतों में तिनका दवाकर आए।

लगभग सभी स्थलों पर राम के मानवीय महान् रूप के ही दर्शन होते हैं। उनके नरत्व और नारायणत्व के गड़वड़घोटाले के नहीं। उनके मनोभावों का प्रका-

---

१. असमीया-रामायण, २३७३-७४।
२. वही, २६७६।
३. वही, १६७५।७८।

शन अकृत्रिम है। अभिषेक समाचार से उन्हें प्रसन्नता हुई थी और उन्होंने कौशल्या से कहा था—'माता, स्त्री-आचार कर मंगल-विधान करो, जिससे मेरे और सीता के विघ्न दूर हों।'[1] वनवास की आज्ञा सुन कर उन्होंने अद्‌भुत संयम का परिचय देकर हँसते हुए कहा—'मैं वन जाऊँगा'—(हास्य करि बोलन्त याइबोहो वनवास—१६९६)। किन्तु उनका यह संयम अधिक देर नहीं रह सका था, वे बिलख कर बोल उठे थे—पिता सुनिए, पितृद्रोही राम कुछ कह रहा है, देखिए, मैं घोर तपोवन में चला जाऊँगा, मेरी अनाथिनी माता का पोषण कैसे होगा ?

शुनियोक वापदेओ अजर नन्दन। पितृद्रोही राम हेरा बोलय वचन।
१६९८
अनाथिनी माव मोर पालिव केमने। मइ चलि याओ हेरा घोर तपोवने।
१६९९

निश्चय ही राम भयंकर उलझन में पड़ गये थे। उन्हें राज्य नहीं मिला, इसका उन्हें दुःख नहीं था। रजनी चन्द्र-कान्ति को मलिन नहीं कर पाती, इसी प्रकार राज्यहीन होकर उनके मुख की कान्ति भी लुप्त नहीं हुई थी।[2] किन्तु सम्भवतः प्रियजनों पर आयी हुई विपत्ति की कल्पना कर वे दुःखी हुए थे। सीता ने उनके मुख को गोधूलि के सूर्य के समान मलिन देखा था।

उन्होंने व्यवहार-कुशलता का परिचय देकर कौशल्या को समझाया कि कैकेयी को वहिन मानना, प्रवल के साथ द्वन्द्व उचित नहीं है। सीता को समझाया, दर्प और मान को त्याग कर भरत को संतुष्ट रखना, तभी भरत तुम्हारा पालन करेंगे।[3]

केवल इसी रामायण में राम ने मुखलज्जा छोड़कर कैकेयी से क्षुब्ध होकर कहा था—मेरे वनवास से पिता को दुःख देकर इस राज्य को पा कर कितना बड़ा सुख तुम्हें मिलेगा ?—

मोर वनवासत बापक दिया दुख। इनो राज्य भार कत वर हुइवे सुख।
१७०४

सीता से बात करते समय उन्होंने कैकेयी को काला-सर्प कहा।[4] कवन्ध द्वारा

---

१. मांगल्य दियोक माव स्त्रीर आचार।
विघिनि बिनाश हौक सीतार आभार॥ १५५५।

२. नुगुछाइल मुखश्रीक हुया राज्यहीन। रात्रि येन चन्द्रकान्ति नकरे मलिन॥
—१७१०।

३. कैकेयीक देखिवा भगिनी सम हित। प्रवले सहिते द्वन्द्व-नुहिके उचित। १७९१।
दर्प मान एरि तान चित्तक तुपिवा। तेवे अनुरूपे तोमाक भरते पुपिवा॥
—१८४४।

४. पापक सञ्चिले, शरीर दंशिले, कैकेयीये कालसर्प। १८२०

बन्दी बनाये जाने पर भी उन्होंने कैकेयी के प्रति क्षोभ-प्रकाशन किया था—

राघवे बोलन्त सिद्ध कैकेयीर काय । पापिष्ठीर काये प्राण याइब बन माज ॥
३३६०

०वे शीलस्नेह-सम्पन्न भी हैं। लक्ष्मण ने राम से कहा था कि राज्य पर अधिकार कर लो। उन्होंने अनेक तर्क देकर तथा राम की पौरुषरहित वृत्ति पर क्षुब्ध होकर उन्हें उकसाना चाहा था। राम ने अपने इस छोटे भाई के प्रीति-निहित कटु शब्दों के मर्म को समझ कर लक्ष्मण को डाँटा नहीं था, अपितु हाथ पकड़कर उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया था। वे असार संसार के क्षणिक जीवन के लिए अपने गोत्र का नाश नहीं चाहते थे।[1] कौशल्या ने दशरथ को दोष दिया। राम ने पिता की निर्दोषिता समझी थी, तभी उन्होंने कहा—राजा ने कैकेयी को पहले ही वर दिये थे, इसमें पिता का दोष मैं नहीं देखता। छं० १७९३।

भाइयों के प्रति उनके मन में अगाध प्रेम था—'भाइ मोर सुबोध भरत शत्रुघन।'[2] रावण-विजय के पश्चात् भरत से शीघ्र मिलने की चिन्ता में ही उन्होंने विभीषण के प्रस्ताव को आदर-सहित अस्वीकार किया था। अयोध्या लौटने पर उन्होंने पहले भरत को स्नान कराया था।[3]

लक्ष्मण के आहत होने पर राम अत्यधिक व्याकुल हो उठे थे—मैं लक्ष्मण ऐसा भाई कहाँ पाऊँगा। मेरा वज्र ऐसा हृदय फट क्यों नहीं जाता। सीता के शोक में ही मेरे प्राण क्यों न निकल गये। लक्ष्मण का शोक उस शोक से सौगुना अधिक हो गया है। लक्ष्मण के बिना मेरा जीवन निष्फल है। पृथ्वी फट जाए तो मैं समा जाऊँ। लक्ष्मण के शोक से मेरी बुद्धि आकुल है। मैं अपने सभी अस्त्र भूल गया हूँ और पागलों जैसा हो गया हूँ।[4]

अपने ऊपर विपत्ति आने पर उन्हें अपने साथियों की पहले याद आती थी। नागपाश-बद्ध होने से मृत्यु को निकट देख उन्हें एक ही कार्य की चिन्ता रह गयी

---

१. असमीया रामायण, १७४७।
२. वही, १८४३।
३. वही, ६६४१।
४. कोथा गेले पाइबोहो लक्ष्मण हेन भाइ। वज्रसार हिया किय फुटिया नयाय॥
—६१४८।
सीतार शोकत केन पराण नगैल। लक्ष्मणर शोक तातो शतगुण भैल॥ —६१५०।
लखाइ अविहने मोर जीवने निष्फल। पृथिवी फाटल देह याओं रसातल॥
—६१५२।
लक्ष्मणर शोके मोर बुद्धि भैला आउल। अस्त्र सब पास रहो भैलो येन वाउल॥
—६१५३।

थी—बेचारे विभीषण को राज्य न मिल सका 'विभीषण बापुराये नपाइलन्त राज।'[1] उपकारी गरुड़ को गले से लगाकर और उसका चुम्बन लेकर उसे पिता दशरथ अथवा पितामह अज के समान देखा था।[2]

सीता की अग्नि-परीक्षा के पूर्व उनकी विचित्र स्थिति थी। सीता को देख मन ही मन स्नेह उमड़ने लगा, क्षण में वे सकरुण हो जाते और क्षण में कठोर। सीता का दुःख देख उनकी आँखों में आँसू उमड़ आये, किन्तु फिर भी वे बरबस क्रोध कर रहे थे—

सीता क देखिया राम अन्तर्गते स्नेह। क्षणे सकरुण क्षणे निकरुण देह॥
दुःख देखि रामर चक्षुर परे पानी। क्रोध करि पुनः ताक धरे टानि टानि॥ ६४६६

उनकी उक्तियाँ वाल्मीकि जैसी ही हैं किन्तु उतनी कठोरता नहीं है। वे सीता को पर्दारहित होकर सेना के बीच से इसलिए आने का आदेश देते हैं कि पुत्र यदि माँ को देखे तो दोष ही क्या है।[3] वे वाल्मीकि के अनुसार कड़ी-कड़ी बातें कहते हुए भी यह स्वीकार करते जाते हैं—तुम्हें स्वीकार कर बहुत कुयश मिलेगा। जन-अपवाद के कारण तुम्हें स्वीकार न करूँगा।[4] सीता के चितारोहण के समय उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे थे। अग्नि से उन्होंने कहा था—सीता सती है, मैं भली प्रकार जानता हूँ किन्तु लोग निन्दा न करें कि इतने दिनों तक रावण के यहाँ रही, इसीलिए मैंने परीक्षा ली। छं० ६५०३-४।

शंकरदेव के राम—राम के इस अन्तिम स्वरूप का ही विकास शंकरदेव ने उत्तरकाण्ड में किया है। राम कुछ अधिक सुशील एवं सकरुण जान पड़ते हैं। उन्होंने लोक-अपवाद के कारण सीता को निर्वासित तो किया, किन्तु अपने इस कार्य को वे गर्भवती स्त्री का वध मान कर अत्यन्त दुःखित हुए। अश्वमेध-यज्ञ के समय सीता की स्वर्ण-मूर्ति देख कर उनकी आँखें अश्रुपूर्ण हो गयी थीं।[5]

दोनों पुत्रों को पा कर वे उन्हें कंठ से लगा कर दुःख भूलने का प्रयास करते थे। सभास्थल में वाल्मीकि की शपथ पर विश्वास करते हुए भी तथा सीता के चरित्र के प्रति आश्वस्त रहते हुए भी वे लोक-अपयश से फिर भी भीत जान पड़े। सीता ने सात्विक क्रोध-युक्त ज्वलन्त-दृष्टि से इन्हें देखा, तो इन्हें साहस नहीं हुआ कि सीता को देख पाते। सीता के पाताल प्रवेश करने पर राम ने पृथ्वी पर भीषण क्रोध किया। दोनों पुत्रों को गले से लगा कर उनकी रातें रोते-रोते बीत जाती थीं। बेचारे कर्त्तव्य-

---

१. असमीया रामायण, ५१५३।
२. वही, ५१७९।
३. वही, ६४५८।
४. तोमाक आनिले वर कुयश लभिबों। जन अपवाद हेतु तोमाक नेनिबों॥ ६४८०
५. असमीया रामायण, ६७६०।

शील राम कर्त्तव्य की वेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर घर में ऐसे रहते थे जैसे वनवास कर रहे हों—भैल येन गृहे वनबास ।[1] राम को लक्ष्मण-त्याग का एक और कष्ट भोगना पड़ा था। लक्ष्मण को गले से लगाकर वे मूर्च्छित हो गये थे।

वँगला रामायण के राम—वँगला-रामायण में माल्यवान ने रावण से कहा था—तुम इतने दिन से राम के विक्रम के विपय में सुन रहे हो। वे सुजन के बन्धु हैं एवं दुर्जन के यम हैं। —पृ० २६६।

वँगला रामायणकार ने राम को मानव दिखाते हुए भी ब्रह्म भी दिखाया है। राम अत्यधिक उदार ब्रह्म हैं। प्रारम्भ में ही कहा गया है कि विष्णु अपने चार अंशों में प्रकट होंगे। रामायण के भरद्वाज आदि पात्र भी जानते हैं कि राम ब्रह्म हैं। राम ने अपनी शक्ति से मूर्च्छित लक्ष्मण को जिला दिया था। भक्त राक्षसों के प्रति वे अत्यधिक उदार देखे गये, उनकी स्तुति सुन कर वार-वार धनुष-वाण फेंक देते हैं और युद्ध से विरत होना चाहते हैं। तुलसीदास के राम को तो याद रहता है कि वे ब्रह्म हैं, किन्तु वँगला लेखक के राम अपने को भूले रहते हैं कि ब्रह्म हैं, अतएव जहाँ कहीं भी चरित्र का आवेशमय वर्णन होता है, वहाँ उनके हृदय की सत्य स्थिति ही प्रकट होती है, नरलीला का प्रदर्शन नहीं होता।

०उनके ब्रह्मत्व के साथ ही सहज मानवीय रूप का भी वर्णन है। दशरथ ने राम को अभिषेक का निश्चय सुनाकर भरत के प्रति शंका प्रकट की थी, उस समय राम ने मौन धारण कर उनकी शंका का प्रतिवाद नहीं किया था।[2] अभिषेक के समाचार से प्रसन्न होकर उन्होंने लक्ष्मण को गले से लगा लिया था। सुमंत्र राम को लेने आया, तव उन्होंने सीता से कहा था—जान पड़ता है विमाता ने कोई षड्यंत्र किया है।[3] वनवास की आज्ञा से उन्हें दुःख और क्षोभ हुआ था, जो कि कौशल्या के प्रति उनके इन शब्दों से प्रकट होता है—माता, किसलिए हर्षित हो रही हो। हाथ में आयी हुई निधि दैवदोष से चली गयी। आज तुम, मैं, सीता और लक्ष्मण चारों शोकसिन्धु में निमज्जित होंगे। माता, यदि तुमने भी पिता की सेवा की होती तो तुम्हारे ऊपर यह कष्ट क्यों आता ?[4]

सीता-हरण होने पर वे क्रोधपूर्वक पर्वत को काटकर खण्ड-खण्ड कर देने के लिए प्रस्तुत हो गये थे—'पर्व्वत काटिया आजि करि खान खान।' सुग्रीव के द्वारा वस्त्रादि प्राप्त कर वे इतने अधिक शोक-अभिभूत हो गये कि धरती पर लोट-पोट होकर रोये।

---

१. असमीया रामायण, ७१५१।
२. वँगला रामायण, ६३।
३. वही, १०१।
४. वही, १०३।

उनकी रुदनशीलता तो अन्य कई अवसरों पर भी दिखायी पड़ती है। दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर वे धरती पर लोट कर रोये थे। युद्धक्षेत्र में अम्बिका द्वारा रावण की रक्षा करने पर भी रोये। देवी ने कमल चुराये तब रोये और तो और वालि को मारकर भी वे रोये थे।

उनके मनोवेग वास्तविक हैं, उन पर ब्रह्मत्व का आरोप नहीं है। मारीच के धूर्त्त-आह्वान से वे चिंतित हो उठे थे और बिल्कुल एकांत में उन्होंने व्याकुल होकर देवताओं से विनय की थी—आज के दिन मेरी सीता की रक्षा करो।[1] कुटी में सीता को न देखकर वे मूर्च्छित होकर गिर गये थे। वे पथिकों से उन्माद-ग्रस्त विरहियों की तरह सीता के विषय में पूछते थे। वे गोदावरी के जल में प्राण देने को प्रस्तुत हो गये थे—'गोदावरी सलिलेते त्यजिव जीवन।' —पृष्ठ १६०।

विपत्ति पड़ने पर उन्होंने कैकेयी को कोसा है। सीता-हरण के अवसर पर उन्होंने कहा—कैकेयी का मनोभीष्ट अब सिद्ध हो गया। नागपाश से पीड़ित होकर उन्होंने अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य की चिन्ता करते हुए कैकेयी के लिए संदेश भेजना चाहा था—माता तुम्हारी साध पूरी हो गयी। माया-सीता के वध पर वे बोले थे—विमाता ने वैरी बनकर मुझे वन में भेजा। मैंने अपने प्राणों की जानकी आज खो दी।

विमाता हइया वैरी पाठाइला बने। हारालाम प्राणेर जानकी एत दिने॥ ३७०

लक्ष्मण-शक्ति के समय भी उन्होंने क्षुब्ध होकर अपना मन्तव्य व्यक्त किया था—पिता ने मुझे छत्रदण्ड प्रदान की आज्ञा दी थी, सौतेली माता कैकेयी ने षड्यंत्र किया। पृष्ठ ३८४।

०बँगला रामायण के राम स्नेहशील-सम्पन्न कर्तव्य-परायण भी हैं। उन्होंने उग्र परशुराम के प्रति प्रथमतः विनय-युक्त वचन ही कहे थे। सुमंत्र ने दशरथ से कहा था—तुम्हें राम ने प्रणाम कहलाया है। राम का जैसा शील है वैसे ही उनके वचन हैं—'रामेर येमन शील तेमन वचन।' पृष्ठ ११५।

उन्होंने भरत पर सन्देह नहीं किया था। उन्होंने कौशल्या से कहा था—माता भाई भरत के शरीर में कोई दोष नहीं है—'कोन दोष नाइ माता ताहार शरीरे।' पृष्ठ १०२। चित्रकूट में क्रुद्ध लक्ष्मण को भी उन्होंने समझाकर कहा था, भाई भरत यह सब नहीं जानते। विभीषण से उन्होंने कहा—भरत भाई ने राजकुल में जन्म लेकर सुख भोगे, किन्तु वे मेरे दुःख से दुःखी हैं। ऐसे भरत को आलिंगन करने के बाद ही पवित्र वस्त्र और चन्दन आदि सुगन्धियों को धारण करूँगा।[2]

---

१. बलेन श्रीराम, शुन सकल देवता। आजिकार दिन मोर रक्षा कर सीता —१५७

२. राजकुले जन्मिया भरत भाइ सुखी। केवल आमार दुःखे हये आछे दुःखी॥
हेन भरतेरे यदि करि आलिंगन। तबे से परिब वस्त्र सुगन्धि चन्दन॥ ४४५।

कैकेयी को उन्होंने तभी कोसा है जबकि वे अत्यधिक विषादमयी स्थिति में हैं, अन्यथा उन्होंने सदैव उसका सम्मान किया और उसके दोष को दूर करने की चेष्टा की। उसके मुख से वनवास की आज्ञा सुनकर राम ने हँसकर कहा—माता, तुम्हारी आज्ञा से मैं अभी वन जाता हूँ।[1] लक्ष्मण से उन्होंने कहा था—सब विधाता का खेल है किसी को दोष नहीं देना चाहिए।

भरत से भी उन्होंने कहा था—माता का मिथ्या अनुयोग (शिकायत) क्यों करते हो, मैं तो पिता की आज्ञा से वन में आया हूँ—

मिथ्या अनुयोग केन कर बिमातार। बने आइलाम आमि आज्ञाय पितार॥ १२६

राम अपने पिता की निंदा नहीं सुनते थे, जहाँ उनकी निंदा होती वे वहाँ से उठ कर चल दिया करते थे—

येखाने शुनेन राम पितार निन्दन। करेन सेस्थान हते त्वरित गमन॥ ११२

रथ के पीछे दौड़कर आते पिता की दुर्गति वे नहीं देख सके थे और उन्होंने सुमंत्र से रथ जोर से हाँकने के लिए कहा था। पृ० १११

लक्ष्मण के प्रति उनका उत्कट भ्रातृ-प्रेम उस समय प्रकट होता है जब रावण ने लक्ष्मण के ऊपर शक्ति फेंकी। राम ने अश्रु-प्लावित नयनों से शक्ति के प्रति गिड़-गिड़ा कर प्रार्थना की थी—तुम रावण के पास लौट जाओ, मैं तुमसे अपने भाई का प्राण-दान माँगता हूँ। पृ० ३८२।

सुमित्रा माता के अंचल की निधि लक्ष्मण को खोकर वे अयोध्या जाने को तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा था—मुझे राज्य, धन नहीं चाहिए, सीता भी नहीं चाहिए। मैं तुम्हारे शोक में सागर में डूबकर प्राण दे दूँगा। पृष्ठ ३८४।

अपने सम्पर्क में आये हुए विभीषणादि सभी का उन्होंने ध्यान रखा था। हनु-मान को तो उन्होंने अपने चारों भाइयों में बड़ा माना था—'चारि भाइ हैते मम हनु-मान बड़।'

सीता को तो उन्होंने इतना अधिक प्यार किया था कि वन में चलते समय पल-पल में उनकी ओर देखते जाते थे—

कानने चलिये येत जानकी आमार। फिरे चेये देखिताभ तिले शतबार॥ ३७१

०रावण को प्रथम युद्ध में घायल कर उसे छोड़ कर राम ने सच्ची वीरता का परिचय दिया था—एक दिनेर रणे आमि वैरी नहि मारि। पृष्ठ ३०४।

०सीता की चरित्र-परीक्षा का धर्मसंकट इन राम के सामने भी था। राम वाल्मीकि के राम के समान कठोर प्रतीत नहीं हुए। उन्होंने सीता को पर्दा छोड़ कर सभी लोगों के बीच आने की इसलिए आज्ञा दी कि राजा की गृहिणी प्रजा की जननी

---

१. शुनिया कहेन राम सहास्य वदने। तोमार आज्ञाय माता एइ याइ वने॥ १०२।

होती है। यदि पुत्र माँ को देखे तो इसमें क्या हानि है। किंतु साथ ही कठोर होकर वे यह भी कह देते हैं कि जिसका उद्धार किया गया, उसे सभी देखें। जो सती होगी वह स्वयं अपनी रक्षा कर लेगी।[1] सीता के प्रति कटु-वचन बोलते समय उनके नेत्रों से आँसू झर रहे थे। वे वाल्मीकि एवं असमीया-लेखक के राम की तुलना में अधिक भावप्रवण हो उठे हैं।

अयोध्या में भद्र नामक चर से सीता का कलंक सुनकर उनकी आँखों में आँसू भर आये थे। धोबी की बात अपने कान से सुनकर उन्हें दुःख हुआ था। रावण के चित्र पर सीता को सोया हुआ देख उनके मन में संदेह अंकुरित हुआ था। वे लोक-उपहास सहने का साहस नहीं कर सके थे, इसीलिए उन्होंने सीता को निर्वासित किया। सीता पुनः अयोध्या आयीं, तब सबके समझाने पर भी वे सीता की परीक्षा के लिए दृढ़ रहे, उन्होंने किसी की एक न सुनी—'राजा होकर यदि कोई न्याय नहीं करता तो स्त्री के अनाचार से संसार नष्ट हो जाएगा'—

राजा हये स्त्रीर यदि ना करे बिचार। स्त्रीर अनाचारे नष्ट हइबे संसार॥ ५७१

सीता के पाताल-प्रवेश पर उनका विशाद चरम-सीमा पर पहुँच गया था। वे अपने रोते हुए शिशुओं को देख न सके थे। सीता के विषय में उन्होंने कहा था—

सीता समान नारी ना हेरि नयने। कि करिब राजा हैया सीता विहने॥ ५७४

(सीता के समान नारी मुझे नहीं दिखायी पड़ती। सीता के बिना राज्य ले कर मैं क्या करूँगा।)

दोष :

०क—बँगला के राम में गुरु विश्वामित्र के प्रति वह विनयशीलता नहीं दिखायी पड़ती जो कि मानस के राम में है। वे विश्वामित्र के भीरु स्वभाव का उपहास करते प्रतीत होते हैं। स्वयंवर-सभा में भी अत्यंत आत्मविश्वास के साथ हँसते हुए धनुष उठाते हैं। सीता से विवाह की प्रथा आदि के सम्बन्ध में वे विश्वामित्र की उपेक्षा-सी करते हैं और उन्हें घटक ब्राह्मण बना कर अयोध्या भेजा जाता है।[2]

०ख—राम के पास विधवा मंदोदरी आयी और उसे उन्होंने सीता समझ कर आजन्म सौभाग्यवती रहने का वर दे दिया। इसमें राम अपनी ही पत्नी को वर देते हैं। राम क्या इतने अज्ञ थे कि स्व और पर पत्नी में भेद न समझ सके। अच्छा, ऐसा समझे ही थे तो वे सीता के प्रति उदार प्रतीत होते हैं, जबकि सीता की उपस्थिति पर वे कठोर हुए। उनके चरित्र में यह असंगति है। लगता है पूर्व प्रचलित-आख्यान

---

१. उद्धारिला याहारे देखुक सर्व्वलोके।
सती ये हइवे से राखिवे आपनाके॥ ४३९।

२. बँगला-रामायण, देखिए, पृ० ७३, ७९, ८०।

को जोड़ने के लिए ही राम के साथ यह घटना दिखायी गयी है। पृष्ठ ४३४

उड़िया-रामायण के राम :

०राम के गुणों के विषय में वसिष्ठ ने कहा था—राम श्रीमंत पुरुष, धार्मिक, विद्वान् और सकल गुणों में निपुण हैं—

श्रीमन्त पुरुष सेहु धार्म्मिक विद्वान् । सकल गुणरे राम अटइ निपुण । २-१९

राम को भेजकर लौटे हुए सुमंत्र को जब अयोध्यावासियों ने धिक्कारा कि क्या तुम भरत की सेवा करने और कैकेयी के चंदन लगाने के लिए लौटे हो, तब उन्होंने कहा था—राम समुद्र से गम्भीर हैं, उन्हें सत्य से कोई विरत नहीं कर सकता।

०उड़िया के राम भी ब्रह्म हैं और वे अपने ब्रह्मत्व से सुपरिचित हैं। वे सीता से स्वयं कहते हैं कि असुरों को मारने के लिए उन्होंने अवतार लिया है—'असुर मारिबाकु अछइ अवतरि।'[1] मेघनाथ द्वारा फेंके गये ब्रह्म-बाण की स्तुति करते समय भी उन्होंने कहा—'मुहिँ नारायण प्रभु मानवावतार।'[2] सीता और शबरी को भी ज्ञात था कि राम वासुदेव और परब्रह्म हैं, ऐसा उन्होंने राम से कहा भी।[3]

राम अपने ब्रह्मत्व से परिचित हो कर भी सत्य-सत्य ही अपरिचित हो कर व्यवहार करते हैं। यहाँ समानता बँगला-रामायण के राम से है, मानस के राम से नहीं। उड़िया रामायण के राम शिकार करते समय मार्ग भूल गये।[4] रावण पर विजय प्राप्त कर उन्होंने ब्रह्मा से जानना चाहा कि वे कौन हैं?[5]

राम के मानवत्व और ब्रह्मत्व दोनों रूपों को विकसित किया गया है। दोनों में संगति बिठालने के लिए लेखक ने कल्पना की है कि शाप के अनुसार 'अज्ञान' राम के शरीर पर छाया है, जिसके कारण राम अपने को जान नहीं पाते।

इष्टदेवता की भक्त-वत्सलता एवं उदारता दिखाने के लिए राम के मन की मृदुलता एवं दूर्व्वादलश्याम-सौंदर्य की मधुरता का भी वर्णन हुआ है।[6] भक्तों के प्रति अश्रु-विगलित भावुकता का चित्रण भी राम के स्वभाव में हुआ है। युद्ध-क्षेत्र में वीर-

---

१. उड़िया-रामायण, ३-१०।
२. वही, ६-१२६।
३. मो प्रभु तुम्भे त अट स्वयं वासुदेव···(सीता)···उड़िया-रामायण, ३-२७।
तुहि राम परब्रह्म शंख चक्रधारी···(शबरी)···वही, ३-५२।
४ उड़िया-रामायण, २-२।
५. वही, ६-३१३।
६. परम दयालु राम करुणावारिधि। परमानंद पुरुष सर्व गुणे सिद्धि॥
दूर्वादल श्यामल ये मधुर मुरति। उड़िया-रामायण ६-२१६।

बाहु की भक्ति देखकर उसे बाण से बींधने के लिए उनका हाथ नहीं चलता।[1] उससे बोले—तू भाई लक्ष्मण से भी बढ़कर है—'भाई लक्ष्मण हुँ ये अधिक अटु तुहि।'[2]

०वीर-क्षत्रिय राम ब्राह्मण-भक्त, समदर्शी एवं सुशील हैं।

(१) धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का विश्वामित्र का आदेश सुनकर वे लजा गये थे, कौशिक के चरणों में प्रणाम कर और भाई लक्ष्मण की भुजा पकड़कर वे आगे बढ़े थे—

विश्वामित्रङ्क मुखरु एसनक शुणि। लाज लजि होइण उठिले रघुमणि॥
कउशिक पादरे से करि नमस्कार। लक्ष्मणर भुज धरि हेले आगुसार॥ १-१४६

सप्तवृक्ष-वेध के पूर्व भी उन्होंने अपने गुरु कौशिक को मन-ही-मन स्मरण किया था।[3] खर को मारकर उन्होंने सीता से कहा था—तुम मुझे युद्ध करने से रोकती थीं। विश्वामित्र की शिक्षा, परशुराम के धनुष और अगस्त्य के अस्त्रादि के बल पर मैं त्रिलोक में किसी से नहीं डरता।[4] परशुराम को ब्राह्मण होने के नाते उन्होंने कुछ नहीं कहना चाहा था, किन्तु वृद्ध-वयस में ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियों की तरह गर्व प्रकट करता हुआ देखकर तथा अपने गुरु-जनों का अपमान देखकर ही राम को सात्त्विक क्रोध प्रकट कर कहना पड़ा—'चरणों में पड़े हुए मेरे वृद्ध पिता पर तुम्हें दया नहीं आती! ब्रह्मा के समान वसिष्ठ और विश्वामित्र के वचन तुम नहीं सुन रहे हो?'[5]

(२) वन में अयोध्या की चिन्ता करने पर लक्ष्मण ने राम से कहा—'अयोध्या में आग लग जाए, सभी मर जाएँ, तुम क्यों चिन्ता करते हो?' तब राम बोले, 'ऐसा मत कहो। सुमित्रा, कैकेयी सभी मुझे एक सी हैं। मुझे भरत और शत्रुघ्न तुमसे भी अधिक प्रिय हैं।'[6] युद्ध-समाप्ति पर भी उन्होंने कैकेयी के प्रति सद्भाव प्रकट किया। भरत के प्रति उनका इतना असीम स्नेह था कि चित्रकूट में लक्ष्मण के शंका करने पर उन्होंने फटकार कर कहा था—'मैं और भरत एक प्राण हैं, वह मुझे क्यों मारने आएँगे। भरत मेरे साथ रहेंगे, तुम लौट जाओ। तुम अनीति क्यों कहते हो।'[7] वैसे राम लक्ष्मण को भी बहुत अधिक प्रेम करते थे। एक बार शक्ति से मूर्च्छित

---

१. शरकि विन्धिवि मोर हस्त न चलइ। भकत शिरोमणि रे रावण तनयि॥
६-२२७।

२. उड़िया रामायण, ६।२२७।

३. वही, ४।२८।

४. वही, ३।२७।

५. वही, १।२१५।

६. वही, २।५३।

७. वही, २।८२।

लक्ष्मण दुबारा युद्ध के लिए चले तो राम ने अत्यधिक मोहग्रस्त और शंकित होकर कहा था—तेरे साथ रहने के कारण मैं सीता को भूल गया हूँ। तेरे जीवित रहने में ही मैं सर्वसम्पत्ति मानता हूँ—

सीता मुरुछिलि मुँ तोहर सङ्गे थान्ते। सबु सम्पद मोहर तोहर जीवन्ते॥ ६-७५।

मेघनाद से युद्ध के लिए जाते हुए लक्ष्मण का हाथ उन्होंने विभीषण को सौंपा था, अपने हाथ से उनके धनुष पर डोर बाँधकर कन्धे पर तूणीर कसा था।[1] और युद्ध से लौटने पर गोद में लेकर उनके घावों से वाण निकाल दिये थे।[2] दुर्वासा की उपस्थिति के कारण लक्ष्मण ने नियमभंग किया। राम के सामने धर्मसंकट था, उन्होंने लक्ष्मण को निर्वासित किया। उनके जाने पर राम रो पड़े थे।

अपने सम्पर्क में आये हुए प्रत्येक व्यक्ति का उन्होंने ध्यान रखा। अनेक पशु-पक्षियों के प्रति उन्होंने उदारता दिखायी। जटायु को उन्होंने पिता के समान माना। लक्ष्मण ग्वालों को मारकर उनकी गायें छीनना चाहते थे। निर्दोषों को मारने के लिये राम प्रस्तुत नहीं हुए। उन्होंने बड़ी ही मार्मिक बात कही—सीता के हरणकर्त्ता को मार न सका, निर्दोष-जनों को कैसे मारूँ ?[3] हनुमान के औषध लाने पर उन्होंने हनुमान के प्रति तथा अन्य जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की।[4] हो सकता है कि सुग्रीव वालि की अंकशायिनी-पत्नी रोमा को स्वीकार नहीं करता। राम ने उससे अनुरोध किया कि रोमा शुद्ध है उसका कोई अपराध नहीं। वालि ने उसका बलात् हरण किया था। पृष्ठ ४।४१।

०सीता के प्रति राम का व्यवहार—(१) साधारण **प्रेमी-पति**[5]—पुष्प-शय्या के दिन सखियों से हँस-हँस कर बातें करते हैं और जैसे ही बहाना कर सखियाँ चली जाती हैं वे, झट किवाड़ बन्द कर लेते हैं। वे सीता को गोद में बिठा कर अत्यधिक आतुर प्रेमी की काम-चेष्टाओं को प्रकट करने वाला प्रेमालाप करते हैं। वे सीता से भी उसी प्रकार की चेष्टाओं के करने का सहयोग चाहते हैं।[6]

वे प्रेमाकुल पति हैं किन्तु वे एकनारी-व्रत का पालन करते हैं एवं अन्य युवतियों को कौशल्या अथवा सहोदरा के समान समझते हैं—

एक नारीव्रत मुहिं करिछि नियम। पर युवती मोते ये कउशल्या सम॥ ६-३६७
अन्य युबती ये मोते सहोदरा समान। १-२०४

---

१. उड़िया रामायण, ६।१६१।
२. वही, ६।१७१।
३. वही, ३।५७।
४. वही, ६।२००।
५. वही, १।२०२, २०३।
६. वही, १।२०२, २०३।

वे जनकपुर में सखियों के साथ परिहास का आनन्द लेते हैं किन्तु जब वे मर्यादा छोड़कर काम-विह्वल चेष्टाएँ करती हैं, तो राम कुपित होते हैं।[1]

(२) क्रोधी पति—वाल्मीकि के राम की तरह युद्ध में विजय के उपरान्त सीता-ग्रहण के समय कटूक्तियाँ करते हैं और सीता के अग्नि-प्रवेश के समय वे विलाप करते हुए कहते हैं—मैंने ऐसी मूर्खता क्यों की, अब तेरी जैसी सुन्दरी कहाँ पाऊँगा।[2]

(३) लोकापवाद-भीत पति—लोकापवाद के भय से उन्होंने सीता को निर्वासित किया और इसीलिए पुनः परीक्षा लेने का आग्रह किया।[3]

(४) उग्र-प्रेम—सीता के पाताल-प्रवेश पर मुँह में वस्त्र देकर रोये और मूर्च्छित हो गये। पृथ्वी से क्रुद्ध होकर बोले—मेरी सीता ला कर दो नहीं तो बाण से नष्ट कर दूँगा।[4]

०नीतिकुशलता—विभीषण के आने पर राम ने पहले लक्ष्मण को भेजा कि भीतर-बाहर की तथा हानि-लाभ की बात जानकर उसे यहाँ लाना।[5] विभीषण के सामने धनुष छूकर प्रतिज्ञा की और उसके माथे पर पगड़ी बाँधकर कहा, तुम आज से लंका-नाथ हुए।[6] यह सब इसलिए किया कि वह ढीला न पड़े। समुद्र पर जो पुल बनवाया था, उसकी रक्षा के लिए थाने (ठणा) बनवाये, जिस से रावण उसे नष्ट न कर दे।[7]

दोष—[क] क्रोधी—गुरुजनों की उपस्थिति में अश्लील गीत गाने के कारण मंथरा को पीटते हैं।[8] ख—सस्ती भाषा बोलते हैं—सुग्रीव से भेंट होने पर वे पूछते हैं—तुम तो बंदर हो, ये मुकुट-कुण्डल कहाँ से पा गये? क्या किसी ने दिये हैं या चुरा लाये हो?[9] ग—विभीषण के साथ सिंहासन पर बैठने के लिए प्रस्तुत मंदोदरी को देखकर राम कहते हैं—तोहर पणंतरे दिशइ मोर सीता[10]—तेरी साड़ी के अंचल में मुझे सीता दिखायी देती है—एक पत्नी-व्रत धारी राम के मुख से ये शब्द उचित नहीं लगते। वे मंदोदरी के प्रणाम करने पर उसे हाथ पकड़कर उठाते हैं और इस प्रकार

---

१. उड़िया-रामायण, १।२१०।
२. वही, ७।१८०।
३. वही, ७।१८०।
४. वही, ७।१८२।
५. वही, ५।९५।
६. वही, ५।१०१, १०२।
७. वही, ५।११७।
८. वही, १-२०८।
९. वही, ४-७।
१०. वही, ६-३०३।

उसे पवित्र करते हैं।[1] सम्भवतः उनके स्पर्श की पवित्रता दर्शित करना ही लेखक को अभीष्ट होगा, फिर भी इसमें उपर्युक्त अनौचित्य ही है।

०**मानस के राम**—तुलसीदास के राम को समझने के लिए इन दृष्टिकोणों को समझ लेना आवश्यक है—[१] वे परब्रह्म हैं और उन्हें अपने ब्रह्मत्व का ज्ञान है, इसीलिए उनमें अद्भुत-संयम एवं संयम के साथ ही निर्वेद-भाव है। [२] वे युग और समाज की प्रत्येक परिस्थिति के लिए आदर्श हैं, अतएव उनमें शील-गुण-युक्त कर्तव्यपरायणता है। [३] 'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि'[2] के अनुसार वे कोमल होते हुए भी आततायी-शक्ति के लिए तथा कर्तव्य-पालन के लिए वज्र-कठिन भी हैं।

०**ब्रह्मत्व**—तुलसी के राम ब्रह्म हैं और उन्हें अपने ब्रह्मत्व का सदैव ज्ञान रहता है। इससे उनके चरित्र-चित्रण में मानव-सुलभ भावावेश के स्थान पर निर्वेद-भाव मिलता है। जब देवताओं ने सरस्वती के पास जाकर दुःख निवेदन किया, उस समय उन्होंने राम को विस्मय और हर्ष से रहित बताया है।[3] अयोध्याकाण्ड के मंगलाचरण में भी राम के निर्वेद-रूप की वंदना की गयी है।[4] तत्कालीन परिस्थितियों में आक्रांत जनता को गोस्वामी तुलसीदास के राम का पूर्ण समर्थ साकार ब्रह्म-रूप अवश्य ही आश्वस्त करने वाला सिद्ध हुआ। मानस के वसिष्ठ, कौशल्या आदि पात्र राम के ब्रह्मत्व से परिचित हैं। स्वयं राम ही अपने को ब्रह्म बताकर लक्ष्मण, शबरी, नारद आदि को अपनी भक्ति आदि के सम्बन्ध में विस्तृत-रूप से बताते चलते हैं।[5] राम के ब्रह्मत्व और निर्वेदभाव पर अध्यात्म-रामायण का प्रभाव है। अध्यात्म-रामायण के राम के संयम का भी तुलसी पर प्रभाव है, किन्तु तुलसी के राम अपने प्रेरणा-ग्रंथ के राम से भी अधिक सुशील हैं।

कृषि-प्रधान-संस्कृति की एक बड़ी देन है संयुक्त-परिवार। राम संयुक्त-परिवार के लिए चिरंतन आदर्श हैं। राम का शील एवं परिवार-प्रेम सभी व्यक्तियों को स्नेह के एक सूत्र में ग्रथित किये रहता है।

०उनमें **सरलता** तो इतनी अधिक है कि वे शत्रुओं को भी प्रिय हैं। दशरथ ने कैकेयी से कहा भी था—'जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥'[6] इसी प्रकार भरत के शब्दों में 'अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।'[7] राम

---

१. उड़िया रामायण, ६-३०४।
२. मानस, ७-१९ [ग]
३. बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ॥ २-११-३।
४. प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः॥ अयो० प्रारम्भ
५. पंथ कहत निज भगति अनूपा॥ मानस—३।११।५।
६. मानस, २।३१।८।
७. वही, २।१८२।६।

इतने सरल हैं कि जब उनका पुनीत मन जनकतनया की अलौकिक शोभा देखकर क्षोभ-मय हुआ तो उन्होंने अपने इस भाव का उद्‌घाटन केवल अपने अनुज के समक्ष ही नहीं किया, अपितु गुरु विश्वामित्र के प्रति भी कर दिया—

राम कहा सबु कौसिक पाहीं । सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं । १-२३६-२

०राम निश्छल सरल थे किंतु उनमें सात्विक-अभिमान का अभाव न था। जहाँ वे अपने पुनीत मन के क्षोभ-ग्रस्त होने का वर्णन करते हैं, वहीं रघुवंशियों के स्वभाव का वर्णन कर अपने ही गुणों का परिचय देते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इन गुणों पर अभिमान है।

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पगु धरइ न काऊ ।।
मोहि अतिसय प्रतीत मन केरी। जेहि सपनेहुँ पर नारि न हेरी ।।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहि परतिय मनु डीठी ।।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं ।।[1]

परशुराम के आगे सतत नम्र रहकर भी जब राम बार-बार उनके द्वारा भर्त्सित होने लगे, उस समय भी राम ने अति नम्र शब्दों में अपना सात्विक-अभिमान प्रकट कर ही दिया—

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना ।।
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुवंसी ।।[2]

वलिष्ठ-रूप और मस्त-गति का वर्णन तुलसीदास ने इन शब्दों में किया है—'केहरि कंधर बाहु बिसाला।'[3] 'वृषभ कंध केहरि ठवनि।'[4] धनुर्भंग के समय जाते हुए राम—'सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु वर कुंजर गामी।'[5] युद्धक्षेत्र में वे विचलित न होते थे, कभी साहस नहीं खोते थे—

देखि राम रिपु दल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा ।। ३।१७।१२

वे क्रूर वीर नहीं थे। वे होमर के एकीलीज की भाँति नहीं थे जो कि अपने विपक्षी वीर हेक्टर को मारकर उसके शव की एड़ियों को रथ में बाँधकर घसीटता फिरे। राम की सदयता में वीर-भाव है और उनकी वीरता में है सदयता। राक्षसों द्वारा खाये हुए ऋषियों की हड्डियों का ढेर अपने सामने देखकर राम के नेत्रों में जल भर आया था, उन्होंने उस समय बाँह उठाकर दीप्त स्वर में प्रतिज्ञा की थी—

---

१. मानस, १।२३०।७, ८।
२. वही, १।२८३।३, ४।
३. वही, १।२१८।५।
४. वही, १।२४३।
५. वही, १।२५४।५।

पृथ्वी से राक्षसों का विनाश करूँगा।

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥
निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाय प्रन कीन्ह।[1]

आहत वालि के आगे वे धनुष पर वाण चढ़ाये उसे फटकारते हैं, किंतु उसके विनय करने पर पिघल जाते हैं और उसे तन धारण करने के लिए कहते हैं।

वीर-नायक विषयक राम की जो कल्पना है वह विभीषण से वार्त्तालाप के समय प्रकट हो जाती है। विभीषण ने चिंता प्रकट की—'नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि विधि जितब वीर बलवाना।'[2] उस समय राम ने अपने धर्म-मय रथ का वर्णन करते हुए कहा—शौर्य और धैर्य रूपी पहिये; सत्य-शील की ध्वजापताका; बल-विवेक, दम्भ और परोपकार के घोड़े; क्षमा कृपा और समता की डोरों; ईश्वर-भजन रूपी सारथी; वैराग्य की ढाल; संतोष की कृपाण; दान का परशु; बुद्धि-रूपी प्रचण्ड शक्ति; श्रेष्ठ ज्ञान का कठोर धनुष; स्वच्छ अचल-मन का तूणीर; शम-दम-नियम के वाण और विप्र एवं गुरु के चरणों की पूजा-रूपी कवच वाला धर्मरथ जिसके पास है, उसे कौन जीत सकता है?

०**पारिवारिक प्रेम** के उदाहरण प्रारम्भ से ही मिलने लग जाते हैं। वे प्रातःकाल उठकर पिता-माता और गुरु को प्रणाम कर उनकी आज्ञा माँगकर ही सारे कार्य करते दिखायी पड़ते हैं। परिजनों के प्रति उनके प्रेम में भी शील-भाव गुँथा हुआ है। कैकेयी को स्वयं विश्वास था कि राम सभी माताओं को कौशल्या के समान मानते थे। बुद्धि-भ्रष्ट कैकेयी से जब उन्हें अपने दुर्भाग्य के विषय में ज्ञात हुआ तो अपने शील-गुण के कारण ऐसा भाव प्रकट करते हैं कि जैसे कुछ हुआ ही न हो। बेचारे वृद्ध पिता तथा महत्त्वाकांक्षिणी सौतेली माता भी किसी प्रकार की मानसिक हिचक का अनुभव न करे, अतएव उन्होंने इस महान् अभिशाप को ऐसे स्वीकार करने की चेष्टा की मानो यह उनके लिए बहुत बड़ा वरदान हो।

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महं पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥ २।४१

वे वाल्मीकि को समस्त कथा सुनाकर कैकेयी को दोष नहीं देते।[3] चित्रकूट में जब कैकेयी भी आयी तो राम उसके मन की दशा समझ रहे थे। राम ऐसा ही शीलमय व्यक्ति अपनी सुशीलता से उसकी ग्लानि दूर कर सकता था। वे सर्वप्रथम कैकेयी से जाकर ही मिले, इसलिए नहीं कि वे व्यंग्य करना चाहते थे। उन्होंने सहज-

---

१. मानस, ३।८।६, ८ एवं ३।९।
२. वही ६।७९।३।
३. तात वचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राव। मानस, २।१२५।

सरल स्वभाव से उसके चरणों पर गिरकर उसे समझाया और सारा दोष भाग्य के मत्थे मढ़कर उसे निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की। चित्रकूट से लौटते समय भी उन्होंने शुचिस्नेहपूर्वक प्रणाम कर उसके मन के संकोच और सोच को दूर कर उसे पालकी में बिठाकर विदा किया।[1] चौदह वर्ष की घोर यातनाओं को झेलकर जब राम लौटे तब भी उन्होंने कैकेयी का ध्यान रखा। उन्होंने महसूस किया कि कैकेयी बहुत ग्लानि का अनुभव कर रही होगी कि उसके ही कारण इतने अनर्थ हुए, अतएव वे सबसे पहले कैकेयी के घर जाकर उसके मन को सुख देकर ही अपने भवन में गये।[2]

भाइयों के प्रति भी उनके हृदय में अपार स्नेह था। अभिषेक के अवसर पर अंग फड़कने के समय उन्हें प्रतीत हुआ कि ये शकुन भरत के आगमन-सूचक हैं।[3] उन्हें अपने भाइयों की हित-चिंता उसी प्रकार रहती थी, जैसे कि कछुए का मन सदैव अण्डों में लगा रहता है।[4] वे भाइयों को साथ बिठाकर खिलाते थे।[5] भरत राम का हृदय पहचानते थे, उनके शब्दों में अपराधी पर भी क्रोध न करने वाले राम भाइयों के प्रति विशेष स्नेहशील थे। कभी खेलते हुए भी उन्होंने भाइयों के प्रति क्रोध प्रकट नहीं किया। अपने छोटे भाइयों का मन रखने के लिए वे जीती हुई बाजी को इच्छा-पूर्वक हार जाते थे।[6] ऐसे राम को अभिषेक का समाचार ज्ञात कर विस्मय हुआ, उन्हें इस बात का क्षोभ हुआ कि रघु के विमल वंश में यही एक दोष है कि साथ जन्मे और पले हुए भाइयों को छोड़कर बड़े का अभिषेक कर दिया जाता है। राम का यह सप्रेम पछतावा (प्रभु सप्रेम पछतानि[7]) कितना मधुर है, कितना सात्त्विक है। अपने संकेत पर उठने-बैठने वाले लक्ष्मण का भी उन्हें सदैव ध्यान रहा है। जनकपुर में लक्ष्मण की इच्छा समझ कर ही उन्होंने विश्वामित्र से नगर देखने की अनुमति माँगी थी। जब लौटने में देर हो गयी तो अत्यंत भय, प्रेम, नम्रता एवं संकोच के साथ गुरु के चरणों में प्रणाम कर अपराधी की भाँति बैठ गये थे।[8] आवेशमय लक्ष्मण जब कभी कोई अनुचित शब्द कह देते थे, तो वे उन्हें संकेत से वर्जित कर अपने पास स्नेह-पूर्वक बिठा लेते थे कि लक्ष्मण के मन में संकोच न होने पाए।[9] ऐसी ही एक स्थिति

---

१. मानस, २।२४३।८।
२. वही, ७।९।१२।
३. वही, २।६।५,६।
४. रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥ २।६।८।
५. अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। ७।२५।३।
६. मानस, २।२५९।५।८।
७. वही, २।९।५।८।
८. वही, १।२१४।६।
९. वही, १-२५३-४।

तब सामने आयी, जब भरत को ससैन्य चित्रकूट में आते देख लक्ष्मण तड़प उठे, किंतु आकाश-वाणी द्वारा चेतावनी सुनकर अपने कटु-शब्दों के लिए लज्जित हुए थे। राम का शील यहाँ देखने योग्य है। एक ओर उन्होंने लक्ष्मण को प्रीति-पूर्वक अपने पास बिठाकर उनके हृदय का संकोच दूर कर दिया, तो दूसरी ओर उन्होंने भरत के हृदय का शुद्धभाव इस प्रकार प्रकट कर दिया कि लक्ष्मण का हृदय दुखने न पाए—

कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन राजमदु भाई॥ २।२३०।६
भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥ २।२३१
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
कहत भरत गुन सील सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥
२।२३१।४,८

ऐसे ही भरत के लिए वे एक बार फिर धर्म-संकट में पड़ गये थे, जबकि विभीषण ने राम को लंका में रोकना चाहा था। राम ने उसको भी बुरा न लगने का ध्यान रखकर मानो निहोरा-सा करते हुए कहा था—

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचनु सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि॥
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥ ६-११६ क, ख

अयोध्या आने पर उन्होंने सर्व-प्रथम भरत की जटाओं को अपने हाथों से सुलझाया, तब कहीं गुरु की आज्ञा प्राप्त कर स्वयं स्नानादि किया था।—७।१०।४-७

लक्ष्मण के प्रति राम के अगाध स्नेह का पता शक्ति लगने के समय उनकी एक ही उक्ति से लग जाता है—

जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥ ६।६०,६

कौशल्या तड़पकर रह गयीं, दशरथ ने प्राण दे दिये, भरत वैरागी हो गये, समस्त प्रजा दुःखी हुई, सीता को रावण चुरा ले गया, किंतु राम न डोले, वे डोले तो लक्ष्मण की मूर्च्छा पर। ऐसा सत्यसंध एवं कठोर कर्तव्यपरायण व्यक्ति क्या कह उठा? यहाँ राम की दुर्बलता नहीं, अपितु भाई के प्रति प्रेम की चरम-सीमा है।

०समता भाव—राम केवल परिवार के प्रति ही स्नेह-शील नहीं थे, अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक जन के लिए उनके हृदय में स्थान था। सुमंत्र जैसे भृत्य को वे पिता के समान मानते थे।[1] प्रजा की पीर से वे तुरन्त द्रवित हो जाते थे।[2]

---

१. मानस, २।३८।६।
२. वही, १।८४।१,२

जनकपुरी के शिशुओं को सुख देने के लिए उनके पास जाकर उन्होंने बातें की, मालियों से पूछकर ही फूल तोड़े।[१] वन-प्रदेश में सरल-मूढ़ वनवासियों की अनता से भरी हुई बातें इस प्रकार प्यार से सुनीं जैसे कि वत्सल पिता बच्चों की तोतली बातें सुनता है।[२] वे एक-एक बंदर से कुशल पूछा करते थे।[३] बंदर ऐसा स्वामी पाकर धन्य हो गये होंगे। लंका-विजय के पश्चात् विभीषण-प्रदत्त शृंगार-सामग्रियों को उलटे-सीधे ढँग से पहने बन्दरों को देखकर वे स्नेहपूर्वक हँसकर मीठे-स्वर से बोले थे—तुम्हारे बल मैं रावन मार्‌यो।[४] एक ओर उन्होंने इन्हीं बंदरों द्वारा गुरु वसिष्ठ को प्रणाम कराकर उनकी प्रतिष्ठा-रक्षा की, तो दूसरी ओर वसिष्ठ से उन्होंने कहा—इन्होंने मेरे लिये प्राण तक होम कर दिये हैं, ये मुझे भरत के समान ही प्रिय हैं।[५] गुरुजनों का भी उन्होंने यथोचित सम्मान किया। उन्होंने चित्रकूट में भरत से कहा था—हमारे माथे पर गुरु (वसिष्ठ) मुनि (विश्वामित्र) और मिथिलेश (जनक) हैं, अतएव तुम्हें और मुझे स्वप्न में भी क्लेश नहीं है।[६] ऐसा कहकर उन्होंने भरत के हृदय का संकोच दूर कर मानो उन्हें सम्बल प्रदान करते हुए कहा था—दोनों भाई पिता की आज्ञा मानें। गुरु, पिता-माता और स्वामी की शिक्षा का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गढ़े में नहीं पड़ता, अतएव 'पालहु अवध अवधि भरि जाई'—२।३१४।२।५। इस प्रकार भरत को समझाकर उन्होंने भरत को वापस जाने के लिए सम्मत कर लिया। विदा के समय भरत की एक इच्छा थी—राम की खड़ाऊँ ले जाने की। राम तो वैसे ही संकोचशील थे, फिर गुरुजनों की उपस्थिति में कैसे खड़ाऊँ देते! परन्तु सबसे अधिक ध्यान है तो भरत के मन का, अतएव संकोच से ऊपर उठकर उन्होंने खड़ाऊँ दे ही दीं।

लक्ष्मण

सीता की साड़ियों एवं सामान से भरी कंडी, खंता और धनुष-बाण लेकर चलने वाले लक्ष्मण राम के मौन-अनुचर बने रहे। राम पर उन्हें अगाध भक्ति थी। प्रारम्भ से ही यह वीर सच्चे क्षत्रिय के रूप में दिखायी देता है। राम कई बार विचलित हुए होंगे, किंतु इस दुर्द्धर्ष वीर को हम इस्पात की तरह अटल और अभेद्य पाते हैं। लक्ष्मण ने अन्याय कभी नहीं सहा। वे कैकेय्यासक्त वृद्ध दशरथ का वध करने के लिए प्रस्तुत हो गये थे। भरत के प्रति उन्होंने भयंकर क्रोध व्यक्त किया था। मारीच की

१. मानस, १।२२७।१।
२. वही, २।१३६।
३. वही, ४।२१।३।
४. वही, ६।११७।४।
५. वही, ७।७।७-८।
६. वही, २।३१४।२।

कपट-पुकार के समय कटु-वचन बोलती सीता को उन्होंने फटकार दिया था। किन्तु हृदय के सच्चे थे लक्ष्मण। चित्रकूट से भरत के लौटने पर लक्ष्मण ने भरत के गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर चिंता प्रकट की है कि भोगों से विरक्त होकर भरत किस प्रकार कष्टमय जीवन-यापन कर रहे होंगे। सीता के प्रति पूज्य-भाव तो उनके केयूर आदि न पहचान सकने पर ही व्यक्त हो चुका था। सीता की परीक्षा के समय लक्ष्मण की क्रोधमिश्रित मौन यंत्रणा मुख पर लालिमा के रूप में उभर आयी थी। सीता को वन में छोड़कर जाते समय वे सीता की परिक्रमा कर उच्च-स्वर में रोये थे। उस समय ही लक्ष्मण अत्यधिक विचलित हुए थे, अन्यत्र नहीं।

राम ने नागपाश-बद्ध होने पर कहा था—मुझे स्मरण नहीं आता कि शूरवीर लक्ष्मण ने क्रुद्ध होने पर भी कभी मुझ से कठोर या अप्रिय वचन कहे हों—

सुरेष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे।
परुषं विप्रियं वाऽपि श्रावितं न कदाचन॥ ६।४६।१६

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है—वे वलवान, रक्ताक्ष और नगाड़े जैसी ध्वनि वाले थे।—३।३१।१६। मत्तगजगामी, कभी न घबड़ाने वाले, महात्मा लक्ष्मण धैर्य और वल के साथ राम की रक्षा सावधानी के साथ करते थे।[1]

भाषा रामायणों ने वाल्मीकि के इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए भी कुछ-कुछ भिन्नता के साथ लक्ष्मण को प्रस्तुत किया है।

असमीया रामायण में राम ने कहा था—'लक्ष्मण मोर डाहिन बाहु छाया मोर सीता।'[2] विश्वामित्र के साथ राम को वन जाता देखकर लक्ष्मण ने कहा था—तुम्हारे चरणों के विना मेरी गति नहीं। तुम कहीं भी जाओ मुझे साथ ले चलो। प्रभु, मैं दास बनकर तुम्हारी सेवा करूँगा।[3] इस वीर क्षत्रिय ने स्त्री होने के कारण ताड़का-वध ठीक नहीं समझा था।—८७६।

तेजस्विता में लक्ष्मण कहीं-कहीं आदि-रामायण के लक्ष्मण से भी आगे बढ़ जाते हैं। ये लक्ष्मण राम को भी फटकारने लगते हैं—

स्त्रीजित बृद्ध बाप कपट चरित। तान बोले बन याइबा किनो बिपरीत॥
कैकेयी पापिष्ठी नृपतित राज्य मागे। बैरिणीर बोलत मरिते केन लागे॥
हेन बुलि क्रोधिलन्त लक्ष्मण प्रचण्ड। बुढ़ारे आगते काटि करो खण्ड खण्ड॥

(स्त्रीजित वृद्ध-पिता कपटी हैं, उनके कहने से आप वन क्यों जाएँ। पापिष्ठी

---

१. तं मत्तमात्तङ्गविलासगामी गच्छन्तमव्यग्रमना महात्मा।
स लक्ष्मणो राघवमप्रमत्तो ररक्ष धर्मेण वलेन चैव॥ ४।१।१२८।

२. असमीया-रामायण, १६४५।

३. वही, ८५१।

कैकेयी ने नृपति से राज्य माँग लिया है। वैरिणी के कहने से क्यों मरा जाए। ऐसा कह कर लक्ष्मण ने प्रचण्ड क्रोध किया—मैं बूढ़े को पहले काटकर खण्ड-खण्ड कर दूँ।) —१७३१-३२।

उन्होंने इन्द्र को भी जीत कर राम को युवराज बनाने का निश्चय किया। कामवशवर्ती बाप के वचनों का उल्लंघन कर अयोध्यानगरी का राज्य भार शीघ्र ले लेने के लिए कहा।[1] राम प्रस्तुत न हुए तो लक्ष्मण बिगड़कर बोले—

क्षत्रकुले उपजिला भैला बुद्धिनाश। प्रिय वाक्य बुलिया वैरक दिला आश॥
पौरुष एरिया दैव करिलाहा सार। नपुंसक वृत्ति सब भैगैल तोमार॥

(क्षत्रिय-कुल में जन्म लेकर भी तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। प्रिय वाक्य कहकर वैरी को आशा बँधा रहे हो। पौरुष को ठुकराकर भाग्यवाद का सहारा ले रहे हो, तुम्हारी सभी वृत्तियाँ नपुंसकों जैसी हो गयी हैं।) —१७५८ छं०।

राम का अहित देखकर तथा अपने अधिकार के प्रति उनकी निष्क्रियता देख कर ही लक्ष्मण ने ऐसे कटु वचन कहे थे, नहीं तो थोड़ी ही देर में वे दीन होकर अपने 'ददा' राम से बोले थे—यदि तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे तो मैं देश से निकल जाऊँगा, अन्यथा कटार का आश्रय लूँगा।[2] तुलसीदास के लक्ष्मण ने किसी भी स्थिति में राम को नपुंसक नहीं कहा होता।

उग्र लक्ष्मण ने सुमंत्र के द्वारा स्त्रीवशवर्ती राजा को मरने के समय अन्याय करने के लिए कटुवचन कहते हुए यह भी कहा—भरत तुम्हारा अब बहुत हित करेंगे। कैकेयी को कन्धे पर बिठाकर घूमना—

भरते ताहाङ्क वर करिवेक हित। कान्धे करि कैकेयीक फुरान्तोक नित। छं० २११६

मारीच की कपट-पुकार से सीता ने व्याकुल होकर लक्ष्मण को अनकहनी बातें कही थीं, लक्ष्मण तब भी चुप नहीं बने रहे, सीता को फटकार कर बोले थे—'क्षिप्रवादी, दारुणी, तोमाक आछो धिक।' यहाँ भी लक्ष्मण वस्तुतः सीता का अनिष्ट चाहकर कटु वचन नहीं बोले थे। वे विवश थे। उन्होंने सीता को प्रणाम किया और धनुष-बाण ले कर राम की सहायता के लिए चल दिये, किन्तु लौट-लौट कर स्नेह-सहित सीता को देखते जाते थे।[3] वाल्मीकि रामायण का यह श्लोक द्रष्टव्य है—

---

१. कामवश बापर वचन परिहरि। राज्य भार लैयो झाण्टे अयोध्यानगरी॥१७३७
२. तुमि एरि गैले मइ याइबो देशान्तर। नुहि आजि कटारत करियोहो भर॥ १७७४
३. लक्ष्मणे सीताक गैया प्रदक्षिण करि। चरणे प्रणामि हाते धनुर्व्वाण धरि॥ ३११८
—सीतार स्नेहत पुनुः उलटिया चान्त। ३११९

अन्वीक्षमाणो वहुशश्च मैथिलीं । जगाम रामस्य समीपमात्मवान ।। ३।४६।४१

लक्ष्मण को राम पर बड़ा विश्वास था । जाने के पहले उन्होंने सीता को समझाया था कि यह आर्तवाणी राम की नहीं हो सकती, क्योंकि इस सूर्य के नीचे राम की पराजय नहीं हो सकती—'इटो रवितलत रामर नाइ भङ्ग'—३१०४ ।

उनके हृदय में कोमल लक्ष्मण भी था । रावण-विजय के पश्चात् राम के पास आती हुई सीता की पति द्वारा उपेक्षा देखकर लक्ष्मण मुँह में कपड़ा भर कर रोये थे—'मुखत कापर दिया कान्दन्त लक्ष्मण ।'—६४६३ । सीता के निर्वासन का निश्चय होने पर भी लक्ष्मण रोये थे ।

उत्तरकाण्ड के लेखक **शंकरदेव** ने भी लक्ष्मण के चरित्र का तालमेल बिगड़ने नहीं दिया है । उनके लक्ष्मण राम के समक्ष उपदेशक और दार्शनिक रूप में अवश्य आये हैं । सीता को निर्वासित करने पर दुःखी राम को वे समझाते हैं—आप ही सर्वज्ञ हैं, इसे आप इस समय भूले हुए है । यह असार संसार मायामय है । छं० ६६३५।३६ ।

कालपुरुष की भेंट के समय दुर्वासा ऋषि के शाप से राम को बचाने के लिए लक्ष्मण ने नियम-भंग किया, फलतः राम ने लक्ष्मण का वर्जन किया । इस समय लक्ष्मण की अत्यन्त दीनता एवं भ्रातृ-भक्ति का सुन्दर चित्रण है । जन्म-जन्म में राम के कनिष्ठ भाई होने की कामना लेकर, उन्हें बार-बार प्रणाम कर तथा मंत्रियों को अपने प्राणों से भी प्रिय दादा की देखरेख सौंपकर लक्ष्मण चले गये थे । छं० ७२८७ ।

०**वँगला-रामायण** के लक्ष्मण भी वाल्यकाल से ही तेजस्वी दिखायी पड़ने लगते हैं । परशुराम के वढ़ते हुए क्रोध को देखकर लक्ष्मण भी क्रुद्ध हो कर वोल पड़े—वातें मारने से क्या लाभ, वीरों का आचरण कर दिखाओ ।[1] दशरथ के प्रति सर्प के समान गरजकर उन्होंने अपना मन्तव्य प्रकट किया था—स्त्रीवश पिता के वाक्यों से राज्य छोड़ कर क्यों वन जाओ । सभी कहते है ज्येष्ठ-पुत्र राज्य पाता है । वृद्धावस्था के कारण दुर्बुद्धि-प्राप्त राजा पागल हो गये हैं, उन्हें कैकेयी ने अपना आज्ञाकारी वना लिया है । यदि आप मुझे आज्ञा दें तो भरत को काट कर तुम्हें राज्य दिलाऊँ ।[2] उन्होंने तर्क भी प्रस्तुत किये थे कि संन्यास और तपस्या ब्राह्मण के कर्म हैं । क्षत्रिय का धर्म तो सदैव युद्ध करना है ।[3]

सीता के कटु वचन वोलने पर लक्ष्मण उसी प्रकार संयम धारण कर गये जैसे

---

१. रुपिया कहेन शक्त सुमित्रा कुमार । कथाय कि फल कर वीरेर आचार ।। पृ० ८६ ।

२. वँगला-रामायण, पृ० १०४ ।

३. वही, पृ० १०५ ।

कि मानस के लक्ष्मण। उन्होंने केवल कहा था —

आमारे विदा करो सीता ठाकुरानी। आर किछु न बलह दुष्कर वाणी॥ पृ० १५२

अग्नि-परीक्षा के पूर्व सीता की दयनीय स्थिति को देखकर सिंह के समान सदैव गरजते रहने वाले इस वीर का हृदय हिमगिरि पाषाणों के आँसुओं के समान पिघल गया था।[1] सीता-निर्वासन से ही यह वीर राम के प्रति भी रुष्ट हो उठा था। सीता से उन्होंने कहा था — लोक-अपवाद से डरकर राम ने बिना अपराध तुम्हें वनवास दिया है।[2] वनवास के बाद जब राम रो रहे थे, तब लक्ष्मण ने उनसे भी कहा था — स्वयं ही सीता को वर्जित कर अब क्यों रोते हो — आपनि वर्जिया सीता केन कान्द एखन।[3] अश्वमेध-यज्ञ के समय शत्रुघ्न-सैन्य के पराजित होने पर भी सत्यवादी और न्यायप्रिय लक्ष्मण ने महसूस किया था कि पतिव्रता का अपमान करने के कारण ही राम की यह दुर्दशा हुई है। — पृष्ठ ५५२।

राम पर इन लक्ष्मण का भी रामलीला के लक्ष्मण के समान अटूट विश्वास था कि प्राण जाने पर भी राम के मुख से कातर वाणी नहीं निकल सकती — 'प्राण गेले रामेर कातर नहे वाणी।'[4] मारीच के कपट-स्वर से डरी हुई सीता से उन्होंने ऐसा कहा था।

लक्ष्मण बुद्धिमान और समझदार भी प्रतीत होते हैं। उन्होंने राम को स्वर्ण-मृग के पीछे जाने की सम्मति नहीं दी थी। कबन्ध द्वारा बन्दी बनाये जाने पर जब राम शोक के कारण विवेक-शून्य हो गये थे, उस समय लक्ष्मण ने ही युक्ति सूझा कर उसे मारा और दोनों को मुक्त किया था। उन्होंने रोषवश में [illegible] सुग्रीव को सीता की खोज न करने के कारण धमकाया तो था, किन्तु जब वह शरण में आ गया तो उससे स्वयं ही क्षमा माँगकर वे बोले थे — राम को कातर देखकर ही मैंने कर्कशवचन कहे हैं, मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था, कपिराज मुझे क्षमा कर दो। पृष्ठ १८६।

०उड़िया के तेजस्वी लक्ष्मण भी वनवास की आज्ञा पर राम से हाथ जोड़ कर बोले थे — राजा वन भेज रहे हैं, आप क्यों जाएँ। यदि कोई विरोध करेगा तो मैं उसका शीश काटकर बलि दे दूँगा। मैं धनुषबाण लेकर यह कह रहा हूँ। मेरा शरीर (क्रोध से) काँप रहा है। मैं इसी समय दशरथ, मंत्री-अमात्य, भरत और

---

१. कृत्तिवासी बँगला-रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक-अध्ययन, पृ० २४५।

२. लोक अपवादे राम पाइला तरास। विना अपराधे तोमा दिला वनवास॥ पृ० ५२७।

३. बँगला-रामायण, पृ० ५२८।

४. वही, पृ० १५०।

शत्रुघ्न को मार डालूँगा, अन्यथा पिता चारों भाइयों को राज्य बाँट दें, ऐसा न करने पर मैं अयोध्या जला डालूँगा। असत् पुरुष मेरा पिता कैसे हो सकता है—असत् पुरुष से आम्भर किस पिता।[1] इसको युवती ने अपनी माया से मोह लिया है। राजा ने कामातुर होने के कारण ज्ञान खो दिया है।

मायारे एहाकु मोहिलाक से युवती। कामातुरे ज्ञान हराइला नरपति।। २।३९

जिस समय राम ने वन में अयोध्या के सुख:दुख की चिन्ता की, लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोल पड़े थे—अयोध्या जल जाए, दशरथ मृत्यु को प्राप्त हों, भरत-शत्रुघ्न का नाश हो, हम इनके बारे में क्यों सोचें।

अन्य स्थलों पर लक्ष्मण तेजस्वी प्रतीत नहीं होते। सीता की कटु-वाणी सुन कर उन्होंने केवल इतना ही कहा था—'तुम्मे स्तिरीजन सिना स्वभावे चञ्चल'—(तुम स्त्रियाँ स्वभाव से चंचल होती हो—३।३७)।

राम को मृग मारकर लाता देख कर रो पड़े थे लक्ष्मण, कि जिसके कन्धे पर जगत-लक्ष्मी रही है, उसके कन्धे पर मृग।[2] राम के भक्त होते हुए भी वे राम के सखा से प्रतीत होते हैं। राम ने जब भाई-प्रेम के मोहवश लक्ष्मण को इन्द्रजीत से लड़ने के लिए रोका था तो वे राम पर तड़प उठे थे।

सीता के कारण इस वीर ने भी करुणा का अनुभव किया था। अग्नि-परीक्षा के पूर्व सीता के प्रति राम के कठोर वचन सुनकर लक्ष्मण मुँह में कपड़ा देकर विलख पड़े थे—मुखे वसन देइण कान्दन्ति लक्ष्मण।।[3] सीता-निष्कासन के प्रसंग पर भी 'विधि विधि' कहकर वे माथा पीट रहे थे—विहि विहि वोलि कर मारइ कपाले। ७।१११।

उड़िया-रामायण के भी उत्तरकाण्ड में राम ने लक्ष्मण का वर्णन किया है। लक्ष्मण इस बात से दुःखी हुए कि तब तो वन जाने पर दोनों भाई साथ थे, अब अकेले वन जाने पर कैसे निर्वाह होगा? ७।२०१।

लक्ष्मण के चरित्र में दो दोष दिखायी पड़े हैं—

(१) वन में राम को भूख लगी। सामने एक ग्वाला गायें चरा रहा था। क्षत्रिय होने के कारण लक्ष्मण दूध की भीख माँग नहीं सकते, अतएव उन्होंने निश्चय किया कि इस ग्वाले को मारकर इसकी गायें छीन लेंगे।[4] लक्ष्मण का यह दस्युवत उग्र-क्षत्रियत्व शोभा नहीं देता।

---

१. उड़िया-रामायण, पृ० २।३९।
२. वही, २।५२।
३. वही, ६।३०९।
४. वही, ३।५७।

(२) राम के भेजे हुए लक्ष्मण किष्किन्धापुरी में विलास-मग्न सुग्रीव को डाँटने गये, वे अत्यधिक क्रुद्ध थे किन्तु शृंगार-सज्जिता तारा को देखकर वे ऐसे सन्तुष्ट हुए जैसे हथिनी को देखकर मस्त हाथी होता है—

हातुणिकि देखि येह्रे मत्त हस्ती तोष। श्रीरामर भाइ देखि होइला सन्तोष ॥४।६१

सुग्रीव से मिलने पर वे तारा की प्रशंसा भी करते हैं। नारी-प्रेमिक उनका यह चरित्र अन्यत्र नहीं है।

०मानस में लक्ष्मण राम की छाया के रूप में चित्रित है, किन्तु उनके क्रोध को लेखक ने संयमित करने की चेष्टा की है। साथ ही उन्हें परशुराम के आगे चपल एवं गुह के साथ दार्शनिक दिखाकर मौलिकता भी दिखायी है, जिसके कारण तुलसी पर अस्वाभाविक चित्रण का आरोप हुआ है।

मानस में सीता के साथ ही लक्ष्मण को राम की परिछाहीं कहा गया है। वे राम की कीर्ति-पताका के सुदृढ़ आधार थे।

रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका ॥१।१६।६

लक्ष्मण का तेजस्वी रूप इन शब्दों में चित्रित हुआ है—

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला ॥६।५२।१

उनके तेजस्विता एवं रोषपूर्ण चरित्र का परिचय जनकपुरी की स्वयंवर-सभा में ही मिल जाता है, जब कि जनक की धिक्कारमयी वाणी सुनकर वे तड़प उठे हैं। दुष्ट राजाओं के षड्यंत्र से परिचित होकर भी उनकी भृकुटि कुटिल हो जाती है। अयोध्या में लक्ष्मण लोहू का घूँट पीकर रह गये थे, तभी जब उन्होंने देखा कि भरत ससैन्य किसी षड्यंत्र के उद्देश्य से चित्रकूट आ रहे हैं तो मानो वीररस सोते से जाग उठा। वे भरत और शत्रुघ्न दोनों को युद्ध में सुला देने के लिए जटाजूट बाँध कर और धनुष-बाण सँभालकर खड़े हो गये। इस वीर क्षत्रिय को अपने धनुष पर गर्व है, फिर वह कहाँ तक मन मार कर अन्याय सहता रहता—

कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें ॥२।२२८।८

पिता दशरथ के अन्याय के प्रति उन्होंने अयोध्या में भले ही कुछ न कहा हो, किन्तु वे असन्तुष्ट अवश्य थे। इसका संकेत-मात्र तुलसीदास ने किया है—

पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥२।६५।४

शूर्पणखा से वार्तालाप के समय वे एक सीमा तक ही चुप रहे, फिर एकदम बिगड़ पड़े थे—

लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥३।१६।१८

समुद्र से राम की याचना उन्हें रत्ती-भर नहीं सुहायी। उनके मत से कायर

और आलसी लोग ही दैव की शरण जाते हैं। जब राम ने चाप चढ़ाया, तभी उनके मन की हुई।

कितने भी क्रुद्ध और रोषमय होने पर भी वे राम के एक संकेत पर मंत्र-मुग्ध सर्प से शान्त होकर बैठ जाते थे। राम अपने इस ओजस्वी भाई का स्वभाव पहचानते थे। सीता को भी अपने इस धनुषधारी देवर पर गर्व था।[1] राम लक्ष्मण को कितना प्यार करते थे, यह शक्ति लगने पर उनके विलाप से प्रकट हो जाता है। राम और सीता के प्रति उनका पूज्य-भाव इतना अधिक था कि वे मार्ग पर बने हुए सीता-राम के चरण-चिह्नों पर भी अपने चरण का स्पर्श नहीं होने देते थे।[2]

तेजस्वी-वीर लक्ष्मण किसी भी परिस्थिति में दीन या कातर नहीं हुए, केवल दो स्थलों को छोड़कर। राम के वनगमन के समय उन्होंने व्याकुल होकर राम के चरण पकड़ लिये थे, भावावेश के कारण उनका कंठ अवरुद्ध हो गया था। इसी प्रकार सीता की अग्नि-परीक्षा के समय वे केवल खड़े-खड़े आँसू बहाने लगे थे, जब कि वाल्मीकि-रामायण में क्रोध से उनका मुँह तमतमा गया था।

मानस में लक्ष्मण को बहुत अधिक संयमित करने की चेष्टा की गयी है। अयोध्या में विद्रोह की बात वे नहीं करते। मारीच के कपट-आह्वान से डरी हुई सीता के मर्म-वचनों पर भी वे चुप रहते हैं। पूर्वाचलीय-रामायणों में कई स्थलों पर लक्ष्मण रोते हुए दिखाये गये है, जैसे वालि-वध पर, किन्तु मानस के लक्ष्मण ऐसे रुदनशील नहीं हैं।

स्वयंवर-सभा के लक्ष्मण का चरित्र उनके शेष-चरित्र से मेल नहीं खाता। परशुराम से बातचीत करने में उन्होंने जिस व्यंग्य-कौशल और विनोद-प्रियता का परिचय दिया है, वह बहुत मनोहर है। उनकी इस चपलता का तारतम्य पूर्वापर-सम्बन्ध रहित है।

इसी प्रकार गुह के साथ सीता-राम की रखवाली करते समय जो दार्शनिक-विचार प्रकट करते है वे भी उनके क्षत्रियोचित शेष-चरित्र से ताल-मेल नहीं रखता। अध्यात्म-रामायण से प्रेरणा लेने के कारण तुलसीदास ने भी ब्रह्मनिरूपण का अवसर हाथ से नहीं जाने दिया।

लक्ष्मण के हृदय में उदारता भी थी। रावण के दूतों को पकड़कर वानर लोग नाक-कान काट रहे थे, तब लक्ष्मण ने ही दया-पूर्वक उन्हें छुड़ाया था। कैकेयी को ये क्षमा नहीं कर सके थे। अयोध्या लौट आने पर शायद उसे चिढ़ाने के लिए ही अथवा क्रोधावेश में वे कैकेयी से बार-बार मिले, किन्तु उनके हृदय का क्षोभ

---

१. मानस, २।९८।१।
२. सीय राम पद अंक बराएँ। लखनु चलहिं मगु दाहिन लाएँ ॥२।१२३।६।

—१४

दूर नहीं हुआ।

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले, मन कर छोभु न जाइ॥ ७-६ (ख)

भरत

वाल्मीकि-रामायण में सभी पात्र किसी न किसी दोष से युक्त हैं। राम भी परिस्थिति आने पर प्राकृत पुरुषों जैसी दुर्बलता दिखा जाते हैं। किन्तु भरत का चरित्र सभी पात्रों की तुलना में सर्वथा निष्कलंक एवं अविचल है। दशरथ, कौशल्या, राम, लक्ष्मण आदि अनेक पात्र भरत के सम्बन्ध में कहीं न कहीं ऐसे विचार व्यक्त कर देते हैं जो भरत के विरुद्ध जाते हैं, किन्तु भरत ने अपने त्याग-भाव से सभी लोगों के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली। यहाँ तक कि लक्ष्मण जैसा उग्र पात्र भी भरत को धर्मज्ञ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, प्रियाभिलाषी, मधुर, भोग-विरक्त आदि विशेषण प्रदान कर इस प्रकार की चिन्ता व्यक्त करता है कि वैराग्य-भाव धारण करने वाले भरत जाड़े के दिनों में पाला से ढँकी हुई नदी में अति प्रातःकाल कैसे स्नान करते होंगे।[1] वनवास का दृढ़-व्रत धारण करने वाले राम भी भरत का स्नेह स्मरण कर बच्चों की भाँति व्याकुल हो जाते थे।[2]

भ्रातृ-भक्ति के चरम-आदर्श भरत के चरित्र का वर्णन सभी ग्रन्थों में पवित्रता के साथ किया गया है। उड़िया-रामायण के अतिरिक्त प्रत्येक ग्रन्थ में भरत के चरित्र का विस्तृत वर्णन है।

असमीया-रामायण में भरत अपनी माँ से प्रारम्भ से ही प्रसन्न नहीं जान पड़ते हैं। अयोध्या से आये हुए दूतों से उन्होंने पूछा—'पति-सुभगा, कलहप्रिया, प्रचण्ड स्वभाव वाली मेरी माता स्वामी की सेवा करती हुई प्रसन्न तो है?'

वापर सुभगा, कलहतप्रिय, प्रचण्ड यार स्वभाव।
स्वामी सेवा करि, भाले कि आछन्त आमार कैकेयी माव॥ २२२७

कैकेयी द्वारा सभी समाचार पाकर उन्होंने भयंकर क्रोध किया था और उसे अनेक गालियाँ देकर कहा था, 'तू नरक में सड़ेगी।'[3]

यहाँ बेचारे भरत पर कौशल्या, लक्ष्मण आदि ने तो सन्देह प्रकट किया ही

---

१. वाल्मीकि-रामायण, अरण्य सर्ग, १६।

२. निश्चिंताऽपि हे मे बुद्धिर्वनवासे दृढ़व्रता।
भरतस्नेहसन्तप्ता बालिशीक्रियते पुनः॥ ३।१६।३८।

३. शुपिणी, नागिनी, निकारुणी, संहारिणी, निर्दयिणी, राक्षसिनी, वाघिनी, दारुणा, यक्षिणी, डाहिणी, स्वस्वामी-भक्षिणी, पिशाचिनी, रंडी, सोनगुद, निलाजी और वैरिणी। २२७६।७८।

था, वसिष्ठ भी बोले—तुम्हारा पहले का कपट प्रकट हो गया है। तुमने छल कर माता के हाथ से राज्य माँग लिया है। इस समय तुम्हारे हृदय की शुद्धता को मैं कैसे जान सकूँगा। २३६४।

असमीया-रामायण के भरत तेजस्वी भी हैं। वे वसिष्ठ के शंका करने पर मानस के भरत के समान सतत विनयशील नहीं बने रहे, अपितु क्रुद्ध होकर बोले, 'तुम भी मुझे कपटी समझ रहे हो। मैं तुम्हें हृदय चीरकर नहीं दिखा सकता। तुमने कठोर वाक्यों से मेरे हृदय पर आघात किया है। तुम कुलगुरु होकर भी आज काल को ग्रस्त किये हो'—

तुमिओ जानिला मोर कपट चित्तत। हिया नोहे काटि देखाओ तोमार आगत ॥
निदारुण वाक्ये दिला हृदयत शाल। कुलगुरु हुया आजि खाइला तुमि काल ॥
२३६६

भरत ने राम को अपना गुरु-सम मानकर अपने को उनका भृत्य कहा है—'ज्येष्ठ भाइ गुरु सम तान मइ भ्रत्य।' २३५२। और उन्होंने यह भी निश्चय किया था कि मैं अब तृण-शय्या का सेवन कर ब्रह्मचर्य धारण करूँगा। मैं राम का सेवक होकर उन्हीं का धर्म धारण करूँगा।

तण शय्या करहो पिन्धोहो बृक्षचर्म्म। रामक सेवक् मइ धरो तान धर्म्म ॥
२४४१

बँगला-रामायण के भरत पर अन्य पात्र भले ही आक्षेप करें किन्तु राम ने कभी भी भरत के विरुद्ध एक शब्द नहीं कहा, वरन् उन्होंने यही कहा था—

कोनं दोष नाइ भाइ भरत शरीरे। बड़ तुष्ट आछि आमि तार व्यवहारे ॥ —१०७

जिस माता के कारण इतना अनर्थ हुआ उसके प्रति भरत अत्यन्त क्रूर हो उठे हैं। वे क्रोध से ज्वलन्त अग्नि के तुल्य धधककर बोले—तेरे पिता और मातामह धर्मकर्म करते रहे हैं, उस वंश में राक्षसी का जन्म क्यों हुआ ? मैंने पूर्व जन्म में अनेक कदाचार किये थे, उन्हीं पापों के कारण तेरे गर्भ से जन्म लिया। माँ होकर पुत्र को इतना शोक दिया, इच्छा होती है तुझे काट कर परलोक भेज दूँ।[1]

उन्हीं के कारण पिता की मृत्यु हुई एवं भ्राता राम वनवासी हुए, ऐसा जान कर भरत को बहुत ग्लानि हुई। पहले से ज्ञात होने पर वे अयोध्या न आये होते।[2]

---

१. तोर पिता मातामह करे धर्म्म कर्म्म। से वंशेते केन हैल राक्षसीर जन्म ॥
पूर्व्वजन्मे करिलाम कत कदाचार। सेइ पापे तोर गर्भे जनम आमार ॥
मा हइया तनयेरे दिलि एत शोक। इच्छा हय काटिया पाठाइ पर लोक ॥ १२०

२. आमाहेतु पिता मरे, भ्राता वनवासी। एतेक जानिले कि देशेते आमि आसि ॥
—१२२

उन्होंने राम की भाँति ही भोगों से दूर रहकर जटा और वल्कल धारण कर विरक्तों का जीवनयापन करना प्रारम्भ किया था—४४६।

इस ग्रन्थ के भरत का दो स्थलों का चरित्र शेष से मेल नहीं खाता। (१) प्रारंभ में जब दशरथ विश्वामित्र को ठगकर राम-लक्ष्मण के स्थान पर भरत-शत्रुघ्न को दे देते हैं, उस समय भरत वनमार्ग में कायरता का परिचय देते हैं। (२) उन्होंने औषध-वाहक हनुमान को गिराकर उनके सामने बल-परीक्षा देते समय पारस्य-कथाओं जैसा चमत्कार दिखाया है।

उड़िया रामायण में भरत का चरित्र बिलकुल सामान्य है। उनके चरित्र का वर्णन वाल्मीकि के चरित्र के अनुसार ही किन्तु आवेश से रहित होकर किया गया है। मानवीय-चरित्र की विशेषता की ओर लेखक ने ध्यान न देकर कई दिनों से दौड़कर आये हुए दूतों के घोड़े की थकावट आदि के चित्रण की ओर अधिक रुचि दिखायी है।

कौशल्या एवं लक्ष्मण ने भले ही भरत के प्रति कटु शब्दों का व्यवहार किया हो किन्तु उड़िया के राम भरत पर अत्यधिक विश्वास रखते हैं। वन में लक्ष्मण के भरत पर शंका करने पर राम उन्हें बुरी तरह दुत्कार कर कहते हैं—अच्छा है तुम लौट जाओ, मेरे साथ भरत रहेंगे।

इस ग्रन्थ में भी भरत के डरपोक स्वभाव का चित्रण कर उनकी चरित्र-गरिमा कम की है। औषध-वाहक हनुमान ने भरत से कहा—शीघ्र परिचय दो, नहीं तो पत्थर मार दूँगा। भरत ने डरकर परिचय दिया—"मैं राम का भाई हूँ।" उन्होंने लोहे की बाँटुलि मारकर हनुमान को गिराया था। उन्होंने हनुमान से कहा कि किसी से कहना नहीं, नहीं तो क्षत्रिय हँसेंगे कि इनकी बाँटुलि से हनुमान बच गया। यदि तुम किसी से कहोगे तो मैं विष खाकर मर जाऊँगा। ६।१६६।

मानस के अन्तर्गत तुलसीदास ने भरत को केवल आदर्श-भाई के रूप में ही चित्रित नहीं करना चाहा है, अपितु वे भरत को भक्तों के आदर्श रूप में भी प्रस्तुत करना चाहते हैं। भरत राम के केवल भाई ही नहीं हैं, वे उनके ब्रह्मत्व से परिचित भक्त भी हैं। ऐसे भक्तप्रवर सुशील भरत के प्रति मानस का कोई भी पात्र सन्देह तो प्रकट करता ही नहीं, अपितु दुर्घटना के फलस्वरूप उनके हृदय पर लगने वाले आघात के प्रति ही सभी लोग अधिक चिन्तित दिखायी पड़ते हैं। भक्त होने के नाते ही प्रकृति ने भरत का इतना ध्यान रखा जितना कि उसने राम का भी नहीं।[1] पूर्वांचलीय-रामायणों के भरत से मानस के भरत में यही एक बड़ा अन्तर स्पष्ट है।

---

१. किए जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥ २।२१६।

राम के वनगमन का समाचार सुनकर उनको इतना गहरा धक्का लगा था कि वे पिता की मृत्यु की बात ही भूल गये। सभी अनर्थों की जड़ अपने को समझ कर उन्हें अत्यन्त क्लेश हुआ, फिर भी उन्हें विश्वास था कि राम और सीता को छोड़कर इस विश्व में उनके हृदय को और कोई नहीं समझ सकेगा। चित्रकूट की यात्रा के समय वे राम के कष्टों का स्मरण कर स्वयं भी घोड़े से उतरकर पैदल चले। उनके कोमल चरणों मे बड़े-बड़े छाले पड़ गये थे।[1]

भरत को इस बात से अत्यधिक ग्लानि का अनुभव हो रहा था कि उनके कारण राम-सीता दुःखित हुए।[2] सारी रात सोचते-सोचते बीत जाती थी, उन्हें न नींद आती और न भूख लगती। जो पहले से ही ग्लानि का अनुभव कर रहा हो उससे फिर कोई भूल हो जाए तो वह अपने को कितना अपदार्थ, तुच्छ और धिक्कृत अनुभव करेगा! लक्ष्मण के उपचार मे बाधा उपस्थित कर उन्होने हनुमान से कहा था—

अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥ ६।५९।३

उनकी चरित्र-दृढता और शील-स्वभाव की सभी ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। पुर-वासियो में यदि किसी एक ने भरत के चरित्र पर रचमात्र भी सन्देह प्रकट किया तो दूसरा कानों पर हाथ रखकर और जीभ को दाँतों से दबाकर ऐसी पाप-वार्त्ता कहने से निषेध करता। अनहोनी भले हो जाए किन्तु भरत कभी राम के प्रतिकूल नही हो सकते।

चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ विषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरत राम प्रतिकूल॥ २।४८

दशरथ ने राम और भरत को समान स्नेह दिया था, उन्हें विश्वास था कि, भरत कभी राज्य के लोभी नही हो सकते।[3] कौशल्या को भरत के सोच का इतना डर था कि उन्हें सीता और राम के वनगमन की भी चिन्ता नही रह गयी थी। जनक चित्रकूट मे रात भर जागते हुए भरत की चिन्ता करते रहे। राम को भरत पर अधिक विश्वास था। लक्ष्मण की शका को दूरकर उन्होंने कहा था—भरत को चाहे विधि-हरि-हर का पद ही क्यो न मिल जाए, उन्हें कभी राजमद नहीं हो सकता।[4] चाहे मच्छर की फूँक से पर्वत का उड़ना सम्भव हो किन्तु भरत को नृपमद नही हो सकता।[5] भरत के गुण-शील और स्वभाव का वर्णन करते हुए राम

---

१. मानस, २।२०२।४, २०३।१, २१५।५।
२. वही, २।१८१,५,६।
३. चहत न भरत भूपतहि भोरें। २।३५-१।
४. भरतहि होइ न राजमदु विधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँक काँजी सीकरनि छीर सिन्धु विनसाइ॥ २।२३१।
५. मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप मदु भरतहिं भाई॥ २।२३१।३।

अत्यधिक तन्मय हो जाया करते थे ।

कहत भरत गुन सील सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥ २।२३१।८

चित्रकूट की सभा में उनके शील, संकोच का अपूर्व परिचय मिलता है। राम न तो वन से लौटकर कर्त्तव्य की अवहेलना करना चाहते हैं और न भरत का अनुरोध ठुकराकर उनका जी दुखाना चाहते हैं। इसी प्रकार भरत भी राम को सभी कष्टों से मुक्त कर पूर्वस्थिति में लाना चाहते हैं, चाहे राम के बदले उन्हें ही क्यों न वनवास भोगना पड़े, किन्तु इस बात की भी उन्हें चिन्ता है कि राम को लौटने के लिए विवश कर उन्हें कर्तव्य-विमुख न किया जाए। संघर्ष पारस्परिक सद्भावों का था, स्वार्थों का नहीं, इसीलिए सुस्थिर समाधान भी खोज लिया गया।

मानस के भरत में केवल एक दोष देखा जाता है, वे अपनी माता के प्रति अत्यधिक अनुदार हैं। ननिहाल से लौटे हुए भरत को एक साथ दो दुःखद समाचार दिये गये—पिता की मृत्यु और भाई-भाभी का देश-निकाला। यह सब घटित हुआ उन्हीं की माता के द्वारा और उन्हीं के स्वार्थ के लिए। ऐसे समय पर यदि उन्होंने अत्यधिक क्षोभ, शोक, ग्लानि, खीझ और क्रोध के वशीभूत होकर कैकेयी से कटु वचन कह ही दिये तो उनकी यह प्रतिक्रिया बिलकुल स्वाभाविक थी। अन्य भाषा-रामायणों में भी भरत ऐसा ही करते हैं।

बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥ २।१६१।२

स्त्री-जाति के सम्बन्ध में भी उन्होंने इसी क्षोभ और खीझ के कारण कुछ कटु वचन कहे हैं—

बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥ २।१६१।४

बृहस्पति ने शंकालु देवताओं से कहा था—'भरतहि जान राम परिछाहीं'।[1] वे राम की छाया थे, उनका अनुसरण करने वाले थे। साथ ही वे राम के गुणों में भी उनकी छाया थे। भक्ति की दृष्टि से वे राम से भी बढ़ कर हैं। राम यदि समता की सीमा हैं तो भरत स्नेह और ममता की।

भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की ॥ २।२८८।६

दशरथ

वाल्मीकि के दशरथ दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, प्रजाप्रिय, धर्मरत, जितेन्द्रिय एवं सत्यसंध[2] बताये गये हैं। सभी देश एवं कालों में राजा लोगों के कई रानियाँ

---

१. मानस, २।२६५।४।

२. वाल्मीकि-रामायण, १।६, १—६।

रही हैं, छोटी और सुन्दरी रानी के प्रति राजा का मोह रहना भी स्वाभाविक है। दशरथ भी कैकेयी पर लुब्ध थे, किन्तु उन्होंने कर्तव्य का कभी विस्मरण नहीं किया। वे राम को केवल इसलिए ही अभिषिक्त नहीं करना चाहते थे कि वे उन्हें प्राण-प्रिय थे, अपितु नियमानुसार भी वे राम को ज्येष्ठ पुत्र के नाते अधिकार प्रदान करना चाहते थे। कैकेयी प्रिया थी किन्तु अभिषेक के विषय में राजा उसका तथा उसके पुत्र का विश्वास करते प्रतीत नहीं होते। यदि राजा ने भरत को बुलाकर अभिषेक का निर्णय किया होता तो सम्भवतः अनर्थ न होता किन्तु कौन जाने वैसी स्थिति में राजनीति की क्या स्थिति होती; जनता की मनःस्थिति क्या होती और लोगों की सहानुभूति किस ओर होती।

संभवतः कैकेयी से विवाह के समय उन्होंने उसके पुत्र को युवराज बनाने का वचन दिया होगा, किन्तु सूर्य-वंश की प्रथानुसार वे राम को युवराज बनाना चाहते थे, इसलिए उन्हें इतने छल करने पड़े।

भाषा-रामायणों में भी इन्हीं दशरथ के चरित्र की रक्षा हुई है। मानस और बँगला-रामायण के दशरथ में कुछ भिन्नता है, जो आगे स्पष्ट हो जाएगी। निम्न गुण सभी ग्रंथों के दशरथ में हैं—(१) योग्य शासक, (२) कैकेयी के आकुल प्रेमी, (३) अति-वत्सल पिता।

०असमीया रामायण में दशरथ के अनेक सत्गुणों का वर्णन किया गया है। वे सन्त, शीतल स्वभाव, स्वधर्म में शुद्ध-बुद्धि, सुन्दर-शरीर, रमणी-रमण, रतिरंग-महावीर, सदा धर्मरत एवं विष्णु-भक्त बताये गये हैं। उनके स्वभाव के विषय में कहा गया है—

> **धैर्य येन मेरु गिरि गम्भीर सागर। प्रतापत आदित्य क्रोधत महेश्वर॥**
> **दाने बलि कर्ण हरिश्चन्द्र समसर। बले बुद्धि समान भोगत पुरन्दर॥**
> **अस्त्रे शस्त्रे शास्त्रे नाना गुणे सुमण्डित। बृहस्पति सम राजा परम पण्डित॥**[1]

राम के प्रति उनका अगाध प्रेम उसी समय प्रकट हो गया था जब विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना पर उन्होंने गिड़गिड़ाकर कहा था—मैं दाँतों में तिनका दबाकर आपसे याचना करता हूँ, राम को मुझे दे दो उन्हें मत माँगो। दान्ते तृण धरि, तोमात मागोहो रामक दिओक मोक—८३०।

भरत के चरित्र पर विश्वास करते हुए भी उन्होंने नीति-निपुणता का परिचय देकर राम से कहा था—भरत तुम्हारी भक्ति करता है। तुम्हारी आज्ञा मानकर ही वह अन्न पान करता है, फिर भी तो कुमार भरत का स्वभाव मैं नहीं समझता (विश्वास करता) जब तक वह देश नहीं लौटता, शीघ्र ही राज्य ग्रहण कर

---

१. असमीया रामायण, १७५, ७६।

लो ।[1] स्पष्ट है कि राजा भरत पर विश्वास नहीं करते थे ।

'वृद्धर तरुणा भार्या आति वर रति'—दशरथ कामुक थे, इसीलिए कैकेयी पर वे आसक्त थे । इसके लिए आगे उन्हें कौशल्या और लक्ष्मण द्वारा खरी-खोटी भी सुननी पड़ीं । कामुक होते हुए भी उन्होंने कैकेयी को वर माँगने पर फटकारा है—

किनो अधोगामी तइ पापिष्ठी दारुणी । विहता स्वामी त केन भैलि निकारुणी । १८६१

उन्हें स्वयं भी अपने पर घोर ग्लानि हुई । स्त्री के अधीन होकर प्रिय पुत्र का परित्याग कर उन्होंने अपने को धिक्कारा है—

हाय प्रिय पुत्र मइ परिहरो किक । स्त्रीर अधीन मोक आछे धिकधिक ।। १८८६

इस ग्रंथ के दशरथ में कोई नवीनता नहीं है । उनके चरित्र की गरिमा को नष्ट नहीं किया गया है । वे राम के शोक में अत्यधिक दुःखी हैं । कैकेयी की उक्तियाँ भी उनकी छाती पर वज्र-प्रहार करती हैं, फिर भी वे वहुत-कुछ संयम से काम लेते हैं । **मानस** के दशरथ की भाँति उनका मौन-गांभीर्य गरिमा-मण्डित है ।

बँगला-रामायण में दशरथ का चरित्र आवेग-मय है । उनके चरित्र में संयम की गरिमा कम है, वे भावावेश में आने वाले पात्र हैं । उन्होंने एक क्षुद्रता भी की है । विश्वामित्र को प्रवंचित कर उन्होंने पहले राम-लक्ष्मण के स्थान पर भरत-शत्रुघ्न को दिया था । इस प्रकार एक ओर वे मिथ्याचारी और कपटाचारी हुए तो दूसरी ओर राम-लक्ष्मण से अधिक स्नेह रखकर अपने ही शेष दो आत्म को विपत्ति में झोंक देना उनके चरित्र की गंभीरता कम करता है । हो सकता है इतना अंश परवर्ती **कथकों** (कथा-वाचकों) ने जोड़ दिया हो ।

दशरथ राम को वहुत चाहते थे । जनक ने अत्यन्त कातर होकर दशरथ से मिथिला में कहा था—रामसीता को एक वर्ष के लिए छोड़ जाओ, तव दशरथ ने अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया था, 'मैं अपने प्राण को यहाँ छोड़कर शरीर ले जाऊँ ?' (शरीर लइया याव राखिया जीवन १० पृष्ठ ८७) राम का कहना था कि परम क्रुद्धावस्था में भी राजा मुझे देखकर हँस पड़ते थे—कोप यदि करेन हासेन आमा देखे । १०२ ।

मन्थरा ने कैकेयी को समझाते हुए कहा था—राजा तुम्हारे ऊपर इतने आसक्त हैं कि यदि तुम राजा के प्राण माँगो तो राजा प्राण दे देंगे । वे राम जैसे प्राण-प्रिय पुत्र को भी वन भेज सकते हैं ।[2]

---

१ तोमाक भकति मने भरत कुमारे । तोमारे से आज्ञा पालि अन्नपान करे ।।
तथापितो नुवुजोहो कुमार स्वभाव । शीघ्रे राज्य लैयोक देशत नाहि याव ।। १६४८

२. बँगला-रामायण, पृष्ठ ९८ ।

दशरथ ने दुःस्वप्न देखे थे, तभी उन्होंने चिंतित होकर, राम को बुलाकर अभिषेक का निश्चय प्रकट किया। भरत के प्रति वे अनुदार देखे जाते हैं। वे कहते हैं—तुम्हारे कनिष्ठ भरत का आशय (अभिप्राय) मैं नहीं जानता। उसे राज्य देना कभी उपयुक्त नहीं है।

कनिष्ठ भरत तार ना जानि आशय। तारे राज्य दिते कभु उपयुक्त नय। ९३

उन्होंने भरत द्वारा श्राद्ध लेना भी अस्वीकार कर दिया था[1]—भरते ना लइव श्राद्ध बा तर्पण—१०९।

मन्थरा ने दशरथ की कामुकता की ओर संकेत किया था। आगे स्पष्ट किया गया कि दशरथ अत्यन्त वृद्ध हैं और कैकेयी युवती है। कैकेयी के बिना उनकी गति नहीं। कैकेयी युवती नारी है और दशरथ बूढ़े हैं। बूढ़े को अपनी युवती नारी प्राणों से भी बढ़कर प्रिय होती है।[2]

राम के प्रेम के आगे उन्होंने अपनी युवती नारी के प्रेम को भी महत्ता नहीं दी, पहले तो वे कैकेयी के पैरों पर लोटते है, उनका सारा शरीर आँसुओं से तर हो जाता है।[3] किन्तु जब भी वह नहीं पसीजती तो उसे फटकार देते है।

बँगला-रामायण के भावप्रवण दशरथ के हृदय में वाल्मीकि-रामायण के दशरथ की तरह ही उग्र वात्सल्य-भाव है। वे रथ पर जाते हुए राम के पीछे नंगे पैर दौड़ पड़े, काँटों को रौंदते हुए। जब नही दौड़ पाये तो अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े।

काँटा खोंचा भांगी राजा उर्द्धश्वासे धान।
भूमिते पड़ेन राजा हये अचेतन ॥ १११

उड़िया-रामायण के दशरथ दुःखी-दरिद्र को दान देते थे। धर्मशास्त्र, पुराण और आगम सुनते थे। वे प्रत्यक्ष धर्म-मूर्ति थे। वे विवेकशील, मर्यादावान, शास्त्रज्ञ और धनुर्धर क्षत्रिय थे।[4] उन्होंने राम को प्रजापालन आदि के जो उपदेश दिये हैं उनसे प्रकट होता है कि वे स्वयं भी इन नियमों का पालन करते होंगे।

विश्वामित्र से उन्होंने कहा था, इस बुढ़ापे में मैंने पुत्र पाये है, उन्हें एक दण्ड

---

१. वाल्मीकि-रामायण में भी वर्णन है कि यदि भरत राज्य पाकर प्रसन्न हो तो, उसका दिया तर्पणश्राद्धादि का जल और पिंड मुझे न मिले। २-४२-९।
२. दशरथ अतिवृद्ध, कैकेयी युवती। कैकेयी विहने तार आर नाहि गति। पृ० ९९। कैकेयी युवती नारी, दशरथ बुड़ा। बुड़ार युवती नारी प्राण हैते बाड़ा। पृ० ९९।
३. कैकेयीर पाये राजा लोटे भूमितले। सर्व्वांग तितिल ताँर नयनेर जले॥ १०० बँगला।
४. उड़िया-रामायण, १।८।

के लिए भी न देखकर मैं निश्चय मर जाऊँगा ।[1] वात्सल्य के अतिरेक में वे राम से बोले थे—तुम वन मत जाओ । वचन मैंने दिये हैं, पाप लगेगा तो मुझे ।

उड़िया के दशरथ स्वयं कहीं काम-भाव नहीं दिखाते । किन्तु वे थे अत्यन्त ही कामुक । तभी लक्ष्मण ने उनके प्रति अत्यन्त कटु-वचन बोलकर उनके स्वभाव की इस दुर्बलता की ओर संकेत किया है—

मायारे एहाकु मोहिलाक से युवती । कामातुरे ज्ञान हराइला नरपति ।। २।३६

दशरथ को दोषमुक्त करने के लिए लेखक ने एक कल्पना भी की है । ब्रह्मा का भेजा हुआ 'दुर्बल' दशरथ के शरीर में प्रवेश कर उन्हें इतना दुर्बल बना देता है कि वे कैकेयी के वचनों के शिकार हो गये और अनिष्ट के निवारण का प्रयास न कर सके ।

मानस—गोस्वामी तुलसीदास ने दशरथ के चरित्र को संयमशील और निष्कलुष बनाने की चेष्टा की है । दशरथ के सद्गुणों का वर्णन वाल्मीकि के अनुसार ही किया गया है किन्तु शीलगांभीर्य में गोस्वामी जी के दशरथ सभी ग्रंथों के दशरथ से विशिष्ट हैं ।

उन्होंने भरत के प्रति कभी सन्देह प्रकट नहीं किया । वे भरत को 'कुल दीप'[2] कहा करते थे । कैकेयी से भी उन्होंने शपथ-पूर्वक कहा था—'मोरे भरतु रामु दुइ आंखी ।'[3]

दशरथ सभी पुत्रों को प्यार करते थे, फिर भी राम के बिना वे प्राण-धारण करने में समर्थ नहीं थे, इस तथ्य को उन्होंने निश्छल-भाव से स्वीकार कर लिया था, यद्यपि मदान्ध दुष्टा कैकेयी कुछ भी सुनने के लिए प्रस्तुत नहीं थी । दशरथ का राम-प्रेम अन्य पुत्रों के प्रेम के लिए बाधक नहीं हुआ । बंगला के दशरथ के समान उन्होंने भरत के प्रति दुर्व्यवहार नहीं किया । राम-लक्ष्मण की याचना पर भी वे बहुत दीन हो गये थे । कहाँ अत्यन्त घोर कठोर निशाचर और कहाँ परम किशोर सुन्दर राम ।[4] उनकी इस वात्सल्य-दुर्बलता पर विश्वामित्र जैसा उग्र-ऋषि भी मन ही मन मुग्ध हो गया था । उनका वात्सल्य हम बहुओं के प्रति भी देखते हैं । उन्होंने पत्नियों को आदेश दिया था—

वधू लरिकनीं पर घर आईं । राखेउ नयन पलक की नाईं ।।[5]

---

१. ए वृद्ध वयसे मोर बालक तनये । दण्डे ना देखिले मुं ये मरिबि निश्चये । १।६२
२. मानस, २।२८२।५ ।
३. वही, २।३०।६ ।
४. वही, १।२०७।६ ।
५. वही, १।३५४।८ ।

वन जाती हुई सीता को उन्होंने हृदय से लगाकर समझाया था। सुमंत्र से उन्होंने कहा था—वन की भयंकरता देख जब जानकी डरे तो उनसे कहना—पुत्री, वन में अनेक कष्ट हैं, तुम घर लौट चलो। कुछ दिन यहाँ और कुछ दिन मायके में रह कर अवधि काट लेना।

यह उनका उग्र वात्सल्य ही था कि कैकेयी के चरणों पर गिरकर उन्होंने मनाने की चेष्टा की थी, किन्तु उसके न मानने पर फटकार भी दिया था—

अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचनु ओट बैठु मुहु गोई ॥[1]

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार ही भाषा-रामायणों (विशेषतः बँगला) के दशरथ भी पुत्र-प्रेम के मोह में ऐसी बातें कह गये हैं जो राम को कर्त्तव्य-विमुख कर सकती थीं। वे राम के विरह की कल्पना से इतने व्याकुल और संयम-हीन हो जाते हैं कि न तो अपने कर्तव्य का ध्यान रखते हैं और न राम के कर्तव्य का। कभी स्वयं राम को एक दिन के लिए ही रुक जाने के लिए कहते हैं और कभी समस्त सैन्य और निधि को राम के साथ भेजने की बात करते हैं। किन्तु तुलसीदास के दशरथ ने राम को कहीं ऐसा उपदेश नहीं दिया, जिससे कि वे कर्तव्य-पराङ्मुख हों। साथ ही वे यह भी नहीं चाहते कि राम आँखों की ओट हों। वे चाहते हैं कि कुछ ऐसा हो जाए कि कर्तव्य की अवहेलना भी न होने पाए और राम वन को भी न जाएँ। वे इसके लिए मन ही मन शंकर को मनाकर कहते हैं—

अजसु होउ जगु सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होही ॥[2]

दशरथ की कामुकता पर तुलसी ने भी पर्दा नहीं डाला है। रानी को कोप-भवन में सुनकर वे सहमकर ठिठक गये थे। त्रिशूल, वज्र और तलवार की चोट खाने वाले दशरथ कामदेव के पुष्प-बाण नहीं सह सके थे।[3]

इस दोष के अतिरिक्त दशरथ में और कोई दोष नहीं देखा गया। अन्य कोई पात्र भी दशरथ के विरुद्ध कोई बात नहीं कहता, जबकि अन्य रामायणों में कौशल्या, लक्ष्मण, भरत आदि अनेक लोग अत्यन्त कटु बातें कहते हैं। मानस में मन्थरा अवश्य ही उनके प्रियभाषी-गुण में भी दोष ढूँढ़ लेती है। कैकेयी को भड़काने के लिए वह राजा के विषय में कहती है—'मन मलीन मुँह मीठ'—२।१७।

ऐसे कर्तव्यपरायण राजा दशरथ ने रघुकुल की सदा से चली आने वाली रीति का पालन भी कर दिया और पुत्र के बिना जीवित न रह सकने वाले अत्युग्र

---

१. मानस, २।३५।६।
२. वही, २।४४।१,२।
३. सूल कुलिस असि अँगवनि हारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥ २।२४।४।

वत्सल पिता की प्रतिज्ञा को भी पूरा कर दिया, अवश्य ही अपने प्राणों को दाँव पर लगा कर। भरत के शब्दों में 'सरल, सुशील और धर्मरत'[1] ऐसा राजा वसिष्ठ के शब्दों में न हुआ है, न है और न होगा ही।

भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥ २।१७२।६

मानस के दशरथ जैसा संयम कुछ-कुछ असमीया-रामायण में देखा जाता है। उड़िया का अयोध्याकाण्ड संक्षिप्त है, उसमें दशरथ के चरित्र की मार्मिकता का उद्घाटन नहीं है। बँगला-रामायण के दशरथ का वर्णन विस्तृत है। तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में दशरथ के पराक्रम और विवाहों का विस्तृत वर्णन प्रथम-काण्ड में हुआ है। तुलसी ने अयोध्याकाण्ड वाले अंश पर ही अधिक जोर देकर केवल इतने अंश को ही अत्यन्त तन्मयता एवं मार्मिकता के साथ चित्रित किया है।

हनुमान

वाल्मीकि के हनुमान प्रभुभक्त, संस्कृतज्ञ, राजनीति-कुशल एवं वीरपुंगव हैं। प्रथम भेंट के समय ही राम ने उनके पांडित्य की प्रशंसा की है। अशोक-वन में सीता से बात करने के पूर्व वे मन ही मन सोचते हैं इनसे संस्कृत-भाषा में बातचीत की जाए या किसी अन्य भाषा में। एक ओर जहाँ वे सुग्रीव के योग्य सचिव रहे वहाँ दूसरी ओर राम के प्रति भी उन्होंने प्रभु-भक्ति का उत्कट आदर्श प्रस्तुत किया। उनकी शूर-वीरता और बुद्धि पर ही विश्वास कर राम ने उन्हें सीता के लिए अँगूठी का अभिज्ञान दिया था।

भाषा-रामायणों के हनुमान और वाल्मीकि-रामायण के हनुमान में पार्थक्य हो गया है। ब्रह्म-राम के भक्त दिखाने के कारण उन्हें पंडित की अपेक्षा भक्त रूप में अधिक चित्रित किया गया। कहीं-कहीं वे भक्त नहीं अज्ञ-भक्त के रूप में चित्रित किये गये हैं और वे एक सामान्य वानर मात्र रह गये हैं।

०**असमीया** के हनुमान वाल्मीकि-रामायण के हनुमान से साम्य रखते हुए चलते हैं। उनमें अपनी कोई विशेषता परिलक्षित नहीं होती, वाल्मीकि के हनुमान के गुणों का भी पूर्ण-विकास उनमें नहीं मिलता। राम से भेंट सामान्य-रूप से हुई। अंगद का विद्रोह-भंग करने के समय उनके तर्क भी इतिवृत्त-कथन के लिए है। इनमें कुछ-कुछ वानरी-वृत्ति दिखायी पड़ती है, किन्तु उतनी नहीं जितनी कि शेष दो पूर्वांचलीय-रामायणों में है। रावण के साथ सोयी मन्दोदरी को आत्मसमर्पिता सीता समझकर ये रो पड़े। फिर मुँह सूँघने से मदिरा की गन्ध पाकर तथा वेणी की नाप आठ हाथ से कम पाकर समझ गये कि यह सीता नहीं हो सकती।

०**बँगला-रामायण** में हनुमान के पंडित, भक्त और वानर रूप का मिश्रण

---

१. मानस, २।१६१।५।

हुआ है। राम से भेंट के समय ही उन्होंने अपनी नीति-कुशलता का परिचय देते हुए कहा था—सुग्रीव के पास राज्य नहीं है और तुम्हारे पास नारी नहीं है। उसे वालि ने राज्य छीनकर निकाल दिया है। सुग्रीव तुम्हारी सहायता से राज्य पाएगा और वह तुम्हारी सीता का उद्धार करेगा।[1]

किष्किन्धापुरी में जब लक्ष्मण सुग्रीव को डाँटने पहुँचे तो वह भी बड़ा कुपित हुआ था। उस समय तीक्ष्णमति हनुमान ने ही उसे समझाया था।[2] सीता को न खोज सकने पर सुग्रीव के डर से अंगद ने षड्यंत्र किया कि कोई भी वन्दर लौट कर न जाए। हनुमान ने अपने तर्कों से उसका षड्यंत्र नष्ट कर यह भी कहा कि सभी वानरों के स्त्री-पुत्र हैं, तुम्हारी तरह से ये उन्हें न छोड़ेंगे। केवल तुम्हीं अकेले वनों में घूमते फिरना।[3] सीता ने उन्हें बुद्धि में **बृहस्पति** और **पंडित** कहा था।[4] वे बुद्धिमान प्रपंची भी जान पड़ते हैं। वे रूप बदलकर मन्दोदरी और चंडीपाठ-रत्त बूढ़े बृहस्पति को ठग आते हैं।

वे राम के ब्रह्मत्व से परिचित एवं उनके भक्त थे। लक्ष्मण ने कहा था—तुमसे बढ़कर राम का कोई भक्त नहीं—'श्रीरामेर भक्त नाहि तोमार समान-४६२।' किंतु उनकी भक्ति में अज्ञता है। नागपाश के समय गरुड़ के अनुरोध पर राम ने सब से छिपकर उन्हें कृष्ण-रूप दिखाया था। हनुमान महायोग से इस तथ्य को जान लेते हैं और गरुड़ के प्रति घोर-ईर्ष्या का भाव रखकर प्रतिशोध लेना चाहते हैं। सीता द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य माला के दाने इसलिए फोड़ डालते हैं कि उनमें राम-सीता का रूप नहीं है। लक्ष्मण के व्यंग्य करने पर वे अपने हृदय को फाड़कर अस्थि-अस्थि पर राम-नाम अंकित दिखा देते हैं। सीता को लंका में न खोज पाकर वे रो देते हैं।

कहीं-कहीं ये **वानर-वृत्ति**-युक्त भी दिखाये गये हैं। सेतु बनाते समय नल बायें हाथ से पत्थर ला रहा था, उसे ये मारने दौड़ पड़े। गिलहरियों को पकड़कर समुद्र में फेंका। मेघनाद के यज्ञ-कुण्ड पर मूत्र-त्याग कर आये।[5] महीरावण के द्वारा ठगे

---

१. सुग्रीवेर राज्य नाहि, नाहि तव नारी। वालि राज्य हरिल, करिल देशान्तरी॥
सुग्रीव पाइवे राज्य साहाय्ये तोमार। सुग्रीव करिवे तव सीता उद्धार॥
बँ० रा०, १६४।

२. महामंत्री हनुमान अति तीक्ष्णमति। कहेन हितोपदेश सुग्रीवेर प्रति॥
बँ० रा०, १८३।

३. तोमा हेन स्त्री पुत्र छाड़िबे कोन जन। एकाकी केवल तुमि फेर बने वन॥
बँ० रा०, २०३।

४. जानकी बलेन तुमि विचारे पण्डित। महावीर हनु तुमि बुद्धे वृहस्पति॥
बँ० रा०, ४३७।

५. यज्ञकुण्ड उपरेते हनुमान मुते। पृ० ३७३।

जाकर खिसिया जाते हैं। सीता को सताने वाली राक्षसियों के दन्त और केश उखाड़कर उनका मुख बालू में घिसना चाहते हैं। विभीषण ने इन्हें वनजन्तु, बुद्धिहीन वानर कहकर इनकी गणना पशुओं में की है—

१—विभीषण बले हनु पशुते गणन।
२—वन जन्तु बानर से बुद्धि नाइ घटे। ३७१

हनुमान की वीरता में सन्देह नहीं है। वे अहंकारी भी हैं। राम ने उनका अहंकार दूर किया है।[1]

उत्तरकाण्ड में सीता ने इन्हें पहचाना कि ये तो भोलाशंकर के अवतार हैं। बँगला-रामायण में हनुमान का चरित्र कर्तव्य-परायण सरल बुद्धि, प्रिय घरेलु भृत्य जैसा है, उनके चरित्र में भृत्य-सुलभ अज्ञता भी है।

०**उड़िया-रामायण** के हनुमान बँगला-रामायण के हनुमान जैसे भक्त तथा वानर-वृत्ति-युक्त हैं।

राम से मिलते ही इन्होंने उन्हें देव-देव, भक्त-वत्सल, अपारमहिमा और दास-हितकारी समझ लिया था।[2] कथा के अन्त में उन्होंने राम से वर माँगा था कि जब तक राम की कीर्ति रहे, तब तक उनके मन में भक्ति बनी रहे।[3]

नल को बायें हाथ से पत्थर लेता देख ये भी रुष्ट होकर झपट पड़े थे।

इनके चरित्र में और भी कमियाँ हैं। १—रावण की गोद में पड़ी मन्दोदरी को देखकर उसे सीता समझ अपने को धिक्कारते हुए अपने गाल को खंड-खंड कर देने को प्रस्तुत हो गये थे। २—सीता को ये माता कहते हैं—'दिअसि सन्देश मा गो विलम्ब न कर।'[4] साथ ही उनके वक्षःस्थल और क्षीण मध्यभाग (कटि) की प्रशंसा भी करते हैं।

धन्य वक्षस्थल धन्य एहा मझा क्षीण। ५।१८

इन्हें घमंड भी था। भरद्वाज राम के कार्यो की प्रशंसा कर रहे थे, इसे सुनकर हनुमान मन ही मन क्षुब्ध हुए कि कार्य किया मैंने और यश हो रहा इनका।[5]

फिर भी राम के प्रति उनके मन में भक्ति तो थी ही और उन्होंने राम के अनेक कार्य सम्पादित किये थे, इसीलिए राम ने भी उनके प्रति कृतज्ञता-प्रकाश किया

---

१. देखिए, अध्याय ६—उत्तरकाण्ड।
२. उड़िया-रामायण, ४।६।
३. वही, ७।६६।
४. वही, ५।२२।
५. वही, ६।३२६-२७।

है—सबु यश मोते जाण हनुमन्त देला—६।२००।

०मानस के हनुमान राम के भक्त हैं। यदि भरत प्रबुद्ध-भक्त हैं तो हनुमान ऐसे अज्ञ-भक्त हैं जिनकी रक्षा स्वयं राम उन्हें शिशु-पुत्र समझकर करते हैं। (वे बँगला० के हनुमान की तरह अज्ञ कदापि नहीं हैं!) राम को प्रथम भेंट में ही उन्होंने पहचान लिया कि ये ही प्रभु हैं। वे राम के चरणों में गिर पड़े, उनका शरीर पुलकित हो उठा, मुँह से वचन नहीं निकले।

हनुमान के लिए समस्त विश्व राममय है। चन्द्रमा की कालिमा-विषयक उक्तियों के समय उनकी उक्ति विचारणीय है। वे चन्द्र-कलंक में राम की श्यामता का आभास पाते हैं। चन्द्रमा के हृदय में राम बसे हैं, इसीलिए वह काला है। हनुमान अपने मन की बात कह रहे हैं। यहाँ बँगला के हनुमान का स्मरण हो आता है, जो माला के दाने फोड़कर उनमें राम-सीता के दर्शन करना चाहते हैं।

वाल्मीकि-रामायण में हनुमान सीता से बात करते समय पंडित एवं नीतिकुशल दूत प्रतीत होते हैं, मानस में वे एक आज्ञाकारी भृत्य के रूप में देखे जाते हैं। सीता भी उन्हें पुत्रवत् स्नेह करती है।

इन हनुमान के चरित्र में बँगला के हनुमान जैसा विरोधाभास नहीं है। न वे पंडित हैं और न वानर। वे तो राम के अनन्य-भक्त हैं, भक्तों के आदर्श हैं, अथवा स्वयं मूर्तिमान तुलसीदास हैं। उत्तर भारत के गाँव-गाँव में बजरंग बली की जो पूजा होती है, वह मानस का ही प्रभाव है। उत्तर भारत में तुलसी ने उन्हें भक्त और वीर रूप में अमर कर दिया है। आज भी मानस का पाठ करते समय विश्वास किया जाता है कि हनुमान अदृश्य रूप से कथा सुनने आते हैं, अतएव पाठ के पूर्व ही उनके आसन की व्यवस्था कर दी जाती है। बँगला-लेखक ने भी हनुमान के विषय में कहा है—तुम कहीं भी रहो, जहाँ रामनाम प्रसंग होगा, तुम उस स्थान पर (अवश्य) पहुँचोगे।

रामनाम प्रसंग हइबे येइ स्थाने। यथा तथा थाक तुमि आसिबे सेखाने ॥४६२

रावण (प्रतिनायक)

वाल्मीकि-रामायण का प्रतिनायक रावण 'ज्वलन्त पावक' के समान तेजस्वी एवं आदित्य के समान दुष्प्रेक्ष्य था।[1] वह चमकीले पन्ने की भाँति शरीर की कान्तिवाला, शुद्धस्वर्ण-कुंडलधारी, लम्बी भुजाओं, स्वच्छ-दन्त एवं विशाल-मुख वाला तथा पर्वत के समान लम्बा था।[2] उसके शरीर पर अनेक युद्धों के घावों के चिह्न थे, वह

---

१. वाल्मीकि-रामायण, ३।३२।५ एवं ६।५६।२७।

२. स्निग्धवैडूर्यसंकाशं तप्तकाञ्चनकुण्डलम्।
सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम् ॥ ३।३२।६।

पर-स्त्रीगामी एवं सभी धर्मों की जड़ें काटने वाला था।[1] उसके प्रताप, वैभव एवं वलिष्ठ शरीर के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अनेक जाति की सुन्दरियों ने स्वेच्छा से उसे अपना पति स्वीकार कर लिया था। इतने गुणों के होते हुए भी वह भोगवादी, अत्याचारी, अधार्मिक, कामुक, नृशंस-विजेता एवं लुटेरा था। उसके राज्य का विस्तार भारत के भी बड़े भूभाग पर था। पितृ-पक्ष से वह आर्य होते हुए भी आर्य-संस्कृति का घोर-शत्रु था। उसके कारण दक्षिण-भारत के तपस्वी एवं गृहस्थ सामान्य जीवन-यापन नहीं कर पाते थे।

वह शैव था, एवं मानुष-राम को वह उँगली के बराबर भी नहीं समझता था—अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः।[2] शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने मात्र के कारण उसने राम से विरोध नहीं लिया था, अपितु शूर्पणखा द्वारा वर्णित सीता के सौन्दर्य पर वह प्रलुब्ध हुआ था। पर-स्त्री-गामी और कामुक रावण स्वयं स्वीकार करता है कि सीता के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य के चिन्तन से वह 'कामेन कलुषी कृतः'[3] हो गया था। सीता को बलात् रमणी बनाना उसने उचित नहीं समझा था। काम-कला प्रवीण रावण ने सीता के स्वेच्छा-रमण का आनन्द लेने के लिए सीता द्वारा याचित एक वर्ष की अवधि स्वीकार कर ली थी। सीता नारी-रत्न थीं, वह उन्हें असन्तुष्ट नहीं, मुग्ध करना चाहता था।

उसकी राजसभा में उपस्थित हनुमान उसे 'महाप्राज्ञ', 'बुद्धिमन्त' एवं 'राक्षस-राज' कहकर आदरपूर्वक सम्बोधन करते हैं।

निश्चय ही वह असत् शक्ति का प्रतीक था। उसका सम्बन्ध किसी जाति या देश-विशेष से नहीं जोड़ा जा सकता। उस पर राम की जय दुष्टता पर मानवता की जय है। प्रत्येक देश की संस्कृति में 'राम' और 'रावण' तत्त्व हो सकते हैं।

असत् शक्ति के प्रतीक रावण के प्रति भारतीय-जनों के हृदय में इतना अधिक घृणा-भाव वर्द्धित हुआ कि भाषा-रामायणों में उसका चरित्रांकित करते समय कवियों ने कला का ध्यान नहीं रखा। पग-पग पर उसका पराभव दिखाया गया। परम्परानुगत उसकी विजयों के साथ ही उसे हनुमान, अंगद, दूत, मन्दोदरी आदि के द्वारा उसके ही घर में उसे लांछित कराया गया। कवि भूल गये कि अपने ही दुर्ग में स्थित होकर यह दुर्द्धर्ष राक्षस-राज अपनी भर्त्सना कैसे सहता रहा होगा।

इस परिवर्तन के साथ ही एक और मुख्य परिवर्तन किया गया। एक ओर जहाँ राम के ब्रह्मत्व का विकास हुआ, तो दूसरी ओर यह कल्पना भी पनपी कि ब्रह्म-राम का अवतार रावण का उद्धार करने के लिए हुआ। रावण राम का प्रच्छन्न भक्त

---

१. वाल्मीकि-रामायण, ३।३२।१०-१२।
२. वही, ३।४८।१६।
३. वही, ६।१२।१८।

चित्रित हुआ। दृष्टिकोण ही बदल गया, बेचारा शापग्रस्त रावण राक्षसयोनि से तभी उद्धार पा सकता है जब कि उसके अत्याचार इतनी अधिक मात्रा तक बढ़ जाएँ कि उसके संहार के लिए ब्रह्म को नररूप धारण करने के लिए बाध्य होना पड़े।

वाल्मीकि का रावण सीता का कामुक प्रेमी है किन्तु भाषा-रामायणों का रावण भक्त भी है, अतएव इन लेखकों ने रावण के चरित्र को कामुकता एवं भक्ति के रंगों को मिश्रित कर चित्रित किया है—विशेषतः असमीया को छोड़ शेष तीन रामायणों में।

इन प्रमुख परिवर्तनों के साथ कुछ अन्य असमताएँ भी हैं, जिनका पृथक्-पृथक् उल्लेख नीचे किया जाएगा।

असमीया-रामायण का रावण—रावण का चरित्र बहुत विस्तृत नहीं है, जितना कुछ है वह आदि-रामायण से समानता रखता है। यहाँ रावण क्रोधी, अहंकारी और निर्भीक योद्धा के रूप में प्रस्तुत है। वह राम के ब्रह्मत्व से परिचित प्रतीत होता है किन्तु कहीं भी वह भक्त नहीं दिखाया गया। एक ही स्थल पर ऐसा वर्णन है—

जानो मइ सीता लक्ष्मी जनक जियारी। आर जानो राम मधुसूदन मुरारी ॥
रामर हातत जानो मोर याइब जीव। तथापि निदिबो सीता जनकर जीव ॥

(मैं जानता हूँ कि जनक की पुत्री सीता लक्ष्मी हैं, और यह भी जानता हूँ कि राम मधुसूदन-मुरारी हैं। मुझे ज्ञात है कि राम के हाथ से मेरे प्राण जाएंगे तथापि मैं जनकपुत्री सीता को नहीं दूँगा। ४६६६।)

उसने सीता का हरण लक्ष्मी समझकर नहीं रमणी समझकर किया था। वह हर प्रकार से सीता को मुग्ध करने की चेष्टा करता है। अपनी विजयों पर अहंकार प्रकट कर सीता को अनेक प्रकार से अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है—राम से मिलने की आशा भग्न कर, अपना ऐश्वर्य-वर्णन कर और दीनता-प्रकाश कर।

रामे तोक निबहेन आशा परिहर। चरणत धरो मोक अनुग्रह कर ॥
पुष्पक बिमान तिनि भुवन ते सार। इहाते रमण हौक तोमार आमार ॥
दशगोटा शिरे तोर चरणत ञाण्टो। मुखे खेर धरिया कातरि करो मातो ॥

(राम तुझे छुड़ा सकेंगे इस आशा को छोड़ दे। मैं पैर पड़ता हूँ मुझ पर अनुग्रह कर। तीनों लोकों के सार पुष्पक-विमान में मेरा तेरा रमण हो। मैं अपने दसों सिर तेरे चरणों में रख रहा हूँ। मुँह में तिनका रखकर गिड़गिड़ा रहा हूँ। ३२७५-३२७६)

सीता के शब्दों में वह चौदह शास्त्रों में पारंगत एवं धर्म-अधर्म का ज्ञाता था। किन्तु उसके इस रूप का कहीं विकास नहीं देखा गया। सीता जब उसकी अनुनय को

ठुकरा देती हैं, तो वह संयमहीन होकर क्रोध से बौखला उठता है—

हाओरी पापिष्ठी मोक हेनय सिद्धान्त। चवरर चोटे तोर सारि एरो दान्त ॥ ३१८३।

असमीया-लेखक ने अन्य पात्रों द्वारा उसकी अधिक भर्त्सना नहीं करायी है। हनुमान एवं अंगद आदि से उसके वार्त्तालाप संक्षिप्त हैं।

बँगला-उड़िया के रावणों के समान वह दीन नहीं है, वह मानस के रावण के समान निश्शंक है। सभी योद्धाओं के मारे जाने पर वह युद्ध के लिए अकड़ता हुआ चला—आज मेरा बल देखो, राम-लक्ष्मण सहित समस्त वानर-सेना को मैं मार डालूँगा। पृष्ठ ३२८।

०**बँगला-रामायण का रावण**—भोगी और भक्त दोनों एक साथ हैं। सीता का हरण करते समय वह रूप-लोभी ही प्रतीत होता है। परस्त्री देखकर उसे प्रसन्नता हुआ करती थी।[1] उसने अनेक नारियों का अपहरण किया था।[2] सीता के प्रति वह कामातुर-चेष्टाओं का प्रकाश करता है। वह सीता को मनाकर कहता है—'डरो मत, मेरी लंका में देवता भी नहीं आ सकते। तुम मेरी ईश्वरी हो, मैं तुम्हारा सेवक हूँ। तुम्हारी आज्ञा पाकर तुम्हें अन्तःपुर में ले जाऊँगा।' वह सीता के चरणों पर गिरकर कहता है—राजा दशानन किसी के पैरों पर नहीं पड़ता, किन्तु तुम्हारे चरणों पर दशों मस्तक लुंठित कर रहा हूँ—

कारो पाये नाहि पड़े राजा दशानने। दशमाथा लोटाइलाम तोमार चरणे ॥
पृ० २२६

०भक्ति के क्षेत्र में वह अत्यन्त गलदश्रु-भावुक है। उसकी भावुकता मानस के रावण से भी बढ़ी हुई है। मानस में उसे राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान प्रारम्भ में ही हुआ है और बँगला-रामायण में जब उसके प्रमुख वीर मारे जाते हैं, तब होता है।

मने मने चिन्ता करे राजा दशानन। एकान्त जानिनु राम देव नारायण ॥
यदिच रामेर हाते हयत मरण। एकांत वैकुण्ठ याब ना याय खण्डन ॥

(राजा दशानन मन ही मन चिन्ता कर रहा है कि मैंने बिल्कुल जान लिया, राम देव नारायण हैं। यदि राम से मेरी मृत्यु होती है तो मैं निश्चय रूप से वैकुण्ठ जाऊँगा। पृष्ठ ३८१।)

अपने सौभाग्य पर गर्व करते हुए उसने मन्दोदरी से कहा था—महालक्ष्मी सीता-ठाकुरानी शक्ति-रूपा है, तुम मुझे क्या समझाओगी मैं यह जानता हूँ।—मुनि और ऋषि ध्यान करते हुए भी जिनका ध्यान नहीं कर पाते, वे राम जलाहार किये हुए मेरा भजन कर रहे हैं। श्री राम अपने मन में मेरा रूप जाग्रत किये हुए सोच

---

१. परस्त्री देखिले तुमि बड़ हओ सुखी। १४७।
२. हरेछ अनेक नारी पेयेछ निस्तार। १४८।

रहे हैं कि कब मेरा वध करेंगे।[1]

यहीं एक दुर्बलता भी है उसमें। मन्दोदरी के समझाने पर वह अवश्य ही सीता को वापस कर देता, किन्तु अब जगहँसाई का डर है—वह विभीषण और इन्द्र की हँसी कैसे सह सकता है। इससे तो अच्छा है राम के बाण से ही मृत्यु हो।[2]

उसकी अश्रु-विगलित भावुक-भक्ति का परिचय मिलता है राम के सम्मुख रणस्थल में, जहाँ वह गले में धोती बाँधकर बंगाली-शैली में प्रणाम कर रहा है और उसके बीसों नेत्रों से जलधार बह रही है। राम भी उसकी विनय देख कर धनुषबाण फेंक देते हैं।[3]

०भक्ति की विह्वलता के अतिरिक्त अन्य कई दुर्बलताओं से भी इस रामायण का रावण तेजोहत किया गया है। सेतुबन्ध हो जाने पर उसका अहंकार टूटने लगा था।[4] वह बड़ा शोक-कातर हो गया। प्रिय महारथियों के मरने पर वह बड़े-बड़े आँसू गिराकर लोटपोट होकर रोया।[5] सभी प्रमुख योद्धाओं के मारे जाने पर वह रोया भी है और क्रुद्ध भी हुआ है। युद्ध की तैयारी के लिए वह अपने ही हाथों सज रहा है।

भये अभिमाने राजा आँखि छलछल। कोपमने युझिते चलिला रणस्थल॥
आपनि करिछे साज लंका अधिकारी। मेघेर बरण अंगे धवल उत्तरी॥ ४०९

वह डरपोक भी है। युद्ध की स्थिति विषम हो जाने पर वह यह भी कह उठता है; ऐसे सारहीन युद्ध से अब और प्रयोजन नहीं है, मैं किवाड़ बंद कर लूँगा, प्राण से बढ़ कर कोई धन नहीं है—

हेन छार युद्धे आर नाहिं प्रयोजन। थाकिब कपाट दिया प्राण बड़ धन॥ ३३५

०उसकी दूरदर्शिता की कमी की ओर कुम्भकर्ण ने अच्छा ध्यान आकृष्ट किया है। कुम्भकर्ण ने उससे कहा, तुमने राम को सेतु बनाने ही क्यों दिया। समुद्र के उसी पार जाकर युद्ध क्यों नहीं किया। असमीया-रामायण में अवश्य ही कुछ ऐसा ही संकेत है, वहाँ कुम्भकर्ण कहता है, हाथी के दाँत उखाड़ लाये और हाथी छोड़ आये। सीता को लाये थे तो राम को मार आते।

---

१. बँगला-रामायण, पृ० ४१०।
२. वही, ४१०।
३. वही, ४१५, ४१६, ४३१।
४. बाँधा गेल सागर, कटक हैल पार। दिने दिने रावणर टुटे अहंकार॥ २६०।
५. देखिए, कुंभकर्ण की मृत्यु—३१६, तरणीसेन वध—३५६, मेघनाद-वध पर—
उच्चैःस्वरे डेके बले कोथा इन्द्रजित। आछाड़ खाइया पड़े हइया मूर्च्छित॥
पुत्र शोके कान्दि राजा गड़ागड़ि याय। दशमुण्ड कलेवर धूलाते लोटाय॥ ३७८।

०रावण का पराभव-चित्रण करने की ओर भी लेखक ने ध्यान दिया है। वह स्वयंवर में सफल न हुआ तो वच्चे टिटकारी देते हुए उसे खदेड़ते हैं। युद्धस्थल में नील उसके मस्तक पर मूत्र-त्याग करते हैं। हनुमान और अंगद उसे उसकी ही राज-सभा में खरी-खोटी सुनाते हैं।

०इन दुर्वलताओं के अतिरिक्त उसमें दो गुण भी हैं—वाक्चातुर्य और नीति-कुशलता। उसका वाक्चातुर्य मानस के रावण का स्मरण दिला देता है। उसने अंगद से कहा था—'क्या चण्डाल का मित्र राम यह सोच रहा है कि जंगली वन्दरों की सहायता से वह सीता का उद्धार कर लेगा। राम की जितनी भी योग्यता है, सब देख रहा हूँ, ऐसा न होता तो क्यों उसका भाई उसे देश से खदेड़ देता। वह स्त्री को लेकर वन में क्यों चला आया, भाई को मारकर राज्य-ग्रहण कर देश में क्यों नहीं रहा।[1]

सुपार्श्व ने रावण को सीता चुराकर ले जाते देखा, तो उसे मारने के लिए घेर लिया। रावण ने नीतिकुशलता का परिचय दे कर उससे छुटकारा पाया। उसके तर्कों में कितना वल है—१. हमारी तुम्हारी कोई शत्रुता नहीं (तव तुम क्यों वोलो) २. राम ने मेरी सहोदरा वहिन के नाक-कान काट लिये और खर-दूषण भाइयों का वध किया—(इन अपराधों के लिए) मैंने उनकी नारी का हरण किया है।[2] इसी प्रकार उसने अंगद को फुसलाकर अपने पक्ष में करना चाहा था—राम को जो करना है आकर करें, मुझसे तुझे क्या करना है—(क्या शिकायत है)। (उसने) शूर्पणखा की नाक काट ली, मेरे जीवन को धिक्कार है।[3]

वह राजनीति का पण्डित था, स्वयं राम ने उसके चरणों की ओर खड़े होकर आसन्न-मृत्यु रावण से राजनीति की शिक्षा ग्रहण की थी।

उड़िया रामायण का रावण—वेदपाठी-पण्डित, राजनीतिज्ञ, वाक्चतुर, गुण-ग्राही, विष्णुभक्त और घोर-कामुक है। उसके लिए कहा गया है, कि वह संग्राम में शक्त एवं सभा में वक्ता है—'संग्रामे शकता तु ये सभारे वकता' ६।१५।

०सीता को छलपूर्वक हर लाने के लिए वह संन्यासी-वेश में जाकर कर्णाट-राग

---

१. एइकि भेवेछे गुहक-चण्डालेर मिता। वनेर वानर सहाय करे उद्धारिवे सीता ॥
रामेर योग्यता यत सव देखते पाइ। नैले केन देश थेके दूर करे देय भाइ ॥
नारी संग लइया से वने केन प्रवेशे। भाइ के मेरे राज्य लये रय ना केन देशे ॥
—२७६।

२. वँगला-रामायण, १५५।

३. राम या पारे करुक एसे, तोर सने मोर कि।
सूर्पणखार नाक काटे, वृथा आमि जी। २७६।

में चारों वेदों का गान करता है तथा ऊँकार गायत्री-सावित्री आदि का पाठ भी करता है—

चारिबेद उङ्कारि कर्णाट रागे गाइ। ओंकार आदि गायत्री साबित्री पढ़इ ॥३।३८

वैसे भी वह स्नान-समापन कर चारों वेदों का पाठ करता और विष्णु नाम के लक्ष-पदों का परायण करता था—५।११२।

०वह अपने मंत्रियों को दूत बनाकर विभीषण और सुग्रीव के पास भेजकर उन्हें प्रलोभन देकर फोड़ने की राजनीति चलता है। विभीषण से उसने कहलाया—'तू शत्रु की शरण कैसे गया? लौट चल।' सुग्रीव से कहा 'वालि के नाते तुम मेरे छोटे भाई हो, तुम्हें अयोध्या के सिंहासन पर बैठाऊँगा।'[1]

०सीता के आगे राम को हीनवीर्य सिद्ध कर वाक्कौशल से वह अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है—'राम निर्बल है तभी तो वन में आया है और कनिष्ठ भाई राज्य करता है। तुझ जैसी सुन्दरी को वह वन में कष्ट दे रहा है। सुन्दरी मेरा हाथ पकड़कर सुख दो।' सीता को अनेक प्रलोभन दिये, न मानने पर उसने कहा तो आज राम अपनी नारी की रक्षा करें। और वह सीता को बलात् रथ में बिठाल कर भाग आया।[2]

०राम से युद्ध कर और लंका लौटकर मेघनाद से राम के पराक्रम की प्रशंसा करता है। मेघनाद क्षुब्ध हो कर कहता है, युद्ध से लौट आये हो इसीलिए ऐसा कहते हो। रावण समझाता है कि जीत तो अपनी ही होगी, किन्तु आज का समर था अपूर्व।[3]

०अन्य ग्रंथों के समान इस ग्रंथ में भी रावण राम का भक्त है, वह श्रीराम के हाथों मरने के निमित्त ही राम को सीता प्रदान नहीं करना चाहता—

श्रीराम हस्तरे मुहिँ मरिबा निमन्ते। तेण मुहिँ सीताकु न देबि कदाचिते। ५।६

उसने गेरू, खड़ी और कस्तूरी से स्थान-स्थान पर ऐसा लिख दिया था, जिसे पढ़कर हनुमान ने सोचा था 'कौन कहता है रावण ज्ञान-हीन है। उसने राम को विष्णु जानकर ही सीता का हरण किया है।'[4]

०रावण घोर कामुक भी दिखाया गया है। वेदवती से अमर्यादित बातें[5]

---

१. उड़िया-रामायण, ५।१०६,१०७।
२. वही, ३।४०,४१।
३. वही, ६।७७।
४. वही, ५।६।
५. वाहे वाहा वान्धि करि करिबई कोल। गाड़ेण मर्द्दिबि ये पयोधर मण्डल।
—७।४३।

है और उसे पकड़ कर चूम लेता है। नारी से भेंट होते ही वह कामशास्त्र की कलाओं का ज्ञान प्रकट करने लगता है।[1] मंदोदरी से बहाना कर वह काम-वश होकर सीता के पास जाकर प्रेम-निवेदन करता है। विभीषण को डाँटकर कहता है—'शुद्ध-स्वर्ण-जंघाओं और अमृत-भरे कुचों वाली सीता के साथ रति-सुख नहीं छोड़ सकता। सीता चतुर युवती और शृंगार से परिचित है, तभी तो राम के साथ आयी है, मैं ऐसी रमणी को छोड़ नहीं सकता।'[2] सीता से भी उसने कहा—'तेरा हृदय सुन्दर पाषाण जैसा है। तेरे कारण मेरे अनेक योद्धा मारे गये। तेरे यौवन में अमृत है, उसे बिना पाये मैं मर जाऊँगा। तेरा मुँह खिले कमल सा है।'[3] वह बड़ा रसिक प्रतीत होता है, इसी प्रसंग में वह कहे जा रहा है—मुझसे नासिका फुलाकर हँसकर बात करो। चुम्बन देकर मेरी देह-रक्षा करो—

नासिका फुलाइण हसिण कथा कह। चुम्बनदान देइण रख मोर देह॥ ६।२४६

०उसके चरित्र में दो स्थलों पर पारस्परिक-विरोध भी है। (१) वह मन्दोदरी को समझाया करता है कि वह अपने उद्धार के लिए सीता हर लाया है, एक अन्य-स्थल पर वह मन्दोदरी से कहता है कि वह राम-लक्ष्मण को मारकर सीता का माँस खाएगा।[4] (२) उसके अतुल-प्रताप का वर्णन किया गया है, सभी देवता उसके यहाँ नौकर हैं, शंकर भी उन्हीं में एक हैं। इन्हीं शंकर को नृत्य की आज्ञा देकर उनके तांडव को देखकर सहमकर नृत्य बन्द करने के लिए कहता है। ५।२८।

मानस का रावण- यहाँ भी रावण भोगी और भक्त एक साथ है। भोगी की अपेक्षा भक्त अधिक होते हुए भी बंगाली-रावण के समान वह विह्वल-भक्ति का प्रकाश नहीं करता। किसी पात्र के भी सामने उसने राम को ब्रह्म नहीं बताया। खरदूषण की मृत्यु के समय ही उसने समझ लिया था कि राम साधारण नहीं है। यदि पृथ्वी के भार को हलका करने के लिए ही भगवान् ने अवतार लिया है तो उनसे हठ-पूर्वक वैर करना ही उसने उचित समझा, क्योंकि इस तामस-देह को लेकर वह भक्ति नहीं कर सकता। यदि राम साधारण पुरुष हैं तो फिर कहना ही क्या, वह इन्हें मारकर इनकी सुन्दर नारी हर लाएगा।[5] सीता का हरण करते समय उनके कटु वचन सुन कर वह बहुत रुष्ट हुआ था किन्तु मन-ही-मन उसने सीता के चरणों

---

१. ए तोहर अधर चुम्बित मोर मन। नसे विदारिवि ए तोहर यउवन॥
तोते येवे भुजे भिड़ि करिवइ कोल। तोहर रङ्गे वाजिव आजि रणगोल॥ ७।७३।
(अपने भतीजे की पत्नी रंभा के प्रति रावण कहता है।)

२. उड़िया-रामायण, ५।९०।

३. वही, ६।२४६।

४. वही, ६।२।५१।

५. वही, ३।२२।६।

की वन्दना की थी।

सुनत वचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बन्दि सुख माना। ३।२७-१६

०वह बड़ा प्रतापी था, सुर-नर सभी उससे आतंकित थे। मानस में उसके प्रताप का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

चलत दसानन डोलत अवनी। गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्हि तके मेरु गिरि खोहा॥ १।१८१।५,६

उसे अपनी भुजाओं पर विश्वास था। राम से सन्धि का प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले प्रहस्त को ठुकराकर वह अपनी अदूरदर्शिता एवं हठधर्मी का परिचय भले ही देता हो किन्तु उसका आत्मविश्वास तो देखिए, प्रहस्त को फटकार कर वह अपने महल की ओर किस अकड़ के साथ जा रहा है—'भवन चलेउ निरखत भुज वीसा।'[1] वह शत्रु के प्रति शत्रुता का ही व्यवहार करता है, कभी दीनता नहीं दिखाता। लक्ष्मण की भेजी हुई चिट्ठी उसने अत्यन्त उपेक्षा-पूर्वक वायें हाथ से ली थी। युद्ध में अनेक महारथियों के खेत होने पर भी, वह रंचमात्र भी नहीं घवड़ाया। उसने अपनी भुजाओं के वल पर वैर वढ़ाया था। शत्रु चढ़ आया है तो क्या हुआ, उसको उत्तर दिया जाएगा।

निज भुज वल मैं वयरु वढ़ावा। देहऊँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा। ६।७७।६

०उसे अपने योद्धापन का गर्व था। इसीलिए कभी-कभी वह वड़वोला सा प्रतीत होता है। मारीच को उसने फटकार वतायी थी—

गुरुं जिमि मूढ़ करसि मम वोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा। ३।२५।२

इसी प्रकार भयभीत मन्दोदरी से भी उसने कहा था—

सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना। ६।७।२

०तुलसीदास रावण के पाप-कृत्यों एवं राम-विरोध से इतने अधिक असन्तुष्ट हैं कि उन्होंने हनुमान, अंगद तथा उनके अपने ही दूतों द्वारा अपशव्द कहलाये हैं। कम से कम उसके अन्न-भोगी दूत तो उसके प्रति क्रोध व्यक्त करने का साहस नहीं कर सकते।[2]

असि रिसि होत दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ वोरौं। ६।३३।२

—ऐसे वचन रावण अपनी ही राजसभा में राम-दूत के मुख से सुनकर वैठा मुस्कराता रहता है—'जुगुति सुनत रावन मुसुकाई।'[3] मन्दोदरी भी उसे जैसा

---

१. मानस, ६।९।६।
२. सुन खल वचन दूत रिस वाढ़ी। नाथ वचाइ जुड़ावहु छाती॥ ५।५५।८।
३. मानस, ६।३३।५।

गिराकर राम से संधि करने के लिए कहती है, उससे भी औचित्य और मर्यादा की सीमा का उल्लंघन होता है। पर पुरुष को सूर्य और पति को जुगनू बताने तथा शत्रु के चरणों में अपमान-जनक स्थिति में जाकर समर्पण करने की सम्मति क्या पत्नी दे सकती है? मन्दोदरी तो एकदम भक्तिन हो उठी है।

तुम्हहिं रघुपतिहि अन्तर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा। ६।५।६
रामहिं सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुं राज समर्पि वन जाइ भजिय रघुनाथ॥ ६।६

हाँ, वैसे तुलसी ने स्वयं रावण को कहीं दीन हीन नहीं होने दिया। उसने राम के साथ अपमानपूर्ण सन्धि का प्रस्ताव करने वालों को सदैव दुत्कारा है।[1] मन्दोदरी को भी उसने नारी कहकर तथा नारी के सहज अष्टगुणों का उल्लेख कर उसका मुँह बन्द कर दिया है। ऐसा लगता है इन पात्रों के बहाने तुलसीदास ने रावण के प्रति अपना रोष प्रकट किया है।

रावण वाक्पटु और व्यंगप्रिय था। तुलसीदास ने भले ही अन्य पात्रों के द्वारा रावण के प्रति अनुचित वचन कहलाये हों, किन्तु वह स्वयं कभी अप्रतिभ नहीं होता। अंगद के बार-बार शेखी बघारने पर वह कहता है, यदि तुम्हारा स्वामी बड़ा योद्धा है, तो दूत क्यों भेजता है, शत्रु से प्रीति (सन्धि) करते हुए उसे लज्जा नहीं आती?[2] अपने दूतों द्वारा राम की सेना का पराक्रम सुनकर तथा यह जानकर कि राम समुद्र से मार्ग माँग रहे हैं वह हँसकर बोला—जब ऐसी बुद्धि है तभी तो वानरों को सहायक बनाया है। रे मूढ़, तू व्यर्थ में क्या प्रशंसा कर रहा है, मैंने शत्रु के बल और बुद्धि की थाह पा ली।

सुनत वचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥[3]

राम द्वारा उसके छत्र-मुकुट आदि काटकर गिरा दिये जाने पर भी वह कैसी युक्ति द्वारा भयभीत-सभा को आश्वस्त करता है—

सिरउ गिरे संतत सुभ जाहीं। मुकुट परे कस असगुन ताहीं। ६।१३।४

हनुमान ने भी जब राम की शरण में जाने का तथा उनके भजन करने का उपदेश दिया था, तब भी वह हँसकर बोला था—

मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी। ५।२३।२

---

१. रिपु उतकरप कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोउ। ५।३९।३।
२. मानस, ६।२७।६।७।
३. वही, ५।५५।४।६।

सीता

सीता पतिव्रत की परिभाषा है।

वाल्मीकि की सीता कुलीना, तेजोमयी पतिव्रता, स्नेहमयी सरला वधू है।

हमारे देश की कृषि-प्रधान महत्-संस्कृति वहुत-कुछ नारी के त्याग और सहज-निष्ठा पर आधारित है। हमारी संस्कृति में नारी से जो अपेक्षा की जाती है तथा समाज में उसका जो स्थान है, वह सीता के चरित्र से स्पष्ट हो जाता है।

०जीवन में आयी हुई घटनाएँ ही व्यक्ति के चरित्र को कसौटी पर कसकर उसके खरेपन को उभारती हैं। सीता के जीवन में मुख्यतया चार प्रसंग आये हैं, जहाँ उनके चरित्र का विकास देखा जाता है। (१) राम के लिए संकट का अवसर, (२) मारीच की पुकार से राम के प्रति आशंका और हरण, (३) अग्नि-परीक्षा, (४) निष्कासन।

०राम ने दीर्घ-वियोग की सूचना देने के लिए सीता को उनके वड़प्पन की याद दिलाकर, उन्हें 'कुले महति सम्भूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि'[1] कहकर ही वनवास की सूचना दी थी, तथा उनसे अयोध्या में रहने के लिए कहा था। सीता प्रीति-युक्त क्रोध प्रकट कर—'प्रणयादेव संक्रुद्धा'[2]—वोली थीं, 'वीर मुझे निश्शंक होकर साथ ले चलो, मैंने कोई पाप नहीं किया है। मुझे सभी अवस्थाओं में पति के चरणों की छाया ही हितकर है—

नय मां वीर विस्रब्धः पापं मयि न विद्यते। २।२७।७
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते। २।२७।८

सीता ने सभी सम्वन्धों के आगे पति का नाता सर्वोपरि माना। पति के सान्निध्य में उनकी सेवा करते हुए वन के अनेक कष्टों को उन्होंने तुच्छ समझा। किन्तु जव राम निरन्तर उन्हें अयोध्या में रहने की शिक्षा देते रहे तो जानकी तड़प गयी, उसने डरकर काँपते हुए भी प्रेम और अभिमान के साथ राम का उपहास कर कहा—

किं त्वाऽमन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥ २।३०।३

(यदि मेरे पिता मिथिलेश यह जानते कि तुम आकारमात्र के पुरुष हो, व्यवहार में स्त्री हो तो वे कभी मेरा विवाह तुम्हारे साथ कर तुमको अपना जामाता न वनाते।)

अनुसूया से उन्होंने कहा था, पाणिग्रहण के समय अग्नि के समीप मेरी माँ ने

---

१. वा० रा०, २।२६।२०।
२. वही, २।२७।१।

जो उपदेश दिये थे, वे मुझे याद हैं।[1]

०मारीच के मुख से राम की कपट कातरध्वनि सुनकर पतिव्रता सीता घबड़ा गयी थी। राम संकट में थे, तुरन्त सहायता मिलनी चाहिए। किन्तु राम की शक्ति के अटल विश्वासी लक्ष्मण हिल नहीं रहे थे, तब व्याकुल मन की असाधारण स्थिति में विवेक का सन्तुलन खोकर ही सीता बोल पड़ी थीं—तेरा स्वभाव खोटा है, तू मेरे लिए आया है, या छिप कर भरत का भेजा हुआ है। मैं तेरी साध पूरी नहीं होने दूंगी। मैं इन्दीवर-श्याम एवं कमल-नयन राम को छोड़कर किसी क्षुद्रजन को पति बनाने की अपेक्षा प्राण दे दूंगी।[2]

०संन्यासी रावण को देखकर सीता ने आदर्श गृहवधू के शील का परिचय देकर उसका स्वागत किया। रावण ने सीता जैसी रूपवती नारी इस महीतल पर नहीं देखी थी—नैवं रूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले।[3] वह सीता के उन्नत, वृत्ताकार, सटे हुए, कम्पित, पीन, तने हुए, सुन्दर, कोमल और तालफल के समान स्तनों[4] की चर्चा करता हुआ कह रहा था—'कान्ते, जिस प्रकार नदी जल के वेग से कूल का हरण करती है, उसी भाँति तू मेरे मन को हर रही है'—मनो हरसि मे कान्ते नदीकूलमिवाम्भसा।[5] सीता ने ऐसे संन्यासी का अत्यन्त आदर करते हुए परम्परानुसार आसन और अर्घ्य आदि वस्तुएँ प्रदान कीं। वे डर रही थीं कि कहीं संन्यासी शाप न दे दे, किन्तु ऐसे कुछ अनोखे संन्यासी से उन्हें डर अवश्य लग रहा था, तभी वे वन के उस मार्ग की ओर भी देख रही थीं जिससे राम और लक्ष्मण गये हुए थे।

रावण के वास्तविक रूप को समझकर सीता ने तेजोदीप्त-स्वर में रावण को फटकारा—'तू शृगाल होकर सिंहिनी की कामना करता है। तू राम की भार्या को प्राप्त कर मानो प्रज्ज्वलित अग्नि को वस्त्र में बाँधना चाहता है।'

अशोकवन में सीता ने राक्षसियों के फुसलाने-धमकाने पर कहा था—मैं निशाचर को बाँये पैर से भी नहीं छुऊँगी, फिर मैं रावण जैसे विगर्हित की कामना कैसे कर सकती हूँ?

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥ ५।२६।८

---

१. पाणिप्रदान काले च यत्पुरा अग्निसन्निधौ।
अनुशिष्टा जनन्यास्मि वाक्यं तदपि मे धृतम्॥ २।११८।८।
२. वा० रा०, ३।४५।
३. वही, ३।४६।२२।
४. एतावुपचितौ वृत्तौ संहतौ संप्रवल्गतौ।
पीनोन्नतमुखौ कान्तौ स्निग्धौ तालफलोपमौ॥ ३।४६।१९।
५. वाल्मीकि-रामायण, ३।४६।२१।

सीता का पतिव्रत लादा हुआ पतिव्रत नहीं था। रावण बलिष्ठ, सुन्दर और प्रतापी राजा था। सीता ने चाहा होता तो वनवासी और असहाय राम को छोड़कर उसे ही स्वीकार कर लिया होता। किन्तु अग्नि की निर्धूम शिखा सी सीता अपने सत्य पर दृढ़ रही।

०रावण-वध का समाचार प्राप्त कर हर्ष से स्तब्ध रह जाने वाली सीता ने मैले-कुचैले रूप में तुरन्त ही राम को देखने की अभिलाषा प्रकट की थी, किन्तु विभीषण के द्वारा राम का आदेश सुनकर उन्होंने स्नान-प्रसाधन किया। उनका विश्व-मोहिनी-रूप देखकर वानर-रीछ डोले के आसपास एकत्र होकर मार्ग अवरुद्ध करने लगे। विभीषण ने उन्हें बेंत से पीटना प्रारम्भ किया। राम ने सीता को पर्दा-रहित होकर आने के लिए कहा। लाज के मारे सिकुड़ती हुई सीता आयीं और आर्यपुत्र कह कर रो पड़ीं। वे विस्मय, हर्ष और प्रेमपूर्वक राम का तमतमाया हुआ मुख देख रहीं थीं। प्यारे के मुख से प्यारे वचन सुनने की आशा लगाने वाली मैथिली ने सुना—रावण की गोद में परिभ्रष्ट हुई तथा उसकी कुदृष्टि से देखी हुई तुमको मैं बड़े कुल में उत्पन्न होकर कैसे ग्रहण करूँ।

रावणाङ्कपरिभ्रष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन् महत्॥ ६।११८।२०

इतना ही नहीं, राम ने यह भी कहा दसों दिशाएँ खुली हैं, जहाँ चाहो चली जाओ। लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव आदि जिसे चाहो उसे स्वीकार कर लो। मैंने तो रावण का वध इसलिए किया कि मेरे पवित्र इक्ष्वाकु-वंश पर कलंक न रह जाए। मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता। सीता की वेदना का छोर नहीं था, उन्होंने भी उत्तर दिया—'तुम प्राकृत जनों जैसी बातें कर रहे हो। मैं वैसी नहीं हूँ जैसा तुम समझ रहे हो। यदि तुम्हें यही करना था तो हनुमान से पहले ही कहला देते, मैं क्यों प्राणधारण करती।'

०अग्नि-शुद्धा सीता सहज रूप से गृहिणीधर्म पालन कर रही थी। राम सीता के कारण लोकापवाद से डर गये और उन्होंने बेचारी को वनदर्शन के बहाने लक्ष्मण के द्वारा घोर वन में निर्वासित किया। ऐसे महान् संकट-काल में भी राम की गर्भस्थ थाती की रक्षा के लिए उन्होंने प्राण त्याग नही किया। राम पर उन्होंने दोषारोपण न कर उनके प्रति शुभकामना ही भेजी।

उन्होंने सच ही कहा—विधाता ने मेरे शरीर को दुःख भोगने के लिए ही बनाया है।

पारस्परिक अन्तर

०वाल्मीकि की यही तेजस्विनी सीता पूर्वांचलीय तीनों रामायणों में गृहीत हुई, इसीलिए इन ग्रन्थों में सीता की तेज-पूर्ण उक्तियाँ हैं। मानस में उसकी तेजस्विता

तो है किन्तु वे किसी के प्रति भी कटु-वचन नहीं बोलतीं, उनकी तेजस्विता पतिव्रत की है। राम या लक्ष्मण के प्रति उन्होंने कभी कटु-वचन नहीं कहे।

०वाल्मीकि में सीता उत्तम कुल-वधू हैं, भाषा-रामायणों में वे लक्ष्मी की अवतार भी हैं, इसीलिए वे जगत-माता के रूप में चित्रित हुई। पूर्वांचलीय-रामायणों में सीता के मानवी-चरित्र का अधिक विकास है, उसमें सीता की आध्यात्मिक गरिमा नहीं है। मानस की सीता के चित्रण में लेखक बहुत सजग है। उसने राम की आद्या-शक्ति का चित्रण अधिक पवित्रता के साथ किया है।

०मध्ययुगीन-नारी अपेक्षाकृत कुछ अधिक 'अबला' हो गयी थी, उनका यह रूप ही आलोच्य-रामायणों में है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक लेखक की सीता की अपनी विशिष्टता है।

असमीया०की सीता--०इस रामायण की सीता पर वाल्मीकि की सीता की छाप ही गहरी है। सीता को अपने दीर्घबाहु और महावीर गुस्वामी पर गर्व है। सीता की अभिलाषा है कि जन्म-जन्म में राम उनके स्वामी हों और कौशल्या सास हों।[1]

०सीता ने राम के अभिषेक का समाचार ज्ञात कर अतीव हर्ष का अनुभव किया था। किन्तु गोधूलि के मलिन सूर्य की तरह राम को श्रीहीन देखकर उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई। वे राम की प्रदक्षिणा कर हाथ जोड़कर उनके पीछे खड़ी हो गयीं। राम से दुःखद समाचार ज्ञात कर वे भूमि पर पछाड़ खा कर गिर पड़ीं। अत्यन्त भयभीत होकर उन्होंने राम के वस्त्राञ्चल का छोर पकड़कर गिड़गिड़ाकर कहा, 'मत जाओ प्रभु'—न याइबा प्रभु, बुलिया जानकी, अञ्चलत धरिलन्त। छं० १८२५।

सीता ने राम के प्रति कटु-वचन नहीं कहे। माधव कन्दली ने सीता को संयमित किया है, किन्तु शंकरदेव ने सीता को उत्तर-काण्ड में अत्युग्र दिखाया है। यहाँ सीता ने दीन होकर पूछा—क्या मुझे शारीरिक सौन्दर्य की दृष्टि से हीन देखा है, किस कारण प्रभु मुझे उपेक्षित कर जा रहे हैं।

कमन अङ्गत मोक हीन देखिलाहा। कि कारणे मोक प्रभु उपेक्षिया याहा॥ १८४१

सीता ने अपना तेज केवल इस रूप में प्रकट किया है, तुम्हारे छोड़ जाने पर मेरा जीवन निष्फल है, या तो में कटार का आश्रय लूंगी या विषपान कर लूंगी।[2] प्रिय के सान्निध्य में उन्होंने हिंस्र-पशुओं के भय की भी परवा नहीं की। राम के साथ वन-सौन्दर्य देखने की अभिलाषा से भी वे राम के साथ जाने का हठ करने लगीं।

---

१. शुनियो गोसानी बोलो सीता परवासू। जन्मे जन्मे राम स्वामी तुमि हैवा शाशु॥ १—९४३।

२. तुमि एरि गैले मोर जीवन निष्फल। कटारत मर नुहि भुञ्जिबो गरल॥ —१८६२।

०लक्ष्मण से बोलते समय अवश्य ही सीता उग्र हो गयी थीं—तेरा शरीर बाघ का है और मुँह हरिण का। तेरे मुख में अमृत है और तेरा चित्त विप-घट है। रे चण्डाल, भरत की घूस खाकर और चाटुकारिता कर राम के साथ आया है। स्वामी के बिना प्राण दे दूँगी, किन्तु पर-पुरुष को चरण से भी नहीं छुऊँगी। तू इतर होकर मेरी कामना करता है—३१०७-१२। सीता के उग्र पतिव्रत की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही ये वचन उन्माद-ग्रस्त अवस्था में कहे गये हैं, अन्यथा यही सीता रावण को धमकाकर कहती है कि लक्ष्मण के बाणों की चोट से तू प्राण त्यागेगा। अयोध्या जाने पर भी उन्होंने लक्ष्मण के प्रति सद्भाव प्रकट कर कहा था—देवर के प्रसाद से सभी आपत्तियों से उद्धार हो गयी—'आपद तरिलों सबे देवर प्रसादे'। ६६५५।

०सीता ने रावण को गधा बताकर कहा था, सिंह को छोड़कर तेरा भजन क्यों करूँ—गाधक भजिवो केन सिंहक एरिया।[1] तू ज्वलन्त अग्नि को वस्त्र में बाँधना चाहता है—ज्वलन्त अग्नि बेटा वस्त्रे बान्धिनेस।[2] उन्होंने राम के प्रति अपनी दृढ़-निष्ठा प्रकट कर कहा, मैं परपुरुष की छाया चरणों से भी नहीं छुऊँगी— चरणे न चुइवो परपुरुषर छाया।[3] मुझे काम-भाव से देखने से तेरी आँखें भी न निकल पड़ीं। राम की भार्या से लाघव-वचन बोलने से तेरी जीभ भी न खिसककर गिर गयी—

मोक काम भावे, चाहन्ते रावण, चक्षुयो बाज न भैलो।
रामर भार्य्याक लाघव बोलन्ते जिह्वायो खसि न गैल॥ ४१७६

राक्षसियों के सताये जाने पर उन्होंने रावण के ऐश्वर्य की उपेक्षा कर कहा—रावण भले ही त्रैलोक्य का राजा हो तथापि मैं उसकी छाया पर पैर नहीं रखूँगी—

त्रैलोक्यर राजा होवे यद्यपि रावण। तथापि छायात तार नेदिबो चरण। ४२१६

०कुलवधू सीता को वनप्रवास के समय चीर पहनना नहीं आया था और बेचारी राम का मुँह देखने लगी थीं। गंगातीर पर लक्ष्मण द्वारा निर्मित तृण-शैया पर राम के पास बैठने में वे लजा गयी थीं। अशोक वन में इन्द्र द्वारा परमान्न देने पर उसके तीन भाग कर दो भाग रामलक्ष्मण के नाम समर्पित कर तब उन्होंने ग्रहण किया था। रावण से बात करते समय वे पीठ दे लेती थीं।

रावणक लाजे, भये पिठि दिया, सीताये दिला उत्तर। ४१७३

हनुमान से भेंट होने पर उन्होंने राम की कुशल के साथ ही उनके शयन, स्नान और भोजन के विषय में भी जिज्ञासा की—

सार करि कथा मोत कह हनुमन्त। मोहोर कि स्वामी राम कुशले आछन्त॥
किमन शयन स्नान भोजन करन्त। किबा चिन्ता करि मोक प्रभु सुमिरन्त॥[4]

---

१. असमीया-रामायण, ३१६१।
२. वही, ३१५५।
३. वही, ३१६२।
४. वही, ४२८२-३।

लंका से वे हनुमान की पीठ पर आने के लिए तैयार नहीं हुई। मुझे सारा जगत सती मानता है। पर पुरुष का अंग कैसे छूऊँ। यदि कहो कि रावण हर कर ले आया तो मैं पराधीन स्त्री-जाति की हूँ, जो कि स्वतंत्र नहीं है--

मइ शान्ती कन्या हेन जानय जगते। पर पुरुषर अंग छुइबो केन मते॥
बुलिब रावण यिटो आनिलेक हरि। स्त्री जाति पराधीन नोहे स्वतंतरी॥[1]

०अग्नि-परीक्षा के समय सीता की दयनीय स्थिति का मार्मिक-चित्रण है। उनके डोले का पर्दा हटा दिया गया, डर के कारण सीता के नेत्रों से आँसू भरने लगे। अलंकार की रुनझुन के साथ वे किसी ओर न देखती हुई और अपने शरीर को छिपाती हुई राम के पास पहुँचीं। लाज भय छोड़कर स्वामी को अत्यधिक स्नेह से देखने लगीं। उन्होंने अपने को शुद्ध जानकर धैर्य धारण किया। चिरकाल से देखने की अभिलाषा लेकर वे राम की ओर कटाक्ष से देखती हुई एक ओर खड़ी रहीं।[2]

राम ने महाक्रोध प्रकट कर कटु-वचन कहे, सीता ने धीरे-धीरे कहा—'मैंने उत्तम कुल में जन्म लिया, पिता ने महत् कुल में ब्याह दिया। तुम मुझे तुच्छ नारी के समान देखते हो और नट की नारी के समान अन्य को दे देना चाहते हो। पापिष्ठ रावण मुझे हर लाया। मैं पराधीन स्त्री-जाति हूँ जो कि स्वतंत्र नहीं है।[3] तुम जैसी शंका करते हो वैसी नहीं हूँ। देवता, धर्म और पृथ्वी को मैं साक्षी और प्रमाण कर कह रही हूँ।'

तुमि येन शङ्‌क आमि नहों हेन ठान।
देव धर्म साक्षी हुइवा पृथिवी प्रमाण॥ ६४८४

सत्य ही पुरुष कितना कठोर होता है, वह पत्नी के एक दिन के भी गुणों का स्मरण नहीं करता, ऐसा निर्दय हो जाता है। सीता का निम्न कथन कितना वेदना-सिक्त है—

न सुमिरा मोर एक दिवसर गुण। निर्द्दय पुरुष जाति किनों निदारुण। ६४८६

उत्तर-काण्ड शंकरदेव ने लिखा है। शंकरदेव ने पति-परित्यक्ता अभागिनी नारी की व्यथा पहचानी है। उन्होंने कन्दली की सीता से साम्य रखते हुए भी उनकी प्रतिक्रिया एवं उनके सात्त्विक-रोष का वर्णन किया है। सीता का यह निःसहाय

---

१. असमीया रामायण, ४३००।१।

२. वही, ६४६२।६४७२।

३. उत्तमकुलत आमि जनम लभिलों। महन्त कुलत मोक बापे विहा दिल। ६४८२
आमाक इतर नारी सम देखिलाहा। नटर नटिनी येन आनक बिलाहा॥
पापिष्ठ रावण मोक आनिलेक हरि। तिरी जाति पराधीन नहीं स्वतन्तरी॥
—६४८३।

किन्तु तेजोमय रूप पाठकों को रुला देता है। वे राम के प्रति अत्यधिक-कटु हो गयी हैं। उनकी कटुता विल्कुल स्वाभाविक है। ऐसा मार्मिक वर्णन तो वाल्मीकि अथवा अन्य पूर्वाचलीय-रामकथाकार भी नहीं कर सके हैं।

लक्ष्मण ने जब उन्हें घोर वन में पहुँचा कर बताया कि वे राम की आज्ञा से निर्वासिता हुई हैं, तो उन्होंने रोते हुए लक्ष्मण को सान्त्वना बँधायी, किन्तु वे स्वयं भी तो अकुला गयीं—ऐसे घोर-वन में एक अबला नारी गर्भावस्था में कहाँ जाए, किस दिशा में जाए—

कोन दिशे यांग्रों एबे न पाग्रों उद्दिश। ६७१९

राम के भेजे हुए चार लोग सुषेण, हनुमान, विभीषण और शत्रुघ्न सीता को वाल्मीकि-आश्रम से लेने गये। सीता उनके साथ जाने को तैयार न हुई। अयोध्या जाकर सुख-भोग की उनकी इच्छा नहीं रह गयी थी। वे बोलीं—अब मैं फिर यदि राघव की गृहिणी कहलाऊँ तो मुझसे बढ़ कर निर्लज्ज कौन नारी होगी? मुझे मारने के लिए गर्भावस्था में त्याग कर अब राम किस साहस से मुझे ग्रहण करेंगे। दुर्जन के कहने से उन्होंने मुझे निकाल दिया, मैं ऐसे स्वामी राम को अपना यम समझती हूँ।[1]

ऋषि वाल्मीकि के वचनों का उल्लंघन न कर सकीं। उनके कहने से सीता लाज और अपमान से संकुचित होती हुई उनके पीछे-पीछे सिर झुकाये और किसी ओर भी न देखते हुए चलीं। वाल्मीकि ने भरी सभा में कहा—मैं बाँह उठा कर समाज में शपथ कर रहा हूँ, मैंने करोड़ों जन्मों में जो भी सद्कर्म किये तथा इस जन्म में जो भी तप-धर्म किये हैं, वे सब नष्ट हो जाएँ; यदि सीता दोषी हो।

वाल्मीकि की शपथ से राम सन्तुष्ट हुए किन्तु सीता का क्रोध न गया। क्रोध-अपमान से उनका चित्त स्थिर नहीं था—'कोपे अपमाने आति चित्त नुहि थिर'[2], तभी वे कटु शब्द कह गयीं—छल पूर्वक मुझे वन भेजा, गर्भ के दो पुत्रों को मारना चाहा, स्वामी के गुण-वर्णन करते समय मेरा शरीर जलता है। ऐसे यम-सदृश राम का मुख मैं कैसे देखूँ। दुर्जनों के कहने से मुझे वनवास दिया।[3]

सीता ने अगले जन्म में जनक, दशरथ, कौशल्या, भालू-वन्दर और लक्ष्मणादि भाइयों को क्रमशः पिता, श्वशुर, सास, पुत्रतुल्य सहायक और देवर होने की कामना की, साथ ही राम को पति-रूप में पाने की भी कामना की। पाताल-प्रवेश के पूर्व राम के प्रति शोक-मोह से भर कर सीता ने राम की तीन बार परिक्रमा की, उनके चरणों की धूलि मस्तक पर मलकर कहा—दुःखी हृदय से मैंने जो कुछ कहा उसके लिए

---

१. असमीया-रामायण, ६९९४-६।
२. वही, ७०७४।
३. वही, ७०५९।७०६०-६२।६६।

मुझे क्षमा करना। यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि इस जन्म में तुम्हारे चरणों की सेवा न कर सकी।

हृदय खेदत्, यि किछु बुलिलो, इ दोष क्षमा आमाक।
तोमर चरण, सेविबे न पाइलो, मोरे से कर्म्म विपाक॥ ७०९३

अपने दोनों पुत्रों को झगड़ा न करने का उपदेश तथा अपनी आयु देकर उन्हें चिरंजीवी होने का आशीर्वाद प्रदान कर दुखिया सीता पाताल-प्रवेश कर गयी।

०जयंत-प्रसंग में असमीया-लेखक सीता को माँ (२४९३) कहता है किन्तु सर्वत्र सीता के मोहक-रूप का प्रभाव दिखाना ही लेखक का अभीष्ट है।

बँगला की सीता—०इस ग्रंथ की सीता का पतिव्रत विवाह के समय से ही ज्ञात होने लगा था। उनके मन में राम के प्रति पूज्य-भाव का उदय 'वासरघर' की प्रथा के समय ही देखा जाता है, जबकि सखियों के परिहास-स्वरूप राम उन्हें अँधेरे में हाथ पकड़कर उठाते हैं, सीता चूड़ियाँ बजाकर संकेत करती है कि हाथ यहाँ है। उन्हें भय है कि पति का हाथ कहीं उनके पैर पर न पड़ जाए। पृ० ८७।

राम के वनवास का समाचार ज्ञात कर सीता ने साथ चलने का अनुरोध कर कहा—स्वामी विना स्त्रीलोकेर आर नाहि गति, स्वामी के विना स्त्री की अन्य गति नहीं है। प्राणनाथ अकेले क्यों वन जाएं, दासी साथ चलेगी। तुम्हारे मुख को देख कर वन के सैकड़ों दुःखों का भी मुझे अनुभव नहीं होगा। राम ने साथ लेना स्वीकार नहीं किया, तब सीता कुपित होकर बोली—पंडित होकर निर्बोध की तरह बोलते हो। पिता ने क्यों ऐसे को मुझे दिया ! जो अपनी स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता, उसे कौन ऐसा धीर पुरुष है जो वीर कहे।

पण्डित हइया बल निर्व्बोधेर प्राय। केन हेन जने पिता दिलेन आमाय॥
निज नारी राखिते ये करे भय मने। देख तारे वीर बले कोन धीर जने॥ पृ० १०६

अनुसूया से बात करते समय उन्होंने दूर्वादल-श्याम राम को ही अपनी समस्त सम्पत्ति बताते हुए उनसे आशीर्वाद माँगा था कि इन्हीं राम में मेरी गति रहे। पृ०१३३।

०यहाँ भी सीता ने लक्ष्मण को सिर पीट कर गाली देते हुए कटु-वचन कहे हैं—'सौतेला भाई कभी अपना नहीं होता। लगता है तुम्हारा मन मुझ में है। भरत ने राज्य छीन लिया, तुम नारी ले लो। भरत के साथ तुम्हारी साँठगाँठ है। अन्य-पुरुषों की ओर यदि मेरा मन गया तो गले में कटार मारकर प्राण दे दूँगी।'[1] क्रोध के कारण ही

---

१. वैमात्रेय भाइ कभु नाइ त आपन। आमा प्रति लक्ष्मण तोमार बुझि मन॥
भरत लइल राज्य तुमि लह नारी। भरतेर सने तव आछे सारि भारी॥
अपर पुरुषे यदि याय मम मन। गलाय काटारि दिया त्यजिव जीवन॥ १५०।

सीता ने ऐसा कहा था। रावरण के सत्य-रूप का दर्शन कर उन्होंने लक्ष्मण के विक्रम पर अगाध विश्वास प्रकट कर पश्चात्ताप भी किया है कि हाय, मैंने लक्ष्मण को क्यों विदा किया ?

०रावण को दुराचारी, पापिष्ठ और दुर्जन कहकर उन्होंने डाँटा था। रावण द्वारा पैरों पर गिरकर अनुनय करने पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया था—'मैं अधार्मिक नहीं हूँ, राम की पत्नी हूँ। मैं जनकराज की कन्या, कुलनारी हूँ। राम मेरे प्राणनाथ हैं, राम मेरे देवता हैं। राम को छोड़ कर सीता और किसी को नहीं जानती।'—

अधार्म्मिको नहि आमि रामेर सुन्दरी। जनक राजार कन्या आमि कुलनारी ॥
—पृ० २२६

राम प्राणनाथ मोर राम से देबता। राम बिना अन्य जने जाहि जाने सीता ॥
—पृ० २२७

०राम की यह कुलनारी जिसे राम राज्यलक्ष्मी[1] मानते थे, राम के विरह में अस्थिचर्म-सार रह गयी थी। खर से युद्ध में आहत राम के घावों को देखकर उसके नेत्रों से झर-झर आँसू वहने लगे थे। तब उसने कैकेयी के अनर्थ का स्मरण-मात्र किया था, उसके प्रति कोई दुर्भाव प्रकट नहीं किया था। रावण द्वारा अपहृता होकर समुद्र पार करते समय यह भीरु वधू समुद्र का विस्तार देखकर मूर्च्छित हो गयी थी। इन्द्र द्वारा भेजे गये परमान्न को तब ग्रहण किया जब भारतीय-पत्नी की प्रथा के अनुसार राम को भोग लगा दिया। रावण को देखकर ही सीता अपने मैले वस्त्रों से शरीर को छिपाने लग जाती थीं।

०पतिव्रत में तेजोमयी सीता अग्नि-परीक्षा के समय मध्यकालीन छुईमुई नारी के समान ही आती हैं। राम द्वारा उपेक्षित होने पर उन्होंने कटुता प्रकट नहीं की। अपनी पवित्रता की सफाई दी—'प्रभु मेरे स्वभाव को अच्छी प्रकार जानते हो, फिर जानबूझ कर मेरी दुर्गति क्यों करते हो। मैं बाल्यकाल में खेलते समय भी पुरुष-शिशुओं का स्पर्श नहीं करती थी। मै दुष्टा नारी नहीं हूँ जो दूसरे को दान कर दो। सभा के मध्य मेरा इतना अपमान क्यों करते हो !

भाल मते जान प्रभु आमार प्रकृति। जानिया शुनिया केन करिछ दुर्गति ॥
बाल्यकाले खेलिताम बालक मिशाले। स्पर्श नाहि करिताम पुरुष छाओयाले ॥
दुष्टा नारी नहि आमि परे कर दान। सभा विद्यमाने कर एत अपमान ॥[2]

'यदि यही करना था तो हनुमान से पहले ही कहला दिया होता, तो मैं प्राण त्याग देती।' राम के प्रति पूर्ण-भक्ति का भाव रखकर सीता ने राम की सात बार

---

१. बँगला-रामायण, पृष्ठ १५८।
२. वही, पृ० ४४०-४४१।

और अग्नि की तीन बार परिक्रमा की और चिता पर बैठ गयीं। अग्नि ने उन्हें राम को सौंपते हुए कहा—आज सती सीता का स्पर्श कर मेरा जीवन सफल हो गया।[1]

बेचारी भोली सीता लक्ष्मण के साथ वन भेजी गयीं। मार्ग के अशकुन देखकर वे राम और कौशल्या की कुशल के लिए चिन्तित हो उठी थीं। आँसू बहाते लक्ष्मण से सम्पूर्ण समाचार ज्ञात कर भी निरपराधिनी सीता ने जन्म-जन्मांतर में राम को ही पति-रूप में प्राप्त करने की कामना की।[2]

उनके दो पुत्रों का युद्ध राम-सैन्य से हो रहा था, सीता को यह ज्ञात न था। सीता ने माता, पतिव्रता और क्षत्राणी के गुणों का एक साथ परिचय देते हुए अपने पुत्रों के प्रति मंगल-कामना की—'यदि मैं 'काय-मनो-वाक्ये' सती होऊँ तो तुम युद्ध में अप्रतिहत होओ।'[3]

वस्तुस्थिति का परिचय पाकर सीता मणिहारा भुजंगिनी के समान दौड़ पड़ी थीं, उन्हें चिन्ता थी कि अपने ही पुत्रों से आहत प्रभु का स्पर्श कुत्ते और सियार न करने पाएँ। उन्होंने सिर पीटकर अपने पुत्रों को धिक्कारा।[4]

बार-बार परीक्षा देने के लिए बुलाये जाने से सीता को क्षोभ हुआ, उन्होंने कहा—आज से तुम्हारा लज्जा-दुःख दूर हो जाएगा। अब तुम जानकी का मुख नहीं देख सकोगे। निरन्तर मुझे अपयश दे रहे हो, बार-बार सभा में परीक्षा देने के लिए बुलाते हो।

सीता को क्षोभ है किन्तु असमीया० के उत्तरकाण्ड-लेखक शंकरदेव की सीता की कटुता उनमें नहीं है। वे जन्म-जन्म में राम को ही पति-रूप में प्राप्त करने की कामना लेकर तथा अन्य किसी जन्म में ऐसी छीछालेदर न करने का अनुरोध कर राम की ओर देखती हुई पाताल में समा गयीं, उस समय उन्होंने दोनों शिशुओं की ओर भी नहीं देखा—

जन्मे जन्मे प्रभु मोर तुम हओ पति। आर कोन जन्मे मोर करो ना दुर्गति॥
नाहि चाहिलेन सीता उभय छाओयाले। श्रीरामे निरखिया प्रवेशे पाताले॥[5]

बंगाली-लेखक ने सीता को लक्ष्मी का अवतार माना है। किन्तु स्वयं सीता

---

१. आजि हैते राम मोर सफल जीवन। करिलाग आजि सती सीता परशन॥ पृ० ४४३।

२. राम हेन स्वामी हउक जन्म-जन्मान्तरे॥ पृ० ५२६।

३. काय मनो वाक्ये यदि आमि हइ सती। तो सवार युद्धे कारो नाहि अव्याहति॥ पृ० ५५६।

४. बं० रा०, पृ० ५६५-६६।

५. वही, पृ० ५७३।

अपनी शक्ति से अपरिचित हैं। उनमें मानस की सीता जैसी अलौकिकता नहीं है। उन्हें साधारण मानवी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परशुराम-प्रदत्त धनु को चढ़ाते समय वे राम से प्रसन्न नहीं हैं, उन्हें भय है इस धनुष के चढ़ाने से राम को और एक नारी न मिल जाए। सीता को सौतिया-डाह होता है। उड़िया की सीता को भी यही डाह होता है। बँगला की सीता मध्यकालीन उच्च जमींदार की कुलीना कन्या जैसी प्रतीत होती है।

उड़िया० की सीता—०अन्य पूर्वांचलीय-रामायणों की सीता के समान इस सीता के समक्ष भी वे परिस्थितियाँ आयी हैं, जहाँ उन्होंने अपनी तेजस्विता का परिचय देकर कुछ कटु-वचन कहे हैं। राम के प्रति कटु-वचनों को कुछ संयमित किया गया है। उड़िया की सीता में कुछ मौलिकता और यथार्थता भी है। उनका पत्नी-रूप विशेषतः पठनीय है।

०आरम्भ में सीता ने स्वयम्वर के समय मन ही मन ब्रह्मा से जो विनय की है उससे वे महती नारी प्रतीत नहीं होतीं। वे कहती हैं—ब्रह्मा, मुझे निराश न करना। मेरे युवा-तन ने बहुत दुःख भोगा है।'[1] बँगला-सीता के समान उन्हें भी उस समय सौतिया-डाह हुआ है, जब राम परशुराम के दिये हुए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं।[2] उनके चरित्र में साधारण नारीत्व भी देखा जाता है। वन-पथ पर चलते-चलते वे शवर-जाति की स्त्रियों से बात करने लगती हैं और राम-लक्ष्मण बहुत आगे निकल जाते हैं। नारी-सुलभ ऐसी मनोवृत्ति दिखाने के लिए राम उन्हें रोकते हैं।[3]

०अन्य स्थलों पर सीता लज्जाशीला, चतुर पत्नी, कुलवधू, कुशल-गृहिणी और दृढ़-पतिव्रता के रूप में देखी जाती हैं।

उनमें लज्जा-भाव था। धनुर्भंग के पश्चात् राम की वधू हो जाने पर वे अपने पिता के सामने लजा गयी थीं—'पिताङ्कु देखिण सीता लाज लाज होइ।'[4] रावण को संन्यासी जान कर वे कुटिया में छिप कर लजा-लजा कर बोली थीं—मेरे स्वामी घर में नहीं हैं, अन्यथा पूजा करती।[5]

राजा लोग यौवन ढल जाने पर अपनी ज्येष्ठा रानियों की उपेक्षा कर नयी नवेली राजकुमारियों को ग्रहण करते रहते थे। चतुर सीता ने अपने क्षणिक यौवन और पुरुष की चंचल मनोवृत्ति से भलीभाँति परिचित होकर मधुशय्या के दिन राम से प्रतिज्ञा करा ली थी कि वे एकपत्नी-व्रत पालन करेंगे।[6]

---

१. उड़िया-रामायण, १-१५१।
२. वही, १-२१५।
३. वही, २-५५।
४. वही, १-१५५।
५. वही, ३-३८।
६. वही, १-२०३।

सीता अपने को राम की जन्म-जन्मान्तर की दासी मानती थीं—'जन्म जन्मान्तरे मुँ अटइ तोर दासी।'[1] वे राम के विना एक क्षण के लिए नहीं रह सकती थीं। राम के अंगों के लिए वे अपने को छाया के समान मानती थीं।

मुहूर्तक निमिषक रहि ये न पाइ। ए तुम्हर अङ्गर मुँ होइ थाइ छाइ॥ २-४०

राम का वनवास सुनकर साध्वी-सीता साथ जाने को तैयार हुईं। उन्होंने उपर्युक्त वचनों के साथ ही कहा—जिस दिन तुमने शिवधनु-भंग किया, उसी दिन से तुम मेरे प्राणों को आकृष्ट कर मेरे हृदय में वसे हो।[2] राम ने वन के कष्टों का वर्णन कर उन्हें छोड़ जाना चाहा तो उन्होंने तड़पकर कहा—'पिता ने मुझे तुम्हें समर्पित किया है, मैं जन्म-जन्म में तुम्हारे चरणों की दासी हूँ, मैं किसका मुँह देखकर रहूँगी। भली प्रकार जान लो, मैं निश्चय ही प्राण दे दूँगी।'[3]

वन के मध्य वे आदर्श गृहिणी देखी जाती हैं। सीता रसोई वनाकर और राम को स्नेहपूर्वक खिलाकर उन्हीं की जूँठी पत्तल में खाती थीं। वे राम के चरण दवाया करतीं—सीता श्रीरामङ्कर ये चापन्ति चरण।[4] हाथी-द्वारा तोड़ी गयी लकड़ियों को वन्य-लता से वाँधकर नाव वनायी गयी, उसमें वैठीं तो डर गयीं, राम ने सहारा दे कर गोद में विठाया। वट-वृक्ष के नीचे स्थित होकर भीरु-कुलवधू सीता ने मंगल-कामनाएँ की हैं। सीता ने वर माँगा—'मेरे स्वामी त्रिभुवन के राजा हों। मैं कभी विधवा न होऊँ, सदा रूपवती रहूँ।' उन्होंने दशरथ, जनक और अयोध्या के कल्याण की कामना की। राम सुन-सुन कर हँस दिये।[5] चित्रकूट में राम की भीरु-प्रिया ने अनेक केलियों से उन्हें प्रसन्न किया। राम के साथ जल में छींटे फेंककर उन्होंने जल-क्रीड़ा की, फिर खिलखिलाकर वे वाहर निकल कर गेरु की शिला पर आ वैठीं। भीगी साड़ी के स्पर्श से भागी हुई गेरु से राम ने उनके माथे पर विन्दी लगा दी। सामने वन्दर को देख सीता डरकर राम से लिपट गयीं और गेरु राम के अंगों में लग गयी। दोनों हँस पड़े।

०उड़िया की सीता ने भी लक्ष्मण पर सन्देह किया था—'तुम मुझे भरत की गृहिणी वनाने के लिए आये हो और कपट-पूर्वक नियम का पालन कर रहे हो। तुम चंडाल और कुटिल हो।'

०रावण का प्रस्ताव सुनकर तेजस्विनी-पतिव्रता सीता पहले तो डरकर काँप गयीं, फिर कड़ककर वोलीं—सिंह की पत्नी को शृगाल नहीं हर सकता, तू भाग जा।

---

१. उड़िया-रामायण, १-२०४।
२. वही, २-४०।
३. वही, २-४१।
४. वही, २-५८ और ३-२१।
५. वही, २-५७।

रे चण्डाल, पुरुष-हीन घर में आकर तू असंस्कार वचन बोल रहा है। राम के बाण से तेरी मृत्यु होगी—

पुरुष नाहिं मोहर घरे तु पशिलु।

असंस्कार बचन कहिलु कहु मोते। आज रामचन्द्र बाणे मरिबु नियते। ३।४१

हनुमान ने विरहिणी सीता को राम-नाम की माला जपते देखा। वे कपाल पर दोनों हाथ रखकर दृष्टि नीची किये रहतीं। उन बिम्बोष्ठी सीता का मुख दुःख से सूख गया था।[1]

०हनुमान ने सीता को पीठ पर बिठाकर उद्धार करने का प्रस्ताव किया था। मानिनी सीता ने निम्न कारणों से यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया—१. इससे रावण जीता रहेगा, और स्वामी की प्रतिज्ञा पूरी नहीं होगी, २. वह चुरा लाया, तुम भी चुराओगे (यह अनीति है), ३. तुम छोटे हो। हनुमान ने अपना बड़ा रूप दिखाया, तब सीता ने कहा, ४. जिस समय तुम लेकर चलोगे राक्षस पीछा करेंगे, ५. समुद्र देखकर मैं डर जाऊँगी, ६. पर-पुरुष का स्पर्श नहीं कर सकती, तब विवशता थी, रावण बलात् हर लाया था।[2]

०अग्नि-परीक्षा के समय राम ने सीता से वही व्यवहार किया जो वाल्मीकि के राम ने किया। वह उग्रता नहीं है, किन्तु वचन वही हैं। सीता ने भी कहा—मुझे नट-नारी समझ कर बोल रहे हो। मैं दोनों कुलों में पवित्र हूँ। लक्ष्मण ने चिता तैयार कर दी, वे अपने चरित्र की दुहाई देकर धधकती अग्नि में इस प्रकार प्रवेश कर गयीं जैसे यह पानी हो।[3]

०वन में अकेला छोड़ने पर सीता ने विलाप तो किया किन्तु परिवार के सभी लोगों की चिन्ता भी की। लक्ष्मण से कहा राम के नित्यकर्म ठीक से करा देना।[4]

०आश्रम से अयोध्या लौटते समय वे हाथ जोड़े हुए एवं अभिमान से सिर झुकाये हुए आयीं।

करपत्र योड़ि ये आसइ देबी सती। अभिमान भरे ये अछइ मुख पोति। ७-१७८

उन्होंने अपमान न सहकर तथा अपना जीवन निस्सार समझकर कहा—'श्री राम को छोड़कर यदि मेरा मन और किसी में स्थिर हो, तो हे पृथ्वी तुम शीघ्र

---

१. स्फटिकर जपामालि गोटि घे नथाइ। सर्वदा तहिं रे तोर नाम कु जपइ।
कपालरे वेनि हस्त मेदिनीकि दृष्टि। दुःखेण मुख शुखाइ अछि बिम्ब ओष्ठी।।
—५।८२।

२. उड़िया-रामायण, ५।२४।

३. वही, ६-३११।

४. वही, ७-११७-११८।

विदीर्ण हो जाओ। इस संसार का दुःख मैं सह नहीं पा रही हूँ।' इतना कहकर वैदेही राम का मुख न देखती हुई रो पड़ीं।[1]

०उड़िया-रामायण की सीता को भी कमला का अवतार मानकर जगत-माता कहा गया है किन्तु सीता स्वयं याद नहीं रखतीं कि वे जगत-माता हैं।

त्रैलोक्यर ठाकुराणी जगतर आइ। ३-४३

परम लक्ष्मी ए जगज्जनङ्कर माता। ७-१८५

उड़िया-रामायण लेखक ने देवताओं के विराट् परिवार में सीता को हिन्दू-संयुक्त-परिवार की आदर्श गृहिणी के रूप में भी चित्रित किया है।

मानस की सीता– ०संस्कृत-नाट्यकारों के अनुसार तुलसीदास ने भी सीता का पूर्व राग दिखाया है। प्रण को पूर्ण करने वाले व्यक्ति से ही सीता का विवाह हो सकता था, अतएव सीता का पूर्वराग मर्यादा की दृष्टि से अनुचित था, किन्तु तुलसी के समय तक राम और सीता के सम्बन्ध में अवतारवाद वाली धारणा बद्धमूल हो चुकी थी, अतएव विवाह के पूर्व का आकर्षण 'प्रीति-पुरातन'[2] के कारण था। यह दृष्टिकोण सामने रखने पर फिर हम सीता के पवित्र प्रेयसी-रूप के ही दर्शन करते हैं। प्रेयसी-रूप में भी उन्होंने कहीं शील-संकोच का परित्याग नहीं किया। स्वयंवर-स्थल पर माला लिए हुए सीता के भाव-संघर्ष का बड़ा ही मनोरम चित्रण हुआ है।

०कुलवधू के शील और लज्जागुणों से युक्त सीता की अत्यंत पवित्र-मूर्ति तुलसी ने गढ़ी है। राम के ऊपर आने वाली विपत्ति को ज्ञात कर वे व्याकुल होकर सास के पास दौड़ी गयीं। मर्यादा-वश वे सास के समक्ष कुछ कह सकती नहीं। वे सास के चरणों में प्रणाम कर सिर झुकाकर बैठ गयीं। नमित-मुख सीता अनेक प्रकार की चिन्ताएँ करती हुई अपने चरण-नखों से धरती कुरेदने लगीं। उस समय उनके नूपुर मधुर-ध्वनि कर रहे थे।[3] राम उन्हें यहाँ छोड़ जाएँगे ऐसा सोचकर उनके नेत्रों में पानी भर आया, वे निरुत्तर हो गयीं। विपत्ति के समय मर्यादा नहीं रहती। सीता ने सास के पैर छूकर अविनय के लिए क्षमा माँगकर ही राम से अनुरोध किया कि वे उन्हें अपने साथ ले चलें।

०शीलमयी कुलवधू के उनके गुण के साथ ही पतिव्रता का गुण भी जुड़ा हुआ है। उन्होंने राम के साथ अपने सम्बन्ध की स्पष्ट घोषणा इन शब्दों में की—

---

१. श्री रामहृ मन येबे आने मोर थाइ। दुइखण्ड होइ फाटि याउ वेगे मही।
सहि न पारइ मुहिँ ए संसारर दुःख। कान्दन्ति वइदेही न चाहिँ राममुख॥
—७-१८०।

२. प्रीति पुरातन लखइ न कोई—१-२२८-८।

३. मानस, २-५७-१-५।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी । २-६४-७

उन्होंने राम से कहा था—क्षण-क्षण में आपके चरणकमल देखकर मुझे मार्ग में थकावट नहीं होगी । मैं आपके पैर धोकर पेड़ों की छाया में बैठकर आप पर पंखा झला करूँगी । पसीने की बूँदों से शोभित आपके श्याम शरीर को देखकर दुःख के लिए मुझे अवकाश ही कहाँ मिलेगा ।[1] कहीं भी राम के प्रति कोप या अभिमान नहीं दिखायी पड़ता ।

पति के प्रति सीता के मन में इतना अधिक पूज्य-भाव था कि मार्ग में चलते समय वे राम के चरण-चिह्नों तक पर भी अपने पैर नहीं पड़ने देती थीं ।[2]

पर्णकुटी में प्रियतम के साथ रहते समय मुग्ध-चकोरी के समान वे पति का मुखचन्द्र देखकर सुख का अनुभव करती थीं । वन के जीव-जन्तुओं को उन्होंने अपना कुटुम्बी बना लिया था ।[3]

वन से लौट आने पर भी सीता सदा अनुकूल रहीं । घर में अनेक दास-दासियों के होते हुए भी वे राम की सेवा स्वयं ही किया करती थीं । राम के साथ ही सासों की भी सेवा वे स्वयं ही करती थीं ।[4]

सीता के पतिव्रत में तेजस्विता भी थी । रावण को अपने भयावह सत्य-रूप में देखकर पहले तो वे डर गयीं, किन्तु तुरन्त ही धैर्य-धारण कर ओज-पूर्ण वाणी में बोलीं—खड़ा रह दुष्ट, मेरे स्वामी आ गये—

आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा । ३-२७-१४

उसके बार-बार प्रलोभन देने और धमकाने पर भी सीता विचलित नहीं हुई । तिनके की ओट से ही वे रावण से बात करती थीं । उन्होंने अपना निश्चय रावण पर प्रकट कर दिया था—या तो इस कंठ पर प्रभु की श्यामल बाँह होंगी या तेरी भयंकर चन्द्रहास तलवार ।

अपरिचित हनुमान जब निकट आये, तो सीता पीठ देकर बैठ गयीं थीं । कुल वधु-सुलभ उनकी यह भीरुता भी बड़ी प्रिय तो लगती ही है साथ ही पतिव्रत के दृढ़भाव को भी प्रकट करती है ।[5]

---

१. मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु-छिनु चरन सरोज निहारी । २-६६-१ ।
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं । २-६६-३ ।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रान पति पेखें । २-६६-४ ।

२. प्रभु पद रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता । २-१२२-५ ।

३. मानस, २-३९-१,२,५ ।

४. वही, ७-२३-३—८ ।

५. वही, ५-१२-८ ।

अग्नि-परीक्षा के समय उन्होंने आत्म-विश्वास से भरी ओजस्वी-वाणी में कहा था—

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना ॥

६-१०८-७,८

०परिवार के अन्य लोगों के प्रति भी सीता का सद्भाव देखा जाता है। भरत की चिन्ता के कारण दु:स्वप्न देखकर वे व्याकुल होती है। लक्ष्मण को तो उनके स्नेह की छाया में इतना सुख मिला था कि उन्हें कभी स्वप्न में भी अपने माता-पिता आदि की सुधि नहीं आयी। चित्रकूट में अपने पिता और माता को देखकर इतनी अधिक प्रेमविह्वल हो गयीं कि अपने को संभाल न सकी थीं।[1] जनक ने भी गद्‌गद स्वर से कहा था—'पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ।'[2] सीता अपनी माता से मिलने उनके शिविर में गयीं। रात्रिकाल में वे गम्भीर धर्म-संकट में पड़ गयीं। सासों की सेवा छोड़कर वे माता के पास कैसे रहें। पिता-माता पुत्री के शील-संकोच से बहुत ही प्रसन्न हुए थे।

राजा दशरथ ने जानकी को बहू न समझकर पुत्री माना था। राम से भी अधिक चिन्ता उन्हें बहू की थी। मरते-मरते वे यही चाहते रहे कि सीता तो कम से कम लौट आती।

०तुलसीदास ने राम की तुलना में सीता के चरित्र में सहज मानवीय-गुणों का चित्रण किया है। सीता मानवी-रूप में प्रस्तुत हुई हैं, लक्ष्मी या आद्याशक्ति होने का उन्हें स्वयं ही ज्ञान नहीं रहता। फिर भी एक-दो ऐसे स्थल आये हैं जिनके कारण उनका सहज मानवीय-रूप उभर नहीं पाता—

१. चित्रकूट में वे अनेक रूप धारण कर सासों की सेवा करती हैं[3], यहाँ सीता की अलौकिकता प्रकट है।

२. राम की आज्ञा से सीता अग्नि में समा गयी थीं, और जिस सीता का हरण हुआ, वह मायासीता थी। इस प्रसंग से वियोगिनी सीता का चरित्र उभर नहीं पाता। वह लक्ष्मण को 'मारीच की पुकार पर 'मर्म वचन' बोलकर रह जाती हैं। मर्म वचन क्या थे, नहीं बताये गये। अग्नि-परीक्षा की अन्य रामायणों जैसी स्थिति भी नहीं आ पाती।

(३) तुलसी ने सीता-परित्याग और पाताल-प्रवेश वाली घटनाएँ नहीं दिखायीं,

---

१. मानस, २-२८६।
२. वही, २-२८६-२।
३. सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई।
लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ। २-२५१-२,३।

जिससे भी सीता की व्यथा और उनके धैर्य, त्याग, सहनशीलता आदि गुणों पर प्रकाश नहीं पड़ सका। यद्यपि यह प्रसंग प्रक्षिप्त माना जाता है किन्तु तुलसी ने उसे प्रक्षिप्त नहीं माना है, क्योंकि उनके अन्य ग्रन्थों में संकेत-रूप से इस घटना का वर्णन है।

गंगा तो केवल तीन स्थानों हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर में पवित्र मानी जाती है, किन्तु सीता की कीर्ति ने अनेक संत-समाज-रूपी तीर्थ वना दिये है—

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह विधि अंड करोरी॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे॥

—२-२८६-३,४

जनक का यह कथन सर्वथा सत्य है। जानकी गंगा से भी बढ़ कर पवित्र है।

कौशल्या

०वात्सल्यमयी राजमहिषी कौशल्या का चरित्र अत्यन्त गरिमामय है। यह स्वाभाविक ही होता है कि राजा लोग अपनी ज्येष्ठा-पत्नी का समादर करते हुए भी नव-युवती छोटी रानियों की ओर अधिक आकृष्ट रहते हैं। लज्जा-विभ्रम से युक्त उद्दाम-प्रणय की ऊष्मा उन्हें अपनी प्रौढ़ा संगिनी में कहाँ मिल सकती है। राजा कैकेयी में अनुरक्त हो गये और अपने को व्रत-उपवासों में व्यस्त करती हुई गौरांगी कौशल्या दिनदिन सूखकर दुर्वल होने लगीं। उनके जीवनाधार राम को अभिषिक्त किया जाएगा, इस समाचार से उन्हें अतीव हर्ष हुआ, किन्तु कैकेयी के षड्यंत्र के कारण राम के वन-प्रवास का उन्हें समाचार मिला तो वे साल-वृक्ष की सूखी डाली की तरह धरती पर गिरकर मूर्च्छित हो गयीं। उनके धूलिलुंठित शरीर को उठाकर राम ने गोद में भर लिया था। जिस प्रकार दुर्वल गौ वछड़े के पीछे जाती है, उसी तरह वे राम के पीछे-पीछे वन जाने को तैयार हो गयी थीं।

लक्ष्मण हाथी की तरह फुसकारकर धनुष छू-छूकर राम की सहायता की प्रतिज्ञा कर रहे थे। कौशल्या ने अनुकूल अवसर देखकर राम को उकसाने की चेष्टा की। कौशल्या का मातृत्व एकदम स्वाभाविक है, उनकी गरिमा में कहीं भी कमी नहीं आती। कौन माता चाहेगी कि उसका एकलौता और निर्दोष वेटा चौदह वर्ष तक घोर जंगलों में मारा-मारा फिरता रहे। इसके लिए पति के प्रति कटु-शब्दों का प्रयोग करने से भी कौशल्या का गौरव कम नहीं हुआ, वल्कि उनका यह रूप वात्सल्य की उग्रता की प्रतिक्रिया ही प्रकट करता है।

उनमें संयम भी था। भली प्रकार परिस्थितियों पर विचार कर उन्होंने जल से आचमन कर और पवित्र होकर कहा—'अव मैं तुझको नहीं रोकूंगी' जिस धर्म को तू पाल रहा है वही धर्म तेरी रक्षा करे।'

संयम धारण करने से क्या होता है, वे पुनः पुत्र-वियोग की कल्पना से विकल

होकर विवेक खोने लगीं। रथ में बैठे हुए राम को जाता देख दशरथ के साथ वे भी रथ के पीछे व्याकुल होकर दौड़ी थीं।

भरत से भेंट के समय यदि उन्होंने कुछ कटु-वचन कह भी दिये तो यह भी उग्र-वात्सल्य की ही प्रतिक्रिया थी, अन्यथा आगे वे भरत की चिन्ता करती प्रतीत होती हैं।

०**पूर्वांचलीय** तीनों रामायणों में कौशल्या के इसी वात्सल्य एवं वात्सल्य के कारण ही उग्रता का वर्णन हुआ है।

०**मानस** की कौशल्या की सबसे बड़ी विशेषता है उसका अद्भुत संयम, जिसे डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'विवेक'[1] कहा है। मानस की कौशल्या वात्सल्य में किसी भी रामायण की कौशल्या से कम नहीं हैं, किन्तु इसके साथ ही वे विवेकमयी हैं। वे नहीं चाहतीं कि वे स्वयं, उनका पुत्र और साथ ही पति कभी कर्त्तव्य-हीनता का अनुभव करें। इसलिए उन्होंने किसी के प्रति भी कटु शब्द नहीं कहे।

०**असमीया-रामायण** में उपेक्षिता कौशल्या पूजारता दिखायी गयी हैं। वे हाथ बाँधे मन्दिर में बैठा करती थीं—आछन्त देवर घरे कृताञ्जलि करि।[2] वे सरल स्वभाव की थीं, वे सब का ध्यान रखती थीं। उन्होंने राम से कहा था—मेरे हृदय-नन्दन, तुम युवराज हुए हो, सभी ब्राह्मणों का पालन करना, प्रजा को पुत्र के समान पालना, सभी माताओं को मेरे समान देखना।[3] बेचारी को जब सत्यस्थिति का पता चला तो वे मूर्च्छित हो गयी थीं।

०उन्होंने राम को समझाया कि बाप से माँ बड़ी होती है। मेरी बात मानो या मुझे साथ ले चलो। स्त्री-द्वारा पराजित पिता का वचन तुम मत मानो, वन न जा कर तुम मेरे पास रहो।—१७३०।

०वात्सल्यमयी कौशल्या कभी सीता से राम की चिन्ता करने के लिए कहती हैं, तो कभी लक्ष्मण को सीता की रक्षा करने के लिए—

शुन शुन बापू मोर लक्ष्मणकुमार। सीताक राखिब भाले वनर भितर।। १६४८

०अत्यन्त विषाद ने उन्हें संयम-हीन कर दिया और वे बारबार दशरथ के प्रति कटु-शब्द बोलती हैं, किन्तु बारबार चैतन्य प्राप्त कर कटु-वचन कहने के लिए पश्चात्ताप करती हैं। उन्होंने दशरथ से कहा—अज्ञान में डूबकर तुम लज्जा का अनुभव नहीं करते हो। मुझे पीड़ित कर तुमने कैकेयी का कार्य-साधन किया—

अज्ञानत बुराइला तोमार नाहि लाज। मोक हिंसि साधिलाहा कैकेयीर काय।। २१३६

---

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास (तृ० सं०), पृ० ३००।
२. अस० रा०, १५५०।
३. वही, १७१६-१७।

सुमित्रा ने समझाया कि स्वामी को निष्ठुर वचन नहीं बोलना चाहिए, कौशल्या भी मान गयीं और दशरथ के पैर पकड़कर क्षमा माँगी—क्षमियोक प्रभु बुलि चरणे धरिल।[1] उन्होंने स्वीकार कर लिया कि पुत्र-शोक के कारण उनका मन विमोहित हो चुका है, इसीलिए प्रभु से उन्होंने तुच्छ-वचन बोले—

पुत्रर शोकत बिमोहित मोर मन । प्रभुक बुलिलो ताते लाघव बचन ॥ २१४०

किन्तु अल्प-क्षण पश्चात् उनका शोकावेग फिर उमड़ता है और वे दशरथ के प्रति अत्यन्त निष्ठुर-वचन बोलने लगती हैं—

'वृद्ध की तरुणी भार्या के विषय में सुना था। वे सब बातें तुम में मिल गयीं। असती का सेवन कर तुमने कौन फल पाया! केवल कैकेयी ही तुम्हारी देवी हो गयी, उसे कन्धे पर बिठाकर सारे राज्य में घूमना। तभी तुम्हारी शपथ पूरी होगी।'[2]

स्वामी की मृत्यु पर भी वे संयम खोकर कैकेयी पर बरस पड़ी थीं—री पापिष्ठी, तू ने स्वामी को खा लिया। तू नरककुण्ड में गिरेगी और तुझे कीड़े खाएँगे।[3]

०वे भरत और राम को एक शरीर मानती हैं।[4] फिर भी ननिहाल से लौटे हुए भरत को वे गोद में लेकर रोती भी जाती हैं और कुलनाशिनी का बेटा कहकर कटु-वचन भी बोलती हैं—उठो बेटा, मुख-लज्जा दूर करो। तुमने माँ के हाथों राज्य माँग लिया। राजा को मरवाया, राम को वनवास दिया। तुमने मुझसे कहा होता तो राम ने तुम्हें स्वयं ही युवराज बना दिया होता।[5] कौशल्या का यह आवेश क्षणिक था, वास्तव में वे भरत के शुद्धभाव को समझती थीं, तभी उन्होंने भरत की शपथें सुनकर कहा था—तुम्हारी दारुण शपथें सुनकर मेरा शरीर दग्ध हो रहा है।

कौशल्या बोलन्त तोर जानो शुद्धभाव । दारुण शपत शुनि पोरे मोर गाव ॥ २३१४

०इस रामायण की कौशल्या अपने पौत्रों लव और कुश दोनों को गले से लगा कर स्नेह-द्रवित होकर बोली थीं—'मेरे दोनों पौत्र वन में पलकर बड़े हुए।' अपनी

---

१. अस० रा०, २१३७-३९।

२. वृद्धर तरुणी भार्या लोकत शुनिल। सिसब सकलो कथा तोमात मिलिल ॥ —२१४२।

कौन फल पाइला तुमि असतीक सेवि। कैकेयी तोमार मात्र भैल मुख्य देवी ॥ —२१४५।

ताहाक कान्धत लैया फुरियो राज्यत। तेवे परिपूर्ण हैवे तोमार शपत ॥ २१४६।

३. अस० रा०, २२०२-३।

४. वही, २२०४।

५. वही, २३०८-९।

सुचरिता वहू सीता के कष्टों का स्मरण कर भी वे दुःखित होकर बोली थीं—हरि हरि, वहू सीता तो कष्ट उठाने के लिए उत्पन्न हुई है। छं० ६६६१।

असमीया-रामायण की कौशल्या बहुत कुछ वाल्मीकि की कौशल्या का ही अनुसरण करती है।

बंगला० में कौशल्या अत्यधिक विषाद के कारण संयम-हीना प्रतीत हो रही हैं। उन्होंने स्वयं ही कहा है—'जिस नारी का गुण-सागर पुत्र वन जा रहा हो, वह कैसे धैर्य-धारण कर सकती है।' भले ही वह राजा की उपेक्षिता हो गयी हों, किन्तु उन्हें राजा की प्रथम-पत्नी और महारानी होने का स्वाभिमान है। वे खीझकर कैकेयी को चण्डाली कहती हैं।[1]

०माता कौशल्या ने तीन बातें यहाँ भी कही हैं--(१) स्त्री के वाक्य सुन कर जो पिता वन भेज रहे हों उनकी बात मत सुनो। (२) तुम भरत को राज्य दे कर एक वचन का पालन करो दूसरे का नहीं। (३) पिता से माता का पद बड़ा है। वह गर्भ में धारण कर स्तन देकर पोषण करती है। ऐसी माँ की आज्ञा का उल्लंघन तुम नहीं कर सकते। लक्ष्मण क्या कह रहे हैं, इस ओर भी उन्होंने संकेत किया है। —पृ० १०४।

अन्त में वाल्मीकि की कौशल्या के अनुसार वे भी संयम धारण कर देवताओं से मनाती हैं कि मेरे बेटे को अष्टपाल आदि १४ वर्ष तक वन में सुरक्षित रखें। —पृ० १०५।

०भरत के साथ उनका व्यवहार पूर्ववर्ती-लेखकों के जैसा ही है। कौशल्या ने पुत्र कहकर भरत को गोद में उठा लिया, दोनों के ही रोने से दोनों के शरीर भींग गये। कौशल्या ने कहा—'कैकेयी-पुत्र, तुम माँ-बेटे मिलकर राज्य करो। राम ने किसका धन चुराया था, किसकी नारी का अपहरण किया था ? मेरे पुत्र को किस दोष के कारण निर्वासित किया गया ? अब मुझे भी दूरकर काँटा दूर करो। —पृ० १२२।

कौशल्या का आवेग यहाँ भी शान्त हो जाता है और वे स्वीकार कर लेती हैं कि राम का हृदय जिस प्रकार धर्म में तत्पर रहता है, पुत्र, तुम्हारा हृदय भी उसी तरह है—

रामेर हृदय धर्म्मे येमन तत्पर। तोमार हृदय पुत्र एकइ सोसर॥ पृ० १२२

०बँगला रामायण की कौशल्या को साधारण स्त्रियों जैसा सौतिया डाह भी

---

१. गुणेर सागर पुत्र यार याय वन। से नारी केमने राखिबे आर जीवन॥
राजार प्रथम जाया आमि महारानी। चण्डाली हइल मोर कैकेयी सतिनी॥
—१०३

है। वे आरम्भ में सुमित्रा के दुर्भगा होने की कामना से कैकेयी का साथ देकर शंकर की पूजा करती हैं। उन्होंने सुमित्रा को अपने चरु का अर्धांश इस शर्त पर दिया था कि उससे उत्पन्न पुत्र कौशल्या के पुत्र की सेवा करेगा।

कौशल्या का यह चरित्र शेष चरित्र से मेल नहीं खाता। आगे सुमित्रा के व्यवहार के प्रति भी उन्हें कहीं जलन नहीं होती है। हो सकता है वँगला-रामायण में इतना प्रारम्भिक-अंश बाद की जोड़-तोड़ हो।

०**उड़िया-रामायण** में कौशल्या के चरित्र का बहुत कम विकास हुआ। कोई विशेषता नहीं है। कौशल्या राम से कहती हैं—'तू मेरी बात मानकर वन को मत जा। राजा के तीन पुत्र (और) हैं। तू तो मेरा अकेला पुत्र है। तेरे बिना मेरा कोई सहारा नहीं है। इस राजा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं अन्य राज्य में जाकर भिक्षा माँग कर रह लूँगी।'[1]

०राजा के प्रति कटु शब्दों का विशेष प्रयोग नहीं हुआ। उड़िया की कौशल्या में अन्य पूर्वांचलीय-रामायणों की कौशल्या की तरह न आवेग है और न मानस की कौशल्या-जैसा विवेक। भरत को देखकर उन्होंने अवश्य ही परम्परानुसार कहा—शोक क्यों करते हो। तुम्हारे लिए यह आनन्द का समय है, निष्कंटक होकर राज्य करो।[2] भरत शपथें देकर उग्र रूप से क्रन्दन कर उठे थे। कौशल्या बोली नहीं, वे कुछ कहतीं इसके पूर्व ही वसिष्ठादि आकर भरत को समझाने लगे। किन्तु कौशल्या को भरत के शुद्ध भाव का विश्वास रहा होगा। भरत के ननिहाल से लौटने के पूर्व ही उन्होंने कहा था—श्रीराम और भरत दोनों विलग नहीं हो सकते। पानी को पीटने से क्या वह दो भागों में बँट सकता है—अर्थात् राम को भरत से अलग नहीं किया जा सकता।

पाणिकि पिटिले कि से वेनिभाग होइ। २-३६

पुत्र को इंगुदीफल के पिंड देता देखकर उन्होंने बिलखकर इतना अवश्य कहा था—राम के आगे तुमने प्रिया को बड़ा माना—

श्री राम ठारु तु प्रियाकु ये बड़ कलु॥ २-८७

०**मानस** की कौशल्या के सामने भी वही सभी परिस्थितियाँ और पात्र हैं। उनके भी हृदय में राम के प्रति अगाध वात्सल्य है, किन्तु किसी को भी लांछित करने का आवेश उनमें नहीं है। सर्वज्ञ एवं समर्थ राम की माता होने का सफल गौरव उन्होंने पाया है।

इस अद्भुत संयम का कारण राम के ब्रह्मत्व का उनका ज्ञान भी हो सकता

१. उड़िया-रामा०, २-३८।
२. वही, २-६७।

है। पूर्वजन्म में वे शतरूपा थीं और राम को पुत्र-रूप में पाने के लिए उन्होंने तपस्या की थी। राम शिशुकाल में ही कौशल्या को अपनी अलौकिकता का परिचय दे देते हैं। कृष्ण-विषयक आख्यान के समान राम भी अपनी माता को विराट् रूप के दर्शन कराते हैं। अवश्य ही आगे ऐसा कोई अवसर फिर नहीं आया। केवल एक और अवसर को छोड़कर। वनगमन का समाचार ज्ञात कर कौशल्या राम के चरणों से लिपट जाती हैं।[1] या तो अतिस्नेह के कारण वे ऐसा कर गयी हैं अथवा सम्भवतः उन्हें ब्रह्म मान कर ही वे चरणों में लिपटी हैं। कुछ हो, ऐसा दिखाना ठीक प्रतीत नहीं होता।

०कौशल्या की वाणी गंगाजल-सी पवित्र बतायी गयी है। वे अत्यन्त वात्सल्यमयी थीं। अपने पुत्र के अभिषेक का समाचार ज्ञात कर उन्होंने अपने स्नेह की वर्षा किस प्रकार राम पर की, यह देखने ही योग्य है।[2] किन्तु जब राम के मुँह से दुःखदायी समाचार सुना तो वे वात्सल्य के आवेश में आकर कुछ का कुछ बक नहीं गयीं, उन्होंने बड़े ही धैर्य से काम लिया। उन्हें दुःख न हुआ हो ऐसी बात नहीं थी। समाचार सुन कर ही वे सहमकर सूख गयी थीं। सिंहनाद से भयभीत मृगी-सी वे स्तंभित रह गयी थीं। उनके नेत्रों से आँसू झर रहे थे, शरीर काँप रहा था। वे कुछ भी तो नहीं कह पा रही थीं। यदि कहतीं कि वन मत जाओ तो मर्यादा-भंग होती और भाइयों में विरोध होता, किन्तु जाने के लिए भी कैसे कहती ?[3]

०ऐसे व्यक्ति बहुत थोड़े होते हैं जो विपत्ति पड़ने पर अपने मस्तिष्क का सन्तुलन ठीक रख सकें। महत्-विपत्ति के टूट पड़ने पर तथा अत्यंत कष्ट का अनुभव होने पर कौशल्या अपने या अपने एकमात्र पुत्र के कष्टों पर ध्यान न देकर सोचा करती हैं तो अन्य-जनों का। अन्य-जन से तात्पर्य दशरथ, भरत और प्रजाजन से है जोकि राम का वियोग सहन करने में असमर्थ हैं –

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥ २-५५

०भरत के मन की ग्लानि को कौशल्या ऐसी महीयसी नारी ही समझ सकती थी। भरत को राज्य देने के कारण ही यह सब अनर्थ हुआ, यदि वाल्मीकि की कौशल्या इसलिए भरत को कुछ कटु-शब्द कह भी गयी हों, तो उनका दोष नहीं था, क्योंकि कुछ क्षणों के उपरान्त ही उनका स्नेह-द्रवित रूप भी सामने आ गया था। मानस में कौशल्या के शील का अति सुन्दर परिचय मिलता है। आवेश में आकर अपने क्रोध की सारी भड़ास निकालने के लिए किसी निर्दोष पर टूट पड़ना कुछ भी हो किन्तु

१. बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। २-५६-६।
२. बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता। २-५१-३।
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाए। २-५१-४।
३. मानस, २-५३-२—४ तथा २-५४-१—४।

विवेक नहीं है। दूसरों की भी भावनाओं का परिचय-समादर होना ही चाहिए। मानस की कौशल्या भरत को देखते ही उनसे मिलने झपट पड़ती हैं और स्नेह-शोक के आवेश में मूर्च्छित हो जाती हैं।[1] सरल-स्वभाव की जननी कौशल्या ने भरत को गोद में पा कर ऐसा अनुभव किया था मानो उन्हें राम ही मिल गये हों। भरत के आँसू पोंछ कर तथा मीठे वचनों द्वारा उन्होंने भरत के सन्ताप को बहुत कुछ दूर करने की चेष्टा की थी।[2]

कौशल्या को भरत की बहुत चिन्ता थी। राम को राज्य के स्थान पर वन-वास मिला, ठीक है। उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ेगा, यह भी ठीक है। किन्तु राम अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं, इसका उन्हें नैतिक-बल तो है। निर्दोष भरत तो व्यर्थ ही अनेक अनर्थों के कारण हो गये। उन्हें राज्य दिलाने के प्रयास का फल हुआ भाइयों और भाभी का वनवास, पिता की मृत्यु और समस्त अयोध्या-वासियों का शोक-पीड़ित होना। इसीलिए भरत की व्यथा पहचानकर कौशल्या ने गद्गद स्वर से कहा था—

लखनु रामु सिय जाहुँ वन, भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियं कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥ २-२८२

कौशल्या ने अपने एकलौते बेटे राम की कभी शपथ नहीं ली थी, कोई भी माता नहीं लेगी, किन्तु भरत की निर्दोषता तथा उनकी सदाशयता प्रकट करने के लिए कौशल्या ने ऐसा भी किया। जनक की पट्टमहिषी से चित्रकूट में वार्त्तालाप करते समय उन्होंने शुद्ध हृदय से भरत की प्रशंसा की है—

राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउं सखी सति भाऊ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मत हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥[3]

कौशल्या ने विवेकमयी-न्यायशीला माता का भी परिचय दिया है। उन्होंने राम को धर्म-संकट में नहीं डाला, वे उनके साथ जाने का हठ भी नहीं करतीं। चित्र-कूट में उन्होंने मन-ही-मन कष्ट सहकर भी यह नहीं चाहा कि राम घर लौट कर कर्तव्य विमुख हों और यह भी नहीं चाहा कि भरत शोक-संतप्त ही बने रहें, इसलिए उन्होंने जनक की रानी से कहा था कि राजा से कहना लक्ष्मण को लौटाकर भरत को वन में राम के साथ भेज दें।[4] दशरथ से भी उन्होंने कुछ भी नहीं कहा था। जिस

---

१. भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई। २-१६३-१।
२. सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए।२-१६४-१।
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे। २-१६४-४।
३. मानस, २-२८२-२-४।
४. वही, २-२८३-२।

समय राजा जल से वाहर पड़ी हुई मछली से छटपटा रहे थे, कौशल्या के मधुर-वचन उन्हें जल की छींटों जैसे सुखमय प्रतीत हो रहे थे।

संक्षेप में तुलसी की कौशल्या विवेक-संयमशीला, अत्यन्त सुशीला एवं ऐसी स्नेह-दयामयी गृहिणी हैं, जिन्हें अपने परिवार के एक-एक व्यक्ति का ध्यान है और जिनका असीम निश्छल-वात्सल्य नेत्र और पयोधरों में वार-वार उमड़-उमड़ आता है।

कैकेयी

वाल्मीकि-रामायण में कैकेयी का स्वाभाविक वर्णन है। वह स्वभाव से 'आत्म-कामा सदाचण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी थी।'[1] एक तो वह स्वयं कुटिल थी, दूसरे दशरथ ने दुराव-छिपाव किया। मंथरा ने दशरथ के इस छिद्र का लाभ उठाकर उसे भड़का दिया। वैसे राम के अभिषेक-निश्चय तक वह राम के प्रति ममतामयी देखी जाती है, भले ही यह ममता राम की विनयशीलता के ही कारण क्यों न हों। वाल्मीकि-रामायण में कैकेयी के चरित्र के तीन अंग हैं—(१) अभिषेक-निश्चय के पूर्व की कैकेयी, (२) मंथरा-द्वारा भड़कायी गयी कैकेयी और (३) ग्लानि से गलती हुई कैकेयी।

परवर्ती लेखकों ने कैकेयी की कुटिलता को ढंकने के लिए वहाने खोजे हैं। असमीया-रामायण को छोड़ कर शेप तीन भापा-रामायणों में भी ऐसा ही प्रयास है भरत जैसे आदर्श-पात्र की माता होने के कारण ही ये प्रयास किये गये हैं। इनसे। चरित्र की स्वाभाविकता नहीं रही है। पूर्वांचलीय-रामायणों में कैकेयी को डरपोक भी दिखाया गया है। वह भरत या शत्रुघ्न का क्रोध देखकर भागती है। मानस में ऐसा वर्णन नहीं है।

०**असमीया** की कैकेयी वहुत-कुछ वाल्मीकि की कैकेयी के समान है। भरत उसके स्वभाव को इन शब्दों में वताते हैं—तप्त सुवर्णर वर्ण निकारुण मति। कलहत प्रिया एहो प्रचण्ड प्रभाव। २४८२।

अभिषेक के पूर्व कैकयी राम और दशरथ के प्रति उदार देखी गयी। उसने मंथरा से कहा—'राम भाई को पुत्र के समान देखेंगे। ज्येष्ठ पुत्र को राज्य-धन-कोप देने में राजा दशरथ का मैं कोई दोप नहीं देखती। गुण-मन्दिर राम शुद्धमति हैं और वे कौशल्या से भी अधिक मुझ में भक्ति रखते हैं।' १५८०-८२।

कैकेयी की कुटिलता का रूप वाल्मीकि-रामायण के जैसा नहीं है। यहाँ केवल एक विशेपता है। सभी रामायणों में कैकेयी ग्लनि से घुलती प्रतीत होती है, वैसा यहाँ नहीं है। रामादि के लौटने पर उसे उनके लौटने का हर्ष या अपने किये पर

१. वाल्मीकि-रामायण, २-७०-१०।

ग्लानि न होकर विषाद होता है। मुँह से मधुर बोलते हुए भी मन ही मन वह सोच-विचार कर रही है। वह सब के पीछे-पीछे जा तो रही है किन्तु उसके दिल में छुरी है।

मनत विषाद वर भैला कैकेयीर। ६६०७
मुखत मधुर मने मने गुणि आछे। हृदयत खुर चलि भैला पाछे पाछे॥ ६६०८

०**बँगला-रामायण** में भी कैकेयी ने राम, दशरथ और कौशल्या के प्रति अपना सद्भाव व्यक्त कर कहा था—राम मुझे अतिशय गौरव प्रदान करते हैं। राम की बुराई करना उपयुक्त नहीं है। राम गुणसागर और विचार में पंडित हैं। पितृराज्य ज्येष्ठपुत्र ही पा सकता है। राम भरत को स्वयं ही राज्य दे देंगे। बड़ी रानी मेरा गौरव रखेंगी।[1]

कैकेयी राम के गुणों को देखकर तथा जनता पर उनके गुणों का प्रभाव जान कर लुब्ध और साथ ही शंकित भी थी। वह मंथरा पर पहले तो क्रुद्ध हुई और राम की प्रशंसा करने लगी किन्तु जब भविष्य का अन्धकार-मय चित्र खींचा गया तो उसका कुटिल रूप उभर आया। उसे चिन्ता थी कि राम के मधुर वचनों से सभी संतुष्ट हैं। ऐसे राम को राजा वन क्यों भेजेंगे?

सबे तुष्ट श्री रामेर मधुर बचने। हेन रामे केमने पाठाबे राजा बने। पृ० ९७

या तो कैकेयी को राम-मुग्ध जनता का भय है अथवा वह स्वयं ही उदार है। वह कहती है—राम राजा के प्राण और गुण के सागर हैं। उन्हें वन कैसे भेज दूँ। अच्छा तो यही है कि उन्हें घर में रख लूँ और राज्य न दूँ। उन्हें किस दोष के लिए वन भेजूँ?

नृपतिर प्राण राम गुणेर सागर। केमने पाठाव तारे बनेर भितर॥
घरेते राखिब बरं राज्य नाहि दिब। कोन् दोषे श्रीरामेरे बने पाठाइब॥ ९७

कैकेयी को दोष-मुक्त करने के प्रयास दो प्रकार के हैं—(१) अयोध्याकाण्ड में कहा गया है कि बचपन में इसने एक ब्राह्मण पर व्यंग्य किया था। उसने शाप दिया कि सर्वलोकों में तेरा अपयश होगा।[2] (२) राम जब लौट आये, तब उसने कहा, मुझे बहाना बनाकर तुमने देवताओं का कार्य किया है। राम गलती करते पकड़े गये और उन्होंने लज्जा-भाव प्रकट कर मानो स्वीकार कर लिया कि वे स्वयं वन जाना चाहते थे, इसलिए ये सब घटनाएँ हुई। **अध्यात्म-रामायण** में राम ने चित्रकूट में उससे कहा है—मयैव प्रेरता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता (मुझसे प्रेरित होकर ही

---

१. बँगला-रामायण, ९६-९७।
२. वही, ९८।

निर्वासन की वाणी तुम्हारे मुख से निकली। २-९-६२

ग्लानि का अनुभव करने वाली यह कैकेयी अभिमानिनी भी है। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया था 'यदि राम ने मुझे मा कहकर पूर्ववत् आदर न दिया तो मैं विषपान कर प्राण दे दूँगी।' राम ने उसके मान की रक्षा कर ली।

बँगला-रामायण में कैकेयी के दो अन्य रूपों का भी चित्रण है—(१) सौतिया-डाह और (२) पतिव्रत। चरु के वितरण के अवसर पर जब कौशल्या ने अपने भाग का आधा-भाग सुमित्रा को दिया तो कैकेयी ने भी ऐसा ही किया ताकि उसके पुत्र का भी एक साथी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हो सके। राम के जन्म पर उसे विषाद हुआ था, कि पहले उसके पुत्र क्यों न हुआ। राज्य का अधिकारी अब उसका पुत्र न हो सकेगा। इसी प्रकार जब दशरथ ने सुमित्रा से विवाह किया था, तब भी कैकेयी को सौतिया-डाह हुआ था। वह शंकर की पूजा कर मनाती थी कि सुमित्रा दुर्भगा हो जाए।

उसके पतिव्रत का उदाहरण दशरथ का उपचार है। दशरथ प्राणघातक-व्रण की पीड़ा से छटपटा रहे थे, उसने वैद्य के निर्देशानुसार अपने रसीले ओठों से व्रण की पीब चूसकर राजा को पीड़ा-मुक्त किया था। शम्बर-युद्ध में आहत राजा की उसने परिचर्या की थी।

०उड़िया० के अनुसार मन्थरा के मुख से राम के अभिषेक का समाचार सुन कर वह प्रसन्न ही हुई थी—तुम्हारे ये वचन अमृत-समान हों। मेरा ज्येष्ठ पुत्र राम महीपाल हो।

ए तुम्भ वचन गोटि अमृत गो हेउ। ज्येष्ठ पुत्र राम मोर महीपाल हेउ॥ २-२५

आगे उसे भय दिखाया गया कि कौशल्या राजमाता और सीता पटरानी होंगी। सौतेले भाई राम की सेवा करेंगे। तुम्हारी वहू को सीता की सेवा करनी पड़ेगी। सभी सेना और सेनापति राम के वश में होंगे, उस समय तू कुढ़-कुढ़कर मरेगी। कैकेयी मन्थरा की इन बातों से भ्रमित हुई।[1]

किन्तु कैकेयी का चण्डी-रूप नहीं आने पाया है। उड़िया-लेखक ने आरम्भ से ही उसे निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की है। वह बाल्यकाल में एक वृद्ध एवं बधिर ब्राह्मण को देखकर हँसी थी इसलिए उसने शाप दिया कि तुझे देखकर जग हँसेगा। इसके अतिरिक्त वसिष्ठ और वामदेव ऋषि योगबल से जान लेते हैं कि कैकेयी बुरी नहीं है, देवताओं ने ही यह सब किया है।

देवे उपाय कले कैकेयी नोहे मन्द। २-३५

यहाँ मानस से समानता मिलती है। देवताओं ने यहाँ भी उपाय किया है।

---

१. उड़िया-रामायण, २-२५।

ब्रह्मा ने खल और दुर्बल भाइयों को भेजकर क्रमशः कैकेयी और दशरथ के शरीर में प्रविष्ट होने के लिए कहा है। खल ही कैकेयी को क्रूर और दुष्ट बनाये है।

उड़िया-रामायण में कैकेयी के उग्र चंडी-रूप का वर्णन तो नहीं है किन्तु कपट-चारिणी रूप का है, जैसा कि अन्य किसी रामायण में नहीं है, असमीया के लंकाकांड में अवश्य कुछ है। उड़िया-रामायण में वह राम के वनवास के अवसर पर सब के रोने पर स्वयं भी ऊपर-ऊपर से रोती है।

लोक आचारकु सेहि करइ रोदन। २-४६

रामादि के लौटने तक वह सुधर जाती है। सीता के प्रणाम करने पर वह सीता को आलिंगन कर उनका मुँह चूम लेती है। ६-३६५

मानस की कैकेयी कोपभवन में जाने की स्थिति के आने के पूर्व तक अत्यन्त हँसमुख और प्रिय स्वभाव की जान पड़ती है। मन्थरा को लम्बी साँसें भरता देखकर उसने हँसकर कहा था—'तू गाल बहुत बजाया करती है, लगता है लक्ष्मण ने इसीलिए मरम्मत कर दी है।'[1] फिर भी जब मन्थरा नागिन सी फुफकारती रही तो कैकेयी चिन्तित होकर दशरथ और राम आदि भाइयों की कुशल पूछती है। उसके हृदय में सौतिया-डाह नहीं था। (कठोर होने पर ब्राह्मण स्त्रियों आदि ने उसे समझाकर कहा भी था—'कबहुं न कियहु सवति आरेसू' २-४८-७) मन्थरा के मलिन मन से परिचित होकर वह अत्यन्त कुपित होकर उसे 'घरफोरी' कहकर उसकी जीभ निकलवाने को प्रस्तुत हो गयी थी।[2] उसकी विनोद-प्रियता का भाव फिर उमड़ आता है वह मन्थरा को 'कुबड़ी' कहकर मुस्करा पड़ती है।[3]

राम के प्रति उसका हृदय अत्यन्त स्नेहार्द्र था। उसे गर्व था कि राम उसे कौशल्या ये भी अधिक प्यार करते हैं। उसने राम की प्रीति की खूब परीक्षा कर ली थी। ऐसे प्राणप्रिय राम के तिलक पर मन्थरा का क्षोभ देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह तो इस शुभ समाचार के लिए मुँहमाँगा पुरस्कार देने के लिए प्रस्तुत थी।[4]

मन्थरा ने सौतों के कष्टों की कहानी कहकर उसे भय दिखाया—'तुझे और तेरे पुत्र को चाकरी करनी पड़ेगी, तभी निस्तार होगा। भरत बन्दीगृह का सेवन करेंगे और लक्ष्मण राम के सहकारी बनेंगे।'[5] फिर तो स्वाभिमानिनी कैकेयी भी कह उठी—

---

१. हंसि कहि रानि गालु बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें।। २-१२-७।
२. पुनि असि कबहुँ कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढ़ावहुँ तोरी।। २-१३-८।
३. मानस, २-१४।
४. वही, २-१४-१—८।
५. वही, २-१८-८, २-१९।

नैहर जनमु भरव वरु जाई। जिअति न करवि सवति सेवकाई॥ २-२०-१

कोपभवन में जाने के पश्चात् कैकेयी बड़ी कठोर हो जाती है। यहाँ कलह-प्रिया, कुटिला और कटुभाषिणी नारी के स्वाभाविक चित्रण में लेखक को अन्य रामायणकारों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। उसका चण्डी-रूप निम्न शब्दों में वर्णित है—

आगें दीखि जरत रिसि भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥ २-३०-१

उसके संवादों में बड़ी तिक्तता आ जाती है, वह दशरथ के घावों पर नमक छिड़कती हुई कहती है—क्या भरत तुम्हारे पुत्र नहीं! मैं क्या तुम्हारी रखैल हूँ। या तो उत्तर दो या 'ना' कर दो। तुम तो रघुकुल में सत्यवादी विख्यात हो।[1]

दशरथ के बहुत समझाने पर भी वह नहीं मानी—'करोड़ों उपाय क्यों न करो, तुम्हारी माया यहाँ न लगेगी। या तो वचन पूरे करो या 'ना' कर अपयश लो। मुझे बहुत प्रपंच अच्छे नहीं लगते।'[2]

अपनी कुटिलता के लिए कुख्यात यह स्त्री सम्भवतः तभी चेती होगी, जब कि इसके ही गर्भ से उत्पन्न पुत्र ने आकर इसे लांछित किया। फिर तो यह ग्लानि का अनुभव करती है, और उसके हृदय की सात्विकता पुनः प्रकट होती है। चित्रकूट पहुँचकर सीता-सहित दोनों सरल भाइयों के कष्ट देखकर यह कुटिल रानी अघाकर पछताती है और पृथ्वी में समा जाने की इच्छा व्यक्त करती है।[3] चित्रकूट में जनक की उपस्थिति में तो यह और भी अधिक सकुचा गयी।[4] १४ वर्ष की अवधि बीत जाने पर जब राम वापस आये और सबसे पहले उसी से मिले, उस समय तो वह कट कर रह गयी होगी।

अन्य पात्र

सुमित्रा और शत्रुघ्न—लक्ष्मण-जननी सुमित्रा गुणों में कौशल्या जैसी है एवं लक्ष्मण-अनुज शत्रुघ्न स्वभाव एवं चरित्र में अपने सहोदर अग्रज जैसा है। किन्तु दोनों का चरित्र विकास न कर सका। रामकथा मुख्यतया राम को केन्द्र मानकर चलती है, अतएव उनके चरित्र को विकसित करने वाली घटनाओं और पात्रों को कथा में विशेष महत्त्व मिला है। लक्ष्मण राम को सान्निध्य पाकर अपनी चरित्रगत विशेषताएँ दिखा गये किन्तु लक्ष्मण से सम्बन्धित पात्र—अनुज, माता एवं पत्नी के चरित्रों का विकास

---

१. मानस, २-२९-८, २-२९-२, ४।
२. वही, २-३२, ५,६।
३. वही, २-२५१-५,६।
४. वही, २-२७२—१।

न हो सका। सुमित्रा एवं शत्रुघ्न क्रमशः कौशल्या एवं भरत के पिछलग्गु बने रह गये। उर्मिला विस्मृति के गहन अन्धकार में लुप्त हो गयी, जिसके कि कारण रवीन्द्र बाबू, आचार्य द्विवेदी और गुप्त जी को अपना क्षोभ प्रकट कर मानो क्षतिपूर्ति का प्रयास करना पड़ा है।

भाषा-रामायणों के इन पात्रों में कोई उल्लेख-योग्य विशेषता नहीं है। उनका जितना भी चरित्र अंकित है वह उज्ज्वल है एवं पारस्परिक साम्य से युक्त है।

विश्वामित्र—विश्वामित्र का क्रोध प्रसिद्ध है। पूर्वांचलीय-रामायणों में दशरथ पर विश्वामित्र अत्यन्त कुपित होते हैं। उड़िया-रामायण में वसिष्ठ के साथ उनके संघर्ष का रूप भी अंकित है। असमीया और बँगला ग्रन्थों में विश्वामित्र को ताड़का से भीत और हास्यास्पद-स्थिति में अंकित किया गया है, मानो उन्हें तत्कालीन ब्राह्मण बना दिया गया है। बँगला० के राम उन्हें विशेष आदर नहीं देते। मानस में विश्वामित्र सौम्य ऋषि के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। वे दशरथ के पुत्र-मोह पर क्रुद्ध न होकर मन ही मन मुग्ध होते हैं। राम-लक्ष्मण भी अपने स्नेह-मय गुरु को पिता जैसा आदर देते हैं।

सुग्रीव—सभी रामायणों का सुग्रीव राम को ब्रह्म मानता है। वालि से प्रथम युद्ध में मार खाकर पूर्वांचलीय-रामायणों का सुग्रीव राम के प्रति क्रोध-प्रकाश करता है। सभी रामायणों में वह राम का योग्य सखा है, मानस में वह राम का भक्त अधिक प्रतीत होता है। बँगला और उड़िया रामायणों का सुग्रीव राम की शक्ति पर सहज विश्वास नहीं कर लेता। बँगला० का सुग्रीव निर्भीक एवं अकृतज्ञ प्रतीत होता है। लक्ष्मण के क्रोध करने पर वह डरता नहीं, कहता है—'मैंने किसी का अपराध नहीं किया, मुझे किसका डर है।'[1] उड़िया० का सुग्रीव बहुत अधिक डरपोक दिखाया गया है। वह रसिक और चालाक भी जान पड़ता है।

वालि के चित्रण में पूर्वांचलीय-रामायणों ने मूल-रामायण के साथ ही हनुमन्नाटक आदि ग्रंथों से भी प्रेरणा ली है। इन ग्रंथों में वालि को भक्त दिखाने के साथ ही राम के प्रति उसके उग्र क्रोध का भी वर्णन है। मानस में उसका भक्त-रूप अधिक उभरा है। **अंगद** बहुत कुछ हनुमान जैसा है। पूर्वांचलीय ग्रंथों का अंगद सीता की खोज न पाकर सुग्रीव के भय से उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करता है। बँगला-रामायण का अंगद अत्यन्त वाक्पटु है, वह राम के प्रति भी सन्देह प्रकट करता है। वह वालि-वध को राम का कुकार्य कहता है। मानस में अंगद को विह्वल भक्त दिखाया गया है, वह कहीं भी पूर्वांचलीय-अंगद जैसी मनोवृत्ति नहीं दिखाता। अयोध्या पहुँचकर राम से बिछुड़ते हुए अंगद की भक्ति-विह्वलता देखते ही बनती है। यह अंगद भी रावण से बात करते समय अपनी वाक्पटुता का परिचय देता है।

---

१. अपराध नाहि करि कारे मोर डर। पृष्ठ १८३।

विभीषण धार्मिक था, उसने रावण की अनीतियों का समर्थन नहीं किया। फलतः रावण ने उसे मारकर निकाल दिया। असमीया एवं बँगला रामायणों में वह अपने सौतेले भाई कुवेर के यहाँ गया, वहाँ शंकर का आदेश पाकर वह राम की शरण में आया। बँगला० का विभीषण भक्त तो है ही स्वाभिमानी भी है। मेघनाद के धिक्कारने पर वह कहता है—'राक्षसकुल में जन्म लेने पर भी मैं दुराचारी नहीं हूँ, मैंने न तो पर-द्रव्य का हरण किया है और न पर-दारा का।' वह भीरु-स्वार्थी भी प्रतीत होता है। नागपाश-बद्ध राम के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के स्थान पर वह राम पर आक्षेप करता है—'तुम्हारे कारण मैं जीवित ही मर गया। मेरे लिए कहीं स्थान नहीं, मैं कहाँ जाऊँ।' उड़िया-रामायण एवं मानस के विभीषण के भक्तिपरक दृष्टिकोणों में समानता है। रावण से अपमानित विभीषण दोनों ही ग्रन्थों में राम के दर्शन से अपने को धन्य करने के लिए भक्ति-तन्मय होकर गया है। एक स्थल पर उड़िया-रामायण के विभीषण का मनोवैज्ञानिक वर्णन है। रावण की मृत्यु पर वह बहुत विलाप करता है। राम ने पूछा—'रावण को जीवित कर दूँ ?' बस विभीषण के आँसू रुक गये, इस बात पर वह तैयार नहीं हुआ। रावण के जीवित होने पर वह राज्य कैसे कर पाएगा। तुलसीदास ने विभीषण को भक्तराज चित्रित कर अन्य ग्रंथों के इस पात्र से अधिक गौरव-मय अंकित किया है।

पूर्वांचलीय अनार्य-नारियाँ यथावसर अपना रागद्वेष प्रकट करती हैं। तारा एवं मन्दोदरी राम पर कुपित होती हैं। ये स्त्रियाँ समझदार हैं एवं सदैव अपने पतियों को उचित परामर्श देती हैं। तुलसीदास का दृष्टिकोण भक्तिरंजित है। राम के प्रति इन स्त्रियों की दृष्टि तुलसी की दृष्टि हो जाती है और ये स्त्रियाँ अपने पतियों को सदैव राम की भक्ति करने का सुझाव देती रहती हैं।

छठा अध्याय

कथा–विधान

भापा-रामायणों का रचना-काल १४वीं शती की समाप्ति से १६वीं शती के उत्तरार्द्ध तक लगभग २०० वर्ष का है। पूर्वाचलीय-रामायणों को वाल्मीकि-रामायण का भाषानुवाद कहा जाता है, वस्तुतः यह सत्य नहीं है। समस्त रामायणों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष आधार वाल्मीकि-रामायण ही है, किन्तु प्रस्तुत करने में अन्तर हैं। साथ ही मूल-रामायण से भिन्नता के अन्य कारण भी हैं—

१. कथा का आधार मूल-रामायण के अतिरिक्त अन्य कई काव्य-नाटकादि एवं लोक-प्रचलित आख्यानों का होना।

२. समस्त कथा को भक्ति-परक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना।

३. लेखक का निज का दृष्टिकोण।

४. युगीन-परिवेश के मध्य कथा को प्रस्तुत करना।

भाषा-रामायणों की पारस्परिक विभिन्नता के कारण भी उपर्युक्त ही हैं। वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त कई राम-कथा-सम्बन्धी ग्रंथ प्रचलित थे, किसी ने कहीं से प्रेरणा ली, किसी ने कहीं से। सभी में समानता का आधार भक्ति-परक दृष्टिकोण है। यदि समस्त भाषा-रामायणों को किसी भी भारतीय-भाषा में अनूदित किया जाए, तो उनकी कथा अथवा प्रतिपाद्य विषय से भारतीय जन-मात्र तादात्म्य कर लेगा। रामायणों के विचारों और दृष्टिकोणों में मूलतः एकता है। भारतीय-संस्कृति भाषा का झीना आवरण डालकर केवल दृश्यमान भिन्नताओं के साथ अभिव्यक्त हुई है।

वाल्मीकि का वर्णन महामानव का है, अतएव कथावस्तु एवं चरित्र-चित्रण में महापुरुष के युगीन आदर्शों का पूर्ण चित्रण है। भाषा-रामायणों में मानव-चरित्र का नहीं, अपितु नारायण की माया-लीलाओं का वर्णन है। अतएव बीच-बीच में चमत्कार-पूर्ण कथाएँ, स्तुतियाँ, कथा का फल, भक्ति अथवा नाम का महत्त्व सिद्ध करने के लिए अनेक कथाएँ सम्मिलित की गयी हैं। ब्रह्म राम एवं उनके परिवार के अनेक जनों के दोष ढकने के लिए भी कई कल्पित आख्यानों की उद्भावनाएँ की गयी है। काव्य की दृष्टि से इनका मूल्य कम है, किन्तु युगीन आवश्यकता देखते हुए अधिक है। इन कथाओं को संस्कृतज्ञ-जनों की उपेक्षा कर साधारण-जन के लिए प्रस्तुत किया गया है।

असमीया-रामायण में **अवान्तर** कथाएँ बहुत कम हैं। **बँगला-रामायण** का शुद्ध पाठ उपलब्ध नहीं है, उसमें अनेक प्रक्षेपों का समावेश है। **मानस** में अवान्तर कथाओं का अभाव है, उसमें अध्यात्म-रामायण के आधार पर मुख्य कथा कही गयी है, रस-पूर्ण स्थलों का मार्मिकता के साथ चित्रण हुआ है। किन्तु मानस में ब्रह्म, भक्ति, ज्ञान आदि का निरूपण एवं तद्विषयक व्याख्यान अवश्य ही कथा के सहज विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। फिर भी तुलसीदास के अवान्तर प्रसंग कुशलता के साथ किसी विशेष प्रभाव को ग्रहण किये हुए मुख्य-कथा से संयुक्त हैं। **उड़िया-रामायण** में अवान्तर प्रसंगों की भरमार है, लेखक जिस विषय का भी वर्णन करता है, जम कर करता है। जितने पौराणिक आख्यानों को वह रामकथा के साथ सम्बद्ध कर सकता था, किया गया है, उसने अपनी बहुज्ञता का भी विस्तृत परिचय दिया है।

वाल्मीकि-रामारायण में भी विस्तृत वर्णन हैं, कहीं-कहीं अवान्तर कथाएँ भी हैं। वह आदि महाकाव्य था, जिसके विस्तृत वर्णन अपने स्थान पर शोभा पाते हैं, साथ ही उसमें कालान्तर के अनेक प्रक्षेपों ने उसके दो काण्डों-आदि एवं उत्तर में कथा का व्यर्थ विस्तार किया है। भाषा-रामायणों के भी प्रथम और अन्तिम काण्डों में शैथिल्य एवं व्यर्थ विस्तार है। पुत्रेष्टि-यज्ञ से लेकर राम के राज्यारोहण तक की कथाओं में मोटे रूप में समानता मिलती है। पूर्वांचलीय-रामायणों के उत्तरकाण्डों में भी समानता है। मानस का उत्तरकाण्ड एकदम भिन्न है। आदिकाण्ड में सभी रामायणों में अपने-अपने ढंग की खींचतान देखी जाती है। सभी का प्रारम्भ भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के आधार पर हुआ है। यही कारण है कि आदिकाण्ड के तुलनात्मक अध्ययन में कठिनाई उपस्थित हुई, उसका विस्तार भी हो गया है।

यहाँ यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि वाल्मीकि-रामायण के तीन संस्करणों में एक गौड़ीय-संस्करण भी है जिसमें कई नूतन आख्यान प्राप्त हैं। पूर्वांचल में इसी का प्रचार होने के कारण पूर्वांचलीय-रामायणों के प्रसंगों में पारस्परिक समता के साथ ही मानस से वैषम्य भी है।

वक्ता-श्रोता—वैदिक एवं लौकिक दोनों साहित्यों में वक्ता-श्रोता की परम्परा रही है। वाल्मीकि-रामायण में भी ब्रह्मा नारद को कथा सुनाते हैं और नारद वाल्मीकि को। वक्ता-श्रोता की योजना संभवतः कथा के महत्त्व—वर्द्धन के लिए हुई है कि ऐसे-ऐसे महानुभावों ने कथा को कहा और सुना। द्वितीय उद्देश्य हो सकता है—युगीन-शंकाओं का समाधान। राम के ब्रह्मत्व की पुष्टि के लिए किसी जिज्ञासु-शंकालु श्रोता के प्रश्नोत्तर-रूप में संवाद चला है। प्रत्येक रामायण में किसी न किसी रूप में वक्ता-श्रोता हैं, किन्तु उड़िया-रामायण और मानस में ये विशेष रूप से हैं। समस्त उड़िया-रामायण शिव-पार्वती के संवाद-रूप में आद्यन्त प्रस्तुत है। शिव पार्वती को शाकंभरी, शशिमुखी, गौरी, पार्वती, महामाया आदि अनेक नामों से अभिहित करते हुए कथा सुनाते हैं। अध्यात्म-रामायण भी इसी प्रकार कथित हुई है। मानस में

चार-चार वक्ता-श्रोता हैं। भरद्वाज याज्ञवल्क्य, शिव-पार्वती, काकभुशुंडि-गरुड़ और तुलसीदास-सन्तजन।

कथा-संगठन—वाल्मीकि-रामायण की कथा-वस्तु में शैथिल्य है, उसमें अनेक स्थलों पर पुनरुक्तियाँ हैं। पूर्वांचलीय-रामायणों में पुनरुक्तियाँ देखी जाती हैं। जो बातें पाठकों को स्वयं ज्ञात हैं, अथवा जिनके सम्बन्ध में वह स्वयं कल्पना कर सकता है, उसका बार-बार वर्णन करना कला एवं रोचकता की दृष्टि से ठीक नहीं रहता। जब कभी दो पात्र मिलते हैं तो वे पूर्व-घटित प्रसंग सुना जाते हैं। ऐसा कई स्थलों पर होता है। गोस्वामी तुलसीदास ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर प्रायः इस प्रकार की पंक्तियों का प्रयोग कर आगे बढ़ जाते हैं—

नर बानरहि संग कहु कैसें।
कही कथा भइ संगति जैसें॥ ५-१२-११

स्वयंप्रभा की कथा का विशेष सम्बन्ध मुख्यकथा से नहीं है, फिर भी पूर्वांचलीय रामायणों में उसका विस्तृत परिचय है। तुलसीदास केवल इतनी सी पंक्ति से काम निकाल लेते हैं—'तेहिं सब आपन कथा सुनाई।' बँगला और उड़िया रामायणों में गंगा की उत्पत्ति-कथा विस्तार से वर्णित है। मानस में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण सहित गंगा-तट पर पहुँचते है एवं तुलसी एक अर्धाली का प्रयोग करते हैं—

गाधि सूनु सब कथा सुनाई।
जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥ १-२११-२

असमीया-लेखक माधव कन्दली ने प्रतिज्ञा की है कि लम्बे वर्णन छोड़कर सार-सार का वर्णन होगा। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही, किन्तु वाद्य, अस्त्रशस्त्र, भोज्य-पदार्थ आदि के वर्णन में तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में लम्बी-लम्बी सूचियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। कथा की एकसूत्रता बार-बार छिन्न होती है। उड़िया-रामायण विश्रृंखलित है, किन्तु रोचक वर्णन करने में सबसे आगे है। असमीया में एकसूत्रता है, किन्तु असमीया-विद्वान् स्वयं ही स्वीकार करते हैं कि उनकी भाषा की रामायण में बँगला-रामायण जैसी कथा की रंगीनी नहीं है। बँगला-रामायण में कथा-संगठन का अभाव परवर्ती प्रक्षेपों के कारण भी हो सकता है।

मानस में भी ऐसे स्थल हैं जो रसिक पाठकों के लिए अरोचक हो सकते हैं, जहाँ तुलसीदास का भक्त, दार्शनिक एवं समाज-सुधारक रूप उभर आता है, वहीं कथा-प्रवाह शिथिल हो जाता है। वैसे तुलसीदास ने कसी हुई चुस्त भाषा में समस्त कथा वर्णित की है। कथा में नाटकीय-चमत्कार प्रस्तुत करने का भी उन्हें ध्यान रहा है। धनुभंग के पश्चात् राजाओं के विद्रोह एवं रनिवास की चिन्ता के मध्य क्रोध-मूर्ति परशुराम की अवतारणा जैसे प्रसंग नाटकीय-चमत्कार से परिपूर्ण हैं। संक्षेप में कथा की दृष्टि से सहज-प्रवाह, स्वाभाविता, रोचकता, नाटकीय-चमत्कार एवं सांकेतिकता आदि अनेक गुण मानस में अन्य रामायणों की अपेक्षा अधिक हैं।

नाटक की पाँच कार्य-अवस्थाओं (१-प्रारम्भ, २-प्रयत्न, ३-प्राप्त्याशा, ४-नियताप्ति और ५-फलागम) की दृष्टि से देखने पर तुलसी की काव्य-दक्षता का पता लगता है। रावण-वध एवं रामराज्य की स्थापना ही फलागम है। महाकाव्यत्व की दृष्टि से कथा यहीं समाप्त हो जानी चाहिए थी, किन्तु पूर्वांचलीय-रामायणों में इसके पश्चात् भी कई विशृंखलित आख्यानों का क्रम है। रामादि का अवसान दिखाना भारतीय महाकाव्य-परम्परा के अनुकूल नहीं है।

आदिकाण्ड

(सभी रामायणों में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार इसे आदिकाण्ड कहा गया है, केवल मानस में बालकाण्ड नामकरण है।)

(१) प्रारम्भ-आदि-रामायण की प्रेरणा—वाल्मीकि-रामायण प्रारम्भ होती है वाल्मीकि-नारद संवाद से। वाल्मीकि जानना चाहते हैं कि गुण, शूरता, औदार्य, धर्मप्रियता, चरित्र-गुरुता, विद्वत्ता, अंग-सुष्ठुता, स्वभावगांभीर्य, आदि अनेक विशेषताओं से युक्त व्यक्ति कौन है? नारद इक्ष्वाकुवंश-प्रभव राम को इन सभी गुणों से अलंकृत बताते हैं। वे संक्षेप में रामकथा कहते हैं, यही मूल-रामायण है।

आगे वर्णित है कि वाल्मीकि तमसा-तट पर गये। वहाँ किसी व्याध ने अपने पंखों से मादा को ढके हुए कामातुर नर-क्रौंच को मार दिया। करुणा से कातर मुनि के मुख से अकस्मात् श्लोक निकल पड़ा। वे अपने इस सृजन पर विचार करने लगे। ब्रह्मा ने बताया कि यह उन्हीं की प्रेरणा से हुआ है और अब उन्हें नारद के कथनानुसार रामायण की सृष्टि करनी चाहिए। वे जो कुछ लिख जाएँगे, राम जन्म लेकर वही करेंगे।

इस प्रकार वाल्मीकि-रामायण के प्रारम्भ में भी संवाद-पद्धति है। वाल्मीकि को रामायण लिखने की प्रेरणा मिली—१. नारद और ब्रह्मा की आज्ञा से, २. राम के शुभचरित्र से और ३. क्रौंच की करुणा से।

भाषा-रामायणों का प्रारम्भ : भक्ति-परक प्रेरणा—भाषा-रामायणकारों के युग तक महामानव राम अपने गुण-चरित्र के कारण भक्तवत्सल परब्रह्म हो चुके थे, अतएव भक्ति-निवेदन अथवा माहात्म्य-कथन के बिना भाषा-रामायणें भला कैसे लिखी जा सकती थीं।

पूर्वांचलीय-प्रदेश में कृष्णभक्ति का प्राबल्य था, जिसका प्रभाव पूर्वांचल की तीनों रामायणों पर है, विशेषतः असमीया एवं उड़िया रामायणों पर। असमीया-रामायण के आदिकाण्ड-लेखक **माधवदेव** ख्यातिप्राप्त कृष्णभक्त **शंकरदेव** के शिष्य थे, उनकी रचना पर कृष्णभक्ति का प्रभाव स्वाभाविक है। उड़िया-रामायण-लेखक **बलरामदास** जगन्नाथ के भक्त और **चैतन्य महाप्रभु** के सम-सामयिक थे। उन्होंने भी जगन्नाथ, कृष्ण और राम को अभिन्न रूप में देखा था। कृत्तिवास चैतन्य महाप्रभु के पूर्ववर्ती थे, जिससे चैतन्य की कृष्णभक्ति का प्रभाव उन पर न पड़ सका। कृत्तिवासी-रामायण के प्रक्षेपों पर अवश्य ही कृष्णभक्ति की छाप है।

असमीया-रामायण के प्रारम्भ में ही ब्रह्मा-हर-वन्दित कृष्ण की वन्दना है। कवि ने तुलसीदास के समान ही अपनी विनम्रता का वर्णन किया है।

बँगला-रामायण में नारद ने गोलोक में गदाधर और लक्ष्मी को चार रूपों में प्रकाश करते हुए पाया। रहस्य जानने के लिए वे ब्रह्मा को लेकर शिव के पास गये। शिव ने रावण के वधार्थ नारायण के चार अंशों में अवतार लेने की भविष्यवाणी की और नारद को आदेश दिया कि वे **रत्नाकर**[1] नामक दस्यु का राम-नाम से उद्धार करें।

उड़िया-रामायण में जगन्नाथ की वन्दना है। जगन्नाथ मन्दिर की मूर्तियों तथा जगन्नाथ के रूप का वर्णन है। इस रामायण के लंकाकाण्ड में क्रौंच की करुणा को रामायण लिखने की प्रेरणा बताया गया है।

मानस के प्रारम्भ में भी स्तुतियों की भरमार है। गणेश, सरस्वती, शंकर, गुरु, वाल्मीकि, हनुमान, सीता, राम, संत-असंत, चौरासी लाख योनियों सहित पूर्ण ब्रह्मांड की वन्दना कर तथा रचना का स्वान्तःसुखाय उद्देश्य, प्रेरणा-ग्रन्थों की ओर संकेत, प्राकृत-जनों के गुणगान की ओर विरति प्रकट करते हुए तुलसीदास का मानस प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ से ही तुलसी लोक की शंकाओं और समस्याओं के प्रति सजग हैं, अतएव तुरन्त ही राम-नाम का महत्त्व वर्णित कर सगुण-निर्गुण समन्वय में प्रयत्नवान् दिखायी पड़ते हैं।

(२) **वाल्मीकि-उपाख्यान और रचना की प्रेरणा**—वाल्मीकि-रामायण में वर्णित क्रौंचवध से वाल्मीकि के हृदय में करुणा के उद्रेक वाला प्रसंग केवल **असमीया** और **बँगला** रामायण में मिलता है—

असमीया-रामायण के अनुसार एक दिन वाल्मीकि शिष्य भरद्वाज को लेकर गंगा-स्नान करने गये। डाल पर बैठे क्रौंच को व्याध ने तीर से मारा, मुनि के मुख से श्लोक निकले। जगत-हित के लिए राम का अवतार जानकर ब्रह्मा ने नारद-सहित आकर वाल्मीकि से रामचरित-वर्णन के लिए कहा।

बँगला-रामायण के अनुसार एकबार सरोवर के तट पर वाल्मीकि राम-नाम जप कर रहे थे। प्रणय-मक्त क्रौंच में से एक को व्याध ने बींध दिया। पक्षी उनकी गोद में गिरा। मुँह से छन्द निकल पड़ा। नारद ने बताया इसी छन्द में रामायण लिखो। उन्होंने राम का संक्षिप्त वृत्तांत भी वर्णित किया।

उड़िया-रामायण और मानस में आदिकवि की आदि प्रेरणा का वर्णन नहीं हुआ। वैसे उड़िया-रामायण के आदिकाण्ड के मध्यभाग में बलरामदास कहते हैं—

श्रीराम चरित ए सामबेद बाणी।
बालमीक आगे एहा ब्रह्मा गले भणि॥

---

१. रत्नाकर दस्यु ही तपस्या करके वाल्मीकि बनता है।

(यह रामचरित सामवेद की वाणी है। इसे वाल्मीकि के आगे ब्रह्मा ने वर्णित किया था।)

(३) **वाल्मीकि-दस्यु वृत्तांत**—बँगला-रामायण में वाल्मीकि के दस्यु-जीवन का वर्णन आया है। अध्यात्म-रामायण में भी वाल्मीकि के दस्यु-जीवन का वर्णन है। इन दोनों ग्रन्थों के पूर्व का कोई प्रमाण नहीं मिलता, अतएव किसने किससे प्रेरणा ली है कहना कठिन है। दोनों ही रामायणों का रचनाकाल स्थिर नहीं है। डा० शशिभूषण दासगुप्त का मत है कि अध्यात्म-रामायणकार ने ही बँगला-रामायण से प्रेरणा ली है, क्योंकि वाल्मीकि 'मरा' 'मरा' शब्द जपकर पवित्र हुए थे। 'मरा' शब्द बँगला का है तथा अन्य भाषाओं में नहीं है।[1]

किन्तु विद्वान् डा० दासगुप्त के मत से सहमत होने में कठिनाई यह है कि अध्यात्म-रामायण का रचनाकाल बँगला-रामायण से अवश्य ही पहले का है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल से भेंट होने पर उन्होंने इसका रचनाकाल गुप्त-युग बताया। इतने पीछे न जाएँ तब भी यह तो स्पष्ट ही है कि बँगला-रामायण में बहुत से प्रक्षिप्त अंश जोड़े गये हैं, जिनमें एक यह भी हो सकता है।

अध्यात्म-रामायण के इस प्रसंग की मौलिकता स्वीकार करने में एक ही कठिनाई रह जाती है। अध्यात्म-रामायण में 'मरा' शब्द का जप निरर्थक जान पड़ता है। जब कि बँगला मे वह सार्थक हो जाता है। बँगला में मरा-मड़ा मृत को कहते हैं। दस्यु वाल्मीकि मरा आसानी से कह सकता था, क्योंकि वह रोज ही किसी न किसी को मुर्दा बनाया करता था। बंगाल के किसी-किसी अँचल में आज भी शब्द के आरंभिक र का उच्चारण ल होता है। राम को लाम कहते हैं, किन्तु मरा को मरा ही कहेंगे। अतः इस अंचल के लोगों से मरा मरा कहलाया जाय तो स्वतः ही राम-राम का उच्चारण हो जाता है।[2]

लगता यह है कि अध्यात्म-रामायण में 'मरा' का जप इसलिए दिखाया गया कि राम के नाम को यदि उल्टा भी जपा जाए, तो भी उसका प्रभाव होता है। बँगला-रामायणकार ने अध्यात्म-रामायण के इस प्रसंग से प्रेरणा लेकर 'मरा' का सार्थक प्रयोग करने के लिए कहानी को विकसित कर लिया।

बँगला-रामायण में कथा इस प्रकार है—शंकर के कहने से ब्रह्मा और नारद पृथ्वी के महापापी का उद्धार करने निकले। च्यवन मुनि का पुत्र रत्नाकर दस्यु-वृत्ति करता था और महान् पापी था। वह संन्यासी-रूपधारी ब्रह्मा और नारद को देखकर

---

१. देखिए, लेखक की पुस्तक 'कृत्तिवासी बँगला-रामायण और रामचरितमानस' का तुलनात्मक अध्ययन, भूमिका, पृ० ८।

२. किसी-किसी अँचल में आरम्भ के र को अ भी बोलते हैं—राम—आम, देखिए ताराशंकर बन्द्योपाध्याय का आंचलिक उपन्यास-हाँसुली बाँकेर उपकथा।

उनके वस्त्र छीनने के हेतु लौह-मुद्‌गर लेकर झपटा किन्तु उसका हाथ न उठा। ब्रह्मा ने कहा, संन्यासी का वध महापाप है, फिर भी यदि तुम मारना ही चाहते हो तो ऐसे स्थान पर मारो, जहाँ हमारे शरीर के गिरने से चींटी आदि न मरें। और तुम घर जाकर पूछ भी तो आओ कि क्या तुम्हारे आश्रित तुम्हारे पाप के भी भागी हैं? वह पिता-माता और पत्नी से पूछने गया। सभी ने कहा कि उनका पालन करना उसका धर्म है। वे क्या जानें कि जीविका का रूप क्या है। रत्नाकर ब्रह्मा और नारद की शरण में आया। उन्होंने स्नान कर आने के लिए कहा किन्तु इसकी दृष्टि से सरोवर सूख गया, तब उन्होंने कमंडलु का जल छिड़ककर उसे राम-नाम का मंत्र दिया। पाप से जड़ हुई जीभ से वह राम न कह सका, तब उससे पूछा, तुम मृत व्यक्ति को क्या कहते हो? वह बोला 'मड़ा'। सूखे पेड़ को दिखा कर पूछा, यह क्या है? दस्यु ने कहा, मरा काष्ठ। बस 'मरा मरा' कहला कर ही उससे राम कहला लिया। वह ६० हजार वर्ष तक तप करता रहा। ब्रह्मा ने आकर देखा वह वल्मीक के भीतर है। ब्रह्मा ने इन्द्र को आज्ञा देकर सात दिन तक जलवृष्टि करायी और उसे संबोधित कर बोले, आज से तुम वाल्मीकि हुए।

(४) **महाभारत में वाल्मीकि**—श्री बुल्के ने वाल्मीकि के दस्यु-जीवन और उद्धार का मूल-स्रोत महाभारत में खोजा है।[१] अरण्यपर्व (१२२) में च्यवन ऋषि के उग्र तप का वर्णन है, जो कि तपस्या करते हुए वल्मीक से आवृत हुए थे। संभवतः च्यवन ऋषि के समान ही उग्र तप करने के कारण बँगला-रामायण में वाल्मीकि च्यवन-पुत्र बना दिये गये। महाभारत के अनुशासन-पर्व (४९) में वाल्मीकि कहते हैं कि विवाद में मुनियों ने मुझको एक बार ब्रह्मघ्न कहा था। इस कथन-मात्र से मैं पापी बन गया था। हो सकता है कि महाभारत के इसी प्रसंग से अध्यात्म-रामायण ने प्रेरणा ली हो।

अध्यात्म-रामायण के अयोध्याकाण्ड[२] में वाल्मीकि ने स्वयं ही अपनी पूर्व-कथा सुनाते हुए कहा है, मैं पहले किरातों के साथ रहकर बड़ा हुआ। मैं केवल जन्म का ब्राह्मण था, मेरे आचार शूद्रों के थे। शूद्रा के गर्भ से मेरे अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। मैं चोरों की संगत से चोर हो गया। एक दिन मैं सप्तर्षियों के पीछे भी उनके वधार्थ दौड़ पड़ा। उन्होंने कहा, पहले अपने कुटंबियों से पूछ आओ, क्या वे तेरे पाप में भागी होंगे। जब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे कुटुम्बी मेरे पाप में भागी न होंगे तो मैं सप्तर्षियों की शरण में आया। उन्होंने राम का नाम उलटकर जपने के लिए कहा। तपस्या करते समय मेरे आसपास वल्मीक बन गया। ऋषिगण ने ही मेरा नाम वाल्मीकि रखा।

अध्यात्म-रामायण के वर्णन की शैली संक्षिप्त है, कृत्तिवास ने अधिक चारुता

१. श्री कामिल बुल्के—रामकथा, द्वि० सं०, अनु० ३२-३३।
२. अध्यात्म-रामायण, २-६-६५,६६।

के साथ वर्णन किया है। अध्यात्म-रामायण में सप्तर्षि आते हैं, बँगला-रामायण में ब्रह्मा और नारद।

(५) क्या वाल्मीकि सच ही दस्यु थे ? भंगी जाति अपने को वाल्मीकि कहती है। उपर्युक्त दोनों रामायण में उन्हें ब्राह्मण कहा गया है। वाल्मीकि रामायण में तो वे तप:पूत शुद्ध चरित्र ब्राह्मण हैं, जैसा कि सीता की पवित्रता की शपथ लेते समय उनके वचनों से प्रकट होता है।[1] दस्यु-जीवन वाला वृत्तांत बहुत कुछ कल्पित जान पड़ता है। यदि इसमें कुछ भी सत्यता हो तो वाल्मीकि स्वयं ब्राह्मण ही होंगे, और तब शूद्रा स्त्री से उन्होंने कई पुत्र उत्पन्न किये थे, इस नाते भंगी आदि यदि उन्हें अपना पूर्वज मानते हों तो वह भी उचित है।[2]

मानस में वाल्मीकि द्वारा राम-नाम का उलटा जप करने का उल्लेख मात्र है। २-१९३-८

प्रेरणा-ग्रन्थ : पौराणिक-आख्यान और रामायणों का रूप-विस्तार :

वाल्मीकि का आदिकाण्ड प्रक्षिप्त है, उसमें गंगावतरण एवं विश्वामित्र की कथा आदि जैसे कई स्वतंत्र आख्यान समाविष्ट हो गये हैं। आदिकाण्ड की कथा विशृंखल और विस्तृत हो गयी है। भाषा-रामायणों में भी ऐसा ही हुआ।

वाल्मीकि के पौराणिक आख्यान प्रायः विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण को सुनाये जाते हैं, अतएव इनका स्थल राम के जनकपुरी पहुँचने के पूर्व है। उड़िया-रामायण में अधिकांशतः इसी का अनुसरण है, वैसे प्रत्येक स्थल पर पौराणिक-आख्यान गूँथे गये हैं।

कालिदास के रघुवंश में सूर्य-वंश की वंशावली प्रस्तुत कर मुख्य राजाओं का जीवन-चरित प्रस्तुत किया गया है। पद्मपुराण के गौड़ीय-पातालखण्ड का प्रारम्भ भी कुछ इसी प्रकार हुआ। उसमें रघुवंश के अतिरिक्त कई आख्यान पाये जाते हैं। असमीया एवं बँगला रामायणों में इसी पातालखंड का अनुसरण हुआ।

---

१. आदि-रामायण में उन्होंने कहा है—हे राम, मैं वरुण का दसवाँ पुत्र हूँ। मैंने आज तक कभी असत्य का स्मरण तक नहीं किया है।—मैंने मन से, कर्म से और वाणी से भी कभी पापाचरण नहीं किया। यदि यह मैथिली पापरहित हो तो मुझे सद्-नुष्ठान का फल प्राप्त हो—वाल्मीकि-रामायण, ७-९६-१८-२०।

२. कलकत्ता में अनुसूचित-जातियों द्वारा हर साल आश्विन पूर्णिमा के दिन वाल्मीकि की जयन्ती धूम-धाम से मनायी जाती है।—पंजाब में एक कथा प्रचलित है कि जब तक नागरिक भंगियों की ओर देखने से इनकार करते थे तब तक वाल्मीकि की लाश प्रतिदिन बनारस में दिखायी पड़ती थी। देखिए रामकथा—पृष्ठ ४४-४५।

मानस में राम की ब्रह्मत्व-सिद्धि के लिए कई पौराणिक आख्यान लिये गये। उनके कथानक का गठन सोद्देश्य और शृंखलित है।

इस प्रकार चारों रामायणों के आदिकाण्ड में आधिकारिक-कथावस्तु के अतिरिक्त अवान्तर-प्रसंगों के वर्णन में बहुत ही विभिन्नता है। क्रम एवं प्रसंगों की विभिन्नता होने के कारण उनके तुलनात्मक-अध्ययन में थोड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाती है।

पद्मपुराण के **गौड़ीय पातालखण्ड** के अनुसार **असमीया** और **बँगला** रामायणों के कुछ प्रारंभिक आख्यानों का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत है।

असमीया और बँगला रामायणों का प्रारम्भ :

असमीया और **बँगला** दोनों रामायणों में सूर्यवंश की वंशावली का वर्णन करने के उपरान्त दशरथ-चरित का वर्णन है। असमीया-लेखक ने ब्रह्मा से लेकर दशरथ तक ३२ पीढ़ियों के नाम-मात्र गिनाये हैं; जबकि बँगला-लेखक ने वंशावली का क्रम कुछ भिन्न रूप में प्रस्तुत करते हुए, मुख्य-मुख्य राजाओं के चरित पर भी प्रकाश डाला है।

इसके पश्चात् दशरथ-चरित से दोनों रामायणों में समता देखी जाती है। इसके पूर्व के बँगला-आख्यानों का-संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है—

बँगला-रामायण में वंशानुक्रम से राजाओं का कीर्ति-वर्णन :

(१) **हरिश्चन्द्र**—मान्धाता की दसवीं पीढ़ी में इस राजा का जन्म हुआ। पंच-कन्याओं के तालभंग से क्रुद्ध इन्द्र ने शाप दिया। वे विश्वामित्र के आश्रम में वन्दी हुईं। हरिश्चन्द्र ने मुक्त किया। विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर दान माँगा, फलस्वरूप परिवार-सहित उन्हें विकना पड़ा। हरिश्चन्द्र हरिदास वनकर सुअर चराने लगे। सुअर उनका ध्यान रखकर मलमूत्र दूर त्यागते थे। हरिश्चन्द्र का पुत्र रुहिदास विश्वामित्र के कोप के कारण सर्प-दंशित हुआ। परीक्षा में सफल होकर हरिश्चन्द्र कटक-सहित स्वर्ग-प्रवेश करते हैं, किन्तु नारद के समक्ष अपने गुणों पर अहंकार प्रकट करने के कारण शाप-ग्रस्त होकर वीच में ही लटके रह जाते हैं।

(२) **सगर : अश्वमेध और वंश**—राजा सगर का अश्वमेध और कपिल मुनि द्वारा भस्मीकृत उनके पुत्रों की कथा वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है। कपिल मुनि के आदेशानुसार गंगा लाने का व्यर्थ प्रयत्न **अंशुमान** एवं तद्पुत्र **दिलीप** ने किया। दिलीप की विधवा रानी के गर्भ से मांसपिण्ड उत्पन्न हुआ, जिसे **अष्टावक्र** ने सुन्दर आकार प्रदान किया, यही भगीरथ हुए।

(३) **भगीरथ का गंगा-आनयन**—गंगा की उत्पत्ति नारायण के द्रव-रूप में परिणत होने से हुई। ब्रह्मा ने इस द्रव को कमंडलु में भर लिया। भगीरथ एक-एक कर इन्द्र,

महेश्वर और नारायण के पास गये। नारायण ने ब्रह्मा के घर का समस्त पानी चुरा लिया। नारायण के चरण पखारने के लिए कुछ न देखकर कमंडलु का जल ही उँड़ेल दिया। उसी को लेकर भगीरथ चल पड़े।

ऐरावत-मानभंग— आगे चलकर गंगा सुमेरु में समा गयीं। उन्होंने कहा— ऐरावत को बुला लाओ, यह पर्वत चीर दे। ऐरावत को अभिमान हुआ, उसने कहा, गंगा साथ रहने को प्रस्तुत हो तो वह कार्य कर सकता है। गंगा सहमत हो गयीं, किन्तु इस शर्त पर कि वह उनकी ढाई तरंगें सह ले। ऐरावत ने पर्वत चीर दिया, किन्तु तरंगें नहीं सह सका।

आगे गंगा का शिव की जटाओं में समाना, कांडार मुनि का तरना, सगर-वंश का उद्धार एवं गंगा-माहात्म्य का वर्णन हुआ है।

भगीरथ-पुत्र कल्माप-पाद **सौदास**[१] की कहानी इसी क्रम में है किन्तु उसका तुलनात्मक-अध्ययन मानस के प्रतापभानु के साथ आगे होगा।

(४) **रघु-कीर्ति**— राजा दिलीप (द्वितीय) के पुत्र रघु ने बाल्यकाल में ही इन्द्र को परास्त किया एवं उसने एक ब्राह्मण वरदत्त की गुरुदक्षिणा जुटाने के लिए कुबेर की सम्पत्ति लूट ली। राजा रघु नित्य सभी सम्पत्ति दान कर मिट्टी के पात्र से जल ग्रहण किया करते थे।[२]

(५) **अज-इन्दुमती**—रघु के पुत्र अज भी बहुत पराक्रमी थे। इन्दुमती के स्वयंवर में अनेक राजाओं की उपस्थिति में वरणमाल उन्हीं को प्राप्त हुई। इनके एक पुत्र **दशरथ** हुआ। नारद की पारिजात माला के गिरने से इन्दुमती की मृत्यु हो गयी, उसी माला से अज की भी मृत्यु हुई।

असमीया और बँगला रामायणों का वर्णन साम्य :

सूर्य-वंश के वर्णन-क्रम में दशरथ-चरित से दोनों का साम्य प्रारंभ हो जाता है। सच पूछा जाए तो सम्पूर्ण रघुवंश प्रस्तुत करना उचित भी नहीं था।

दशरथ-चरित के वर्णन में यदि कहीं **उड़िया-रामायण** एवं **मानस** से साम्य दिखायी पड़ेगा तो उसका भी उल्लेख कर दिया जाएगा।

दशरथ-चरित :

(क) **दशरथ के विवाह**—वाल्मीकि-रामायण में दशरथ के ७५० रानियाँ हैं, जिनमें मुख्य कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा हैं। असमीया में ७००, बँगला में ७०० और एक स्थल पर ७५० रानियाँ हैं।

---

१. बँगला-रामायण, पृ० २५-२७।
२. पद्म-पुराण —पातालखण्ड (गौ० सं०)।

असमीया-रामायण में कौशल्या से विवाह मात्र का उल्लेख है, कैकेयी का विवाह विस्तार से वर्णित है। उसके नखशिख का वर्णन है। उसने दशरथ को स्वयंवर में वरण किया था। सुमित्रा सिंहल-द्वीप के राजा सुमित्र की पुत्री बतायी गयी है, जिसके साथ ब्राह्मरीति से विवाह हुआ।

बँगला-रामायण में कोशल राज्य से निमंत्रण पाकर वे कौशल्या से धूमधाम-सहित विवाह कर लाये। गिरिराज के शासक केकय की अत्यधिक सुन्दरी पुत्री कैकेयी स्वयम्वरा हुई। कैकेयी के साथ मंथरा दासी भी आयी। इस रामायण में भी सुमित्रा को सिंहल-द्वीप के राजा सुमित्र की पुत्री कहा है। दशरथ सुमित्र का निमंत्रण पाकर मृगया का बहाना कर चुपचाप विवाह कर लाये हैं। पुत्र-हीन होने पर राजा ने ७५० विवाह किये। कौशल्या और कैकेयी की मनौती के फलस्वरूप सुमित्रा दुर्भगा हो गयी।

मानस में तीन प्रमुख रानियों का उल्लेख मात्र है। विवाहादि वर्णित नहीं है।

(ख) **शनि-प्रसंग**—इसका वर्णन तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में ही हुआ है। **असमीया** और **बँगला** रामायणों का वर्णन समान है। राजा दशरथ के अत्यधिक स्त्रीरत रहने के कारण राज्य की दशा शोचनीय हो गयी। अकाल पड़ गया, रोहिणी पर शनि की दृष्टि पड़ने से वर्षा नहीं हुई। पक्षी-जोड़े से संवाद सुनकर राजा को होश आया। वे इन्द्र से मिलकर शनि की ओर चले। शनि की दृष्टि से उनके रथ-घोड़े जल कर नीचे गिरने लगे। सम्पाति के भाई जटायु ने पंख पसारकर उन्हें गिरने से बचाया। राजा ने उसके साथ मैत्री कर ली। राजा दोबारा गये, तब शनि ने प्रसन्न होकर रोहिणी में संचार बन्द कर दिया, जिससे वर्षा हुई। उसने एक कहानी सुनायी कि एक बार उसने गणेश को देख दिया तो उसका शिर कटकर गिर गया। पार्वती शनि को मारने दौड़ीं। देवताओं ने समझाया। ऐरावत का सिर काटकर गणेश के जोड़ दिया गया।

दोनों में अन्तर यह है—(१) **असमीया-रामायण** में राजा के न जलने का कारण बताया गया है—शनि का सूर्य-पुत्र और दशरथ का सूर्य-वंशी होना। **बँगला-रामायण** में शनि कहता है कि तुम धर्म के अवतार हो इसलिए मेरी दृष्टि सह गये। तुम्हारे घर नारायण का जन्म होगा। (२) **बँगला-रामायण** में पार्वती गणेश का गजमुख देखकर दुःखी होती हैं। ब्रह्मा कहते हैं कि गणेश को सबका राजा बनाये देता हूँ। गणेश के पहले यदि किसी देवता की पूजा की जाएगी तो उसके सभी पूर्व-धर्म नष्ट हो जाएँगे। **असमीया**-रामायण में यह वर्णन नहीं है।

उड़िया-रामायण में ज्योतिषी ने गणना कर बताया कि शनि रोहिणी-राशि में गया तो अनावृष्टि होगी। दशरथ ने बाण मारा, रक्त-वृष्टि हुई। सभी देवता डर गये। शनि भस्म कर देने को प्रस्तुत हुआ। ब्रह्मा ने समझाया, इनके घर राम

जन्म लेकर राक्षसों का नाश करेंगे। शनि प्रसन्न होकर रोहिणी-राशि में न जाना स्वीकार कर लेता है।

(ग) **सिन्धुमुनि-वध**—श्रवण कुमार की पितृ-मातृ-भक्ति प्रसिद्ध है। **ब्रह्म-पुराण में** इसका वर्णन है। **वाल्मीकि-रामायण** के अयोध्याकांड में श्रवण कुमार के वध की कहानी है, किन्तु श्रवणकुमार को अन्ध-मुनि-पुत्र कहा गया है। **पद्मपुराण** के गौड़ीय पातालखण्ड में इसका नाम सिन्धु है। **असमीया और बँगला रामायणों** में भी इसका नाम सिन्धु है। जलाशय में पानी भरते हुए सिन्धु को हाथी समझकर दशरथ का शर-सन्धान, सिन्धु की मृत्यु, उसके पिता-माता द्वारा दशरथ को शापदान आदि की कथा सर्वज्ञात है, यही दोनों रामायणों में वर्णित है। अन्ध-मुनि के शाप से दशरथ प्रसन्न होकर कहते हैं, आपने शाप दिया कि पुत्र के शोक में मैं भी तड़प कर मरूँ। यह तो मेरे लिए वरदान हो गया। शाप से पुत्र तो होगा। अन्ध-मुनि मरने के पूर्व दशरथ को श्रीफल देकर कहते हैं कि अपनी रानियों को खिलाना, इससे पुत्रों की प्राप्ति होगी। **उड़िया-रामायण** और **मानस** में इसका उल्लेख अयोध्याकाण्ड में है। उड़िया-रामायण का वर्णन संक्षिप्त है। उसमें राजा दशरथ के मुख से ऋषिपुत्र को हाथी समझ कर मारना तथा अंधे माँ-बाप द्वारा अभिशप्त होने मात्र का वर्णन है—(अयोध्याकाण्ड, पृष्ठ ६१)

मानस के अयोध्याकाण्ड में इस कथा की ओर संकेत मात्र है—

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥ २-१५४-४

पूर्वांचलीय-रामायणों में रामजन्म के कारण-स्वरूप इस प्रसंग का उपयोग किया गया है। असमीया और बँगला रामायण के आदि एवं अयोध्या दोनों काण्डों में इसका वर्णन है।

(घ) **कैकेयी के दो वर**—वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड में राजा दशरथ इन्द्र के लिए शम्बरासुर से युद्ध करते हैं। आहत होने पर कैकेयी उनकी सहायता करती है। फलस्वरूप कैकेयी दशरथ से दो वर प्राप्त करती है।

असमीया और **बँगला** रामायणों में वर-प्राप्ति के दो कारण बताये गये हैं। **प्रथम** वर की प्राप्ति वाल्मीकि-रामायण के अनुसार होती है। दोनों रामायणों में मंथरा के कहने से वह समय आने पर वर माँगने के लिए कहती है।

द्वितीय वर की प्राप्ति—दशरथ के महाव्रण का उपचार करने से कैकेयी को दूसरे वर की प्राप्ति हुई। **बँगला-रामायण** के अनुसार देवता दशरथ की उंगली में व्रण कर देते हैं। वैद्य कहता है कि या तो घोंघे का शोरवा पियो या कोई इसकी पीव को चूस ले। दशरथ शोरवा पी नहीं सकते और उनकी पीव को भला कौन चूसता। कैकेयी ने पति के फोड़े को चूसकर उनकी व्यथा दूर कर दी और द्वितीय वर प्राप्त किया। **असमीया-रामायण** में देवता षड्यंत्र नहीं करते तथा घोंघे के शोरवे का उपचार

नहीं बताया जाता। व्रण उंगली में दिखाकर गुह्य के भीतर दिखाया है—शायद कैकेयी का महत्त्व बढ़ाने के लिए कि उसने ऐसे घृणित स्थान का फोड़ा चूस लिया। **उड़िया-रामायण** के अयोध्याकाण्ड में कैकेयी के वरों का वर्णन बिल्कुल वाल्मीकि के वर्णन के समान है। **मानस** में वरों के कारण पर कहीं प्रकाश नहीं डाला गया।

उड़िया-रामायण का प्रारम्भ—इस रामायण का प्रारम्भ जगन्नाथ-वन्दना से होता है। पुत्रेष्टि-यज्ञ के पूर्व इसमें मुख्य प्रसंग ये हैं—(१) शिव-पार्वती-सम्वाद, (२) रावण-दिग्विजय (३) अवतार का कारण, (४) दशरथ-शनि प्रसंग और (५) ऋष्य-शृंग की विस्तृत कथा।

दशरथ-शनि प्रसंग का वर्णन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। कुछ प्रसंगों का अध्ययन मानस के प्रसंगों के साथ कर शेष का अध्ययन आधिकारिक-कथावस्तु के साथ होगा।

मानस का प्रारम्भ—पुत्रेष्टि-यज्ञ के पूर्व की कथा को तीन खण्डों में बाँटा जा सकता है—(क) **स्तुति एवं महात्म्य-वर्णन**—सरस्वती, गणेश, शिव-पार्वती, गुरु, हनुमान, सीता, राम, ब्राह्मण, वाल्मीकि, संत-असंत, एवं जीवमात्र की वन्दना, राम-भक्तिमयी कविता की महिमा, मानस का रूपक एवं महत्त्व तथा साथ ही अपना दैन्य-प्रकाश ; (ख) **शिव-वृत्तान्त**—सती, पार्वती एवं कामदहन की कथाएँ और (ग) **अवतार के हेतु**—नारद, प्रतापभानु, मनुशतरूपा की कथाएँ एवं रावणादि का जन्म एवं अत्याचार।

उड़िया रामायण और मानस की प्रारम्भिक समान-कथा :

(१) **शिव-पार्वती-प्रसंग**—**मानस** के चार वक्ता और चार श्रोता हैं। शंकर-पार्वती भी उनमें हैं। समस्त **अध्यात्म-रामायण** ही शिव-पार्वती संवाद-रूप में कथित है। इसी प्रकार **उड़िया-रामायण** भी शंकर द्वारा पार्वती को सुनायी गयी है। केवल आदि-काण्ड में ही शंकर-पार्वती को उमा-शाकंभरी आदि नामों से १०० से अधिक बार संबोधित करते हैं।

शिव-पार्वती प्रसंग केवल-उड़िया-रामायण और मानस में है। रामकथा से इसका सीधा सम्बन्ध नहीं है, इसलिए शेष दो रामायणों में इस प्रसंग को स्थान न मिला।

भिन्नता—**उड़िया-रामायण** में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार तारकासुर-वधार्थ स्कंद का जन्म दिखाया गया है। **मानस** में राम की ब्रह्मत्व-सिद्धि के लिए **शिव-पुराण** से कथा और टेकनीक की प्रेरणा ली गयी। अतएव उद्देश्य एवं कथा के प्रेरणा-ग्रन्थों की भिन्नता होने के कारण दोनों के वर्णनों में भी असमानता है।

एक बात की समानता है, इन दोनों रामायणों में पार्वती प्रश्न करती है कि अरूप होकर भी ब्रह्म अवतार कैसे लेता है।[1]

पार्वती की जिज्ञासा—**उड़िया-रामायण** के प्रारम्भ में ही पार्वती शंकर से राममहिमा पूछती हैं। ब्रह्मा के आने पर शंकर कहते हैं कि पार्वती मुझे बलहीन और दुर्बल कहती हैं, इसका क्या कारण है, बताओ। ब्रह्मा बोले—तुमने तामस भाव धारण कर महापाप अर्जित किया है। जप, यज्ञ और तीर्थवास पुण्य कर्म हैं, तुमने इसका उल्लंघन किया, इसीलिए तुम अस्वस्थ और दुर्बल हो। राम का नाम लेने से पाप नहीं रहेगा। शंकर ब्रह्म को पितामह कहकर स्तुति करते हैं। तब से शंकर का व्रत रामनाम जपना हो गया। पार्वती ने जिज्ञासा की कि विष्णु के सहस्र-नामों में राम नाम ही क्यों सार है? राम की कथा को विस्तार के साथ कहिए; जिसे सुनकर मैं मुक्त हो जाऊँ। शंकर ने ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न **रावण** और उसकी दिग्विजय से कथा का प्रारम्भ किया। **वाल्मीकि-रामायण** और **बँगला-रामायण** के उत्तरकाण्ड में रावण की दिग्विजय का वर्णन है, अतएव इसका तुलनात्मक अध्ययन नहीं होगा।

उड़िया-रामायण शिव-पार्वती सम्वाद के रूप में कथित है अवश्य, किन्तु इस रामायण में वर्णित शिव की कथा का महत्त्व राम की ब्रह्मत्व-सिद्धि न होकर **तारकवध** है।

किन्तु **मानस** में सती और पार्वती की समस्त-कथा राम के ब्रह्मत्व का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए ही है, हाँ, मानस के इस प्रसंग में पवित्र **दाम्पत्य प्रेम** का भी रूप मिल जाता है। स्त्री के मनोविज्ञान का भी अच्छा चित्रण है।

सती-दाह - **मानस** में सती ने राम के ब्रह्मत्व पर शंका कर उनकी परीक्षा लेनी चाही। शंकर ने उन्हें वर्जित किया। सती स्त्री-सुलभ सहज कुतूहल को न दबा सकीं और उन्होंने सीता बनकर राम की परीक्षा ली। सती को लज्जित होना पड़ा। उन्होंने शंकर से भय-वश अपनी पराजय की बात नहीं कही, किन्तु शंकर सब कुछ जान गये। वे बड़े धर्म-संकट में पड़ गये। सती परम-पवित्र हैं, उनका त्याग करते नहीं बनता किन्तु, सती ने सीता का रूप धारण किया, इसलिए ग्रहण भी करते नहीं बनता। शंकर मन ही मन बहुत दुःखी हैं। वे सती को स्नेह-सहित पास बैठाकर कथाएँ सुनाते हैं, किन्तु उनके साथ पतिव्रत आचरण नहीं करते। सती मन-ही-मन अत्यधिक व्याकुल रहकर मृत्यु-कामना करती रहती हैं। इसी बीच उन्हें अवसर

---

१. अरूप अवर्ण्ण से अपूर्व नाम यार।
मर्त्यलोके किम्पाइ से हेले अवतार।। पृ० ५, उड़िया-रामायण।
ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद।। सतीप्रश्न, मानस १-५०।
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि। पार्वती-प्रश्न, मानस १-१०८।

मिल गया। अपने पिता दक्ष के यहाँ यज्ञ का समाचार ज्ञात कर वे अनिमंत्रित ही चली जाती हैं। वहाँ पति और पिता द्वारा उपेक्षित सती पर उनकी बहनें व्यंग्य-मुस्कानें फेंकती हैं। यज्ञ में अपने पति की उपेक्षा देखकर पतिव्रता सती अत्यधिक कुपित होकर योगाग्नि से अपना शरीर दग्ध कर देती हैं। शंकर ने भी क्रुद्ध होकर अपने गण भेज कर यज्ञ नष्ट कर दिया।

उड़िया-रामायण में सती के स्थान पर भी पार्वती नाम ही है। राम ने विश्वामित्र से गंगा की छोटी बहिन उमा के बारे में पूछा, तब उन्होंने पार्वती की कथा कही है। दक्ष ने पार्वती को मुण्डमालधारी योगी की पत्नी होने के कारण नहीं बुलाया था। इससे पार्वती असंतुष्ट होकर अग्निकुण्ड में कूदकर गोप्य हो गयी। (पार्वती अथवा सती न तो राम की परीक्षा लेती हैं और न शिव द्वारा त्याज्य ही होती हैं।) शंकर ने दक्ष और देवताओं को मारना प्रारम्भ किया। कृष्ण के समझाने पर वे शान्त होकर हिमालय पर तपस्या करने लगे।

पार्वती-विवाह—मानस में सती ने पार्वती के रूप में जन्म लिया। वे शंकर को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या करने लगीं। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर रामचन्द्र ने शंकर से अनुरोध किया कि शैलजा से जाकर विवाह करो। शंकर जी भला स्वामी के वचन कैसे टाल सकते थे। सप्तर्षि आदि ने पार्वती के प्रेम की परीक्षा ली, वे अविचल रहीं।

मदन-दाह—मानस में तारक के उत्पातों से अकुलाए हुए देवों को ब्रह्मा ने बताया कि शंकर के वीर्य से इसका संहार होगा। देवताओं ने शंकर के पास कामदेव को भेजा। परम-विरागी शिव ने तृतीय-नेत्र खोलकर उसे भस्म कर दिया। रति के विलाप करने पर वर दिया कि तेरा पति कृष्ण के पुत्र-रूप में जन्म लेगा, तभी तेरा मिलन होगा।

तुलसीदास ने शंकर-पार्वती के विवाह के रूप में हिन्दू-कन्या के विवाह का ही भव्य एवं यथार्थ चित्रण किया है। तुलसीदास अपने मानस में जिस प्रसंग को टालना चाहते थे, बलरामदास ने उड़िया-रामायण में उसी का विशद् चित्रण किया है। उन्होंने विवाह के बाद की स्थिति—तारकासुर का वध करने वाले कार्त्तिकेय के जन्म का वर्णन अधिक किया है।

उड़िया-रामायण में पार्वती की मृत्यु के पश्चात् शंकर दुःखी होकर हिमालय पर तपस्या करने लगे। पार्वती ने भी हिमवंत के यहाँ जन्म लेकर तपस्या प्रारम्भ की। तारकासुर के अत्याचारों से पीड़ित देवताओं ने कामदेव को शिव का तप भंग करने के लिए भेजा। शिव ने काम को जला दिया। कामदेव के पीछे ही पार्वती खड़ी होकर शिव की स्तुति कर रही थीं। उसके जल जाने पर वे शंकर को दिखायी पड़ीं। शिव ने हँस कर परिचय पूछा, बोलीं, मैं हिमवन्त-मेनका पुत्री और जन्म-जन्म की तुम्हारी

पत्नी हूँ। शंकर बोले, शरच्चन्द्रमुखी मैं तुम्हारे वियोग मे दुःखी था। तपस्या के फल से ही तुम्हें पाया है। ब्रह्मा ने विवाह कराया। शंकर बोले, बहुत दिन से सुरति-उपवासी हूँ, रमण चाहता हूँ। उमा ने कहा, अनाहार से दुर्बल-निर्बल व्यक्ति रति नहीं कर सकता, विधि-पूर्वक विवाह के पश्चात् करना। शिव ने अपनी निर्बलता स्वीकार नहीं की। उन्होंने लज्जा-विवेक से रहित होकर रति-केलि की। देवताओं के विनय करने पर उन्होंने अमोघ-वीर्य छोड़ा। पृथ्वी और अग्नि दोनों ही क्रमशः उसे धारण न कर सके, अकुला उठे।

पार्वती ने देवताओं को शाप दिया, तुमने मुझे पुत्रवती होने से वंचित किया, अतएव तुम भी पुत्र प्राप्त न कर सकोगे। तभी से अमरपुरी जन्ममृत्यु-हीन है।

शंकर का वीर्य गंगा भी धारण न कर सकीं, उन्होंने भी फेंक दिया, जिससे अष्टधातुएँ बनीं। ब्रह्मा ने षड् कृत्तिकाओं से कहा, उन्होंने उसे छह टुकड़ों में बाँट लिया। सबके अलग-अलग पुत्र हुए, ब्रह्मा ने उन्हें जोड़कर एक कर दिया, इसके छह मुँह और बारह हाथ हुए। यही कार्त्तिकेय अथवा स्वामिकार्त्तिक कहलाया। देवताओं के सेनापति बनकर इसने राक्षस-वध किया। स्वामिकार्त्तिक को अपना पुत्र जानकर पार्वती के स्तन बहने लगे। वाल्मीकि-रामायण के सर्ग ३६ और ३७ में यह प्रसंग है।

(२) **रावण-विषयक आख्यान**—उड़िया-रामायण एवं मानस में मय-दानव की पुत्री मन्दोदरी से विवाह, कुबेर से लंका एवं विमान छीनना, कैलास उठाना एवं देवताओं पर विजय प्राप्त करने के वर्णन हैं। ब्रह्मा द्वारा तीनों भाइयों को वर प्रदान का भी वर्णन है। उड़िया का विष्णु-सेवी विभीषण अमर होने का वर प्राप्त करता है। उड़िया-रामायण में रावण की जय-पराजय का वर्णन कुछ अधिक है। रावण अनरण्य, यम, वासुकि, बलि आदि को परास्त करता है एवं मान्धाता, सहस्रार्जुन, बालि आदि से हारता है। वह ब्रह्मा, इन्द्रादि देवताओं को हराकर इनसे सेवाएँ भी लेता है। उड़िया-रामायण में नन्दिकेश्वर-शाप का भी उल्लेख है।

ब्रह्म के अवतार-ग्रहण का कारण प्रस्तुत करने के लिए ही रावण का परिचय दिया गया है।

(३) **नारद-मोह**—मानस के अनुसार नारद ने कामदेव को परास्त किया, इसका उन्हें अभिमान हो गया। शिव के वर्जन करने पर भी वे विष्णु से भी अपनी जय का उल्लेख कर आये। विष्णु ने नारद का अभिमान चूर्ण करने के लिए माया रची। शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी को देख नारद मुग्ध हुए, उन्होंने विष्णु से रूप माँगा। विष्णु की माया से नारद सामान्य जनता के लिए प्रकृत-रूप में दिखायी पड़ते हैं। इस कन्या के स्वयम्बर में विष्णु भी उपस्थित थे। कन्या ने उन्हीं को स्वीकार किया। हरगण नारद की काम-व्याकुलता तथा वानरमुख देखकर उपहास कर रहे थे, क्रुद्ध नारद ने उन्हें राक्षस होने का शाप दिया। अत्यन्त असन्तुष्ट होकर वे विष्णु के

पास जा पहुँचे, उनको शाप दिया कि मनुष्य बनकर तुम भी स्त्री के विरह में इसी प्रकार दुःखी होगे।

उड़िया-रामायण के किष्किन्धाकाण्ड (४५-४८) में भी कुछ मिलता-जुलता प्रसंग है। **नारद** और **पर्वत ऋषि** जिस कन्या को प्राप्त करने के लिए परस्पर विवाद करते हैं, वह लक्ष्मी हैं और वह स्वयम्वर-सभा में अप्रत्यक्षरूप से उपस्थित विष्णु को वरण करती हैं। दोनों ऋषियों ने राजा को शाप दिया, उसे अज्ञान खींचने लगा। विष्णु ने कृपा कर अज्ञान को अपने ऊपर उस समय धारण करने का वचन दिया जिस समय वे नर-रूप में प्रकट होंगे। इस प्रसंग का विस्तृत-वर्णन किष्किन्धा काण्ड में हुआ है।

मानस में इन प्रसंग का उपयोग अवतार के हेतु के लिए हुआ है और उड़िया में राम की आत्म-विस्मृति सिद्ध करने के लिए।

इन दोनों के कुछ प्रारम्भिक-प्रसंगों का अध्ययन आगे अवतार वाले प्रकरण में होगा।

आदि-काण्ड की मुख्यकथा-वस्तु

पूर्वार्द्ध

१—अवतार, उद्देश्य और विष्णु से निवेदन।
२—पुत्रेष्टि-यज्ञ और रामादि का जन्म।
३—सीता का जन्म।

उत्तरार्द्ध

विश्वामित्र का आगमन और राम-लक्ष्मण को लेकर जनकपुर पहुँचने तक की कथा—

क—ताड़का-वध
ख—अहल्या
ग—जनकपुर का धनुर्-यज्ञ और रामादि का विवाह
घ—परशुराम-संवाद
ङ—अन्य प्रसंग

असमीया, बँगला रामायणों और मानस में अवान्तर-प्रसंग प्रायः प्रारंभ में आये हैं, उड़िया-रामायण में इनकी स्थिति मध्य में है। वह ऋष्यशृंग की कथा से प्रारम्भ ही होती है। अतएव अब प्रमुख-प्रसंगों के तुलनात्मक-अध्ययन के साथ ही उड़िया की अवान्तर कथाओं का परिचय भी दे दिया जाएगा।

अवतार, उद्देश्य और विष्णु से निवेदन :

वाल्मीकि-रामायण के आदि, युद्ध और उत्तरकाण्डों में अवतार का उल्लेख है,

यदि इसे प्रक्षिप्त भी माना जाए तो भी यह स्पष्ट है कि इन प्रक्षेपों ने भी परवर्ती रामकथा-लेखकों को अवतारवाद की कल्पना दी।

वाल्मीकि-रामायण में रामादि चारों भाई विष्णु के चार अंशों से उत्पन्न हैं किन्तु आध्यत्म-रामायण में ये चारों भाई विष्णु, शेष, शंख और सुदर्शन के अवतार माने गये हैं।

वाल्मीकि के अनुसार ही असमीया (छं०३१) बँगला (१) एवं उड़िया (१-६४) रामायणों में एक ब्रह्म के चार रूपों में अवतरित होने का वर्णन है। उड़िया-रामायण में इसके साथ ही शत्रुघ्न एवं भरत को क्रमशः शंख और चक्र का अवतार माना है। यहीं पर लक्ष्मण को रुद्र बताया है, किन्तु अन्य स्थलों पर उन्हें शेष ही माना है। स्पष्ट है कि उड़िया-रामायण पर अध्यात्म-रामायण का प्रभाव है। मानस में एक ही ब्रह्म को चार अंशों में अवतार ग्रहण करता हुआ नहीं दिखाया गया है। तुलसीदास ने लक्ष्मण को शेषावतार माना है, किन्तु भरत एवं शत्रुघ्न को किसी का अवतार नहीं दिखाया गया। भागवत-पुराण (१०-१) में कृष्ण के जन्म के समय शेष का भी उनके भाई के रूप में होना वर्णित है। संभव है राम-काव्य भी कृष्ण-विषयक इस उपाख्यान से प्रभावित है।

अवतार का कारण—महाकाव्य-रचना की दृष्टि से वाल्मीकि-रामायण का उद्देश्य है रावण-वध। धीरे-धीरे कथानक का विकास इसी ओर होता है। आगे चलकर भक्तिवाद का प्रचार बढ़ने पर राम के अवतार का उद्देश्य भी रावण-वध हो गया। चारों भाषा-रामायणों के प्रारंभ में रावण के अत्याचारों का वर्णन किया गया है और प्रारंभ से ही ज्ञात हो जाता है कि विष्णु राक्षसों का उद्धार करने के लिए ही अवतीर्ण होंगे।

मानस में तुलसीदास ने राम के अवतार के सम्बन्ध में शाप-वर की अनेक कथाएँ जोड़ी हैं, इनमें से अधिकांश संस्कृत काव्य-पुराणादि से गृहीत हुई हैं। मानस में राम तो एक ही हैं, किन्तु रावण कल्प-कल्प में बदलता रहता है। चार कल्पों में अलग-अलग रावण होते हैं।

(१) प्रथम कल्प में जय-विजय[1] रावण तथा कुंभकर्ण हुए, इस कल्प में कश्यप और अदिति[2] को वर देने के कारण राम ने जन्म लिया।

---

१. **जय-विजय**—देखिए **श्रीमद्भागवत** (७, १, ३५-४६) और **आनंदरामायण** (राज्यकांड—१४-१-३०)।

२. **कश्यप और अदिति**—**अध्यात्म-रामायण** (१, २, २५-२७) से तुलसी को प्रेरणा मिली।

(२) द्वितीय कल्प में जलंधर[1] रावण हुआ । राम को भी वृन्दा के शाप के कारण जन्म लेना पड़ा ।

(३) तृतीय कल्प में हर-गण[2] रावण और कुंभकर्ण हुए और राम को नारद के शाप के फल-स्वरूप अवतार लेना पड़ा।

(४) चतुर्थ कल्प में प्रतापभानु आदि रावणादि हुए तथा मनुशतरूपा[3] को वरदान देने के कारण राम उनके पुत्र बनकर अवतीर्ण हुए ।

बँगला-रामायण के युद्ध-काण्ड में **जय-विजय** का नाम तो नहीं आया, किन्तु संकेत इन्हीं की कथा की ओर है । वर्णन इस प्रकार है—हे राम, रावण वैकुण्ठ नगर में तुम्हारा द्वारपाल था, पृथ्वी पर वह तीन जन्म से भटक रहा है (युद्धकाण्ड, पृष्ठ ४२५-४३१) ।

उड़िया-रामायण के उत्तरकाण्ड में द्वारपाल जय-विजय के तीन जन्मों का वर्णन है । इस रामायण के लंकाकाण्ड में रावण स्वयं ही मंदोदरी को बताता है कि वह और कुंभकर्ण विष्णु के द्वारपाल चंड-प्रचंड अथवा जय-विजय थे । (इनके शापों का विस्तृत वर्णन पढ़िए लंका-काण्ड के तुलनात्मक अध्ययन से बचे हुए प्रसंगों में ।)

इसी प्रकार **कश्यप-अदिति** का नाम भी **बँगला-रामायण** में नहीं आया किन्तु उनकी कथा की ओर भी संकेत मिल जाता है । 'दशरथ और कौशल्या को मैं जानता हूँ । पूर्व जन्म में उन्होंने मेरी बहुत सेवा की, अतएव उनके घर में जन्म लेने का मैंने वर दिया है । (आदिकाण्ड, पृष्ठ ५४)

उड़िया-रामायण में कश्यप ऋषि और अदिति का दशरथ और कौशल्या होना लिखा है ।

वाल्मीकि-रामायण (१-२९-१९, २०) में कश्यप-अदिति की तपस्या और भगवान् का वामन-रूप में उनका पुत्र होना वर्णित है, **अध्यात्म-रामायण** में उनके दशरथ-कौशल्या होने की कथा है । भाषा-रामायणकारों का प्रेरणा-स्रोत यही रामायण हो सकती है ।

---

१. **वृन्दा-जलंधर—शिवपुराण** (युद्धखण्ड-२३) **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड) एवं **आनंद** रामायण (सारकाण्ड, ४-७८-११८) में वृन्दा के सतीत्व के फलस्वरूप अजेय जलंधर को मारने के लिए विष्णु ने वृन्दा का सतीत्व भंग किया और उसके द्वारा अभिशप्त हुए । तुलसीदास ने इसमें इतना और जोड़ दिया कि जलंधर रावण हुआ ।

२. **शिवपुराण** (रुद्र-संहिता, सृष्टि-खण्ड अ० ३४) **हरगण और नारद का शाप ।**

३. **मनु और शतरूपा—श्रीमद्भागवत** के ८ और १० स्कन्ध में मनु-शतरूपा के तपस्या आदि का वर्णन है । **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड) में मनु तपस्या द्वारा भगवान् को पुत्र-रूप में पाने का वर प्राप्त करते हैं ।

बंगला-रामायण में वृन्दा-शाप की ओर भी संकेत है। युद्धकाण्ड में गरुड़ राम-लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त करते समय कहते हैं—'आप विष्णु के अवतार हैं, किन्तु पतिव्रता के शाप से अपने को भूले हुए हैं।' (पृष्ठ २६१)

उड़िया-रामायण में काम-विह्वल नारद द्वारा विष्णु के अभिशप्त होने का वर्णन किष्किन्धा काण्ड में हुआ है। कथा में भिन्नता है, देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ के किष्किन्धा काण्ड-अध्ययन का अंतिम अंश—'पार्वती की शंका : नारद और पर्वत ऋषि का विष्णु को शाप।'

राजा प्रतापभानु और सौदास कल्माषपाद :

भागवतपुराण (९-९-२०-३८) और पद्मपुराण पातालखण्ड (गौड़ीय-संस्करण) में राजा सौदास का जो वर्णन है, उससे तुलसीदास और कृत्तिवास दोनों ने प्रेरणा ली है। कृत्तिवास ने सौदास नाम ही रखा, किन्तु तुलसीदास ने उसका नाम प्रतापभानु कर दिया है। राक्षस शत्रु द्वारा राजा के याचक का रूप धारण कर तथा ब्राह्मणों को नर-मांस परोसने तक की कथा समानता रखती है। शाप में अन्तर है। कृत्तिवासी बँगला-रामायण और पुराणों में ब्राह्मण राजा को १२ वर्ष तक राक्षस रहने का शाप देते हैं और मानस में प्रतापभानु को तीन-तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप मिला।

मानस में इस कथा का उपयोग हुआ अभिशप्त प्रतापभानु के उद्धार के लिए रामावतार के वर्णन में, और बंगला-रामायणकार इस कथा का उपयोग करना चाहते हैं गंगाजल के महत्त्व-वर्द्धन के लिए। तभी उन्होंने पुराणों के अनुसार ही कथा का विस्तार किया है। यह निरपराध राजा ब्राह्मण से अभिशप्त हो कर स्वयं भी जल ले कर ब्राह्मण को शाप देना चाहता है किन्तु पत्नी के समझाने पर जल अपने ही पैरों पर डाल लेता है, जिससे पैर जल जाने के कारण वह कल्माष-पाद कहलाया। राक्षसत्व की प्राप्ति कर यह राजा वरदन्त नामक एक ब्रह्मराक्षस से गंगाजल का महत्त्व ज्ञात करता है और ये दोनों एक मुनि से गंगाजल की एक-एक बूंद प्राप्त कर शाप से मुक्त हो जाते हैं। बंगला-रामायण—पृष्ठ २५-२७।

अवतार के लिए देवताओं का विष्णु-स्तवन :

वाल्मीकि-रामायण में पुत्रेष्टि-यज्ञ के समय आहुतियों से खिंचकर देवता एकत्र होते हैं, वहीं विष्णु प्रकट होते हैं और देवताओं के कहने से अवतार लेने को प्रस्तुत हो जाते हैं।

भागवत-पुराण (१०-१) के अनुसार दैत्यों से आक्रांत होकर पृथ्वी रँभाती और रोती हुई गौ के रूप में ब्रह्मा के पास गयी। वे देवता-गण और शंकर के

साथ क्षीर-सागर के तट पर पहुँचकर स्तुति प्रारम्भ करते हैं। ब्रह्मा ने आकाश-वाणी सुनी।

भाषा-रामायणें भागवत-पुराण के वर्णन से अधिक प्रभावित जान पड़ती हैं।

असमीया-रामायण में पृथ्वी-सहित देवता-गण क्षीरोदधि के तीर पर पहुँचे, जहाँ लक्ष्मी और नारायण अव्यक्त और अगोचर रूप में निवास करते हैं। स्तुति करने पर वे सर्प-शय्या से नीचे उत्तर आये। विष्णु ने पूछा, 'तुम्हारी ऐसी दुर्गति क्यों ? तब वे रावण के अत्याचारों का वर्णन करते हैं। भगवान् आश्वासन देते हैं। असमीया-रामायण नें क्षीरोदधिवासी भगवान् का नाम कृष्ण और विष्णु दोनों लिखा है।

उड़िया-रामायण पर वाल्मीकि-रामायण का ही अधिक प्रभाव प्रतीत होता है। पुत्रेष्टि-यज्ञ के समय विष्णु की स्तुति की जाती है। विष्णु की राजसभा लगी है, देवता स्तुति करते हैं और वे अवतार लेने का आश्वासन देते हैं। यहीं वे **मधुकैटभ** के जन्म और वध तथा अपने अवतारों की कहानी सुनाते हैं। पृ० (४६-४७)

बँगला-रामायण में **वाल्मीकि-रामायण** और **भागवतपुराण** का सम्मिलित प्रभाव तो है ही, उनकी अपनी कल्पना भी है। सभी देवता मिलकर ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् के यहाँ क्षीर सागर गये। भगवान् एक निश्चित किन्तु उदार शासक प्रतीत होते हैं। वे सो रहे थे। देवताओं के जगाने पर उठे, रावण के प्रति क्रोध एवं आवेश-प्रदर्शन करने लगे। ब्रह्मा ने बताया, रावण ऐसे नहीं मरेगा, आपको अवतार लेना पड़ेगा। अब तो विष्णु बिगड़ उठे, ब्रह्मा, वर देने में तो तुम आगे हो जाते हो, किन्तु फिर संकट आने पर मुझे पुकारते हो। विष्णु से वियोग की संभावना के कारण लक्ष्मी रोने लगती हैं। विष्णु भी रोते हैं। तब ब्रह्मा लक्ष्मी को भी अयोनिजा होकर जन्म लेने के लिए कहते हैं। वैसे **असमीया-रामायण** में भी लक्ष्मी प्रश्न करती हैं कि विष्णु के जन्म लेने पर उनके लिए क्या आज्ञा है। विष्णु स्वयं ही उन्हें अयोनिजा होकर जन्म लेने के लिए कहते हैं। रोना-पीटना नहीं होता। बँगला-रामायण में ही भावुकता-पूर्ण वर्णन अधिक हैं। (बँगला-रामायण पृष्ठ ५४)

मानस का वर्णन भागवत से अधिक साम्य रखता है और राम के ब्रह्मत्व का उन्नयन करता है। गौ, देवता और ब्रह्मा यह निश्चय नहीं कर पाते कि प्रभु कहाँ हैं। शिव उन्हें सर्व-व्यापक बताकर वहीं स्तुति करने के लिए कहते हैं। भागवत-पुराण के समान ही आकाशवाणी सुनायी पड़ती है, अव्यक्त ब्रह्म की अभय-वाणी में नरवेश-धारण का संकल्प सुनायी पड़ता है। प्रभु की सर्व-व्यापकता प्रकट करने की दृष्टि से तुलसी का यह प्रसंग सभी रामायणों से विशेषताएँ रखता है।

२. **पुत्रेष्टि-यज्ञ**—पुत्रेष्टि-यज्ञ से ही रामादि का जन्म होता है और मुख्य कथा प्रारम्भ हो जाती है, इसलिए सभी रामायणों की कथावस्तु में समानता सी प्रारम्भ हो जाती है।

विद्वानों का कहना है कि वाल्मीकि-रामायण में पहले दशरथ के अश्वमेध-यज्ञ का ही वर्णन था, पुत्रेष्टि-यज्ञ का वर्णन बाद में जोड़ा गया। बाद की राम-कथाओं में केवल पुत्रेष्टि-यज्ञ रह गया।[1] असमीया-रामायण में दोनों ही यज्ञों का वर्णन है।

पुत्रहीन दशरथ का शोक—असमीया-रामायण में राजा बहुत चिंतित हैं, कहते हैं कि सभी यज्ञ पुत्र के बिना विष्ट-तुल्य हो जाते हैं। वे वसिष्ठ से अन्य मुनि और दुर्वासा के आदेश के बारे में कहते हैं कि ऋष्यशृंग के यज्ञ कराने से पुत्र की उत्पत्ति हो सकती है। बँगला-रामायण में अपुत्रक होने के कारण राजा का कोई मुख नहीं देखना चाहता। जब वे पितरों को अंजलि भरकर जलदान करते हैं तो उनके उष्ण निःश्वासों से यह पानी भी उष्ण हो जाता है।[2] उड़िया रामायण में भी अपुत्रक राजा की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण है। मानस में दशरथ सुत न होने से ग्लानि का अनुभव करते हैं।

ऋष्य-शृंग-वृत्तान्त—वाल्मीकि-रामायण में सुमन्त्र दशरथ से कहते हैं कि विभांडक-पुत्र ऋष्यशृंग स्त्रियों के सहवास से अपरिचित हैं, यदि उन्हें किसी प्रकार लाकर यज्ञ कराया जाए तो पुत्र-प्राप्ति होगी। वेश्याएँ मुनि के पास जाकर उन्हें मिष्ठानों को फल बताकर खिलाती हैं और भरमाकर अंग-देश में लाती हैं। वहाँ वर्षा होती है। दशरथ-पुत्री शान्ता[3] से उनका विवाह कर दिया जाता है। वहीं पुत्रेष्टि-यज्ञ के लिए वे निमंत्रित हुए।

बस इतने से संक्षिप्त प्रसंग को लेकर पूर्वाचलीय रामचरित-लेखकों ने खूब कल्पना की। वेश्याओं की काम-चेष्टाओं—आलिंगन, चुम्बन, कुच-स्पर्श आदि का वर्णन तथा सांसारिकता से अपरिचित ऋष्यशृंग को बुद्धू बनाये जाने का रोचक वर्णन किया गया है।

असमीया रामायण में ऋष्यशृंग की जन्म-कथा नहीं दी गयी, किन्तु वेश्याओं की काम-चेष्टाओं का वर्णन है।[4]

---

१. कामिल बुल्के—रामकथा, द्वि० सं०, अनुच्छेद ३५६।
२. रघुवंश, १-६७।
३. वैसे तो मित्र की पुत्री अपनी पुत्री के समान होती है, किन्तु शान्ता दशरथ की पुत्री न होकर मित्र की पुत्री थीं। हरिवंश, मत्स्य, वायु तथा ब्रह्म पुराणों के अनुसार अंगराज चित्ररथ के दो पुत्र थे—दशरथ और लोमपाद, शान्ता इन्हीं अंगदेशीय दशरथ की पुत्री थीं, जिन्हें भ्रमवश वाल्मीकि—रामायण के पश्चिमोत्तरीय एवं गौड़ीय संस्करणों में अयोध्या-नरेश दशरथ की पुत्री माना गया।
४. केहो जनी हृदयर वस्त्र दूर करि। उच्च कुच भार ताक देखावे सुन्दरी॥
आपोनार उरु तान उरुत लगाय। कटाक्षे निरीखि हासि तोले मुचुकाइ।
छ० सं० ४८१-८२ आदि।

उड़िया रामायण में विस्तृत वर्णन है। सुमंत्र कथा सुनाते हैं। कौशिकी नदी के तीर तप-रत विभांडक ने उर्वशी को देखा। नग्न-सौन्दर्य का अश्लील चित्रण, विभांडक का वीर्यपतन, मदनिका नामक शापग्रस्त अप्सरा मृगी द्वारा पान। वह पुत्र-जन्म कर चली गयी। आकाश-वाणी सुनकर रोते शिशु का परिचय पाकर विभांडक उसे उठा लाये। उन्होंने पुत्र को वेद-शास्त्र का अध्ययन कराया। ऋष्यश्रृंग ने इन्द्र को प्रसन्न जानकर वर माँगा कि उनका शरीर रुक्ष है अतएव जहाँ जाएँ वहाँ पानी बरसे।

चम्पावती के राजा **लोमपाद** ने एक ब्राह्मण का अपमान किया था, उसने शाप दिया था कि पानी नहीं बरसेगा। बहुत मनाने पर कहा कि ऋष्यश्रृंग के आने पर वृष्टि होगी। लोमपाद दशरथ के यहाँ गये। दोनों राजा चिंतित हुए। वसिष्ठ ने उपाय बताया। जरत्कुशा नामक वेश्या के नेतृत्व में सुन्दरी तरुणी वेश्याओं का दल भेजा गया। वेश्याओं की वेशभूषा और प्रसाधन का सुन्दर चित्रण है। मार्ग में प्रकृति का सुन्दर वर्णन है। विभांडक मठी के बेल-वृक्ष के नीचे शालिग्राम की तपस्या कर रहे हैं—(युगीन प्रभाव), कान में तांबे के कुण्डल, रुद्राक्ष और तुलसी की माला तथा अठारह गोटी की शुद्ध स्फटिक-माला धारण किये हैं। वेश्या-स्वभाव-वर्णन, मासानुसार व्रतों का वर्णन, ऋष्यश्रृंग और वेश्याओं का वर्णन। अपहृत ऋष्यश्रृंग चम्पावती ले जाये गये, लोमपाद से भेंट हुई। वेश्याओं ने क्षमा माँगी, वर्षा हुई। लोमपाद ने दशरथ को बुलाया। मुनि ने दशरथ से प्रश्न किये और उनकी पुत्री शान्ता के बारे में जानना चाहा, फिर देखने की इच्छा प्रकट की। कन्या को देखकर राजा से उसे माँगते भी हैं। बिना किसी संकोच के उसके कंठ में अपने कंठ की माला डाल देते हैं। ज्योतिष की गणना का लम्बा वर्णन, विवाह-संस्कार। ऋषि विभांडक चम्पावती गये, सम्मानित हुए, पुत्र-वधू के दर्शन किये, दोनों राजाओं को पुत्र-प्राप्ति का वर दिया। अलंकार, वाद्य, वंश, गोत्र, नगरी-देश आदि का लम्बा वर्णन किया है। शब्दों का अपव्यय बहुत है। उड़िया-रामायण के समस्त वर्णन इसी प्रकार के हैं—
(पृ० ३१-४१)

बँगला-रामायण—बँगला-रामायण में भी सुमंत्र ही लोमपाद के यहाँ ऋष्यश्रृंग के आने का वृत्तान्त सुनाते हैं। राजा लोमपाद के राज्य में अनावृष्टि का कारण कुमारी वयस्काओं का रहना बताया है। एक बूढ़ी स्त्री युवतियाँ लेकर मुनि के पास जाती है। इन वेश्याओं के हथकंडे अन्य पूर्वांचलीय-रामायणों जैसे हैं। ऋष्यश्रृंग के पिता विभांडक ताम्रघटी और तुलसी की माला लेकर तपस्या करते हुए दिखाये गये हैं। उड़िया और बँगला-रामायणों में मुनि तत्कालीन योगियों अथवा ब्राह्मण पुजारियों जैसे हो गये हैं। ऋष्यश्रृंग के आने से वृष्टि और शान्ता-विवाह भी वर्णित है। इन्हीं ने राजा दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया।

मानस में तुलसीदास ने कथा-विस्तार और मर्यादाहीनता के कारण पूरे

कथानक की उपेक्षा की है। एकदम ऋष्यशृंग बुला दिये जाते हैं और यज्ञ होने लगता है। (१-१८८-५)

चरु की प्राप्ति और वितरण--वाल्मीकि-रामायण में स्वयं विष्णु यज्ञ में प्रकट होकर चरु प्रदान करते हैं। **असमीया** में विष्णुतुल्य सुन्दर पुरुष, **बँगला** और **उड़िया** रामायणों में स्वयं विष्णु प्रकट होते हैं। **मानस** में **अध्यात्म-रामायण** का अनुसरण होने के कारण स्वयं अग्निदेव प्रकट होते हैं।

चरु के चार अंशों के अनुपात में पूर्वांचलीय रामायणें समता रखती हैं, किन्तु मानस में भिन्नता है। चरु के अंशों से ही चारों भाइयों का जन्म हुआ, अतएव जिस कवि ने चारों भाइयों को विष्णु के चार अंश-मात्र माना है, उसने रघुवंश और अध्यात्म-रामायण के अनुसार चरु के बराबर-बराबर चार भाग कराये हैं। इस प्रकार के वर्णन में सुविधा भी थी। किन्तु जो कवि राम तथा उनके भाइयों में क्रमानुसार उच्चता दिखाना चाहते थे, उन्होंने अंशों के अनुपात में समता नहीं रखी।

वाल्मीकि के अनुपात में विषमता थी। तुलसीदास को वाल्मीकि के अनुपात में एक आपत्ति थी—भक्त-शिरोमणि भरत का अंश लक्ष्मण से कम हो जाता था। वाल्मीकि-रामायण के उत्तर-पश्चिम संस्करण पर आधारित **रामायण-मंजरी** काव्य का वितरण तुलसी के मनोनुकूल था। उसके अनुसार अयोध्याकाण्ड के नायक भरत को राम के पश्चात् स्थान मिल जाता है।[१] तेलुगु रंगनाथ-रामायण में भी ऐसा ही है।

रानियों को चरु-प्रदान के ढंग में असमीया और बँगला रामायणों में समानता है।

सुमित्रा वचन-बद्ध—असमीया में दशरथ कौशल्या और कैकेयी को आधा-आधा भाग देते हैं। सुमित्रा आकर पूछती है कि क्या खा रहीं हो, तब दोनों अपने अंशों का एक-एक आधाभाग उसे भी देकर वचन ले लेती हैं कि उनके अंश से उत्पन्न होने वाला पुत्र क्रमशः दोनों रानियों के पुत्रों के साथ रहे। बँगला-रामायण में भी वितरण **और वचन-दान** इसी प्रकार है, केवल चरित्र-चित्रण में भिन्नता है। सुमित्रा अत्यधिक दीन बनकर याचना करती है, तभी कौशल्या पसीजकर उस पर अनुग्रह करती हैं।

१.

	कौशल्या	कैकेयी	सुमित्रा	
	राम	भरत	लक्ष्मण	शत्रुघ्न
वाल्मीकि-रामायण रामायण मंजरी)	(१/२	१/८	१/४	१/८
रंगनाथ रामा०)	(१/२	१/४	१/८	१/८
मानस रघुवंश, अध्यात्म-रामा०) और पूर्वांचलीय-रामायणें)	(१/४	१/४	१/४	१/४

कैकेयी सौतिया डाह-वश अपना अंशार्ध इसलिए देती है कि वह भी अपना साथी वना सके।

उड़िया-रामायण में लिखा है कि केवल तीन रानियों ने व्रत किया, जिन्होंने नहीं किया उनसे राजा असन्तुष्ट हुए। राजा ने चरु को दो भागों में बाँटकर प्रथम दो रानियों को दिया। कौशल्या ने सुमित्रा की ओर संकेत किया। दोनों रानियों ने अपने-अपने अर्द्धांश सुमित्रा को दे दिये।

मानस में राजा दशरथ ने पहले कुल का आधा भाग कौशल्या को दिया, फिर आधे का आधा अर्थात् चतुर्थांश कैकेयी को दिया। शेश चतुर्थांश के भी दो भाग कर कौशल्या और केकैयी के हाथ से सुमित्रा को दिलाये।

गर्भिणी-स्वभाव— उड़िया-रामायण में गर्भवती रानियों की स्थिति और गर्भाधान के पश्चात् के अनेक व्रत-संस्कार आदि का वर्णन है। बँगला-रामायण में भी गर्भिणी के आलस्य, मृत्तिका-भक्षण और पाण्डुर-वर्ण आदि का चित्रण है।

रीछ-वानरादि के रूप में देवताओं के जन्म लेने का उल्लेख सभी रामायणों में है।

राम का जन्म और भागवत का प्रभाव :

असमीया-रामायण के आदिकाण्ड-लेखक माधवदेव वस्तुतः कृष्णभक्त थे। बँगला-रामायण-लेखक कृत्तिवास पर भी भागवत का प्रभाव पड़ा होगा। अतएव राम-जन्म का वर्णन कृष्ण-जन्म जैसा हो गया है। भागवत के इस प्रसंग का प्रभाव संस्कृत के अन्य पुराणों आदि पर भी पड़ा है।

भागवत में जन्म के उपरान्त कृष्ण देवकी-वसुदेव को अपना चतुर्भुज रूप दिखाते हैं। पद्म-पुराण के उत्तरखंड पर भागवत-पुराण का प्रभाव है, उसमें भगवान् अपना रूप स्वप्न में दिखाते है। **असमीया** और **बँगला** रामायणों में भी जन्म के पूर्व स्वप्न में राम कौशल्या को चतुर्भुज रूप दिखाते हैं। **मानस** में वे **भागवतपुराण** एवं **अध्यात्म**-रामायण के अनुसार जन्म के उपरान्त प्रत्यक्ष ही कौशल्या को चतुर्भुज-रूप दिखाते हैं। कौशल्या देखकर भीत हुई, उन्होंने विनय की, तब राम शिशु-रूप धारण कर रोने लगे। उड़िया-रामायण में यह वर्णन नही है। उसमें राम के षष्ठी आदि संस्कार और ज्योतिष-गणना का बार-बार वर्णन है।

रावण की चिन्ता—रघुवंश[1]-काव्य में वर्णित है कि रावण के मुकुट के मणि के बहाने मानो राक्षसों की लक्ष्मी आँसू बहाने लगी।

इसका प्रभाव **असमीया** और **बँगला** रामायणों पर है। असमीया-रामायण में रावण की मणियाँ गिरती हैं और बँगला-रामायण में मुकुट।

१. रघुवंश—१०-७५

असमीया—भूमिते वेकत येवे भैला दामोदर ।
खसिल माथार मणि राजा रावणर ॥ ६७३ (छन्द)
वँगला— आचम्वितै रावणेर सिंहासन टले ।
माथार मुकुट खसि पड़े भूमि तले ॥ पृष्ठ ५८

वँगला-रामायण पर यहाँ भागवत का प्रभाव भी है। भागवत में कृष्ण-जन्म के उपरान्त योगमाया की आकाशवाणी द्वारा अपने संहारक का जन्म ज्ञात कर कंस नव-जात शिशुओं के वध के लिए सन्नद्ध हो गया था। उसने कई चर भी खोज के लिए भेजे थे।[1] वँगला-रामायण में भी आकाशवाणी हुई, जिसे सुनकर रावण ने शुक-सारन को पता लगाने भेजा। (पृष्ठ ५६)

सीता-जन्म :

संभवतः राम के जीवन पर अधिक जोर देने के कारण सीता का जन्म-वृत्तांत कुछ उपेक्षित था। वाल्मीकि-रामायण के प्रक्षेपों एवं अन्य रामकथा-साहित्यों में इस कमी को अनेक कल्पित आख्यानों द्वारा पूरा किया गया। साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों का भी प्रभाव पड़ा है। जनक के अतिरिक्त दशरथ और रावण भी सीता के पिता माने गये हैं। किन्तु भाषा-रामायणों में वाल्मीकि-रामायण के भूमिजा और वेदवती के पुन-र्जन्म वाले प्रसंगों का अनुसरण हुआ है। श्री बुल्के के अनुसार ये दोनों प्रसंग प्रक्षिप्त हैं किन्तु हैं प्राचीन।[2] मेरी समझ में सीता जनक की औरस पुत्री थीं, वैदिक-साहित्य में कृषि की अधिष्ठात्री-देवी 'सीता' का उल्लेख है। 'सीता' शब्द का अर्थ हल से खींची हुई सिरा भी होता है। वैदिक सीता हल से खींची हुई सिरा का मानवीकरण है। जनक-पुत्री का नाम भी सीता था, लगता है कि सीता का 'सीता'—हल से खींची हुई रेखा से सम्बन्ध बिठाने के लिए उन्हें भूमि से उत्पन्न माना जाने लगा। 'ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं कि किसी का नाम उसकी जन्म-कथा का कारण बन गया।'[3]

वाल्मीकि-रामायण के वर्णन के अनुसार—

(१) रावण से बदला लेने के लिए वेदवती ने सीता के रूप में जन्म लिया। वेदवती और सीता के साथ अभिन्नता दिखायी गयी। किन्तु इन दोनों को ही लक्ष्मी नहीं माना गया। वे नारीणामुत्तमावधू हैं।

(२) सीता भूमिजा और जनकपालिता है।

चारों भाषा-रामायणों में सीता को भूमिजा और जनकपालिता तो माना ही साथ में लक्ष्मी भी मान लिया गया। वेदवती वाला प्रसंग सभी में नहीं है।

---

१. भागवतपुराण, दशम अध्याय, पृ० ४
२. श्री कामिल बुल्के—रामकथा, द्वि० सं०, अनु० ४०७
३. श्री कामिल बुल्के—रामकथा, द्वि० सं०, अनु० ४०८।

वेदवती—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार कुशध्वज ऋषि की पुत्री वेदवती नारायण को वर-रूप में प्राप्त करने के लिए तप कर रही थी। एक दिन रावण ने उसे देखा। उसने मुग्ध होकर उसके केश पकड़े। वेदवती अपने को मुक्त कर अग्नि में जल कर दग्ध हो गयी, मृत्यु के पूर्व वह सूचना दे गयी कि रावण का नाश करने के लिए वह अयोनिजा होकर जन्म लेगी। जब राम को विष्णु माना जाने लगा, सीता भी लक्ष्मी हो गयीं। वेदवती नारायण को वर-रूप में पाने के लिए तप कर रही थी, अतएव वेदवती, सीता और लक्ष्मी अभिन्न हुईं। यह अभिन्नता **देवी-भागवत** और **ब्रह्मवैवर्त्त** पुराणों में मिलने लगती है।

असमीया-रामायण के माधवदेव-कृत आदिकांड में वेदवती का नाम नहीं आया, किन्तु वर्णन से प्रतीत होता है कि वेदवती की ओर ही संकेत है। परम ईश्वरी **लक्ष्मीदेवी** पर्वत पर केश खोले बैठी थीं, लंकेश्वर ने पकड़ कर रथ में बिठाल लिया। सती लक्ष्मी ने शाप दिया कि तेरे वध के लिए जन्म लेने जा रही हूँ। वे सागर में कूद पड़ीं। पृथ्वी ने आदर-सहित गोद में धारण किया। पृथ्वी ने जहाँ लक्ष्मी को गर्भ में धारण किया वहाँ मिथिला नगरी हुई। जनक ने यज्ञ कर हल जोता, उसी समय रक्त-वर्ण सूर्य-सा डिम्ब निकला। फोड़ने पर कन्या रोने लगी, उसे जनक रनिवास में लाये। हल की सिरा से उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम सीता हुआ। (पृष्ठ ४६-४७)

बँगला-रामायण के दीनेशचन्द्र सेन और रामानन्द चट्टोपाध्याय[1] द्वारा सम्पादित संस्करणों में इस प्रकार का वर्णन है—जिस स्थान पर वेदवती ने प्राण त्याग किया था, मिथिला नगरी बस गयी। सन्तान की इच्छा से हल जोतते समय जनक को एक डिम्ब (अंडा) मिला। उससे एक कन्या निकली। बँगला-रामायण कुछ अन्य संस्करणों में एक और वृत्तान्त है, जिसका वर्णन **अप्सरा-प्रसंग** नाम से दिया जा रहा है।

उड़िया-रामायण के उत्तरकाण्ड में वेदवती की कथा वर्णित हुई है। इस कथा का कुछ विस्तार है। वेदवती का आख्यान बँगला-रामायण के भी उत्तरकाण्ड में पुनः आया है, अतएव इन दोनों रामायणों के आख्यान का तुलनात्मक-अध्ययन उत्तरकाण्ड के अन्त में देखिए।

अप्सरा प्रसंग—**असमीया-रामायण** के मुख्य कथा-लेखक माधव कन्दली ने सीता-अनुसूया-संवाद के समय सीता-जन्म के एक नये वृत्तान्त का वर्णन किया है। अपुत्रक जनक भार्या-सहित यज्ञ-भूमि जोतने गये। उन्होंने आकाश में **मेनका** अप्सरा नामक मोहिनी कन्या देखी, उसे देख जनक बहुत दुःखी हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई

१. बँगला-रामायण—रामानन्दी-संस्करण, पृष्ठ ५५।
बँगला-रामायण—दीनेशचन्द्र सेन-संस्करण, पृष्ठ ६३।

कि यज्ञ-भूमि जोतो, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। तुम्हें इसी के समान सन्तान मिलेगी। (२६४६-४८ छं०)

उड़िया-रामायण का वर्णन भी इसी प्रकार है। जनक सीता-जन्म के विषय में बताते हुए कहते हैं—सहस्रों वर्ष पूर्व पुत्र की कामना से यज्ञ करते समय मैंने आकाश-मार्ग से मेनका को जाते हुए देखा, वह शाप-मुक्त होकर जा रही थी। उसे देख कर इच्छा हुई कि इसी के समान पुत्री प्राप्त हो। मेनका ने कहा, ब्रह्मा के शाप से मुक्त होकर जा रही हूँ, नहीं तो इच्छा पूरी करती। जनक ने यज्ञभूमि पर हल चलाया, मंजूषा में कन्या मिली, उसे सीता नाम दिया। ब्रह्मा ने कहा इसके पति विष्णु होंगे, यह अयोनिजा कमला है। उन्होंने विष्णु की पहचान के लिए धनुष की सहायता लेने के लिए कहा।

इन दोनों रामायण-लेखकों ने वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण से प्रेरणा ली है। वहाँ भी कथा का स्थल अनुसूया-सीता संवाद है। असमीया-रामायण का प्रसंग इससे अधिक निकट है।

बँगला-रामायण के सुबोध मजुमदार द्वारा सम्पादित संस्करण में इस प्रसंग को कुछ परिवर्तित कर प्रस्तुत किया गया है। अप्सरा मेनका के स्थान पर उर्वशी है एवं जनक के हृदय में वात्सल्य के स्थान पर उसे देखकर प्रणय-भाव उत्पन्न होता है। हल जोतते समय जनक आकाशमार्ग से जाती हुई उर्वशी को देखकर स्खलित हुए। उस समय पृथ्वी ऋतुमती थी, अतएव वह गर्भवती हो गयी। उससे ही डिम्ब का निर्माण हुआ।[1] डिम्ब-प्राप्ति की कथा अन्य सम्पादकों ने भी लिखी है, प्रतीत होता है अश्लीलता के भय से जनक-उर्वशी प्रसंग वर्जित किया गया है।

मानस में सीता राम के जन्म-विषयक किसी भी प्रसंग का वर्णन नहीं है। तुलसी ऐसे अवसरों पर मौन रहते हैं। वृन्दा और नारद ने विष्णु को शाप दिया था कि तुम भी स्त्री के विरह में दुःखी होकर नर-रूप में भटकोगे। इसी को सत्य करने के लिए उन्होंने अवतार लिया। इस प्रकार सीता लक्ष्मी हैं। मनु-शतरूपा को वर देते समय राम अपनी आदि-शक्ति के साथ हैं। ये आदि-शक्ति सीता राम के साथ 'गिरा अरथ जल बीचि सम' अभिन्न हैं, अतएव दोनों का एक साथ अवतीर्ण होना आवश्यक था।

अभिशप्त गुह-चंडाल की कथा—केवल असमीया एवं बँगला रामायणों में गुह के साथ मैत्री का वर्णन आया है। कुछ विभिन्नता के साथ दोनों में समानता है, दोनों का उद्गम एक है।

असमीया-रामायण में—दशरथ चार पुत्रों के साथ गंगा-स्नान करने गये। गुह पहले स्नान करना चाहता है। युद्ध में बन्दी होकर जब वह राम को देखता है तो उसे

१. सुबोध मजुमदार द्वारा सम्पादित कृत्तिवासी बँगला रामायण, पृष्ठ ५६।

स्मरण होता है कि वह पहले ब्राह्मण था। जब भगीरथ गंगा लाये तो उसने गर्व किया कि ब्राह्मण होने के कारण गंगा आदि तीर्थ उसके ही शरीर में हैं। गंगा ने उसे चंडाल होने का शाप दिया।

बँगला-रामायण में दशरथ सूर्य-ग्रहण के अवसर पर राम-सहित गंगा-स्नान करने चले। नारद ने बताया गंगा जिनके चरणों से निकली है वे भगवान् तुम्हारे घर में हैं। दशरथ लौटने लगे तो राम ने गंगा का महत्त्व समझा कर उन्हें गंगा-स्नान के लिए पुन: सम्मत कर लिया। गुह ने तीन-कोटि सैनिकों के साथ मार्ग रोक कर कहा, तुम बार-बार यात्रा कर मेरा राज्य उजाड़ देते हो। अन्य पथ से यात्रा करो अथवा राम को दिखाओ। दशरथ ने राम को छिपा कर उसपर बाण-वर्षा की, फिर भयंकर युद्ध के पश्चात् उसे पाशुपत से बाँध लिया। बँधे होने पर भी वह पैरों से शर-सन्धान करता रहा। भरत के कहने पर राम कुतूहल-वश उसका कौशल देखने के लिए झाँकते हैं। राम को देखते ही वह प्रणाम कर कहता है कि मैं अभिशप्त **वामदेव** हूँ। राम उसे रोता देख रोते हैं, और अग्नि जला कर मित्रता करते हैं। गुह अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त बताता है। दशरथ अन्धमुनि के पुत्र को मार कर वसिष्ठ पुत्र वामदेव की शरण में आये। वामदेव ने तीन बार राम-नाम लेने के लिए कहा। वसिष्ठ को जब ज्ञात हुआ तो वे पुत्र से अप्रसन्न हुए कि केवल एक बार राम कहने से कोटि ब्रह्म-हत्याओं के पाप से मुक्ति मिल जाती है, तीन बार राम-नाम लेने की क्या आवश्यकता थी, जाओ तुम चंडाल हो जाओ।

दोनों में कथा की समानता यह है कि गंगास्नान के लिए जाते समय गुह से युद्ध होता है, वह बन्दी होता है। राम के दर्शन से उसे अपने पूर्वजन्म का ब्राह्मणत्व याद आता है। अंतर है युद्ध के कारण एवं पूर्वजन्म-वृत्तांत में।

दोनों ही रामायणों में कथा का उद्देश्य है—१. गंगा-माहात्म्य, २. उससे भी बढ़ कर राम अथवा रामायण का माहात्म्य और ३. लेखकों का कुलीनता-बोध। संभवत: चंडाल के साथ राम की मैत्री इन लेखकों को खटकी होगी, इसलिए अपने से पूर्व-प्रसिद्ध किसी आख्यान को लेकर इन्होंने दिखाया कि वह चंडाल न होकर अभिशप्त ब्राह्मण है।

उड़िया-रामायण में गुह से मैत्री का वर्णन **अयोध्याकाण्ड** के प्रारंभ में ही हुआ है। राम-लक्ष्मण सेना-सहित हाँका करते हुए मृगया खेल रहे थे। वे अनेक मृगों को मार कर तमसा पर पहुँचे। राम मार्ग भूल गये। वहाँ गुह नारक शबर से भेंट हुई। वह श्रृंग-बेरपुर के लाखों शबरों का अधिपति था। राम ने उसे वक्ष से लगाकर प्राण-सखा कहा। यहीं लक्ष्मण से भेंट हुई। राम ने गुह का आतिथ्य ग्रहण किया।

(अयोध्याकाण्ड पृष्ठ-२-३)

उत्तरार्द्ध

विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना तथा राम के जनकपुर पहुँचने तक की कथा—राक्षसों के उपद्रव से पीड़ित विश्वामित्र दशरथ से राम-लक्ष्मण की याचना करते हैं, राजा दशरथ पुत्रस्नेह के कारण बड़ी कठिनाई से राम को देने के लिए प्रस्तुत होते हैं। विश्वामित्र ने उन्हें अस्त्र-शस्त्र-संचालन की शिक्षा दी। रामलक्ष्मण ने तांड़का, सुवाहु आदि राक्षसों का वध किया। अहल्या को पवित्र करते हुए वे जनकपुर जा पहुँचे।

वालमीकि-रामायण के अनुसार मुख्य कथा इतनी है। यदि आदिकाण्ड संपूर्णतः प्रक्षिप्त हो तो कथा का यह अंश प्राचीनतम प्रक्षेप होगा। यह अंश आधिकारिक कथावस्तु से सम्बन्धित है, किन्तु वालमीकि-रामायण में अनेक प्रसंग जोड़ दिये गये हैं, जिनका सम्बन्ध आधिकारिक-कथावस्तु से नहीं सा ही है।

अयोध्या से जनकपुर तक पहुँचने के मार्ग में जितने स्थान मिले उनका पौराणिक इतिहास प्रस्तुत किया गया है। कई पौराणिक आख्यान इसमें जोड़ दिये गये हैं। भाषा-रामायणकारों में बँगला और उड़िया रामायण-लेखकों ने इन प्रसंगों के साथ कुछ अन्य प्रसंग भी जोड़ दिये हैं। **असमीया**-रामायण में इनका उल्लेख कम है। **मानस** में कथावस्तु के संगठन का अच्छा परिचय मिलने लगता है। उसमें या तो प्रसंग आये नहीं हैं, अथवा कहीं एकाध पंक्ति में उनकी ओर संकेत कर दिया गया है।

वालमीकि-रामायण के मुख्य प्रसंग ये हैं—

(१) विश्वामित्र द्वारा रामलक्ष्मण को वला-अतिवला विद्या सिखाना।
(२) गंगा पार कर सरयू का परिचय देना।
(३) ताड़का का पूर्व-वृत्तांत एवं वध।
(४) रामलक्ष्मण को अस्त्रदान।
(५) सिद्धाश्रम का पूर्व वृत्तांत तथा वामन की कथा।
(६) यज्ञ-रक्षा करते हुए राम-द्वारा सुवाहु आदि का वध, मारीच का फेंकना।
(७) जनकपुर के लिए यात्रा, सोन नदी पर निवास।
(८) विश्वामित्र के वंश का वर्णन।
(९) कुशनाभ की कन्याओं का कामविह्वल पवन द्वारा अभिशप्त होकर कुब्जाएँ होना, कान्यकुब्ज देश का नामकरण, चूली ऋषि और सोमदा गन्धर्वी की सन्तान ब्रह्मदत्त (कंपिला का शासक) द्वारा कन्याओं का वरण कर उन्हें शापमुक्त करना।
(१०) इन्हीं कुशनाभ से गाधि की उत्पत्ति। विश्वामित्र और उनकी वहिन सत्यवती का वर्णन।

(११) गंगा और उमा। दो बहनों का वर्णन, उमा का देवताओं को शाप, कात्तिकेय का जन्म।
(१२) सगरवंश, अश्वमेध, सगर-पुत्रों का नाश, गंगा-आनयन का प्रयास आदि।
(१३) विशालापुरी का इतिहास—दिति अदिति का वृत्तांत, समुद्र-मन्थन।
(१४) ४९ पवनों की उत्पत्ति।
(१५) अहल्योपाख्यान।
(१६) शतानन्द द्वारा विश्वामित्र वृत्तांत-कथन। शवला के कारण वसिष्ठ से युद्ध। ब्राह्मशक्ति से पराजित होकर ब्राह्मण बनने का प्रयास। त्रिशंकु अम्वरीप, शुन:शेप मेनका, रंभा आदि प्रसंग।

मुख्य प्रसंगों के तुलनात्मक अध्ययन के पूर्व पूर्वांचलीय-रामायणों के अवांतर प्रसंगों का अध्ययन अधिक उपयुक्त होगा।

असमीया और **बँगला** रामायणों का प्रारम्भ अथवा **रघुवंश** अथवा **पद्म पुराण** के पाताल-खण्ड (गौड़ीय संस्करण) के आधार पर हुआ है अतएव उनमें से अधिकांश अवान्तर कथाएँ गृहीत हुई हैं। इन रामायणों में वाल्मीकि-रामायण की उपर्युक्त प्रासंगिक कथाएँ नहीं हैं।

असमीया-रामायण में कान्यकुब्ज देश और ४९ पवन की उत्पत्ति का इतिहास है।

बँगला-रामायण में ४९ पवन की उत्पत्ति-भूमि का नामोल्लेख मात्र है। इसमें राजा हरिश्चन्द्र वृत्तांत और सगर के अश्वमेध तथा गंगा-आनयन का विस्तृत वर्णन अवश्य है, किन्तु ये प्रसंग राम-जन्म के पूर्व ही आये हैं।

उड़िया-रामायण की अप्रासंगिक कथाएँ :

उड़िया-रामायण की अनेक कथाएँ वाल्मीकि-रामायण के अनुसार होते हुए भी उनमें स्वतंत्र कल्पना की हुई हैं, कुछ और भी प्रसंग अन्य पुराणों से लिए हैं।

(१) **शुचिदैत्य और इन्द्र**—विश्वामित्र गंगा पार करके वन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब इन्द्र शुचि नामक दैत्य से हार गया तो उन्होंने अपनी दो पत्नियों शची और शुची से दैत्य की मैत्री करा दी और उसका मर्म-स्थान ज्ञात कर उसे मार डाला। विश्वासघात करने से इन्द्र ने यहाँ रहकर तपस्या की और पवित्र हो गया। (पृ० ६६)

(२) **अगस्त्य-ऋषि-प्रसंग**—मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य तपस्या कर ब्रह्मर्षि हुए। पितरों ने कहा, पुत्र के विना तप करने से कोई लाभ नहीं। अगस्त्य ने विदर्भ के राजा से उसकी पुत्री माँग कर गान्धर्व-विवाह किया। पुत्र होने पर वे तपस्या करने चले गये। तपस्या का रूप तीर्थयात्रा है।

आतापि-वातापि राक्षसों का वध वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है। **समुद्रपान** और **विन्ध्याचल** की बाढ़ रोकने के प्रसंग भी हैं। (पृ० ६७-६८)

(३) **कान्यकुब्ज देश तथा विश्वामित्र और परशुराम**—कन्याओं का कुब्जा होना उनका उद्धार आदि वाल्मीकि-रामायण के अनुसार ही है। इन्हीं कन्याओं के पिता कुशनाभ के पुत्र कौशिक, उनके गाधि तथा गाधि के विश्वामित्र हुए। विश्वामित्र की बहिन सत्यवती रुचिक (वाल्मीकि-रामायण में ऋचीक) ऋषि को व्याही गयी। उनके पुत्र जमदग्नि और उनके परशुराम। सत्यवती नदी होकर कौशिकी कहलायीं। उसी के तट पर विश्वामित्र ने तपस्या की। (पृ० ७८-८०)

(४) **वामन-अवतार और-गंगा-जन्म-कथा**—मार्ग में वामन की पाषाण-प्रतिमा को जन्म देखकर राम ने प्रणाम किया। विश्वामित्र ने बलि के यज्ञ और वामन के तीनों लोकों के नापने की कथा सुनायी।

जिस समय वामन ने विशाल-रूप धारण कर एक पैर से समस्त स्वर्ग-लोक को नापा, ब्रह्मा ने उनके चरण प्रक्षालित कर जल कमंडल में भर लिया, यही गंगा है। मेरुपुत्री मेनका गंगा और उमा हेमवंत की दो सन्तानें—गंगा और उमा का भी वर्णन है। (पृ० ७३-७६)

(५) **सगर-पुत्रगण और गंगा-आनयन**—सगर-पुत्रों की दुष्टता दंडित करने के लिए इन्द्र ने यज्ञीय-अश्व चुराया। नारायण कपिल बने। सगरपुत्र खोज करते एवं दिग्गजों से पूछते हुए कपिल के आश्रम में पहुँचे। अपमान करने पर कपिल ने क्रुद्ध होकर शाप दिया—न मरो न जीवित रहो।

शाप के कारण—राम ने प्रश्न किया सगर-पुत्र क्यों अभिशप्त हुए? विश्वामित्र शंका-समाधान करते हुए कहते हैं कि (१) सगरपुत्र अन्याय करते थे। वे ऋषि तपचारी, गो और ब्राह्मण को मारते थे। इन्होंने पृथ्वी खोद डाली, उसने देव-सभा में गुहार की। इसी लिए विष्णु ने कपिल बनकर शाप दिया। (२) अगस्त्य ने समुद्र पी लिया था, वह खाली था। उसके भरे जाने की आवश्यकता थी। गंगा द्वारा भरने के लिए भी सगर-पुत्र अभिशप्त हुए। **समुद्र सूखने का कारण** इस प्रकार था—समुद्रवासी कालेयगण जनवध करते थे। ब्रह्मा ने शंकर से असुरों के वध के लिए कहा। शंकर चिंतित हुए कि कैसे वध करें। विष्णु ने शंखासुरवध किया था, वे ही इनको भी मार सकते हैं। विष्णु के कहने से अगस्त्य समुद्र पी गये, अब देवताओं ने राक्षसों को मार डाला।

भगीरथ-तप—सगर का एक दुष्ट-पुत्र अश्वराजा (वाल्मीकि-रामायण में असमंज) उसका पुत्र अश्ववंत (वाल्मीकि-रामायण में अंशुमान) दिलीप-भगीरथ। भगीरथ ने गोकर्ण में तपस्या की। ब्रह्मा ने प्रकट होकर गंगाजल की उत्पत्ति बताकर विष्णु के स्मरण के लिए कहा। यहाँ उड़ीसा के कुछ तीर्थों का वर्णन है। विष्णु के कहने पर वैतरिणी के तट पर वालुका-लिंग स्थापित कर रुधिर के साथ घृत-दीप जला

कर तपस्या की। शंकर ने गंगा को धारण किया। भगीरथ के स्तुति करने पर उन्हें जटाओं से छोड़ा। गंगा मेरु-पर्वत पर लुप्त हुई, स्तुति करने पर पुनः प्रकट हुई।

ऐरावत-मानभंग—मेरु-पर्वत पर लुप्त हो जाने पर गंगा ने भगीरथ से कहा, यदि चार दाँतों वाला ऐरावत मेरु-पर्वत फोड़ दे तो मैं बाहर आ जाऊँ। ऐरावत तैयार हुआ किन्तु बोला कि गंगा को उसके साथ रमण करना होगा। भगीरथ चिंतित हुए, गंगा माँ से ऐसी बात कैसे कहें। गंगा ने रोगबल से सब जान लिया, बोलीं—'उससे कहना, 'मैं अबला नाम वहन करने वाली स्त्री हूं, निर्बल पुरुष के पास नहीं जाती। तुम तो बलवान हो।' भगीरथ बोले, 'ऐसा कैसे कहूं मेरे लिए दोनों बड़े हैं।' समझाने पर गये। ऐरावत का एक दाँत टूट गया। वह गंगा की धार में बहने लगा। जहाँ रुका वहाँ हस्तिनापुर नगर बसा।

काशी के तीर्थों की कहानी का विस्तृत वर्णन है।[1]

ब्रह्मचारी और शुंडनी-प्रेमकथा—प्रयाग-तीर्थ में रुद्र-मंत्र का जाप करने वाले एक युवा ब्रह्मचारी ने एक युवती शुंडुआणी (शुंडनी) को देखा। वह विचलित होकर बोला—'सुन्दरी, प्राणों की रक्षा करो।' उसने कहा, पूर्णिमा के दिन ग्रहण है, उसदिन सभी स्नान करने जाएँगे, पति मदिरा बेचने जाएँगे, तभी रतिरंग हो सकेगा। नित्य गंगा-स्नान करने से वह उज्ज्वल होकर सुन्दरी हो गयी थी। ग्रहण के दिन दोनों ने रमण किया, इसी बीच स्त्री का पति आ गया। ब्रह्मचारी को खाली मदिरा-भांड में बिठा कर वह बाहर आयी। दोनों स्नान कर लौटे तो पति ने खाली भांड में मदिरा भर दी। ब्राह्मण ब्रह्मचारी ने शरीर के दसों द्वार रोककर मदिरा भीतर न जाने दी। वह मर गया। शंकर ने मरने से पूर्व उनके कान में राम तारक मंत्र कहा, जिससे वह तर गया। (पृष्ठ ९५-९६)

गंगास्नान एवं राम-नाम के महत्त्व-वर्द्धन के लिए कथा की कल्पना हुई।

गंगा के तीर्थों का वर्णन—वाराणसी के तीर्थों का विस्तृत वर्णन है, लगता है लेखक वहाँ गया होगा। काउँरी देश जाकर गंगा उत्तर की ओर चलीं। भगीरथ ने प्रार्थना की तो बोलीं, बाजा बजाते चलो। भगीरथ काहाल बजाते हुए चले, जिससे गंगा का नाम **काहालिया गंगा** हुआ। शाँत बहने के कारण **पद्मावती** नाम हुआ। शची के कहने से उन्होंने **इन्द्रायणी** नाम धारण किया। ब्रह्मपुत्र से मिलीं, **भागीरथी** नाम हुआ। सगर-पुत्र तर गये। चक्राकार घूमीं इसलिए **चक्रीघाट** नामकरण। **श्वेतद्वीप, मुकुलकुंड** और **गंगासागर** तीर्थ आदि का भी नाम आया है।

बँगला-रामायण का गंगावतरण—उड़िया और बँगला रामायणों के इस प्रसंग में समानता है। गंगा की जन्मकथा में अंतर है, साथ ही गंगा-माहात्म्य-वर्द्धन सम्बन्धी संयुक्त-आख्यानों में भी अंतर है। ऐरावत-मानभंग के वर्णन में समानता है।

---

१. गंगावतरण-विषयक समस्त प्रसंग—पृष्ठ ८१ से ९४ तक।

(६) **सागर-मंथन : पवन-उत्पत्ति**—दक्ष प्रजापति के ६० कन्याएँ थीं, उनमें से उसने १३ कन्याएँ कश्यप ऋषि को दीं, इनमें दो का नाम दिति और अदिति था। इन्हीं की सन्तान राक्षस और देवता। दोनों ने समुद्र-मन्थन कर १४ रत्न प्राप्त किये, राहु का सिर काटा गया, वितरण आदि के संबंध में जो युद्ध हुआ उसमें दैत्य मारे गये। दिति दुःखी हुई, उसने कश्यप से सन्तान का वर प्राप्त किया। इन्द्र चिंतित हुआ, उसने अवसर पाकर दिति के गर्भ में घुस कर शिशु के ४९ खंड किये, वह फिर भी न मरा, यही पवन हैं। (पृष्ठ १०९-१०)

(७) **विश्वामित्र की कहानी**[1]—उड़िया-रामायण का यह प्रसंग वाल्मीकि-रामायण के प्रसंग से समता रखता हुआ भी कई स्थानों पर भिन्न भी है। इसमें वसिष्ठ, त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, मालव और अम्बरीश आदि की कथाएँ भी जुड़ी हुई हैं।

(क) **सत्यवंत-त्रिशंकु**—शवला गाय के कारण वसिष्ठ और विश्वामित्र का संघर्ष चिरपरिचित है।। इससे आगे उड़िया-रामायण का वर्णन भिन्नता रखता है। वाल्मीकि-रामायण में विश्वामित्र अपनी स्त्री को लेकर दक्षिण दिशा की ओर जाकर तप करने लगते हैं और उड़िया-रामायण में वे स्त्री को तत्कालीन राजा कृष्णपारि के यहाँ छोड़ जाते हैं। वाल्मीकि-रामायण का त्रिशंकु सत्यवादी और जितेन्द्रिय था। वह वसिष्ठ से यज्ञ करा कर सदेह स्वर्ग जाना चाहता था। वसिष्ठ-पुत्रों ने गुरु (वसिष्ठ) की बात न मानने के कारण त्रिशंकु को चंडाल होने का शाप दिया था। उड़िया-रामायण में वर्णन भिन्न है। त्रिशंकु का पूर्वनाम सत्यवंत था, वह राजा कृष्णापारि का पुत्र था। अयोध्या में एक कुमारी ब्राह्मण-कन्या को वर की प्राप्ति न हो सकी, सत्यवंत का उसके साथ प्रेम हो गया। ब्राह्मण के शिकायत करने पर राजा ने सत्यवंत को ब्राह्मणी के साथ चंडाल बन कर वन में रहने का दंड दिया। सत्यवंत वसिष्ठ से कहता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय की कन्या ले सकता है तो क्षत्रिय ब्राह्मण की कन्या क्यों न ले, यह अन्याय है। वह वन में मठी बना कर रहने लगता है।

उसके तीन पाप—राजा कृष्णपारि विश्वामित्र की स्त्री की देखरेख करना भूल गया। इधर अकाल पड़ा। वह भूखों मरने लगी। उसने पुत्र को बेचना चाहा, किसी ने नहीं खरीदा। सत्यवंत अपने घर ले गया। उसकी सब पूँजी जब समाप्त हो गयी तो एक दिन नाराच से वसिष्ठ की गाय बींध कर उसके मांस को मृगमांस बता कर विश्वामित्र के बच्चों को खिला दिया। तीन पाप करने के कारण वसिष्ठ ने सत्यवन्त का नाम त्रिशंकु रखा।

आगे त्रिशंकु के यज्ञ-सम्बन्धीय वर्णन में उड़िया-रामायण वाल्मीकि-रामायण से बहुत-कुछ समानता रखती है। विश्वामित्र ने यज्ञ की तैयारी कर कई ब्राह्मणों को निमंत्रित किया, किन्तु वसिष्ठ ने उन्हें मार्ग से लौटा दिया। विश्वामित्र ने रुष्ट होकर

---

१. विश्वामित्र-विषयक-समस्त वृत्तांत, पृष्ठ १२० से १४० तक।

शूद्रों को ब्राह्मण बनाकर चार वेद पढ़ाये। अथर्ववेद के मंत्रों से यज्ञ कराया। बहुत झंझटों के बाद देवता त्रिशंकु को स्वर्ग में समादृत कर लेते हैं।

विश्वामित्र का **मेनका**-द्वारा तप-भंग, **रंभा** को विश्वामित्र का शिला होने का शाप, विश्वामित्र का भयंकर तप, उससे राजर्षि और महर्षि का पद पाना, अन्त में वसिष्ठ द्वारा महर्षि-पद स्वीकार कर लेना आदि वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है। उड़िया-रामायण में स्थान-स्थान पर स्थानीय प्रभाव दृष्टिगत होता है, जैसे कि मेनका मुख में लगी हुई हल्दी धोने के बहाने अपने नग्न अंग विश्वामित्र को दिखाती है। उड़ीसा में स्त्रियाँ अपने मुख पर हल्दी मला करती हैं।

ब्रह्मर्षि-पद की प्राप्ति के पूर्व के तीन प्रसंग और हैं।

(ख) **हरिश्चन्द्र वृत्तांत**—यह प्रसंग वाल्मीकि-रामायण से भिन्न है। राजा कृष्णपारि ने सत्यवन्त (त्रिशंकु) के पुत्र हरिश्चन्द्र को राज्य दिया। हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र के तप का प्रभाव देख कर विश्वामित्र से राजसूय यज्ञ कराना चाहा। उन्होंने राज्य विश्वामित्र को दान कर दिया। दक्षिणा के लिए अपने को पुत्र-सहित बेचने काशी आये। यम ने चंडाल का रूप धारण कर एक लाख शुद्ध स्वर्ण में खरीदकर सुअर चराने के लिए कहा। इन्द्र ने ३ लाख में स्त्रीपुत्र को खरीद लिया। विश्वामित्र ने धन लेकर राजा को राजसूय-यज्ञ की फल-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। उन्होंने धन अपने पास न रखकर **विश्वेश्वर को देकर भोगराग-मंडप** बनवाया और कोटि तपस्वी मठ में अधिष्ठित कराये।

बँगला-रामायण से अन्तर—उड़िया-रामायण में हरिश्चन्द्र को सत्यवंत (त्रिशंकु) का बेटा कहा गया है और बँगला-रामायण में हरिबीज का बेटा हरिश्चन्द्र स्वयं ही त्रिशंकु बनता है। हरिश्चन्द्र के विश्वामित्र द्वारा अभिशप्त होने का कारण भी भिन्न है। दोनों ने ही भिन्न-भिन्न आख्यान जोड़े हैं। उड़िया-रामायण में हरिश्चन्द्र के पुत्र के सर्पदंश का भी वर्णन नहीं है।

(ग) **अभिशप्त-विश्वेदेवा**—विश्वामित्र और वसिष्ठ पक्षी बन कर भयंकर युद्ध कर रहे थे। देवताओं द्वारा भेजे गये पंच-विश्वेदेवाओं ने आकर विश्वामित्र को फटकारा। विश्वामित्र ने उन्हें शाप दिया कि पाण्डवों के पुत्र होकर तुम्हें नर-रूप धारण करना पड़ेगा और अश्वत्थामा द्वारा मारे जाकर उद्धार पाओगे।

(घ) **गालव को दंड**—विश्वामित्र को यज्ञ के उपलक्ष्य में दक्षिणा देने का अहंकार दिखाने से मुनि ने क्रुद्ध होकर ८०० सुलक्षण घोड़े माँग दिये। राजा पैरों पर गिर पड़ा, तब क्षमा कर दिया।

(ङ) **अम्बरीष : शुनःशेप**—अम्बरीप द्वारा नरमेध यज्ञ का आयोजन, इन्द्र द्वारा सुलक्षण पुरुष की चोरी, उसके स्थान पर लोहिताक्ष (वाल्मीकि-रामायण में ऋचीक) के तीन पुत्रों में बीच वाले शुनःशेप का क्रय, शुनःशेप का विश्वामित्र की शरण में जाना, विश्वामित्र का अपने पुत्रों से शुनःशेप के स्थान पर अपने को बलि देने के

लिए कहना और किसी भी पुत्र के न तैयार होने पर क्रुद्ध होना, शुनःशेप को मंत्र देकर उसकी रक्षा करना आदि वाल्मीकि-रामायण के अनुसार हैं।

ताड़का-वध :

विश्वामित्र राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण की याचना करने राजा दशरथ के पास जाते हैं। दशरथ अत्यन्त अनिच्छा एवं शोकपूर्ण हृदय से ही दोनों पुत्र विश्वामित्र को सौंपते हैं। ऐसा वर्णन सभी रामायणों में है।

बँगला-रामायण में विश्वामित्र प्रवंचित होते हैं। दशरथ पहले उन्हें राम-लक्ष्मण के स्थान पर भरत-शत्रुघ्न देते हैं। विश्वामित्र ने वन के दो मार्गों का उल्लेख किया, भरत ने डर कर सुगम मार्ग चुन लिया, यहीं भण्डाफोड़ हो गया और विश्वामित्र क्रुद्ध होकर अयोध्या लौट पड़े। अन्त में राम-लक्ष्मण को साथ लेकर लौटे। राम ने दो मार्गों में ताड़का वाला मार्ग चुना। **असमीया-रामायण** में भी राम ताड़का वाला मार्ग चुनते हैं।

असमीया और **बँगला-रामायणों** में डरपोक विश्वामित्र का चित्रण है। **बँगला**-रामायण के विश्वामित्र तो एकदम भीरु-बंगाली-ब्राह्मण से प्रतीत होते हैं, जो ताड़का को देखते ही डर कर भाग जाते हैं। उसके मर जाने पर भी वे निकट नहीं जाते। उड़िया-रामायण में भी वे वाल्मीकि के विश्वामित्र के समान निर्भीक प्रतीत नही होते।

पूर्वांचलीय-रामायणों में राम से ताड़का के युद्ध और उसके संहार का वर्णन है। मानस में केवल दो अर्धालियों में ताड़का के आने एवं राम द्वारा एक ही बाण में प्राण हरने का संक्षिप्त उल्लेख है। सभी रामायणों में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को विद्यादान करते हैं।

स्त्री-वध पर आपत्ति—**असमीया-रामायण** मे राम स्त्री-वध की अनिच्छा प्रकट करते हैं। लक्ष्मण उन्हें समझाते हैं कि गुरु की आज्ञा से कार्य करना अधर्म नही होता। विश्वामित्र भी उन्हें समझाते है, यह गो, ब्राह्मण तथा अनेक मनुष्यों का वध कर चुकी है, इसलिए इसका वध पाप नहीं है।

अहल्या :

कुमारिल भट्ट ने अहल्योपाख्यान में सत्य देखकर इसे रूपक माना है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार इन्द्र ने अहल्या के रूप पर मुग्ध होकर उसकी सहर्ष-सम्मति से उसके साथ अंग-संग किया।

वाल्मीकि के वर्णन में यथार्थता और स्वाभाविकता अधिक है। भाषा-रामायणों के काल तक अहल्या का यह कृत्य परिवर्त्तित रूप में वर्णित हुआ। इस व्यभिचार के दोष से अहल्या को मुक्त करने की चेष्टा की गयी।

असमीया-रामायण के अनुसार गौतम की तपस्या से इन्द्र भीत हुआ। उसने

तप-भंग के लिए कामदेव का भेजना चाहा किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया, तब वह स्वयं गया। वहाँ ऋषि गौतम को देख डर कर छिप गया। इसी बीच अहल्या को देख कर वह मुग्ध हुआ और अपने आगमन का उद्देश्य भूल गया। उसने गौतम के जाने पर उनका वेश-धारण कर रति-याचना की। अहल्या समझाती है कि अभी ऋतु-काल नहीं है, धर्मात्मा होकर आप नियम-भंग क्यों करते हैं। कपटी-गौतम इन्द्र अपनी पत्नी से आलाप अधर्म नहीं बताता। तब वह कहती है कि अभी दिन है, रात होने दो। वह एक नहीं सुनता, तब दोनों ने रमण किया। रति-केलि में निपुण इन्द्र के कारनामे देखकर अहल्या ने शंकित होकर उसका सत्य परिचय पूछा। अहल्या सत्य-स्थिति से परिचित होकर बहुत कुपित हुई, किन्तु अपना अधर्म देखकर डर से कांप गयी। इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर वहाँ से भागा। (पृष्ठ ६६-६८)

बँगला-रामायण—श्री रामानन्द और श्री दीनेशचन्द्र सेन द्वारा सम्पादित संस्करणों में केवल घटना की ओर संकेत हैं, किन्तु सुबोध बाबू के संस्करण में कृत्तिवास का मूल वर्णन सुरक्षित है। यहाँ उसी के आधार पर सार प्रस्तुत है। ब्रह्मा ने सहस्र सुन्दरी बना कर उनके रूप से अहल्या बनायी और उसका विवाह गौतम से कर दिया। गौतम का शिष्य इन्द्र एक दिन गौतम का वेश बनाकर प्रातःकाल अहल्या से आकर कहता है कि तुम्हारे रूप का स्मरण हो आने से तपस्या में मेरा मन नहीं लगता। काम से मेरा हृदय दग्ध हो रहा है। पतिव्रता ने पति के वचनों का उल्लंघन नहीं किया। बँगला-रामायण में अहल्या इन्द्र के कपटाचरण से तब परिचित होती है जब गौतम आकर उससे पूछते हैं कि तुम्हारे शरीर में श्रृंगार-लक्षण कैसे हैं। वह कहती है स्वयं कर्म करके मुझे दोष दे रहे हो।[1]

उड़िया-रामायण में गौतम और अहल्या के विवाह के सम्बन्ध में एक नयी कल्पना है। ब्रह्मा ने रूप की राशि अहल्या का निर्माण किया। रूप देख कर सुर-नर मुग्ध हुए। ब्रह्मा ने कहा—अपने-अपने वाहनों पर बैठकर जो पृथ्वी की तीन परिक्रमा कर सर्व-प्रथम आये उसे अहल्या मिलेगी। सभी चले गये, गौतम रह गये। ब्रह्मा ने पूछा, तुम क्यों नहीं गये? उन्होंने प्रसन्न-वदन होकर गौ की तीन बार परिक्रमा कर कहा, यही पृथ्वी है। अहल्या गौतम को मिली। इन्द्र असन्तुष्ट हुआ कि वह सुरपति होकर भी अहल्या प्राप्त न कर सका। अहल्या ने सत्यानन्द पुत्र को जन्म दिया। एक दिन इन्द्र ने आकर अहल्या से चुम्बन, आलिंगन और कुच-स्पर्श की याचना की। अहल्या ने उसे फटकारा, 'लज्जा नहीं आती, मैं ऋषिपत्नी और पतिव्रता हूँ।' निराश इन्द्र छिप गया। गौतम लौट कर आये, वे तेल लेकर स्नान करने चले गये। इन्द्र ने घात लगायी, वह गौतम का रूप-धारण कर आया। अहल्या ने आश्चर्य प्रकट किया। कपटी-गौतम इन्द्र ने कहा कि स्नानरत स्त्री को देखने से काम-

---

१. सुबोध मजुमदार द्वारा सम्पादित बँगला-रामायण, पृष्ठ ७१।

भाव जाग्रत हो गया है। उसने रमण किया। गौतम लौट आये और इन्द्र मार्जार बन कर भाग गया। (पृष्ठ ११२-६१३)

मध्ययुग में परिस्थितियों के कारण नारी-शुचिता पर अधिक जोर देने के कारण उपर्युक्त तीनों रामायणों में अहल्या को दुराचार के दोष से मुक्त करने की चेष्टा की गयी। इस काल की रामायणों में अहल्या के शाप का रूप भी बदल गया। इसका कारण भी मध्ययुगीन नारी-आदर्श ही था। मानस का रचयिता इन सभी से अधिक मर्यादावादी है, उसने दुराचार का वर्णन ही नहीं किया। गौतम की नारी 'स.प बस' हुई, किन्तु क्यों, इसका उल्लेख तुलसीदास ने नहीं किया।

शाप—यदि अहल्या की कथा रूपक नहीं है तो वाल्मीकि के वर्णन का ही ऐतिहासिक महत्त्व है। वाल्मीकि-रामायण में उसे सभी जीवों से अदृश्य रहकर एकान्त में निराहार तप करने का शाप दिया गया। राम के आने तक उसने अपने उग्र तप से पाप का प्रायश्चित्त कर लिया था। तभी उस तेजोद्दीप्त नारी के राम-लक्ष्मण ने पैर छुए थे।

स्मृतियों में भले ही नारी को ऋतुमती होने पर व्यभिचार के पाप से मुक्त हो जाने की बात लिखी हो किन्तु साधारणतः समाज नारी के पतित हो जाने पर उसे सहज स्वीकार न करता था। रामायण में ही सती सीता की दो बार परीक्षा ली गयी अतएव दो कारणों से अहल्या के शाप का रूप आगे चल कर बदल गया। नारी पवित्रता के आदर्श की रक्षा हो गयी तथा राम की चरण-धूलि का महत्त्व प्रचारित हो सका।

असमीया, बँगला, उड़िया और **हिन्दी** रामायणों में इसीलिए अहल्या को शापवश शिला होना बताया गया है। **रघुवंश, पद्मपुराण** (पातालखंड-गौड़ीया संस्करण) एवं **हनुमन्नाटक** आदि रामकथा-साहित्य में पहले से उसे शिला होना दिखाया है। अध्यात्म-रामायण में शिला होने का नहीं, 'शिलायां तिष्ठ' होने का शाप था।

असमीया-रामायण में गौतम अधिक उदार जान पड़ते हैं। अहल्या थर-थर काँपती हुई पति से याचना करती है कि वे उसे शाप से जला कर भस्म कर दें। गौतम कहते हैं कि अज्ञान दोष है इसलिए बड़ा पाप नहीं दिया जाएगा, फिर भी शिला होकर रहना होगा। राम द्वारा उद्धार हो सकेगा। इस आश्रम में कोई न रहेगा।

बँगला-रामायण में 'हउक पाषाण और सर्व्व कलेवर' कहा है।

उड़िया-रामायण में भी पाषाणी होने का शाप है। वह कहती है कि मेरा क्या दोष, तब गौतम उसे राम के चरण-स्पर्श से पवित्र होने का वर देते हैं। राम चरण-स्पर्श देकर गौतम से कहते हैं—बलात्कार और कपट से स्त्री भ्रष्ट नहीं होती। गौतम ने उसे स्वीकार कर लिया। (११५)

मानस में अहल्या उपल-देह धारण कर राम की चरण-रज चाह रही है।

अभिशप्त-इन्द्र—वाल्मीकि-रामायण में इन्द्र को शाप मिला कि उसके अंड-कोष स्खलित हो जाएँ। भाषा-रामायणकार इतने से सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने सहस्र भग होने का भी शाप दिलाया। ऋषिपत्नी के साथ दुराचार करने के लिए उन्होंने उसे दोनों शापों का दण्ड दिया। **असमीया** और **उड़िया**-रामायणों में दोनों शाप हैं, **बँगला-रामायण** में केवल सहस्रयोनि होने का। **मानस** में कथा संक्षिप्त है। तुलसी-दास प्रसंग की मर्यादाहीनता की उपेक्षा कर अहल्या द्वारा राम की स्तुति में अधिक रुचि दिखाते हैं।

शापमुक्ति की कथा भी **असमीया** और **उड़िया** रामायणों में एक समान है। अभिशप्त इन्द्र लज्जित होकर मानसरोवर में छिप जाता है। **असमीया रामायण** में शची पार्वती की पूजा कर इन्द्र को पद्म-तंतुओं में छिपा हुआ खोज लेती है। इन्द्र ने पार्वती की पूजा कर सहस्रभग से सहस्रलोचन होने का वर प्राप्त किया। वे ब्रह्मशाप से उसे सर्वथा मुक्त करने में असमर्थता प्रकट करती हैं। अश्विनी कुमार बकरे के अंडकोष लगा देते हैं। तभी से बकरा पवित्र माना जाता है, क्योंकि इन्द्र ने उसे वर दिया था। वाल्मीकि रामायण में मेष के अंडकोष लगाये जाते हैं। शाक्त-प्रभाव के कारण मेष के स्थान पर बकरा किया गया है। **उड़िया**-रामायण में इन्द्र की अनुपस्थिति से अव्यवस्था हुई और ब्रह्मा ने उसे मानसरोवर में छिपा पाया। उन्होंने ही उसे सहस्र-लोचन होने का वर और मेष के अंडकोष प्रदान किये। बँगला-रामायण में भी इन्द्र अपने सहस्रयोनि-चिह्नों से बहुत दुःखी है, वह अश्वमेध करके सहस्रलोचन बन जाता है।

जनकपुर का धनुष-यज्ञ :

धनुष का इतिहास—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार दक्ष के यज्ञ में अपना भाग न पाने से क्रुद्ध शंकर ने देवों को दंडित किया, फिर अनुरोध करने पर उसे देवताओं को दे दिया। देवताओं ने शंकर के धनुष को निमि की छठी पीढ़ी में उत्पन्न देवरात को दिया था। जनक ने इसी के द्वारा पराक्रम की परीक्षा कर सीता का स्वयंवर रचा।

वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त अन्य रामकथा-साहित्यों और लोक-कथाओं में धनुष के सम्बन्ध में कई किंवदंतियाँ जुड़ गयीं। चारों भाषा-रामायणों में इसे शंकर का धनुष स्वीकार किया गया है। बँगला और उड़िया-रामायणकारों ने कुछ विस्तृत वर्णन किया है। असमीया-रामायण और मानस में धनुष का इतिहास नहीं बताया गया। **असमीया-रामायण** में इतना वर्णन ही आया है कि शंकर ने मृग मार कर इसे जनक को दे दिया। सीता-अनुसूया-संवाद में माधव कन्दली ने भी कहा है कि महा-देव ने चाप दिया था। **मानस** में इसे कई स्थानों पर शंकर का धनुष कहा गया है। परशुराम की उक्तियों से भी स्पष्ट है कि जनक को उन्होंने ही धनुष दिया था।

पद्मपुराण के पातालखण्ड में जनक शिव से प्रार्थना कर ऐसा उपाय जानना

चाहते हैं जिससे केवल राम ही सीता के पति हो सकें। शंकर उन्हें एक धनुष देते हैं, जिसे केवल राम ही उठा सकेंगे।

बँगला-रामायण में कृत्तिवास ने दिखाया है कि देवता शंकर के यहाँ एकत्र होकर चिन्ता करते हैं कि कुछ ऐसा उपाय किया जाए कि सीता का विवाह केवल राम से हो। शंकर परशुराम को धनुष देकर कहते हैं कि इसे जनक को देकर कहो कि जो इस धनुष को भंग करे, सीता उसी को दी जाए। इस धनुष को तीनों लोकों में नारायण को छोड़कर और कोई उठा नहीं सकता। स्पष्ट है कि कृत्तिवास पर पद्मपुराण के पातालखण्ड का प्रभाव है।

उड़िया-रामायण में विस्तृत वर्णन है। आदिकाण्ड के पाँच स्थलों पर इसके इतिहास का वर्णन है। धनुभंग होने पर देवता आकाशमार्ग में एकत्र होकर उत्सव मना रहे थे। उसी समय रावण वहाँ से निकला, उसकी जिज्ञासा का समाधान करने के समय देवताओं ने धनुष का इतिहास इस प्रकार बताया—दक्ष ने मुण्डमालधारी योगी को यज्ञ में नहीं बुलाया। पार्वती अग्नि में कूद पड़ीं। शिव ने विष्णु के तेज से एक चाप बनाया, नाम रखा कोदंड। किन्तु विष्णु का तेज १२ कोटि है और रुद्र का ११ कोटि, अतएव शिव धनुष न उठा पाये। विष्णु ने उनका बल एक कोटि बढ़ा दिया, तब कहीं वे देवों का विनाश कर पाये। उन्होंने दक्ष का सिर काटकर सास को दिखाया। देवों ने लिंग-पूजा कर शिव को प्रसन्न किया। दक्ष के सिर पर बकरे का मुण्ड जोड़ा गया। शिव स्वयं कक्षा-कौपीन धारी हैं, वे धनुष लेकर क्या करते। निमि बालुका-शिव की नित्य पूजा करता था, उसे ही दे दिया। निमि से यह भी कहा कि तुम्हारे यहाँ कमला का जन्म होगा और नरहरि का दर्शन होगा। जिस समय यज्ञ के समय सीता कन्या-रूप में प्राप्त हुई, ब्रह्मा ने भी जनक से कहा कि इस कन्या के वर विष्णु होंगे। जनक ने पूछा, मैं पहचानूंगा कैसे ? उन्होंने उत्तर दिया, धनुष से। जनक स्वयं भी धनुष से प्रार्थना करते हैं कि यह कन्या नारायण को ही मिले। (पृष्ठ १४५)

उड़िया-रामायण में दो स्थलों पर लिखा है कि धनुष निमि को दिया गया किन्तु आदिकाण्ड के अन्त की ओर लिखा है कि ईश्वर ने देवरात को धनु दिया। एक और कहानी जोड़ी गयी है। इस धनुष को **सुधर्मा** नामक राजा मिथिलेश से छीनना चाहता था। भयंकर युद्ध के पश्चात् वह हार कर भाग गया। वाल्मीकि-रामायण में इसका नाम सुधन्वा है, जिसे मार कर जनक ने उसकी सांकाश्यापुरी का राज्य अपने भाई कुशध्वज को दिया। (सर्ग-७२)

परशुराम-राम भेंट के समय उड़िया-रामायण में परशुराम भी धनुष का इतिहास बताते हुए कहते हैं कि जिस धनुष को तुमने तोड़ा उसका इतिहास सुनो। पृथ्वी के प्रारम्भ में विश्वकर्मा ने दो धनुष बनाये। एक हरि को दिया, दूसरा हर को। दोनों का कहना था कि उनका धनुष बड़ा है। भयंकर युद्ध हुआ, देवताओं ने मध्यस्थता की। पार्वती के अपमान के पश्चात् हर ने अपना धनुष देवरात को दिया। विष्णु

ने अपना धनुष रुचिक मुनि को दिया। रुचिक के पुत्र जमदग्नि और उनका पुत्र मैं परशुराम हूँ।

विष्णु-शंकर का यह विवाद वाल्मीकि-रामायण के आदिकाण्ड (सर्ग ७५) में आया है।

पूर्वानुराग—सीता-राम का पूर्वानुराग ऐतिहासिक नहीं है। राम-सीता को अवतार मान लेने से उनका दाम्पत्य सम्बन्ध स्थायी हो गया। अतएव शृंगार-विषयक चारुता लाने के लिए पूर्वानुराग का वर्णन होने लगा। **प्रसन्न-राघव** नाटक और **हनुमन्नाटक** में पूर्वनुराग का वर्णन है। मानस पर प्रसन्न-राघव का प्रभाव है।

असमीया-रामायण में राम के रूप में सीता का मन निमज्जित हो गया। वे मोहित हो गयीं और उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि ये ही मेरे पति होंगे।[1]

बँगला-रामायण में प्रथम दर्शन स्वयंवर-सभा में ही होता है, है, जबकि राम प्रवेश करते हैं और सीता अट्टालिका पर खड़ी होकर सखियों से राम-लक्ष्मण का परिचय ज्ञात कर राम पर मुग्ध हो जाती हैं। फिर पिता की प्रतिज्ञा से दुःखी होकर वे देवी-देवताओं की स्तुति करती हैं। इस रामायण पर **हनुमन्नाटक** का प्रभाव है—

कमठ कठोर धनु, श्री राम कोमल तनु
केमने तुलिबे शरासन।
(कतशत वीर-गणे, ना पारिसे उत्तोलने)
पितार दारुण एइ पण ॥ पृष्ठ ७९
कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्त्तिरसौ रघुनन्दनः।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणास्तवदारुणः ॥ हनु० १-९

उड़िया-रामायण में स्पष्ट पूर्वराग नहीं है, किन्तु वैसी कुछ-कुछ स्थिति है। जनकपुरी में राम के प्रवेश करने पर स्त्रियाँ मुग्ध होकर अस्तव्यस्त शृंगार कर उन्हें देखने के लिए दौड़ पड़ती हैं। सीता के मन में शृंगार-विषयक भाव नहीं जागते। वे चिंतित अवश्य हैं कि पिता ने ऐसा कठोर प्रण क्यों किया। वे अविवाहित रह गयीं। उनकी सखी मनमाया समझाती है कि तेरे पति विष्णु हैं और वे राम के रूप में विश्वामित्र के साथ आये हैं। सीता को शंका है कि बालक कुमार कैसे धनुष उठा सकेंगे, किन्तु सखी के समझाने पर वे संतुष्ट हो जाती हैं। राम जब धनुष उठाने खड़े होते हैं, उस समय वे ब्रह्मा से निवेदन करती हैं, युवातन मदनताप से जल रहा है, निराश न करना, नहीं तो तुम्हें स्त्री-हत्या का पाप लगेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि सीता वर चाहती हैं, राम के प्रति उनके मन में प्रीति-भाव का उदय नहीं है। (पृष्ठ १५१)

प्रसन्न-राघव नाटक में राम-सीता का दर्शन पुष्प-वाटिका में स्थित चंडिका-

---

१. रामर रूपत निमजिल मन, भै गैल देवी मोहित—छन्द ११७५।
एहेन्तेसे मोर, हैवे निजपति, करिलो मने निश्चय—छन्द ११७६।

यतन में होता है। मानस में भी ऐसा ही है। असमीया और बँगला रामायणों की भाँति मानस में सीता राम को देखकर एकदम मुग्ध नहीं हो जातीं। मानस में राम के चरित्र का प्रकर्ष पहले से ही कर दिया गया है। सीता और जनकपुर-वासी राम को बिना देखे ही उनके पराक्रम की चर्चा सुन चुके हैं। पुष्पवाटिका में उन्हें साक्षात् कामदेव का अवतार देखकर सीता उन पर मुग्ध हुई। इस प्रेम की पीठिका पहले ही तैयार हो चुकी थी। तुलसी पूर्वानुराग दिखाते गये किन्तु मर्यादा का ध्यान उन्हें भूलता नहीं, इसलिए साथ में यह भी कह देते हैं—

'प्रीति पुरातन लखइ न कोई' १-२२८-८

प्रसन्न-राघव के अनुसार **मानस** में उभयपक्षीय प्रेम का चित्रण हुआ है। असमीया और बँगला-रामायणों में केवल सीता के प्रेम का चित्रण है। उड़िया में भी सीता की ऊहापोह का ही वर्णन है। तुलसीदास ने मानस में राम-सीता के पूर्वानुराग का विभावादि सहित वर्णन जिस पवित्रता के साथ किया है, वैसा संसार का कोई भी कवि संभवतः नहीं कर सका है।

बँगला-रामायण और **मानस** में राम की प्राप्ति के लिए सीता क्रमशः कात्यायनी एवं पार्वती की स्तुति करती है। उनकी विनय स्वीकृत होती है।

मानस में भी धनुष यों ही नहीं तोड़ दिया जाता। पहले सभी राजा अपना-अपना बल आजमा लेते हैं। सभी की असफलता पर विदेह तक विचलित हो जाते हैं। जिसके कारण लक्ष्मण को दर्पोक्ति करनी पड़ती है, अन्त में उठ कर राम धनुष तोड़ते हैं।

स्वयम्वर, विवाह :

स्वयम्वर का अवसर एवं पराजित राजाओं से युद्ध—वाल्मीकि-रामायण में स्पष्ट है कि राम के जनकपुर पहुँचने के पहले ही स्वयम्वर हो चुका था, जिसमें पराजित राजाओं ने घेर कर सीता को छीनना चाहा। युद्ध में ये राजा पराजित हुए।[1] सीता की उक्ति से भी ज्ञात होता है कि स्वयम्वर के सुदीर्घकाल पश्चात् राम विश्वामित्र के साथ यज्ञ देखने गये।[2] किन्तु राम के धनुभंग के समय पर्याप्त जन-समूह एकत्र था।[3]

स्वयम्वर न सही, यज्ञ तो हो रहा था, जिसे देखने के लिए रामादि जनकपुर

---

१. वाल्मीकि-रामयाण—१-६६-२०-२४।
२. वही, २-११८-४४।
३. जनक के दूतों ने राजा दशरथ को सूचना दी—
तच्च राजन्धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना ॥ १०॥
रामेण हि महाराज महत्यां जनसंसदि ॥ ११,सर्ग ६८, वाल्मीकि-रामायण।

पहुँचे। सभी राजा उपस्थित हों, पराजित हों तभी तो राम का महत्त्व बढ़ता। अत-एव वाल्मीकि-रामायण के पश्चात् नाटकादि में स्वयम्वर और यज्ञ राम के सामने दिखाये गये और पराजित राजाओं का सम्बन्ध राम से जोड़ा गया। कथा में इस प्रकार के नाटकीय-चमत्कार को प्रस्तुत करने में प्रसन्न-राघव नाटक का प्रभाव भी जान पड़ता है। मानसकार अवश्य ही इस नाटक से प्रभावित है।

सभी पूर्वांचलीय भाषा-रामायणों में स्वयम्वर पहले ही हो चुका है, किन्तु राम के आगमन पर भी स्वयम्वर जैसी ही स्थिति दिखायी पड़ती है।

असमीया-रामायण में विश्वामित्र राम को बताते हैं कि स्वयम्वर हो चुका है, जिसमें अनेक राजा आये थे। राजाओं के मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण है। वे सीता के लोभ में अपनी-अपनी पत्नियाँ छोड़ कर आये थे। अब कठोर धनुष को देखते हैं और तिरछी आँखों से सीता को देखकर साँसें भरते हैं। कहते हैं कि लौटने पर हमारी स्त्रियां हँसेंगी कि चढ़ा आये धनुष! इस रामायण में राम के धनुभंग के पश्चात् राजा एकत्र होकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए। लक्ष्मण ने सबको घायल किया। राम विश्वामित्र को सीता सौंपकर युद्ध में रत हुए। राम चक्राकार धनुष घुमाकर राजाओं को मारने लगे। जनक ने अपने पुत्र अजयकुमार को रथ-सहित सहायतार्थ भेजा। सभी पराजित राजा भाग गये।

बंगला-रामायण में ऐसा प्रतीत होता है कि जनक का प्रण सुन-सुन कर राजा आते रहते थे और असफल होकर बच्चों की टिटकारी सुनकर लौट जाते थे।

उड़िया-रामायण से ऐसा प्रकट होता है कि स्वयम्वर पहले भी हुआ और राम के समय भी। राम के आगमन के पूर्व अनेक राजा आकर असफल होकर लौट गये। जब राम आये, उस समय यज्ञ में अनेक राजा निमंत्रित हुए थे। सभी की तैयारी भी जोरदार हुई। राम के प्रवेश करने पर सभी दंग हुए। राजाओं का साहस ही नहीं हुआ था कि धनुष छुएँ।

मानस में स्वयम्वर के समय ही राम-लक्ष्मण का आगमन होता है। सभी पर राम का प्रभाव छा जाता है और जिस समय सभी राजा परास्त हो जाते हैं तथा जनक अत्यधिक क्षुब्ध होकर कह उठते हैं—'बीर बिहीन मही मैं जानी', उसी समय राम का उठकर धनुपभंग करना, उनके चरित्र का प्रकर्ष करता है। मानस में भी राजा विद्रोह करते हैं किन्तु युद्ध की नौबत नहीं आ पाती। इसी समय क्षत्रिय-विरोधी **परशुराम** उपस्थित होकर उन्हें डरा देते हैं। इस प्रकार के नाटकीय चमत्कार प्ररतुत करने में उन्होंने संस्कृत-नाटकों से सहायता लेकर भी उनसे अधिक सफलता पायी है।

रावण और बाण की उपस्थिति :

प्रसन्न-राघव नाटक में बाण और रावण दोनों धनुष उठाने आते हैं और दोनों असफल होकर लौटते हैं। असमीया को छोड़ शेष रामायणों में बाण

और रावण आते हैं। **बँगला-रामायण** में केवल रावण है। **उड़िया-रामायण** में वाण और रावण ने धनुष उठाया धनुष नहीं उठा, उनकी नाक से खून निकलने लगा। धनुष-भंग होने के पश्चात् रावण फिर आता है, वह राम का प्रताप देखकर भाग जाता है और देवता हँस पड़ते हैं। उड़िया-रामायण में वालि, सहस्रार्जुन, गणपति, कार्त्तिकेय, मुचुकुंद, सुधर्मा आदि किसी-न-किसी रूप में धनुष के आगे तेजोहत हुए हैं। **बँगला-रामायण** में राम के आगमन के पूर्व ही रावण आता है और धनुष उठाने में असफल होकर वहाँ से खिसक जाता है। मिथिला के बच्चे उसके पीछे टिटकारी देते हैं। **मानस** में दोनों आते हैं किन्तु धनुष को केवल देखकर चुपके चलते बनते हैं।

तुलसी ने सारी स्वयंवर-सभा का आयोजन ही राम-चरित्र के उत्थान के लिए किया है। वे प्रारंभ से ही धीरे-धीरे सभी पर अपना सिक्का बैठाते चले आते हैं। राम के इस प्रकर्ष-क्रम में रावण का विस्तृत-वर्णन कथा के मध्य कुछ अवधान ही उपस्थित करता, अत: उसका साधारण रूप से उल्लेख कर तुलसी आगे बढ़ गये। साथ ही प्रति-नायक द्वारा धनुष उठाने का प्रयास भी न दिखाकर उसके चरित्र को पहले से ही नहीं गिरा दिया है।

रावण की प्रतिक्रिया (उड़िया-रामायण में)—रावण लंका में जाकर सभा जोड़ता है और १२-वर्षीय राम के पराक्रम का वर्णन करता है। विभीषण राम को विष्णु बताता है तो रावण अट्टहास कर कहता है, मनुष्य मेरा क्या कर लेगा। यदि वह सच ही नारायण है तो उसके हाथ से मरकर स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

लक्ष्मण अथवा सीता की चेतावनी—हनुमन्नाटक में एक नवीन प्रसंग है। राम के धनुष तोड़ने के पूर्व लक्ष्मण पृथ्वी, शेषनाग, कूर्म और दिक्कुञ्जरों को सावधान करते हैं। हमारी तीन रामायणों में यह प्रसंग आया है, बँगला में नहीं है। केवल **असमीया-रामायण** में लक्ष्मण के स्थान पर सीता चेतावनी देती है—छं० १२११ देखिए उड़िया-रामायण १-१५३।

मानस में लक्ष्मण ब्रह्माण्ड को चरणों से चाप कर बोले—

> **दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला।**
> **धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥** १-२५९-१

धनुभंग के समय पृथ्वी और धनुष की प्रार्थना—**उड़िया-रामायण** में एक नवीन प्रसंग है। धनुष को उठा लेने पर धरती राम से प्रार्थना करती है कि हल मेरे ऊपर न रखना, धनुष मुझसे भारी है। राम ने दया कर वामपद की कनिष्ठ उंगली पर धनुष रखकर दाहिने में डोर ली। जब राम ने धनुष की डोर कान तक खींची तो वह बोला, मुझ पर दया करो। राम बोले, तुझसे बहुत पाप हुए हैं, तू पुरातन है। मैं तेरे सभी पाप दग्ध कर दूँगा। (पृष्ठ १५३)

धनुभंग—राम ने धनुष पर रोदा चढ़ाकर खींचा, वह टूट गया—ऐसी कथ वाल्मीकि-रामायण के अनुसार सभी रामायणों में है। असमीया-रामायण में

राम कटि में वस्त्र बाँधकर हँसकर उठाते हैं, टंकार के साथ धनुष टूट जाता है। बँगला-रामायण में राम विश्वामित्र की आज्ञा से धनुगृह में जाकर उसे तोड़ देते हैं।

उड़िया रामायण और मानस में वर्णन अधिक सुन्दर और नाटकीय हैं।

उड़िया-रामायण के अनुसार मंजूषा में रखा धनुष मँगाया गया। खूब शोर और जयध्वनि हुई। सीता बहुत चिंतित हुई। धनुष उठाने की घोषणा हुई, मंजूषा खोल दी गयी। राजा साहस खो बैठे। विश्वामित्र ने कहा धनुष उठाकर कन्या प्राप्त करो। राम लजाते हुए उठे। गुरु को प्रणाम कर भाई की भुजा पकड़कर चले। राम को देख दर्शक आपस में भाँति-भाँति की बातें करते हैं। कोई कहता कि छोटे हैं तो अन्य कहता है कि छोटे हैं तो क्या, छोटे होते हुए भी ध्रुव-प्रह्लाद आदि ने कैसे-कैसे काम किये। राम को देख सभी मुग्ध हैं। सीता ब्रह्मा को मना रही हैं। स्त्रियाँ हुलहुलि-ध्वनि कर रही हैं। राम बायें हाथ से धनुष उठाकर रोदा चढ़ाते और खींचकर तोड़ देते हैं।

विवाह-संस्कार—धनुभंग के अनुसार दशरथ बुलाये गये। बुलाने वाले प्रत्येक रामायण में अलग-अलग हैं। असमीया और उड़िया रामायण में शतानन्द (उड़िया में इन्हें सत्यानन्द लिखा है) भेजे गये। बँगला-रायायण में स्वयं विश्वामित्र घटक बनकर गये। मानस और वाल्मीकि में दूत भेजे गये।

उड़िया-रामायण में सत्यानन्द का प्रासाद में प्रवेश सुन्दरता के साथ वर्णित है। इस रामायण के अनुसार दशरथ ससैन्य चल पड़े। सेना के प्रस्थान का सुन्दर वर्णन बाणभट्ट के हर्ष-चरित की याद दिला देता है।

राम के अन्य भाइयों के भी विवाह का वर्णन है।

विवाह-संस्कार का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन अन्य अध्याय के अन्तर्गत हो चुका है।

उड़िया-रामायण के तीन नूतन-प्रसंग :

(१) **राम और मंथरा विवाह**—**उड़िया-रामायण में** एक नूतन प्रसंग है। मंथरा की कुटिलता के कारण ही अनर्थ घटित हुआ था। उसकी कुटिलता के कारण स्वरूप ही संभवतः यह प्रसंग गढ़ा गया है। **उड़िया-रामायण** के अनुसार मंथरा भी मिथिला गयी थी। वर-कन्या को देख आनन्दित होकर मंथरा परिहास-गीत गाती है। राम क्रुद्ध होकर उसे पीटते है। वह चकित होकर रक्त-नेत्रों से देखती है। राम कहते हैं, गुरुजनों के मध्य असत्-भाषा बोलती है। वे फिर मारने के लिए उठते हैं, माताएँ रोक देती हैं। (पृ० २०८)

(२) **जनकपुर की युवतियाँ**—विदा के समय जनकपुरी की स्त्रियाँ काम-विवश दिखायी गयी हैं। युवतियाँ साथ चलने का हठ करती हैं, राम डाँटते हैं। (पृ० २०)

(३) **उड़िया का नर-नारायण प्रसंग** - नर और नारायण ऋषि का उल्लेख हुआ है। नर धनुष न उठा पाया तब नारायण ने शक्ति दी, दोबारा भी न उठा पाया। उसकी नाक से रक्त बहने लगा, वह मूर्च्छित हो गया। नारायण ने सभी को लांछित किया। नारायण ने शाप दिया कि नर के रूप में जन्म लेकर मृत्यु-लोक में कष्ट उठाएगा और तब यह धनुष उठा सकेगा और हँसने वाले राजाओं का संहार करेगा। नर ने कहा, तुम भी मृत्यु-लोक में जन्म लोगे। ये दोनों ही द्वापर में अर्जुन और कृष्ण हुए। (पृ० १६७)

महाभारत के नर-नारायण अर्जुन और कृष्ण भी हैं। धनुष के माध्यम से उनकी कथा भी यहाँ जोड़ दी गयी है।

परशुराम-दर्प-चूर्ण :

वाल्मीकि-रामायण में बरात के लौटते समय परशुराम की राम से भेंट होती है और प्रसन्न-राघव नाटक में स्वयंवर सभा में ही। यहाँ पूर्वांचलीय रामायणें वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करती हैं और मानस प्रसन्न-राघव नाटक से प्रेरणा लेता है।

वैसे क्रुद्ध परशुराम का आगमन, वार्त्तालाप, राम की परीक्षा के लिए धनुष देना, राम का धनुष चढ़ाकर ब्रह्मत्व प्रकट करना तथा परशुराम को दंडित करना, सभी रामायणों में समान है, किन्तु वर्णन का ढंग अलग-अलग एवं विशेषता लिए हुए है। पूर्वांचलीय-रामायणों के राम मानस के राम के समान विनय-पूर्ण आचरण कम करते हैं।

असमीया-रामायण में परशुराम के आगमन के पूर्व भयपूर्ण वातावरण की सृष्टि की गयी। रक्त-दृष्टि एवं अशकुन देखकर दशरथ चिंतित हुए। क्रोध की मूर्ति परशुराम ने आकर पूछा, मेरे गुरु का धनुष किसने तोड़ा ? वे पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन करने का उल्लेख करते है। कहते हैं, 'राम-नाम पवित्र है, तुमने यह नाम धारण किया है, आज परीक्षा लूँगा।' राम हँसकर कहते हैं, 'दंडनीय तो तुम हो जो ब्राह्मण के शम, दम, दान, दया, क्षमा आदि गुणों को त्यागकर क्रोध और अहंकार प्रकट कर रहे हो जो कि क्षत्रिय के गुण हैं। बूढ़ा जानकर छोड़ रहा हूँ।' परशुराम से धनुष लेकर राम चढ़ाते हैं और बीच से तोड़ देते हैं। वे हँसकर कहते हैं, 'बस इसी का महत्त्व बखान रहे थे। 'वे अपने धनुष की डोर चढ़ाकर कहते हैं कि हार मानो नहीं तो भस्म कर दिया जाएगा। परशुराम को भीत देखकर उन्होंने, दयापूर्वक कहा 'मारूँगा नहीं, किन्तु मेरा बाण अमोघ है। कौन सा द्वार रुद्ध करूँ ?' परशुराम राम को पहचान कर बोले, 'मेरा स्वर्ग-द्वार रुद्ध कर दो। 'राम ने पूर्व दिशा की ओर देखकर बाण मारा, फिर हाथ जोड़कर कहा, 'मैं क्षत्रिय हूँ, आप ब्राह्मण हे। मैंने दु:ख दिया इसके लिए क्षमा करो।' प्रसन्न परशुराम स्तुति करते हुए चले गये। (पृ० ८५-८७)

बँगला-रामायण में लौटती वरात का वाजा सुनकर परशुराम हाथ में कुठार लिए ललकारते हुए दौड़ पड़ते हैं। भयभीत दशरथ ने पुत्रों-सहित उन्हें प्रणाम किया। परशुराम क्रुद्ध होकर वोले, तुमने पुत्र का नाम मेरे समान रखा है, राम उन्हें तपस्वी ब्राह्मण कहकर क्षमा माँगते हैं। परशुराम लाल आँखें दिखाकर वोले, 'तपस्वी ब्राह्मण मानकर मुझे तुच्छ समझते हो, मैंने २१ वार पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन किया है।' लक्ष्मण तड़प उठे, 'वातों से क्या है, वीरों का आचरण करो। तुमने क्षत्रियों का विनाश तव किया था, जव राम-लक्ष्मण का जन्म नहीं हुआ था।' तव कुपित परशुराम ने राम को धनुष देकर चढ़ाने के लिए कहा। राम ने एक वाण भी माँग लिया। टंकार करते ही गगन गूँज उठा। वासुकि वोझ से दवने लगा। राम ने वाण चढ़ाकर परशुराम का तेज हर लिया और उनका स्वर्गपथ अवरुद्ध कर दिया। (पृ० ८८-८९)

उड़िया-रामायण में दशरथ वरात-सहित सिद्धाश्रम से लौटे रहे है, उस समय अशकुन हुए। वीरतूर्य-ध्वनि सुनकर परशुराम क्रुद्ध होकर चल पड़े। परशुराम के योगी-वेश पर सामयिक साधना का प्रभाव है, क्रुद्ध परशुराम को देखकर वसिष्ठ आदि आसन छोड़कर आये। दशरथ थर-थर कांपते हैं और वार-वार प्रणाम करते है। परशुराम वोले, 'राजाओं में वड़े हो, वीरतूर्य वजाकर आये हो। तुम्हारा वह पुत्र कहाँ है जिसने सदाशिव का धनुप तोड़ दिया।' दशरथ ने वताया कि राम वंधु के साथ पीछे है। वस वे पीछे की ओर दौड़ पड़े। सेना भागने लगी। दशरथ वहुत मनाते हैं, वे नहीं सुनते। राम सुखासन से उतर आये। परशुराम उन्हें हर और हरि के धनुपों का इतिहास सुनाकर कहते हैं, 'मैंने अपने इस धनुप से सहस्रार्जुन को मार कर २१ वार क्षत्रियों के रक्त से तर्पण किया है। दशरथ सूर्यवंशी अपुत्रक थे, इसलिए इन्हें छोड़ दिया। तुम वीरतूर्य वजाकर यहाँ आये और तुमने शिवधनु तोड़ा, इसलिए तुम्हारी परीक्षा लूँगा। इस धनुष पर गुण चढ़ाओ और युद्ध करो, मैं तुम्हारा सिर काटूँगा।' राम वोले, 'तुम मेरा सिर काटने को तैयार हो, किन्तु हम गुरु-ब्राह्मण पर रोष नहीं करते। तुम ब्राह्मण होकर क्षत्रिय वनते हो। चरणों पर पड़े मेरे वृद्ध पिता का अपमान करते हो। ब्रह्मा के समान वसिष्ठ और विश्वामित्र का निरादर करते हो। राम ने दाहिने हाथ से धनुष लेकर उसे वायी जाँघ पर रख कर चढ़ाया, फिर कान तक खींचकर कहा, 'क्या मेटूँ, यह लोक या परलोक ? परशुराम वोले, 'वहुत पाप किये हैं परलोक मेटो, जिससे यमालय न जाना पड़े।' परशुराम राम की विनय भी करते है। (पृ० २१०-१६) इस प्रकार उड़िया-रामायण में राम का दण्ड परशुराम के लिए वर वन गया।

मानस के लेखक ने परशुराम की अवतारणा धनुभंग के पश्चात् विवाह के पूर्व कर कलात्मकता का परिचय दिया है। राम ने धनुप तोड़ा, दुष्ट-राजा सामूहिक युद्ध की तैयारी में तत्पर हुए, लक्ष्मण क्रुद्ध है, सीता वहाँ से तुरन्त रनिवास में भेज

(३) **उड़िया का नर-नारायण प्रसंग** - नर और नारायण ऋषि का उल्लेख हुआ है। नर धनुष न उठा पाया तब नारायण ने शक्ति दी, दोबारा भी न उठा पाया। उसकी नाक से रक्त बहने लगा, वह मूच्छित हो गया। नारायण ने सभी को लांछित किया। नारायण ने शाप दिया कि नर के रूप में जन्म लेकर मृत्यु-लोक में कष्ट उठाएगा और तब यह धनुष उठा सकेगा और हँसने वाले राजाओं का संहार करेगा। नर ने कहा, तुम भी मृत्यु-लोक में जन्म लोगे। ये दोनों ही द्वापर में अर्जुन और कृष्ण हुए। (पृ० १६७)

महाभारत के नर-नारायण अर्जुन और कृष्ण भी हैं। धनुष के माध्यम से उनकी कथा भी यहाँ जोड़ दी गयी है।

परशुराम-दर्प-चूर्ण :

वाल्मीकि-रामायण में बरात के लौटते समय परशुराम की राम से भेंट होती है और प्रसन्न-राघव नाटक में स्वयंवर सभा में ही। यहाँ पूर्वांचलीय रामायणें वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करती हैं और मानस प्रसन्न-राघव नाटक से प्रेरणा लेता है।

वैसे क्रुद्ध परशुराम का आगमन, वार्त्तालाप, राम की परीक्षा के लिए धनुष देना, राम का धनुष चढ़ाकर ब्रह्मत्व प्रकट करना तथा परशुराम को दंडित करना, सभी रामायणों में समान है, किन्तु वर्णन का ढंग अलग-अलग एवं विशेषता लिए हुए है। पूर्वांचलीय-रामायणों के राम मानस के राम के समान विनय-पूर्ण आचरण कम करते हैं।

असमीया-रामायण में परशुराम के आगमन के पूर्व भयपूर्ण वातावरण की सृष्टि की गयी। रक्त-दृष्टि एवं अशकुन देखकर दशरथ चिंतित हुए। क्रोध की मूर्ति परशुराम ने आकर पूछा, मेरे गुरु का धनुष किसने तोड़ा ? वे पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन करने का उल्लेख करते है। कहते हैं, 'राम-नाम पवित्र है, तुमने यह नाम धारण किया है, आज परीक्षा लूँगा।' राम हँसकर कहते हैं, 'दंडनीय तो तुम हो जो ब्राह्मण के शम, दम, दान, दया, क्षमा आदि गुणों को त्यागकर क्रोध और अहंकार प्रकट कर रहे हो जो कि क्षत्रिय के गुण है। बूढ़ा जानकर छोड़ रहा हूँ।' परशुराम से धनुष लेकर राम चढ़ाते हैं और बीच से तोड़ देते हैं। वे हँसकर कहते हैं, 'बस इसी का महत्त्व बखान रहे थे। 'वे अपने धनुष की डोर चढ़ाकर कहते हैं कि हार मानो नहीं तो भस्म कर दिया जाएगा। परशुराम को भीत देखकर उन्होंने, दयापूर्वक कहा 'मारूँगा नहीं, किन्तु मेरा बाण अमोघ है। कौन सा द्वार रुद्ध करूँ ?' परशुराम राम को पहचान कर बोले, 'मेरा स्वर्ग-द्वार रुद्ध कर दो। 'राम ने पूर्व दिशा की ओर देखकर बाण मारा, फिर हाथ जोड़कर कहा, 'मैं क्षत्रिय हूँ, आप ब्राह्मण हे। मैंने दुःख दिया इसके लिए क्षमा करो।' प्रसन्न परशुराम स्तुति करते हुए चले गये। (पृ० ८५-८७)

बँगला-रामायण में लौटती वरात का वाजा सुनकर परशुराम हाथ में कुठार लिए ललकारते हुए दौड़ पड़ते हैं। भयभीत दशरथ ने पुत्रों-सहित उन्हें प्रणाम किया। परशुराम क्रुद्ध होकर वोले, तुमने पुत्र का नाम मेरे समान रखा है, राम उन्हें तपस्वी ब्राह्मण कहकर क्षमा माँगते हैं। परशुराम लाल आँखें दिखाकर वोले, 'तपस्वी ब्राह्मण मानकर मुझे तुच्छ समझते हो, मैंने २१ वार पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन किया है।' लक्ष्मण तड़प उठे, 'वातों से क्या है, वीरों का आचरण करो। तुमने क्षत्रियों का विनाश तव किया था, जव राम-लक्ष्मण का जन्म नहीं हुआ था।' तव कुपित परशुराम ने राम को धनुष देकर चढ़ाने के लिए कहा। राम ने एक वाण भी माँग लिया। टंकार करते ही गगन गूँज उठा। वासुकि वोझ से दवने लगा। राम ने वाण चढ़ाकर परशुराम का तेज हर लिया और उनका स्वर्गपथ अवरुद्ध कर दिया। (पृ० ८८-८६)

उड़िया-रामायण में दशरथ वरात-सहित सिद्धाश्रम से लौटे रहे हैं, उस समय अशकुन हुए। वीरतूर्य-ध्वनि सुनकर परशुराम क्रुद्ध होकर चल पड़े। परशुराम के योगी-वेश पर सामयिक साधना का प्रभाव है, क्रुद्ध परशुराम को देखकर वसिष्ठ आदि आसन छोड़कर आये। दशरथ थर-थर कांपते हैं और वार-वार प्रणाम करते हैं। परशुराम वोले, 'राजाओं में वड़े हो, वीरतूर्य वजाकर आये हो। तुम्हारा वह पुत्र कहाँ है जिसने सदाशिव का धनुप तोड़ दिया।' दशरथ ने वताया कि राम वंधु के साथ पीछे हैं। वस वे पीछे की ओर दौड़ पड़े। सेना भागने लगी। दशरथ वहुत मनाते हैं, वे नहीं सुनते। राम सुखासन से उतर आये। परशुराम उन्हें हर और हरि के धनुपों का इतिहास सुनाकर कहते हैं, 'मैंने अपने इस धनुप से सहस्रार्जुन को मार कर २१ वार क्षत्रियों के रक्त से तर्पण किया है। दशरथ सूर्यवंशी अपुत्रक थे, इसलिए इन्हें छोड़ दिया। तुम वीरतूर्य वजाकर यहाँ आये और तुमने शिवधनु तोड़ा, इसलिए तुम्हारी परीक्षा लूँगा। इस धनुष पर गुण चढ़ाओ और युद्ध करो, मैं तुम्हारा सिर काटूँगा।' राम वोले, 'तुम मेरा सिर काटने को तैयार हो, किन्तु हम गुरु-ब्राह्मण पर रोष नहीं करते। तुम ब्राह्मण होकर क्षत्रिय वनते हो। चरणों पर पड़े मेरे वृद्ध पिता का अपमान करते हो। ब्रह्मा के समान वसिष्ठ और विश्वामित्र का निरादर करते हो। राम ने दाहिने हाथ से धनुप लेकर उसे वायीं जाँघ पर रख कर चढ़ाया, फिर कान तक खींचकर कहा, 'क्या मेटूँ, यह लोक या परलोक ? परशु-राम वोले, 'वहुत पाप किये हैं परलोक मेटो, जिससे यमालय न जाना पड़े।' परशु-राम राम की विनय भी करते हैं। (पृ० २१०-१६) इस प्रकार उड़िया-रामायण में राम का दण्ड परशुराम के लिए वर वन गया।

मानस के लेखक ने परशुराम की अवतारणा धनुभंग के पश्चात् विवाह के पूर्व कर कलात्मकता का परिचय दिया है। राम ने धनुष तोड़ा, दुष्ट-राजा सामूहिक युद्ध की तैयारी में तत्पर हुए, लक्ष्मण क्रुद्ध हैं, सीता वहाँ से तुरन्त रनिवास में भेज

दी गयीं, इसी समय रौद्र की साकार-मूर्ति भृगुपति ने अकस्मात् प्रवेश किया और युद्ध के लिए सन्नद्ध राजा लोग लवा-पक्षी के समान डर कर छिप गये।

मानस में संवाद का प्रसंग बहुत लंबा है। मानस के लक्ष्मण की व्यंग्योक्तियाँ काव्य की दृष्टि से सुन्दर हैं, किन्तु वे लक्ष्मण के चांचल्य को ही अधिक प्रकट करती हैं, वैसे अस्वाभाविक नहीं हैं। इस प्रकार की उक्तियाँ मानस के अन्य किसी स्थल पर नहीं हैं, यहाँ ही हैं। इस समय लक्ष्मण बालक थे, अतएव बाल-चपलता का रहना स्वाभाविक है।

अन्य प्रसंग :

(१) **सीता की ईर्ष्या**—परशुराम के दिये हुए धनुष को चढ़ाते समय हनुमन्नाटक[1] की सीता के मन में सौतिया-डाह उत्पन्न था। इसी से प्रेरित होकर **बँगला** और उड़िया-रामायणों में भी वर्णन आये हैं। उन्हें चिन्ता हुई कि एक बार धनुष चढ़ाने से मुझसे विवाह हुआ, अब इस मुनि के धनुष को चढ़ाने से क्या और कोई सौत आएगी।

बँगला— आर बार धनुक आनिल भृगु मुनि।
ना जानि हइबे मोर कतेक सतिनी॥ पृष्ठ ८९

उड़िया— सीतादेवी चिचारन्ति सुखासने वसि।
पुणि सपतणी मोते हेउ अछि असि॥ पृष्ठ २१५

(२) **भरत का ननिहाल जाना**—वाल्मीकि-रामायण में युधाजित जनकपुर पहुंचते हैं, फिर अयोध्या लौट कर वहीं से भरत-शत्रुघ्न को अपने साथ ले जाते हैं। **असमीया** में दशरथ ही दुःस्वप्नों एवं अंधमुनि के शाप की स्मृति से चिंतित होकर भरत-शत्रुघ्न को ननिहाल भेज देते हैं, ताकि उनकी अनुपस्थिति में राम का अभिषेक कर सकें।

उड़िया-रामायण के अनुसार भरत के मामा भरत को लेने अयोध्या पहुँचे, वहाँ न पाकर जनकपुरी आये। विवाह में भाग लेकर अयोध्या होते हुए उन्हें अपने साथ लेते गये।

बँगला-रामायण एवं मानस में अलग से भरत के ननिहाल-प्रवास का वर्णन नहीं आया है।

(३) **उड़िया-रामायण में मधुशय्या के दिन राम-सीता की प्रतिज्ञाएँ**—जनकपुरी में ही दोनों की मधुशय्या हुई। राम के स्नेह व्यक्त करने पर सीता बोलीं, 'जब तक यौवन है तभी तक प्रेम है, फिर नयी कन्या ले आओगे। मैं ज्येष्ठ पत्नी होकर सौभाग्य-वंचित हो जाऊँगी। यौवन तो कभी न कभी टूट ही जाता है। नाथ, मुझे

---

१. हनुमन्नाटक—तच्चापमाकर्षतिताटकारा वाकर्णमाकर्ण विशालनेत्रा।
सासूयमैक्षिष्ट विदेहजासौ कन्यां किमन्यां परिणेष्यतीति॥१-४९॥

सुखी रखना, मैं तुम्हारी जन्म-जन्म की दासी हूँ।' राम ने आश्वासन दिया मैं तुझे छोड़ किसी से रमण नहीं करूँगा। अन्य स्त्री मेरे लिए सहोदरा के समान होगी। पत्नी-भ्रष्ट होने पर मैं तेरी स्वर्ण-प्रतिमा गढ़ाऊँगा, अन्य स्त्री से प्रीति नहीं करूँगा। राम ने कुलदीप, वैश्वानर एवं दिग्पाल को साक्षी कर शपथ ली।

राम ने भी कहा—तुम स्त्रियों का चित्त चंचल और अस्थिर होता है, तथा उनकी मन-प्रकृति में अन्तर होता है। विद्या, धन और कुल से सम्पन्न युवा, वीर, धर्मात्मा स्वामी भी क्या स्त्री के शृंगार की तुष्टि कर पाता है? अपनी स्त्री को प्राण के समान मानने वाले भर्त्ता को भी, युवती छोड़कर 'विटप' (विट-लम्पट) पुरुष से प्रीति करती है।' सीता ने कहा—सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं। यदि कोई मुझे हर लेगा तो भोजन, वेशभूषा छोड़ दूँगी। मैं भी **कुलदीप** छूकर शपथ लेती हूं। (पृष्ठ २०४)

सबसे अधिक नूतन आख्यान उड़िया-रामायण में हैं। इस अध्याय में ऐसे आख्यानों का अध्ययन प्रसंग के अनुसार किया गया है। आगे के काण्डों में अध्ययन से बचे हुए आख्यानों का पृथक् वर्णन अन्त में कर दिया जाएगा।

अयोध्याकाण्ड

रामकथा का वास्तविक विकास अयोध्याकाण्ड से ही होता है। एक के पश्चात् एक मार्मिक प्रसंगों की अवतरणा होती जाती है। सभी लेखकों ने वाल्मीकि के निम्न प्रसंगों का अनुसरण किया है। फलतः सभी रामायणों के प्रसंगों में एकरूपता है। अन्तर है केवल अभिव्यक्ति की शैली और सामर्थ्य में।

वाल्मीकि-रामायण का आदिकाण्ड अनेक प्रक्षेपों एवं अवान्तर-कथाओं से युक्त है। भाषा-रामायणों के आदिकाण्डों में भी इसी कारण कथा की विशृंखलता और साथ ही पौराणिकता है। अयोध्याकाण्ड में यह बात नहीं है।

सभी रामायणों का प्रारम्भ राम के अभिषेक की तैयारी से होता है केवल उड़िया-रामायण के आरम्भ में समस्त कांड के पांचवें भाग को घेरकर परशुराम की कथा चलती है।

वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकण्ड की समाप्ति राम-सीता की अत्रि-अनुसूया से भेंट के साथ होती है। भाषा-रामायणों का अयोध्याकाण्ड भरत के लौटने के साथ ही समाप्त हो जाता है। इनमें अत्रि-अनुसूया से मिलन अरण्यकाण्ड में होता।

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार निम्न प्रमुख प्रसंग सभी रामायणों में वर्णित हैं।

सर्व-रामायणसुलभ आख्यान :

१—अभिषेक की तैयारी

(१) भरत का ननिहाल में होना।

(२) दशरथ की चिन्ता और राम को युवराज पद देने का निश्चय।

(३) दशरथ-द्वारा राम को राजनीति की शिक्षा।

(४) अभिषेक की तैयारियाँ और परिजन-बन्धुओं आदि का हर्षित होना।

२—कैकेयी की वर-याचना

(५) मंथरा का दुःखी होना, कैकेयी से संवाद, कैकेयी का हर्षित होकर अलंकार दान। मंथरा का रोष, उसके तर्क।

(६) कैकेयी का प्रभावित होना, मंथरा द्वारा दो वरों की याद दिलाया जाना।

(७) कैकेयी-दशरथ-भेंट। दशरथ का कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए डींगें मारना।

(८) कैकेयी का वर माँगना। राजा का अपार शोक। राजा द्वारा कैकेयी की भर्त्सना, मान जाने के लिए चाटुकारिता।

३—राम के वनगमन की तैयारी

(९) राम की उपस्थिति। वनवास-आज्ञा स्वीकार।

(१०) राम-कौशल्या-संवाद। राम-लक्ष्मण-संवाद। राम-सीता-संवाद।

(११) राम के साथ लक्ष्मण और सीता के चलने की स्वीकृति।

(१२) दशरथ द्वारा राम को समझाया जाना, किन्तु राम का अडिग रहना।

(१३) क्रूर कैकेयी का वल्कल-दान। तीनों का प्रस्थान। सुमंत्र रथ में बिठाकर चले, साथ में पुरजन।

४—वनप्रस्थान, विश्रामादि

(१४) तमसा-तट पर प्रथम विश्राम। केवल जल पीकर रहे। रात के समय पुरवासियों को धोखा देकर निकल गये।

(१५) द्वितीय विश्राम—शृंगवेरपुर जाते हुए इंगुदी वृक्ष के नीचे रुके। गुहराज से भेंट। आतिथ्य अस्वीकार।

(१६) गुह की सहायता से गंगा पार। सुमंत्र का प्रत्यावर्तन। राम-लक्ष्मण का जटा बनाना। सीता का गंगा-पूजन।

(१७) प्रयाग में तृतीय रात्रि। प्रथम बार अकेले तीन लोग।

(१८) भरद्वाज से भेंट, यमुना पार होना, बरगद के नीचे विश्राम।

५—सुमन्त्र का प्रत्यावर्तन, दशरथ की मृत्यु

(१९) सुमंत्र का अयोध्या लौटना। दशरथ-कौशल्या-संवाद।

(२०) अन्धमुनि वृत्तांत-स्मरण, मृत्यु। कौशल्यादि का विलाप। शव का कड़ाह में रखा जाना।

(२१) वसिष्ठ द्वारा भरत को बुलाने के लिए दूत-प्रेषण । भरत का दुःस्वप्न देखना । लौटते समय अयोध्या की श्रीहीनता ।

(२२) कैकेयी से समाचार ज्ञात कर भरत का क्रोध । कुब्जा दंडित ।

(२३) कौशल्या के आगे अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए भरत का शपथें करना ।

(२४) दशरथ का अन्त्येष्टि-संस्कार । राजकर्मचारियों का अनुरोध टालकर राम को लौटाने के लिए तैयार होना ।

६— राम-भरत भेंट

(२५) भरत की सेना देखकर गुह का सन्देह, आक्रमण की तैयारी, अन्त में भरत के आगे भेंट प्रस्तुत करना ।

(२६) गुह के साथ भरत का वार्त्तालाप । राम जिस पेड़ के नीचे ठहरे थे उसके तले की शय्या को भरत का देखना, शोक करना ।

(२७) भरद्वाज से भेंट, तथा उनका आतिथ्य ।

(२८) भरत की सेना देख कर लक्ष्मण का पेड़ पर चढ़कर पहचानना और भरतादि के वध के लिए प्रस्तुत होना । राम का समझाना और लक्ष्मण का शांत अथवा लज्जित होना ।

(२९) राम-भरत-मिलन का मार्मिक प्रसंग । दशरथ की मृत्यु-सूचना से राम का शोकग्रस्त होना । नदी-तट पर जलाँजलि देना ।

(३०) राम, भरत तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियों का परस्पर वादविवाद होना । राम को लौटाने में असफल भरत का निराश होकर पादुकाओं-सहित वापस लौटना ।

(३१) नन्दिग्राम में भरत का वास ।

(१) **मंथरा-कैकेयी-प्रसंग**—वाल्मीकि-रामायण में मंथरा-कैकेयी को स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है, किन्तु आगे चलकर अवतारवाद के विकास के कारण कई शाप-वरों की कल्पना की गयी । कुछ लेखक भरत-माता कैकेयी को दोष-मुक्त करना चाहते थे इसलिए भी प्रसंगों में अंतर उपस्थित हुआ । असमीया-रामायण वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करती है, उसमें इस विषय के किसी नूतन प्रसंग का समावेश नहीं है किन्तु शेष तीन रामायणों में है ।

मंथरा—(१) **दुंदुभी अप्सरा**—महाभारत[1] के रामोपाख्यान में मंथरा की कुटिलता छिप गयी । वह दुंदुभी नामक अप्सरा बतायी गयी । उसका मंथरा-रूप में अवतीर्ण होना रावण के वध के लिए हुआ । **पद्म-पुराण** के पातालखण्ड (गौड़ीय संस्करण) में इसका उल्लेख है, बँगला और उड़िया रामायणों में भी इसका वर्णन हुआ

१. महाभारत : वनपर्व, अ० २७६ ।

है। **बँगला-रामायण** के अनुसार विधाता ने रावण के संहार के लिए इसका सृजन किया था (पृष्ठ ६५)। **उड़िया-रामायण** में उसे देव-अप्सरा कहा गया है। देवताओं ने माता कहकर उसे रावण के वधार्थ अवतरित होने के लिए कहा। (पृ० २३)

(२) **मोहित बुद्धि होना—अध्यात्म-रामायण** में सरस्वती कैकेयी और मंथरा दोनों में प्रविष्ट होकर उनकी मति बदल देती है। **मानस** में सरस्वती परायी विभूति न देख सकने वाले देवताओं के अनुरोध को अनिच्छा होते हुए भी संपादित करती हैं। वे केवल मंथरा की बुद्धि फेर देती हैं।

(३) **राम से शत्रुता**-- मंथरा के विरोध करने का एक कारण राम की शत्रुता भी बताया जाता है। **अग्निपुराण**[1] में लिखा है कि राम ने उसे पैर पकड़कर घसीटा, इसी वैर के कारण वह राम को वन भेजना चाहती है। अग्नि-पुराण में कथा का अत्यधिक संक्षिप्त रूप है। **उड़िया-रामायण** के बालकाण्ड में बताया गया है कि मिथिला में विवाह के अवसर पर गंदी गालियाँ गाने के कारण राम ने उसे मारा था। अयोध्याकाण्ड में पुन: उसका उल्लेख हुआ है। अपमान के कारण मंथरा ने मन-ही-मन निश्चय किया कि देखूँगी। (पृष्ठ २४)

इस प्रकार मंथरा के कुकृत्य में दो प्रकार के षड्यंत्र देखे गये—(१) देवताओं का और (२) व्यक्तिगत। एक तीसरा षड्यंत्र राक्षसों का भी माना गया है, जिसका वर्णन हमारी आलोच्य रामायणों में तो नहीं है किन्तु **महावीर-चरित** एवं **अनर्घ-राघव** नाटक में है। यहाँ शूर्पणखा मंथरा का रूप धारण कर जनकपुरी पहुंचकर राम को कैकेयी का जाली पत्र देती है।[2] यहाँ भी कैकेयी को दोष-मुक्त करने की चेष्टा है।

(१) **कैकेयी का दोष-मोचन**—कैकेयी को दोष-मुक्त करने के लिए जो प्रयास हुए उनका वर्णन मंथरा के सम्बन्ध में हो चुका है। इस सम्बन्ध में कैकेयी के एक शाप का वर्णन भी किया गया है। वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में लिखा है कि कैकेयी ने किसी ब्राह्मण की निन्दा की थी, उसने शाप दिया कि तेरा भी अपयश होगा। बँगला-रामायण और उड़िया-रामायण में भी इस शाप का वर्णन है। **बँगला-रामायण** में कैकेयी ने बाल्यावस्था में एक ब्राह्मण पर व्यंग किया था। उसने कैकेयी को शाप दिया कि सभी लोकों में तेरा अपयश होगा। **उड़िया-रामायण** में भी बाल्यकाल में कैकेयी एक तपस्वी वृद्ध-बधिर को देखकर हँसी थी और उसने भी ऐसा ही शाप दिया था। उड़िया-लेखक कहता भी है कि देवताओं ने उपाय किया, कैकेयी बुरी नहीं थी।[3]

---

१. अग्नि-पुराण, अध्याय ६-८।
२. देखिए, कादम्बिनी (मार्च, ६३) में प्रकाशित प्रस्तुत लेखक की रचना—मंथरा : विभिन्न-दर्पणों में।
३. देबे उपाय कले कैकेयी नोहे मन्द—२-३५।

(२) **खल-दुर्बल**—अध्यात्म-रामायण के सरस्वती-प्रसंग से प्रेरणा लेकर ही संभवतः उड़िया-रामायणकार ने खल-दुर्बल (२६-२७) की कल्पना की है। ये दोनों भाई ब्रह्मा के कहने से क्रमशः कैकेयी और दशरथ के शरीरों में प्रविष्ट हो गये। खल ने कैकेयी को दुष्ट-बुद्धि बनाया और दुर्बल ने राजा को दुर्बल-मति। खल और दुर्बल के रूप में खलता और दुर्बलता को साकार किया गया है।

(३) **केवट-प्रसंग**—राम-कथा में केवट-प्रसंग के दो स्थल हैं—(१) अहल्या-उद्धार के तुरन्त पश्चात् और,(२) चित्रकूट-यात्रा के समय। इस प्रसंग का प्रथम उल्लेख **अध्यात्म-रामायण** में हुआ है और उसमें इसका वर्णन अहल्या-उद्धार के पश्चात् ही है। यह स्थल ही अधिक स्वाभाविक है। **बँगला-रामायण** में भीय हीं इसका वर्णन हुआ है। **उड़िया-रामायण** और **मानस** में इसका वर्णन अयोध्याकाण्ड में है। इन तीनों रामायणों की उक्तियों में साम्य है। असमीया-रामायण में यह प्रसंग नहीं है।

बँगला-रामायण के अनुसार कैवर्त्त नौका लेकर जंगल में भाग गया। विश्वामित्र ने उसे डाँटा कि न आने पर उसे भस्म कर दिया जाएगा। उसने कातर होकर विनय की—मेरी नौका जीर्ण-शीर्ण शतछिद्रमय है। मैं तीनों लोगों को कंधे पर बिठा कर पार कर दूँगा। पदधूलि से नौका मुक्त हो गयी तो अपने बाल-बच्चों का पोषण किसके द्वारा करूँगा। मेरी गृहिणी गाली देगी कि मुनि के कहने से नौका खो दी। (पृष्ठ ७५ आदिकांड)

उड़िया रामायण में केवट (नाउरिया) इस प्रकार कहता है—

क्षणक विश्राम हे करिबा रघुमणि।
ए नाव खण्डिरे मोर बन्धे दश प्राणी॥
तोहर चरणे अछइ येबण रेणु।
काष्ठ पाषाण युवती लागि होए तेणु॥ पृ० ५१

मानस का केवट भी बुलाने पर नहीं आता। वह कहता है, तुम्हारी चरणरज का स्पर्श पाकर शिला स्त्री बन गयी। मैं नाव से ही अपने परिवार का पालन करता हूँ। यह तुम्हारे चरणों के स्पर्श से मुनि-पत्नी बन जाएगी। अतएव बिना पैर धोए नाव पर पैर नहीं रखने दूँगा, भले ही लक्ष्मण तीर मार दें। मुझे उतराई नहीं चाहिए।

पूर्वांचलीय-रामायणों (असमीया को छोड़कर) में केवट सच ही डर गया है। मानस का केवट 'प्रेम लपेटे अटपटे' वचन बोलने वाला बड़ा ही चतुर है। उसे नौका के स्त्री बनकर उड़ने का भय नहीं है, वह तो चरण धोने के बहाने भगवान् का चरणामृत लेना चाहता है। राम भी सीता और लक्ष्मण की ओर मुस्कराते हुए देखकर उसे अनुमति दे देते हैं।

(४) **पथिक-वधुओं का सीता से राम का परिचय पूछना**—हनुमन्नाटक में

ग्रामवधुएँ सीता के प्रति ममता प्रकट करती हैं। अन्य परिवार के सम्पर्क में आने पर उसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध जानने की जिज्ञासा स्त्रियों का सहज स्वभाव है। हनुमन्नाटक के इस प्रसंग से बँगला-रामायण, उड़िया-रामायण और मानस के लेखकों ने प्रेरणा ली है।

हनुमन्नाटक के अनुसार मार्ग में पथिकों की वधुओं ने सीता से आदरपूर्वक पूछा—ये नील-कमल के समान नेत्र वाले तुम्हारे कौन हैं ? लज्जा से विभ्रांत नेत्र वाली सीता ने मुस्कराकर सिर नीचा कर लिया और इस प्रकार उनके प्रश्न का स्पष्ट उत्तर दे दिया। अर्थात् सीता ने सलज्ज मुस्कराहट और अपने मौन से स्पष्ट कर दिया, यह युवक उनका पति है। (३, १५)

बँगला रामायण में ग्राम-वधुएँ मुनि-पत्नियाँ हैं। वे सीता से पूछती हैं, दूर्वादल-श्याम, सुन्दर एवं धनुर्धारी तुम्हारे कौन है ? पुलकित होकर, मुस्करा कर तथा अधोमुखी होकर सीता मौन रह गयीं। उन्होंने इंगित से स्पष्ट कर दिया, ये मेरे पति हैं। (पृ० ११५)

उड़िया-रामायण में सीता के पैरों में कुशकंटक छिदने लगे। वे बार-बार राम से पूछने लगीं, अब कितनी दूर और चलना है। वे शबर-पल्ली के पास से निकले। शबर-स्त्रियों ने प्रश्न किया—'ये दो पुरुष तुम्हारे कौन है ?' सीता ने कहा, 'जो महावीर पीछे आ रहे हैं, ये मेरे देवर हैं।' एक स्त्री बोली, मेरी एक बात सुनो, 'जो आगे जा रहे हैं, वे तुम्हारे कौन हैं ?' इस बात से सीता को संकोच हुआ। वे सिर झुकाकर चुप हो गयीं। युवतियां बोलीं, 'यही इनके पति हैं।' (५४-५५)

मानस का वर्णन सबसे समानता रखता हुआ भी अपनी विशेषता रखता है। सीता के शील एवं उनकी मधुर शृंगार-चेष्टाओं के चित्रण द्वारा तुलसीदास ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। शरच्चन्द्र जैसे मुख और कमल जैसे नेत्र वाले गोरे और साँवरे किशोरों को देखकर ग्राम-वधुओं ने 'कोटि मनोज लजावन हारे' का परिचय पूछा। सीता जी संकोच में पड़ गयीं। उत्तर देती हैं तो धृष्टता होती है, अथवा लज्जा आती है, नहीं देतीं तो इन भोली वधुओं की उपेक्षा होती है। सीता ने बताया, गोरे रंग वाले मेरे छोटे देवर हैं। फिर स्त्री-सुलभ चेष्टाएँ कर—मुँह को अंचल से ढंककर, प्रियतम की ओर देख, उन्होंने बांकी भौंहें और खंजन-नेत्रों के तिरछे-तिरछे संकेतों के द्वारा बता दिया कि ये कौन हैं। (२-११६-५, ६, ७)

(४) **जयन्त-काक-प्रसंग**—वाल्मीकि-रामायण में जयंत-काक प्रसंग दो स्थलों पर आया है—१. अयोध्याकाण्ड में राम-भरत मिलन के पूर्व और २. सुन्दरकाण्ड में हनुमान-सीता भेंट के समय।

कथा में उत्सुकता के निर्वाह की दृष्टि से सुन्दरकाण्ड का वर्णन अधिक उपयुक्त है। इस घटना का परिचय केवल राम और सीता को था। उन्होंने हनुमान

को इसलिए बताया था कि राम को हनुमान पर विश्वास हो जाए। वाल्मीकि रामायण का यही वर्णन मौलिक है। किन्तु यह घटना घटित हुई थी चित्रकूट में, राम-भरत की भेंट के पूर्व। अतएव वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड में यह प्रसंग प्रक्षिप्त होकर समाविष्ट हो गया।

तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में जयंत-काक का वर्णन अयोध्याकाण्ड में भरत के आगमन के पूर्व हुआ है। प्रायः सभी रामकथाओं में इतना प्रसंग एक समान है— काक का सीता के स्तनों पर प्रहार करना, राम का ऐपिकास्त्र प्रहार करना और काक का चक्षु-हीन होना।

असमीया और **बँगला** रामायणों में काक ने सीता के रूप पर मुग्ध होकर चंचु-प्रहार किया था। उड़िया-रामायण में वर्णन भिन्न है। **उड़िया-रामायण** में उसके इंद्रपुत्र होने का भी उल्लेख नहीं है।

असमीया-रामायण के अनुसार राम सीता की जांघ पर सिर रखकर शयन कर रहे थे। पेड़ पर बैठा इन्द्र-पुत्र काक सीता के रूप पर लुभाकर उनके स्तनों पर बार-बार प्रहार करने लगा। सीता के स्तनों से रुधिर निकलने लगा, वे रो पड़ीं। राम जाग पड़े, उन्होंने रुष्ट होकर ऐपिक बाण मारा। बाण ने देवपुरी तक उसका पीछा किया। कौआ लौटकर राम की शरण में आकर बोला, हे जगत के बाप और जगत की माता, मैं तुम्हें समझ नहीं पाया था। राम ने उसे एक अंग से हीन कर दिया। तभी से कौआ गर्दन पलटकर एक आँख से देखता और सचकित मन से आहार-पानी ग्रहण करता है—

घारगोट पालताया एक आखि चाइ।
सचकित मने सि आहार पानी खाय॥ छन्द २५०३

बँगला-रामायण के **रामानन्दी-संस्करण** में जयंत-काक प्रसंग अश्लीलता-दोष-निवारण के कारण छापा नहीं गया। **सुबोधचन्द्र मजुमदार** और **दीनेशचन्द्र सेन** के संस्कारणों में वाल्मीकि-रामायण के दोनों स्थलों के समान इसका वर्णन दो स्थलों पर हुआ है। इसमें समानता भी है। दीनेश बाबू के संस्करण में जो वर्णन है वह असमीया रामायण के वर्णन जैसा ही है। अंतर केवल यही है कि ऐपिक बाण ब्राह्मण का रूप धारण कर काक का पीछा कैलास और स्वर्ग तक करता है, वह बोलता भी है।

उड़िया-रामायण के अनुसार सीता ने भोजन से बचा हुआ मांस सुखाने के लिए रख दिया। एक कौआ मांस खाने के लिए बार-बार आने लगा। सीता उसे बार-बार उड़ा कर थक गयीं, बोलीं, मेरे स्वामी कठिनाई से पशु मार कर लाते है। मैं आवश्यकतानुसार राँध कर शेष को पत्तों पर रख कर सुखा लेती हूँ। जीव न मिलने पर इसे ही राँधती हूँ। तू उड़ता नहीं। तेरे अकाल में नेत्र फूट जाएँ। कौए ने सीता के ओंठों में काटा और स्तन विदीर्ण कर दिये। सीता चीख उठीं। राम ने मंत्र पढ़-कर बाण मारा, उसकी तथा चित्रकूट के सभी कौओं की आँखें फूट गयीं, वे वृक्षों के

नीचे गिर गये । सीता ने दयार्द्र होकर राम से प्रार्थना की । राम ने सीता की प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें दृष्टिदान कर कहा, अब मे से निरख देखेंगे । इस प्रकार उड़िया-रामायण में कौआ साधारण है, वह इन्द्र-पुत्र नहीं, वह सीता के रूप पर लुब्ध होकर प्रहार नहीं करता अपितु भोजन मे बाधा पहुँचाने के कारण ही वह सीता से कष्ट होता है । राम के नींद से जागने, बाण से पीछा करने तथा काना होने का भी वर्णन नहीं ।

कौए के मांस-लोभ का वर्णन क्षेमेन्द्र की रामायण मंजरी[1] और हीरेन्द्रनाथ दत्त[2] के बंगला-रामायण के अयोध्याकाण्ड-संस्करण में भी हुआ है । वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय एवं पश्चिमोत्तरीय संस्करणों मे भी सीता द्वारा कौओं को मांस खिलाये जाने का उल्लेख है ।

मानस के वर्णन पर रघुवंश और अध्यात्म-रामायण का प्रभाव है । रघुवंश में इसका वर्णन राम-भरत-मिलन के पश्चात् हुआ है, मानस में ऐसा ही होने के कारण इसका उल्लेख अयोध्याकाण्ड में न होकर अरण्यकाण्ड में है ।

मर्यादावादी तुलसीदास को सीता के स्तनों पर चोंच प्रहार वाली बात मनोनीत नहीं हुई । यहाँ उन्होंने अध्यात्म-रामायण[3] के अनुसार लिखा कि काक सीता के चरणों में चोंच मारकर भाग गया --सीता चरन चोंच हति भागा । (३-०-७) वह राम के बल की थाह लेने आया था । राम ने सींक का बाण मारा । इन्द्रादि के पास जाने पर भी उसकी रक्षा न हो सकी तो नारद के कहने से राम के ही पास गया । उन्होंने उसे काना बनाकर छोड़ दिया । तुलसीदास कहते हैं कि मोहवश द्रोह करने वाले का तो वध ही उचित है । कृपालु राम ने तो दया-वश उसे छोड़ ही दिया । (३-२)

केवल पूर्वांचलीय रामायणों के कुछ प्रसंग :

कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं जो केवल पूर्वांचलीय-रामायणों में हैं किन्तु मानस में नहीं हैं ।

---

१. रामायण मंजरी, आरण्यपर्व, १४३-१४५ ।

२. हीरेन्द्र बाबू वाले अयोध्याकाण्ड के संस्करण में सीता गंगा में मांस धोते समय पक्षियों को मांस खिलाती जाती हैं । जयन्त काक अन्य पक्षियों के भाग का मांस भी खा जाता है । सीता के रोकने पर वह उनके स्तनों पर बैठ गया । भोजनोपरांत राम सीता के सो जाने पर अंचल के हट जाने से खुले स्तनों पर उसने नखाघात किया । शेष कथा दीनेश बाबू के संस्करण के समान है— देखिए पृ० ५५ ।

३. अध्यात्म-रामायण में वह अँगूठे में चोंच मारता है तथा मांस के लोभ से ही प्रहार करता है—मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया । (सुन्दर काण्ड,-३-५४)

(१) **राजा शिवि आदि की कथा**—कैकेयी राजा दशरथ को वचनों पर दृढ़ रहने के लिए उकसाती हैं और कथाएँ सुनाती हैं। **असमीया** और **बँगला** रामायणों में वह **शिवि सगर-पुत्र** की कहानी सुनाती है। **उड़िया-रामायण** में शिवि की कहानी का वर्णन है। इस रामायण में कौशल्या **दिति-अदिति** और पवनोत्पत्ति की कथा सौतियाडाह का उदाहरण देने के लिए कहती हैं और राम पिता की आज्ञा को बड़ा बताने के लिए **रेणुका और परशुराम** की कथा सुनाते हैं। ये सभी कथाएँ वाल्मीकि-रामायण के आधार पर हैं।

(२) **त्रिजट की कथा**—वाल्मीकि-रामायण में त्रिजट नामक बूढ़े ब्राह्मण से राम ने कहा कि डंडा फेंक कर तुम जितनी गायें घेर लो तुम्हारी हो जाएँगी। सभी पूर्वांचलीय रामायणों में इसका वर्णन है। कृत्तिवास ने त्रिजट नाम भी दिया है। शेष दो ने केवल बूढ़े ब्राह्मण कहा है।

(३) **सैन्य-सज्जा**—वाल्मीकि-रामायण के ही अनुसार **असमीया** और **उड़िया** रामायणों में भरत की सैन्य-सज्जा का वर्णन है। उड़िया-रामायण का वर्णन अधिक विस्तृत है। यह भी वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है।

(४) **भरद्वाज का आतिथ्य**—वाल्मीकि-रामायण में तपःशक्ति से भरद्वाज भरत की सेना को अनेक सुविधाएँ देते हैं। पूर्वांचलीय रामायणों में अनेक सुख-सुविधाओं का वर्णन है जिनमें सुन्दरियों के सहवास का भी वर्णन है। अयोध्यावासी सुख में मस्त होकर राम को भी भूल जाते हैं। मानस में आतिथ्य की चर्चा अवश्य है किन्तु पूर्वांचलीय-रामायणों में अनेक सुख-सुविधाओं का वर्णन है, जिनमें सुन्दरियों के सहवास का भी वर्णन है। अयोध्यावासी सुख में मस्त होकर राम को भी भूल जाते हैं। मानस में आतिथ्य की चर्चा अवश्य है किन्तु पूर्वांचलीय-रामायणों जैसा विशद वर्णन नहीं है।

(५) **पिंडदान**—वाल्मीकि-रामायण में राम ने इंगुदी की खली के पिंड दिये कौशल्या देखकर रुदन करती हैं। **असमीया** और **उड़िया** रामायणों में भी ऐसा ही वर्णन है। उड़िया-रामायण के अनुसार पिंड सीता ने पकाये हैं। दशरथ प्रकट होकर राम के हाथ से पिंड लेते हैं और देवसभा के मध्य सम्मानित होते हैं। **ब्रह्म-पुराण** और **शिवपुराण** में भी दशरथ प्रकट होकर पिंड लेते हैं। **बँगला**-रामायण के कुछ ही संस्करणों में इसका उल्लेख है। अनाम संस्करण और हीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय सम्पादित अयोध्याकाण्ड में सीता ने पिंड दिये हैं और दशरथ ने स्वयं प्रकट द्वारा होकर उन्हें ग्रहण किया है। आनन्द-रामायण से मिलता-जुलता प्रसंग है।[1]

(६) **शरभंग की पादुकाएँ**—वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में शरभंग द्वारा राम के पास खड़ाऊँ भेजने का वर्णन आया है। असमीया-रामायण

१. देखिए, लेखक का ग्रन्थ—कृत्तिवासी बँगला-रामायण और मानस, पृ० १५९।

में लिखा है कि एक ऋषि से राम ने खड़ाऊँ पायी थीं, वही उन्होंने भरत को दे दीं—पृष्ठ १५७। उड़िया-रामायण में शरभंग के शिष्य ने राम को पादुका देकर निमंत्रित किया। राम ने वही पादुकाएँ भरत को दे दीं। (पृष्ठ ८९-९१ उड़िया)

उड़िया के कुछ विशिष्ट प्रसंग :

(१) **परशुराम की कथा**—राम की शक्ति और उनका ब्रह्मत्व सिद्ध करने के लिए वसिष्ठ दशरथ को परशुराम के शौर्य और प्रताप की कथा सुनाकर अंत में कहते हैं कि ऐसे परशुराम को राम ने जीत लिया। परशुराम की कथा के अन्तर्गत परशुराम का पूर्व-जन्म-वृत्तांत, यमदग्नि-रेणुका का विवाह, पुत्रोत्पत्ति, यमदग्नि की आज्ञा से परशुराम द्वारा माता और भाइयों का शिरच्छेदन, फिर पिता को प्रसन्न कर मृतकों को जीवित कराना, सहस्रार्जुन से संघर्ष और उसका वध और परशुराम की तपस्या का वर्णन है।

(२) चित्रकूट में भरत-राम-भेंट के समय देवता आकाश में स्थित होकर भरत को लौटने के लिए समझाते हैं।

(३) **मंथरा की ताड़ना और सरस्वती**—भरत ने शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि मंथरा को पकड़ लाओ और उसका सिर काट लो। देवता चिन्तित हुए। उन्होंने मंथरा की रक्षा के लिए सरस्वती द्वारा शत्रुघ्न की बुद्धि बदल दी। शत्रुघ्न बोले, यह स्त्री है, मारने से धर्म-हानि होगी। शत्रुघ्न ने उसका वध तो न किया किन्तु दुर्दशा वैसी ही की जैसी कि अन्य रामायणों में वर्णित है। (पृष्ठ ६७)

(४) उड़िया-रामायण में अनेक विशद वर्णन हैं, जैसे-चित्रकूट के पशुपक्षी, पेड़-पौधे, शबरी की वेशभूषा अलंकारादि, रामसीता का दाम्पत्य-प्रेम, भोज्य-पदार्थ आदि।

राम-सीता के दाम्पत्य-प्रेम के अन्तर्गत राम द्वारा सीता के गेरू का तिलक लगाये जाने का भी प्रसंग है, जिसका अध्ययन सुन्दरकाण्ड में 'अभिज्ञान' के सम्बन्ध में किया जाएगा।

(५) **सुआ और मैना**—राम को वन में भूख से नींद न आयी, वे लक्ष्मण से बोले, मुझसे तो सुआ और मैना अच्छे हैं, मैं कौशल्या के किस काम आया। लक्ष्मण के आग्रह पर उन्होंने कहानी सुनायी—श्यामल पक्षी ने सुआ को पंजों और मैना को चोंच में पकड़ लिया। मैना के कहने से सुआ ने उसको काटा तो वह छूट गया। पीड़ा से कराह कर जैसे ही श्यामल ने आह की, मैना भी छूट गयी। (पृष्ठ ५०)

मानस के विशिष्ट-प्रसंग :

(१) **तापस-प्रसंग**—मानस में एक लघु वयस तेजस्वी तपस्वी की भेंट राम से होती है। यहाँ तापस की अवतारणा अनावश्यक-सी प्रतीत होने के कारण लोगों ने

किया कि तुलसीदास ने तापस के रूप में अपने को ही प्रस्तुत किया है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है कि संभवतः स्वयं तुलसीदास ने इसे बाद में जोड़ा है। कोई तापस को अग्नि, कोई भरत और कोई तुलसीदास मानता है। पं० मिश्र तापस को तुलसीदास मानना ही अधिक सटीक समझते हैं।[1]

(२) चित्रकूट का **राम-वाल्मीकि-सम्वाद**—अध्यात्म-रामायण के आधार पर है।

(३) **चित्रकूट की सभा** का जैसा विशद और सुन्दर वर्णन मानस में है वैसा अन्य रामायणों में नहीं है। यहाँ जनक आदि भी उपस्थित रहते हैं। भरत तीर्थों का जल जिस कुएँ में डाल देते हैं वह भरतकूप कहलाता है।

अरण्यकाण्ड (तुलनात्मक अध्ययन)

(असमीया और बँगला-रामायण में इसे आरण्य तथा उड़िया रामायण में आरण्यक कहा गया है।)

राम के वनवास की अवधि का अधिक भाग अरण्यकाण्ड की कथा में समाप्त होता है। राम इस अवधि में अनेक ऋषियों से भेंट करते हुए राक्षस-सेवित भयंकर वनों की ओर दक्षिण दिशा में बढ़ते गये। लगता है वे जानबूझ कर राक्षसों से वैर लेना चाहते थे, ताकि उन्हें दंडित कर निरीह तपस्वियों एवं जनता को त्राण दे सकें।

इस काण्ड की मुख्यकथा सीताहरण मानी जाती है। विराध, कवन्ध और जटायु आदि के प्रसंग तथा शरभंग आदि ऋषियों के आख्यान आदि-रामायण में प्रक्षिप्त माने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि ८-१० वर्ष के काल की दूरी-पूरी करने के लिए इन प्रसंगों की कल्पना कर वाल्मीकि-रामायण की कलेवर-वृद्धि की गयी है।[2]

इस काण्ड की मुख्य कथावस्तु से भाषा-रामायणों की समानता है। यह समानता असमीया-रामायण में अधिक है। मानस में भक्ति का रंग अपेक्षाकृत कुछ गहरा है तथा उड़िया-रामायण में पूर्ववत चमत्कार-पूर्ण घटनाओं की योजना है।

वाल्मीकि-रामायण और भाषा-रामायणों के समान प्रसंग :

(१) **अत्रि का आतिथ्य**—अनुसूया-सीता-संवाद, अनुसूया द्वारा पतिव्रत का उपदेश और सीता को प्रसाधन-सामग्री-दान (वाल्मीकि-रामायण में यह प्रसंग अयोध्याकाण्ड के अन्त में ही आ चुका है।)

---

१. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—रामचरितमानस (काशिराज संस्करण), पृ० १६।
२. तुलनीय—श्री बुल्के—रामकथा, द्वितीय-संस्करण, अनुच्छेद ४५७ (एच० याकोबी के मत का समर्थन)।

(२) **विराध-वध**—विराध नामक राक्षस का सीता को उठा लेना, राम-लक्ष्मण द्वारा उसका वध और अंतिम-संस्कार। उसका पूर्व रूप प्राप्त करना।

(३) **शरभंग-वृत्तान्त**—राम से शरभंग की भेंट के पूर्व इन्द्र का उनके आश्रम में आना (मानस में नहीं)। शरभंग का राम-दर्शन कर प्राण-त्याग करना।

(४) **सुतीक्ष्ण-मिलन**—सुतीक्ष्ण से भेंट कर अगस्त्य के आश्रम की ओर प्रस्थान। (वाल्मीकि-रामायण तथा असमीया और बंगला-रामायण के अनुसार अब तक १० वर्ष बीत जाते हैं और सुतीक्ष्ण रामादि को अगस्त्य के यहाँ सीधा न भेजकर पहले उनके छोटे भाई के पास भेजते हैं।)

(५) **अगस्त्य-भेंट**—अगस्त्य राम की शक्ति से परिचित, (भाषा-रामायणों में उनके ब्रह्मत्व से भी) राम को अस्त्र-शस्त्र-दान करना।

(६) **जटायु से मैत्री**—उसे पिता-तुल्य मानना, पर्णशाला बनाकर रहना।

(७) **शूर्पणखा-प्रसंग**—रावण की बहिन का राम पर प्रलुब्ध होना, राम का उसे लक्ष्मण के पास भेजना, अपनी पराधीन-स्थिति समझाकर लक्ष्मण का उसे पुनः राम के पास भेजना। सीता के प्रति सौतिया-डाह से प्रेरित होकर तथा उन्हें अपनी कामना-पूर्ति में कटा समझ कर खाने को दौड़ना। राम के आदेश से लक्ष्मण द्वारा राक्षसी के नाक-कान काटे जाना।

(८) **खर-दूषण-वध**—प्रतिशोध की भावना से आये हुए खर, दूषण और त्रिशिरा का केवल राम द्वारा वध। लक्ष्मण और सीता का कन्दरा में आश्रय लेना।

(९) **रावण को सूचना**—बहिन के अपमान और अपने अनुचर-शासकों के वध का प्रतिशोध लेने तथा सीता-सी सुन्दरी की कामना रखकर रावण का राम-विरोध। मारीच की सहायता मांगना, उसके ननुनच करने पर मारने की धमकी देना। विवश मारीच का प्रस्तुत होना।

(१०) **स्वर्ण-मृग**—मारीच का मृगरूप-धारण। सीता के अनुरोध से राम द्वारा मृग का पीछा करना, मरने के पूर्व मारीच का आर्त्त स्वर में लक्ष्मण और सीता को पुकारना। सीता का भ्रमित होना। लक्ष्मण के समझाने पर भी सीता की कटूक्तियाँ। लक्ष्मण का जाना।

(११) **सीता-हरण**—रावण का साधु-भेष में आकर सीता से परिचय पूछना। अपना परिचय देने पर सीता का क्रोध। सीता का बलात् हरण।

(१२) **जटायु से युद्ध**—जटायु का सीता की रक्षा के लिए भयंकर युद्ध करना और आहत होना।

(१३) **अभिज्ञता-दान**—पंपासरोवर के पास पर्वत-शृंग पर बैठे हुए पांच बन्दरों की ओर सीता का वस्त्राभूषण फेंकना।

(१४) **अशोक-वन**—रावण का सीता को अशोक-वन में रखना। राक्षसियों का पहरा रहना। सीता को धमकियां देना।

(१५) **सीता की खोज**—सूनी कुटिया देखकर राम-लक्ष्मण का अत्यधिक दुःखी होना। सीता की खोज करना। मरणासन्न जटायु से समाचार ज्ञात करना।

(१६) **कवन्ध**—विकलांग और भयंकर-रूप कवन्ध राक्षस से भेंट तथा उसका वध।

(१७) **शबरी**—तपस्विनी शवरी से भेंट। राम ने आतिथ्य स्वीकार कर धन्य किया। उसका स्वर्गारोहण।

अरण्यकाण्ड की कथा मुख्यत: तीन भागों में बाँटी जा सकती है—क—अत्रि-भेंट से पंचवटी में निवास तक। ख—सीताहरण (शूर्पणखा-भेंट से जटायु-वध तक) और ग—सीता की खोज—घायल जटायु की भेंट से शवरी-मिलन तक।

अत्रिभेंट से पंचवटी में निवास तक :

(१) **अत्रि-अनुसूया** से राम-सीता का मिलन सभी रामायणों में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है। मानस के अतिरिक्त सभी रामायणों में सीता अपनी समस्त कथा वतला जाती है। पुनरुक्ति-दोष है। **असमीया-रामायण** में अनुसूया वर देना चाहती हैं किन्तु सीता स्वीकार नहीं करतीं। तव वे स्वयं ही सीता के सिन्दूर और चन्दन के अक्षय रहने का वर देती हैं। दिव्य वस्त्राभूषण तो सभी रामायणों में दिये जाते हैं।- **बँगला** की अनुसूया सीता की माँग में सिन्दूर भरकर शृंगार करती हैं। **उड़िया-रामायण** में सीता को मिलने वाली **'पाटसाड़ी'** की अनुपम कथा है।

पाटसाड़ी[1]—यह साड़ी समुद्र-मन्थन के समय शंकर को प्राप्त हुई थी, उन्होंने इसे ब्रह्मा को दिया। ब्रह्मा ने प्रयाग में यज्ञ कर आचार्य-दक्षिणा के रूप में इसे अत्रि को दिया। अत्रि-पत्नी अनुसूया ने इसे पार्वती को दिया। किन्तु शंकर ने दान की हुई वस्तु पार्वती को नहीं लेने दी। अनुसूया से साड़ी की यह कथा सुनकर सीता बोलीं—'ब्राह्मण की वस्तु लेने से राम क्रुद्ध होंगे'। उन्होंने उत्तर दिया—'मैं तुम्हारी माता हूँ, अतएव पुत्री के लिए यह अग्राह्य नहीं है।'

(२) **विराध-वध** में समानता होते हुए भी कुछ अन्तर है। वाल्मीकि-रामायण में विराध ने सीता को गोद में इसलिए उठाया था कि उनका उपभोग कर सके।[2] राम सीता को उसकी गोद में देखकर बोले थे, इस समय मुझे इतना दुःख हो रहा है जितना पिता की मृत्यु और राज्य-हरण से भी नहीं हुआ। असमीया-रामायण में भी वह सीता को भोगने के लिए उठाता है। किन्तु अन्य रामायणों ने संभवत: मर्यादा के कारण ऐसा नहीं दिखाया। बँगला-रामायण में वह सीता को खाने के लिए पकड़ता है। उड़िया-रामायण में पकड़ने का उद्देश्य नहीं लिखा है। मानस में तो वह वेचारा आते ही मार दिया जाता है। वह सीता को छू भी नहीं पाता।

---

१. पाटसाड़ी, ३-६,७।

२. इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति, ३-२-१३।

उसके पूर्व-रूप के सम्बन्ध में पूर्वांचलीय रामायणें वाल्मीकि-रामायण के अनुसार उसे कुबेर का अभिशप्त चर बतलाती हैं। नाम में अन्तर है—असमीया में टम्बरू, बँगला में किशोर और उड़िया में सुबाहु (वाल्मीकि-रामायण में तुम्बरु)। वाल्मीकि-रामायण और असमीया-रामायण में वह रंभा पर आसक्त होने के कारण अभिशप्त हुआ है। उड़िया-रामायण में शाप का कारण अन्य है। उसने कुबेर को दुर्बल दृष्टि होने के कारण अपमानित किया था, इसीलिए अभिशप्त हुआ। मानस में उसके पूर्व शाप का उल्लेख इसलिए नहीं जान पड़ता कि तुलसी उसे राम द्वारा निज धाम पहुँचाना चाहते हैं।

वाल्मीकि-रामायण में अमर होने के कारण राम-लक्ष्मण उसे उसी के कहने पर गढ़ा खोदकर गाड़ते हैं, असमीया-रामायण में गाड़ते और जलाते दोनों हैं। बँगला में जलाते हैं। शेष दो में कुछ नहीं करते। जीवित गाड़ देने की बात से भाषा-रामायण-कार तुष्ट नहीं हुए इसीलिए, उन्होंने इस विषय में मौन धारण किया या उसे जला दिया।[1]

(३) **ऋषियों से भेंट**—रामादि आगे चलकर क्रमानुसार शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य के भाई और अगस्त्य से मिलते हैं। सभी प्रसंग समान हैं। वाल्मीकि रामायण में ऋषियों की मर्यादा की रक्षा की गयी है। रामादि आकर ही उन्हें प्रणाम करते हैं, ऋषि-लोग प्रिय अतिथि एवं राजा मानकर उन्हें पूजा-अर्घ्य देते हैं। भाषा-रामायणों में राम के ब्रह्म हो जाने के कारण ऋषि उन्हें ब्रह्म मानकर समादृत करते हैं। मानस में सुतीक्ष्ण का सम्बन्ध अगस्त्य से नहीं जोड़ा गया है, उन्हें विह्वल भक्त के रूप में चित्रित किया है। अध्यात्म-रामायण के द्वितीय-सर्ग में सुतीक्ष्ण राम की स्तुति करते हैं। यहाँ तुलसी की भक्ति-भावना मुखर हो उठी। मानो सुतीक्ष्ण के स्थान पर उन्होंने अपने को ही प्रतिस्थापित कर लिया। प्रेम-भक्ति के उन्माद का यहाँ अनोखा वर्णन है, जो अन्य ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। मानस में राम सुतीक्ष्ण के हृदय में चतुर्भुज-रूप भी दिखाते हैं।

अगस्त्य ने केवल राम को शस्त्रास्त्र दिये थे, किन्तु असमीया-रामायण में लक्ष्मण ने भी अगस्त्य से माँग कर धनुष प्राप्त किया।

(४) **जटायु से मैत्री**—पंचवटी में बस जाने पर राम पर्णशाला बनाकर रहने लगे, इसके आगे-पीछे ही जटायु से मैत्री हुई। बँगला रामायण में जटायु स्मरण करने पर आने की प्रतिज्ञा कर अपने देश चला गया। वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में ऐसा ही वर्णन है, उसी से प्रेरणा ली है।

---

१. विराध-वध—असमीया, पृष्ठ १६४-१६५, बँगला—१३५, उड़िया—७-८, मानस—३-६-७-८।

सीता-हरण :

(१) **शूर्पणखा**—शूर्पणखा राजकुमारों के रूप पर मुग्ध होकर आयी थी, किंतु उड़िया-रामायण में वह मनुष्य के पद-चिन्ह देख उन्हें खाने के प्रलोभन से आयी थी। दर्शन होने पर वह प्रलुब्ध हुई। इस रामायण में उसकी काम-चेष्टाओं का कुछ अश्लील वर्णन भी है।

शूर्पणखा के विरूपी-करण के पश्चात् खर राक्षस दूषण और त्रिशिरा के साथ राम पर आक्रमण करता है और ससैन्य निहत होता है। असमीया-रामायण में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार उसके पूर्व वह १४ राक्षसों को भेजता है।

(२) **सीता की चिन्ता**—उड़िया-रामायण में खर से युद्ध के पूर्व सीता राम को युद्ध से विरत करना चाहती हैं। उन्हें डर है कि यदि राम हार गये तो राक्षस लोग प्रतिशोध-वश उनके भी नाक-कान काट लेंगे। युद्ध जीत लेने पर राम ने सीता से कहा—'देखो, तुम तो मुझे छिप जाने के लिए कह रही थी।' सीता मान जाती है कि वे वासुदेव हैं। (३-२५)

(३) **सीता-हरण : रावण का दृष्टिकोण**—सीता-हरण के दो कारण थे—१. वहिन के अपमान और भाई के वध का प्रतिशोध २. सीता-सी सुन्दरी के प्रति लोभ।

अध्यात्म-रामायण में रावण को राम-भक्त दिखाया गया है। समस्त वृत्तांत जानकर उसे रात भर नींद नहीं आयी। उसने विरोध-वुद्धि से (३-५-५७-६१) ही वैकुण्ठ-प्राप्ति के लिए भगवान् का विरोध किया, क्योंकि वे भक्ति से इतने शीघ्र प्रसन्न न होते। **मानस** में भी वह अपने जैसे वलवान खर का वध सुनकर सोचता है कि यदि स्वयं भगवान ने पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अवतार लिया है।

तौ मैं जाइ वैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम वचन मन्त्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूप सुत कोऊ।
हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥ ३-२२-४-६

(४) **मारीच-स्वर्णमृग**—राम के साथ मारीच की दो वार मुठभेड़ हुई थी। पहली वार वह विश्वामित्र के यज्ञ-विध्वंस के समय राम द्वारा परास्त हुआ था। इसी अपमान का वदला लेने के लिए वह दो अन्य राक्षसों के साथ मृगरूप धारण कर वनवासी राम के पास गया था। राम ने दोनों राक्षसों को मार डाला। यह प्राण लेकर भागा। तव से वह राम से बहुत भयभीत हो गया था। रावण को विरोध न करने के लिए वह समझाता है। **उड़िया-रामायण** में दोनों स्थलों की पराजय का वर्णन है, किन्तु **शेष रामायणों** में मारीच अपनी केवल प्रथम पराजय का वर्णन करता है।

असमीया-रामायण में वह रावण को विभीषण और वह्नि त्रिजटा का परामर्श लेने के लिए कहता है।

लक्ष्मण का सन्देह—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार लक्ष्मण मृग देखकर सन्देह करते हैं कि यह कपटी-मृग मारीच है। उड़िया-रामायण में सीता उसकी असाधारणता देखकर सन्देह करती हैं और राम को रोकती हैं। दोनों ही काव्यों में राम निश्चिन्तता प्रकट करते हैं कि चाहे सत्य मृग हो या कपटी, दोनों ही स्थितियों में उसका वध होगा।

(५) **सीता की कटूक्ति**—मृग की आर्त्तवाणी से भ्रमित होकर सीता का उद्विग्न हो उठना स्वाभाविक था। पति के अनिष्ट की आशंका से आकुला नारी लक्ष्मण से हठ करती है, राम के पास जाने का। लक्ष्मण को विश्वास है कि राम को कोई नहीं जीत सकता। वे भाई की आज्ञा का उल्लंघन कर जाना नहीं चाहते। सीता को देर सह्य नहीं, वे धैर्य और विवेक खोकर लक्ष्मण को खरी-खोटी सुनाती हैं। वे उनके चरित्र पर सन्देह प्रकट करती हैं और भरत से गाँठगाँठ होना बताती हैं। तीनों पूर्वांचलीय रामायणों में ऐसा ही वर्णन है। **असमीया-रामायण और उड़िया-रामायण** की सीता और भी अधिक कटु हो उठी है। **मानस** में संयमशीला सीता के केवल मर्म-वचन बोलने का वर्णन है। तुलसीदास को सीता के मुख से ऐसे निन्दा-वचन शोभनीय नहीं लगे।

असमीया और बँगला-रामायण के लेखकों ने सीता के वचनों में तो नहीं, किन्तु लक्ष्मण के वचनों में संयम दिखाया है। वाल्मीकि के लक्ष्मण सीता को ओछी (प्रकृत) स्त्री कहकर धिक्कारते हैं। इन दो रामायणों में वे वनदेवियों आदि की साक्षी देकर चल पड़ते हैं।

उड़िया-रामायण में वे अवश्य ही स्त्री-स्वभाव की निन्दा करते हैं। साथ ही शाप देते हैं कि तुम्हें पर-दूषण की प्राप्ति हो। (पृ० ३७-३८)

(६) **लक्ष्मण-रेखा**—वाल्मीकि-रामायण और अध्यात्म-रामायण में लक्ष्मण-रेखा का वर्णन नहीं है। हनुमन्नाटक में और **आनंद-रामायण** में अवश्य है।

असमीया-रामायण में भी लक्ष्मण-रेखा का उल्लेख नहीं है। **बँगला-रामायण** में इसका स्पष्ट वर्णन है—

गण्डि दिया बेड़िलेन लक्ष्मण से घर—पृ० १५०।

उड़िया-रामायण में भी लक्ष्मण तीन रेखाएँ खींचते हैं—

एते बलि तिनिगार लक्ष्मण काटिले—पृ० ३८।

मानस में सीताहरण के समय रेखा का वर्णन नहीं हुआ, किन्तु लंकाकाण्ड में मन्दोदरी ने रावण से कहा है—

रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥ ६-३५-२

(७) **सीताहरण**—रावण के संन्यासी रूप में आकर सीता से वार्त्तालाप कर उन्हें हर लेने का एकसमान वर्णन रामायणों में है। **असमीया-रामायण** में रावण के प्रभाव का भी वर्णन है। वह जब आया तो भय से पक्षी मौन रह गये। हवा धीरे-धीरे बहने लगी। **उड़िया-रामायण** में रावण योगी का वेश धारण कर कर्णाटराग में चारों वेद गाता है और ओंकार, गायत्री एवं सावित्री पढ़ता है। सीता का लज्जा-शीला-वधू रूप सुन्दरता के साथ चित्रित है।

सीता की खोज :

(१) **जटायु से भेंट**—साधु-वेशधारी रावण के प्रकृत-रूप को देख सीता की ओजस्वी-उक्तियाँ, उनका हरण, जटायु से युद्ध, वन्दरों को देखकर आभूषण फेंकना तथा राम-लक्ष्मण की सीता-खोज आदि प्रसंग समानता रखते हैं। पूर्वाचलीय-रामायणों में राम जटायु को सीता का भक्षक निशाचर अथवा मारीच (उड़िया में) समझकर मारने को सन्नद्ध हो जाते हैं। यह वर्णन स्वाभाविक है। लहूलुहान जंतु और उसके आसपास सीता के अलंकार आदि देख राम का उसे हत्यारा समझना सहज था। मानस के राम ऐसी भूल नहीं करते। वे तो जाते ही उसके सिर पर हाथ रख देते हैं। वे उससे जीवन-धारण करने के लिए कहते हैं। वह नहीं तैयार होता तो उसे अपना धाम देते हैं।

(२) **कवन्ध**—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार वर्णन होने के कारण पूर्वाचलीय रामायणों के वर्णन में समानता है। स्थूलशिरा ऋषि और इन्द्र के शाप के कारण यह राक्षस हुआ और कुरूप भी। इसका सिर पेट में, आँखें कहीं की कहीं और भुजाएँ बहुत लम्बी थीं। इन्हीं भुजाओं से उसने राम-लक्ष्मण को पकड़ा। उसकी भुजाएँ काट डाली गयीं। उसके कहने पर राम उसका अग्निदाह कराते हैं, तब उसे दिव्य-रूप की प्राप्ति होती है और वह राम को सुग्रीव एवं शबरी से मिलने के लिए कहता है।

असमीया-रामायण में जब वह राम-लक्ष्मण को भुजाओं में कसता है तो उनके कड़े शरीर से जान जाता है कि ये क्षत्रिय हैं।

शाप देने वाले ऋषि के नाम में थोड़ा-सा भेद है। **असमीया** में स्थूलशिरा एवं **उड़िया** में स्थूलग्रीव नाम है। **मानस** का प्रसंग बहुत संक्षिप्त है—आवत पंथ कवन्ध निपाता—३-३२-६। तुलसीदास ने पूर्वकथा रुचि के साथ कही है। वह गन्धर्व है तथा दुर्वासा ने शाप दिया है। तुलसीदास को कवन्ध की कथा से एक सुअवसर मिल गया। उन्होंने अन्य बातों की उपेक्षा कर ऐसा संकेत किया कि कवन्ध को **विप्र-द्रोह** करने के लिए शाप मिला। इसी बहाने विप्रगुणगान किया है—

पूजिअ विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥ ३-३३-२

(३) **शबरी**—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार मतंग ऋषि की शिष्या शबरी ने राम का स्वागत किया और वह दिव्य-रूप धारण कर स्वर्ग चली गयी। सभी भाषा-

रामायणों में शवरी का एक जैसा चित्रण है। तुलसीदास ने शवरी के उदाहरण से सिद्ध करना चाहा है कि भक्ति के क्षेत्र में जाति-पाँति मान्य नहीं है।

शवरी के जूठे श्राम (उड़िया में)—लोक-कथाओं में प्रचार है कि शवरी वेरों को चख-चख कर मीठे-मीठे राम के खाने के लिए संचित करती रही थी। हिन्दी-भाषी क्षेत्र के गीतों में भी प्रचार है—'शवरी के वेर सुदामा के तंदुल।' वाल्मीकि-रामायाण में जूठे वेर प्रदान करने का उल्लेख नहीं है। अवोध भक्ति की विह्वलता राम को मान्य है, यह दिखाने के लिए ही शवरी के जूठे फलों की कल्पना हुई है।

उड़िया-रामायण में वर्णन है कि शवरी ने चख-चख कर मीठे आम-फल एकत्र किये थे। उसने सब प्रकार के आमों का ढेर राम के सामने लगा दिया, किन्तु राम ने वही फल खाये जो दाँत से कुतरे हुए थे। शवरी के पूछने पर वे बोले, मैं वही आम खा रहा हूँ जिन पर दन्तमुद्रा है। अमुद्रित पदार्थ मैं ग्रहण नहीं कर सकता। (पृ० ५२)

इस कथा पर आदि-वासियों का प्रभाव लक्षित होता है। मध्य-भारत के कोल अपने को शवरी-वंशज मानते हैं।

पूर्वांचलीय-रामायणों के वे प्रसंग जो मानस में नहीं हैं :

(१) **सीता का हिंसाभय**—वाल्मीकि-रामायण में राम का उद्देश्य राक्षस-वध जानकर सीता उन्हें हिंसा से विरत करना चाहती हैं। वे एक ऋषि का उदाहरण देती है कि कोई उसके पास तलवार रख गया था, इस तलवार के कारण ही वह हिंसा-वृत्ति में लीन हुआ।

वँगला और उड़िया रामायणों में यह वर्णन है। वँगला-रामायण में इस ऋषि का नाम भी वताया है—दक्ष। उड़िया-रामायण में भी सीता का भय उपर्युक्त प्रकार का ही है। राम क्षत्रिय के कर्त्तव्य आदि वताकर सीता का समाधान कर देते हैं।

इस प्रसंग में वैष्णवों का अहिंसा-प्रेम लक्षित होता है। इसका स्थल सुतीक्ष्ण से भेंट के उपरान्त है।

(२) **माण्डकर्णि ऋषि और पंचाप्सर-सरोवर**—उपर्युक्त प्रसंग के पश्चात् रामादि आगे वढ़ते हैं। वे एक सरोवर से गीत-वाद्य की ध्वनि सुनकर जिज्ञासा प्रकट करते हैं। ऋषि लोग समाधान करते हैं कि माण्डकर्णि ऋषि ने उग्र तप किया। देवताओं ने तप से चिन्तित होकर उनके पास पंच-अप्सराओं को भेजा। ऋषि तप-भ्रष्ट होकर इन्हीं पंच-अप्सराओं को लेकर तप-वल से जल के नीचे प्रासाद वनाकर विलास करते हैं। वाल्मीकि का यह वृत्तान्त तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में उपलब्ध है। **असमीया** में ऋषि का नाम मन्दकन्नि है, **वँगला** में नाम नहीं दिया है, और **उड़िया** में मन्दकर्ण कहा गया है।

(३) **दिव्य-भोजन**—तीनों रामायणों में व्रह्मा के आदेश से इन्द्र सीता के

पास दिव्य-भोजन लेकर जाते हैं (अध्यात्म में पायस, बँगला में परमान्न और उड़िया में अमृत) इसके सेवन से वर्षों तक नींद, भूख आदि का अनुभव नहीं होगा। सीता इन्द्र पर अविश्वास करती हैं और इन्द्र उन्हें वास्तविक रूप दिखाकर सन्तुष्ट करता है।

वाल्मीकि-रामायण के अरण्यकाण्ड के एक प्रक्षिप्त सर्ग में इन्द्र के हवि लाने का उल्लेख हुआ है। किष्किन्धा-काण्ड में संपाति बन्दरों को राम की समस्त कथा सुनाता हुआ इन्द्र द्वारा प्रदत्त पायस का वर्णन करता है। सीता राम और लक्ष्मण के लिए खीर का अंश निकालकर रख देती हैं। (देखिए—४-६२-८,१०)

तुलनात्मक-अध्ययन से बचे हुए प्रसंग

बँगला-रामायण :

सुपार्श्व—वाल्मीकि-रामायण के किष्किन्धा-काण्ड (अध्यात्म ५८) में संपाति के पुत्र सुपार्श्व का वर्णन हुआ है। कृत्तिवास ने इसका वर्णन अरण्यकाण्ड में रखकर इसे मूच्य से अभिनेय कर दिया। वाल्मीकि-रामायण में संपाति बताता है कि एक बार मेरे पुत्र ने आकर कहा कि मैंने एक काले पुरुष को सुन्दर स्त्री के साथ जाते देखा। दोनों को खाने के लिए मैंने मुँह खोला तो पुरुष गिड़गिड़ाने लगा और मैंने उन्हें जाने दिया, क्योंकि मधुर-भाषी जनों पर प्रहार करने वाला कोई ही इस पृथ्वी पर मिलेगा। (३-५६-१६-१८)

बँगला-रामायण में इस वृत्तांत का स्थल ही नहीं बदला, वरन् रूप भी बदला है, सुपार्श्व को देवता बताते हैं कि रावण सीता का अपहरण किये जा रहा है। वह रथ रोककर अपने पंखों से सीता-सहित रावण को ढक लेता है। सीता को चोट न लगे इस बात का वह ध्यान रखता है। वाल्मीकि का सुपार्श्व सीता से परिचित नहीं है, वह सीता को भी खाने के लिए प्रस्तुत हो गया था। वाल्मीकि-रामायण में सुपार्श्व रावण को केवल साधारण गिड़गिड़ाने पर छोड़ देता है किन्तु बँगला-रामायण का रावण अपने पक्ष में सबल तर्क देता है और सुपार्श्व उसके तर्कों से प्रभावित होकर ही छोड़ता है—पृष्ठ १५५।

अगस्त्य द्वारा **वातापि-इल्वल** को दण्डित करने की भी कथा है।

उड़िया-रामायण :

पिंडदान और फल्गु नदी को शाप-वर—राम सीता-लक्ष्मण सहित दंडकारण्य से गया पहुँचे। उन्होंने गयासुर को मारा। उसके पैर गोदावरी में और नाभि विरजा-क्षेत्र में गिरे।

गया में सीता ने राम की अनुपस्थिति में गोत्र-उच्चारण कर बालू के पिंड दिये, दशरथ ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें ग्रहण किया। राम ने भी पिंड दिये देवताओं ने कहा, अब पिंड की क्या आवश्यकता है। राम ने फल्गु से प्रमाण माँगा कि क्या सीता

ने पिंड दिये हैं। सीता के उपरोध से फल्गु ने नहीं बताया, तब राम ने शाप दिया—तुममें जल नहीं रहेगा। यात्री तुम्हारे हृदय को विदीर्ण कर जल निकालेंगे।

फल्गु के अनुरोध पर सीता ने कहा—तू वर्षा में दोनों कूलों को बहाकर बहेगी। शीतकाल में तू गुप्त हो जाएगी। रेत निकालने पर तू जल देगी। राम का कथन मिथ्या नहीं हो सकता, किन्तु यदि कोई तेरे बालू के पिंड लेकर गोत्र-उच्चारण करेगा तो उसके पितृ स्वर्ग में वास करेंगे।

राम यहाँ पाँच दिन रहे, क्योंकि सीता रजोवती थीं। इस तीर्थ का नाम **राम-गया** हुआ। (पृ० १३)

बँगला-रामायण के कुछ संस्करणों एवं **आनन्द-रामायण** में भी सीता के पिंड-दान का वर्णन है।[1]

(क) **तीर्थ-स्थित ब्राह्मणों का ओछापन और उनका दंड : गया के ब्राह्मण**—ब्राह्मणों ने राम से दक्षिणा माँगी। तपचारी राम दक्षिणा कहाँ से देते। वे सीता के गहने माँगने लगे। स्त्री-धन होने के कारण राम ने वे भी नहीं दिये। तब वे सामान छीनने लगे। वे सीता के पीछे पड़कर उनके गहने छीनने का प्रयास करने लगे। साड़ी का आँचल पकड़े जाने पर सीता राम की गोद में जाकर आकुल हो उठीं। लक्ष्मण ने राम के कहने पर खड्ग से आँचल काटकर सीता को मुक्त किया। अब ब्राह्मण क्रुद्ध लक्ष्मण के शस्त्रों को देख डर गये और गालियाँ देने लगे—तुम जटाजूट-धारी दोनों लोग परनारी को चुरा लाये हो।

राम ने क्रोध-पूर्वक कहा—'अब मैं कभी गया और फल्गु नहीं आऊँगा। ब्राह्मण कितना भी अर्जित क्यों न करे, दूसरे दिन नहीं रहेगा।' राम ने धनुष से रेखा खींची, यही **पुण्य-तोया** नदी हो गयी—पृष्ठ १४-१५।

बलरामदास को अपने पूर्ववर्ती कवि सारलादास के वर्णन से ऐसी प्रेरणा मिली है। सारलादास के भागवत में ब्राह्मण लोग राम की अनुपस्थिति में सीता को दान के लिए विवश करते हैं। वे सम्पूर्ण वस्त्रालंकार दान कर पद्म-पत्रों से अपना शरीर ढक लेती हैं। राम लौटकर ब्राह्मणों और फल्गु को शाप देते हैं। दोनों ही लेखक शूद्र थे अतएव ब्राह्मण-द्रोह से प्रेरित होकर यथार्थ वर्णन की चेष्टा की है।

(ख) **काशी के ब्राह्मण**—काशी में आकर राम ने मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर विश्वेश्वर के दर्शन किये। यहाँ भी ब्राह्मणों द्वारा तंग किये जाने पर उन्होंने शाप दिया—'लक्ष-लक्ष धन होने पर भी तुम भिक्षुक कहे जाओगे। बाल-वृद्ध-युवा सभी वाणिज्य करोगे और लाभ के लिए बेटा तक को बेचोगे'—पृष्ठ १६।

---

१. कृत्तिवासी बँगला-रामायण और रामचरितमानस—(र० ना० त्रिपाठी), पृ० १७९।

अनेक तीर्थ-भ्रमण— राम भास्कर तीर्थ और **चन्द्रभागा** संगम पर पहुँचे। मार्ग में राम के गले की रुद्राक्षमाला का एक रुद्राक्ष गिरा। राम ने कहा, इससे एक पेड़ उगेगा और वह **राम-रुद्राक्ष** कहलाएगा। **चन्द्रभागा** संगम पर **बुलाइचंडी** नामक देवी की स्थापना कर उसका **रामचंडी** नामकरण किया। शिव की पूजा की। एक दर्पण-कान्ति पाषाण को चीर कर उसको **पाषाणचंडी** नाम दिया। **एकाम्र-वन** में जाकर **बिन्दुसागर** में स्नान किया। **चित्र उत्पला** के कूल पर **विष्णुनाथ** के दर्शन किये। **दक्षिण वाराणसी पुरी** में स्नान किया और वालुका की पूजा कर **वालुकेश्वर** नाम दिया। एकाम्रवन के एक वन को **रामेश्वर** नाम देकर मठ की स्थापना कर कुछ दिन रहे। यहाँ से पूर्व की ओर पुण्यगिरि गये वहाँ से नीलगिरि।

जगन्नाथ-दर्शन – दक्षिण सिन्धु में स्नान कर दारुब्रह्म को देखा। वहाँ त्रिविधि-मूर्ति के दर्शन किये। राम, लक्ष्मण और सीता क्रमशः जगन्नाथ, बलराम और सीता के सन्मुख खड़े हुए।

पाषाण न मिलने पर लौका का पूजन किया। **ऋष्यकुल्या** नदी पहुँचे। **अक्षतेश्वर** नामक वामदेव की पूजा की। पर्वत पर **कुलाइचंडी** नामक देवी की पूजा की। उसे राम ने अपना नाम दिया। **वालुकेश्वर** की पूजा की (क्या पुनरुक्ति ?) पश्चिम की ओर नदी के तट पर पहुँचकर लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से तूमा का लिंग बनाया। राम ने प्राण-प्रतिष्ठा की और अँगूठी का हीरा उसी में लग गया। यह **तुम्बेश्वर** कहलाया—१५-१७।

शम्बर मृग की पूँछ से सीता का केश-शृंगार – मृगयूथ के मध्य कृष्णमृग की पूँछ देख सीता ने अपने केशों में खोंसने की इच्छा व्यक्त की। राम ने नाराच फेंका, फिर सोचा, केवल आहार के लिए प्राण-नाश करता हूँ। इस समय मृग-वध अनुचित है। दूसरा वाण फेंका, उसने पहले से कहा—'प्रभु का आदेश केवल पूँछ के लिए है। 'पूँछ काटकर सीता को दे दी गयी—(१८)

गार्हस्थ्य-सुख— गार्हस्थ्य-जीवन के सुन्दर चित्र खींचे गये हैं। राम ने हिरण मारा, लक्ष्मण ने मांस काटा, राम लकड़ी लाये, सीता ने पकाया। चकमक पत्थर से आग जलाने का उल्लेख है। सीता नदी में स्नान कर, पैर धोकर और आचमन कर चौके में जाती हैं। अन्त में सीता ने राम के पैर दबाये। लक्ष्मण जागते रहे। (२०-२१)

मन्दोदरी की शिक्षा –मन्दोदरी ने रावण को समझाया कि जटाजूट धारी और कष्टमय जीवन-यापन करने वालों को क्यों कष्ट दोगे ? शूर्पणखा ने अपने किये का फल पाया है। रावण मन्दोदरी को प्रबोध देकर चल पड़ता है—२१।

देवताओं का आनन्द—सीता के हरण पर देवताओं ने हर्ष प्रकट किया। वृहस्पति ने पत्रा लेकर भविष्यवाणी की—'११ मास पश्चात् रावण तथा अन्य राक्षस मरेंगे, आज आषाढ़ अमावस्या है। नन्दिकेश्वरशाप, रम्भा का प्रज्ज्वलित क्रोध और

वेदवती का क्रोद्ध तीनों एकत्र हुए हैं।' (४२)

लक्ष्मण-ह्रद—कवन्ध-वध के पश्चात् मार्ग में राम के लिए जल न मिलने पर लक्ष्मण ने पर्वत को चीरकर जल निकाला, यही लक्ष्मण-ह्रद है। वहाँ से **तुंगभद्रा** नदी में स्नान कर **वरुणाक्ष लिंग** की पूजा की - ·५१।

अभिशप्त चक्रवाक—राम विरह-प्रमत्त होकर पक्षियों से सीता के विषय में पूछते हैं। केलिरत चक्रवाक क्रुद्ध होकर बोला—'यति-रूप धारण कर रमण की इच्छा रखते हो। नग्नावस्था में संन्यासी और स्त्री को देखना पाप है। तुम शास्त्र नहीं जानते, तुमने रति में भंग उपस्थित किया है।' लक्ष्मण ने शाप दिया—'तेरी भार्या तेरी रमणी नहीं रहेगी।' चकवा मुख में तिनका दवाकर राम के चरणों में लोटने लगा। राम ने कहा, 'लक्ष्मण का शाप रहेगा किन्तु केवल रात के लिए।' चकवी ने चकवे को डाँटा, 'सीता को रावण ले गया, तूने वताया क्यों नहीं।' एक व्याध ने आकर दोनों को पेटी में वन्द कर लिया किन्तु राम का स्मरण कर दोनों पेटी फाड़कर निकल गये—५६। आदिवासियों में प्रचलित कथा का प्रभाव है।

गोंड-गोपाल को शाप और वर—क्षुधाग्रस्त राम संकोच-वश एक गोपाल से दूध न माँग सके। क्षत्रिय लक्ष्मण गाएँ छीनने को प्रस्तुत हुए। राम अदोषी को मार कर पर-सम्पत्ति छीनने के लिए प्रस्तुत नहीं हुए। उनके कथन में मार्मिकता है कि वे स्त्रीहरणकर्त्ता का कुछ कर न सके, निर्दोष को कैसे कष्ट दें। उन्होंने रत्नजटित अँगूठी दिखायी। गोपाल हँसकर बोला, 'यह किस पेड़ में लगता है। मैं दूध से कुटुम्ब पालता हूँ, माँगने पर तुम्हें नहीं दे सकता।' लक्ष्मण ने समस्त दूध के रक्त हो जाने का शाप दिया। उसके विनय करने पर राम ने दया कर कहा, 'तुम्हें क्षमा करता हूँ, किन्तु तुमने दूध माँगने पर जो उपहास किया, उसका फल तुम्हें कलियुग में भोगना पड़ेगा। तुम्हारी स्त्रियाँ विदेश में गोरस वेचेंगी, सभी गोपाल खा-खाकर निश्चिन्त पड़े रहेंगे। तुम्हारे ऊपर कोई दया नहीं करेगा। राजा के सेवक (दूध आदि) वलात् छीन लिया करेंगे।' साथ ही राम ने उन्हें दुर्भिक्षकाल में अप्रभावित रहने का वर दिया।

गोपाल ने गाय दुहकर शालपत्र का दोना वनाकर दिया। उसने दो पुत्रों का वर माँगा। राम ने कहा—तुमने दूध पिलाया, इसलिए हम तुम्हारे धर्मपुत्र हैं। अगले जन्म में तुम्हारे पुत्र होकर उत्पन्न होंगे—५७-५६।

इसमें भी लोकप्रचलित आख्यानों का प्रभाव तो है ही, साथ ही सरल भक्ति और **कृष्णभक्ति** का भी।

कदम्ब का फूल और सीता की स्मृति - कदम्ब का फूल देखकर राम उसका सिरा खोजते रहे किन्तु नहीं खोज पाये। तव याद आयी कि इसी प्रकार सीता की खोज नहीं कर पाये हैं—५६।

उड़िया-रामायण के विषय में एक शंका—पृष्ठ ६ पर रामादि की सुतीक्ष्ण से भेंट वर्णित की है, इसके अनन्तर अन्य कथाओं के साथ **गया-माहात्म्य** भी आता है,

जिसके अन्तर्गत गया-तीर्थ एवं वहाँ के पतित ब्राह्मणों की कथा है। गया से राम उड़ीसा के तीर्थों में पहुँचाये जाते हैं फिर वहाँ से काशी और प्रयाग में दिखाये जाते हैं। पृष्ठ १३ पर वे फिर सुतीक्ष्ण से मिलते हैं। सम्भवत: सुतीक्ष्ण की दोनों भेंटों के मध्य की कथा प्रक्षिप्त है, यदि नहीं है तो यही कहना होगा कि लेखक ने भौगोलिक यथार्थता एवं महाकाव्यत्व की चिन्ता नहीं की है।

मानस के प्रसंग :

लक्ष्मण की जिज्ञासा—पंचवटी में लक्ष्मण ने एक बार राम से ब्रह्म, जीव, भक्ति आदि के सम्बन्ध में प्रश्न किया और राम ने उन्हें समझाया। यहाँ लक्ष्मण जैसे वीर-पात्र के लिए दर्शन की प्यास अस्वाभाविक-सी लगती है। कुछ हो, किन्तु तुलसी ने इसी के बहाने भक्ति के महत्त्व और साधन आदि पर अच्छा प्रकाश डाला है। उनके इन सिद्धान्तों पर गीता का प्रभाव है।

मायासीता—वाल्मीकि-रामायण में रावण सीता को केश एवं जाँघ पकड़ कर उठाता है (३-४६-१८)। कुछ लेखकों को रावण-द्वारा सीता का छुआ जाना अच्छा न लगा। भारत में सीता नारी की पवित्रता की चरम आदर्श हैं। जिस समय मुसलमानों का शासन था, नारी की पवित्रता का प्रयोजन और भी बढ़ गया था। अतएव रावण द्वारा अस्पृष्ट सीता का वर्णन करने के लिए माया-सीता की कल्पना हुई। तुलसी पर अध्यात्म-रामायण (३-७-२,३) का प्रभाव है।

मानस के अनुसार जिस समय लक्ष्मण फल-मूल लेने जाते हैं, राम सीता को बुलाकर कहते हैं—मैं जब तक नर-लीला कर राक्षसों का विनाश न कर लूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो। सीता अपना प्रतिबिम्ब राम के पास छोड़कर आग में समा गयीं।

इस प्रकार अब रावण जिस सीता को छुएगा वह छाया-सीता होगी, वास्तविक नहीं। अध्यात्म-रामायण में रावण इस छाया-सीता को भी नहीं छूता। वह नखों से खोदकर उन्हें पृथ्वी-सहित उठा ले जाता है। (३-७-५१)

इस प्रसंग में मानसकार को एक सुविधा और मिली। लंकाकाण्ड में युद्ध की समाप्ति पर राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा ली थी। वाल्मीकि-रामायण के राम की सीता के प्रति उक्तियाँ तुलसी को सहन नहीं हुई। अब ऐसी स्थिति में अग्नि-परीक्षा का उद्देश्य ही बदल गया। राम छाया-सीता को लुप्त कर अग्नि से वास्तविक सीता चाहते हैं, इसीलिए अग्नि-परीक्षा का ढोंग-सा कर रहे है।

उड़िया-रामायण के उत्तरकाण्ड में मायासीता की कथा की ओर संकेत है। देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ के उत्तरकाण्ड का तुलनात्मक-अध्ययन।

नारद-भेंट—मानस में राम-नारद मिलन की स्वतन्त्र उद्भावना हुई है। नारद ने सोचा, उन्हीं के कारण प्रभु राम शाप शिरोधार्य कर दु:खी हैं, अतएव वे

राम को प्रसन्न करने एवं उन से वर माँगने जाते हैं। इस भेंट के उद्देश्य निम्न हैं—

(१) राम-नाम का महत्त्व-वर्णन।

(२) भक्त और ज्ञानी का भेद तथा राम का भक्त के प्रति पक्षपात।

(३) संत-लक्षण-कथन।

किष्किन्धा-काण्ड

(प्रत्येक पूर्वांचलीय-रामायण में इसे किष्किन्धा-काण्ड कहा गया है।)

समान प्रसंग :

१. राम-सुग्रीव-भेंट—राम-लक्ष्मण को देखकर सुग्रीव का चिन्तित होना कि वालि के भेजे हुए तो नहीं। हनुमान का वेश बदलकर राम-लक्ष्मण से मिलना। अग्नि जलाकर राम और सुग्रीव की मैत्री होना। सुग्रीव द्वारा सीता के वस्त्राभरण राम को देना। राम का विलाप। राम द्वारा वालि-वध की प्रतिज्ञा करना। सीता की खोज के लिए सुग्रीव का आश्वासन।

२. मायावी और दुंदुभि राक्षसों से वालि का युद्ध। मायावी को मारने के लिए वालि का कन्दरा-प्रवेश। वालि का मरण जानकर सुग्रीव का द्वार पर शिला रखकर नगरी में लौट आना। मन्त्रियों द्वारा अभिषेक। विजयी वालि का सुग्रीव पर रोष। उसे राज्य से खदेड़कर उसकी पत्नी से भोग। महिष-रूप दुंदुभि राक्षस को मारकर फेंकने से मतंग-ऋषि का वालि को शाप कि यदि इस पर्वत पर आया तो मृत्यु होगी। सुग्रीव का इसी पर्वत पर निवास।

३. राम की बल-परीक्षा—राम द्वारा सप्त-वृक्षों का एक बाण से भेदा जाना तथा दुंदुभि की अस्थियों का पैर के अँगूठे से कई योजन दूर फेंकना।

४. वालि-वध—राम का बल पाकर सुग्रीव का वालि को ललकारना। मार खाये हुए सुग्रीव का राम के प्रति क्षोभ-प्रकाश कि वालि को मारा क्यों नहीं। पुष्पमाल की पहचान देकर सुग्रीव को पुनः भेजना। तारा का वालि को युद्ध न करने के लिए समझाना। वालि का हठपूर्वक सुग्रीव से युद्ध तथा राम के बाण से आहत होकर पतन। राम की भर्त्सना करना और उसके वध के लिए राम का तर्क प्रस्तुत करना। वालि का पश्चात्ताप। तारा का विलाप। वालि की अन्त्येष्टि। सुग्रीव का अभिषेक।

५. राम का विरह-दुःख—वर्षा और शरद् ऋतु में राम की विरह-व्यथा। राम का क्रुद्ध होकर लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजना।

६. सुग्रीव-लक्ष्मण—क्रुद्ध लक्ष्मण का किष्किन्धा जाना। तारा के मधुर वचनों से लक्ष्मण का शांत होना। सुग्रीव का क्षमा माँगना। दूत भेजकर वानर-सेना बुलाना।

७. सीता की खोज—सभी दिशाओं में वानरों का भेजा जाना। दक्षिण दिशा की ओर हनुमान-अंगद आदि प्रमुखों को भेजना। हनुमान को राम द्वारा मुद्रिका देना। सभी दिशाओं से निराश वानरों का लौटना।

८. स्वयंप्रभा—थके हुए हनुमानादि का एक विवर से जलचरों को बाहर निकलते देख जल का अनुमान कर प्रवेश। स्वयंप्रभा से भेंट, उसके द्वारा आँख बन्द कराके वानरों का उद्धार होना।

९. अंगद की चिन्ता अथवा विद्रोह, हनुमान का समझाना। अंगदादि की प्रायोपवेशन की तैयारी।

१०. सम्पाति-भेंट—वानरों के रूप में विपुल आहार देख सम्पाति की प्रसन्नता। वानरों के मुख से जटायु का नाम सुनकर उसकी जिज्ञासा। सम्पाति और जटायु की उड़ान की कथा। मुनि की भविष्य-वाणी के अनुसार पंखों का उदय।

०राम-सुग्रीव-मैत्री – उड़िया रामायण में सुग्रीव के भय का वर्णन विस्तृत रूप से हुआ है। वह दुःस्वप्न भी देखता है। हनुमान सुग्रीव की भयाक्रान्त-स्थिति से इतने शंकित हैं कि राम से मिलने जाने के पूर्व सुग्रीव को शपथ देकर जाते हैं कि यहाँ से कहीं मत जाना। राम-लक्ष्मण जामुन के नीचे सीता की चिन्ता कर रहे थे।

बँगला, उड़िया और हिन्दी रामायणों के हनुमान राम के ब्रह्मत्व से परिचित हैं। बँगला और उड़िया रामायणों में हनुमान सुग्रीव को राम का जिन शब्दों में परिचय देते हैं उनमें समानता है—

योगे यागे योगिगण ना पाय याँहारे। सेई राम रमानाथ उपस्थित द्वारे॥

बँगला-रामा०, पृ० १६४

से प्रभु तोहर आसिछन्ति दुःख फेड़ि। योगिजन याहाकुटि न पावन्ति लोड़ि॥

उड़िया-रामा०, १०

मानस की राम-हनुमान-भेंट बड़ी ही मार्मिक है। बिछुड़े प्रभु से विह्वल-भक्त मिलकर असीम हर्ष का अनुभव कर रहा है। उड़िया-रामयण में राम-हनुमान-भक्ति की कथा का उल्लेख है, जिसका वर्णन इसी काण्ड के अन्त में होगा।

राम की बल-परीक्षा—**मानस** में केवल इतना लिखा है—

दुंदुभि अस्थि ताल देखराए।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥ ४-६-१२

किन्तु **पूर्वांचलीय-रामायणों** में दुंदुभि-राक्षस की अस्थियों का फेंका जाना तथा सप्त-वृक्ष वेध का वर्णन विस्तारपूर्ण है। बँगला और असमीया में वृक्ष ताल के हैं एवं उड़िया में साल के।

उड़िया-रामायण के अनुसार सप्तद्वीपों के इन सात साल-वृक्षों को जीतने वाला सप्त द्वीपों का विजेता होगा। ब्रह्मा ने आधे प्राणों से वालि को और आधे से इन पेड़ों को बनाया। योगिजन की संगति करने वाला ही इन्हें वेध सकता है। वालि स्वयं इनमें से तीन को वेधने में समर्थ हैं। इनके वेधने से वालि की मृत्यु होगी। पृ० १६।

वालि और राम—सभी रामायणों में तारा वालि को युद्ध न करने के लिए

समझाती है। उड़िया-रामायण की तारा विचित्र तर्क देती है। वह कहती है, तुम्हारी जय नहीं होगी। मैं सधवा के शृंगार धारण न कर सकूँगी। विधवा होकर कष्ट भोगने होंगे—३४।

सभी रामायणों में वालि राम से क्रुद्ध होकर गालियाँ देता है। **मानस** का वालि अवश्य ही हृदय में प्रीति लेकर ही कठोर वचन बोलता है। वह राम का भक्त है न।

असमीया का वालि उनके ब्रह्मत्व से परिचित होकर भी खरी-खरी सुनाने में चूकता नहीं है। 'विड़ाल का ब्रह्मचर्य धारण किये हो? हे वसुमति, तेरी यह गति कि एक अधम आचार वाला तेरा पति है। सूर्यवंशी क्षत्रियों के कुल में जन्म लेकर भी ऐसा व्यवहार? सीता के लिए ऐसा किया, सीता को तो मैं ही ला देता।' (पृ० २२१)

राम के तर्क—वाल्मीकि-रामायण में राम वालि के प्रश्नों से अप्रतिभ नहीं हुए, उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि, 'तूने अनीति की है और मैंने अयोध्या के राजा भरत के प्रतिनिधि-रूप में तुझे दंड दिया है। मैंने युद्ध नहीं किया है। मैं सुग्रीव को सहायता देने की प्रतिज्ञा भी कर चुका था।'

असमीया-रामायण में राम उसे दुर्जन, चंचल, मंद, तरल, चोर, दुराचार आदि विशेषण प्रदान कर कहते हैं—'राजा लोग वन-पशुओं को जाल में फँसाकर मारते रहे हैं। तूने कनिष्ठ की भार्या को घर में रखा था। मैंने सुग्रीव को राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की थी।'

वँगला-रामायण में राम के तर्क ऐसे ही हैं किन्तु राम में आत्मविश्वास की कमी प्रतीत होती है।

उड़िया-रामायण में राम तेजस्वितापूर्वक कहते हैं—तूने भाई की पत्नी का भोग किया। सहोदर को मारना चाहा। सूर्यवंश का राज्य सारी पृथ्वी पर है, अतएव मैंने अन्यायी को मारा है।

मानस के राम उसकी अनीति की ओर ही संकेत नहीं करते, अपितु अपने ब्रह्मत्व की उपेक्षा देखकर भी उसे डाँटते हैं, मेरे भुजवल पर आश्रित सुग्रीव को तू मारना चाहता था।

राम की प्रतिक्रिया—राम के ब्रह्मत्व से परिचित वालि अपनी भूल स्वीकार कर लेता है। इसकी प्रतिक्रिया राम पर भिन्न-भिन्न होती है। **असमीया-रामायण** और **मानस** में वे अपरिवर्तित से रहते हैं। मानस के राम द्रवित होते से प्रतीत होते हैं, वे उसे शरीर धारण के लिए कहते हैं, किन्तु वह स्वयं प्रस्तुत नहीं होता।

वँगला-रामायण में राम वालि को मारने से लज्जित और दुःखित हैं। वे वालि से क्षमा भी माँगते हैं। हनुमन्नाटक में भी राम को दुःख हुआ है—'महावीरं अपराधिनं वालिनं हत्वा मन्दभाग्यः कथमहं जानकीसुखमनुभविष्यामि'। (५-५५)

उड़िया-रामायण में भी राम विलाप कर उठे हैं। वे धनुप फेंककर विलाप करते हैं और कहते हैं—तू सुग्रीव का भाई मेरा भी ज्येष्ठ है। मेरे दोष न लो,

अपराध क्षमा कर दो।

सभी रामायणों में वालि अंततः तुष्ट हो जाता है।

सीता की खोज और भूगोल—वाल्मीकि-रामायण में ही सीता की खोज के सम्बन्ध में जिन नाना देश, जातियों आदि का वर्णन है, वह पूर्णतः सत्य प्रतीत नहीं होता। असमीया और मानस में भूगोल का वर्णन नहीं है। बँगला और उड़िया रामायणों में चतुर्दिशाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। जिन देशों का वर्णन है उनमें कुछ सत्य हैं और कुछ काल्पनिक।

राम का अभिज्ञान—राम हनुमान को अँगूठी देते हैं, किन्तु उड़िया-रामायण में सीता से तिलकवाली घटना का भी उल्लेख करने के लिए कहते हैं। इस घटना का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के अध्ययन में हो चुका है।

स्वयंप्रभा—विवर की रक्षिका स्वयंप्रभा की कथा में समानता होते हुए भी उसके नामादि में भिन्नता है। असमीया और हिन्दी रामायण में तो वह राम के प्रति भक्ति-भाव धारण किये है, विशेपतः द्वितीय में।

वाल्मीकि-रामायण में स्वयंप्रभा मेरु सावर्णी की वेटी है। हेमा की सखी है। हेमा किसी की पत्नी नहीं है। मय-दानव ने इस सुन्दर स्थान का निर्माण किया था। वह जव हेमा अप्सरा पर आसक्त हुआ तव इन्द्र ने उसे मारकर यह स्थान हेमा को दे दिया। धर्मचारिणी स्त्री स्वयंप्रभा उस स्थान की रखवाली करने लगी। वाल्मीकि के इस वृत्तांत में सभी भाषा-रामायणकारों ने परिवर्तन किये हैं। (५१-५३ सर्ग)

असमीया के अनुसार साज-सज्जा के मध्य वैठी एक सुन्दरी को प्रणाम कर वानर उसका परिचय पूछते हैं। वह वताती है—मय दानव ने यह नगरी रची है। उसकी पुत्री और चित्रसेन की सुन्दरी हेमा अप्सरा यहाँ क्रीड़ा करती हैं। इन्द्र ने यह नगरी हेमा को दी। मैं उसकी सखी हूँ, और यहाँ रखवाली करती हूँ। वह राम की कथा पूछती है और राम के चरणों में भक्ति-भाव रखने की कामना भी करती है। (पृष्ठ २३७-३८)

बँगला-रामायण के अनुसार स्वयंप्रभा का नाम सम्भवा है और वह हेमा की सखी है। हेमा मेरु-पर्वत की कन्या और मय की पत्नी है। सम्भवा वन्दरों को मय-दानव का भय दिखाकर भाग जाने के लिए कहती है। (२००-२०१)

उड़िया-रामायण में नामों की और भी भिन्नता है। इसमें स्वयंप्रभा मेरु की पुत्री गिरिजा हो जाती है और वह नीललोहित की भार्या है। हेमा का नाम इसमें विरूपा है जो कि मय की पत्नी है और यहाँ रखवाली करती है। यह जगतमोहनी मृगाक्षी-तरुणी कक्षा-वस्त्र तथा जटा-विभूति धारण किये है। (पृष्ठ ८१-८२)

मानस में उसका नाम-परिचय नहीं दिया गया। वह एक रुचिर मन्दिर में वैठी हुई तप-पुंज नारी है। दूर से ही सवके प्रणाम करने पर वह निज वृत्तांत

सुनाकर तथा स्नान और फलाहार करने के लिए सबको नेत्र मूँदकर बाहर निकल जाने के लिए कह देती है। वन्दरों के चले जाने पर वह राम के पास जाकर और उनके चरणों में विनय निवेदित कर अनपायनी भक्ति प्राप्त करती है। तदनन्तर वह राम की आज्ञा शिरोधार्य कर बदरीवन को चली जाती है। (४-२४ से २५)

मानस का यह परिवर्तन अध्यात्म-रामायण के प्रभाव से हुआ है। उसमें लिखा है—'त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघवसन्निधिम्'— ४-६-५६।

सम्पाति—जटायु के साथ उड़ने की प्रतियोगिता में सम्पाति के पंख जले थे। निशाकर ने उसे बताया था कि रामदूतों से रामकथा सुनकर उसे पक्ष-लाभ होगा। **बँगला** और **उड़िया-रामायणों** में नाम निशाकर ही है, **असमीया** में अगस्त्य और **मानस** में चन्द्रमा है। निशाकर और चन्द्रमा पर्यायवाची भी हैं। आनन्द-रामायण में नाम चन्द्रशर्मा है। **असमीया-रामायण** के अनुसार यह प्रतियोगिता मुनियों के कारण हुई। सम्पाति और जटायु में अपने-अपने बड़प्पन के सम्बन्ध में विवाद हुआ। दोनों ही निपटारे के लिए मुनियों के पास पहुँचे। मुनि लोग निर्णय देने में डरे, उन्होंने उड़ने की प्रतियोगिता रख दी कि जो सूर्य का रथ छू आये वही बड़ा माना जाएगा—असमीया०, पृ० २४१-४२।

उड़ने की संक्षिप्त कथा चारों रामायणों में है। असमीया और उड़िया कथाओं में सम्पाति के पुत्र **सुपार्श्व** द्वारा पिता की सेवा करने का भी वर्णन है।

पूर्वांचलीय-रामायणों के दो प्रसंग :

राम को तारा का शाप—वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड में सीता की पुनः परीक्षा होती है, जिसमें वे पृथ्वी में समा जाती हैं। साध्वी सीता की एक बार परीक्षा हो गयी थी। राम ने दोबारा परीक्षा लेकर राजधर्म का भले ही निर्वाह किया हो, किन्तु सीता के प्रति कठोरता ही प्रदर्शित की थी। राम को इस दोष से बचाने के लिए ही सम्भवतः वाल्मीकि-रामायण के **गौड़ीय संस्करण** में तारा के शाप की कल्पना हुई।

अचिरेण तु कालेन त्वया बाणैरुपार्जिता।
न सीता मम शापेन चिरं त्वयि भविष्यति॥
आत्मनः शौचमाधार्य पतिव्रतगुणा सती।
याच्यमाना त्वया सीता पुनर्यास्यति भूतले॥

(वाल्मीकि-रामायण, गौड़ीय-संस्करण ४-२०-१५,१६)

पूर्वांचलीय-रामायणों पर गौड़ीय-संस्करण का प्रभाव पड़ा है। इनमें भी वालि को मारने के कारण राम तारा द्वारा अभिशप्त हुए हैं।

असमीया-रामायण की तारा कहती है कि वह पतिव्रत के बल पर राम को शाप दे सकती है किन्तु नहीं देती। वह कहती है, तुम और कभी ऐसा पाप न करो,

इसलिए तुम्हें सीमादंड छोड़कर शाप दे रही हूँ। जिस प्रकार मैं स्वामी के वियोग में मर रही हूँ, उसी प्रकार तुम भी महासती सीता के वियोग में तड़पोगे। सीता पाताल प्रवेश करेंगी। (पृष्ठ २२४)

बँगला-रामायण में तारा ने राम को दो शाप[1] दिये। १—तुम यह मत सोचना कि तुम नारायण हो। कर्म के अनुसार सभी को फल भोगना पड़ता है। यदि इस भारत के बीच मैं सती होऊँ तो तुम सीता के लिए रोओगे। २—दूसरा शाप यह दिया कि जिस प्रकार तुमने विना किसी दोष के वालि को मारा उसी प्रकार उस जन्म में वालि तुम्हें मारेगा। **हनुमन्नाटक**[2] में स्वयं राम कहते हैं—जब तू मुझ पातकी निरपराधी को सुख की इच्छा से सोते में मारेगा, तब ही मेरे चित्त की शुद्धि होगी। बँगला-रामायण पर यहाँ इस नाटक का प्रभाव पड़ा होगा। सोते हुए कृष्ण को भील ने तीर से मारा था। इसी ओर संकेत है।

उड़िया-रामायण की तारा भी शाप देती है—'तुमने जिस सीता के लिए यह कृत्य कर मेरे निर्दोष स्वामी को मारा वह जनक-दुहिता तुम्हें प्राप्त न हो। यदि मैं साध्वी होऊँ तो मेरी वात रहे।'

राम कहते हैं—तुम महासती हो, दया करो। सीता के विना मेरा यह शरीर वेकार है। तारा प्रसन्न होकर वोली—तुम नारायण हो, सृष्टि करते हो। मुझ पामरी के वचनों को क्षमा करो। जानकी कमला है और तुम नारायण हो। राम के साध्वी कहने पर वह पूछती है, अब यह कैसे हो सकता है। राम वोले—सुग्रीव की पत्नी होकर अभिषेक कराओ। तू महासतियों में गिनी जाएगी। प्रभात के समय तेरा स्मरण होगा। (३९-४०)

सुपार्श्व—वाल्मीकि-रामायण[3] में सम्पाति का पुत्र सुपार्श्व सम्पाति के पक्षोदय के समय आता है और वह सभी वन्दरों को पीठ पर लादकर समुद्र पार कर देने की वात कहता है, किन्तु अंगद तैयार नहीं होते। तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों[4] में इस प्रसंग का उल्लेख है।

असमीया का वर्णन कुछ अधिक है। संपाति के समुद्र पार कराने के आश्वासन पर वन्दर अविश्वास करते हैं, इससे वह चिढ़ जाता है। वह पीठ फैलाकर सवको विठा लेता है। वन्दर डरते हैं कि कहीं समुद्र में न डुवा दे। उसने सबको भूमि पर उतार दिया।

---

१. बँगला-रामायण, पृ० १७८।
२. हनुमन्नाटक, ५-५७।
३. वाल्मीकि-रामायण—गौड़ीय-संस्करण, ४-६२।
४. असमीया-रामायण, पृष्ठ २४४, बँगला, पृ० २११, उड़िया, पृ० ८८, किष्कि०।

असमीया-रामायण का प्रसंग :

लेखक माधव-कन्दली ने काण्ड के अन्त में ग्रन्थ-रचना के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण बताया है—पृष्ठ २४५ ।

उड़िया-रामायण के कुछ अन्य प्रसंग :

अग्नि के अलंकृत मूर्त-रूप की वन्दना । इससे ही ऋष्य-शृंग का महत्त्व । इसका निवारा कृष्ण के चक्र में । ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा के लिए वन्दना ।

हनुमान और कुण्डल-प्राप्ति की कथा—हनुमान ब्राह्मण-रूप धारण कर राम-लक्ष्मण से मिले थे । परस्पर परिचय-आलाप के पश्चात् लक्ष्मण ने उन्हें कपि-रूप धारण करने के लिए कहा । उन्होंने अलंकारों से सज्जित रूप धारण किया । राम ने पूछा—तुमने ये अलंकार कहाँ से चुराये ? तब हनुमान अपनी कथा सुनाते हैं—मैं बचपन में आदित्य को पका फल समझकर झपटा । इन्द्र ने वज्रायुध मारा । मरुत के कहने से सभी देवता उपस्थित हुए और उन्होंने अमृत देकर जीवित किया । उन्होंने ही ये अलंकार देकर बली बनाया । मैं दुष्टता करने लगा, तब ब्रह्मा ने बल कम कर दिया और कहा कि तुम तब तक भूले रहोगे, जब तक राम के दर्शन नहीं करोगे । राम इन्हीं कुण्डलों को देखकर पहचानेंगे । तुम मेरे स्वामी हो और मैं दास हूँ, मैं अब बल का अनुभव कर रहा हूँ । हनुमान के नाना राजा खड़्द ने सुग्रीव-वालि को गोद लेकर पाला । इस नाते ये वालि-सुग्रीव के भानजे बताये गये हैं । (पृ० ७-८)

वालि-सुग्रीव का जन्म-वृत्तान्त—

(क) ऋक्षराज की कथा—कश्यप और मदनिका—सुग्रीव ने राम को बताया—ऋक्षराज कश्यप के पुत्र थे, किन्तु बाँदरी के गर्भ से जन्म लेने के कारण वे बन्दर हुए । कश्यप तपस्या कर रहे थे, उर्वशी को देखकर उनका रेत स्खलित हुआ, उसे उन्होंने जल में छिपा दिया । मदनिका नामक विद्याधरी देखकर हँस पड़ी और मुनि लज्जित हुए । इन्द्र की सभा में भी हँसी आ जाने से इन्द्र ने रुष्ट होकर शाप दिया—बाँदरी हो । वह पहले भी बाँदरी थी, किन्तु पापनाशिनी नदी में डूबकर मरने के कारण वह विद्याधरी हुई । इन्द्र ने कहा—'तेरा स्वभाव न गया ।' उसके विनती करने पर इन्द्र ने कहा कि पुत्र को जन्म देने के पश्चात् वह पूर्ववत विद्याधरी हो जाएगी । बाँदरी बनकर वह कश्यप का वीर्य पी गयी और सरोवर के तट पर रहने लगी, वहीं पुत्र को जन्म देकर चली गयी । निपूती शबरूणी ने उसका पालन किया । शिशु का तेज बढ़ता गया । ब्रह्मा ने आकर उसका अभिषेक किया और उसका नाम ऋक्ष नृपति रखा । (१७,१८)

ऋक्षराज का स्त्री होना—ऋक्ष ने पार्वती-वन में तपस्या करने वाले ब्रह्मा की पूजा की । उन्होंने इसे अपने पास रख लिया और उससे कहा कि पश्चिम दिशा की ओर मत जाना । किन्तु यह पश्चिम दिशा की ओर गया और वहाँ जाते ही स्त्री हो

गया। इसे बहुत दुःख हुआ। इन्द्र और सूर्य अपने-अपने विमानों में बैठकर ब्रह्मा से मिलने जा रहे थे। उनकी दृष्टि इस पर पड़ी। दोनों का रेत स्खलित होकर इसके बालों और ग्रीवा पर पड़ा। दोनों ब्रह्मा के पास चले गये।

(ख) **ब्रह्मा का तप**—उस समय ब्रह्मा लोकालोक पर्वत पर लोकनाथ नामक विष्णु की स्थापना कर उनकी तथा पारेश्वर रुद्र की पूजा कर कह रहे थे। 'शिव ने अकारण मेरा सिर काटा, जिससे उन्हें हत्या लगी और मेरा उपहास हुआ। मुझे पार कर दो।' इसी समय इन्द्र और सूर्य दोनों को देखकर ब्रह्मा प्रसन्न हुए। इन्हें साथ लेकर लौटे। दो शिशुओं को एक स्त्री के साथ देख इन्द्र और सूर्य रुके, ब्रह्मा ने योग-बल से जानकर ऋक्षराज से कहा, तुमने मेरा कहना नहीं माना था। अब लोकालोक पर्वत पर आओ। ब्रह्मा आदि नीचे आये। सभी एक स्थान पर पहुँचे, तब ऋक्षराज ने पुत्रों के जन्म का कारण सुनाया। इन्द्र-सूर्य लज्जित हुए। ऋक्षराज की पूर्व-सेवाओं से सन्तुष्ट ब्रह्मा ने उन्हें फिर पुरुष बना दिया। बाल से वालि और ग्रीवा से सुग्रीव का जन्म हुआ।

ब्रह्मा ने बताया कि यहाँ शंकर-पार्वती विलास करते थे। पार्वती ने कहा, जो यहाँ आएगा वह स्त्री हो जाएगा। ऋक्षराज से उन्होंने कहा, अब तुम पुत्र लेकर दंडकारण्य जाओ। अब पश्चिम की ओर न जाना। इन्द्र और सूर्य से ब्रह्मा ने अपने-अपने पुत्रों की रक्षा करने के लिए कहा। ये दोनों पुत्र कालान्तर में राजा हो गये। (१८-२०)

(ग) **गौतम-अहल्या द्वारा वालि-सुग्रीव का पालन**—ऋक्षराज ने अपने दोनों पुत्र गौतमी नदी पर छोड़ दिये। जल लेने के लिए गयी हुई अहल्या ने शिशुओं को देखकर पति को बताया। गौतम ने योगबल से शिशुओं का परिचय ज्ञात कर अहल्या को उन्हें धर्मपुत्र के रूप में पालने की आज्ञा दे दी। शिशु तीन वर्ष के हुए, तब खड़्द राजा मृगया खेलने गया। गौतम से मिलकर उसने बताया कि वह निस्संतान होने से अत्यन्त दुःखी है। उसके केवल एक कन्या अंजना है जो केशरी कपि को ब्याही गयी है। वार्त्ता के समय ही दोनों शिशु आये, जिन्हें देखकर खड़्द ने उनका परिचय पूछा। गौतम ने परिचय देकर कहा इन्हें ले जाओ। उन्होंने अहल्या को भी समझा-बुझा दिया। राजा ने अपनी रानी लीलावती को दोनों पुत्र सौंपे। जब ये सात वर्ष के हुए तब तारा और रोमा के साथ विवाह हुआ। वालि राजा हुआ और सुग्रीव युवराज। (२१-२३)

बँगला-रामायण में अक्षय राजा (ऋक्ष) का उल्लेख मात्र है।

पार्वती की शंका : नारद और पर्वत-ऋषि का विष्णु को शाप—प्रस्रवण पर्वत पर विरही राम की प्रमाद-पूर्ण स्थिति देखकर पार्वती ने शंका की कि जो त्रिभुवन का स्वामी है वह अपनी महिमा नहीं जानता। शिव ने कहा मरुत नामक राजा ने १०० अश्वमेध कर एक पुत्री पायी थी। नारद और पर्वत ऋषि आकर उस कन्या

पर मुग्ध हुए। राजा ने कहा : आप दोनों में कौन ज्येष्ठ है और कौन कनिष्ठ, मैं नहीं जानता। कल स्वयंवर कर दूँगा। वासुदेव प्रातः उठे तो योग से जाना कि मरुत्त की कन्या स्वयं कमला है जिसे कि नारद और पर्वत स्त्री बनाना चाहते हैं। यह उनका अज्ञान है। राजा ने कन्या को गोद में लेकर उसे वरने की आज्ञा दी। कन्या चिंतित हुई कि बचपन में कंडु ऋषि ने कहा था कि कृष्ण से विवाह होगा। उसने भगवान् से विनय की। उसे दोनों ऋषियों के मध्य विष्णु दिखलायी पड़े। वे केवल कन्या को दिखलायी पड़े। उन्होंने उसे उठाकर गरुड़ की पीठ पर बिठा लिया। विष्णु ने वैकुण्ठ पहुँचकर ब्रह्मा को बुलाया और उनका आशीर्वाद लिया। दोनों ऋषियों ने रुष्ट होकर राजा से कहा – तुमने झूठमूठ स्वयंवर रचा और गोविन्द को बुलाकर कन्या दी। तुम अभिशप्त होगे। तुम जप-तप का पुण्य खो दोगे। राजा विष्णु के पास दौड़ा गया, उसे अज्ञान खींच रहा था—अज्ञान भी जा पहुँचा। विष्णु ने उससे कहा कि राजा निर्दोष है। तुम कुछ दिन मेरी देह में रह जाओ। अज्ञान थर-थर काँपने लगा। भगवान् ने कहा—जब मैं मनुष्य-देह धारण करूँ तब तुम मेरे अंगों में भोग करना। इस प्रकार रामावतार में अज्ञान मुनि विष्णु को आच्छादित किए हैं। इसीलिए वे अपने को भूले हैं। (४५-४८)

राम का विरह :

स्वप्न-केलि—उड़िया के अरण्यकाण्ड के समान इस काण्ड में भी राम बार-बार विलाप करते हैं। उन्होंने स्वप्न में सीता के साथ केलि का सुख लिया। सीता का हार टूट गया। वे कपट रोष प्रकट कर कहती है—'मेरा हार गूँथ दो। इसी बीच वे जाग पड़े और विरह-व्यथा से व्याकुल होकर अर्धरात्रि में ही बाहर आ गये। (४९)

मेघदूत—बाहर आकर उन्होंने दक्षिण-दिशा की ओर धूम्रकेतु देखा। उसे दिखाते हुए लक्ष्मण से बोले, इसका उदय जिस दिशा में होता है उधर अवश्य ही उपद्रव होता है। इसी बीच बादल घिर कर रिमझिम बरसने लगे। वे बादलों से बोले, तुम्हें दया भी नहीं आती। फिर सीता का नखशिख बताकर बोले, ऐसी सीता से तुम मेरा संदेश कहना और लौटते समय उसकी वार्त्ता मुझसे कहना। (५०)

पक्षियों को वरदान :

बक को वरदान और बक-पंचक – तट पर स्थित बक ने कहा 'तुम मूर्ख की प्रकृति धारण कर क्यों रो रहे हो तथा ब्रह्म को दोष दे रहे हो ? राम का परिचय ज्ञात कर बक ने कहा—'सीता को रावण ले गया, मैंने देखा है। उनके आँसू मेरे ऊपर गिरे, इसलिए मैं उज्ज्वल-वर्ण हो गया हूँ।' राम ने उससे वर माँगने के लिए कहा। वह बोला—'वर्षा में मुझे कष्ट होता है, भोजन नहीं मिलता।' राम ने कहा—'तुम यहीं बैठे रहना चतुर्मास भर गृहिणी भोजन लाएगी।' बक ने कहा—'वह कनिष्ठ है,

जूठा खाने से नरक की प्राप्ति और धर्म-हानि होगी, साथ ही उपहास होगा।' राम बोले—'पति पत्नी जन्म-जन्तांतर के लिए होते हैं। वे दोनों एक शरीर होते हैं। तुम पत्नी को पराया क्यों कहते हो। कार्तिक शुक्ल की १०-११-१२-१३ और १५ तिथियाँ **बकपंचक** कहलाएँगी। इन दिनों आमिष न खाने वाला चतुर्मास्य-व्रत का फल पाएगा। जो मछली खाएगा उसे तुम्हारा पाप लगेगा। उसके मुँह में जन्म-जन्म-पर्यन्त दुर्गन्ध आएगी तथा उसकी देह में रोग रहेंगे।' बक-पत्नी भी सुन रही थी। तभी से ये रामबकी कहलाते हैं। (५०-५१)

कुक्कुट को वरदान और पर्वतों को शाप—कुक्कट ने भी राम को बताया कि रावण सीता को ले गया है। राम ने उसे भी वर दिया कि तुम्हारे माथे पर सप्त-शाखा मुकुट होगा। यह अरुण की रेखाओं के समान होगा, अन्य किसी जीव को मुकुट प्राप्त न होगा।

पर्वतों ने उत्तर नहीं दिया इसलिए वे राम के शाप से पेड़-लता रहित हो गये। (६६)

राम-अगस्त्य भेंट और मार्कण्डेय की शंका—लक्ष्मण के किष्किन्धापुरी जाने पर अगस्त्य योग-बल से राम को अकेला जानकर उन्हें शास्त्र-बल समझाने के लिए आये। वे राम को उनके ब्रह्मत्व और अवतार की याद दिलाते हैं—५५-५६।

इसी समय नग्न और परमहंस मार्कण्डेय आये। वे शंका करते हैं—इनके शरीर में कुछ भी लक्षण नहीं हैं, फिर तुम इन्हें कमला-स्वामी कैसे कहते हो?

अगस्त्य ने बताया, देवताओं पर राक्षसों के अत्याचार से विष्णु ने प्रतिज्ञा की—"मैं चक्रादि चिह्न छोड़कर मनुष्य बनकर इन्हें मारूँगा।" इसीलिए ये अज्ञान हैं, ये परब्रह्म हैं। २४२ दिन बाद तुम फिर राम को देखोगे। रावण-वध, सीता की प्राप्ति और राम का अभिषेक देखकर तुम्हारी भ्रान्ति दूर होगी—५७-५८।

शउरि-दर्प-चूर्ण—विभिन्न देशों के वानर-नायक आकर राम के सामने फलों की भेंट प्रस्तुत करते हुए अपना परिचय देते हैं। ऐसा ही एक नायक शंउरि है, जिसके शरीर में १०० हाथियों का बल है। उसका दर्प चूर्ण करने के लिए राम ने प्रसाद-स्वरूप उसे एक अम्लान पुष्प दिया। पुष्प के माथे पर पड़ते ही नायक मूर्च्छित हो गया। वह राम की प्रशंसा कर सहायता को प्रस्तुत होता है। राम फिर पुष्प देना चाहते हैं, वह भयवश नहीं लेता। किन्तु इस बार पुष्प के माथे पर पड़ने से उसमें अपार बल आ जाता है। ७१।

सुन्दर-काण्ड

(पूर्वांचलीय-रामायणों में नाम सुन्दराकाण्ड है।)

वाल्मीकि-रामायण में राम के समुद्र-प्रस्थान, विभीषण की शरणागति और समुद्र पर सेतु-निर्माण आदि कथाओं का वर्णन युद्ध-काण्ड में है। भाषा-रामायणों में

इसका उल्लेख इसी काण्ड में होने के कारण इस काण्ड में ही तुलनात्मक-अध्ययन किया गया है। वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में सेतुबन्ध होने पर ही सर्ग की समाप्ति है, इसलिए पूर्वांचलीय-रामायणों में भी ऐसा हुआ है।

मानस में सेतु-बन्धन आदि का उल्लेख लंकाकाण्ड में है, किन्तु तुलनात्मक-अध्ययन इसी काण्ड में किया जा रहा है।

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार सभी रामायणों के समान प्रसग :

हनुमान का सागर-तरण—सभी वानरों का बल-कथन। हनुमान का भेजा जाना, (वाल्मीकि रामायण एवं मानस में इतना प्रसंग किष्किन्धा काण्ड में ही वर्णित हुआ, शेष तीन में इनका वर्णन सुन्दरकाण्ड में हुआ) नागमाता सुरसा द्वारा हनुमान की शक्ति-परीक्षा, मैनाक द्वारा सहायता प्रदान की चेष्टा, छाया-ग्राहिणी सिंहिका राक्षसी का वध और हनुमान का लघु-रूप धारण कर लंका-प्रवेश।

लंका में प्रवेश—लंका (देवी अथवा राक्षसी) से भेंट। रावण के अन्तःपुर में पहुँचकर हनुमान द्वारा सीता को खोजना। मन्दोदरी को सीता समझने का संदेह (मानस में नहीं)।

अशोकवन में—(१) अशोकवन में राक्षसियों से घिरी सीता के दर्शन। रावण-सीता-संवाद। सीता के तीखे वचनों से क्रुद्ध रावण का अवधि देकर जाना। राक्षसियों के अत्याचार। (२) त्रिजटा का स्वप्न सुनाकर राक्षसियों को आतंकित करना। (३) हनुमान-सीता-भेंट, अँगूठी प्रदान। हनुमान का सीता से पीठ पर ले जाने का अनुरोध, सीता की अस्वीकृति (मानस में नहीं)।

अभिज्ञान—राम और सीता के परस्पर अभिज्ञान।

हनुमान का बन्दी होना—(१) अशोकवन की लूट। (२) हनुमान द्वारा राक्षसी सेना का विध्वंस, अक्षयकुमार का वध। (३) मेघनाद-द्वारा ब्रह्मास्त्र से बंदी होना। (४) रावण की सभा में उपस्थित किया जाना। (५) पहले प्राण-नाश की आज्ञा किन्तु विभीषण के समझाने पर पूँछ में आग लगाना, लंकादहन।

हनुमान की वापसी—(१) सीता से विदा लेना, (२) लौटे हुए हनुमान का साथी वानरों द्वारा स्वागत।

मधुवन की लूट—(१) सीता की खोज की प्रसन्नता में वानरों द्वारा सुग्रीव के मधुवन की लूट। सुग्रीव का अनुमान कि वानरों ने खोज कर ली है। (२) हनुमान द्वारा राम के समक्ष वृत्तांत-कथन, राम-द्वारा प्रशंसा।

रावण को विभीषण का समझाना। विभीषण का रावण द्वारा अपमानित होकर राम की शरण में आना। राम-दल द्वारा उस पर संदेह करना, राम का शरण देना। राम-द्वारा विभीषण का अभिषेक।

रावण द्वारा दूतों (शुकशार्दूल एवं शार्दूल आदि) का भेजना, वानरों के द्वारा

पकड़े जाना और राम का दयापूर्वक छोड़ देना।

समुद्र-तट पर समुद्र से मार्ग माँगने के लिए राम का प्रायोपवेशन, बाद में शर-संधान। समुद्र का प्रकट होकर विनय करना। उसके परामर्श के अनुसार नल (मानस में नील भी) के द्वारा सेतु बनाना। सेना का संतरण।

बलकथन तथा हनुमान-जन्म-वृत्तान्त :

वाल्मीकि-रामायण और मानस में किष्किन्धाकाण्ड की समाप्ति पर ही वानर समुद्र-संतरण के सम्बन्ध में अपने-अपने सामर्थ्य का वर्णन करते हैं। पूर्वांचलीय-रामायणों में वानर लंका तक जाने में असमर्थ दिखाये गये हैं, जाम्ववान बूढ़े हो गये हैं, अंगद जाकर लौट नहीं सकते। तब हनुमान तैयार किये जाते हैं।

जन्म-वृत्तान्त—असमीया-रामायण में स्वयं हनुमान कहते हैं कि कोई मेरा जाति-धर्म सुनाये। तब जाम्ववान ने कहा—कुंतीकला नामक अप्सरा शाप-वश वानरी हुई। वह कुंजर राजा की बेटी अंजना होकर केसरी को व्याही गयी। सागर में शिरस्नान कर सुन्दरी अंजना को खड़ा हुआ देखकर वायु ने उस पर मुग्ध होकर उसका आलिंगन किया। सुन्दरी ने प्रकट होने के लिए कहा, तब वायु ने प्रकट होकर कहा—'मेरे संगम से अधर्म नहीं हुआ, तुम्हें वीर पुत्र मिलेगा।' हनुमान का जन्म हुआ, लाल सूर्य को फल समझकर वे खाने के लिए दौड़े। प्रचंड किरणों से उत्तप्त होकर वे गिर पड़े, जिससे हनु टेढ़ी हो गयी।

जाम्ववान की कथा सुनकर वे उत्साह से विराट्काय हो गये। उन्होंने अपने पिता केसरी के बल-विक्रम की कहानी बतायी—प्रभासतीर्थ के शंखध्वज नामक हाथी को केसरी ने मारा था। तब ऋषियों ने वर दिया था कि तुम्हारे प्रतापी पुत्र होगा। (पृ० २४७-४८)

बँगला-रामायण का वर्णन असमीया-रामायण के समान ही है। कुन्तीकला के स्थान पर कुंजर-तनया विद्याधरी का नाम आया है जोकि विश्वामित्र के शाप से वानरी हुई। वायु के मुग्ध होने, पुत्र होने का वरदान देने तथा प्रभासतीर्थ में केसरी द्वारा हाथी मारने की घटना आदि का भी वर्णन है। किन्तु सूर्य पर झपटने का वर्णन विस्तृत है। सूर्य की ओर हनुमान को बढ़ता देख राहु ने जाकर इन्द्र से कहा, इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर आये, हनुमान ऐरावत पर झपटे, तब इन्द्र ने वज्र प्रहार किया। (पृ० २१४-१५)

उड़िया-रामायण में हनुमान का शक्ति-उद्बोधन नहीं हुआ। वे स्वयं जाने के लिए कहते हैं। यहाँ उनके जन्म का वर्णन नहीं है। जब हनुमान लंका के अशोक-वन में मेघनाद द्वारा बन्दी बनाये जाते हैं, तब इन्द्र के आग्रह पर ब्रह्मा हनुमान के बाँधे जाने का कारण बताते हुए उनके जन्म का वर्णन करते हैं। यह **रोचक वर्णन** इस प्रकार है—

खड़्द की कन्या अंजना का विवाह केसरी से हुआ। केसरी हेमवंत पर्वत पर

तपस्या करने लगा। ऋतुमती होकर स्नान-प्रसाधन से शुद्ध अंजना को देखकर पवन ने उसका अंचल पकड़कर उसके मुख के पास ले जाकर सखी सम्बोधन के साथ रति-याचना की। अनुमति मिलने पर पवन ने दिव्य-रूप धारण कर अनेक विधियों से अंजना को सन्तुष्ट किया। फलस्वरूप हनुमान का जन्म हुआ। जन्म लेते ही उन्होंने कहा—'मुझे भूख लगी है।' अंजना ने सूर्य को फल बताकर दिखा दिया। हनुमान उड़ चले। सूर्य के अलंकृत रूप को देख उन्होंने आहार माँगा। सूर्य कुपित हुए, हनुमान ने उन्हें पूँछ से बाँध लिया। इन्द्र ने वज्र मारा। पवन भी कुपित हुए, उन्होंने देवताओं का तेज लेकर हनुमान को जीवित कर लिया। हनुमान ने सूर्य को बाँधा था, इसीलिये ये भी बाँधे गये। (पृ० ४५-४७)

मानस का वर्णन संक्षिप्त है। बल-कथन आदि असमीया और बँगला-रामायणों में मिलता है। जन्म-वृत्तान्त नहीं दिया गया है। जाम्बवान उन्हें उद्‌बुद्ध अवश्य करते हैं।

मैनाक-सुरसा-सिंहिका—पूर्वांचलीय रामायणों में मैनाक की पूर्व कथा का भी वर्णन है। पर्वतों के उड़ने, इन्द्र द्वारा उनके पंख काटने, पवन की सहायता से मैनाक का समुद्र में छिपने आदि की घटनाओं का उल्लेख है, **मानस** में नहीं है। उड़िया को छोड़ शेष भाषाओं की रामायणों में हनुमान उँगली या अँगूठे से मैनाक को छूकर चले जाते हैं।

उड़िया-रामायण में मैनाक के पिता-माता का नाम हेमवंत और मेनका बताया गया है। हनुमान इस पर विश्राम कर फल खाते हैं। मैनाक उनके भार से संतुष्ट है।

सुरसा की कहानी एक समान है। केवल **उड़िया-रामायण** में इतनी भिन्नता है कि हनुमान उसके मुख में प्रवेश नहीं करते। सुरसा वैसे ही संतुष्ट होकर देवताओं के पास लौट जाती है।

छाया-ग्राहिणी सिंहिका की कथा में अन्तर नहीं है। **असमीया** में उसे 'आपारिका' कहा है, **मानस** में 'निसिचरि' और शेष दो ग्रंथों में 'सिंहिका' कहा गया है।

लंकादेवी—वाल्मीकि-रामायण में लंकानगरी राक्षसी का रूप धारण कर नगरी की रक्षा करती है। हनुमान से परास्त होकर वह कहती है कि ब्रह्मा ने उससे कहा था कि जब वह एक वानर द्वारा परास्त होगी, रावण का विनाश होगा। **असमीया-रामायण** में हनुमान की भेंट लंकादेवी से नहीं हुई। **उड़िया** और **मानस** का वर्णन समान है और वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है।

बँगला-रामायण में लंका से नहीं **चामुंडा** देवी अथवा **उग्रचंडा** से हनुमान की भेंट होती है। चामुंडा खप्पर, खाँडा और मुंडमाल-धारिणी तथा शिव की प्रिया हैं। हनुमान ने सभीत पूछा—माता यहाँ क्यों हो ? वे उत्तर देती हैं—जब ब्रह्मा ने स्वर्ण-लंकापुरी का सृजन किया था, तभी से मैं इसकी रक्षा करती हूँ। जब तक राम

का अवतार नहीं होता और वानर दूत बनकर नहीं आता, तब तक शंकरजी ने यहाँ निवास करने के लिए कहा है। चामुंडा हँसती हुई वहाँ से कैलास चली गई।

(२२२-२२३)

कथा-वर्णन से स्पष्ट है कि लंका राक्षसी का रूप परिवर्तित कर चामुंडा कर दिया गया है। यह परिवर्तन शाक्त-प्रभाव के कारण वृहद्धर्म-पुराण[1] में पहले ही हो चुका था।

सीता के चरित्र पर हनुमान का सन्देह—पूर्वांचलीय-रामायणों में हनुमान रावण के अन्तःपुर में जाकर सीता की खोज करते हैं। वाल्मीकि-रामायण में रावण और सुप्त सुन्दरियों से भरे अन्तःपुर का वर्णन है। बहुत कुछ इसी का अनुसरण किया गया है। मन्दोदरी को देखकर हनुमान दुःखी होते हैं कि सीता ने आत्म-समर्पण कर दिया है। वस्तु-स्थिति से अवगत होकर उन्हें ग्लानि होती है कि उन्होंने व्यर्थ ही सीता के चरित्र पर सन्देह किया।

असमीया और **उड़िया रामायणों** में हनुमान परीक्षा कर पता लगाते हैं कि क्या यह सीता ही हैं या और कोई। **असमीया-रामायण** में रावण को आलिंगित किये हुए एक रूपवती कन्या को हनुमान ने देखकर सीता समझा था। 'वे मन ही मन बोले कि सुना गया है सीता की वेणी आठ हाथ की है। उन्होंने वेणी नापी, वह कम निकली। उसका मुँह सूँघा, मद्य की गंध आ रही थी। वे जान गये, यह सीता नहीं हो सकती। (पृ० २५४-२५६)

उड़िया-रामायण में रावण मन्दोदरी की गोद में सो रहा था। हनुमान भ्रमर बनकर उड़े और मन्दोदरी के मुँह में मदिरा की गन्ध पाकर आश्वस्त हुए कि यह सीता नहीं हो सकती।

बँगला-रामायण में हनुमान इस प्रकार की खोज किये बिना ही अनुमान करते हैं कि यह सीता नहीं हो सकती।

मानसकार सीता के प्रति पूज्यभाव रखने के कारण हनुमान के मन में इस प्रकार का सन्देह कैसे दिखाते। उन्होंने हनुमान को रावण के अन्तःपुर में भी नहीं घुमाया। विभीषण से भेंट कराके अशोक-वन का सीधा रास्ता दिखा दिया गया है।

अशोक-वन में :

(क) **रावण-सीता-संवाद**—प्रत्येक रामायण में हनुमान-सीता भेंट होने के पूर्व ही रावण सीता से मिलने आता है। हनुमान छिपकर सुनते हैं। रावण समझाने की चेष्टा करता है किन्तु सीता के अपमानजनक कठोर वचन सुनकर वह मारने दौड़ता है। ऐसी स्थिति में कोई न कोई स्त्री सीता की रक्षा करती है। **असमीया, बँगला**

---

१. वृहद्धर्म-पुराण, अध्याय २०, पूर्वखंड।

और हिन्दी रामायणों में मन्दोदरी रावण को रोकती है। प्रथम दो रामायणों में नलकूबर के शाप का उल्लेख कर ही मन्दोदरी रोकती है। बँगला-रामायण में रावण सीता के साथ बलात्कार करना चाहता है, तभी मन्दोदरी ने उसे नलकूबर के शाप की याद दिलायी है। उड़िया-रामायण में नलकूबर के शाप का वर्णन उत्तर-काण्ड में है। इस ग्रन्थ में रावण मन्दोदरी से नगर घूमने का बहाना कर सीता के पास गया है। उसे लंकेश्वरी ने स्वप्न में वानर के लंका-प्रवेश की सूचना दी है, इसलिए तथा साथ ही काम-विह्वलता के कारण वह सीता के पास आया है। सीता पर क्रुद्ध होकर जब वह मारने झपटता है, त्रिजटा उसे रोकती है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार पूर्वांचलीय-रामायणों में रावण सीता को दो मास की अवधि दे जाता है, मानस में केवल एक मास की।

कथा के इसी स्थल पर त्रिजटा के स्वप्न का वर्णन है।

(ख) **हनुमान-सीता-भेंट—असमीया-रामायण** में हनुमान छोटा रूप धारण कर तथा पेड़ पर बैठकर रामकथा कहने लगे। सीता ने चकित होकर चारों ओर उन्हें न देख ऊपर की ओर देखकर तथा देवताओं का स्मरण कर पूछा— कौन हो? हनुमान ने सीता का परिचय पूछकर रामकथा सुनायी। सीता कुपित हुई। उन्हें लगा कि रावण छल करके आया है। हनुमान ने अपने को रामदूत बताया। सीता ने प्रमाण-स्वरूप राम और लक्ष्मण के रूप-वर्णन के लिए कहा, हनुमान ने वैसा ही किया, साथ ही अँगूठी भी दी। सीता हतबुद्धि-सी हो गयीं। सभी की कुशल पूछकर उन्होंने राम की दिनचर्या पूछी। राम का विरह-दुःख ज्ञात कर वे रो पड़ीं। हनुमान ने चरणों पर सिर रखकर समझाया। (पृष्ठ २६३-६५)

बँगला-रामायण का वर्णन भी असमीया जैसा ही है। हनुमान लघु-रूप धारण कर कथा सुनाते हैं, सीता उन्हें रावण समझती हैं, हनुमान अँगूठी देकर शंका-समाधान करते हैं। सीता कहती हैं—'बेटा बिना युद्ध के मेरा उद्धार नहीं हो सकता।' (२२९-३०)

उड़िया-रामायण के अनुसार सीता ने प्रातःकाल त्रिजटा से शौच जाने के लिए कहा। हनुमान ने यह अवसर ठीक समझा, वे शिंशपा वृक्ष पर चढ़ गये। राक्षसियों से घिरी नतनयना सीता आँखें पोंछती हुई चलीं। हनुमान देखकर दुखी हुए। पेड़ के नीचे खड़ी सीता चिन्तित हैं। राक्षसियाँ इच्छानुसार शौच के लिए तितर-बितर हुईं। हनुमान सीता के नखशिख की मन-ही-मन सराहना करने लगे। उन्होंने पेड़ पर बैठे हुए रामकथा सुनाते हुए अपने आने का उद्देश्य बताया। सीता और हनुमान का संवाद अत्यन्त स्वाभाविक है। हनुमान ने अँगूठी दी, सीता ने सन्देह किया, राम को मार कर कहीं रावण ही तो अँगूठी लेकर नहीं आ गया है। हनुमान ने परिचय दिया कि वे सुग्रीव के भानजे हैं। सीता बोलीं—सुग्रीव को जानता ही कौन है। अब हनुमान घबड़ाये, कहीं सीता डरकर चिल्ला न पड़ें। डर से काँपते हुए बोले, माँ कोप

न करो, चित्रकूट में जो हुआ उसकी घटनाएँ सुनाकर मैं विश्वास दिलाऊँगा। (१६-२३)

मानस में आत्महत्या की इच्छा रखने वाली सीता अशोक-वृक्ष के नीचे बैठकर चन्द्रमा और अशोक से आग बरसाने के लिए कहती हैं, इसी समय वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान नाटकीय ढंग से मुद्रिका टपका देते हैं। सीता अँगूठी उठाकर चिंतित होती हैं, राम की अँगूठी यहाँ कैसे ? तब हनुमान निकट जाकर परिचय देते हैं। सीता उन्हें रावण समझकर पीठ घुमाकर बैठ जाती हैं। मानस पर **प्रसन्न-राघव** नाटक की छाप है।

सभी रामायणों में हनुमान सीता को विश्वास दिलाने के लिए विराट् स्वरूप दिखाते हैं। पूर्वांचलीय-रामायणों में हनुमान सीता को अपनी पीठ पर ले जाना चाहते हैं किन्तु सीता पर-पुरुष के स्पर्श के भय से अस्वीकार कर देती हैं।

अभिज्ञान —

वाल्मीकि-रामायण में राम और सीता के प्राय: चार अभिज्ञानों का वर्णन है। सीता ने हनुमान को देखा नहीं था। हो सकता था कि वे हनुमान का विश्वास न करतीं, इसलिए राम ने उन्हें अँगूठी दी थी। इसी प्रकार ऐसा भी सम्भव था कि राम हनुमान का विश्वास न करते कि उन से सीता की भेंट हुई, अतएव सीता ने अपनी चूड़ामणि दी थी। इसके अतिरिक्त सीता दो और घटनाओं का उल्लेख करती हैं— (१) जयंत काक की कथा और (२) राम द्वारा तिलक लगाये जाने की कथा। तिलक वाली घटना का उल्लेख वाल्मीकि-रामायण के दाक्षिणात्य-संस्करण में इस प्रकार हुआ है—एक बार तिलक मिट गया था, तब तुमने (राम ने) मैनसिल का तिलक लगा दिया था, इसका स्मरण करो —(सुन्दरकाण्ड — ४०-५), वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में इसका विस्तृत वर्णन है — राम ने सीता के कपोलों पर तिलक लगाया, वे एक बन्दर देखकर डर गयीं और राम से लिपट गयीं, फलत: उनका तिलक राम के वक्ष में लग गया। इस प्रकार वाल्मीकि-रामायण में कुल अभिज्ञान चार हुए—

(१) राम द्वारा अँगूठी देना।
(२) सीता द्वारा चूड़ामणि देना।
(३) जयंत काक की कथा सुनाना।
(४) तिलक वाली घटना का उल्लेख करना।

सभी भाषा-रामायणों में अँगूठी और चूड़ामणि के अभिज्ञान का वर्णन है। **असमीया-रामायण** में जयंत काक और तिलक वाली घटना का सामान्य उल्लेख है। **मानस** में तिलक वाली चर्चा नहीं है, जयंत काक की कथा है। सीता कहती हैं — 'तात सक्र सुत कथा सुनाएहु'—५-२६-५। उड़िया-रामायण में उपर्युक्त चारों वृत्तान्तों के अतिरिक्त अभिजानस्वरूप एक और घटना का उल्लेख है— वह है राम और सीता का कुल-दीप छूकर एकनिष्ठा की प्रतिज्ञाएँ। इसका वर्णन आदिकाण्ड में हो चुका है।

इस प्रकार उड़िया-रामायण में सीता ने हनुमान से कहा कि राम से जाकर इन कथाओं का उल्लेख करना —

(१) मांस सुखाते समय कौए द्वारा स्तनों पर चंचुप्रहार।

(२) भीगी साड़ी से गेरु का भीगना, उससे राम द्वारा सीता के तिलक का लगाना, बन्दर देख भयभीत सीता का राम से लिपटना और राम के वक्ष में तिलक लग जाना।

(३) राम और सीता ने मधुशय्या के दिन कुलदीप छूकर प्रतिज्ञाएँ कीं कि वे एक-दूसरे के प्रति एकनिष्ठा की भावना की रक्षा करेंगे।

पूर्वांचलीय भाषा-रामायणों में जब हनुमान सीता से मिलते हैं, उसी समय इन सभी अभिज्ञानों का प्रसंग आया है। मानस में लंका-दहन के पश्चात् हनुमान सीता से जब विदा लेने आये हैं, तब अभिज्ञान दिये जाते हैं।

लंका-दहन—उपवन की लूट, राक्षसों से हनुमान का युद्ध, अक्षयकुमार-वध की एक समान घटनाओं के पश्चात् वर्णन इस प्रकार हैं —

असमीया-रामायण—मेघनाद ने हनुमान पर नागपाश फेंका, वह असफल गया तब वह ब्रह्मा के पास पहुँचा। ब्रह्मा हँसकर बोले, तुमने गुरु का स्मरण किये बिना नागपाश फेंका है। वह वायु का पुत्र है। हनुमान रावण से भेंट करने के लिए स्वेच्छा से बँध गये। रावण ने क्रुद्ध होकर मारने की आज्ञा दी, किन्तु विभीषण के कहने से वध न कर पूँछ में आग लगाने की आज्ञा दी। कपड़े लपेटते-लपेटते रावण का भण्डार खाली हो गया। मन्दोदरी के भी कपड़े लग गये। जब रावण ने सीता के कपड़े लाने का आदेश दिया तो हनुमान ने पूँछ छोटी कर ली। सीता ने सुना कि हनुमान की पूँछ में आग लगायी गयी है तो उन्होंने अग्नि से विनय की, यदि मैं पतिव्रता होऊँ तो अग्नि हनुमान को न जलाए।[1]

बंगला-रामायण में भी हनुमान रावण से भेंट करने के लिए स्वेच्छा से पाशबद्ध होकर गये। सहस्रों राक्षस उन्हें कंधों पर लिये जा रहे हैं, वे जिस ओर दब जाते हैं राक्षस चीख उठते हैं। द्वार पर वे अचल हो गये, तब द्वार को तोड़कर उन्हें ले जाया गया। विभीषण के कहने से वध नहीं हुआ, पूँछ में आग लगायी गयी। यहाँ भी सीता अग्नि से प्रार्थना करती हैं कि यदि मैं मनसावाचाकर्मणा सती होऊँ तो हनुमान न जले।

उड़िया-रामायण—जायफल के पेड़ पर बैठे हनुमान मेघनाद को अनेक प्रकार से तंग करते हैं। अन्त में इन्द्रजीत के मायायुद्ध में पराजित होकर वे बाँधे जाते हैं।

---

१. वाल्मीकि-रामायण—सुन्दरकाण्ड—५३-२८-३१ में भी सीता अग्नि से ऐसी ही विनय करती है।

सीता उनका बन्धन सुनकर व्रत करती हैं। रावण की सभा में स्थित इन्द्र की जिज्ञासा पर ब्रह्मा हनुमान से बाँधे जाने का कारण बताते हुए उनका जन्मवृत्तान्त[1] सुनाते हैं। रावण ने हनुमान को मारने के अनेक उपाय किये। उनकी खूब **कुटम्मस** हुई किन्तु हनुमान मरे नहीं। रावण चिंतित होकर मेघनाद से अपने शापों की चर्चा करता है,[2] और कहता है किसी प्रकार मार ही डालो, नहीं तो यह सब भेद खोल देगा। हनुमान अपने मरने का भेद स्वयं बताते हैं। उन्होंने कहा, मेरा शरीर ब्रह्मा ने वज्र का बनाया है। मैं शिशु-काल में ऋषियों की झोंपड़ी नष्ट कर उत्पात किया करता था, उन्होंने शाप दिया कि अग्नि से जलोगे। अतएव मेरी पूँछ में आग लगाओ। हनुमान की पूँछ में इतना कपड़ा लपेटा गया कि लंका में कपड़े न रह गये। रावण ने मूल्यवान् कपड़े भी लगवा दिये। रावण ने कहा कि बंदर ने स्वयं ही मृत्युभेद बता दिया है इसे वाद्य सुनाकर इसकी पूँछ में आग लगाओ। हनुमान ने जलती हुई पूँछ से लंका को जलाना प्रारम्भ किया। रावण ने अग्निदेव को आज्ञा दी, वे बुझ गये। हनुमान के सभी अंगों में देवताओं का वास होने से उन्होंने कपाल से पूँछ रगड़ कर पुनः आग जला ली। रावण ने मारुत से पूछा—उन्चास-पवन क्यों बह रहे हैं, उन्होंने बहाना किया कि हनुमान को मोहने के लिए बह रहे हैं।

रावण बहुत घबड़ाया, इन्द्र से बोला, पानी बरसाओ। ब्रह्मा ने रावण को उपाय बताया कि पुष्पक विमान पर चढ़ कर भाग जाओ। ब्रह्मा के कहने से ही हनुमान ने लंका का जलाना बन्द कर दिया। (४०-६४ पृष्ठ तक)

मानस—हनुमान ने मेघनाद के ब्रह्मशर को स्वयं स्वीकार कर लिया। सभा में हनुमान और रावण का रोचक संवाद भी हुआ है। विभीषण के रोकने से ही रावण ने हनुमान का वध न कर पूँछ में आग लगाने के लिए कहा। रावण कहता है कि जब पूँछहीन वानर वहाँ जाएगा तो अपने स्वामी को यहाँ ले आएगा। हनुमान के न जलने का कारण यह है कि हनुमान ब्रह्म राम के दूत हैं और राम ही ने तो अग्नि का निर्माण किया है।

अग्निशमन—वाल्मीकि के अनुसार हनुमान ने समुद्र में पूँछ डुबाकर आग बुझायी। **असमीया-रामायण** में आकाशवाणी सुनकर पूँछ की आग स्वयं चूसकर बुझायी। **बँगला-रामायण**—सागर में डुबाने पर भी पूँछ की आग नहीं बुझी तब सीता के कहने से पूँछ को चूसकर मुखामृत से बुझायी। **उड़िया रामायण**—अग्नि को जठर में धारण कर बुझा लिया। **मानस**—योंही आग बुझ गयी।

विभीषण की शरणागति—भाषा-रामायणों में विभीषण को भक्त चित्रित किया गया है। वाल्मीकि-रामायण के वर्णन से प्रतीत होता है कि विभीषण रावण के

---

१. इसका वर्णन पीछे हो चुका है।

२. नन्दिकेश्वर का शाप। अनरण्य का शाप कि मेरे वंशज से तेरी मृत्यु होगी।

अनैतिक कार्यों से असन्तुष्ट था, उसने रावण को समझाना चाहा, रावण ने उसका अपमान किया। गौड़ीय-संस्करण के अनुसार पदाघात भी किया, फलस्वरूप विभीषण राम की शरण में आ गया। मध्यकाल तक राम विष्णु के अवतार हो चुके थे, अतएव विभीषण के भ्रातृद्रोह का दोष भक्ति के आचरण से ढक दिया गया।

असमीया और बँगला रामायणों में समता है। प्रथम में नैकषी विभीषण से रावण को समझाने के लिए कहती है, द्वितीय में नैकषी विभीषण से कहती है, ऐसे दुष्ट के साथ नहीं रहना चाहिए। **असमीया-रामायण** में विभीषण ने रावण को समझाया और चाटुकारों को डाँटा। रावण ने क्रुद्ध होकर विभीषण की छाती पर लाठी मारी (पृष्ठ २६२)। **बंगला-रामायण** में रावण तलवार लेकर कूद पड़ा और उसने विभीषण की छाती पर पदाघात किया। (पृष्ठ २४६)

विभीषण को शंकर-कुबेर की मंत्रणा का वर्णन भी इन दो रामायणों में हुआ है।[1] विभीषण बड़े भाई कुबेर से पूछकर ही राम की शरण में जाना चाहता है। **बँगला-रामायण** में तो वह एकांत में बैठकर तप करने की आकांक्षा रखता है। **असमीया-रामायण** के अनुसार शंकर और कुबेर पाशा खेल रहे थे, विभीषण के आने पर उन्होंने राम के ब्रह्मत्व के बारे में बताया—पृष्ठ २६४। **बँगला-रामायण** के अनुसार शंकर पार्वती के साथ बैल पर चढ़कर विभीषण के कुबेर से मिलने के पहले ही वहाँ जा धमके। उन्होंने राम के ब्रह्मत्व तथा उनके अवतार लेने आदि के विषय में बता कर विभीषण का पूर्ण समाधान कर राम के पास भेज दिया—पृ० २४८-२५२। तुलसीदास ने 'गीतावली' में अवश्य ही विभीषण का कुबेर और महादेव से मिलन दिखाया है। (५-२७, २८)

उड़िया-रामायण—विभीषण के समझाने से रावण कुपित हुआ, वह शुद्ध-स्वर्ण-जंघाओं और अमृत-भरे कुचों वाली सीता के साथ रति-सुख न छोड़ने का निश्चय करता है। वह कहता है कि सीता चतुर स्त्री है, शृंगार से परिचित है, तभी तो राम के साथ आयी। ऐसी को छोड़ नहीं सकता। विभीषण ने राम के शौर्य की पुनः प्रशंसा की तब वह मारने दौड़ा। सभासदों ने विभीषण को बचाया। रावण ने महीरावण से कहकर विभीषण को सीमा से बाहर निकाल देने को कहा। रावण ने स्वयं ही कहा कि उसी राम की शरण में जा। विभीषण भी मन-ही-मन राम-भक्त बन कर सोचता जाता है—रघुनाथ को पहचान कर असुर योनि के पापों से मुक्त होऊँगा। राम-मुख देखकर अपना जन्म सफल करूँगा। पृष्ठ ८९-९२। बिल्कुल मानस के विभीषण जैसी स्थिति है। इस ग्रन्थ में भी जब वह राम से मिलने चला है तो पुलकित होकर राम के चरणकमल देखने की अभिलाषा करता हुआ चला जा रहा है—९१

---

१. वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण का प्रभाव है।

मानस में विभीषण का दृष्टिकोण बिल्कुल भक्त का दृष्टिकोण है। पूर्वांचलीय-रामायणों में तो रावण ही उसे राम से मिलने के लिए विवश करता है किन्तु मानस में वह रावण को भक्ति का उपदेश देता है, जिससे रावण कुपित होता है।

राम की शरण में—सभी रामायणों में विभीषण के आने पर वानर संदेह करते है, हनुमान लंका हो आये हैं, वे वहाँ की स्थिति से परिचित हैं और वे विभीषण से परिचित हैं और वे विभीषण को शरण में लेने की बात कहते हैं। राम भी शरणागत वत्सलता का परिचय देकर उसे स्वीकार कर, उसका अभिषेक कर देते हैं। **असमीया-रामायण** का वर्णन संक्षिप्त है। **मानस** का वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी अधिक सुन्दर है। कम से कम नपे-तुले शब्दों में वर्णन हुआ है। किन्तु बँगला और उड़िया-रामायणों का वर्णन विस्तृत है।

शपथें—बँगला और उड़िया-रामायणों में शपथों का समान वर्णन है। **बँगला-रामायण** के अनुसार विभीषण अपनी सत्यता प्रकट करने के लिए तीन शपथें लेता है, यदि वह झूठ बोल रहा हो तो कलियुग में १. राजा ,२. ब्राह्मण एवं ३. सहस्र-तनय हो। लक्ष्मण हँसे, तब राम ने उन्हें समझा दिया कि कलियुग में ऐसा होने पर क्लेश ही होगा।

उड़िया-रामायण में बड़ी सतर्कता के साथ बातचीत होती है। राम के आदेश से लक्ष्मण बड़ी छानबीन करते हैं। अन्त में लक्ष्मण कहते है कि समुद्र में स्नान कर दसों दिशाओं को देखकर तुम जो कुछ कह दोगे, वही मान लूँगा। विभीषण ने अनिल, सलिल और प्रचंड हुताशन की साक्षी देकर कहा—यदि मैं कपट-चित्त होऊँ तो कलियुग के अन्त में **ब्राह्मण होऊँ, बहु-कुटुम्बी होऊँ, राजा होऊँ** और **गाय होऊँ**। जब राम के सहित वानरों को विभीषण की ये शपथें ज्ञात हुईं, तो वानरों ने कहा, यह तो अपने लाभ का निश्चय कर रहा है, तब राम ने कलियुग में इन चारों के होने के दुःख बताये। उन्होंने धनुष छूकर प्रतिज्ञा की कि वे विभीषण को लंका-नाथ बनाएँगे।

समुद्र पर सेतु :

उपवास—सभी रामायणों में राम तीन-दिन तक उपवास रखकर समुद्र से मार्ग माँगते रहे। जब वह प्रकट नहीं हुआ, तब उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाया। **असमीया** और **बँगला** रामायणों में बाण मारकर वे समुद्र को सोखने लगते हैं, तब वह प्रकट होता है। **मानस** में भी शर-संधान कर जब उदधि के हृदय में अन्तर्ज्वाला उठायी जाती है, तभी वह प्रकट होता है। **उड़िया-रामायण** में बाण छोड़ने की आवश्यकता नहीं हो पायी। राम वैष्णव-धनुप पर तीर चढ़ाकर बोले—'पहले तुझे देख लें, रावण-वध बाद में हो जाएगा। तूने वेद की पोथी चुराने वाले शंखासुर को छिपाया था। तू न होता तो प्रलय न होती और ब्रह्मा भी सुखी रहते। अगस्त्य

ने अच्छा ही किया था। तू रावण ऐसे दुष्ट को छिपाये है।' राम ने नाराच चढ़ाया। देवता कहने लगे, धवल-मुखी गंगा विधवा हो जाएगी, उसका मंगल-सूत्र टूट जाएगा। समुद्र प्रकट होकर स्तुति करने लगा।

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार **उड़िया-रामायण** और मानस में भी राम ने चढ़े हुए वाण से समुद्र-तटवासी दुष्टों का विनाश भी किया।

नल का शाप अथवा वरदान :

वाल्मीकि-रामायण (६-२२-४४,४५) में लिखा है कि विश्वकर्मा ने अपने पुत्र नल को सेतु बना सकने का वरदान दिया था, ऐसा नल ने स्वयं वताया है। पूर्वांचलीय-रामायणों ने भी नल को विश्वकर्मा का पुत्र माना है। उड़िया-रामायण में तो **नल की जन्मकथा**[1] भी दी गयी है। नल के वरदान के सम्वन्ध में रामायणों में भिन्न-भिन्न कथाएँ हैं, फिर भी उनमें समानता है।

असमीया-रामायण में वीर विश्वकर्मा ने अपने पुत्र को वर दिया है कि उसके छूने से पत्थर तैरने लगेंगे। (पृष्ठ २६६)

वँगला-रामायण में भी समुद्र के वताने पर राम नल को वुलाकर पूछते हैं। नल स्वयं वताता है कि जव मैं जनक के यहाँ था, तो ब्रह्मा को मानसरोवर के तट पर पूजा करता देख उनकी पूजा-सामग्री सरोवर में फेंक दिया करता था। उन्होंने वरदान दिया, तेरा छुआ हुआ पत्थर भी पानी पर तैरने लगेगा। (पृष्ठ २५५)

उड़िया-रामायण में समुद्र राम से विश्वकर्मा के पुत्र नल सेनापति द्वारा पुल वनवाने की वात कहकर ऋषियों के शाप का उल्लेख करता है। ऋषि लोग मूल-कमल को चाप कर निःश्वास साधते थे। उनका मौनव्रत देखकर नल उनके छाता और पोथियाँ आदि जल में फेंक दिया करता था। ऋषियों ने उसे वालक जानकर शाप नहीं दिया। उन्होंने कहा—तू जो कुछ फेंकेगा, वह पत्थर होकर तैरता रहेगा। (११०-११)

वँगला और उड़िया-रामायण के ये वर्णन **आनन्द-रामायण**[2] के वर्णन से समता रखते हैं। काश्मीरी-रामायण, खोतानी-रामायण तथा उत्तर भारत के एक वृत्तान्त में भी शाप के इसी मिलते-जुलते प्रसंग का उल्लेख है।[3]

---

१. नल की जन्मकथा—विच्छेद कवि की भार्या इन्दुमुखी को देखकर देव और मुनि भी मुग्ध रह जाते थे। रजोवती होने पर वह रेणुका नदी पर स्नान करने गयी। उसे स्नान और शृंगार किये देख विश्वकर्मा ने रति-याचना कर अंगसंग किया, फलस्वरूप नल का जन्म हुआ। पृ० ११४, उड़िया-रामायण।

२. आनन्द-रामायण—१-१०-६७।

३. फादर कामिल वुल्के—रामकथा, द्वि० सं०, अनु०, ५७५।

मानस में पूरी कथा नहीं है। समुद्र कहता है—नाथ, बचपन में नल और नील नामक दो भाइयों ने ऋषि का आशिष प्राप्त किया था। इनके स्पर्श करने से तथा तुम्हारे प्रताप से पत्थर समुद्र पर तैरने लगेंगे। (५-५९-१,२)

तुलनात्मक-अध्ययन से बचे हुए प्रसंग

बँगला और उड़िया रामायणों में :

नल-हनुमान-विवाद—**बँगला-रामायण** में पुल बनाते समय नल कर्म्मी के स्वभावानुसार बायें हाथ से पत्थर लेता है। इससे हनुमान क्रुद्ध होकर सोचते हैं, देखें इसमें कितना बल है! वे गन्धमादन पर्वत तोड़कर रोम-रोम में पत्थर बाँध लाये। भयभीत नल भागकर राम के पास आया। राम ने बीच-बचाव कर मैत्री करायी। (पृष्ठ २५६)

उड़िया-रामायण के अनुसार भी नल को बायें हाथ से पत्थर लेता हुआ देखकर हनुमान असंख्य पत्थर ले आये। सूर्य देखकर डरे और २ घड़ी रहते ही छिप गये। राम के कारण पूछने पर जाम्बवान ने बताया कि हनुमान २००० पत्थर ला रहे हैं। राम ने सेना भेजकर हनुमान को बीच में ही रोक दिया। नल से भी खुशामद की—तुम मेरे मामा हो। हनुमान ने प्रसन्न होकर राम और अंगद के नाम पर उसे क्षमा कर दिया। (पृष्ठ ११५-११६) रंगनाथ-रामायण (६-२७) और सेरी-राम में भी यह आख्यान आया है।[1]

गिलहरी अथवा चूहे की सहायता—**बँगला-रामायण** में गिलहरियाँ समुद्र में कूदकर और बालू में लोटकर उसे पुल पर झाड़ने लगीं जिससे पुल की संधियाँ भरने लगीं। हनुमान उन्हें पकड़कर समुद्र में फेंकने लगे। वे राम के पास जाकर रोयीं। राम ने हनुमान को बुलाकर कहा—गिलहरियों का अपमान क्यों करते हो, जिसका जितना सामर्थ्य हो करने दो। राम ने उनकी पीठ पर हाथ फेर दिया। (पृष्ठ २५७)

उड़िया-रामायण में बालू झाड़ने का कार्य एक चूहा कर रहा था। हनुमान उसकी प्रशंसा कर राम के पास ले आये। राम ने प्यार-सहित हाथ फेर कर कहा—तुम परोपकार में निरत महात्मा हो। तुम्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति हो। राम की पाँच उँगलियाँ उसकी पीठ पर दर्शित हुईं। (पृष्ठ ११८)

संभवतः उड़िया रामायणकार कहना चाहता है कि चूहे की पीठ पर हाथ फेरने से वह गिलहरी बन गया। इस प्रसंग में राम की जीवमात्र के प्रति दयालुता दिखाना ही अभीष्ट है। रंगनाथ-रामायण में भी इसका उल्लेख है। उत्तर भारत के कई प्रदेशों में इस प्रसंग का प्रचार है।

---

१. फादर कामिल बुल्के—रामकथा, द्वि०, सं० अनु०, ५७६।

बँगला-हिन्दी और उड़िया रामायणों में :

शिवपूजा -- **बँगला-रामायण** के सुन्दरकाण्ड तथा **मानस** के लंकाकाण्ड में शिव-लिंग की स्थापना होती है। दोनों में ही सेतु बन जाने के उपरान्त ही लिंग की स्थापना होती है। यह प्रसंग पुराणों से गृहीत है। अनेक पुराणों में शिव-प्रतिष्ठा युद्ध के पश्चात् की गयी है। **स्कन्दपुराण**[1] में दो बार स्थापना का उल्लेख है। **बँगला-रामायण** पर स्कन्दपुराण का ही प्रभाव प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें भी दो बार ही स्थापना करायी गयी है। मानस में केवल एक बार उल्लेख हुआ है।

बँगला-रामायण में नल रावण की आज्ञा से देवल का निर्माण करता है, जिसमें श्वेतवर्ण शिव की स्थापना होती है। हनुमान कुबेर के सरोवर से श्वेत-पद्म ला देते हैं। पूजा के समय स्वयं शंकर उपस्थित होकर राम के हाथ पकड़ लेते हैं। (पृ० २५८) इस ग्रन्थ में लंका से लौटने पर भी राम सीता-सहित शंकर की पूजा करते हैं, तब लक्ष्मण ने बालू की मूर्ति बनायी हैं। (पृष्ठ ४४८)

मानस में भी शिवलिंग की स्थापना की जाती है, मुनियों का समागम होता है और राम शंकर की उपासना का महत्त्व समझाते हैं।

दोनों ग्रन्थों के प्रसंग और संवादों से प्रकट होता है कि दोनों का उद्देश्य शैव-वैष्णव समन्वय करना है।

उड़िया-रामायण में पुल के बन जाने पर केवल इतना उल्लेख है—

रामेश्वर बोलि राम शंकर पुजिले ॥ ११८

रामायणों के कुछ विशिष्ट-प्रसंग

असमीया रामायण में :

हनुमान का ब्राह्मणवेश धारण—सीता से भेंट करने के उपरान्त हनुमान मधु-फल खाने के लिए ब्राह्मण का वेश धारण कर लेते हैं, सीता देखकर हँसती हैं। वे राक्षसों से बोले—'मैं सौराष्ट्र-देश का महावेदगर्वी ब्राह्मण हूँ। राजद्वार पर आया हूँ, फल खाने को दो।' रक्षकों के कहने से वे स्वयं कूदकर भीतर घुसकर फल खाने लगे। (पृष्ठ २६८)

बँगला-रामायण में :

बन्दरों का मुँह काला होना—सीता के कहने से हनुमान ने मुख के अमृत से पूँछ की आग बुझा ली किन्तु इससे उनका मुँह काला हो गया। वे चिन्तित होकर बोले, अब जाति वालों को कैसे मुँह दिखाऊँगा। सीता बोलीं—तुम्हारी जाति में कोई न छूटेगा, मेरे कहने से सभी का मुँह काला हो जाएगा। (पृष्ठ २३९)

---

१. स्कन्दपुराण, ब्राह्मखण्ड—अ० ७ और ४४।

भस्मलोचन-वध—जब राम-सेना समुद्र पार कर गयी तो रावण ने भस्मलोचन को भेजा। यह राक्षस जिसे देख भर लेता, वही जल कर राख हो जाता। वह आँखों पर चर्माच्छादन लगाकर तथा चर्माच्छादित रथ में सवार होकर राम के पास आया। विभीषण की बतायी युक्ति के अनुसार राम ब्रह्मास्त्र पर दर्पण लगाकर असंख्य दर्पण उसके सामने प्रस्तुत कर देते हैं। राक्षस अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर जलकर भस्म हो जाता है। (पृष्ठ २५८-२५९)

बंगला-रामायण के लंकाकांड में इसका दुबारा उल्लेख है। इसे ब्रह्मा ने वर दिया था। पहले वाले प्रसंग से इतना अन्तर है कि इस बार राम दर्पणास्त्र द्वारा सभी वानरों के मुखों में दर्पण लगा देते हैं। वह आकर अपना ही मुख देखकर जल जाता है। (पृ० ३५७-३५८)

उड़िया-रामायण में :

रावण के लेख—धवल-पुर की दीवालों पर गेरू से, स्वर्णकंथों पर कस्तूरी से और काचपुर में खड़ी से रावण ने लिख रखा था—यद्यपि रघुनाथ मुझे मारेंगे, तथापि मैं सीता को न दूंगा। मैं श्रीराम के हाथों से मरने के कारण सीता को न दूंगा। जब हनुमान लंका पहुँचे तो इन लेखों को पढ़कर चकित होकर बोले—कौन कहता है कि रावण ज्ञानहीन है। वह राम को विष्णु जानकर ही सीता को हर लाया है। (पृ० ९)

रावण की सभा में शिव का तांडव—रावण अपनी सभा में अनेक प्रकार के मनोरंजन किया करता था। उसने रुद्र से तांडव-नृत्य के लिए कहा। रुद्र के कहने से देवताओं ने भिन्न-भिन्न वाद्य धारण किये। शंकर के नृत्य से रावण भयभीत होकर बोला, यह नृत्य न करो। देवताओं ने नृत्य-वाद्य बन्द कर दिया, किन्तु वे परस्पर देखकर मुस्कराये। इसके पश्चात् ही हनुमान द्वारा वाटिका-भंग की सूचना रावण को दी जाती है। (पृष्ठ २८-२९)

सीता का व्रत—हनुमान का बन्धन सुनकर सीता ने विलाप किया। उन्होंने जल के साथ अशोक की आठ कलियाँ खाकर कहा—आज चैत्र शुक्ल की अष्टमी है और पुनर्वसु नक्षत्र भी है। आज के दिन जो अशोक की आठ कलियाँ खाएगा उसका शोक खंडित होगा। मेरी बात युगयुग तक रहेगी। मेरा हनुमान इस संकट से पार हो। जिस समय सीता देवी ऐसा कह रही थीं, हनुमान के हृदय में ज्ञान का प्रवेश हुआ, उन्हें अपना बल याद आया। (पृ० ४४-४५)

लंका की मरम्मत—लंका-दहन के उपरान्त ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से कहा—लंका को सौगुना अच्छा कर दो। आज से ६४ वें दिन रावण का विनाश होगा, तब विभीषण को राज्य मिलेगा। ब्रह्मा ने रावण को **चन्द्रकान्त-मणि** भी दी, उसमें उष्ण को शीत और शीत को उष्ण रखने की विशेषता थी। (पृ० ६७-६८)

राक्षसों का परिचय—लंका से लौटे हुए हनुमान से राम ने राक्षसों का आचार

पूछा। हनुमान ने बताया—वे चारों वेद पढ़ते हैं। सब के घर में दुहरी आग है। वे घृत, तिल आदि से समीर की पूजा करते हैं। राम ने कहा—ऐसों को मारकर मैं पाप कैसे करूँगा, तब हनुमान ने बताया, यह ठीक है किन्तु उनमें ये अवगुण भी हैं— (१) उनमें दया नहीं है (२) वे स्नान नहीं करते हैं, (३) शुचिवंत नहीं हैं (४) रोप करते हैं (५) मंगतों को निराश करते हैं। तब राम ने सीता के अंगों का स्मरण कर सेना-सहित सिन्धुतीर पर पहुँचने के लिए प्रस्थान किया। (पृष्ठ ८५-८६)

जाम्ववान का कोष्ठी-विचार—सेतुबन्ध के समय जाम्ववान ने आठ खाने बनाकर उसमें आठ अक्षर लिखे, फिर अपंडित व्यक्ति को बुलाकर किसी एक खाने पर उंगली रखने को कहा। श्री अक्षर पर शकुन पड़ा। जाम्ववान ने राम से कहा—अल्प दिन में ही सीता मिलेंगी और रावण का सगोत्र विनाश होगा।

मानस में :

भक्त विभीषण और हनुमान की भेंट—हनुमान लंका में सीता को खोजते समय एक ऐसे घर के निकट पहुँचते हैं जो तुलसी और रामायुध के चिह्नों से अंकित है। विभीषण राम-नाम जप रहा है। हनुमान से भेंट होने पर वह पूछता है, राम मुझ अनाथ पर कब कृपा करेंगे। विभीषण ही हनुमान को सीता से मिलने की युक्ति बताता है। हनुमान लंकादहन के समय विभीषण का घर नहीं जलाते हैं। बँगला-रामायण में भी विभीषण का घर नहीं जलता है।

लक्ष्मण की चिट्ठी—रावण के भेजे हुए चर वानरों द्वारा पकड़े जाते हैं। राम उन्हें कृपापूर्वक छोड़ देते हैं। लक्ष्मण इन्हीं चरों के द्वारा रावण के पास चिट्ठी भेजते हैं। रावण बायें हाथ से चिट्ठी ग्रहण करता है।

लंका-काण्ड : तुलनात्मक अध्ययन

(वाल्मीकि-रामायण में इस कांड का नाम युद्ध-काण्ड है किन्तु सभी रामायणों में इसका नाम लंका-काण्ड है।)

सभी रामायणों के समान प्रसंग :

१. **लंका पर चढ़ाई**—रावण द्वारा चारों द्वारों पर सेना की नियुक्ति, राम द्वारा भी सेना का चार भागों मे बाँटा जाना, अंगद का दूत-कर्म, रावण को अपमानित कर वापस आना।

२. **मेघनाद का प्रथम युद्ध**—(नागपाश-बन्धन एवं लक्ष्मण पर शक्ति के सम्बन्ध मे पूर्वांचलीय-रामायणों मे समानता है, मानस की कथा में अन्तर है।)

३. **रावण का प्रथम युद्ध**—वानरों को घायल कर लक्ष्मण पर शक्ति-प्रहार, उन्हें उठाने की रावण द्वारा चेष्टा, हनुमान का आक्रमण, लक्ष्मण का उपचार।

(पूर्वांचलीय-रामायणों में रावण के तीन युद्धों का वर्णन है। प्रथम एवं द्वितीय युद्ध में वह लक्ष्मण के शक्ति मारता है। मानस में केवल दो युद्धों का वर्णन है। प्रथम युद्ध कुम्भकर्ण और मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् प्रारम्भ होता है।)

४. **कुम्भकर्ण-वध**—मुख्य सेनापतियों के वध के उपरान्त रावण की चिन्ता। अपने शाप-वरों का स्मरण करना। कुम्भकर्ण का जागरण। कुम्भकर्ण-रावण-सम्वाद, एक-दूसरे की भर्त्सना, फिर कुम्भकर्ण का युद्ध के लिए प्रस्थान, कुम्भकर्ण-विभीषण भेंट। कुम्भकर्ण का घायल सुग्रीव को लेकर भागना, सुग्रीव द्वारा उसके नाककान काटे जाना, क्रुद्ध कुम्भकर्ण का राम से भीषण युद्ध और उसका नाश।

५. **मेघनाद का द्वितीय युद्ध**—मेघनाद का अदृश्य होकर युद्ध करना तथा राम-लक्ष्मण को पीड़ित करना।

६. **मेघनाद का तृतीय युद्ध और मृत्यु**—माया-सीता-वध (मानस में नहीं), मेघनाद का निकुंभला-वट के पास यज्ञ करना, विभीषण के परामर्श और साहाय्य से लक्ष्मण द्वारा उसका यज्ञ विध्वंस करना। मेघनाद का मारा जाना। रावण की सीता के वध के लिए जाना किन्तु किसी एक पात्र द्वारा रोका जाना।

७. **रावण का युद्ध**—रावण द्वारा विभीषण पर फेंकी गयी शक्ति से लक्ष्मण का आहत होकर गिरना, रावण का युद्ध से खदेड़ा जाना। लक्ष्मण का चैतन्य-लाभ करना।

८ **रावण-वध**—इन्द्र द्वारा राम की सहायता के लिए मातलि सारथि-सहित रथ भेजना। राम के बाणों की चोट से मूर्च्छित रावण को सारथि द्वारा रण-क्षेत्र से दूर ले जाना, रावण का क्रुद्ध होना। राम द्वारा रावण के सिर बार-बार काटे जाने पर भी नये सिर उगना, राम की चिन्ता। अन्त में बाण से रावण का हृदय फाड़कर वध करना। विभीषण का विलाप, राम का समझाना। अन्त्येष्टि। विभीषण का अभिषेक।

९. **अग्निपरीक्षा**—राम का हनुमान द्वारा सीता के पास समाचार भेजना। सीता का हर्षित होना। राम की आज्ञा से विभीषण का सीता को डोले में बिठाकर लाना, वानर-रीछों की उत्सुकता, विभीषण के अनुचरों द्वारा वेत्र-प्रहार, राम का वर्जन, सीता को डोले से उतारकर पैदल लाये जाने का आदेश, राम का सीता को स्वीकार न करना, सीता की करुणावस्था, लक्ष्मण का चिता सजाना और सीता का अग्नि-प्रवेश। अग्नि का प्रकट होकर सीता को निष्कलंक बताना, राम द्वारा सीता की स्वीकृति। ब्रह्मा, दशरथ, इन्द्र आदि की उपस्थिति, इन्द्र द्वारा मृत वानरों को जीवन-दान।

१०. **विदाई**—विभीषण का आतिथ्य स्वीकार न कर राम की भरत से मिलने की आतुरता, विभीषण द्वारा वानरसेना का स्वागत, पुष्पक-विमान द्वारा रामादि का प्रस्थान, मार्ग में सीता को विभिन्न घटनाओं से सम्बन्धित स्थान दिखाना। भरद्वाज से भेंट।

११. **अयोध्या-प्रवेश**—राम का हनुमान द्वारा भरत को आने की सूचना देना, भरतादि की स्वागत-तैयारी, नन्दिग्राम में राम का स्वागत, राम का विधिवत् अभिषेक।

०पूर्वांचलीय-रामायणों का वर्णनक्रम वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है, अतएव उनमें कई स्थलों पर परस्पर समानता है। वाल्मीकि-रामायण के युद्ध-वर्णन में कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार है, कई स्थलों पर पुनरावृत्तियाँ हैं। मानसकार ने पूर्वांचलीय लेखकों की अपेक्षा इस विस्तार से बचने की अधिक सफल चेष्टा की है। रावण और मेघनाद के युद्ध-वर्णनों में इसे स्पष्ट किया जाएगा।

वाल्मीकि-रामायण की मायामुंड-निर्माण और माया-सीता-वध की घटनाएँ पूर्वांचलीय-रामायणों में भी हैं। ये घटनाएँ आदि-रामायणों में मूलतः नहीं थीं, बाद में जोड़ी गयी है। मानस में इनका वर्णन नहीं हुआ। नागपाश-बन्धन और लक्ष्मण के शक्ति लगने वाली घटनाओं का भी मानस में व्यतिक्रम है।

असमीया-रामायण का यह कांड प्रारम्भ से अन्त तक मूल से समानता रखता है उसमें अवान्तर प्रसंग नहीं आये हैं। शेष तीनों रामायणों में अनेक अन्य प्रसंगों का समावेश है, जिनका यथास्थान वर्णन होगा।

मायामुंड—वाल्मीकि-रामायण में रावण विद्युज्जिह्व की सहायता से राम का सिर और धनु बनवाकर सीता को दिखाकर विश्वास दिलाना चाहता है कि सोते समय राम की हत्या कर दी गयी है। सीता विलाप करती हैं। इसी समय मंत्रियों का सन्देश पाकर रावण वहाँ से हड़बड़ा कर प्रस्थान करता है, साथ ही मुंड और सिर लुप्त हो जाते हैं। सरमा रावण की सभा में जाकर सत्य-स्थिति का पता लगा-कर सीता को बताती तथा समझाती है।

असमीया और बँगला-रामायणों में प्रसंग इसी प्रकार हैं। सरमा पक्षी बन कर पता लगाती है। उड़िया-रामायण के वर्णन में मौलिकता के योग का प्रयास है। रावण स्वयं भक्त है, सोचता है कि सीता मानेगी नहीं, इसलिए वह राम-लक्ष्मण का सिर और धनुष दिखाकर सीता को फुसलाता है, शृंगारादि के वर्णन करता है। सीता विलाप करती हुई ऋषि-कथन का स्मरण करती हैं कि वे कभी विधवा नहीं होंगी। इस रामायण में सूचना देने वाली राक्षसी सरमा नहीं अपितु सीता की सखी प्रभंजना राक्षसी है। (पृष्ठ २८-३१)

अंगद का दूत-कार्य—वाल्मीकि-रामायण में अंगद के विश्वास की परीक्षा के लिए उसे दूत बनाकर भेजा गया है—ऐसा प्रतीत होता है। पिता के वध से यदि वह असंतुष्ट होगा तो रावण से जा मिलेगा अन्यथा सुग्रीव के अधीन रहेगा। **असमीया-रामायण** में अंगद के भेजने में यह दृष्टिकोण नहीं है, किन्तु शेष वर्णन वैसा ही है। अंगद रावण से बातचीत कर उसके चार राक्षसों को पछाड़कर और अटारी तोड़कर भाग आता है।

शेष भाषा-रामायणों में अंगद-रावण-संवाद का विस्तृत वर्णन है। यहाँ संस्कृत नाटकों का प्रभाव है। देखिए हनुमन्नाटक, अंक ८। इन तीनों रामायणों में अंगद रावण का परिचय पूछकर उसकी पराजयों की ओर व्यंगपूर्ण संकेत करता है। उड़िया-रामायण में इस प्रकार का व्यंग अधिक है। उसमें राम का पत्र लेकर भी वह गया है। **बँगला-रामायण** में—(१) अंगद रावण को सिंहासनारूढ़ देखकर स्वयं भी अपनी पूंछ की कुंडली बनाकर बैठता है, (**आनन्द-रामायण** में भी ऐसा वर्णन है[1]) । (२) रावण ऐसी माया रचता है कि इन्द्रजीत को छोड़कर सभी सभाजन अंगद को रावण दिखायी पड़ते हैं। अंगद ने इन्द्रजीत को ऐसा धिक्कारा तथा रावण के कृत्यों का ऐसा बखान किया कि रावण झेंपकर अपने प्रकृत-रूप में आ गया। (पृष्ठ २७५)

सभा में बल-प्रदर्शन का वर्णन असमीया और उड़िया-रामायणों में समान है किन्तु **बँगला** और **हिन्दी** रामायणों में विशेषता रखता है। वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण की किसी-किसी प्रति में यह श्लोक है—

वायुवेगं समासाद्य रावणस्य ततोऽङ्गदः।
जग्राह मुकुटं वीरः पादमादाय मस्तके॥

बँगला-रामायण में अंगद प्राचीर तोड़कर सोचता है कि राम के पास कौन-सी वस्तु ले जाए। अन्त में रावण के मणिमय मुकुट लेने के उद्देश्य से वह वहीं से उछाल लगाकर रावण पर झपटता है तथा उसे मल्लयुद्ध में पछाड़कर मुकुट लेकर चला आता है। (पृष्ठ २८१)

मानस में भी अंगद मुकुट प्राप्त करता है किन्तु बल-दर्शन का रूप अन्य प्रकार का है। अंगद **पैर रोप** देता है, जिसे इन्द्रजीतादि राक्षस तक नहीं उठा पाते। जब रावण स्वयं उठाने चलता है, तो वह उसे लज्जित कर देता है कि पैर ही पकड़ना है तो राम के पकड़। अंगद राम की निन्दा सुनकर क्रुद्ध होकर इतने जोर से हाथ पटकता है कि रावण डरकर गिरते-गिरते बचा। उसके मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े, अंगद ने उन्हें उठाकर वहीं से राम के पास फेंक दिया। (६-३१-३-६)

रावण-पराभव—युद्ध आरम्भ के पूर्व रावण के अपमानित होने का चित्रण किसी-न-किसी रूप में सभी रामायणों में है—असमीया-रामायण को छोड़कर। **अध्यात्म-रामायण** (६-५-४४) में राम-रावण के छत्र-मुकुट काट फेंकते हैं। इससे मिलता-जुलता वर्णन ही भाषा-रामायणों में है।

उड़िया-रामायण में रावण पुष्पक विमान पर चढ़कर युद्ध-क्षेत्र में आया। वह लक्ष राजाओं के जीते हुए लक्ष छत्रों को धारण किये था, लक्ष नारियाँ चँवर डुला रही थीं। रावण ने विभीषण पर गदा फेंकी, जिसे हनुमान ने उछलकर पकड़ लिया। राम ने बाण से छत्रों के दंड काट गिराये। (पृष्ठ ३७-३८)

---

१. आनन्द-रामायण-सार०, १०-२२१।

मानस में राम ने सुवेल पर्वत पर लेटे हुए दक्षिण दिशा की ओर विद्युत-शोभित बादल की गुरुगम्भीर ध्वनि सुनकर विभीषण से जिज्ञासा की। विभीषण ने स्पष्ट किया—आप रावण के छत्र को बादल, मन्दोदरी के ताटंक को बिजली एवं वाद्य-ध्वनि को मेघ-गर्जन समझ रहे हैं। राम ने रावण का अभिमान समझकर बाण द्वारा छत्र एवं ताटंक काट गिराये। (५-१३ क)

बँगला-रामायण में छत्र-मुकुट काटने का प्रसंग नहीं है। रावण अपने दुर्ग से राम की सेना का निरीक्षण कर रहा था। विभीषण के सुझाने पर राम ने रावण को मारने के लिए धनुष पर बाण चढ़ाया। रावण देख कर भाग गया। (पृष्ठ २६२)

वाल्मीकि-रामायण का प्रसंग इस प्रकार था—सुवेल-पर्वत पर राम-सेना पड़ाव डाले है। सुग्रीव ने 'नीलजीमूतसंकाशं हेमसंछादिताम्बरम्' रावण को देखा। सुग्रीव छलांग लगाकर उसके पास पहुँचे और मल्लयुद्ध में उसे परास्त कर लौट आये, साथ में उसके मुकुट भी लेते आये। (सर्ग-४०)

मेघनाद के तीन युद्ध

वाल्मीकि-रामायण में मेघनाद तीन बार युद्ध करता है। एक युद्ध रावण के प्रथम युद्ध और कुम्भकर्ण की मृत्यु के पूर्व है, शेष दो युद्ध कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् के हैं। चारों भाषा-रामायणों में युद्धों का यही क्रम है। उड़िया-रामायण में पाँच युद्धों का वर्णन है। प्रथम दो युद्धों को छोड़ दिया जाए तो शेष तीन अन्य रामायणों जैसे ही हैं।

प्रथम-युद्ध—मेघनाद नागपाश द्वारा राम-लक्ष्मण को बाँध लेता है। रावण सीता को त्रिजटा के साथ भेजकर रणभूमि में मूर्च्छित पड़े दोनों भाइयों को दिखाने के लिए पुष्पक-यान की व्यवस्था करता है। विलाप करती सीता को त्रिजटा समझाकर वापस ले जाती है। गरुड़ आकर राम-लक्ष्मण को बन्धन-मुक्त करते हैं।

पूर्वांचलीय-भाषा-रामायणों में नागपाश का समान वर्णन है। गरुड़ को बुलाने का वर्णन थोड़ा-सा भिन्न है। वाल्मीकि-रामायण में गरुड़ स्वयं आये हैं। **असमीया-रामायण** में वायु ने राम के कान में कहा कि गरुड़ का स्मरण करो। **बँगला-रामायण** में इन्द्र ने वायु से और वायु ने राम से स्मरण के लिए कहा, तब उन्होंने स्मरण किया। गरुड़ कुशद्वीप में अजगर भक्षण कर रहे थे। राम के स्मरण से उनके माथे पर टंकार पड़ी थी। **उड़िया-रामायण** के पाँच युद्धों में नागपाश वाले युद्ध का स्थान तीसरा है। **मानस** में वर्णित तीन युद्धों में नागपाश-बन्धन द्वितीय-युद्ध में हुआ है। इसमें गरुड़ नारद-द्वारा भेजे जाते हैं। वर्णन संक्षिप्त है। सीता युद्ध-क्षेत्र में नहीं भेजी जातीं।

मानस और उड़िया-रामायण के क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय युद्धों में मेघनाद-द्वारा लक्ष्मण के शक्ति लगने का विशद वर्णन है, जिसका वर्णन अन्यत्र होगा।

इसी शक्ति-प्रसंग के पश्चात् **उड़िया-रामायण** में मेघनाद राम-लक्ष्मण को तृतीय-युद्ध में नागपाश से आवद्ध करता है, क्योंकि लक्ष्मण के जी जाने से रावण ने उनके शौर्य की प्रशंसा की थी और यह मेघनाद को अखरी थी। जाम्बवान से हनुमान बोले, कहाँ है गरुड़, मैं पकड़ लाऊँगा। जाम्ववान ने अनेक द्वीपों और सिन्धुओं का उल्लेख कर दूरी वताते हुए कहा—इन सव के पार क्षीर-समुद्र में अनंतशय्या पर नारायण शयन करते है वहीं रामक-पर्वत पर गरुड़ है। राम ने गरुड़ की स्तुति की। गजकच्छप और वालखिल्य की कथा की ओर संकेत है। गरुड़ के आने की आवाज से ही साँप वन्धन छोड़कर भाग गये। (पृष्ठ ८८-९०)

द्वितीय-युद्ध—वाल्मीकि-रामायण में नागपाश के पश्चात् का युद्ध कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् हुआ। मेघनाद अपने तीक्ष्ण वाणों से राम-लक्ष्मण सहित समस्त सेना को वींध देता है। जाम्ववान के कहने से विभीपण हनुमान को खोज लाते हैं। वे औषध-पर्वत लाते हैं और इसी से सव का उपचार होता है।

सच तो यह है कि नागपाश जैसी ही स्थिति इस वार है, कथा की पुनरावृत्ति-सी है। हनुमान भी वार-वार औषध-पर्वत लाते दिखाये गये हैं। मानसकार ने संभवतः इसीलिए अपने तीनों युद्धों में से किसी में भी इसका वर्णन नहीं किया। असमीया और बँगला-रामायणों का वर्णन वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है। उड़िया-रामायण के वर्णन का भी मूल आधार यही है—

इसके अनुसार जव मेघनाद ने ब्रह्मशर उठाया तो राम ने प्रार्थना की, मैं नारायण प्रभु हूँ, मेरे ही अंश से तेरा निर्माण हुआ। किन्तु वाण ने सव को घायल किया। विभीपण भाग गया, इसलिए वच गया। मेघनाद सोचता है कि राम योद्धा है, वच सकते हैं, अतएव इनका सिर काटा जाए। देवताओं ने चिंतित होकर सरस्वती की सहायता माँगी। सरस्वती से प्रभावित-वुद्धि होने के कारण वह लौट गया। ब्रह्मशर राम के ब्रह्मत्व से परिचित तथा उनकी स्तुति से प्रभावित होकर राम-लक्ष्मण और हनुमान को छोड़ सव को काटता हुआ और मेघनाद की जय वोलता हुआ लंका लौट गया। शेष वर्णन समान है। इस रामायण में सीता विलाप करती है किन्तु अर्ध-रात्रि के समय स्वस्थ वानरों के आक्रमण से सीता की चिन्ता दूर हो जाती है। —१३६-३७ (उड़िया)।

तृतीय-युद्ध—तृतीय-युद्ध को भी दो खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। (१) मायासीता-वध और (२) मेघनाद का यज्ञ-विध्वंस तथा वध।

पूर्वांचलीय-रामायणों में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार दोनों खंडों का वर्णन है। मेघनाद मायासीता का वध हनुमान के सामने करता है। हनुमान राम से जाकर कहते है, राम शोक से विह्वल हो उठते है, अन्त में विभीपण के तर्को से सभी को विश्वास होता है कि वास्तविक सीता जीवित है। वँगला-रामायण में हनुमान सीता को देख भी आते हैं।

उड़िया-रामायण की मायासीता—मेघनाद ने जाम्बमाली से कहा कि वह अपनी विधवा बहिन सुकांति (मकराक्ष की पत्नी) को ले आए। मेघनाद ने उसे राम की पत्नी बनाने का लालच दिया। उसे त्रिवेणी के जल से नहलाकर सीता का रूप धारण कराया गया। मेघनाद उसे लेकर चला। इसी मायासीता का मग में ही शिरच्छेदन हुआ।

इस रामायण में भी रहस्योद्घाटन विभीषण द्वारा ही हुआ, किन्तु विभीषण को सूचना निकुला नामक राक्षसी से मिली जोकि त्रिजटा के कहने से कपि-रूप धारण कर आयी थी। इसके अतिरिक्त मायासीता के ओंठ और स्तनों पर जयंत काक के नखचिह्न खोजे गये, न मिलने पर विश्वास हुआ कि यह मायासीता है।

मानस में मायासीता का वर्णन नहीं है। मानसकार सीता को किसी भी रूप में बार-बार प्रस्तुत नहीं करते, प्रस्तुत करने पर राम को सत्य-शोक नहीं होता। हरी हुई सीता तो स्वयं ही मायासीता थीं।

मेघनाद का यज्ञ-विध्वंस और लक्ष्मण द्वारा उसका वध सभी रामायणों में एक जैसा ही है। यह तृतीय युद्ध उड़िया-रामायण का पंचम-युद्ध है।

रावण के युद्ध

वाल्मीकीय, असमीया और बँगला रामायणों में रावण के तीन युद्धों का वर्णन है। प्रथम-युद्ध कुंभकर्ण की मृत्यु के पहले एवं शेष दो कुंभकरण एवं मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् हुए। उड़िया-रामायण में भी तीन ही युद्ध हुए किन्तु रावण का प्रथम-युद्ध मेघनाद के नागपाश-बन्धन वाले युद्ध से मिला हुआ है। पितापुत्र साथ ही युद्ध करने निकले हैं। मानस में रावण के अन्तिम दो युद्धों का ही वर्णन है। वह सभी मुख्य सेनापतियों के युद्ध के उपरान्त ही युद्धक्षेत्र में आता है।

प्रथम युद्ध—मूल रामायण के अनुसार असमीया और बँगला रामायणों में रावण सर्वप्रथम सुग्रीव, हनुमान और नील के साथ युद्ध करता है। नील के युद्ध का रोचक वर्णन है। वह लघु-रूप धारण कर रावण के मुकुट और ध्वज पर उछलकूद कर रावण को खिझाता है। (बँगला-रामायण में वह रावण के सिर पर 'प्रस्राव' भी कर देता है जिससे उसका मुख भींग जाता है।) तदनन्तर वह लक्ष्मण के शक्ति मारता है। उठाने की चेष्टा में असफल होकर हनुमान की मार खाकर हटता है। राम उसे युद्ध में घायल कर छोड़ देते हैं। वे उसे प्रथम-युद्ध में मारना नहीं चाहते।

उड़िया-रामायण में लक्ष्मण के शक्ति आदि लगने का वर्णन तो है किन्तु यह शक्ति मेघनाद द्वारा रावण की उपस्थिति में फेंकी गयी है।

द्वितीय युद्ध (लक्ष्मण पर शक्ति)—वाल्मीकि-रामायण के **दाक्षिणात्य-संस्करण** में वर्णन इस प्रकार है—अनेक राक्षसों की मृत्यु के पश्चात् स्वयं रावण युद्धक्षेत्र में आया। उसने विभीषण पर शक्ति फेंकी, किन्तु उसकी रक्षा करते हुए लक्ष्मण ने शक्ति

को अपने ऊपर ले लिया। किन्तु **गौड़ीय** संस्करण में कालनेमि, गन्धर्व आदि के भी वृत्तांत प्रक्षिप्त थे। तीनों **पूर्वांचलीय रामायणों** में इनका वर्णन हुआ है। मानस में कालनेमि आदि का वर्णन अन्यत्र हुआ है। इसे लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में आगे स्पष्ट किया जाएगा।

तृतीय युद्ध (रावण-वध)—रावण को वर मिला था कि उसके कटे सिर जुड़ जाएँगे। फलतः राम बार-बार सिर काटने पर भी उसका वध नहीं कर पा रहे थे। **वाल्मीकीय, असमीया** और **उड़िया**-रामायणों में मातलि के याद दिलाने पर राम अगस्त्य-प्रदत्त बाण से रावण का वक्ष भेद कर मार डालते हैं। **मानस** में विभीषण ने राम को बताया कि इसके नाभिप्रदेश में अमृत है, उसे सोख लेने पर ही रावण की मृत्यु होगी। मानसकार को **अध्यात्म-रामायण** से प्रेरणा मिली है।

बँगला-रामायण में रावण की मृत्यु एक विशेष बाण से ही हो सकती थी, जिसे हनुमान चुराकर लाये थे। राम को दुर्गा की पूजा भी करनी पड़ी थी। इन प्रसंगों का पृथक् वर्णन आगे किया गया है।

लक्ष्मण को शक्ति लगना

प्रत्येक रामायण में लक्ष्मण को दो बार शक्ति लगती है। आदि-रामायण के अनुसार **असमीया** और **बँगला रामायणों** में रावण ही अपने प्रथम एवं द्वितीय युद्धों में लक्ष्मण को आहत करता है। **उड़िया** और **हिन्दी** रामायणों में पहली बार शक्ति मारने वाला मेघनाद है,[1] दूसरी बार शक्ति रावण के द्वितीय-युद्ध में लगती है।

पूर्वांचलीय-रामायणों में एक बात की समानता है—इनमें लक्ष्मण की शक्ति का विस्तृत-वर्णन रावण के द्वितीय-युद्ध के समय हुआ है। मानस में मेघनाद के प्रथम युद्ध में जब लक्ष्मण घायल होते हैं, तभी का वर्णन विस्तृत है। कालनेमि मकरी आदि प्रसंगों की समानता के कारण यहाँ इन्हीं प्रसंगों का तुलनात्मक वर्णन अभीष्ट होगा।

लक्ष्मण की मूर्च्छा और उपचार—प्रायः विभीषण को बचाने में ही लक्ष्मण शक्ति से घायल होते दिखाये गये हैं। शक्तिहंता उन्हें उठाकर ले जाने की चेष्टा करता है किन्तु विफल होता है। घायल लक्ष्मण का उपचार **सुषेण** द्वारा होता है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार सुषेण वानर-सैन्य का ही वैद्य था और **पूर्वांचलीय रामायणों** में भी ऐसा दिखाया गया, किन्तु **मानस** में बताया गया कि सुषेण रावण का वैद्य है जिसे हनुमान घर-सहित उठा लाते हैं। हनुमन्नाटक (१३-७) में भी ऐसा ही है।

कालनेमि—वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में कालनेमि-वध, गन्धर्वों से युद्ध, रावण के भेजे राक्षसों से युद्ध और हनुमान-भरत भेंट का वर्णन है। इनमें से अधिकांश का वर्णन अध्यात्म-रामायण में भी है। पूर्वांचलीय-रामायणों पर गौड़ीय-

१. अध्यात्म-रामायण में भी शक्ति का स्थल यही है यद्यपि शक्तिहंता रावण है।

संस्करण एवं हनुमन्नाटक का प्रभाव है तथा मानस पर अध्यात्म-रामायण का।

मकरी—कालनेमि की माया हनुमान को तब ज्ञात होती है जब वे मकरी को मारते हैं। **असमीया-रामायण** की गन्धकाली प्रचंड ऋषि से अभिशप्त होकर मकरी हुई थी। **बँगला-रामायण** की गन्धकाली देवकन्या कुबेर के यहाँ जाते समय दक्षमुनि से टकरा जाने से अभिशप्त हुई थी। **उड़िया-रामायण** के अनुसार मकर-मास में प्रयाग-तीर्थ में विधाता तपस्या कर रहे थे। गन्धर्व-यक्ष वालिराज की दुहिता ने डुबकी लगाकर पैर पकड़ा इसीलिए अभिशप्त हुई। मानस तथा सभी रामायणों में वह शापमुक्त होकर पूर्वरूप धारण करती है।

गन्धर्व-युद्ध—पूर्वांचलीय-रामायणों में पर्वत के रक्षक असंख्य गन्धर्वों से युद्ध करना पड़ता है। मानस में यह वर्णन नहीं है।

सूर्य को बन्दी करना—**बँगला-रामायण** में रावण सभी देवताओं को बुलाकर सूर्य को आदेश देता है कि समय-असमय का ध्यान छोड़कर अभी उदित हो, जिससे लक्ष्मण की मृत्यु हो जाए। सूर्य उदित होने चले तो हनुमान ने उन्हें पकड़ कर बगल में दबा लिया। पर्वत लाने के पश्चात् राम के कहने से हनुमान ने उन्हें छोड़ दिया। हनुमन्नाटक (अंक १३) से बँगला-लेखक को प्रेरणा मिली है।

पर्वत-उत्पाटन—औषध न खोज पाने पर पर्वत ही उखाड़कर लाने की घटना सभी रामायणों में है।

भरत-हनुमान-भेंट—असमीया को छोड़कर शेष रामायणों में हनुमान-भरत-भेंट का वर्णन है। हनुमान पर्वत लेकर अयोध्या से निकल रहे थे, तब भरत ने हनुमान को नीचे गिरा दिया। **बँगला-रामायण** में ८० मन भारी वाँटुल (लोहे के गोले) से गिराया, **उड़िया रामायण** में वाँटुलि से गिराया जाना लिखा है, **मानस** में बिना फल वाले बाण से। मानस में दोनों की वार्त्ता सौहार्द-पूर्ण ढंग से हुई है किन्तु उपर्युक्त दोनों रामायणों में कुछ कहा-सुनी हो गयी है। **बँगला-रामायण** में हनुमान भरत की शक्ति-परीक्षा भी लेते दिखाये गये हैं।

उड़िया-रामायण में भरत हनुमान से कहते हैं कि किसी से कहना नहीं कि तुम मेरे प्रहार से बच गये, नहीं तो क्षत्रिय हँसेंगे। हनुमान ने कहा, तुम भी मत कहना नहीं तो क्षत्रिय मुझ पर हँसेंगे कि ब्रह्मा ने इसे कैसा वज्रांग बनाया कि यह गोले के प्रहार से मोहग्रस्त हुआ।

पर्वत की वापसी—राम के कहने से हनुमान पर्वत वापस रख आये। इस समय रावण के भेजे राक्षसों को भी उन्होंने मार दिया। यह प्रसंग **पूर्वांचलीय-रामायणों** में है किन्तु मानस में नहीं है।

सीता की अग्नि-परीक्षा

वाल्मीकि-रामायण में विभीषण सीता को लेकर चले। उनके आस-पास वेत्र-

धारी राक्षस चल रहे थे। रीछ-वानरों का दल वड़ी उत्सुकता के साथ सीता को देखने के लिए टूट पड़ रहा था। रक्षक उन्हें वेत्र से पीट रहे थे। राम ने क्रुद्ध होकर सीता को डोले से उतरकर पैदल लाये जाने का ग्रादेश दिया। सीता ने ग्राकर उन्हें प्रणाम किया, किन्तु राम ने भयंकर क्रोध प्रकट करते हुए सीता को ग्रहण करना ग्रस्वीकार करते हुए कहा—दसों दिशाएँ खुली हैं, कहीं चली जाग्रो ग्रौर उपस्थित-लोगों में किसी को वरण कर लो। मैंने कुल की लाज-रक्षा के लिए ही तुम्हारा उद्धार किया था। सीता ने भी तेजस्वी ग्रार्य-नारी जैसा उत्तर देकर लक्ष्मण को चिता सजाने की ग्राज्ञा दी। लक्ष्मण ने राम की स्वीकृति जानकर चिता सजा दी। ग्रग्नि सीता को गोद में लेकर प्रकट हुए। राम ने सीता को स्वीकार कर लिया।

वँगला-रामायण ग्रौर मानसकार के राम इतने उग्र नहीं हो सके, उन्होंने तो सीता को इसलिए पैदल ग्राने दिया कि वे तो जननी-तुल्य हैं, ग्रौर वानरादि पुत्र-तुल्य हैं, देखने में दोप नहीं।

शेप समस्त-वर्णन **ग्रसमीया, वँगला** ग्रौर **उड़िया** रामायणों में एक समान तथा मार्मिक है। भाषा-रामायणों की सीता का चरित्र उग्र होते हुए भी तत्कालीन नारी की ग्रवशता से भी युक्त है। वँगला-रामायण की सीता सफाई देती हैं कि वे शैशव में भी शिशु-पुरुषों से नहीं मिला करती थीं।

मानस के वर्णन में ऐसी मार्मिकता नहीं ग्राने पायी। संभवतः राम को निष्करुण होने के कलंक से वचाने के लिए मानसकार ने **ग्रध्यात्म-रामायण** के ग्रनु-सार **छायासीता** की कल्पना की। राम इसी छायासीता को वापस कर सत्य सीता चाह रहे हैं इसीलिए उन्होंने कुछ कठोर वचन कहे। ग्रतएव सीता की ग्रग्नि-परीक्षा दो उद्देश्यों से हुई—१. प्रतिविम्व के स्थान पर सत्य सीता की प्राप्ति के लिए ग्रौर २. सीता के लौकिक-कलंक को नष्ट करने के लिए। **वँगला-रामायण** में भी सीता के कलंक को दूर करने के लिए मन्दोदरी-शाप की कल्पना हुई है।

पुष्पक द्वारा वापसी—वापसी का वर्णन समान है। **ग्रसमीया** ग्रौर **वँगला** रामायणों में राम हनुमान-द्वारा गुह ग्रौर भरत को सूचना पहुँचाते हैं। **उड़िया-रामायण** में भी ऐसा है, किन्तु जिस समय विमान जा रहा है, ग्रगद राम की ग्राज्ञा पाकर विमान से कूद कर गुह से कह ग्राते हैं कि ग्रयोध्या ग्राकर मिलो। ग्रंगद पुनः विमान में वैठ जाते हैं। **मानस** में यान गंगा के किनारे रुकता है। सीता गंगा की पूजा करती हैं। यहीं गुह से मिलन होता है।

वँगला-रामायण में वापसी के समय सेतु-भंग करने ग्रौर शिव की पूजा करने का भी वर्णन है।

हनुमान पुरस्कृत—वाल्मीकि-रामायण के ग्रनुसार, **ग्रसमीया** ग्रौर **वँगला** रामायणों में सीता हनुमान को हार प्रदान करती हैं। **ग्रसमीया-रामायण** में हनुमान ने राम से वर माँगा कि जव तक राम-कथा संसार में रहे, मैं जीवित रहूँ।

बँगला रामायण में सीता ने वर दिया कि जहाँ कही भी रामकथा होगी, वहाँ तुम अवश्य ही रहोगे। हार के सम्बन्ध में दो आख्यान और है—(१) हनुमान ने सीता-प्रदत्त हार को चबाकर फेंक दिया, क्योंकि उसमें राम का नाम अंकित नहीं था। लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर कहा—'फिर शरीर क्यों धारण किये हो।' हनुमान ने शरीर फाड़कर अस्थिमय राम-नाम दिखा दिया। (२) सीता हनुमान को भोजन करा रही थीं। वे खाते ही चले जा रहे थे। सीता चिंतित हुईं, उन्होंने ध्यान-पूर्वक जाना कि ये तो साक्षात् शिव के अवतार हैं। तब सीता ने सावधानी के साथ युक्ति-पूर्वक उनकी क्षुधा शांत की। (पृ० ४६२)

उड़िया-रामायण में भी हनुमान जब तक राम की कीर्ति रहे, जीवित रहना चाहते है। उन्हें अमर और नीरोग रहने का वर मिलता है। उनकी शक्ति ऐसी ही रहेगी और उन्हें यथेच्छ भोजन मिलेगा। (पृ० ३६४)

रामराज्य—पूर्वांचलीय-रामायणों के युद्धकाण्ड की समाप्ति पर तथा मानस के उत्तरकाण्ड में रामराज्य का वर्णन है।

तुलनात्मक अध्ययन से बचे हुए प्रसंग

असमीया-बँगला रामायणों में :

नंदीशाप—नन्दी ने रावण को शाप दिया था कि नर और वानर के हाथों उसकी मृत्यु होगी। वाल्मीकि-रामायण का यह वृत्तांत असमीया एवं बँगला-रामायणों के इसी काण्ड में और उड़िया-रामायण के उत्तरकाण्ड में है।

बँगला-उड़िया रामायणों में :

गरुड़ : कृष्णः हनुमान—नागपाश से पीड़ित राम-लक्ष्मण की मुक्ति के लिए सभी रामायणों में गरुड़ की अवतारणा हुई है, किन्तु कृष्ण-जन्म का उल्लेख और उनसे हनुमान के विवाद होने का वर्णन केवल उपर्युक्त दो रामायणों में है। **बँगला-रामायण** में गरुड़ ने अनुरोध किया कि कृष्णावतार का रूप वह अभी देखना चाहता है। गरुड़ ने पंखों से राम को ढक कर आड़ कर ली। राम ने कृष्ण-रूप दिखलाया। हनुमान को इससे बड़ा रोष हुआ, उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इसका बदला कृष्ण-जन्म में लिया जाएगा। (पृ० २६१)

उड़िया-रामायण में स्वयं गरुड़ राम के कृष्णावतार की लीलाओं का वर्णन कर कहता है कि जब कालियनाग के विष से तप्त होगे, तब मेरा स्मरण करोगे, तभी भेंट होगी। हनुमान राम से बोले इसे जाने मत दो, युद्धकाल तक रोक लो, यह मेरे सामने रहे। राम बोले—न, यह मेरे पिता के समान हैं। (पृ० ६१)

केवल असमीया-रामायण में :

सुग्रीव और वालि की उत्पत्ति—रावण के दूतों ने उसे दुर्ग पर चढ़कर सुग्रीव और वालि की ओर इंगित करते हुए उनका जन्म-वृत्तांत बताया। ब्रह्मा की आँख में धूल पड़ी—उससे एक सुन्दरी का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया आखिराज। सूर्य और इन्द्र ने मुग्ध होकर इसे पुत्र का वर दिया। जुड़वाँ पुत्र हुए, जो वालि और सुग्रीव कहलाये। (पृष्ठ ३०१)

उड़िया-रामायण के किष्किन्धा काण्ड में इनकी उत्पत्ति-कथा विस्तारपूर्वक वर्णित हुई है।

बँगला-रामायण में :

हर-पार्वती कोंदल—(कोंदल-झगड़ा)—हर और पार्वती में झगड़ा हुआ। पार्वती कहती है—तुम भँगेड़ी हो, सेवक रावण की चिन्ता नही करते। शंकर अप्रसन्न होकर कहते है, तुम वामा जाति की हो। राम विष्णु-अवतार है, रावण की रक्षा नही हो सकती। यह कोंदल बंगाल की शिवायन-धारा का प्रतीक है। (पृ० २७२)

दुष्ट राक्षस—(क) **मकराक्ष**—वाल्मीकि रामायण तथा भाषा-रामायणों मे खर के पुत्र मकराक्ष के युद्ध का वर्णन है। बँगला-रामायणकार ने नूतन कल्पना भी की है। यह राक्षस अपने रथ के आगे-पीछे गायों का समुदाय लेकर आता है। रथ में बैल जोते गये है, रथ चारों ओर से गोचर्म से ढका है। कुछ दुष्ट-आक्रामक हिन्दुओं को परास्त करने की इसी प्रकार की युक्तियाँ निकालते रहते थे, उसी की झलक इसमे है। राम पवनास्त्र की सहायता से गाय-बैलों को उड़ाकर मकराक्ष का वध करते है। (पृ० ३४४)

(ख) **भस्मलोचन**—भस्मलोचन राक्षस का वर्णन सुन्दरकाण्ड में हो चुका है, लंकाकाण्ड मे भी भस्मलोचन आता है। इस बार राम प्रत्येक वानर के मुँह पर दर्पणास्त्र द्वारा दर्पण लगा देते है, जिनमें अपना ही मुख देखकर यह राक्षस जल मरता है। (३५७-५८)

भक्त-राक्षस—रामायणों में अनेक राक्षसों के युद्धों का वर्णन है। कृत्तिवास ने बँगला-रामायण मे कुछ राक्षसों को भक्त बना दिया है। इन राक्षसों की भक्ति-विह्वलता देखकर विद्वान् ऐसा सोचने के लिए बाध्य हुए है कि बँगला-रामायण के ये अंश प्रक्षिप्त है, क्योंकि इस भक्ति-विह्वलता पर **चैतन्य** महाप्रभु का स्पष्ट प्रभाव जान पडता है। चैतन्य कृत्तिवास के परवर्ती है।

अतिकाय—रावण-पुत्र है। राम की स्तुति करता है, फिर उन्ही से युद्ध करते हुए मृत्यु चाहता है। सिर कट जाने पर उसका सिर राम-नाम बोलता है। (पृ० ३२४)

तरणीसेन--विभीषण-पुत्र है। गंगा-मृत्तिका से अपने शरीर पर लक्ष-लक्ष रामनाम अंकित कर तथा वाद्यों द्वारा रामनाम की जयध्वनि के साथ राम पर आक्रमण करता है। सम्मुख आने पर स्तुति करता है। राम को वध करने से विचलित देखता है तो गाली-गलौज करने लगता है। मरने पर इसका भी सिर रामनाम बोलता है। विभीषण के परिचय देने पर रामादि विलाप करते हैं। (पृ० २४६-५४)

वीरबाहु—इसकी भी स्थिति तरणीसेन जैसी है। इसका भी कटा हुआ सिर रामनाम बोलता है, विभीषण इसे उठाकर राम के पदतल में डाल देता है। (पृ० ३६५)

उड़िया-रामायण में भी इस राक्षस की भक्ति का विस्तृत वर्णन है।

महीरावण-अहीरावण—बंगला-रामायण के अनुसार महीरावण रावण का मन्दोदरीगर्भोत्पन्न पुत्र तथा पाताल का शासक है। रावण के स्मरण करने पर उसके मस्तकपर टंकार होती है और वह खड़ी से मन्त्र लिखकर स्मरण करने वाले का पता लगाता है। फिर सुरंग निर्माण कर पिता के समक्ष उपस्थित होता है। विभीषण पिता-पुत्र की मंत्रणा का पता लगाकर हनुमान को राम-लक्ष्मण की रक्षा का भार सौंपते हैं। हनुमान ने सारी सेना पूँछ के कोट के भीतर कर ली। सुदर्शनचक्र ने आकाश में पहरा देना प्रारंभ किया और नल ने पाताल में। विभीषण इधर-उधर घूमकर चौकसी करने लगे। महीरावण अनेक रूप धारण करने के उपरान्त भी धोखा देने में समर्थ न हुआ। अंत में विभीषण बनकर राम-लक्ष्मण को चुरा ले गया। हनुमान ने लज्जित एवं क्षुब्ध होकर पाताल तक संधान किया। वहाँ महामाया योगाद्या के सुझाये उपाय से महीरावण को मारकर राम-लक्ष्मण का उद्धार किया। उसकी विधवा रानी ससैन्य युद्ध करने लगी। उसके पेट में लाठी मारने से अहीरावण का जन्म हुआ। वह पैदा होते ही युद्ध करने लगा, हनुमान ने उसे भी मार डाला। (पृ० ३९६-४०९)

जैमिनी-भारत, आनन्द-रामायण एवं अन्य ग्रन्थों में इन राक्षसों का जो वृत्तांत पाया जाता है, वह इस रामायण के वर्णन से नहीं मिलता। संभवतः महामाया के प्रभाव की वृद्धि के लिए इस प्रसंग की कल्पना हुई है।

उड़िया रामायण के सुन्दरकाण्ड में महीरावण का नाम आया है।

रावण की भक्ति—तृतीय-युद्ध में जब रावण युद्ध करता हुआ थक जाता है, धनुष फेंककर राम की स्तुति करने लग जाता है। राम भी उसकी स्तुति से विचलित होकर धनुष-बाण फेंक देते हैं। देवताओं ने सरस्वती की सहायता ली। इनके कंठ पर बैठने से रावण राम को गालियाँ देने लगा, जिससे राम क्रुद्ध होकर पुनः युद्ध करने लगे। (पृ० ४१५-१६)

राम की शक्ति-पूजा—राम से युद्ध करते समय रावण व्याकुल होकर दुर्गा का स्तवन करने लगा। दुर्गा ने द्रवित होकर उसे गोद में ले लिया। राम के सामने समस्या उत्पन्न हुई, अब रावण पर कैसे प्रहार करें।

देवता चार मास सोते हैं, देवी की पूजा वसंत में होती है। रावण-वध के लिए राम ने उनका अकाल-बोधन किया। हनुमान पूजा के लिए कालीदह से १०८ नील-पद्म ले आये। राम ने पूजा करते हुए फूल चढ़ाना प्रारंभ किया। देवी ने एक फूल चुरा लिया। अनुष्ठान को अपूर्ण होता देखकर राम अधीर हो उठे। अंत में वे अपना नेत्र ही पद्म के स्थान पर चढ़ाने को उद्यत हुए। देवी ने प्रसन्न होकर उनका हाथ पकड़ लिया और रावण पर विजयी होने का वर दिया। (४१७-२६)

आधार—**कालिकापुराण** (६२-६५) में ब्रह्म द्वारा देवी का अकाल-बोधन हुआ है। **बृहद्धर्म-पुराण** (पूर्वखंड, २०) में स्वयं लंका की अधिष्ठातृ-देवी चंडिका अकाल-बोधन के सम्बन्ध में हनुमान को बताती हैं। **देवी भागवत पुराण** (३-३०।४१-५८) में राम नारद के कहने से देवी का पूजन करते हैं। देवी सिंह पर आरूढ़ होकर राम को दर्शन देती हैं, तथा रावण के वध का वर देती हैं।

इन पुराणों में अम्बिका द्वारा रावण को गोद में लेने, देवी द्वारा राम को प्रतारित करने तथा राम का अपना एक कमलाक्ष प्रदान करने आदि का वर्णन नहीं है।

निराला[1] जी को भी अपनी राम की शक्ति-पूजा कविता के लिए इसी प्रसंग से प्रेरणा मिली है।

चंडी पाठ की अशुद्धि—लंका में रावण के मंगलार्थ बृहस्पति को चंडी-पाठ करना पड़ता था। हनुमान चंडी अशुद्ध करने गये। उन्होंने मक्खी का रूप धारण कर पोथी के दो अक्षर चाट लिये। बृहस्पति को श्लोक कंठस्थ थे, अतएव वे शुद्ध पाठ कर गये, चंडी का पाठ अशुद्ध नहीं हुआ। उन्होंने भयानक रूप धारण कर तीन श्लोक पोंछ दिये। अब चंडी रावण को निराश कर कैलाश चली गयीं। (पृष्ठ ४२६)

मृत्युबाण—ब्रह्मा ने रावण को ब्रह्मास्त्र देकर कहा था, इसी से तुम्हारी मृत्यु होगी। रावण ने यह बाण मन्दोदरी को दिया और उसने इसे स्तम्भ में चुनवा दिया। विभीषण से यह रहस्य ज्ञात कर हनुमान ने ज्योतिषी का रूप धारण किया और मन्दोदरी से यह बाण ठग लाये। राम ने मन्त्र पढ़कर तथा विश्वामित्र का स्मरण कर इसी बाण से रावण का हृदय चीर दिया।

बाण हंसाकार, स्वर्णनिर्मित और कृष्णवर्ण था। उसके मुख में गुप्त रूप से अग्नि थी। पशुपति मध्य में बैठे थे, पवन इसका संचालन कर रहे थे, यम भी अलक्षित रूप से बाण के ऊपर विराजमान थे। नाना पुष्पमाल्य से वह सज्जित किया गया था। सन्धान के पूर्व इसके मुख में ब्रह्म-अग्नि जलने लगी और यह महाशब्द करता हुआ गरजने लगा। (पृष्ठ ४२७-२९)

---

१. हिन्दुस्तान-साप्ताहिक (२३ अक्तूबर, ५५)—राम की शक्ति-पूजा : कृत्तिवास के आधार पर निराला का अध्ययन—डा० रमानाथ त्रिपाठी।

रावण की राजनीति-शिक्षा—घायल रावण ने मृत्यु के पूर्व राम की जिज्ञासा पर निम्न शिक्षाएँ दीं—

१—अच्छे कार्यों में देर नहीं करनी चाहिए।

२—बुरे कार्यों में देर करनी चाहिए।

वह तीन शुभ कार्य करना चाहता था, जिनके पूर्ण करने में उसने देर लगायी—(१) नरककुंड भरना, (२) लवण-समुद्र सुखाकर उसे दधि, दुग्ध और घृत से भर देना और (३) स्वर्ग के लिए पथ-निर्माण करना।

सीता-हरण जैसे बुरे कार्य में उसने देर नहीं लगायी, इसीलिए उसका संहार हुआ। (पृष्ठ ४३०-३२)

मन्दोदरी का सीता को शाप— सम्भवतः राम को कठोरता के दोष से मुक्त करने के लिए मन्दोदरी के शाप की कल्पना हुई है। राम से मिलने के लिए तैयार सीता को देखकर मन्दोदरी ने शाप दिया—'तुम मुझे अनाथ कर आनन्द के साथ राम-सम्भाषण के लिए जा रही हो। तुम्हारा यह आनन्द निरानन्द हो जाएगा। राम तुम्हें विष-दृष्टि से देखेंगे।' (पृ० ४३९) **बँगला-रामायणकार** को शाप की यह कल्पना गौड़ीय-संस्करण के तारा वाले शाप से मिली है। पाताल-प्रवेश की घटना से राम को दोषमुक्त करने के लिए तारा-शाप गढ़ा गया और अग्नि-परीक्षा से राम की कलंक-मुक्ति के लिए मन्दोदरी का शाप गढ़ा गया है।

रावण की चिर-प्रज्ज्वलित चिता—रावण वध के उपरान्त विधवा मन्दोदरी राम के पास जाकर उन्हें प्रणाम करती है। राम उसे सीता समझ सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देते हैं। भूल ज्ञात होने पर वे कहते हैं कि तुम सदैव चिता प्रज्ज्वलित रखो, तुम्हारा सौभाग्य भी चिरकाल तक रहेगा। (पृष्ठ ४३५)

आनन्द-रामायण में भी लिखा है कि रावण का शरीर आज भी जल रहा है। शरीर जलने के दो कारण बतलाये गये है—(१) राम के हाथ से वध होने के कारण वह मुक्त तो हो गया, किन्तु अनेक ब्रह्म-हत्याएँ एवं पाप-कर्म करने के कारण उसका शरीर जल रहा है। (२) रावण ने राम से वर माँगा था कि लोकों के बीच उसका सदैव स्मरण किया जाए। राम ने उसकी चिता को प्रज्ज्वलित रखकर मनोकामना पूर्ण कर दी। (राज्यकांड, २०-१-१६)

वानर-भोज और झाललाडू—विभीषण ने वानरों को भोज दिया। अनेक सुस्वादु पदार्थों के साथ पका कटहल दिया गया। साथ ही चरपरा लड्डू (झाल लाडू) भी परोसा गया। खानेवाले सिर खुजलाते थे और थू-थू करते थे। (पृ० ४४६) निश्चय ही इस प्रसंग में नैषधीय-चरित से प्रेरणा मिली है। नल के साथी बरातियों को इसी प्रकार का पदार्थ परोसा गया था। (१६-७३-७४)

सेतुभंग और शिवपूजा—सीता के कहने से तथा समुद्र की प्रार्थना से राम लक्ष्मण को आज्ञा देकर सेतु भंग करा देते हैं। **आनन्द-रामायण** में स्वयं राम ने धनुष

से सेतु भंग किया है। (सारकांड, १२-४७-४८)

लक्ष्मण वालू के शिव बनाते है और राम उनकी पूजा करते है। इसी कारण सेतुवन्ध रामेश्वर नाम पड़ा। (पृष्ठ ४४८-४६)

उड़िया रामायण में :

ब्रह्मादिक देवों की विदा—ब्रह्मादिक देवता रावण के दरवार में रहकर सेवा करते थे। राम-सैन्य के समुद्र पार कर लेने पर रावण ने इन देवताओं से लंका छोड़कर चले जाने के लिए कहा। उसने वताया कि जव अयोध्या मे उसका अभिषेक होगा तव वही सव को आना चाहिए। (पृष्ठ ८)

शार्दूल की शक्ति (तंत्र-मत्र)—रावण शत्रु-सेना के सम्वन्ध मे शार्दूल से पता लगवाया करता था। शार्दूल से किसी समय नारद ने प्रसन्न होकर दो वातें बतायी थीं—(१) ताँवे के पात्र में वायें हाथ से घोड़े की लीद डालकर फिर उसमें पिसी हुई मिर्च मिलाकर अँधेरे में अंजन वनाकर आँखों मे लगाने से रात में भी दिखायी पड़ेगा। (२) मंत्र-विशेप पढकर वायें पैर की धूल सिर पर डालने से लक्ष-योजन की वात ज्ञात हो सकेगी। (पृष्ठ १२,१३)

युद्ध-सज्जा—युद्ध की पद्धति, तैयारी और अस्त्र-शस्त्र का विस्तृत वर्णन है। अनेक योद्धाओ के नखशिख-शृंगार का भी विशद वर्णन है, किन्तु इसमें पुनरुक्ति-दोष है। (पृष्ठ १४-२३)। राक्षसों की युद्ध-पद्धति का भी सुन्दर वर्णन है। (पृष्ठ ३६)

सुलक्षिणी-कुलक्षिणी के लक्षण—रावण द्वारा सीता को राम का मायामुंड दिखाने पर सीता ने दुःखी होकर कहा था कि लोग वचपन में कहा करते थे कि मै कभी विधवा नही होऊँगी। कुलक्षिणी स्त्रियाँ ही विधवा होती है। सीता दोनों प्रकार की कन्याओं के रूपगुण का वर्णन कर अपने को सुलक्षिणी नारी वताती है। (पृष्ठ ३२-३३)

लेखक का परिचय—वलरामदास ने सत्तरह-अठारह पंक्तियों में अपना परिचय दिया है। इसका उपयोग जीवनी वाले अध्याय मे होगा। (पृष्ठ ३४)

हनुमान का दूतत्व—एक हलका युद्ध हो जाने पर राम ने हनुमान को दूत वनाकर रावण के पास भेजा। राम ने सुषेण से तालपत्र पर श्रीमुख लिखवाकर उस पर मुद्रा लगाकर भेजा। रावण की सभा मे हनुमान ने पहुँचकर देखा, वह दो कोस ऊँचाई पर वैठा है। हनुमान भी पूँछ की कुंडली पर वैठकर उतने ही ऊँचे हो गये। रावण के कहने पर उन्होंने मुद्रा तोड़कर श्रीमुख पढ़ा।

मनसिल तथा एकस्तनी कन्या—हनुमान औपध-पर्वत ले आये। सुषेण ने हनुमान से कहा कि स्वर्ग से मनसिल और तारा नामक एकस्तनी कन्या ले आओ। हनुमान ब्रह्मा और इन्द्र से मिलकर दोनों को ले आये। सुषेण ने कन्या के स्तन को ताँवे के पात्र मे दुहकर मनसिल और औषध को पीसकर लक्ष्मण को सुंघाया, लक्ष्मण

प्रकृतिस्थ हुए। (२००-२०१)

संथा-पंडा ब्राह्मण और पतिव्रता की कथा— वैतरणी नामक गाँव के संथा पंडा नामक ब्राह्मण ने प्रचुर धन अर्जित कर एक ब्राह्मण कन्या से विवाह किया। वह रविवार के दिन रजोवती हुई। देवी के दोष से ऐसी कन्या के साथ रमण करने से वह कुष्ठ रोगग्रस्त हुआ। एक दिन वह सुन्दरी गणिका का नृत्य देख कामपीड़ा का अनुभव कर दुखी हुआ। पति की इच्छा रखने के लिए साध्वी पत्नी रात में चुपके वेश्या के घर जाकर उसके आँगन को स्वच्छ कर सुगंधित जल का छिड़काव कर आती। वेश्या ने चकित होकर छिपकर पता लगाकर पतिव्रता से कारण पूछा। वेश्या उसकी इच्छा पूरी करने के लिए प्रस्तुत हो गयी। पतिव्रता जब पति को लेकर चली तो शूली पर चढ़े हुए ऋषि से टकरा गयी। चोरों ने राजा के यहाँ चोरी का माल का भाग-विभाजन कर एक अंश तपस्या-रत ऋषि के पास रख दिया था। इसीलिए राजा ने ऋषि को दंडित किया। ऋषि ने इस जन्म में सात वर्ष की आयु में एक पतिंगे को शूल चुभाया था, इसी पाप के कारण वे राजा द्वारा शूली पर चढ़ा दिये गये। टकरा जाने पर उन्होंने शाप दिया कि टकराने वाला पुरुष हो तो सूर्योदय के पूर्व उसका सिर कटकर गिरे और स्त्री हो तो उसके नाक-कान गिरें। पतिव्रता ने कहा— सूर्योदय होगा ही नहीं। सात रातें बीत गयीं, ब्राह्मण और गाय अपूजित रह गये। देवता और ब्रह्मा के प्रयास से पतिव्रता ने सूर्योदय होने के लिए कह दिया। दोनों पति-पत्नी अमृत-पान कर स्वर्ग गये। (२०५-२०८)

वीरवाहु का युद्ध— रावण का पुत्र वीरवाहु कैलास पर्वत पर मन-पवन को रोककर ब्रह्मानन्द में लीन होकर तप कर रहा था। रावण ने दूतों को भेजा। उनके बार-बार चिल्लाने पर भी उसका ध्यान भंग नहीं हुआ, तब वे राम की कथा सुनाने लगे। वीरवाहु ने राम का नाम सुनकर इनसे बात की। वीरवाहु ने रावण के पास जाकर परनारी-हरण को अपराध बताया और कहा कि राम विष्णु हैं तथा सीता लक्ष्मी। तुम दोनों भाई वैकुंठ के द्वारपाल हो। रावण स्वीकार कर कहता है कि असुर-मुक्ति के लिए ही उसने सीता-हरण किया है। यदि राम विष्णु नहीं हैं तो मैं नाराच से मार डालूँगा। वीरवाहु ने माता मन्दोदरी से राम के हाथों मरने की आज्ञा माँगी। वह रोकर रोकने लगी। राम ने वीरवाहु का आगमन सुनकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर कहा—यह भक्त है, यदि, दीनता दिखाये तो इसका नाश नहीं करूँगा, किन्तु यदि शस्त्र लेकर आएगा तो इसके प्राण ले लूँगा। वह विभीषण से आदरपूर्वक मिला। उसने लक्ष्मण को घायल किया। राम को देखकर स्तुति की। वह राम से सिर काटने का अनुरोध करता है। राम वैष्णव का सिर कैसे काटें, वे सीता के बिना चले जाने को प्रस्तुत हैं। किसी प्रकार दोनों में युद्ध हुआ। उसके वाण राम के चरणों पर गिरने लगे और राम उस पर वाण फेंककर अपने ही अंगों पर चोट पाने लगे। वह राम के चरणों पर आ गिरा।

देवता चिन्तित हुए कि कहीं राम पसीज न जाएँ। उन्होंने **सरस्वती** को भेजा

कि राम के कंठ पर बैठ जाओ और **खलपुरुष** को भेजा कि तुम जाकर वीरबाहु के हृदय में स्थित हो। फलतः वीरबाहु स्तुति करते-करते रुककर युद्ध करने लगा। हनुमान नाक पर हाथ रखकर बोले : तेरा कहा हुआ सब पाखंड निकला।

राम ने अपने ब्रह्मत्व का स्मरण कर अनेक बाण मारे किन्तु वे असफल होकर लौट आये। उसने हँसकर स्वयं बताया कि ब्रह्मबाण मारो। मरने के समय वीरबाहु ने राम-नाम का स्मरण किया। वह दिव्य-रूप धारण कर देवताओं में समादृत हुआ। (पृष्ठ २१३-२३०)

रावण-मन्दोदरी-संवाद तथा अनेक उपाख्यान—रावण और मन्दोदरी अनेक प्रसंगों पर परस्पर वार्त्ता कर रहे हैं।

पाताल लोक में—रावण ने बताया कि एक बार उसने पाताल लोक में देव-देवी को पासा खेलते देखा। उन्होंने जान-बूझकर पासा नीचे गिराकर उठाने के लिए कहा। रावण नहीं उठा पाया। एक गर्भिणी स्त्री बगल और सिर पर घड़े लेकर निकली। उसने पैर के अँगूठे से पासा उठा दिया। वे दोनों फिर खेलने लगे। उन्होंने रावण से कहा कि तुम निश्चय ही विष्णुभक्त हो, तभी इस पुरी में आ सके हो। थोड़े से पाप के कारण तुम राक्षस हुए हो। यह पुर ज्योतिर्मय है। प्रलयकाल में भी इसका नाश नहीं होता। इसे स्वयं पीतवास ने बनाया है। (पृष्ठ २३३)

रावण यह कथा सुनाकर मन्दोदरी से बोला—विष्णु के हाथ मरने के लिए ही मैंने सीता-हरण किया है। उपर्युक्त प्रसंग **आनन्द-रामायण** (१-१३) के वर्णन से समानता रखता है। इसमें पासा खेलने वाले बलि और उसकी पत्नी हैं। रावण के पासा न उठा सकने पर दासी उठाती है। रावण को घोड़ों की लीद उठाकर बाहर फेंकने का काम दिया जाता है।

मन्दोदरी ने **वेदवती** के शाप और सीता के रूप में जन्म लेने की बात बतायी। उसने अपने बारे में बताया कि वह मय-दानव की पुत्री है। अग्नि से उत्पन्न होने के कारण पिता ने उसका नाम मन्दोदरी रखा। वह अपने पुत्र-पौत्रों आदि के बारे में कहती है। मन्दोदरी दाँतों में तिनका दबाकर पैरों पर गिरी कि सीता को लौटा दो। रावण उसे सखी सम्बोधित कर उससे सहमत हुआ किन्तु वह बोला कि वैरी उपहास करेगा। साथ ही वह मरना भी चाहता है। इसके लिए वह फिर एक आख्यान सुनाता है। (पृष्ठ २३४-२३६)

द्वारपाल चंड और प्रचंड को लक्ष्मी का शाप—पहले रावण और कुम्भकर्ण नारायण के परम-प्रिय द्वारपाल चंड और प्रचंड थे और ये पश्चिम द्वार की रक्षा करते थे। एक बार **महालक्ष्मी** दिव्य-वेश धारण कर नारायण के पास जा रही थीं। चंड ने रोका इस समय सुरमुनि बैठे हैं। तुम कुलवधू हो, एकान्त में मिलना। लक्ष्मी बोलीं—'वे मेरे पुत्र हैं। मैंने गुरुवार को समुद्रस्नान किया है, स्वामी का दर्शन कर दिन सफल करना चाहती हूँ। मैंने विकराल आकृति बनाकर उन्हें डराया। उन्होंने

शाप दिया कि राक्षस हो। विष्णु के पास जाने पर उन्होंने कहा—तू जगत जीतेगा इसलिए तेरा नाम जय होगा। देवी ने बिना सोचे शाप दिया है इसलिए मुझे भी नरदेह धारण करनी होगी। मैं दशरथ-पुत्र होऊँगा और लक्ष्मी सीता के रूप में जन्म लेंगी। चूँकि लक्ष्मी ने तुझे भलाबुरा कहा है, तू भी उन्हें भलाबुरा कहेगा। मुझे सेवक पत्नी से बढ़कर है। (२३७)

जय और विजय को दुर्वासा का शाप—रावण यहाँ कुम्भकर्ण का पूर्वनाम विजय बताता है। इससे प्रकट है कि चंड-प्रचंड ही जय-विजय थे और ये ही रावण और कुम्भकर्ण हुए। रावण कह रहा है कि द्वारपाल के रूप में स्थित होकर हमने दुर्वासा को भीतर नहीं जाने दिया, क्योंकि भीतर लक्ष्मी-नारायण विहार कर रहे थे। उन्होंने सौ जन्मों तक राक्षस होने का शाप दिया। नारायण से मिलने पर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हें लक्ष्मी का शाप पहले से ही मिल चुका है। मेरे हाथ से मरकर तुम्हारा तीन जन्मों में ही उद्धार हो जाएगा। तुम दमघोष राजा के पुत्र शाल्व और शिशुपाल रूप में जन्म लोगे। (२३८-३)

रावण को ब्रह्मा का वर—रावण अपने यज्ञ का उल्लेख कर कहता है कि मैंने अपने हाथ से अपने सिर काटकर चढ़ाये और उनकी भाग्य-लिपि पढ़ी। लिखा था, यदि सीता का हरण न करे तो मृत्यु नहीं होगी। ब्रह्मा ने भी जल, अग्नि और पवन के नष्ट न होने और युगों तक जीवित रहने का वर देकर राम-सीता का चित्रपट दिखाया। उन्होंने कहा, इनसे विरोध न करना। (पृष्ठ २४०-४१)

मानस में भी रावण अंगद से भाग्य-लिपि के विषय में कहता है, किन्तु वह इस लिपि को बूढ़े ब्रह्मा का मतिभ्रम समझकर उपेक्षित करता है। (६-२८-१-३)

रावण-सीता-मन्दोदरी—सीता समझाने पर जब नहीं मानीं, तब रावण बोला—तेरा हृदय सुन्दर पाषाण-सा है। तेरे कारण मेरे अनेक योद्धा मारे गये। तेरे यौवन में अमृत है, उसे बिना पाये मैं मर जाऊँगा। तेरा मुँह खिले कमल सा है। मुझसे नासिका फुलाकर बात करो। वह क्रुद्ध होकर कहता है, कल के युद्ध में राम-लक्ष्मण को मारकर तेरा मांस खाऊँगा। (पृष्ठ २४६-५१) रावण और मन्दोदरी अपने-अपने दुःस्वप्नों का वर्णन करते हैं। (पृष्ट २५२-२५३)

कथा के विभिन्न वक्ता—पार्वती से शंकर ने रामायण कही, उसी आख्यान का वर्णन बलरामदास कर रहे हैं। ब्रह्मा ने इसे वाल्मीकि से कहा। सबसे पहले नारद ने इसे संचित किया था। क्रौंच-पक्षी को व्याध ने मारा इसलिए ऋषि ने ग्रन्थ लिखा। (पृष्ठ २५५)

नन्दिघोषरथ—देवताओं ने राम के पास जो गरुड़ध्वज रथ भेजा उसका नाम नन्दिघोष रथ था। ब्रह्मा ने नन्दिकेश्वर से कहा—तुम इसके पहियों के मध्य बैठना तथा इसके चलने पर घोष करना। तुम इसमें सदैव वास करोगे, इसीलिए इसका यह नाम होगा। इसका सतयुग में नाम था—विजयरथ, क्योंकि भगवान् ने विजय की

थी—पृष्ठ २८१। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि जगन्नाथ स्वामी के रथ का नाम नन्दीघोष रथ है।

राम की भुजाओं का संवाद—राम के बायें हाथ ने दायें हाथ से कहा (शर-सन्धान के समय) तुम पीछे क्यों रहते हो। दायें हाथ ने कहा करवाल धारण करने पर तो मैं आगे रहता हूँ। (पृष्ठ २८९)

ब्रह्महत्या और रामतारक मंत्र—रावण की मृत्यु होने पर राम के नेत्रों के आगे अन्धकार छा गया। मातलि ने बताया कि ब्रह्महत्या के कारण ऐसा हुआ है। अपने ही नाम का जाप करो, पाप दूर होगा और दिखायी पड़ेगा। ऐसा ही हुआ। (पृष्ठ २९०-९१)

मन्दोदरी की निष्कलंकता—राम ने मन्दोदरी की सुन्दरता की प्रशंसा कर कहा, तेरे वस्त्रांचल में मुझे सीता दिखती है। मन्दोदरी ने कहा, जीवित रहते मेरा उपहास होगा और मरने पर युगयुग तक अख्याति होगी। राम ने कहा—तुम प्रातः-स्मरणीया होगी। प्रणाम करती हुई मन्दोदरी को राम ने हाथ पकड़कर उठाया और पवित्र किया। (पृष्ठ ३०३-३०४)

ब्राह्मणों की सेवा लेना—सीता की निष्कलंकता एवं अपने विष्णुत्व के प्रमाण के लिए राम ब्रह्मा से कहते हैं कि ब्राह्मण मेरी सेवा करे तभी विश्वास होगा। ब्रह्मा ने कहा—जब तुमने वामन-रूप धारण किया, तब मैंने तुम्हारे पैर पखारे थे। अब वसिष्ठ, जाबालि, कश्यप और वामनदेव की सन्तानें तुम्हारी भृत्य होकर सेवा करेंगी। (३१८-१९)

हनुमान का दर्प-भंग—अयोध्या को वापस जाते समय राम भारद्वाज के यहाँ रुके थे, तब भारद्वाज ने राम की प्रशंसा की, हनुमान को गर्व हुआ कि मैंने सब कुछ किया किन्तु मेरी प्रशंसा नहीं की। राम ने हनुमान के मन की जान कर उन्हें पश्चिम वन के फल खाने के लिए और प्रातःकाल सेवा में उपस्थित होने के लिए कहा। वन में एक भयंकर पुरुष से भेंट हुई, जिसने हनुमान को उठाकर धर पटका और इनको खाने के लिए वह प्रस्तुत हुआ। हनुमान के राम-स्मरण से उसने हनुमान को छोड़ दिया।

अष्टक की उपकथा—हनुमान ने उस पुरुष से परिचय पूछा। उसने बताया कि वह सतयुग के बलि-राजा का अष्टक मल्ल है। वामनावतार में भगवान् ने जब बलि को पैरों से दबा लिया था, उस समय मैं उनके पैर को हटाने लगा। उन्होंने मुझे दूर उठाकर फेंक दिया। मुझे वर्ष में एक दिन आहार मिलता है। अब तुम्हें कैसे खाऊँ, तुम भगवान् के दूत हो। वर्ष का उपवास हो गया। हनुमान को बड़ी ग्लानि हुई। वे राम के आगे क्षमा माँग कर रोये। (३२६-३३३)

शिव-विष्णु-विवाद—हनुमान के मन की शंका का वर्णन करने के साथ उड़िया-लेखक ने शिव-विष्णु के एक विवाद का भी उल्लेख किया है। शिव अपने को विष्णु की माया से अप्रभावित बताकर उसे देखना चाहते हैं। विष्णु ने युवती-

रूप धारण किया, शिव मुग्ध होकर पीछे दौड़ पड़े। उनका रेत स्खलित हुआ, जिससे पारा बना। वे निर्बल और लौटने में असमर्थ हो गये। उनकी साँस फूलने लगी, शरीर से पसीना झरने लगा। विष्णु ने दयाकर अपना निज रूप दिखाया। शिव ने लज्जित होकर विष्णु का गौरव मान लिया। विष्णु ने वर दिया। कल्प-कल्पान्तर के लिए तुम्हारी देह अमर हुई। तुम्हें मेरी माया नहीं लगेगी। (३२७-२९)

जाम्बवान और मुनियों को वर : कृष्ण-जन्म—राम ने जाम्बवान से कहा—अगले जन्म में तुम्हारी पुत्री जाम्बवती से विवाह करूँगा, तुमसे युद्ध होगा, तुम मुझे मणि दोगे। (पृ० २६६)

उन्होंने **मुनियों** से कहा—तुमने मन ही मन सोचा कि सीता भाग्यवती है, हम स्त्री क्यों नहीं हुए। मैं एक पत्नीव्रत हूँ। मेरे लिए अन्य स्त्री कौशल्या के समान है। अगले जन्म में कृष्ण होकर गोपपुर में पल कर कालिन्दी के तीर क्रीड़ा कर तुम्हें रतिदान दूँगा। तुम पर-नारी होगे। (पृ० ३६७)

सीता ने अन्न परोसा—राम ने समस्त सेना और राजाओं को आमंत्रित कर सीता को अन्न परोसने के लिए कहा। उन्होंने अनेक-रूप धारण कर यह कार्य सम्पन्न किया। सीतादि ने फिर सासों को और उन्होंने बहुओं को परोस कर खिलाया।

(पृ० ३६९-७०)

जोड़ों के मिलन—सभी भाई और उनकी पत्नियों के शृंगार, मिलन और अंगद के पहरा लगाने का वर्णन हुआ है। (३७०)

मानस में :

सुबेल पर्वत पर चन्द्रोक्तियाँ—सुबेल पर्वत पर राम वनराज सुग्रीव की गोद में लेटे हैं। विभीषण उनके कान से लगे हुए बातें कर रहे हैं। राम ने चन्द्रमा को देखकर श्यामता का कारण पूछा। सुग्रीव, विभीषण, राम और हनुमान ने श्यामता के विभिन्न कारण बताये, उनमें उनकी अपनी मनःस्थिति की छाप है। हनुमन्नाटक (अंक ५) से ही तुलसीदास को प्रेरणा मिली है।

नाभि में अमृत—अध्यात्म-रामायण (६-११-५३) के अनुसार मानस में भी रावण की नाभि में अमृत बताया गया है, इसी कारण रावण के सिर और हाथ काटे जाने पर उग आते थे। विभीषण के कहने पर राम बाण मारकर पहले इस अमृत को सोख लेते हैं, तदनन्तर रावण का वध करते हैं। (६-१०२-१)

उत्तरकाण्ड

(पूर्वांचलीय रामायणों में इसका नाम है उत्तरकाण्ड)

कई कारणों से विद्वानों ने वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त बताया है। महाकाव्य के रचना-कौशल की दृष्टि से राम के राज्यारोहण के साथ ही

उसकी समाप्ति हो जानी चाहिए थी। वाल्मीकि-रामायण के अनेक प्रसंग जैसे राक्षसों की उत्पत्ति, रावण की दिग्विजय, शंबूक-वध आदि ऊपर से जोड़े हुए से प्रतीत होते हैं। श्री बुल्के के अनुसार उत्तरकाण्ड के प्रारम्भिक रूप में संभवतः ये घटनाएँ ही रही होंगी—शत्रुघ्न-चरित, कुशलव-जन्म, राम का अश्वमेध तथा कुशलव-द्वारा रामायण-गान, सीता का भूमि-प्रवेश, रामादि के पुत्रों की राज्यस्थापना, लक्ष्मण की मृत्यु तथा राम का स्वर्गारोहण।[1]

असमीया-रामायण का उत्तरकाण्ड **श्री शंकरदेव** का लिखा हुआ है। इन्होंने काव्य-कौशल का सुन्दर परिचय देते हुए वाल्मीकि-रामायण के अनेक प्रासंगिक-वर्णनों एवं पौराणिक-आख्यानों की उपेक्षा कर आधिकारिक-कथावस्तु से संवद्ध वर्णन ही प्रस्तुत किया है। श्री बुल्के ने जिस कथा को उत्तरकाण्ड का प्रारम्भिक रूप माना है, मुख्यतया वही कथा श्री शंकरदेव के उत्तरकाण्ड में है।

पूर्वांचलीय-रामायणों ने उत्तरकाण्ड की कथा के लिए वाल्मीकि-रामायण से मुख्यतया प्रेरणा ली है। इन काण्डों के कवियों ने अपनी मौलिक कल्पना का परिचय नहीं दिया। उड़िया-रामायणकार तक ने बड़ा संयम दिखाया है। इस दृष्टि से **बँगला-रामायण** और **उड़िया-रामायण** में समानता है। **बँगला-रामायण** में केवल एक प्रमुख प्रसंग—सीता-त्याग एवं लवकुश-युद्ध का वर्णन **जैमिनी-भारत** के अनुसार वर्णित हुआ। अन्य आलोच्य रामायणों में से किसी ग्रन्थ में भी यह प्रसंग नहीं आया है। यहाँ **असमीया** और **उड़िया** रामायणें परस्पर साम्य रखने लगती हैं। अन्यथा **बँगला** और **उड़िया रामायणों** का उत्तरकांड बहुत कुछ वाल्मीकि-रामायण पर आधारित और एक समान है।

मानस की स्थिति सबसे भिन्न है। तुलसीदासजी ने राम के राज्यारोहण के पश्चात् एक प्रकार से कथा की समाप्ति कर दी है। इसके पश्चात् तो कवि दार्शनिक हो उठा है। ज्ञानभक्ति-निरूपण, कलियुग-वर्णन आदि का उल्लेख ही अधिक है। उत्तरकाण्ड की कथा में केवल एक संकेत है कि सीता ने दो सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। वैसे उन्होंने **कवितावली**, **गीतावली** और **विनयपत्रिका** में सीता-वनवास आदि के विषय में संकेत दिये हैं, जिससे प्रकट होता है कि उन्हें कथा का केवल ज्ञान ही न था, उस पर विश्वास भी था, किन्तु चरित्रों की मर्यादा-हानि और महाकाव्यत्व की रक्षा के लिए उन्होंने सीता-वनवास आदि का वर्णन नहीं किया। उत्तरकाण्ड नितान्त ही मुख्य-कथारहित न हो जाए, सम्भवतः इसीलिए तुलसीदास ने राम के प्रत्यावर्त्तन, भरत-भेंट और सिंहासनारोहण का वर्णन लंकाकाण्ड में न कर उत्तरकांड में किया है।

तुलनात्मक-अध्ययन करते समय मानस के प्रसंगों का अलग से वर्णन करना ही समीचीन होगा। पूर्वांचलीय-रामायणों के प्रसंगों का ही तुलनात्मक-अध्ययन हो सकेगा।

---

१. श्री कामिल बुल्के— रामकथा, द्वि० सं०, अनु०, ६१९।

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार पूर्वाचलीय-रामायणों की समान कथा-वस्तु

(यह कथा सभी रामायणों में इसी क्रम के अनुसार नहीं है किन्तु कहीं-न-कहीं है अवश्य)

१. राक्षसोत्पत्ति, रावणादि का जन्म, शाप और वर, रावण की दिग्विजय और उसका पराभव।

२ हनुमान-जन्म की कथा (बँगला-रामायण में अन्यत्र)।

३. सीता-परित्याग—सीता का वन देखने की इच्छा प्रकट करना, चर द्वारा सीता के चरित्र-दोष का अपयश ज्ञात होना, राम की आज्ञा से लक्ष्मण का सीता को वाल्मीकि-आश्रम में छोड़ना, वाल्मीकि का उन्हें आश्रय देना। राम का सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनवाना।

४. अश्वमेध—राम का नदी-तट पर अश्वमेध-यज्ञ करना, कुश-लव का रामायण-गान। दोनों का परिचय पाकर राम द्वारा वाल्मीकि और सीता को यज्ञशाला में शपथ देने के लिए उपस्थित होने का सन्देश भेजना।

५. सीता की पाताल-परीक्षा—वाल्मीकि की शपथ के पश्चात् भी राम के द्वारा सीता को शपथ देने के लिए कहना, सीता की शपथ के साथ ही पृथ्वी का विदीर्ण होना तथा सिंहासन-सहित पृथ्वी-देवी का प्रकट होना, सीता का पाताल-प्रवेश, राम का विलाप, राम का क्रुद्ध होकर पृथ्वी को विदीर्ण करने की धमकी, ब्रह्मा द्वारा समझाया जाना।

६. भरत का गन्धर्व-देश जीतना और पुत्रों को राज्य देना, लक्ष्मण का भी देश जीतकर दो पुत्रों में राज्य बाँटना। शत्रुघ्न का लवणासुर-वध।

७. रामादि का स्वर्गगमन—(१) कालपुरुष का छद्मवेश में आना, राम का लक्ष्मण को पहरे पर नियुक्त कर आदेश देना कि कोई प्रवेश न करने पाए, प्रवेश करने वाले को मृत्युदण्ड देने का निश्चय। दुर्वासा का आगमन और प्रवेश न देने पर रघुकुल को नष्ट करने की लक्ष्मण के समक्ष धमकी। धर्म-संकट में पड़े लक्ष्मण का राम को सूचना देने का निश्चय। राम का धर्मसंकट कि लक्ष्मण का वध कैसे करें, अन्त में प्राणदंड के स्थान पर त्यागदंड देना। लक्ष्मण का समाधि द्वारा प्राण-त्याग करना।

(२) भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण आदि की उपस्थिति, सभी का राम के साथ चलना।

(३) सभी का मृत्यु के लिए प्रस्थान।

(४) हनुमानादि को वर-प्रदान।

०रावण-चरित :

वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड का रावणचरित ऊपर से जोड़ा हुआ प्रतीत

होता है। बँगला और उड़िया रामायणों में भी इसका वर्णन कथावस्तु से अलग-सा जान पड़ता है। असमीया-रामायण में वर्णन की स्वाभाविकता आ गयी है। लेखक श्री शंकरदेव ने राम की राजसभा में कुश-लव द्वारा रामचरित का वर्णन करते हुए रावण के जन्म, वर और विजय आदि की कथा भी कहलायी गयी है।

प्रायः वर्णन का ढंग यह है कि पहले रावण के मातृपक्ष की वंशोत्पत्ति दी गयी है। इसके पश्चात् असमीया को छोड़ शेष दो रामायणों में कुवेर की उत्पत्ति और उससे रावणादि के लंका छीनने का भी वर्णन है। तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में रावण के इन कृत्यों का वर्णन है—(१) कैलास उठाना, (२) स्वर्गादि विजय कर नारियों का अपहरण, (३) वालि से पराजय, (४) सहस्रार्जुन से पराजय।

बँगला और **उड़िया** रामायणों में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार मरुत, अनरण्य, मान्धाता आदि अनेक राजाओं तथा यम, वरुण, इन्द्रादि देवताओं के नाम भी दिये है जिनके कि साथ रावण का युद्ध हुआ। इन दो रामायणों में **वेदवती-आख्यान** भी है, जिसका वर्णन आगे होगा।

मानस में रावण के चरित का वर्णन बालकाण्ड में विस्तृत रूप से हुआ है। रावण की दिग्विजय का ऐसा वर्णन मानस में नहीं हुआ।

हनुमान-जन्म—केवल **असमीया** और **उड़िया** रामायणों में है। मानस को छोड़कर तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में समुद्र-पार जाने के पूर्व भी हनुमान का जन्म-वृत्तान्त आया है। देखिए सुन्दरकाण्ड का तुलनात्मक-अध्ययन।

सीता-वनवास—महाभारत, हरिवंश, वायुपुराण, विष्णुपुराण तथा नृसिंह-पुराण में उपलब्ध राम-कथा-विषयक अंशों में सीता के वनवास अथवा पाताल-प्रवेश का उल्लेख नहीं है, अतएव अनुमान किया जाता है कि मूल वाल्मीकि-रामायण में सीता-वनवास नहीं था। उत्तरकाण्ड में इसे कालान्तर में स्थान मिला। उत्तरकाण्ड के अनुसार सीता गर्भावस्था में तपोवन-दर्शन की इच्छा प्रकट करती है। राम उनकी इच्छा पूरी करने के लिए प्रातः जाने की व्यवस्था कर देते है। इसी बीच उन्हें भद्र से समाचार मिला कि रावण द्वारा अपहृत सीता को राम ने अपने घर में रख लिया है, इससे जनता असन्तुष्ट है कि जैसा राजा करता है वैसा ही प्रजा करती है—'यथाहि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते।'[1] प्रजा के समक्ष युग-युग तक भ्रष्ट आदर्श उपस्थित न हो इसीलिए राम ने स्वयं अत्यधिक मानसिक यंत्रणा का अनुभव करते हुए भी सीता को निर्वासित किया। वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण के अनुसार वनवास का एक अन्य कारण था—तारा का शाप।

इस प्रकार सीता-वनवास के दो कारण हुए—(१) लोकापवाद और (२) तारा-शाप। कुछ रामायणों में अन्य कारण भी बताये गये है, वे है—(३) रजक-

---

१. वाल्मीकि-रामायण, ७-४३-१९।

वृत्तान्त, (४) चित्र-वृत्तान्त, (५) देव-चिन्ता और (६) पत्नी-भोग-अनौचित्य। अब प्रत्येक रामायण के अनुसार इनका अध्ययन करना है।

लोकापवाद—सीता-वर्जन का मुख्य कारण लोकापवाद था। यह कारण असमीया, बँगला एवं उड़िया तीनों रामायणों में ही वर्णित है। बँगला-रामायण का भद्र चर निष्ठुर प्रकृति का है।

तारा-शाप—राम को दोष-मुक्त करने की चेष्टा के कारण ही तारा-शाप की कल्पना हुई है। यह प्रसंग भी तीनों पूर्वाचलीय रामायणों में आया है और इसका तुलनात्मक अध्ययन किष्किन्धाकाण्ड में हो चुका है। उड़िया-रामायण के उत्तरकाण्ड में भी इस शाप को दुहराया गया है।

रजक-वृत्तान्त—केवल बँगला-रामायण में है। लोकापवाद को और भी उग्र बनाने के लिए इसकी आयोजना हुई है। गुणाढ्य की वृहत्कथा और कथा-सरित्सागर में इस वृत्तान्त का मूल-रूप है। बंगला-रामायण में जैमिनीय-अश्वमेध का अनुसरण हुआ है, जैसा कि आगे लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है। जैमिनीय में स्त्री को घर से निकालने वाले की जाति धोबी बतायी गयी है, वृहत्कथा आदि में नहीं। बँगला-रामायण में राम लोकापवाद से दुःखी होकर स्नान करने जाते हैं, तो धोबी-धोबिन के झगड़े के रूप में भी इसे सुनते है। श्वशुर पुत्री का पक्ष लेकर आया, तो दामाद (धोबी) उसे फटकार कर कहता है—राम राजा हैं, वे चाहे जो करें किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकता। आनन्द-रामायण[1] में भी धोबी-वृत्तान्त है, किन्तु इस ग्रन्थ में राम स्वयं ही सीता को पाताल-प्रवेश तक की घटनाएँ बता देते हैं। सीता भी मुस्कराकर अपनी छाया बनाती हैं, यही छाया पाताल-प्रवेश करेगी। अध्यात्म-रामायण के सीता-हरण एवं अग्नि-परीक्षा वाली घटना का प्रभाव स्पष्ट है।

चित्र-वृत्तान्त—यह प्रसंग भी केवल बँगला-रामायण में है। राम की क्रूरता को मनोवैज्ञानिक आधार देने की चेष्टा ही इसमें दृष्टिगत होती है। सखियाँ सीता से कहती हैं—रावण का चित्र अंकित कर दिखाओ। सीता ने कभी रावण को देखा नहीं। उन्होंने हरण के समय समुद्र में उसकी छाया देखी थी, इसी के आधार पर उन्होंने चित्र बनाया। गर्भावस्था के कारण वे चित्र बनाते-बनाते थककर वहीं सो गयीं। राम के अकस्मात् आ जाने से सखियाँ उठकर चली गयीं, सीता को रावण के चित्र के पास सीता को देखकर राम का सन्देह पुष्ट हुआ। **चन्द्रावती**[2] कृत **बँगला-रामायण** में चित्र बनवाने का षड्यन्त्र करने वाली कैकेयी-पुत्री कुकुआ है।[3] श्री

---

१. आनन्द-रामायण—जन्मकाण्ड, सर्ग ३, ३७-५६।

२. जीवन-चरित के लिए पढ़िए वीणा (अक्तूबर, ५५) में प्रकाशित प्रस्तुत लेखक की रचना 'संत रामायण-लेखिका चन्द्रावती।'

३ पञ्चमासेर गर्भ सीता गो आलसे घुमाय। अंगुलि हेलाइया कुकुया रामेरे देखाय—छन्द ५०, पृ० २६६, पूर्ववंग-गीतिका (४-२)—श्री दीनेशचन्द्र सेन।

कामिल बुल्के चित्र-वृत्तान्त का प्राचीनतम उल्लेख जैन-साहित्य में मानते हैं—अनु०, ७२२। भारत के पूर्वी-प्रदेशों की रामकथाओं में भी यह प्रसंग मिलता है। बस्तर के माँड़िया गौंड़ों में भी ननद के आग्रह पर सीता गोबर से रावण अंकित करती हैं। अकस्मात् राम के आने पर वे अंचल से चित्र छिपा लेती हैं, किन्तु ननद अंचल हटा-कर दिखा देती है।

देवचिन्ता—यह प्रसंग केवल **उड़िया-रामायण** में है। उड़िया-रामायण में उपर्युक्त प्रथम एवं द्वितीय कारणों का वर्णन हो चुका है। यहाँ देवता राम के स्वर्ग-प्रत्यावर्तन के लिए चिन्तित हैं। उनकी चिन्ता का सम्बन्ध वनवास के कारण से नहीं जोड़ा गया है किन्तु अप्रत्यक्ष-रूप से प्रकट होता है कि राम को स्वर्ग में लौटाने के लिए ही सीता-परित्याग हुआ।

तुलसीदास—मानस में सीता के वनवास का वर्णन नहीं है। बालकाण्ड की एक अर्धाली में इस ओर संकेत अवश्य है—

सिय निन्दक अघ ओघ नसाए।
लोक विसोक बनाइ बसाए॥ १-१५-३

'सिय-निन्दक' से सीता-विषयक **लोकापवाद** की ओर संकेत है। **धोबी** द्वारा निन्दा की ओर संकेत **विनयपत्रिका** की निम्न-पंक्तियों में है—

बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको।
सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि-मन थाको॥ १५२

कवितावली (७-६ एवं १३८) के संकेतों के अतिरिक्त तुलसीदास ने **गीतावली** में तो स्पष्ट ही चरों के मुख से लोकापवाद जानकर ही सीता के परित्याग का वर्णन किया है। (७-२७)

पत्नीभोग-अनौचित्य—**गीतावली** में तुलसीदास ने सीता-परित्याग का एक और कारण बताया है। दशरथ अपूर्ण आयु भोगकर स्वर्गवासी हुए थे, उनकी शेष आयु राम ने भोगी। पिता की आयु में सीता को साथ रखना अनुचित जानकर उन्होंने सीता का परित्याग किया—

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहि और अनघ उपाउ॥ ७-२५-२

शत्रुघ्न-चरित—मथुरा के असुर-शासक लवण का वध करने के लिए शत्रुघ्न को राम ने भेजा। वे वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे थे किन्तु उन्हें यह नहीं ज्ञात था कि यहीं सीता हैं। वर-द्वारा प्राप्त त्रिशूल के कारण लवण अजेय था, किन्तु अवसर खोजकर जबकि वह त्रिशूल-हीन था, शत्रुघ्न ने उसे मार डाला। बँगला और **उड़िया**-रामायणों में इस प्रसंग का यथास्थान वर्णन है किन्तु **असमीया**-रामायण में यह प्रसंग वहाँ आया है जहाँ राम अपने सभी भाइयों के पुत्रों को राज्य बाँट रहे हैं।

अश्वमेध यज्ञ—राम ने राजसूय-यज्ञ करना चाहा था किन्तु भाइयों आदि के परामर्श से उन्होंने नैमिषारण्य में अश्वमेध-यज्ञ करना प्रारम्भ किया, स्वर्ण-सीता बनायी गयी। यहीं वाल्मीकि की आज्ञा से लव-कुश रामायणगान करते आये और उनका राम से परिचय हुआ।

वाल्मीकि की इस कथा को तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में अपनाया गया है। **बँगला-रामायण** में यहाँ **जैमिनी-अश्वमेध**[1] से प्रेरणा लेकर लव-कुश-युद्ध भी दिखाया है। शेष दो रामायणों में इस प्रकार का संघर्ष नहीं हुआ।

बँगला-रामायण में लवकुश-युद्ध—केवल बँगला-रामायण में दिखाया गया है कि यज्ञाश्व को लव-कुश ने बाँध लिया। शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत सहित समस्त राम-सेना परास्त हुई। राम की सेना की दुर्गति के तीन कारण बताये गये— (१) सती का निर्वासन।

(२) लव-कुश में राम के रूप का आभास पाकर ठीक से युद्ध न कर सकना।

(३) ऐसा ब्रह्म-शाप था कि पुत्रों से युद्ध करते समय पिता परास्त होगा। (पृष्ठ ५६५)

राम लव-कुश पर जो बाण फेंकते थे, वे उनके गले में पुष्पमाला बन जाते थे और लव-कुश जो बाण फेंकते, वे राम का चरण-स्पर्श कर पाताल में प्रवेश कर जाते थे।

अन्त में राम परास्त हुए। सीता मणिविहीना भुजंगिनी-सी विलाप कर उठी। वे और दोनों पुत्र अग्नि में जलने को प्रस्तुत हुए। वाल्मीकि ने उन्हें रोका। सभी जीवित हुए।

मानस में केवल एक अर्धाली में लव-कुश के जन्म की ओर संकेत है—

दुइ सुत सुन्दर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए। ७-२४-६

भरत-गन्धर्व-युद्ध—मामा युधाजित के निमंत्रण पर राम की आज्ञा लेकर भरत ने उपद्रवी गन्धर्वों को हराया—इसका वर्णन भी पूर्वांचलीय रामायणों में हुआ है।

सीता का पाताल-प्रवेश

अग्नि-परीक्षा के समान ही सीता का पाताल-प्रवेश भी पूर्वांचलीय-रामायण-कारों ने अत्यन्त तन्मयता के साथ वर्णित किया है। मुख्यकथा है सीता का राम के सम्मुख उपस्थित होना, राम द्वारा पुनः परीक्षा के लिए कहना, सीता की प्रार्थना से पृथ्वी देवी का प्रकट होकर सीता को अपने में समाहित करना, राम का अपनी सास पृथ्वी के प्रति क्रोध प्रकट करना और ब्रह्मादि का समझाना।

---

१. एइ सब गाइल गीत जैमिनी भारते। सम्प्रति ये किछु गाइ वाल्मीकिर मते—बँगला-रामायण, ५६८।

इनमें असमीया-रामायण का वर्णन सबसे अधिक मार्मिक है। राम के भेजे हुए शत्रुघ्न, विभीषण, सुषेण और हनुमान ने मलिन-वेशा दुःखी सीता से जाकर कहा—'हम मुँह में तृण रखकर विनय कर रहे हैं तुम लौट चलो।' सीता ने अत्यन्त व्यथित होकर कहा—मेरी स्थिति प्रकट है, अब तुम मुझसे अनुरोध करो तो तुम्हें मेरी शपथ। वाल्मीकि के समझाने पर सीता प्रातःकाल लज्जा से सिमटी और अंग छिपाती हुई किसी भी ओर न देखती हुई चलीं। राम द्वारा वंदित वाल्मीकि ने बाँह उठाकर सीता की निष्कलंकता की शपथ ली। सीता राम द्वारा प्रदत्त आसन पर नहीं बैठीं। उन्होंने कड़ी-कड़ी बातें सुनायीं और राम की तीन बार परिक्रमा कर पृथ्वी देवी की भेजी हुई चार कन्याओं के सिंहासन पर बैठकर पाताल में समा गयीं। पाताल और पृथ्वी पर क्रुद्ध होकर बाण-संधान के लिए प्रस्तुत राम को ब्रह्मा ने आकर समझाया—आप ब्रह्म हैं, आप के जन्म के पूर्व ही रामायण लिखी जा चुकी थी, उसमें जो कुछ लिखा है उसे पूर्ण करना ही होगा। राम दोनों पुत्रों को देखकर खूब बिलखकर रोये।

बँगला-रामायण में सीता निरीह अधिक हैं, वे असमीया की सीता के समान उग्र नहीं हैं। उन्होंने राम को ही जन्म-जन्म में पति-रूप में प्राप्त करने की आकांक्षा प्रकट की। वे अपने पुत्रों की उपेक्षा करती हुई केवल पति को देखकर पाताल में समा गयीं। पृथ्वी देवी ने अवश्य ही व्यंग किया—'लोक लैया सुख राम करुक हेथाय।' (राम तुम अपनी प्रजा को लेकर यहीं सुख भोगो)। राम ने पाताल-प्रवेश करती सीता के केश पकड़े थे। राम ने पृथ्वी के प्रति क्रोध भी प्रकट किया।

उड़िया-रामायण में भी राम ने लव-कुश द्वारा परिचय पाकर सीता को बुलाने के लिए सेना भेजी। वाल्मीकि के समझाने पर सीता चलने को प्रस्तुत हुईं किन्तु वाल्मीकि की उपस्थिति में वे विमान पर बैठने को तैयार नहीं हुई—'वे ब्रह्म-ज्ञानवेत्ता मेरे धर्म-पिता हैं।' सीता हाथ जोड़े हुए अभिमानवश सिर झुकाये हुए राम के सम्मुख आयीं। वाल्मीकि ने निष्कलंकता का विश्वास दिलाया, राम आश्वस्त हुए, फिर भी लोकापवाद से भीत राम ने सीता को नैमिषारण्य के द्वार पर परीक्षा देने को कहा। सीता ने जीवित रहना उचित न समझा और ये प्रार्थना कर पृथ्वी में समा गयीं। आगे राम के क्रोधादि का वर्णन शेष रामायणों जैसा ही है।

कालपुरुष और लक्ष्मण-वर्जन—तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में कालपुरुष राम को लेने के लिए आते हैं। राम लक्ष्मण को द्वार पर नियुक्त करते हैं कि यदि कोई मुझसे भेंट करने आएगा, तो उसका सिर काट लूँगा। दुर्वासा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि लक्ष्मण को राम के पास जाना पड़ता है। राम असमंजस में पड़ जाते हैं। भाई का वध कैसे करें और नहीं करते तो प्रतिज्ञा भंग होती है। अन्त में वे लक्ष्मण का त्याग करते हैं। लक्ष्मण इहलोक त्याग देते हैं।

असमीया-रामायण में दुर्वासा के भोजन-भट्ट रूप का सुन्दर चित्रण है।

उड़िया-रामायण में लक्ष्मण के सिर पर सप्त-फण शोभित होता है और वे अनन्त पुरुषोत्तम रूप धारण कर स्वर्गारोहण करते हैं। वे स्वर्ग पहुँचकर **नन्दीघोष** रथ से उतरते हैं और सीता को सूचित करते हैं कि राम आने वाले हैं। सीता और सरस्वती का **सौतिया** डाह भी प्रकट होता है। वे दोनों लक्ष्मण को सादर खिलाती हैं। (२०३-४)

मानस में यह प्रसंग भी उपेक्षित हुआ है। **कवितावली** में अवश्य ही उसी पद में संकेत है जिसमें सीता-वनवास की ओर इंगित है—

धर्म धुरन्धर बंधु तज्यो। ७-६

राम का प्रयाण—लक्ष्मण की मृत्यु का बहाना लेकर राम ने भी देह का परित्याग चाहा। सभी भाई, अयोध्यावासी और जीवजन्तु भी स्वर्ग के लिए चले। उनके निवास के लिए सन्तानलोक का निर्माण किया गया।

तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों में राम को पूर्वस्थिति में पहुँचा दिया गया, वे फिर विष्णु के विष्णु हो गये। **मानस** में नायक का अवसान नहीं दिखाया गया है।

हनुमानादि को वर—राम स्वर्ग-प्रयाण के पूर्व कुछ लोगों को वर दे गये। **असमीया-रामायण** में उन्होंने **विभीषण** को जरारोग रहित होने का वर दिया। **हनुमान** के लिए कहा, जब तक भूमि पर रामायण का प्रचार रहेगा, तुम अमर रहोगे। जाम्बवान को वर दिया कि प्रलय तक अजर रहोगे। (४६४-६५)

बँगला-रामायण में भी **हनुमान** को राम ने वर दिया कि जब तक संसार में राम-नाम का प्रचार रहेगा और जब तक संसार में चन्द्र-सूर्य प्रकाश करेंगे तुम अमर रहोगे। (५८२)

उड़िया-रामायण में भी असमीया की भाँति **विभीषण** और हनु को अमर होने का वर दिया तथा **जाम्बवान** से कहा—'जब कृष्णावतार में मुझसे युद्ध करोगे, तब मुझमें लीन होगे।' उन्होंने जाम्बवान और विभीषण को साड़ी भी दी। (२१०-११)

बँगला और उड़िया-रामायण के प्रसंग

वेदवती—वेदाभ्यास करने वाले कुशध्वज की कन्या वेदवती को तपस्या करता देखकर कामातुर रावण ने परिचय पूछा। उसने कहा—'मेरे पिता मेरा विवाह विष्णु के साथ करना चाहते थे। दैत्य शम्भु ने कुपित होकर उन्हें मार डाला, मेरी माँ ने अग्नि में प्रवेश किया। मैं पिता के संकल्प को पूरा करने के लिए तपस्या कर रही हूँ।' अपना प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर रावण ने उसे केश पकड़कर खींचा। वेदवती ने केश काटकर फेंक दिये और विष्णु-पत्नी होने की आकांक्षा तथा रावण से प्रतिशोध लेने की भावना लेकर वह अग्नि में प्रविष्ट हुई। इसी वेदवती ने जनक की यज्ञभूमि में अयोनिजा बनकर जन्म लिया। (वाल्मीकि-रामायण, ७-१८)

वाल्मीकि के इस आख्यान को **बँगला-रामायण** में ज्यों-का-त्यों ले लिया गया।

उड़िया-रामायण में कुछ हेर-फेर के साथ उपर्युक्त वर्णन है। अन्तर केवल वहाँ से प्रारम्भ होता है, जहाँ रावण अपनी कामुकता प्रकट करता है। वह वेदवती का उपर्युक्त आख्यान सुनकर उसे चूम लेता है। वेदवती जलकर प्राण त्यागती है। वह जनक के यज्ञ करने पर विघ्न उपस्थित करने जा पहुँचता है। रावण ने वेदवती के जलने के स्थान पर उसका अदग्ध शरीर देखा, वह उसे उठा ले गया, मन्दोदरी से बोला, इसका मांस खाऊँगा। मन्दोदरी ने इसे स्वर्ण-मंजूषा में रखा। नारद के कहने से मन्दोदरी ने स्वर्ण-मंजूषा समुद्र में फेंक दी। वरुण इसे बहाकर उस स्थान पर ले गये, जहाँ जनक यज्ञ कर रहे थे। (उ० रामायण, ७-४६)

नन्दी का शाप—वानरमुख नन्दिकेश्वर अथवा नन्दी का रावण ने अपमान किया था, इससे क्रुद्ध होकर उसने रावण को शाप दिया कि नर और वानर के हाथों तेरी मृत्यु होगी। देखिये, (बँगला-रामायण, ४८५ और उड़िया-रामायण, पृष्ठ ४१)

अगस्त्य का हार प्रदान—वाल्मीकि-रामायण में **श्वेतराजा** का वृत्तान्त है, जो अपने तप-बल से स्वर्ग-प्राप्ति तो कर सका किन्तु दान न देने के कारण स्वर्ग में भी भूख-प्यास का अनुभव करता है। ब्रह्मा ने कहा, तुम अपने शव को खाकर भूख शांत किया करो। अगस्त्य ऋषि ने उसे स्वर्ग से आकर शव-मांस भक्षण करते देखा। वह अगस्त्य को अलंकार दान कर इस निन्द्य-कृत्य से मुक्ति पा गया। वही अलंकार अगस्त्य ने राम को दिये। **बँगला** और **उड़िया** रामायणों में यह कथा है।

राम का न्याय—वाल्मीकि-रामायण में राम के न्याय से सम्बन्धित तीन घटनाएँ हैं, इनका वर्णन **बँगला** और **उड़िया** रामायणों में है।

शम्बूक-वध—शम्बूक नामक शूद्र के तप करने से ब्राह्मण पुत्र की अकाल मृत्यु हुई, जिसके कारण राम ने शम्बूक का वध किया।

वाल्मीकि-रामायण के रचनाकाल अथवा सम्पादन के समय बौद्धों के प्रचार से उत्पन्न शिथिलता को दूर करने के लिए वर्णाश्रम-धर्म का कड़ाई से पालन किया गया। यदि यह घटना सत्य है तो राम का इसमें दोष नहीं, क्योंकि शास्त्र-व्यवस्था का पालन करना राजा का कर्तव्य होता है। शंकरदेव (असमीया-रामायण के उत्तर-कांड के रचयिता) स्वयं शूद्र थे तथा समाज में उन्होंने सुधार भी किये थे, उन्हें शम्बूक-वध रुचा नहीं होगा, इसीलिए उन्होंने इसका वर्णन नही किया। वैसे वाल्मीकि-रामायण में शम्बूक-वध बाद का जोड़ा हुआ प्रतीत होता है।

कुत्ता-ब्राह्मण विवाद—मार्ग में लेटे हुए एक कुत्ते को किसी ब्राह्मण ने मारा। कुत्ते ने राम से न्याय माँगा। कुत्ते ने स्वयं ही कहा कि इसे कालिंजर का महन्त बना दो। लोग हँसे तो कुत्ते ने कहा, यह अगले जन्म में शिव की पूजा का भोग खाने से कुत्ता होगा।

गृध्र-उलूक विवाद—गीध और उल्लू में वासस्थान के सम्बन्ध में झगड़ा हुआ,

दोनों ही अपने को पुराना वासी मानते थे। राम ने दोनों से प्रमाण माँगा। उल्लू सृष्टि के प्रारम्भ से ही विद्यमान था, वही पुराना निवासी माना गया।

बँगला-रामायण में बताया गया कि गीध पहले जन्म में राजा था, ब्राह्मण को भोजन में बाल खिला जाने के कारण गीध हुआ। गौड़ीय-संस्करण से यह प्रसंग प्रभावित है।

उड़िया-रामायण में लिखा है कि ब्रह्मदत्त नामक राजा से गौतम ऋषि ने भोजन माँगा। रसोइया ने माँस परोसा, गौतम ने क्रुद्ध होकर शाप दिया—तुम गीध होगे और रसोइया उल्लू होगा। उन्होंने राम के दर्शन से मुक्त होना भी बताया।

मानसकार ने अप्रासंगिक घटनाओं को महत्ता नहीं दी है। इसलिए मानस में इनका वर्णन नहीं हुआ। लेखक ने अपनी अन्य पुस्तक विनयपत्रिका में संकेत रूप में अन्तिम दो का वर्णन किया है—

जेहि कौतुक खग स्वान को प्रभु न्याव निबेरो। विनयपत्रिका, १४६

बँगला-रामायण के प्रसंग :

लक्ष्मण का संयम—बँगला-रामायणकार कृत्तिवास ने लिखा है कि अगस्त्य ने राम को बताया कि १४ वर्ष तक निद्रा, आहार एवं स्त्री का त्याग करने वाला व्यक्ति ही मेघनाद को मार सकता है। राम ने शंका की कि क्या लक्ष्मण ने ऐसा त्याग किया था। लक्ष्मण ने निम्न प्रमाण दिये—

(१) मैं सीता के नूपुर छोड़कर अन्य अलंकार न पहचान सका, यह स्त्री के मुख न देखने का प्रमाण है।[1]

(२) मैंने नींद को बाण से बींधकर कह दिया था कि राम के राज्याभिषेक तक न आना। आपके राज्याभिषेक के समय मैं झींम गया था, जिससे पंखा गिर गया था।

(३) आप मुझे फल देते थे किन्तु खाने को न कहते थे अतएव मैं वे सभी फल रखता गया, खाये नहीं।[2]

---

१. राम ने शंका की थी कि निरन्तर सीता के साथ रहने पर भी लक्ष्मण ने स्त्री-मुख किस प्रकार नहीं देखा।

२. बिना खाये हुए लक्ष्मण जीवित कैसे रहे, इसके लिए बँगला-रामायण का आदि-काण्ड देखना होगा। लिखा है कि विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को ऐसा मंत्र दिया, जिससे हजारों वर्ष तक क्षुधा-तृष्णा का कष्ट नहीं होगा। इन्द्रजीत के वध के लिए लक्ष्मण को अनाहार रहना पड़ेगा। इसीलिए यह व्यवस्था पहले से ही कर दी गयी।

बहुकाल अनाहारे थाकिबे लक्ष्मण। एक काले हवे इन्द्रजितेर मरण ॥ ७३ ।
मानस में भी विश्वामित्र इस प्रकार की विद्या देते हैं—१-२०८-८।

यहाँ कृत्तिवास को अध्यात्म-रामायण से प्रेरणा मिली है, जिसमें कहा गया है—

यस्तु द्वादशवर्षाणि निद्राहारविवर्जितः ॥ ६४
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः ॥ ६५ युद्ध०, सर्ग ८

अन्य रामकथाओं में भी इससे मिलता-जुलता वर्णन है किन्तु कृत्तिवास की कल्पना अनोखी है।

हनुमान का गर्व-भंग—राम ने हनुमान से कहा कि लक्ष्मण ने जो फल न खाकर एकत्र किये हैं, उन्हें उठा लाओ। हनुमान उन्हें न उठा सके, तब लक्ष्मण स्वयं जाकर उठा लाये। गायकों ने ऐसी घटनाएँ कालान्तर में जोड़ी होंगी।

यहीं पर एक बात का और भी उल्लेख है। राम ने सभी फलों का हिसाब लगाया। सात दिन के फलों की कमी निकली। लक्ष्मण ने स्पष्ट किया कि इन सात दिनों पर फल लाये ही नहीं गये थे—(१) दशरथ की मृत्यु की सूचना, (२) सीता-हरण, (३) इन्द्रजीत द्वारा नागपाश-बन्धन, (४) मायासीता-वध, (५) महीरावण द्वारा राम-लक्ष्मण का अपहरण, (६) लक्ष्मण-शक्ति और (७) रावण-वध। (पृष्ठ ४६६-६८)

गज-गच्छप प्रसंग—लंका-निर्माण के सम्बन्ध में बँगला-लेखक ने वाल्मीकि-रामायण के अरण्यकाण्ड से प्रेरणा लेकर तथा स्वकल्पना की योजना कर एक कथा का उल्लेख किया है[1]—

धन के लिये परस्पर झगड़ने वाले दो भाई अगले जन्म में गज-गच्छप हुए। जब वे दोनों लड़ रहे थे, गरुड़ उन्हें पंजों से पकड़कर उठा ले गये और एक बड़े बरगद की डाल पर रखकर खाने लगे। डाल टूट गयी, उस पर स्थित तपस्यारत ऋषियों को बचाने के लिए गरुड़ उस डाल को भी लेकर उड़े। डाल से चंडालों का विनाश कर वे सुमेरु के शिखर पर बैठकर गज-गच्छप को खाने लगे। पवन ने कहा—यह मेरा स्थान है, इसे छोड़ दो। दोनों में संघर्ष हुआ। पवन की शक्ति से बचाने के लिए गरुड़ ने पंखों से सारा पर्वत ढक लिया। पवन के वेग से प्रलय उपस्थित हो गयी। ब्रह्मा के समझाने पर गरुड़ ने सुमेरु का थोड़ा-सा भाग खोल दिया, जिसे उठाकर पवन ने समुद्र-गर्भ-स्थित चित्रकूट (वाल्मीकि-रामायण में त्रिकूट) नामक पर्वत पर फेंक दिया। सुमेरु के इसी अंग से विश्वकर्मा ने लंकापुरी का निर्माण किया। (बँगला-रामायण, पृष्ठ ४७०-७२)

उड़िया-रामायण के लंकाकाण्ड में गरुड़ के कृत्यों की प्रशंसा के क्रम में गज-गच्छप और वालखिल्य ऋषियों का उल्लेख मात्र है। (६-८९)

---

१. कृत्तिवासी बँगला-रामायण और रामचरितमानस—रमानाथ त्रिपाठी, पृ० २२६-२७।

उड़िया-रामायण के नूतन-प्रसंग :

कुछ अप्रासंगिक कथाएँ—(अ) तृणबिन्दु ('तिरण') की कन्या की कथा, जिसके गर्भ से विश्रवा (रावण के पिता) की उत्पत्ति हुई। (आ) स्त्रियों के कारण पुरुषों का स्खलन—पार्वती को वधू-वेश में देख ब्रह्मा का स्खलन, विश्वामित्र-मेनका, सप्तर्षियों की भार्या-अग्नि, इन्द्र-अहल्या तथा तारा-चन्द्रमा की कथाएँ। (ई) जानुघंट परशुराम, वेण, शिव, जीमूतवाहन, हरिश्चन्द्र, वलि, नृग, निमि, अगस्त्य-उत्पत्ति, ययाति, रघु और अज की कथाएँ। इसके अतिरिक्त रावण की दिग्विजय से सम्बन्धित कुछ कथाएँ भी।

रम्भा के साथ रावण का बलात्कार और अभिशाप—पति के पास अभिसार के लिए जाती हुई प्रसाधनवती रम्भा को देखकर रावण ने रति की याचना की। वह बोली, मैं नलकूवर (कुबेर-पुत्र) की पत्नी होने के कारण तुम्हारी पुत्रवधू हूँ। रावण ने कहा—'तुम सुर नहीं हो, अतएव जो धन दे, उसकी हो।' रम्भा ने कहा—'मैं इन्द्र के अधीन हूँ, वे जिसके लिए कहें, मैं उसकी हूँ।' रावण ने उसके साथ बलात्कार किया, यहाँ अश्लील वर्णन है। रम्भा ने अपने पति से जाकर कहा, यदि तुमने मेरे मान का उद्धार न किया, तो मैं अग्नि में जलकर प्राण दे दूँगी। नलकूवर ने कुश-जल लेकर शाप दिया कि यदि रावण ने पर-स्त्री का स्पर्श किया तो उसके शतखंड हो जाएँगे। इससे ब्रह्मादि प्रसन्न हुए कि अब सीता का सतीत्व रक्षित रहेगा।
(७-७२-७५)

असमीया और बँगला रामायणों के सुन्दरकाण्डों में नलकूवर के शाप का उल्लेख मात्र है कि यदि रावण किसी स्त्री को बलपूर्वक छुएगा तो उसकी मृत्यु हो जाएगी।

उड़िया-रामायण का यह पूरा प्रसंग वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है।

कनक-सीता—राम सब के साथ स्वर्ग चले। कनक-सीता को देखकर वे चिंतित हुए, इसका क्या करूँ। स्वर्णप्रतिमा साक्षात् वामा होकर बोली—'मैं वही माया सीता हूँ जिसने रावण को मुग्ध किया था। मैं महामाया तुम्हारी सदा दासी हूँ। क्षीर-समुद्र में तुम्हारा घर है, मुझे वहीं विलय कर दो।' वह फिर बोली—'विलम्ब क्यों कर रहे हो, क्या फिर राज्य करना चाहते हो। देवकार्य समाप्त हुआ, अब चलो।' यह माया-सीता स्वर्ग में सीता को प्रणाम कर अदृश्य हो जाती है।
(७-२१२ और २२०)

जय-विजय—राम की अपने द्वारपाल जय-विजय से भेंट और उनके तीन जन्मों का भी वर्णन है। (२२१)

राम का वृहत् परिवार—स्वर्ग में राम के वृहत् परिवार का वर्णन है। विष्णु रूपमें वे हिन्दू संयुक्त-परिवार के उदारकर्ता के रूप में चित्रित हैं।

मानस के कुछ प्रसंग :

मानस में कथा का विस्तार राम के सिंहासनारोहण से पश्चात् रुक जाता है। उत्तरकाण्डों में कथा का सहज विकास नहीं है, उसमें अनेक अप्रासंगिक कथाएँ हैं, जो अधिकांशतः प्रक्षिप्त है। इन सब घटनाओं के निराकरण करने पर उत्तरकाण्ड का अस्तित्व नही रह जाता। अतएव गोस्वामीजी ने लंका से राम के प्रत्यावर्तन के पश्चात् की कथा उत्तरकाण्ड में दिखाकर तथा भक्ति-ज्ञान आदि का विवेचन कर अपना उत्तरकाण्ड पूर्ण किया। सिंहासन-प्राप्ति तक की कथा का तुलनात्मक-अध्ययन लंका-काण्ड में हो चुका है। अब उत्तरकाण्ड में केवल एक ही कथा रह जाती है, वह है काकभुशुंडि की कथा।

काकभुशुंडि—जब-जब राम विभिन्न कल्पों में अवतार लेते हैं, काकभुशुंडि उनके दर्शन करने आते है। लंका में नागपाश-पीड़ित राम-लक्ष्मण को मुक्त करने के पश्चात् से गरुड़ के मन ने शंकाएँ उत्पन्न हुई। शंकर ने गरुड़ को काकभुशुंडि के पास ज्ञानार्जन के लिए भेजा। काकभुशुंडि ने बताया कि वे पहले शिवपूजक थे, तथा हरि-भक्तों की निन्दा किया करते थे। गुरु के समझाने पर भी जब वे न माने तो आकाश-वाणी द्वारा शाप सुनायी पड़ा कि उन्हें हजार योनियों में जन्म लेना पड़ेगा। शंकर की कृपा से योनियाँ शीघ्र-शीघ्र बीतती गयीं। अब मानवरूप में जन्म लेकर काक-भुशुडि सगुण-मार्गीय हो गये। लोमश-ऋषि ने इन्हें निर्गुण-भक्ति समझायी किन्तु ये सगुण-भक्ति पर आग्रह दिखाते रहे। लोमश ऋषि ने क्रुद्ध होकर कौआ होने का शाप दिया। किन्तु इनके धैर्य से प्रसन्न होकर इन्हें रामचरित बताया।

काकभुशुंडि-गरुड़ सम्वाद प्रस्तुत कर लेखक शैव-वैष्णव, ज्ञान-भक्ति और सगुण-निर्गुण समन्वय करते हुए भक्ति-मार्ग की पुष्टि करना चाहता है।

कलियुग-वर्णन—मानस के इस वर्णन में तत्कालीन-परिस्थितियों की झलक मिल जाती है।

०सम्पूर्ण रामचरित-काव्यों के अन्त में किसी-न-किसी रूप में राम-कथा-श्रवण के फल का उल्लेख और राम के प्रति भक्ति-भाव का प्रकाशन है। उड़िया-रामायण के अन्त में लेखक ने अपना जीवन-परिचय भी दिया है।

सप्तम अध्याय

काव्य-सौष्ठव

भाव-सौन्दर्य

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'—साहित्यदर्पण-कार के इस कथन तथा अन्य कई आचार्यों के मत के अनुसार रस ही काव्य की आत्मा है। रस बड़ा व्यापक शब्द है, इसके असंख्य अर्थ हैं, इसके एक-दो अर्थ की भी व्यंजना करने वाला कोई शब्द अंग्रेजी भाषा में न मिलेगा। रस का एक अर्थ है आस्वाद। साहित्य-शास्त्र में इसका प्रयोग काव्यास्वाद अथवा काव्यानन्द के लिए होता है।

रस काव्य का प्राण है, यह सही है किन्तु इसीलिए यदि कोई अपने काव्य में विभावानुभावसंचारी-अवयवों की यथाक्रम सामग्री एक स्थान पर एकत्र कर दे तो वह मार्मिक काव्य नहीं हो पाएगा। प्रसंग की मार्मिकता स्वयं ही वाणी द्वारा फूट पड़ती है। प्रस्तुत-प्रवन्ध में विभिन्न-रसों से सम्वन्धित मार्मिक-प्रसंगों का वर्णन होगा। आलम्वन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारी आदि के उदाहरण खोद-खोद कर प्रस्तुत नहीं किये जाएँगे

शृंगार-रस :

शृंगार के स्थायी-भाव रति अथवा प्रेम का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। समस्त सृष्टि में ही 'एकोऽहं वहुस्याम्' की भावना है, इसके लिए पुरुष और नारी-तत्त्वों का मिलन आवश्यक है। जिस अवस्था में इन दोनों की प्रजनन-शक्ति अधिक वलवती हो सकती है, उसी अवस्था में ये पारस्परिक आकर्षण का तीव्र अनुभव करते हैं। मानव ही नहीं अपितु प्राणिमात्र इस आकर्षण का अनुभव करता है, वैज्ञानिक एवं सहृदयकवि तो वनस्पतियों में भी इसे घटित देखते हैं। इसीलिए आचार्यों ने इसकी व्यापकता देख इसे रसराज कहा है। रसराजत्व के अन्य कारण वताये जाते हैं— १. इसमें सुखात्मक एवं दुःखात्मक दोनों प्रकार के अनुभवों की संयोग और वियोग रूप में विद्यमानता, २. सभी संचारियों एवं सात्विकों को आत्मसात् करने का इसका सामर्थ्य (आलस्य, उग्रता और जुगुप्सा को छोड़कर)। ३. विभावों की विशेषता—इसके आलम्वन एक-दूसरे के आलम्वन होते हैं, राम सीता

से प्रेम करते हैं, तो सीता भी राम से प्रेम करती हैं। शृंगार का उद्दीपन भी व्यापक होता है। बारहों मासों की स्थितियाँ वियोग शृंगार की उद्दीपन हो सकती हैं।

पाश्चात्य-विद्वान् साहित्य का मूल-प्रेरक भाव काम मानते हैं। डा० नगेन्द्र भी कम से कम ललित साहित्य को रसात्मक होने के कारण काम-वृत्ति से प्रेरित मानते हैं।[1] भारतीय विद्वान् शृंगार के स्थायी-भाव रति के अन्तर्गत केवल काम को ही स्वीकार नहीं करते, वे काम के साथ ही वात्सल्य, आत्मसमर्पण (भक्ति) आदि अनेक मनोवेगों का समाहार भी करते हैं।[2] रति के कई रूप हो जाते हैं—प्रणय-भाव, वात्सल्यभाव, श्रद्धा-भाव, भक्ति-भाव एवं औदार्य-भाव।[3] फिर भी मुख्यतः शृंगाररस में प्रधानता प्रणय-रति की ही है। सभी कालों एवं देशों के साहित्य में इसका वर्णन मिलेगा।

हम रामायण-साहित्य में चित्रित प्रणय-रति का ही अध्ययन करेंगे।

संयोग शृंगार—राम मर्यादावादी थे। उनका शृंगार दाम्पत्य-भाव का है। भाषा-रामायणकारों ने उनके शृंगार-वर्णन में मर्यादा का ध्यान रखा है। राम के शृंगार में ही नहीं, राम-कथा से सम्बन्धित अन्य पात्रों के विषय में भी उन्होंने संयम का परिचय दिया है। कामशास्त्र-विशेषज्ञ रसिक उड़िया-रामायणकार ने अवश्य ही संभोग के नग्न-चित्र प्रस्तुत किये हैं।

० **असमीया-रामायण** में सीता-राम के संयोग-शृंगार का तन्मय करने वाला वर्णन नहीं है, वैसी स्थिति तो वियोगावस्था में मिलती है। संयोग में दाम्पत्य प्रेम के एक-दो चित्र अवश्य मिल जाते हैं। सीता देवी ने **मैनसिल** का तिलक लगाया। राम के हृदय में आलिंगन की इच्छा हुई। सीता ने परिहास कर पूछा, सुरति शृंगार की अभिलाषा हो रही है? इसी बीच लक्ष्मण मृग मारने के लिए चले गये। राम प्रसन्नतापूर्वक नदी तट पर सीता की गोद में लेट गये—२४८९-९० छं०। माधवदेव ने सीता के स्तन, विपुल नितम्ब और सुवलित उरु का वर्णन किया है।

० **बँगला-रामायण** में काटछाँट हुई है, उसके संयोग शृंगारांतर्गत आने वाले अंश हटा दिये गये हैं। अतएव इस ग्रन्थ में भी तन्मय कर देने वाले अंश नहीं मिलेंगे। दाम्पत्य प्रेम के पवित्र उदाहरण का एक सुन्दर चित्र वैवाहिक-लोकाचार के समय मिल जाता है, जबकि सीता को अंधेरे घर में लिटाकर राम से कहा जाता है कि वे सीता को हाथ पकड़कर उठा लाएँ। सीता ने यह सोचकर कि कहीं पति का हाथ उनके पैर पर न पड़ जाए, बायें हाथ की शंख-चूड़ी झनझना दी। राम ने उन्हें हाथ पकड़कर उठा लिया—

---

१. डा० नगेन्द्र—विचार और अनुभूति, पृष्ठ १०।
२. डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी—रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस, भूमिका-८।
३. डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—बिहारी की वाग्विभूति, पृष्ठ ९६।

करिलेन सीता वामहस्ते शंखध्वनि।
हाते धरे सीतारे तोलेन रघुमणि॥ पृ० ८७

० रसिक बलरामदास तांत्रिक वैष्णवशक्ति-धारा के कवि थे, उनके जन्मस्थान के मन्दिर की भित्तियों पर काम-भाव को रूपायित किया गया है। यह लेखक शृंगार में डूबकर लिखता है। अन्य रामायणकारों की अपेक्षा इस लेखक ने शृंगार का विस्तृत चित्रण किया है, किन्तु चित्रणों में काम-भाव प्रबल हो उठा है।

जनकपुर की काम-विह्वला नारी—जनकपुर की स्त्रियों की तो ऐसी दशा हो जाती है कि वे अश्लील चेष्टाओं पर उतर आती हैं। उन्होंने प्रथम बार राम को देखा तो अस्तव्यस्त शृंगार कर अर्धनग्न अवस्था में ही राम को देखने दौड़ पड़ीं। वे आतुरी में काजल, आलता आदि का शृंगार कहीं का कहीं कर गयीं। कोई छाती पीटने लगी, किसी के नेत्रों से आँसू झरने लगे और सूक्ष्म-वस्त्र भींग जाने से उनके स्तन दिखायी पड़ने लगे। विवाह-संस्कार के समय भी ये स्त्रियाँ राम के शरीर में हल्दी लगाने के बहाने उनके अंगों का स्पर्श करती हैं या अपने अंगों का स्पर्श देती हैं। कोई उनकी पीठ से स्तन सटा देती है, कोई उनकी भुजा को पकड़ अपने वक्ष से स्पर्श करा देती है। यहाँ काम-विह्वल नारियों की शारीरिक-चेष्टाओं का सुन्दर वर्णन है। ये चेष्टाएँ हाव और अनुभाव दोनों ही की श्रेणी में आ जाती हैं—

नासिका फुलाइण ठारन्ति केहु बाली।
आखि छिटा मारि के हुअन्ति ठेलाठेलि॥
मने मन मिशाइण चुम्बन भावन्ति।
मदन विकारे आनु आन से बोलन्ति॥
स्तम्भीभूत होइ के मुखकु चाहें फेड़ि।
मदन विकारे केहु न सम्भाले शाढ़ी॥

(कोई बाला नाक फुलाकर संकेत कर रही है, कोई कटाक्ष फेंककर ठेला-ठेली कर रही है। कोई मन ही मन मिलन कल्पित कर चुम्बन कर रही है और मदन-विकार के कारण कुछ का कुछ बोल रही है। कोई स्तम्भित होकर मुख मोड़ लेती है, और कोई काम के वशीभूत होकर साड़ी नहीं सँभालती है।—(१-१९५)

राम-सीता के जनकपुर से विदा के समय भी जनकपुर की स्त्रियाँ काम-विवशा ही नहीं काम-विक्षिप्ता होकर राम से चिपटने-चूमने आदि के कृत्य करने लगती हैं। वे अपना घर छोड़ राम के साथ जाने के लिए प्रस्तुत हैं। राम उन्हें डाँटकर दूर करते हैं—१-२०२।

अन्य पात्रों की कामुक चेष्टाएँ—लेखक को जहाँ भी अवकाश मिला, उसने रति का विकृत वर्णन किया है। शूर्पणखा राम से संयमहीन होकर चुम्बन, उर-मर्दन,

कपोल पर तीक्ष्ण दन्त-क्षत और आलिंगन की याचना करती है।[1] विश्वकर्मा-रेणुका प्रसंग में सहमति से सुरति, नख और दन्त के आघात, रति-सुख की वृद्धि पर रेत-स्खलन तथा सुरति की समाप्ति पर वस्त्र-धारण का वर्णन है।[2] वेदवती के प्रति रावण के मुख से इसी प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये हैं। इसी प्रकार सुन्दरी रंभा को अपने रथ के नीचे पतित कर रावण भयंकर रूप से कामविह्वल होकर तथा अनेक प्रकार की काम-कलाएँ दिखाकर उसके साथ बलात्कार करता है। विस्तृत वर्णन है।[3] रंभा अपने पति से मिलकर आप-बीती सुनाते समय इसी वर्णन की पुनरावृत्ति करती है। स्त्री-रूपधारी विष्णु के पीछे दौड़ते हुए शंकर का रूप तो बिल्कुल कामोन्मत्त अश्व जैसा अंकित किया गया है। शंकर-पार्वती के दाम्पत्य-प्रेम के सम्बन्ध में भी एक उल्लेख है। धनु-भंग के शब्द से डरकर पार्वती ने शिव के वक्ष से स्तन सटा दिये। शिव बोले, चलो आलिंगन तो मिला। इसी प्रकार के अनेक प्रसंग हैं।

ऐसे प्रसंगों का वर्णन मर्यादावादी असमीया और हिन्दी रामायणकारों ने नहीं किया। बँगला-रामायण के संशोधनों की चर्चा हो ही चुकी है। उसके ऐसे वर्णन छापे नहीं गये हैं।

राम-सीता-प्रेम—विवाह-संस्कारों के मध्य राम और सीता एक ही थाल में साथ-साथ भोजन करने बैठे। रत्नचूड़ी में राम का रूप देख सीता मुग्ध हुई 'ऐसे सुरूप हैं मेरे प्राणनाथ,। बहुत बड़ी तपस्या के फलस्वरूप मैंने इन्हें पाया है।' उन्हें भोजन न करता देख सखियाँ चकित हुईं, अन्त में पोल खुली।[4] उड़िया-रामायण का यह वर्णन तुलसीदास के वर्णन से मिलता है, निश्चय ही यह उतना मार्मिक नहीं है। तुलसी की कवितावली का वर्णन तो उनके मानस के वर्णन से भी बढ़कर है।[5]

प्रसाधन एवं प्रणय-क्रीड़ाएँ—सीता-राम के दाम्पत्य-प्रेम के अनेक सुन्दर चित्र खींचे गये हैं। हाथियों द्वारा तोड़ी डाल को लताओं से जोड़कर नाव बनायी गयी। सीता बैठते समय डरीं, राम ने हँसकर उन्हें हाथ पकड़कर गोद में बिठा लिया।[6] वन में रहते हुए राम अपनी प्रिया का अनेक प्रकार से शृंगार किया करते थे। जूड़े में फूल लगाते। पत्थर पर चन्दन घिसकर लेप करते। कृष्ण अगुरु घिस-

---

१. अधरे तुम्भे चुम्बन दिअसि मोहर। उर मरदन करु बेनि भुज तोर॥
तीक्ष्ण दन्तरे पीड़न कर गण्ड भार। दुइ भुज भिड़ि मोते कोलाग्रत कर॥ ३-२२

२. उड़िया-रामा०—५-११४।

३. वही—७-१७४-७५।

४. वही—१-२००-२०१।

५. देखिए—राम को रूप निहारत जानकी कंकन के नग की परिछाहीं।
यातै सबै सुध भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥ कवि० १-१७

६. उड़िया-रामा०—२-५७।

कर सीता के नेत्रों में लगाते। मृगमद घिसकर सीता के वक्ष पर पत्रावली रचते। दोनों ही एक-दूसरे का हाथ थामकर वन-विहार करते।

एक दिन दोनों वन में विहार कर रहे थे। एक कपोत को देखकर सीता ने चुपके जाकर उसे पकड़ना चाहा, कपोत उड़ गया। राम हँस पड़े। सीता ने चन्दन घिसकर राम के शरीर पर लगाया और उनकी शोभा देखकर मुस्कुरायीं। दोनों मंदाकिनी के जल में उतरकर एक-दूसरे पर नागेश्वर के फूलों का प्रहार कर क्रीड़ा करने लगे। दोनों भीगे वस्त्र-सहित धातुशिला पर बैठे। सीता की साड़ी में गेरू लग गयी। राम ने सीता के माथे पर गेरू का तिलक लगा दिया। बन्दरों का झुण्ड देख सीता डरकर राम के हृदय से लिपट गयीं। सीता का तिलक राम के भी लग गया। दोनों हँस पड़े।[1] सीता के रसोई आदि प्रस्तुत करने, राम की सेवा करने आदि के अत्यन्त सुन्दर पारिवारिक चित्र इस रामायण में उपलब्ध हैं।

०मानस में गो० तुलसीदास ने शिव-पार्वती के ही शृंगार-वर्णन की अनिच्छा प्रकट की है, क्योंकि वे जगत् के माता-पिता हैं, फिर वे परमाराध्य सीता-राम का मुक्त शृंगार कैसे दिखा सकते थे ?

जगत मातु पितु संभु भवानी।
तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी ॥ १-१०२-४

फिर भी तुलसीदास ने राम-सीता के शृंगार का वर्णन किया, किन्तु अत्यधिक पवित्रभाव से। कहीं कामोत्तेजक बातें नहीं, तथापि निश्छल स्वभाव के सरल किशोर-किशोरी का प्रथम स्नेह-मिलन पाठकों को तन्मय कर देता है। कंकण-किंकिण-नुपुर-ध्वनि सुनकर फुलवाड़ी में प्रकाश करती सी, सीता को देखकर राम का सहज पुनीत मन क्षुब्ध हो गया। सीता के कमल-मुख की शोभा को वे भ्रमर की भाँति पीने लगे। उधर सीता की स्थिति यह है कि वे एकटक देखती ही रह गयीं। प्रेम के अत्यधिक आवेग से वे ऐसी विह्वल हो गयीं कि चकोरी के शरद्चन्द्र-दर्शन के समान देखती ही रह गयीं।

थके नयन रघुपति छबि देखें।
पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥[2]

आगे कोहबर के समय हाथ की मणियों में सीता ने राम की प्रतिच्छवि देखी। सुशीला-सलज्जा कन्या अपने प्रिय को कैसे देख पाती, वह भी गुरुजनों की उपस्थिति में। मणि में प्रतिबिम्बित रूप को वह जी भर देख सकती थी, किन्तु रूपरस-पान में

---

१. उड़िया-रामा०—२-७८-७९।

२. मानस—१-२३१-५,६

वह ऐसी तन्मय हुई कि रूप-वियोग के भय से वह भुजलता का संचालन ही नहीं कर रही हैं।

निज पानि मनि महुं देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली विलोकनि विरह भय बस जानकी॥[1]

दाम्पत्य-प्रेम के अनेक उदाहरण मानस में मिल जाएँगे। पति के प्रति पूज्य-भाव केवल एक इस अर्धाली में मिल जाता है—

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता।
धरति चरन मग चलत सभीता॥ २-१२२-५

वियोग :

'यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ'—साहित्य-दर्पण[2] की इस उक्ति के अनुसार जहाँ अनुराग तो उत्कृष्ट हो किन्तु अभीष्ट (प्रिय-समागम) की प्राप्ति न हो, वहाँ वियोग अथवा विप्रलम्भ शृंगार होता है।

जब नायक-नायिका में किसी एक की मृत्यु हो जाने से अथवा किसी अन्य कारणवश दोनों के मिलने की सम्भावना न रहे तो वहाँ करुण-रस होता है, किन्तु प्रेम की उत्कृष्टता बनी रहने के कारण कुछ आचार्य इसे करुणात्मक वियोग मानते हैं। सच तो यह है कि करुणात्मक वियोग और करुण-रस के मध्य विभाजक-रेखा खींचना कठिन है। रामकथा में लक्ष्मणशक्ति, मायासीता-वध, सीता की परीक्षाएँ आदि कुछ ऐसे अवसर हैं जहाँ प्रिय के मिलने की आशा नहीं रह गयी है।

भोज ने 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में वियोग की चार अवस्थाएँ मानी हैं—पूर्वानुराग, मान (१. प्रणय, २. ईर्ष्या), प्रवास और करुण। वियोग की दस दशाएँ भी बतायी गयीं हैं— अभिलाप, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता एवं मृत्यु।

हमारे रामायण-लेखकों ने शास्त्रीय भेद-प्रभेद के चौखटे में जड़ने के लिए विरह-वर्णन नहीं किया। प्रसंग के अनुसार राम या सीता की विरह-दशाओं का वर्णन किया है।

०असमीया-रामायण के अयोध्याकाण्ड में सीता के आसन्न-विरह-दुःख का वर्णन है। राम के वनवास का समाचार ज्ञात कर वे 'हा प्रभु', कहकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और छाती पर प्रहार करने लगीं। महाभय से शरीर काँपने लगा, हाथ का वलय खिसकने लगा। वे राम का वस्त्रांचल पकड़कर गिड़गिड़ायीं—'प्रभु मत जाओ':

हा प्रभु बुलि, परिला भूमित, हृदयत मुठि हानि॥ १८२२
आति महाभय, शरीर कम्पय, हातर खसे, वलय॥ १८२३
नयाइबाहा प्रभु, बुलिया जानकी, आञ्चलत धारिलन्त॥ १८२५

---

१. मानस—१-३२६, छंद ३।
२. साहित्य दर्पण—३-१८७।

सीताहरण के समय लेखक ने सीता के विरह-वर्णन की अपेक्षा उनके पतिव्रत-तेज का वर्णन अधिक किया है। राम ने सीता से वियुक्त होकर विलाप किया है। वे रोकर लक्ष्मण से कहते हैं—सीता के बिना मुझे सारा संसार विष-तुल्य लगता है। मैं प्राणेश्वरी के विना वन में मर जाऊँगा। असमीया लेखक का दृष्टिकोण भी तुलसी-दास जैसा है, अतएव विरह की मार्मिकता कम हो जाती है।

परम ईश्वर राम सीता जगन्माव।
देखाइलन्त विषयी जनर इटो भाव॥

(राम परम ईश्वर है और सीता जगन्माता है। वे विषयी-जन जैसा भाव दिखा रहे हैं। (३३१६)

राम-सीता के दारुण-विरह का वर्णन कन्दली ने अग्नि-परीक्षा के समय एवं शंकरदेव ने निर्वासन एवं पाताल-परीक्षा के समय अत्यन्त मार्मिकता के साथ किया है, जिसका कि वर्णन करुण-रस के अन्तर्गत होगा।

०बँगला-रामायण के राम को ब्रह्मत्व का ज्ञान नहीं है, वे हृदय से रोये हैं। वन के पशु-पक्षी भी उनके साथ रोये हैं।

कान्दिया विकल राम जले भासे आँखि।
रामेर क्रन्दने कान्दे वन्य पशुपाखी॥ पृ० १५८

सीता के विना उन्हें दसों दिशाएँ शून्य दिखायी पड़ती हैं। उनके लिए सीता ध्यान, ज्ञान और चिन्तामणि हैं। सीता के विना वे फणिहीन नाग के समान व्याकुल है।

दशदिक शून्य देखि सीता अदर्शने।
सीता विना किछु नाहि लय मम मने॥
सीता ध्यान सीता ज्ञान सीता चिन्तामणि।
सीता विना आमि येन मणिहारा फणी॥[1]

मानस के राम के समान बँगला के राम भी मृग-पक्षी-वृक्षलता आदि से पूछते हैं कि सीता को किसने हर लिया है—

शुन शुन मृग पक्षी शुन वृक्षलता।
के हरिल आमार से चन्द्रमुखी सीता॥ पृ० १५८

आगे विरह की उन्मादावस्था में राम के मार्ग में जड़ या चेतन जिससे भी मिलते हैं, पागलों के समान सीता का संधान पूछने लगते हैं—

याइते देखेन याके जिज्ञासेन ताके।
देखियाछ तोमरा कि ए पथे सीता के॥ पृ० १५६

---

१. बँगला-रामायण—पृष्ठ १५८।

सुग्रीव द्वारा सीता के वस्त्राभूषण की उपलब्धि पर भी राम बहुत रोये हैं । यथास्थान सीता का विरह-दुःख भी वर्णित है । उनकी मार्मिक उक्तियाँ तो परीक्षा के समय की हैं, उनका वर्णन आगे होगा ।

० **उड़िया-रामायण** में विरहिणी सीता का रूप हनुमान के शब्दों में इस प्रकार है—स्फटिक की एक माला लेकर सर्वदा तुम्हारा (राम का) नाम जपती रहती हैं । वह दोनों हाथ कपाल पर रखकर धरती की ओर देखती रहती हैं । बिम्बोष्ठी का मुख दुःख से सूख गया है ।

स्फटिकर जपामलि गोटि घेनि थाइ ।
सर्वदा तहिरे तारे नामकु जपइ ।।
कपालरे वेनिहस्त मेदिनी कि दृष्टि ।
दुःखेए मुख शुखाइ अछि विम्ब ओष्ठी ।। ५-८२

बलरामदास विरह-चित्रण में भी **रसिकता** नहीं भूले । अम्लान वस्त्र पहने एवं झर-झर आँसू बहाती सीता के प्रसाधन-हीना होने की उन्हें अधिक चिन्ता है । उनके स्तनों पर पत्रावली नहीं रची गयी, ताम्बूल, आलता, कज्जल आदि का प्रयोग नहीं किया गया, आदि ।[1] राम को सत्य-विरही ही दिखाया गया है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु राम भी विरह-सन्तप्त होकर सीता के मांसल-सौन्दर्य का चिन्तन ही करते अधिक दिखाये गये हैं—

'सखी तेरा शरीर शीत-ऋतु के लिए ऊष्मा प्रदान करता है और उष्ण-ऋतु के लिए शीतलता । हे महासती, अब क्या तेरी मति पर-पुरुष के प्रति हो गयी है ! सखी, मेरा मन प्रसन्न करने के लिए जूड़े में फूल खोंसो, आँखों में काजल लगाकर मुझे देखो ।—अल्प-अल्प हँसकर मुझसे बात करो, मेरे लिए यह अमृत-पान-तुल्य होगा । तेरे दोनों कुच गजकुंभ के समान हैं, तेरी कटि क्षीण एवं जंघाएँ विशाल हैं । इन सब को लेकर तुमने किसको प्राप्त किया है ?'[2]

राम उन्मत्त होकर ही उपर्युक्त कथन कर रहे हैं, फिर भी लक्ष्मण की उपस्थिति में मध्यकालीन लेखक के मुख से निःसृत ये शब्द शोभा नहीं पाते ।

वैसे अन्य स्थलों पर राम का विरह मार्मिक है । सुग्रीव के द्वारा प्रदत्त सीता के वस्त्रालंकारों को छाती से लगाकर वे 'सीता सीता' कहकर उच्च स्वर से रोये । उनका रुदन सुनकर वन के जीव-जन्तु स्तब्ध रह गये । वे भूमि पर लोटकर कहते हैं मेरी पंच-प्राण-स्वामिनी कहाँ चली गयी ।[3]

---

१. उड़िया-रामा०—५-१७ ।
२. वही—४-४३ ।
३. वही—४-१३

स्वप्न में प्रिय-मिलन सुखकर होता है किन्तु जागृति में यह मिथ्या मिलन पूर्वापेक्षा कई गुना कष्ट देता है। राम ने भी स्वप्न देखा--अयोध्या नगर में रत्न-पलंक के ऊपर सीता को क्रोड़ में लेकर वे उनके साथ प्रणयकेलि कर रहे हैं। राम के अंगूठे से उलझकर सीता का मुक्ता-हार छिन्न हो गया, मोती बिखर गये, रक्त-पुष्प-सदृश ओष्ठ वाली सीता रुष्ट होकर बोलीं—मेरा हार गूंथ दो। इसी बीच राम की आंख खुल गयी, वे 'सीता सीता' पुकार उठे। अब उन्हें चेत हुआ कि यहाँ सीता कहाँ। यह अयोध्या नहीं माल्यवन्त पर्वत है। ठण्डी साँस भरकर वे बोले—सीता की मोती-माला कैसे गूंथ पाऊँगा, रावण तो मेरे मुख में कालिख लगा गया है।

काहिँ मुहिँ सीतार गुन्थिबि मोतिमालि।
रावण ये मुखे मोर लगाइछि कालि॥ ४-४९

इस रामायण में भी उन्माद-ग्रस्त राम वनपशुओं एवं प्रकृति के उपकरणों से सीता के विषय में पूछते हुए अत्यन्त ही व्याकुलता का परिचय देते हैं। लक्ष्मण उन्हें बारम्बार प्रबोध देकर प्रकृतिस्थ करने की चेष्टा करते हैं।[१]

०मानस में विप्रलम्भ-चित्रण की मार्मिकता में बाधक है राम का ब्रह्मत्व। राम ने लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सीता से अग्नि में समा जाने के लिए कहा था। जिस सीता का हरण हुआ, वह छाया-सीता थी। सत्य सीता का हरण ही नहीं हुआ, फिर वियोग-दुःख कैसा। पाठक के मन में यह भावना कुछ ही क्षणों तक रहती है, आगे तो वह राम के वियोग से अभिभूत हो उठता है। जिस समय राम गुणवती पुनीता सीता का ध्यान कर खग-मृग आदि से सीता का सन्धान पूछते हैं, उस समय उनके ब्रह्मत्व का विस्मरण हो जाता है।

हा गुन खानि जानकी सीता।
रूप शील व्रत नेम पुनीता॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥ ३-२९-७ और ९

आकाश में घुमड़ते हुए बादलों का गर्जन सुनकर तथा पल-पल कौंधती बिजली को देखकर भी उन्हें सीता की याद आ गयी थी।[२]

सीता के विरह-चित्रण में अलौकिकता न होने से सहज-सरल वर्णन हुआ है। हनुमान ने छिपकर सीता को विरह-दीन स्थिति में इस प्रकार देखा।

कृस तनु सीस जटा एक बेनी।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥ ५-७-८

---

१ उड़िया-रामायण—३-५३-५४।

२. मानस—४-१३-१,२।

निज पद नयन दिएँ मन राम पदकमल लीन।
परम दुखी भा पवन सुत देखि जानकी दीन ।। ५-७-८

अशोक-वन के नीचे वृक्ष से अग्नि-याचना करती हुई सीता को देखकर हनुमान इतने करुणार्द्र हो उठे थे कि अधिक विलम्ब न करते हुए उन्होंने राम की अँगूठी उनके सामने फेंक दी थी। परस्पर परिचय होने पर राम-लक्ष्मण की कुशल पूछकर सहज कृपालु राम की निठुरता का कारण उन्होंने जानना चाहा था। राम के श्याम मृदु-गात को देखने की लालसा प्रकट करते-करते उनका कंठ गद्‌गद हो गया था और नेत्रों से अश्रु धार वह चली थी।

बचनु न आव नयन भरे बारी।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी ।। ५-८

वात्सल्य :

वत्स के प्रति माता-पिता की रति या उनका स्नेह वात्सल्य कहा गया है। विद्वानों ने इसे रस न मानकर भाव माना है एवं शृंगार के अन्तर्गत ही इसका वर्णन किया है। विश्वनाथ कविराज आदि ने इसे स्वतंत्र रस माना है। शृंगार रस के समान वात्सल्य भी व्यापक प्रभाव वाला है। मनुष्येतर प्राणियों में भी शिशु के प्रति मोह होता है एवं पशु-पक्षियों के शिशुओ के प्रति मानव भी कोमल हृदय रखता है। वात्सल्य के भी संयोग और वियोग दो भेद होते है।

० **असमीया रामायण** में लव-कुश को अपना पुत्र जानकर राम के हृदय में उठते हुए वात्सल्य का अच्छा वर्णन हुआ है। उनका शरीर सिहर उठा, परम स्नेह से नेत्र स्थिर हो गये। अश्रु प्रवाह होने लगा, कंठ गद्‌गद हो गया। प्रेम रस से हृदय व्याकुल हो गया। उन्होंने आसन से उठकर दोनो को व्याकुलता-पूर्वक कंठ से लगा लिया। रघुनाथ ने दोनों पुत्रों का सिर सूँघा। उनके आँसुओं से पुत्रों के शरीर भींग गये।[१] राम वार-वार पुत्रो का मुख चूमते है। उन्हें इस वात का स्मरण आ कर वार-वार कष्ट देता है कि इतने वड़े राजा के पुत्र होकर वेचारे बन में उत्पन्न हुए।

पुत्र मुख चुम्बन्त स्नेहत वारे वार।
वनते जन्मिलि दुयो दुखीया कुमार ।। ६६५८ (शंकरदेव)

सीता की दुर्दशा का स्मरण कर उन्हे और भी अधिक पीड़ा हुई एवं पुत्रों को देखकर उन्हें शान्ति मिली।

पुत्र-प्रेम तो प्रत्येक माता के हृदय में होता है। नैकपी अपने कुपुत्र रावण के कृत्यों का समर्थन नही करती, किन्तु है तो माता ही। उसे वार-वार रावण की शिशु-

१. असमीया-रामायण, ६६५४-५६ (शंकर०)।

चेष्टाएँ याद आ जाती हैं। उसे लगता है कि आज भी रावण उसकी गोद में लेटा हुआ दो मुख से दूध पी रहा है और आठ मुखों से उसे देखता हुआ हँस रहा है—

अद्यापि आछय शिशुकाल सुमरण।
यैसानि कोलात मोर आछय रावण॥
दुइ मुखे तन पान करे अभिलाषे।
आर आठ गोटा मुखे मोक चाया हासे॥ ४६८६

राजा दशरथ विश्वामित्र द्वारा राम की याचना पर पुत्र-विरह के दुःख से इतने अधिक आकुल हो गये थे कि दाँतों में तृण दबाकर दीनता-प्रकाश करते हुए राम को न ले जाने का अनुरोध करने लगे।[1]

० **बँगला-रामायण** में माता के आकुल हृदय का वर्णन हुआ है। राम पलक की ओट होते कि कौशल्या व्याकुल हो उठतीं। शिकार खेलने के लिए गये हुए पुत्रों के लिए माताएँ अत्यधिक चिन्तित रहतीं। उनके लौटने पर वे ऐसे दौड़ पड़तीं, जैसे बच्चा खो जाने पर बाघिनी स्नेह-पीड़ित होकर दहाड़ती है—उम्बूर हाराये येन फुकारे वाघिनी-६३। कौशल्या राम को गोद में लेकर असंख्य चुम्बन मुख पर अंकित कर कहतीं—तुम मुझ दरिद्र की निधि और मेरे नेत्रों के तारे हो। तुम्हारे एक पल दूर होते ही मेरे लिए प्रलय घटित हो जाता है।[2] इसका वियोगवात्सल्य का वर्णन करुण रस के अन्तर्गत आ जाता है।

० **उड़िया-रामायण** में राम आदि की बाल-चेष्टाओं का वर्णन उपर्युक्त रामायणों से अधिक स्वाभाविक एवं सुन्दर है। वे कटि में **पाट सूता** (रेशमी सूत्र) और **घागुड़ि** (क्षुद्र-घंटिका) पहने हैं, चलने पर झमझम का स्वर हो रहा है। पिता को देखकर लजा जाते हैं और अत्यन्त स्नेहपूर्वक धाय की गोद में छिप जाते हैं। दशरथ उन्हें बड़े प्यार से पास बुलाते हैं।

कटिरे ये पाटसुता शोहइ घागुड़ि।
चालन्ते सुस्वर वाजय झम झम करि॥
पिताङ्कु देखिण पोये लाज लाज होइ।
धाइङ्कु कोले पशन्ति अति स्नेह करि॥
दशरथ डाक छन्ति आस-आस वावु।
मोहर ए सम्पद् तुम्भर सिना सबु॥ १-५६-५७

पुत्र को देखकर जिस प्रकार 'मानस' की माताओं के पयोधरों से दूध की धार

---

१. दान्ते तृण धरि, तोमात मागोहो, राम दिओक मोक, ८३० (माधवदेव)।
२. कौशल्या धाइया गिया रामे कैल कोले। एक लक्ष चुम्ब दिल वदन कमले॥
दरिद्रेर निधि तुमि नयनेर तारा। पलके प्रलय घटे यदि हइ हारा॥
६३-बं० रा०

बहने लगती है[1], उसी प्रकार उड़िया-रामायण की पार्वती के स्तनों से भी कार्त्तिकेय को देखकर दुग्ध स्रवित होता है—'पुत्र देखि स्तनरु स्रविला क्षीर-धार' १-१०५। जिस प्रकार मानस की कौशल्या को विश्वास नहीं होता कि मेरे सुकुमार अल्पायु राम ने रावण जैसे शत्रु को मारा होगा[2] उसी प्रकार उड़िया-रामायण की कौशल्या को आश्चर्य होता है कि कोमल राम ने कठोर धनुष कैसे तोड़ दिया होगा—१-१७६।

वैदेही की विदा के समय वियोग-वात्सल्य का उदाहरण मिल जाता है। प्राणों से प्रिय पुत्री को विदा करते समय किस माता को ऐसा प्रतीत न होता होगा कि मानो उसका सर्वस्व ही छीना जा रहा है। जनक की रानियाँ हाहाकार करती हुई कहती हैं—

दुध घृत देइ गो मा पोषुथिलु तोते।
परकुइँ देलु मो सबुरि सनमते॥
आजु मोते दश दिग कलु मा गो शून्य।
काहा मुख देखिण हरिबु आम्भे दिन॥

('दूध-घृत से माँ[3] (बेटी), तुम्हें पोसा था। सबकी सन्मति से तुझे दूसरे को दे दिया। बेटी, आज तूने मेरे लिए दसों दिशाओं को शून्य कर दिया। हम किसका मुख देखकर दिन काटेंगी।' (१.२०७)

० **मानस** के बाल एवं उत्तर काण्डों में वात्सल्य का वर्णन है। उत्तरकाण्ड के वात्सल्य पर अध्यात्म की छाया है, फिर भी शिशु-स्वभाव का सहज वर्णन भी हो गया है। जब बच्चा भूखा होता है तो अपनी सजल दृष्टि से मुँह रूखा-सा बनाकर माँ की ओर देखकर इच्छा प्रकट कर देता है। माता भी आतुरता-पूर्वक शिशु को गोद में लेकर स्तन्य पान कराने लग जाती है—

सजल-नयन कछु मुख करि रूखा।
चितइ मातु लागी अति भूखा॥
देखि मातु आतुर उठि धाई।
कहि मृदु बचन लिए उर लाई॥
गोद राखि कराव पय पाना।
रघुपति चरित ललित कर गाना॥ मा० ७-८७-६—८

शिशु और कौए की क्रीड़ा का भी यथार्थ चित्रण है। बच्चों का स्वभाव होता है कि कौए को खाने की वस्तु दिखाकर पास बुलाते हैं किन्तु कौए के पास आने तथा छेड़छाड़ करने पर डर कर भागते हैं—

---

१. गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥ २-५१-४ मा०।
२. अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥ ७-६-८ मा०।
३. माँ—पूर्वांचल में बेटी को माँ कहकर सम्बोधित करते हैं।

किलकत मोहि धरन जब धावहिं।
चलउँ भागि तब पूप देखावहिं ॥
आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ॥[1]

बालकाण्ड में भी बच्चों के बीच खेलते हुए राम का वर्णन है जो दशरथ द्वारा भोजन पर बुलाये जाने पर आते नहीं हैं।

वियोग-वात्सल्य का चित्रण तो इतना अधिक मार्मिक है कि वह करुण-रस के अन्तर्गत आ जाएगा। राम के विरह की कल्पना में अथवा विरह हो जाने पर छटपटाते हुए दशरथ एवं कौशल्या का हृदय तुलसीदास जैसा व्यक्ति ही पहचान सका है। सत्यवादी दशरथ तो यहाँ तक सोच बैठे—अपयश भले ही हो और चाहे नरक ही क्यों न जाना पड़े किन्तु राम लोचन की ओट न हों।[2]

करुण :

धनंजय ने कहा है--इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणोऽनुतम्।[3] अर्थात् इष्टनाश से अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से करुण रस होता है। देवकवि भी धनंजय का समर्थन करते हैं—'विनठे ईठ अनीठ सुनि, मन में उपजत सोग।' रामायणों में राम-वनवास, लक्ष्मण-शक्ति, माया-सीता-वध, सीता की परीक्षाएँ, लक्ष्मण-वर्जन आदि ऐसे अवसर हैं जबकि प्रिय का अनिष्ट उपस्थित हुआ है अथवा प्रिय के दीर्घकालीन विरह की सम्भावना के कारण करुण की उत्पत्ति दिखायी गयी है।

आनन्दप्रकाश दीक्षित लिखते हैं—शोक का प्रभाव भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार ग्रहण करते हैं—जितना ही अधिक विवेक जाग्रत रहता है उतना ही शोक का कष्ट सहन कर लिया जाता है।[4]

इस नाते तो मानस के पात्र अधिक विवेकमय प्रतीत होते हैं। चरित्र-चित्रण के प्रसंग में इसका उल्लेख किया गया है। मानस के पात्रों में शोक अपनी चरम-सीमा पर पहुँचता है किन्तु पात्र अद्भुत संयम एवं विवेक का परिचय देते हैं, ऐसा परिचय पूर्वांचलीय बँगला और उड़िया रामायणों में नहीं मिलता।

०असमीया-रामायण के दशरथ को अत्यधिक पीड़ा है। उन्हें नेत्रों से दिखायी नहीं पड़ता और बोल सुनायी नहीं पड़ते। पुत्र का स्मरण करते ही हृदय आन्दोलित हो जाता है। उनकी आकांक्षा है, अब तो राम ही बाप कहकर स्नेहपूर्वक कंठ

---

१. मानस—७-७६-१० एवं ७-७७।
२. अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही ॥ २-४४,१,२।
३. धनंजय—दशरूपक ४-८१ ॥
४. आनन्दप्रकाश दीक्षित—रस सिद्धान्त स्वरूप : विश्लेषण, पृ० ३५३।

से लग जाए, तो मानो यह अमृत पीकर वे बच जाएँ।[1] लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम अत्यन्त शोक-सन्तप्त हुए, उनके हाथों से शर-धनु भी खिसक पड़े—

मृत्युकाल आसि मोर मिलिला समरे।
शर धनु मोहर हातर खसि परे॥ ६१५३

करुण-रस का सबसे अच्छा वर्णन शंकरदेव ने उत्तरकाण्ड में किया है। यहाँ सीता मौन कपोती नहीं रही, निष्पापा सती बार-बार की लाञ्छना से अतीव क्षुब्ध होकर राम को ऐसे कटु वचन कहती हैं, जैसे किसी रामायण में नहीं कहे गये होंगे। उनके क्रोध को परिचालित करने वाला भाव पति एवं पुत्रों के प्रति अत्युग्र प्रेम है, साथ ही अपनी लांछित स्थिति से भी वे अत्यधिक क्षुब्ध हैं। अन्त में निस्सहाया नारी का करुण रूप ही सामने आता है, वे कौशल्या को प्रणाम कर कहती हैं— देवी मेरे पुत्रों को अपना पुत्र कहने में राम को लज्जा आएगी, तुम्हीं इन दोनों का पालन करना। फिर वे दोनों पुत्रों को कण्ठ से लगाकर अन्तिम विदा देते हुए समझाती हैं—लड़ना नहीं। मेरे लिए चिन्ता न करना। मैं तुम दोनों के दुःख-दुर्गति को साथ ले कर जा रही हूँ, तुम मेरी आयु लेकर जीना। अब शोक-मोह से हीन होकर सीता ने बड़ी कठिनाई के साथ आँखें पोंछकर अत्यन्त समादर-पूर्वक राम की तीन बार परिक्रमा की। चरणधूलि को अपने केशों में मलकर प्रणाम कर कहा—'प्रभु, सुखपूर्वक राज्य भोगना। मैं पाताल जा रही हूँ। हृदय के खेद से जो कुछ कह दिया क्षमा कर देना। यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम्हारे जैसे स्वामी की सेवा न कर सकी।[2]

राम कठोर थे, क्या राम ने यंत्रणा का अनुभव नहीं किया? जिस दिन सीता-निर्वासन हुआ उसी दिन से उन्होंने अन्नपान ग्रहण नहीं किया, वे अवाक् रहे। रोते-रोते उनके नेत्र स्तब्ध रह गये, उन्हें बार-बार यह बात कचोट उठती कि उन जैसे पापी ने गर्भवती स्त्री को घोर वन में त्याग दिया। क्या वह सुकुमारी घोर वन में जीवित रह सकेगी?[3] सीता के पाताल-प्रवेश के पश्चात् सारी रात उठते-बैठते बीत जाती। वे सोते हुए शिशुओं को गले से लगाकर रोया करते। उनका चित्त शान्त न रहता, स्वप्न में भी सीता-सीता कहकर चीख उठते।

शुतिला शय्यात दुइ पुत्र गले धरि।
लोतके पाञ्जरि भिजे सीताक सुमरि॥

---

१. चक्षुवे नेदेखो मइ नुशुनोहो बोल। पुत्र सुमरन्ते भैल हृदय आन्दोल॥
एरे येवे रामे बाप बुलिया मातय। स्नेहरूपे आसि ग्रीवे चापिये धरय॥
अमृत पीया येन जीवय आतुर। —छन्द २१८०-८१।

२. असमीया-रामायण—छन्द-संख्या ७०८८ से ७०९४।

३. वही—६७३५-३६।

फोकारन्त निशास नाहिके चित शान्त ।
स्वपनतो सीता-सीता बुलिया चेन्चान्त ॥[1]

० बँगला लेखक के ग्रंथ में भी शोक के कई अवसर आये हैं । अधिकांश अवसर पर ही पात्र रोते हैं और वेदना से अधीर होकर धूल में लोट-पोट (गड़ागड़ि) होते हैं । सीता की परीक्षा वाला अवसर सबसे अधिक मार्मिक है, यहाँ सस्ती भावुकता नहीं है । सीता ने लज्जा और ग्लानि से अत्यन्त अधीर होकर ही कहा ।

कुलवधु यत नारी तारा थाके घरे ।
सभाते परीक्षा दिते आसि बारे बारे ॥
आजि हैते घुचुक तोमार लाज दुःख ।
आर येन नाहि देख जानकीर मुख ॥
निरवधि अपवाद दितेछ आमारे ।
सभाय परीक्षा दिते आनि बारे बारे ॥
जन्मे जन्मे प्रभु मोर तुमि हओ पति ।
आर कोन जन्मे ना करो दुर्गति ॥

(सभी कुलवधुएँ अपने घर में रहती हैं, मैं सभा में बार-बार परीक्षा देने आती हूँ । आज से तुम्हारा लज्जा-दुःख दूर हो, और अब जानकी का मुख न देख सको । मुझे सभा में बार-बार परीक्षा देने के लिए बुलाकर निरन्तर कलंक देते हो । हे प्रभु, जन्म-जन्म में तुम्हीं मेरे पति होना, किन्तु किसी भी जन्म में मेरी ऐसी छीछालेदर न करना । (पृ० ५७२-५७३)

अन्त समय उपस्थित होने पर—पाताल-प्रवेश करते समय सीता ने दोनों पुत्रों की ओर नहीं देखा । राम को देखती हुई वे पाताल में समा गयीं ।[2]

अश्रुपूर्ण नेत्र वाले राम को भी सीता के विना सारा संसार शून्य लगने लगा, वे पागल जैसे हो गये और व्याकुल होकर पृथ्वी पर लोटने लगे ।

देखेन संसार शून्य येमन पागल ।
भूमे गड़ागड़ि यान हइया विकल ॥ ४४१

०उड़िया-रामायण में माया सीता का वध ज्ञात कर राम अत्यन्त शोक-ग्रस्त हुए । यहाँ भी लेखक राम के द्वारा सीता के संभोग-सुख का वर्णन कराता है। इसमें संदेह नहीं कि राम की विरह-कातरता मार्मिकता के साथ चित्रित है किन्तु राम के द्वारा सीता के अंग-प्रत्यंगों एवं उनके प्रसाधनों का अधिक वर्णन है । इसमें दाम्पत्य-प्रेम की भी झलक है, किन्तु यह विलाप एक काम-विह्वल पति जैसा है । वे कहते हैं,

---

१. असमीया-रामा०—७१३९ ।
२. नाहि चाहिलेन सीता उभय छाओयाले । श्रीरामे निरखिया प्रवेशे पाताले ॥५७३।

अब मैं किसके लिए मृग मारकर लाऊँगा, मैं किसके साथ पासा खेलूंगा, केतकी-पुष्प किसके जूड़े में लगाऊँगा, किसके वक्ष पर कस्तूरी का लेप करूँगा, आदि ।[1]

निर्वासिता-सीता भी दुःखित होकर दाम्पत्य-सुख का स्मरण कर चिन्तित होकर लक्ष्मण से कहती हैं—अब राम किसके मुख को चुम्बन देंगे, किसके कुचों पर पत्रावली लिखेंगे, किसको एकांत में लेकर केलि करेंगे, किसके मुख को देख-कर हँस दिया करेंगे, किसके चरणों में आलता देंगे । किसके नेत्रों में काजल लगाएँगे, किसके मुख में मेरे स्वामी पान खिलाएँगे ।[2]

पति का दुलार पायी हुई पतिप्राणा नारी पति की इन क्रियाओं का स्मरण करेगी ही, किन्तु पुत्र-तुल्य देवर के सम्मुख ये उक्तियाँ उचित प्रतीत नहीं होतीं । कहा जा सकता है कि सीता शोक के आवेश में सुधि खो बैठी थीं । ऐसा नहीं है, लेखक ही सुधि खो बैठता है । सीता के भारतीय गृहिणी-रूप का चित्रण अवश्य ही प्रशंसनीय है । भारतीय वधू सम्भवतः अपनी मृत्यु उपस्थित होने पर भी पति की चिन्ता करती रहेगी । इसी प्रसंग में आगे सीता को राम की सेवा के लिए चिन्तित देखा जाता है । उन्हें चिन्ता है कि उन्हें पहनने के लिए खड़ाऊँ आदि कौन देगा । वे लक्ष्मण से अनु-रोध करती हैं कि वेला के अनुसार सभी नित्यकर्म करा दिया करना—'वेल जाणि कराइबू ताङ्कु नित्यकर्म'—७-११८ ।

जिनके चरणों में राज्य-वैभव न्योछावर था, उन राम को भ्राता-सहित जटा बनाता देख सुमंत्र के नेत्रों में आंसू आ गये, जानकी सिर पीटने लगीं और शबर (गुह) ने अभिमान से मुँह लटका लिया—२-५१ ।

लक्ष्मण-शक्ति के समय शोक-क्रोध से विह्वल राम के अनुभावों का वर्णन इस प्रकार है—भाई का मुख देख रघुवीर विकल हैं, नेत्रों से झर-झर आंसू बह रहे हैं । क्रोध-शोक से युक्त होने के कारण बोल नहीं पा रहे हैं ।[3]

शत्रु-पक्ष की नारियों तारा और मन्दोदरी के शोक का भी वर्णन सहृदयता-पूर्वक किया गया है । मेघनाद की मृत्यु पर रावण उसे समझाता है, मन्दोदरी बोली नहीं किन्तु उसका मौन अवनत मुख उसके अन्तस्तल की वेदना प्रकट कर देता है—

मन्दोदरी राणी ताकु न कहिला कथा ।
शोक-भोले तलकु नुआइँ अछि मथा ॥ ६-२३४

एक अन्य स्थल पर वह मुँह छिपाकर सिसकती पड़ी रहती है । यही मन्दोदरी पति की मृत्यु पर अत्यन्त उद्विग्न दिखायी गयी है—

---

१. उड़िया-रामा०—६-१५५,५६ ।
२. वही—७-११७ ।
३. भाइर मुख चाहि विकल रघुवीर । नयनु अश्रु जल वहइ झरझर ॥
क्रोध शोक भरे कहि न पारन्ति वाणी ॥—६-१८८ उ० रा० ।

धुलि साउंटिए भांगि पकाइला चुड़ि।
दुइ कर आणि निज वक्षस्थले कोड़ि॥

(धूल में लोटकर उसने चूड़ियाँ तोड़कर फेंक दी। दोनों हाथों से वक्षःस्थल ताड़ित करने लगी। ६-२६७)

० शोक के अत्यधिक आवेग का वर्णन मानस में दशरथ को होता है। उनका प्रिय पुत्र अब युवराज तो हो ही नही सकेगा, उसे दीर्घकाल तक वन के दुःख भी सहने पड़ेंगे—ऐसा सोचकर दशरथ अत्यन्त क्लेश का अनुभव करते हैं। कैकेयी की कटु-वाणी उद्दीपन का कार्य कर रही है।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता।
करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी।
जनु पाठीनु दीन बिनु पानी॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई।
मनहुँ घाय महुँ माहुर देई॥[१]

परकटे पक्षी के समान छटपटाते हुए राजा राम-राम रट रहे हैं। वे सत्यवादी है, जो वचन दे चुके अन्यथा नहीं हो सकते। अब तो यही उपाय रह गया है कि प्रातःकाल ही न हो और कोई राम को बताये ही नहीं कि क्या हुआ—

राम राम रट बिकल भुआलू।
जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई।
रामहि जाइ कहै जनि कोई॥[२]

ब्रह्मत्व के आरोप से तुलसीदास के अन्य प्रसंगों की मार्मिकता में भले ही कमी आ गयी हो, किन्तु राम के वियोग-जनित दुःख में अत्यन्त उत्कटता का दर्शन होता है। वे अपने प्रिय उपास्य से विरह का चित्रण अत्यन्त तन्मय होकर करते है। राम को विदा कर रिक्त हस्त लौटते हुए सुमंत्र की कैसी करुण स्थिति हो गयी है—

लोचन सजल डीठि भइ थोरी।
सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी।
जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥

१. मानस—२-३४-१-३।
२. वही—२-३६-१, २।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी।
मारसि मनहुँ पिता महतारी।।[1]

राम के विरह में कौशल्या, पुरजन, खग-मृग आदि भी दुःखी चित्रित किये गये हैं। राजा दशरथ की मृत्यु से भी अयोध्या की स्थिति भयावह-सी हो गयी है। लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग में तुलसीदास ने राम का शोक-परिपूर्ण चित्र अंकित किया है। पिता के वचनों को सत्य करने के लिए जिस राजकुमार ने राजसुख छोड़ा, पत्नी-हरण का कलंकित दुःख सह लिया किन्तु कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुआ, वही राजकुमार अपने छाया-सदृश भाई की पीड़ा न देख सका। वह यहाँ तक कह उठा—

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू।
पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।। ६-६०-६

अपने लिए पिता-माता को भी त्याग देने वाले ऐसे भाई के विना राम किस मुँह से अयोध्या लौटें। लोग क्या कहेंगे, स्त्री के लिए प्यारे भाई को खो दिया। जिस माँ ने पुत्र का हाथ पकड़कर उन्हें सौंपा था, उसको ही वे क्या उत्तर देंगे ?[2]

भरत को जब ज्ञात हुआ कि हनुमान को वाण से गिराकर उन्होंने मरणासन्न लक्ष्मण के उपचार में बाधा पहुँचायी है, तो उन्हें मर्मांतक कष्ट हुआ। अपने को सब अनर्थों की जड़ समझकर कितनी ग्लानि एवं यंत्रणा से विकल होकर उन्होंने ये वचन कहे हैं —

अहह दैव मैं कत जग जायउँ।
प्रभु के एकहु काज न आयउँ।। ६-५६-१

रौद्र-रस :

किसी प्रतिपक्षी, दुराचारी अथवा अपकारी व्यक्ति की दुश्चेष्टा से उत्पन्न क्रोध ही इस रस का मेरु-दण्ड होता है।[3] प्रायः शत्रु ही इसका आलम्बन होता है। रामायण में अपकार करने वाले पात्रों के प्रति क्रोध प्रदर्शित किया गया है। ये स्थल हैं—परशुराम-लक्ष्मण संवाद, भरत-आगमन पर लक्ष्मण का क्रोध, दशरथ के प्रति लक्ष्मण, राम के प्रति सीता, राक्षसों के प्रति राम एवं रावण के प्रति अंगद का क्रोध तामसिक है अतएव राक्षस एवं उद्धत मनुष्यों में ही रौद्र-रस अधिक दिखाया जाता है। रामायणों में सीता द्वारा प्रताड़ित होकर रावण क्रोध की व्यंजना करता है—

---

१. मानस —२-१४४-३।५।

२. मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु विपिन हिम आतप वाता।। ६-६०-४।
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।। ६-६०-११।
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब विधि सुखद परम हित जानी।।
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई।। ६-६०-१५, १६।

३. राजकुमार पाण्डेय—रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २६१।

(१) असमीया-रामायण का रावण सीता के नैराश्य-वचन सुनकर रक्त-चक्षु हो गया। उसकी जंघाएँ काँपने लगीं। हाथ पीसकर एवं क्रोध-पूर्वक देखता हुआ वह दसों सिर प्रताड़ित करता है—४१८३।

सीतार शुनिया हेन नैराश वचन।
क्रोधे दशग्रीव भैला रकत नयन॥
उरु दुइ कम्पावय पिशे हाते हात।
कटाक्षे क्रोधिया आन्चोरय दशमाथ॥

बँगला-रामायण में वह बीसों दन्त-पंक्तियाँ किटकिटा रहा है—

करे दुष्ट कुड़ि पाटि दन्त कड़मड़ि—१५२

उड़िया-रामायण में रावण नाक फुलाकर बीसों नेत्रों से देखता है—

नासा फुलाइण विंश लोचने चाहिँला। ५-६१

मानस में भी वह सीता पर रुष्ट होकर उसे तलवार से काटने के लिए उद्यत होता है। यहाँ क्रोध की बहुत सफल व्यंजना नहीं है।

(२) रावण के अतिरिक्त अन्य पात्रों में प्रधान हैं क्षत्रिय लक्ष्मण।

असमीया-रामायण में क्रुद्ध लक्ष्मण का रूप इस प्रकार है—

हेन शुनि क्रोधिलन्त लक्ष्मण प्रधान।
खाण्डाक झङ्कारि कम्पे तरतरि मान॥
तारा येन रकत नयन दुइ फुरे।
अविरल धारे येन मेघजल झुरे॥
भ्रकुटि कुटिल आखि भंगैल वदन।
रामक बुलिला महा कोप करि मन॥[1]

असमीया-रामायण के उत्तरकाण्ड में शंकरदेव ने सीता के क्रोध की अति मार्मिक व्यंजना की है। गर्भावस्था में राम ने सीता को निर्वासित किया था। भले ही उन्होंने राजधर्म का निर्वाह किया हो किन्तु पतिधर्म का निर्वाह वे नहीं कर सके थे। सीता की मानसिक स्थिति को पहचानकर तथा क्षुब्ध लोक-हृदय का पक्ष लेकर सीता के सात्त्विक क्रोध-युक्त वचन प्रस्तुत कर लेखक ने साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। सीता ने बहुत-कुछ कहा है, यहाँ केवल कुछ चुनी हुई पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

जाज्वल्य समान कोपे चित्त नोहे शान्त।
घने-घने कटाक्षे रामक लागि चान्त॥
भये लाजे जानकीक चाहिबे नोवारि।
थाकिला सङ्कोच भाव राघव मुरारि॥

---

१. असमीया-रामायण—१७५२ और १७५३ (कन्दली)।

एकचित्ते करिलोहो आहाङ्क से सेव ।
मइतो जानो स्वामीसे परम मोर देव ।।
दुष्टे दिले अपयश ताते आन त्रास ।
छले निया दियाइलंत आमाक निर्व्वास ।।
येवे लागे एरिवे आगते एरा मोक ।
गर्भते मारिवे चाइला दुइ गुटि पोक ।।
स्वामी हेन निदारुण कैत आछा शुनि ।
चाइबो इहान मुख मइ किवा गुणि ।।
बोलाइबो तोमार आरो घरर घरणी ।
तेबे मोत परे नाई नारी निलाजिनी ।।

(उग्र क्रोध के कारण सीता का चित्त शान्त नहीं है। वे तीक्ष्ण कटाक्षों से राम की ओर देख रही हैं। राम भय एवं लाज के कारण सीता की ओर देख नहीं पा रहे हैं। वे ससङ्कोच स्थित हैं। सीता ने कहा, मैंने एक चित्त से सेवा की है। मैंने यही समझा कि स्वामी मेरे परम देव हैं। दुष्ट ने अपयश दिया इसलिए डर गये और मुझसे छल करके निर्वासन दिया। इस प्रकार गर्भ में स्थित दो बच्चों को मारना चाहा। ऐसा कठोर स्वामी तो कहीं नहीं सुना। मैं कौन से गुण से इनका मुख देखूँगी। यदि मैं अब भी तुम्हारी गृहिणी कहलाऊँ तो मुझ से बढ़कर निर्लज्ज नारी कौन होगी !—७०४८-७१।)

दुर्वासा ऋषि के क्रोध का भी शंकरदेव ने वर्णन किया है, जिसमें हास्य का भी पुट है।

० **बँगला-रामायण** में क्रुद्धसर्प के समान फुफकारते लक्ष्मण का बार-बार वर्णन आता है—

प्रबोध ना माने बीर कालसर्प येन गर्ज्जे ।
सुमित्राकुमार शिशु घन-घन तर्ज्जे ।। १०५

० **उड़िया-रामायण** में भी लक्ष्मण क्रोध में अरुण-नेत्र होकर काँप रहे हैं। उनके अंग जल रहे हैं। लाठी के प्रहार से जिस प्रकार साँप गरजता है उसी प्रकार उनकी स्थिति है—

शुणि सउमित्रिर ये प्रज्वलित अंग ।
यष्ठि प्रहारे येसने गर्जइ पन्नग ।।[1]

० **मानस** में भी सात्त्विक क्रोध का उदाहरण लक्ष्मण में मिलता है। जनक के 'बीर विहीन मही' वाले शब्द किशोर लक्ष्मण सह नहीं पाये थे—

---

१. उड़िया-रामायण—६-२२२।

माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें।
रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥ १-२५१-८

चित्रकूट में भरत के आगमन को उनका आक्रमण समझकर भी यह वीर क्रुद्ध होकर जटाजूट बाँध शरसन्धान के लिए तत्पर हो गया था। उसके क्रोध से चारों ओर भय का वातावरण व्याप्त हो गया था।

राम-निन्दा सुनकर क्रुद्ध अंगद का रूप इस प्रकार चित्रित है—

कटकटान कपिकुंजर भारी।
दुहुँ भुज दण्ड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे।
चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥[1]

परशुराम क्रोध की साकार मूर्ति हैं। लक्ष्मण अनुभाव हैं एवं उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन। राम की विनय से क्रुद्ध परशुराम कुछ शांत हुए ही थे कि लक्ष्मण फिर मन ही मन कुछ कहकर मुस्करा पड़े। परशुराम फिर तड़प उठे, 'राम, तेरा भाई बड़ा पापी है।'

राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने।
कहि कछु लखनु बहुरि मुसकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी।
राम तोर भ्राता बड़ पापी॥[2]

वीर रस :

भरत मुनि ने वीर रस की गणना मुख्य रसों में की है। इसका स्थायी भाव उत्साह है। वीर रस और रौद्र रस का अंतर स्पष्ट करने में कुछ कठिनाई होती है, क्योंकि दोनों के आलम्बन शत्रु तथा उद्दीपन उनकी चेष्टाएँ होती हैं।

० **असमीया-रामायण** में रौद्र-रस का कई स्थलों पर वर्णन है किन्तु वीर रस का कोई अच्छा उदाहरण प्राप्य नहीं है। रावण को प्रथम-बार युद्ध-क्षेत्र में देखकर वे युद्ध के लिए सोत्साह सन्नद्ध होकर बोले थे—'स्त्री चोरा तोक आजि यमक पाठाइवो'—(स्त्री चोर तुझे आज यम के पास भेजूंगा—५३७२)।

बँगला-रामायण की स्थिति भी बहुत कुछ पूर्वोक्त रामायण जैसी ही है। रावण को प्रथम बार युद्ध-स्थल में देख राम का सारा रुद्ध क्षोभ उमड़ आया था। वे अपने भाई को आहत करने वाले रावण को देख युद्धोन्मत्त होकर कहते हैं—जिसके लिए मैंने अलंघ्य सागर बाँध लिया, जिसके कारण इतना दुःख पाया, जिस कारण तुम सब (वानरादि) को इतना दुःख दिया, आज उस परनारी-चोर को मार डालूंगा।

---

१. मानस—६-३१-३,४।
२. वही—१-२७६-५, ६।

यार लागि बान्धिलाम अलङ्घ्य सागरे ।
यार लागि एत दुःख पेयेछि अन्तरे ॥
यार लागि तो सवार दिन दुःख भरा ।
मारिया पाड़िव आजि परनारी-चोरा ॥[1]

किन्तु अनुभावादि के अभाव में वीर रस का पूर्ण परिपाक नहीं दिखायी पड़ता है ।

○ **उड़िया-रामायण** में राम के युद्धोत्साह का वर्णन है । वे पुलकित होकर धनुष[2] टंकारते हैं । इससे भी अच्छा उदाहरण है लक्ष्मण का । मूर्च्छा से जाग्रत होने पर शोकग्रस्त राम के अश्रु देखकर मेघनाद का छल स्मरण कर एवं सम्पूर्ण सेना के विकल-वचन सुनकर लक्ष्मण के नेत्र लाल हो गये । उनका शरीर काँप उठा । वे बोले, मैं क्षत्रिय-पुत्र हुँ । हानि-लाभ तो लगा ही रहता है, ऐसा पुराणों में भी लिखा है ।

शुणिण लक्ष्मण ये अरुण वर्ण्ण नेत्र ।
थरहर होइण कम्पइ तार गात्र ॥
क्षत्रियर पुत्र मुंहि मुरुछिवि रणे ।
अपचय उपचय अछइ पुराणे ॥[3]

इन्द्रजीत का युद्ध अपने भाग में लेने के लिए वे क्रुद्ध होकर बार-बार प्रतिज्ञा करने लगे । इस बार भेंट होने पर वह प्राण लेकर न जा सकेगा । चन्द्र-सूर्य दोनों ही इस कथन के साक्षी रहें—

इन्द्रजित युद्ध ये रहिला मोर भागे ।
पुण पुण प्रतिज्ञा करइ वीर रागे ॥
एवे भेटिले कि सेहि यिब प्राण घेनि ।
ए कथाकु साक्षी थाअ चन्द्रसूर्य्य वेनि ॥[4]

○ **मानस** में वीर रस के अनेक उदाहरण हैं । सात्त्विक क्रोधी स्वभाव के लक्ष्मण क्रोध की व्यंजना के साथ ही युद्धोत्साह का भी परिचय दे जाते हैं । भरत को ससैन्य आता जान लक्ष्मण का उत्साह देखने योग्य है--

उठि कर जोरि रजायसु मागा ।
मनहुँ बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा ।
साजि सरासनु सायकु हाथा ॥

---

१. बँगला-रामा० ३८३

२. शुणि रघुनाथ करे उछुड़िले धनु । गुण टङ्कारिण पुलकाइले ये तनु ॥ ६-४५ ।

३. उ० रा०—६-७५ ।

४. वही—६-७५ ।

आजु राम सेवक जसु लेऊँ ।
भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥[1]

भरत से लड़ने के लिए निषादराज की सेना का उत्साह अत्यन्त सुन्दर है—

अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं ।
फरसा बाँस सेल सम करहीं ॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े ।
कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े ॥[2]

सेवक का कष्ट सुनकर राम के हृदय में करुणा-जनित वीरोचित उत्साह जाग्रत हुआ था और वे शत्रु का वध करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हुए थे ।

सुनि सेवक दुख दीनदयाला ।
फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला ॥
सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ॥ ४-५-१४ एवं ४-६

हास्य :

वेश-विन्यास, वाणी, चेष्टा आदि की विकृति से हास्य की सृष्टि होती है ।

० असमीया-रामायण के उत्तरकाण्ड में भोजन-भट्ट दुर्वासा की चेष्टाओं से हास्य प्रस्तुत किया गया है । अनेक पकवान खा जाने के कारण उनका पेट फूलकर ढोल हो गया है । फिर भी लोभ-वश खाये ही जा रहे है, पेट मलते जाते है । बोलने के साथ ही पेट से खाद्य-वस्तुएँ निकलने लगीं । उसाँस नहीं ली जाती, गरदन लटक गयी, पेट सुड़सुड़ा रहा है, डकारें आ रही है । पेट फटा जा रहा है । कौपीन ढीला कर रहे हैं ।

घन क्षीर क्षीरिचा खाइलन्त लागे माने ।
नधरय पेट पिठा पना परमाने ॥
दधि दुग्ध घृत घोले भैल गण्डगोल ।
ओफन्दिल उदर देखिय येन ढोल ॥
लोभत भुञ्जन्त तथापि तो जाण्टि जाण्टि ।
नपारन्त राखिबे मातन्ते आसे बाण्टि ॥
नपान्त उसास आति ओलमिल घार ।
शुइ शुइ पेट कतो तोलन्त उगार ॥
टन टन पेट कतो ढिलान्त कपिन । छंद ७२४९—५१

० बँगला-रामायण के लंकाकाण्ड में रावण-विजय के उपरान्त वानरों को भोज

---

१. मानस—२-२२९-१—३ ।
२. वही—२-१९०-५, ६ ।

दिया गया। उस समय उनको एक चरपरा लड्डू (झाल लाडू) परोस दिया गया, जिसे गाल भर खाते ही आँखों से आँसू गिरने लगे। कोई गला खँखारता और कोई थू-थू करता था।[1] लेखक ने नैषध-चरित से इस परिहास की प्रेरणा ली है। इसका वर्णन कथाओं के अध्ययन में हुआ है।

०पूर्वांचलीय रामायणों में वन-मध्य पले एवं नारी से अपरिचित ऋष्य-शृंग को वेश्याओं द्वारा मूर्ख बनाते हुए दिखाया गया है। **उड़िया-रामायण** में इसका अपेक्षाकृत अधिक हास्यमय वर्णन है।[2] गोंड-गोपाल राम द्वारा प्रदत्त मणिजड़ित अँगूठी के नग को किसी वृक्ष का फल समझकर उसे कोई मूल्य नहीं देता। चेष्टा-व्यवहार आदि की विकृति के लिए हास्य का उदाहरण अयोध्याकाण्ड में मिलता है। भरद्वाज के आश्रम में भरत की सेना और पुरवासियों का अच्छा समादर हुआ। मादक-वस्तुओं के सेवन से महावत लोग घोड़ों की पीठ पर जा बैठे और घुड़सवार हाथियों की पीठ पर—

महुन्त याइ घोड़ार पिठिरे ये बसि।
हाती पिठिरे ये बारुआल वसे आसि॥ २-७६

० **मानस** के लेखक तुलसीदास इन सभी रामायण-लेखकों की अपेक्षा अधिक गंभीर है किन्तु हास्य के प्रसंग भी इन्हीं की रामायण में अधिक मिलते हैं। श्री राज बहादुर लमगोड़ा ने तो मानस के हास्य पर पूरा ग्रंथ ही लिख डाला है। व्यंग एवं वक्रोक्ति के चमत्कार से युक्त हास्य के उदाहरण मानस के संवादों में अनेक मिल जाएँगे।

परशुराम वैसे ही चिढ़े हुए हैं और लक्ष्मण बन-बन कर उन पर व्यंग कर रहे हैं—

टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने।
बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥ १-२७७-२

नारद-मोह प्रसंग में नारद की आकुल-स्थिति चित्रित कर हास्य की सृष्टि की गयी है। नारद समझते हैं विष्णु ने उन्हें अपना रूप दिया है, अतएव वे बड़े आत्म-विश्वास के साथ सभा में बैठे हैं। स्वयंवरा कन्या इन्हें भूलकर भी नहीं देखती। ये अत्यन्त आकुल हो होकर उचकते ही रह जाते है। इन्हें क्या पता कि

---

१. बँगला-रामायण—४४६।

२. ऋष्यशृंग वेश्याओं के वक्ष से वक्ष लगाकर उनके स्तनों को ठेल कर तथा हँस-हँस कर पूछते हैं—'यह अपूर्व द्रव्य हमारे यहाँ तो नहीं पाया जाता। ऐसा अच्छा पदार्थ तुमने कहाँ पाया ?'
हिया कु हिया लगाइ उरज ठेसिला। हस हस होइ मुनि वाक्य पचारिला॥
एहि त अपूर्व द्रव्य आम्भ देशे नाहिँ। एड़े भल पदार्थ पाइल तुम्भे काहिँ। १-२१।

विष्णु ने बन्दर का रूप दिया है। हर-गण इस तथ्य से परिचित होकर रस ले रहे हैं।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली ।
सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली ।।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।
देखि दसा हर गन मुसुकाहीं ।। १-१३४-१, २ मा०

शंकर की वेष-भूषा को लेकर ऐसे हास्य की सृष्टि की गयी है, जिसका रस वह भी लेता है जोकि स्वयं ही हास्य का आलम्बन है।

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं ।
हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं ।। १-९२-३

अज्ञता एवं वेष-विकृति से उत्पन्न हास्य वानरों की चेष्टाओं में मिलता है। वे मणि को फल समझकर खाने का प्रयास कर थूक देते हैं। विभीषण द्वारा पट-भूषणों को उल्टा-सीधा पहनकर वे राम के सामने जा पहुँचे। राम उन्हें देख-देख वात्सल्य-भाव से बार-बार हँस पड़ते हैं।[1]

रामायणों में शेष-रसों का भी यत्र-तत्र वर्णन मिल जाता है। अनेक स्थलों पर रसाभास, भावशबलता एवं संचारी आदि के भी सुन्दर उदाहरण मिल जाएँगे। भाव-सौन्दर्य के अंकन में तुलसीदास को ही अधिक सफलता मिली है। इसमें सन्देह नहीं कि उड़िया लेखक में भी अद्भुत क्षमता है किन्तु वह सबकी-सब या तो नारी के मांसल-सौन्दर्य के चित्रण में व्यय हो गयी अथवा अपनी बहुज्ञता का परिचय देने में। बँगला-रामायण में सहज लोककथा के रस जैसा सौन्दर्य और असमीया-रामायण में संयमित संक्षिप्त शैली अपनायी गयी है। असमीया-रामायण में साहित्यिक सौन्दर्य है किन्तु हम कुछ अधिक की आशा कर सकते हैं। तुलसी पर राम-भक्ति का रंग गहरा है किन्तु हम पुनः कहेंगे कि वे रस-चित्रण में भी बेजोड़ हैं।

असमीया, बँगला एवं मानस में शान्तरस-मिश्रित भक्तिरस की प्रधानता है, एवं उड़िया में शृंगार-परक भक्ति की, विशुद्ध शान्तरस में पर्यवसान तो किसी का नहीं देखा गया।

प्रकृति-चित्रण

मानस की सभ्यता का परिवेश कृत्रिम है और प्रकृति का रूप है सहज स्वाभाविक। मानस प्रकृति का ही एक अंग है जो स्वयं उस पर हावी होना चाहता है।

---

१. जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ।। ६-११६-७
भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए ।।
नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ।। ६-११७-१, २ ।

प्रकृति से उसका सम्बन्ध अनादिकाल से है और वह अनन्तकाल तक रहेगा। आज भी प्रकृति के नाना रूपों को देखने के लिए वह आतुर रहता है। ध्रुवप्रदेश, मरुस्थल, पर्वत के उत्तुंग शृंग, महासागर की गरजती तरंगें एवं रक्तपिपासु जंतुओं से समाकीर्ण दुर्गम वन उसे बार-बार आमंत्रित करते हैं। उनके दुर्निवार आकर्षण को वह कहाँ टाल पाता है।

साहित्य में या तो मानव की अन्तःप्रकृति का वर्णन होता है अथवा प्रायः वाह्य-प्रकृति के इसी निराडम्बर-सौन्दर्य का, जोकि देश एवं ऋतु के अनुसार विविध-रूपों की अभिव्यक्ति करता है।

प्राचीन-काल में वन-कान्तार प्रदेशों का प्राचुर्य था। जनावास सघन न था। मानव प्रकृति की उन्मुक्त-क्रोड़ में स्वच्छन्द विहार करता था। वह सच्चे अर्थों में धरती का पुत्र था। ऋषि लोग तो प्रायः ही सघन वनों में रहा करते थे। अनेक वनस्पतियों एवं नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं से जनता का परिचय रहता था। आयुर्वेद के ग्रंथों में वर्णित विभिन्न वनस्पतियों के रूप, रंग, गुण आदि के विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे पूर्वजों का प्रकृति-निरीक्षण कितना सूक्ष्म था, केवल वैदिक ऋषि ही उषा, सूर्य, मरुत् आदि प्रकृति के नाना रूपों से अभिभूत रहे हों सो बात नहीं है, बिजली की कड़क एवं चमक शोभित गरजते मेघ, मयूरों का नृत्य, पपीहे की पुकार, शरद् का स्वच्छ हास, वसंत का विकास एवं धरा का पुष्प-संभार प्रभृति प्रकृति-व्यापार आदि रामायणकाल से लेकर मध्यकाल तक के संस्कृत-कवियों को चकित, छकित, प्रमुदित एवं प्रेरित करते आये है।[1]

समस्त भाषा-ग्रंथों में ही न तो संस्कृत-साहित्य जैसा संश्लिष्ट-वर्णन देखने में आता है और न यूरोप का रोमांसवादी एवं ऐन्द्रिक-वर्णन ही। इस प्रकार के चित्रण का विकास तो आधुनिक-युग में हुआ। जिन कवियों ने कविता को राज-सभाओं की चेरी बनाकर राजस्तुति एवं नारी-सौदर्य-वर्णन तक ही अपने को सीमित न रखा, उन्होंने प्रकृति के स्वतंत्र-रूप के दर्शन कभी-कभी कर लिये थे। ऐसे कवि प्रायः भक्त-कवि रहे हैं और इनका ध्यान भी स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण की ओर न था। अपने आराध्य के गुण अथवा लीला आदि के विकास के लिए ही उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया था, अन्यथा परम्परानुमोदन करते हुए उद्दीपन एवं अलंकरण के लिए ही उन्होंने प्रकृति को प्रस्तुत किया है।

आलम्बन-स्वरूप-चित्रण—वाल्मीकि की रामायण शताब्दियों-पूर्व के कानन-सौन्दर्य को हमारे सामने प्रस्तुत कर देती है। विभिन्न ऋतुओं के सौन्दर्य, कुहरे से ढकी नदियों, मरकताभ जलराशि, शीतल ओसबिन्दुओं को छूकर सूँड़ सिकोड़ते हुए

१. कृत्तिवास बँगला-रामायण और रामचरितमानस, पृ० २९४।

हाथी, सेना के आगमन से भयभीत जन्तुओं आदि का चित्रमय वर्णन मानो हमें सच ही त्रेतायुग की वनस्थली में उपस्थित कर देता है।

भाषा-रामायणकारों की इधर अभिरुचि नहीं रही। केवल उड़िया-रामायण-कार ने अवश्य ही वाल्मीकि के अनुसरण की चेष्टा की है। असमीया-रामायण में राम सीता को अनेक पशु-पक्षी दिखा कर उनकी तुलना सीता के अंगों से करते हैं। वे चित्रकूट के शृंगों का वर्णन इन शब्दों में करते हैं—

चित्रकूट पर्व्वतक देखियोक सीता।
पका आमे गौर वर्ण करिल चौमिता॥
ओपरत मेघ येन देखिय शोभन।
वाढ़िल निकलि येन पृथिवीर तन॥
शिखर उपरे मन्दाकिनी शुक्ल जल।
तनक ढाकिया येन वस्त्रर आञ्चल॥

(सीता, चित्रकूट पर्वत देखो, यह पके आमों से चतुर्दिक् को गौर वर्ण किये हैं। इसके ऊपर मेघ इस प्रकार शोभा पा रहा है, मानो पृथ्वी का स्तन आगे बढ़ आया हो। शिखर के ऊपर मन्दाकिनी का जल ऐसा दिखायी पड़ता है, जैसे कि वस्त्रांचल स्तन को ढाँक लेता है—२०८४-८५।)

० बँगला-रामायण में प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण बहुत कम है। जहाँ है भी वह महत्त्वहीन है।

मन्द मन्द गन्धवह वहे सुललित।
कोकिल पञ्चम स्वरे गाय कुहु गीत॥
मधुकर मधुकरी झङ्कारे कानने।
अप्सरारा नृत्य करे आनन्दित मने॥ पृ० १२८

० उड़िया-रामायण में लेखक ने स्वभावानुसार प्रकृति का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। अनेक स्थलों पर पशु, पक्षी, फूल, वृक्षों आदि की लम्बी सूची प्रस्तुत की गयी है, किन्तु साथ ही अनेक स्थलों पर स्वाभाविक वर्णन है।

काहिँ पुण अजगर पिअइ पवन।
काहिँ हस्ती दिअइ ये कण्ठ गरजन॥
समस्त फल वृक्षरे पाचिण झड़न्ति।
शुखिला पत्रमाने वृक्षरु झडियान्ति॥
बाउँश वणु जनमु अछन्त ये मिशा।
केतकी बुदा तलरे शोइछन्त शशा॥
काठकटा बाड्किया हाणन्ति छड़ि गछ।
पलान्ति जम्बुके ये चाहिँण पछ पछ॥

बेलवृक्ष उहाड़ रे मयुर बोबान्ति ।
चुत बने बसिण कोकिल राब द्यन्त ॥
सिहङ्कर खोज ये अछइ काहिँ पड़ि ।
निम्वफलमान काहिँ पड़ि अछि झड़ि ॥

(कहीं अजगर पवन पी रहा है, कहीं हाथी चिंघाड़ रहा है। पके हुए फल वृक्षों से गिर रहे हैं। सूखे पत्र वृक्षों से झर रहे हैं। वाँसों के वन में मच्छर उत्पन्न हो गये हैं। केतकी की झाड़ियों में खरगोश सो रहे हैं। कठफोड़वा पक्षी पेड़ पर तिरछे वैठे हुए प्रहार कर रहे हैं, जिसे सुनकर गीदड़ (मुड़ मुड़कर) पीछे की ओर देखते हुए भाग रहे हैं। वेलवृक्ष पर मोर कुहक रहे हैं। आम्रवन में बैठी हुई कोयल शब्द कर रही हैं। कहीं-कहीं सिंह के पद-चिह्न अंकित है, कहीं नीम फल विछे हुए हैं—४-१०)

उड़िया-लेखक ने वसन्त, शरत् और वर्षा ऋतुओं के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। गरजते हुए समुद्र के ऊपर से वादलों का उठना। चन्द्रमा और ताराओं का धूसर कान्ति होना आदि दिखाकर आषाढ़ मास की स्थिति का इस प्रकार वर्णन है

आषाढ़ मास प्रवेश होइलाक यहुँ ।
झिमिझिमि करिण से वरषइ तहुँ ॥
विजुलि देखाइण मारइ घड़घड़ि ।
कि जाणि पर्वत, शृंग पड़िवकु झड़ि ॥

(जैसे ही आषाढ़ मास का प्रवेश हुआ, रिमझिम वर्षा प्रारम्भ हो गयी। विजली चमक-चमक कर तड़तड़ाने लगी। कौन जाने पर्वत के शृंग न उखड़ पड़ें।)
—४-४३

गंगा नदी का वर्णन कर लेखक ने संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है। पृथ्वी सुन्दरी गंगा की साड़ी पहने है। इस साड़ी में फूलपत्ती एवं तटों का सुन्दर वर्णन है।[1]

० प्रकृति के मुक्त-सौन्दर्य का वर्णन **गोस्वामी जी** को अभीष्ट न था। इष्ट-देव राम के क्रियाकलापों से सम्वन्धित प्रकृति के रूप को ही उन्होंने यत्र-तत्र उपस्थित किया है। वालमीकि अथवा बलरामदास के समान उन्होंने विस्तृत चित्रण नहीं किये हैं।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं ।
मनहुँ निसान विविध विधि वाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन ।
कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥[2]

इस प्रकार की पंक्तियों में उनके प्रकृति-प्रेम का विशेष परिचय नहीं मिलता,

---

१. उड़िया-रामायण—१-१०६ ।
२. मानस—२-२३५-५,६ ।

किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्हें प्रकृति-सौन्दर्य की अनुभूति नहीं थी एवं वे सौन्दर्य-परिप्लुत वर्णन में अक्षम थे। किष्किन्धाकाण्ड के वर्षा-शरद् वर्णन की अर्द्धालियों में यदि प्रथम चरणों को ही पढ़ा जाए तो चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत हो जाएगा।

मोरगण का बादलों को देख नाचना, बादलों का झुक-झुक कर बरसना, शिखरों का जल-बिन्दुओं की चोटें सहना, क्षुद्र नद-नदियों का अल्पवृष्टि से ही उमड़ पड़ना, पृथ्वी के स्पर्श से वृष्टिजल का मटमैला होना, चारों ओर से सिमटकर जल का सरोवरों में भरना—आदि अनेक व्यापार हमें मानस में मिल जाएँगे।

उद्दीपन-स्वरूप चित्रण—मानव-हृदय में उठने वाले सुख-दुःख-पूर्ण भावों पर परिवेश का अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। जून की दुपहरी में प्यास से सताये हुए नायक-नायिका के हृदयों में सहारा जैसे मरुस्थल के प्राणशोषक ववण्डरों के मध्य रति-भाव की **उद्दीप्ति** नहीं होगी, उसके लिए मानस के पुष्पवाटिका जैसा वातावरण अनुकूल रहेगा। इसी प्रकार भय के उद्दीपन के लिए, रात्रि का घोर अन्धकार, निर्जनता, उल्लू और सियारों के स्वर अधिक सहायक रहेंगे। आज भी कथा-साहित्य के नये आयामों में भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल वातावरण की सहायता ली जाती है। भारतीय-साहित्य में शृंगार-रस के संयोग एवं वियोग पक्ष के चित्रण में प्रकृति के उद्दीपन-रूप का चित्रण हुआ है। साहित्य में ऐसी परम्परा चल पड़ी कि संयोग और वियोग पक्ष के उद्दीपनों के लिए बँधे-बँधाये चित्रण होने लगे, प्रायः गिने-गिनाये प्रकृति-उपकरणों के नाम प्रस्तुत किये जाने लगे।

भाषा-रामायणों में भी इस परम्परा का निर्वाह हुआ, किन्तु बहुत कम मात्रा में।

असमीया-रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में विरही राम की स्थिति का चित्रण निम्न पंक्तियों में है—

मेघर गर्ज्जन शुनि मैरा करे नाद।
सीताक सुमरि रामे करन्त विषाद॥
स्वभावे वरिषा काले काम अतिरेक।
एक गोटा दिने याय एक वरिषेक॥[1]

बँगला-रामायण के राम संयोग-कालीन सुखदायी-प्रकृति का दुःखदायी रूप में बदल जाने का वर्णन सीता से करते हैं।

सुधाकरे ज्ञान करिताम दिवाकर।
ताप भये ताहार ना हताम गोचर॥

---

१. अस०—३७०१-१। मैरा शब्द का अर्थ मयूर है, शेष स्पष्ट है।

भ्रमर झङ्कार आर कोकिलेर ध्वनि ।
शुनिते हइत ज्ञान दंशे येन फणि ॥[1]

उड़िया-रामायण :

सर्बदा हिं से बनरे बसइ बसन्त ।
श्रीरामङ्कु घारइ ये विषम ज्वरत ॥

(उस वन में सर्वदा वसन्त रहता और वह श्रीराम को विषमज्वर से पीड़ित करता—३-५ ।)

मानस में नारद को तपभ्रष्ट करने के लिए काम ने प्रकृति में जो नवीन परिवर्तन कर दिये थे, वे रति-भाव उद्दीप्त करने वाले थे ।[2] पुष्प-वाटिका का वातावरण भी राम और सीता जैसे किशोर-किशोरी के लिए उद्दीपक बन गया था । लता की ओट में छिपे हुए अथवा उसे विलग कर प्रकट होते हुए राम को देख सीता विभोर हो जाती हैं । वे मृग, पक्षी आदि को देखने के बहाने राम की छवि देखती जाती हैं ।

सीता के वियोग में राम बादलों का गर्जन सुनकर डर जाया करते थे । सीता से मिलकर उन्होंने सुखदायक प्रकृति को विरहकाल में दुःखदायक रूप में परिवर्तित हो जाने का वर्णन किया है ।

कहेउ राम वियोग तव सीता ।
मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥
नव तरु किसलय मनहुँ कसानू ।
कालनिसा सिम निस ससि भानू ॥ ५-१४-१,२

अलंकरण-स्वरूप प्रकृति-चित्रण—इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में भी प्रधानता भावों अथवा वर्ण्य-विषय की ही रहती है, उन्हें ही अधिक स्पष्ट करने के लिए लेखक प्रकृति के उपकरणों की सहायता लेता है । भारत में किसी न किसी रूप में प्रायः सर्वत्र उपलब्ध कमल, कोकिल, नाग, विम्ब, भ्रमर, मृग, कदली, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि के उपमानों के रूप में प्रकृति का वर्णन हुआ है ।

यदि कवि में सूक्ष्म-निरीक्षण की शक्ति है तो इस प्रकार के वर्णन में भी प्रकृति चित्रण की दक्षता का वह परिचय दे सकता है । विषय अथवा भाव को प्रधानता देता हुआ भी वह उनके लिए ऐसे उपमान जुटा सकता है जिससे उसका अथवा पाठकों का

---

१. (मैं चन्द्रमा को सूर्य समझता था और उसके ताप के भय से सामने नहीं आता था । भ्रमर की झंकार और कोयल की ध्वनि सुनने पर ऐसा लगता था मानो सर्प-दंशन कर रहा हो—पृ० ४४५ ।)

२. कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा । कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा ॥
चली सुहावनि बिबिध बयारी । काम कृसानु बढ़ावनि हारी ॥ १-१२५-२, ३ ।

निकट परिचय हो। वाल्मीकि-रामायण में इस प्रकार के वर्णन प्रचुर संख्या में मिल जाएँगे। अन्यथा लेखक परम्परानुगत उपमानों की सूची निर्लिप्त-भाव से प्रस्तुत करेगा, जोकि पाठक के लिए नीरस ही होगी। इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण का वर्णन इसी अध्याय में अन्यत्र हुआ है, इसलिए यहाँ इतना ही पर्याप्त है।

प्रकृति-चित्रण के अन्य प्रकार—अन्य कई दृष्टियों से भी प्रकृति का अध्ययन किया जा सकता है, किन्तु सभी आलोच्य-रामायणों में एक साथ उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती, अतएव उनका तुलनात्मक-वर्णन कठिन है।

गोस्वामी तुलसीदास ने प्रकृति में **सहानुभूति का आभास** पाया है। समस्त जग को सिया-राम मय मानने वाले गोस्वामी जी को राम की उपस्थिति एवं संस्पर्श से प्रकृति का कण-कण सप्राण एवं संवेदन-शील दिखायी पड़ता है।[1] सुकुमार राम को धूप से बचाने के लिए मेघ छाया करते फिरते है।[2] राम के प्रिय होने से भरत के प्रति प्रकृति उनसे भी अधिक सहानुभूति प्रकट करती है।

कोमल चरन चलत बिनु पनहीं।
भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥
कुस कंटक काँकरी कुराईं।
कटुक कठोर कुवस्तु दुराईं॥ २-३१०-४,५

राम एवं राम के परिवार से साथ सहानुभूति होने के कारण पशु-पक्षी भोजन करना छोड़ देते हैं।[3] सीता-हरण के समय भी उनके दुःख से चराचर जीव दुःखी दिखाये गये हैं।

सीता कै विलाप सुन भारी।
भए चराचर जीव दुखारी॥ ३-२८-६

बँगला-रामायण में भी प्रकृति यत्र-तत्र मानव के साथ सहानुभूति रखती दिखायी गयी है। कमल-नयन राम को रोता देख सभी वन्य पशु-पक्षी रो उठते हैं—

कान्दिया विकल राम जले भासे आँखि।
रामेर क्रन्दने कान्दे वन्य पशु पाखी॥ पृ० १५८

उड़िया-रामायण में विरही राम के प्रति तरु-लता रुदन करते हैं, वृक्ष पत्र त्यागते हैं—

---

१. जब तें आइ रहे रघुनायकु। तबतें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥
३-१३६-५,६।

२. जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥ ३-६-५।

३. पशु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन विचारू॥ २-२७६-८।

१. राम वन यान्ते तरु लताए रोदन्ति ।

२. राम वन यान्ते वृक्ष पत्र ये झड़इ ।—२-४४

उपदेशात्मक प्रकृति-चित्रण—गोस्वामी तुलसीदास ने भागवत से प्रेरणा लेकर प्रकृति-चित्रण में उपदेशात्मकता का मिश्रण कर दिया। अर्धाली के एक चरण में प्रकृति का सुन्दर निरीक्षण रहता है एवं द्वितीय में कोई चुभती हुई सूक्ति वर्णित होती है । दोनों का ही महत्त्व है। उनकी सूक्तियाँ शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों को कंठस्थ हैं। इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण उनके कलाकार तथा सुधारक-संत के गुणों का समन्वय-सा करता है।

गाँवों में आज भी वर्षा होने पर लोग बड़ी रुचि के साथ किष्किन्धाकाण्ड का वर्षा-वर्णन गाते हैं। किसी पर आक्षेप करते समय अथवा नीतिकथन के अवसर पर ऐसे छन्द पढ़ते हैं—

दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ।
जथा नवहिं बुद्ध विद्या पाएँ॥ ४-१३-२, ३

आज भी आगे बढ़-बढ़ कर बात करने वाली नारी को तिलमिला देने के लिए निम्न अर्धाली का प्रयोग देखा जाता है—

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं ।
जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥ ४-१४-८

फिर भी शुद्ध प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से उपदेशात्मकता बाधक तो है ही।

संवाद-सौन्दर्य

संवाद नाटक का प्राण है। संवाद के द्वारा ही नाटक की कथा का विकास होता है, इसके साथ ही पात्रों की प्रकृति, उनके चरित्र आदि का भी परिचय मिलता है। चरित्र-चित्रण के लिए पात्रों के संवाद से बढ़कर और कोई अच्छा साधन नहीं है। इसीलिए काव्यों में भी संवाद को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कथा-साहित्य भी इस तत्त्व की उपेक्षा नहीं कर सका है। संवाद प्रायः दो या अधिक पात्रों के मध्य होता है और प्रायः पारस्परिक-कथनों की काट में तर्क-सहित प्रस्तुत किया जाता है।

संवाद के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा पात्र की प्रकृति के अनुकूल हो, उसमें संक्षिप्तता हो, वह पात्र के अन्तर्मन को स्पष्ट करता हो एवं वह सहज और रोचक हो।

जिस संवाद में पात्र के प्रेम, क्रोध, घृणा, व्यंग आदि का जितना सशक्त अभिव्यंजन होगा, वह संवाद उतना ही अधिक सफल होगा।

रामायणों में कई स्थल ऐसे हैं जहाँ पात्र परस्पर कथोपकथन करते हैं।

निकट परिचय हो। वाल्मीकि-रामायण में इस प्रकार के वर्णन प्रचुर संख्या में मिल जाएँगे। अन्यथा लेखक परम्परानुगत उपमानों की सूची निर्लिप्त-भाव से प्रस्तुत करेगा, जोकि पाठक के लिए नीरस ही होगी। इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण का वर्णन इसी अध्याय में अन्यत्र हुआ है, इसलिए यहाँ इतना ही पर्याप्त है।

प्रकृति-चित्रण के अन्य प्रकार—अन्य कई दृष्टियों से भी प्रकृति का अध्ययन किया जा सकता है, किन्तु सभी आलोच्य-रामायणों में एक साथ उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती, अतएव उनका तुलनात्मक-वर्णन कठिन है।

गोस्वामी तुलसीदास ने प्रकृति में **सहानुभूति का आभास** पाया है। समस्त जग को सिया-राम मय मानने वाले गोस्वामी जी को राम की उपस्थिति एवं संस्पर्श से प्रकृति का कण-कण सप्राण एवं संवेदन-शील दिखायी पड़ता है।[1] सुकुमार राम को धूप से बचाने के लिए मेघ छाया करते फिरते हैं।[2] राम के प्रिय होने से भरत के प्रति प्रकृति उनसे भी अधिक सहानुभूति प्रकट करती है।

कोमल चरन चलत बिनु पनहीं।
भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥
कुस कंटक काँकरी कुराईं।
कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥ २-३१०-४,५

राम एवं राम के परिवार से साथ सहानुभूति होने के कारण पशु-पक्षी भोजन करना छोड़ देते हैं।[3] सीता-हरण के समय भी उनके दुःख से चराचर जीव दुःखी दिखाये गये हैं।

सीता कै बिलाप सुन भारीं।
भए चराचर जीव दुखारी॥ ३-२८-६

बँगला-रामायण में भी प्रकृति यत्र-तत्र मानव के साथ सहानुभूति रखती दिखायी गयी है। कमल-नयन राम को रोता देख सभी वन्य पशु-पक्षी रो उठते हैं—

कान्दिया बिकल राम जले भासे आँखि।
रामेर क्रन्दने कान्दे वन्य पशु पाखी॥ पृ० १५८

उड़िया-रामायण में विरही राम के प्रति तरु-लता रुदन करते हैं, वृक्ष पत्र त्यागते हैं—

---

१. जब तें आइ रहे रघुनायकु। तबतें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥
३-१३६-५,६।

२. जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥ ३-६-५।

३. पशु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥ २-२७६-८।

१. राम वन यान्ते तरु लताए रोदन्ति ।

२. राम वन यान्ते वृक्ष पत्र ये झड़इ ।—२-४४

उपदेशात्मक प्रकृति-चित्रण—गोस्वामी तुलसीदास ने भागवत से प्रेरणा लेकर प्रकृति-चित्रण में उपदेशात्मकता का मिश्रण कर दिया। अर्धाली के एक चरण में प्रकृति का सुन्दर निरीक्षण रहता है एवं द्वितीय में कोई चुभती हुई सूक्ति वर्णित होती है। दोनों का ही महत्त्व है। उनकी सूक्तियाँ शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों को कंठस्थ हैं। इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण उनके कलाकार तथा सुधारक-संत के गुणों का समन्वय-सा करता है।

गाँवों में आज भी वर्षा होने पर लोग बड़ी रुचि के साथ किष्किन्धाकाण्ड का वर्षा-वर्णन गाते हैं। किसी पर आक्षेप करते समय अथवा नीतिकथन के अवसर पर ऐसे छन्द पढ़ते हैं—

दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥ ४-१३-२, ३

आज भी आगे बढ़-बढ़ कर बात करने वाली नारी को तिलमिला देने के लिए निम्न अर्धाली का प्रयोग देखा जाता है—

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं।
जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥ ४-१४-८

फिर भी शुद्ध प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से उपदेशात्मकता बाधक तो है ही।

संवाद-सौन्दर्य

संवाद नाटक का प्राण है। संवाद के द्वारा ही नाटक की कथा का विकास होता है, इसके साथ ही पात्रों की प्रकृति, उनके चरित्र आदि का भी परिचय मिलता है। चरित्र-चित्रण के लिए पात्रों के संवाद से बढ़कर और कोई अच्छा साधन नहीं है। इसीलिए काव्यों में भी संवाद को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कथा-साहित्य भी इस तत्त्व की उपेक्षा नहीं कर सका है। संवाद प्रायः दो या अधिक पात्रों के मध्य होता है और प्रायः पारस्परिक-कथनों की काट में तर्क-सहित प्रस्तुत किया जाता है।

संवाद के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा पात्र की प्रकृति के अनुकूल हो, उसमें संक्षिप्तता हो, वह पात्र के अन्तर्मन को स्पष्ट करता हो एवं वह सहज और रोचक हो।

जिस संवाद में पात्र के प्रेम, क्रोध, घृणा, व्यंग आदि का जितना सशक्त अभिव्यंजन होगा, वह संवाद उतना ही अधिक सफल होगा।

रामायणों में कई स्थल ऐसे हैं जहाँ पात्र परस्पर कथोपकथन करते हैं।

असमीया-रामायण के सीता-रावण-संवाद में पारस्परिक क्रोध एवं मान ही सीता का घृणाभाव व्यक्त है।

हाओरे रावण बर्ब्बर निशाचर।
अविलम्बे याइबाक चाहा यम घर॥
रामर घरणी मोक भजिबाक चाह।
मरिबाक लागि कालकूट विष खाह॥[1]

रावण भी बिगड़कर सीता को पापिष्ठी कहता है और सिद्धान्त बताने के लिए थप्पड़ मारकर उसके दाँत झाड़ देने को तत्पर है—

हाओरे पापिष्ठी ! मोक हैनय सिद्धान्त।
चवरर चोटे तोर सारि पेरो दान्त॥ ३१८३

आगे सुन्दरकाण्ड में सीता रावण के असत् प्रस्ताव को सुनकर घोर घृणा से क्षुब्ध होकर कहती है—मुझे काम-भाव से देखते हुए, रे रावण, तेरी आँखें भी न निकल पड़ीं। राम की भार्या को लघु वचन बोलते समय तेरी जीभ भी न कट गयी।[2]

इसी रामायण में हमें अंगद-रावण-वार्ता एवं कुंभकर्ण-रावण के संवादों में सुन्दर तर्कों के प्रमाण भी मिल जाएँगे। इन्द्रजीत-वध से क्षुब्ध रावण सीता को काटने के लिए प्रस्तुत है। उसका मंत्री अरविन्द बाधा देकर जैसे तर्क उपस्थित करता है उनसे रावण अंकुश खाये हुए हाथी के समान पलटकर भाग जाता है—

षाण्डे धान खाइलेक तान्तिर काटे चाटि।
आने चुरि करिलेक आनर चुल काटि॥
सीताक काटिया पुत्र जीयाइबाक पारि।
तेबे काटियोक आरो एक लक्ष नारी॥[3]

० बँगला-रामायण के उन संवादों में मार्मिकता है जहाँ पात्र भावातिरेक में बोलता है। इस रामायण के भक्त राक्षस तरणीसेन, वीरबाहु अथवा स्वयं रावण के

---

१. ओरे बर्ब्बर निशाचर रावण, तू अविलम्ब यमघर जाना चाहता है। मुझ राम की गृहिणी को तू भोगना (क्या) चाहता है मरने के लिए कालकूट विष पान करना चाहता है। ३१५४।

२. मोक काम भावे, चाहन्ते रावणा। चक्षुगो बाज नभैल।
रामर भार्य्याक, लाघव बोलन्ते। जिह्वायो खसि नगैल॥ ४१७६।

३. साँड धान खा गया और ताँति (जुलाहे) का चरखा काटना चाहते हो। किसी ने चोरी की, किसी के बाल काटते हो। सीता को काटने से पुत्र जिलाया जा सकता है तो और भी एक लाख स्त्रियाँ काट दो। अस० ६००३,४।

उपस्थित होने पर राम के साथ जो कथोपकथन होता है वह अत्यन्त भावमय है। सुग्रीव को मैत्री का विश्वास दिलाते समय भी राम आवेशमय कथन करते हैं--

अपूर्व्व ना मानि आमि सूर्य्य हरे अन्धकार।
अपूर्व्व ना मानि आमि सीतार उद्धार॥
अपूर्व्व ना गणि मेघ वरिषये जल।
तोमारे अपूर्व्व मित्र मानि हे केवल॥[1]

लक्ष्मण क्रुद्ध होकर सुग्रीव के अन्तःपुर पहुँचे, हलचल मच गयी। सुग्रीव को भी सूचना मिली। वह डरा नहीं, अकड़कर बोला—"मैं अपराध नहीं करता, मुझे किसका डर है? धनुर्धर लक्ष्मण क्यों कोप कर रहे हैं। मैंने मित्रता की है तो सप्रमाण की है। मित्रता की रक्षा के लिए क्या मैं अपने प्राण दे दूँ?" (पृ० १८३)

सबसे अधिक रोचक संवाद तो अंगद-रावण का है। परिचय पूछे जाने पर अंगद कहता है, 'मैं वालि का पुत्र हूँ। वालि की याद न आ रही हो तो अपने गले को टटोल देखो, पूँछ का चिह्न होगा।' रावण भी कहता है, 'राम की योग्यता देख ली, वन के वानरों की सहायता से वह सीता का उद्धार करेगा। ऐसा ही योग्य था तो उसके भाई ने उसे क्यों निकाल बाहर किया।'

रावण ने कुछ शर्तें रखीं, जिनके पूर्ण होने पर वह सीता को लौटाने के लिए सम्मत हो गया। एक अपमान-जनक शर्त थी राम नाक पर तिनका रखकर क्षमा माँगे। वाक्पटु अंगद शर्तें स्वीकार करते गये किन्तु एक ऐसी मार्मिक चोट की कि रावण अपना-सा मुँह लेकर रह गया। अंगद ने कहा—ठीक है, सेतुबन्ध भंग कर दिया जाएगा, विभीषण को बाँधकर तुम्हें सौंप दिया जाएगा। तुम्हारी जली हुई लंका का पुनर्निमाण कर दिया जाएगा। किन्तु एक बात तो बताओ, तुम्हारी बहिन शूर्पणखा के नाक-कान काट लिये गये, ये कैसे जुड़ेंगे? तुम्हारी यह क्षतिपूर्ति कैसे होगी?

सूर्पणखार नाक कान केमने याबे जोड़ा॥ २७६

० उड़िया-रामायण का रावण अत्यन्त वाक्पटु है। उसी के संवाद अधिक हैं किन्तु सभी रति-भाव से उद्दीप्त हैं। वह किसी से कहता है कि सखी, नाक फुला कर मुझसे हंस-हंस कर बातें करो।—'नासिका फुलाइण हसिण कथा कह' (६-२४६), किसी को बाहों में भरकर उसका यौवन विदीर्ण करने, अधर चूसने तथा उसके साथ रति-रण करने का निमंत्रण देता है। सीता, वेदवती और रंभा की

---

१. मैं अपूर्व नहीं मानता सूर्य को जो अन्धकार हरता है, मैं सीता के उद्धार को भी अपूर्व नहीं मानता। बरसने वाले मेघों को भी मैं अपूर्व नहीं माता। मित्र, मैं तो केवल तुम्हें अपूर्व मानता हूँ। पृ० १८८ बँगला।

उपस्थिति में वह उन्मत्त कामुक-प्रलापों से भरे हुए कथन करता है। मन्दोदरी के तर्क सुनकर वह मधुर खीझ के साथ कहता है—'सखि तुम्हें क्या बाई हो गयी है, कोई पाये हुए पदार्थ (सीता) को कहीं लौटाता है ?'[1]

संवादों में वचन-वक्रता का उदाहरण प्रस्तुत है। क्रुद्ध लक्ष्मण द्वार पर फुंकार रहे हैं। द्वारपाल सुग्रीव को सूचना देता है। सुग्रीव अज्ञान बन कर पूछता है, कौन लक्ष्मण आया है ? लक्ष्मण सरोष कहते हैं, जाकर कह दो, जिसके बल पर किष्किन्धा का राज्य और सुन्दरी तारा का भोग कर रहे हो, उसका छोटा भाई लक्ष्मण आया है। (४-५६)

राम की आत्मग्लानि की कैसी सूक्ष्म-अनुभूति मिलती है निम्न कथन में। मार्ग में गाय चराते हुए ग्वाले से भूखे राम-लक्ष्मण ने दूध माँगा। देना अस्वीकार करने पर लक्ष्मण ने राम को सम्मति दी कि इसे मार कर दूध ले लिया जाए। राम ने कहा—

'अपनी स्त्री के हरणकर्ता का मैं कुछ बिगाड़ न सका, इस अदोष को कैसे मारूँ ?'[2]

० मानस की समस्त कथा ही वक्ता-श्रोता के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है। कई स्थलों पर संवादों द्वारा तत्त्व-निरूपण भी हुआ है। ये सभी स्थल साहित्यिक मूल्य कम रखते हैं, अतएव गोस्वामी जी के उन संवादों पर विचार किया जाएगा जिनमें साहित्यिकता है। ऐसे मुख्य संवाद हैं—पार्वती-सप्तर्षि, परशुराम-लक्ष्मण, मंथरा-कैकेयी, कैकयी-दशरथ, हनुमान-रावण और अंगद-रावण।

सप्तर्षि पार्वती को शिव की ओर से विमुख करने आये थे। उन्होंने अनेक बातें कहीं। पार्वती ने उन्हें नम्रता के साथ करारा उत्तर दिया—'मुनिवर, आप पहले मिले होते तो आपके उपदेश सुन लेती, अब तो मैंने यह जीवन शिव के लिए हार दिया है। अब उनके गुण-दोष का कौन विचार करे। यदि तुमसे बिना विवाह कराये रहा ही नहीं जाता है तो संसार में अनेक वर-कन्या हैं, यहाँ से पधारिये।'[3] मेरा तो यही हठ है कि 'बरउँ संभु न तु रहउँ कुआरी।' (१-८०-५)

---

१. रावण बोइला सखि होइलु कि बाइ। पाइला पदार्थ केहि। दिए बाहुडाइ। ६/१०१

२. एड़े बड़पणे मोर नाहि एबे कार्य्य। सीता हरिनेला बनु विश्रवा तनुज॥
ताहाकु त किछि मुहिँ न पारिलि करि। अदोषि लोकङ्कु कि मुआसि अछि मारि॥
—३-५७।

३. जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥
जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं॥ १-८०-१—४।

लक्ष्मण-परशुराम संवाद में कुछ लोग भले ही अनौचित्य देखें किन्तु लक्ष्मण के मुँह तोड़ उत्तर देने की प्रशंसा करनी ही होगी। राम के टेढ़े नयन देख लक्ष्मण चुप हो गये थे। परशुराम के क्रोध-पूर्ण वचन सुन उनसे फिर न रहा गया, बोल पड़े—

जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता।
क्रोध भएँ तनु राख विधाता॥ १-२७९—५

इस प्रकार के चुटकी लेने वाले अनेक कथन लक्ष्मण द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। मंथरा-कैकेयी एवं कैकेयी-दशरथ संवादों में भी कैसी तीखी व्यंग्योक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कैकेयी मंथरा को घरफोरी कहकर उसकी जीभ निकलवाने के लिए प्रस्तुत हो गयी, किन्तु वही कैकेयी जब मंथरा को फुसलाकर उसके मन की बात जानने की चेष्टा करने लगी तो उसने तुरन्त चुभता हुआ उत्तर दिया—

एकहिं बार आस सब पूजी।
अब कछु कहव जीभ करि दूजी॥ २-१५—१

दशरथ के सामने क्रोध-रूपी नंगी तलवार के समान खड़ी हुई कैकेयी का एक-एक शब्द कैसे तीखे विष से बुझा है—भरत क्या तुम्हारे पुत्र नहीं हैं? मुझे क्या खरीद लाये थे—(क्या मैं विवाहिता नहीं हूँ)? मेरे वचन तीर से लगते हैं तो पहले ही सोच समझ कर क्यों नहीं बोले। तुम तो रघुकुल में बड़े सत्यवादी बनते हो, अब हाँ करो या न करो—आदि।[1]

केवल तीखे ही व्यंग्यों का प्रयोग नहीं है, मधुर व्यंग्य भी देखे जा सकते हैं। सीता प्रथम बार राम को देख ऐसी तन्मय हुईं कि सुध-बुध भूलकर नेत्र मूँदे खड़ी रह गयीं। सखी ने सीता का हाथ दबाकर व्यंग्य किया—नेत्र मूँदकर गौरी का ध्यान फिर कर लेना—'बहुरि गौरी कर ध्यान करेहू'—१-२३३-२। सीता ने घबड़ा कर नेत्र खोले तो राम को सामने खड़ा पाकर उनके नख-शिख-सौन्दर्य में पुनः लीन हो गयीं। एक दूसरी सखी मन ही मन मुस्कराकर बोली—'कल इसी समय यहाँ फिर आएँगी'—पुनि आउब एहि बेरियाँ काली'—(१-२३३-६) बेचारी सुशीला कन्या यह गूढ़ वाणी सुन कटकर रह गयी।

उत्तर-प्रत्युत्तर के दाँव-पेंच लक्ष्मण-परशुराम संवाद के पश्चात् अंगद अथवा हनुमान के साथ रावण के संवादों में मिलते हैं। हनुमान रावण को राम का भजन करने के लिए कहते हैं। अभिमानी रावण हँसकर बोला—हाँ, अब हमें बड़ा ज्ञानी बन्दर गुरु मिला है।

---

१. भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥
जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें॥
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसन्ध तुम्ह रघुकुल माहीं॥ २-२९-२-४।

बोला बिहसि महा अभिमानी।
मिला हमहि कपि गुरु बड़ ग्यानी॥ ५-२३-२

अंगद की अनेक उक्तियाँ और तर्क सुनकर भी वह बड़े मजे में कहता है—

बालि न कबहुँ गाल अस मारा।
मिलि तपसिन्ह तें भएसि लबारा॥ ६-३३-६

रचना-कौशल

भाषा

भाषा-संस्कृत विरोध :

'संस्कृत है कूप जल भाषा बहता नीर'।

कबीर की इस उक्ति में संस्कृत की उपेक्षा की गयी है, उसे संकीर्ण और सीमित समझा गया है। यहाँ एक प्रकार से कबीर की हीन-भावना ही बोल रही है। एक रूप में उनकी उक्ति सत्य भी है। नदी का जल प्रचुर होता है साथ ही सहज उपलब्ध भी। कूप का जल नदी के जल की अपेक्षा अधिक स्वच्छ एवं गुणमय हो सकता है, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए साधन-सम्पन्न बनना होता है। इसी प्रकार जनमानस के लिए भाषा सुगम एवं सुबोध होती है। संस्कृत गुणमयी है, किन्तु उसे आयत्त कर ज्ञान-विस्तार के लिए आयास करना पड़ता है।

मध्यकाल के भी समस्त भारत के प्रमुख विद्वान् संस्कृत में ही मनन और चिंतन करते थे। उनकी संख्या अत्यन्त अल्प थी। पंडित लोग विद्या का आदर करते थे और नहीं चाहते थे कि अनधिकारी लोग शास्त्र का अध्ययन कर पाएँ। अधिक प्रचार होने एवं अनधिकारी के हाथ पड़ने से विद्या का आदर अवश्य ही कम हो जाता है। जिन वेदों के प्रति हमारे देश में इतना अधिक पूज्य-भाव रहा, इतने यत्न एवं पवित्रता के साथ जिनकी रक्षा की गयी, आज उन्हीं वेदों की छपी हुई प्रतियाँ कालेजों के पुस्तकालयों में उपेक्षित पड़ी मिलती हैं।

पूज्य ग्रन्थों को सर्वसुलभ न होने देकर पंडितों ने उनके महत्त्व को सुरक्षित रखा, ठीक है, किन्तु इन पूज्य-ग्रन्थों की महान उपलब्धियों से साधारण जन कैसे लाभान्वित होता! इसके लिए तो बहते नीर की आवश्यकता थी। जनमानस तथा युग की माँग को समझने वाले कवियों ने राम और कृष्ण को भाषाओं में लिपिबद्ध किया। असमीया-लेखक माधव कन्दली को विरोध नहीं सहना पड़ा, क्योंकि तत्कालीन राजा ने ही उन्हें असमीया में लिखने की प्रेरणा दी थी। कृत्तिवास (बंगला-लेखक) एवं तुलसीदास को अवश्य ही पंडितों का विरोध सहना पड़ा। बंगाल के तीन लेखकों को शास्त्र चूसकर खा जाने वाला कहकर निन्दित किया गया है, इनमें कृत्तिवास प्रथम माने गये।

कृत्तिवासे काशीदासे आर वामुन घेंषे ।
एइ तिन सर्व्वनेशे शास्त्र खेल चुषे ॥

लोगों का कहना है कि तुलसीदास को भी भाषा में लिखने के कारण कष्ट दिये गये थे, फलतः वे अयोध्या से काशी चले आये थे । किसी पंडित ने उन पर आक्षेप किया होगा कि भाषा में क्यों लिखते हो । उत्तर में उनका एक दोहा प्रसिद्ध है—

का भाखा का संस्कृत प्रेम चाहिए सांच ।
काम जो आवै कामरी का लै करै कुमांच ॥

रामचरितमानस में भी उन्होंने भाषा के प्रति पंडितों की उपेक्षा की ओर संकेत किया है ।[1]

उड़िया-लेखक बलरामदास तो शूद्र थे ही, उन्हें भी प्रारम्भ में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया । उन्होंने भी लिखा है कि मुझे मूर्ख लोगों के उपहास का बहुत डर है । ज्ञानीजन मुझे दोष नहीं देंगे किन्तु छोटे लोग उपहास करेंगे । मैं सुई की नोंक से मेरु पर्वत को हिला रहा हूँ ।[2]

किन्तु लेखकों की विशेषता यह है कि भारतीय-भाषाओं एवं उनके साहित्य की उत्समूल-भाषा देववाणी का इन लोगों ने अनादर नहीं किया । अपने-अपने काव्यों के मध्य उन्होंने संस्कृत से कथा, उपमान, शब्द आदि ग्रहण किये हैं ।

व्याकरणिक-अध्ययन— पूर्वांचलीय-रामायणों की बहुत अधिक प्राचीन-प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हुई हैं एवं अधिकारी विद्वानों ने पाठ-शोध का भी प्रयत्न नहीं किया है । सबसे बड़ी समस्या तो बँगला-रामायण की है, जिसकी भाषा जयगोपाल तर्कालंकार ने आधुनिक कर दी है और उनके ही पाठ को देखकर बंगाल में अन्य सभी संस्करण प्रकाशित हुए हैं । कुछ विद्वानों ने पाठोद्धार की असफल चेष्टा भी की है । असमीया एवं उड़िया-रामायणों की भाषा बँगला-रामायण की भाषा से अवश्य ही प्राचीन है, किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि ये रामायणें अपने मूलरूप में ही प्राप्त हैं । उड़िया-रामायण के पाठ को (Crippled, Truncated and Twisted) (काट-छाँट और तोड़-मरोड़ से युक्त) बताकर पाठोद्धार की चेष्टा की जा रही है ।[3] मानस की पाठ-शुद्धि के लिए अवश्य ही श्लाघ्य प्रयास हुए हैं । अध्ययन की इस कठिनाई के कारण व्याकरणिक-अध्ययन पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सकेगा ।

प्राचीन-असमीया एवं उत्तरी-बंगला में बहुत साम्य रहा है । श्री कृष्ण-कीर्तन (चण्डीदास) की भाषा में दोनों की समान-भाषा के उदाहरण मिल जाते हैं । असमीया-

---

१. भाषा भनिति भोरि मति मोरी । हँसिबे जोग हँसै नहिं खोरी ॥ १-८-४ ।
२. उड़िया-रामायण—५-२ ।
३. डा० मायाधर सिंह—हिस्ट्री ऑफ़ ओरिया लिट्रेचर, पृ० ४५ ।

रामायण में एक वचन प्रथम पुरुष के लिए मइ एवं आमि दोनों शब्दों का प्रयोग है। आधुनिक असमीया में आमि बहुवचन है एवं बँगला में वह एक वचन है। असमीया-रामायण में बहुवचन प्रथम पुरुष में आमि और आमरा का भी प्रयोग है। आधुनिक असमीया में भूतकालीन कृदन्त इला द्वितीय पुरुष के साथ आता है किन्तु असमीया-रामायण में प्राचीन बंगला के अनुसार तृतीय पुरुष के साथ आया है—धनदे चाहिला—४७५५, इला का प्रयोग उड़िया-रामायण एवं आधुनिक उड़िया में तृतीयवचन भूतकाल में ही होता है किन्तु पूर्वी बँगला में आदरसूचक (बहुवचन में भी ?) रूप में होता है।[1] बँगला-रामायण के कुछ स्थलों पर इसका प्रयोग तृतीय एवं द्वितीय दोनों पुरुषों के एकवचन के लिए हुआ है, जैसे—चलिला नारद-१—तुमि करिला-४। आधुनिक असमीया में प्रथम पुरुष का भविष्य कृदन्त इम है, असमीया-रामायण में बँगला भाषा के भविष्य कृदन्त इब या इबो की भाँति प्रयोग हुआ है—थाकिबो-४०१८, याइबो—३०६७, अधिकरण-कारक की विभक्ति आधुनिक असमीया में त है, रामायण में ते और त दोनों का प्रयोग है—१४३१। ते विभक्ति इस समय आधुनिक बँगला में प्रयुक्त होती है।

पुरानी असमीया के तृतीय पुरुष के वर्तमान कृदन्त अन्त का प्रयोग असमीया-रामायण में सर्वत्र है—करिलन्त—४७४७। पुरानी-असमीया का बहुवचन सा भी रामायण में मिलता है—आमासाक (हमको) २८५७ तोमासार—(तुम लोगों का)—१५२४।

असमीया-रामायण में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो आधुनिक असमीया में अब तक चले आ रहे हैं :—जैसे प्रथम एवं द्वितीय पुरुषवाची सर्वनाम, तृतीय पुरुषवाची सर्वनाम सि (he) ताइ (she), यि (जो)—४२५१, पुरुष के अनुसार विभिन्न क्रियाओं के काल, कर्म, सम्बन्ध, अधिकरण आदि कारणों की विभक्तियाँ—मातुलक, रामर; हातत,[2] निषेधवाचक क्रिया में न का पहले प्रयोग—नेदेखो (नहीं देखता हूँ)—२१८०, एवं अनेक शब्द बाज (बाह्य-बाहर)—४०३७, किमन (कैसा) ४२८३, माति (बुलाकर) ६७३९ मिछा (मिथ्या)—५१९८ आजि (अद्य) ६८३४।

० बँगला-रामायण के इला कृदन्त के विशिष्ट प्रयोगों का वर्णन हो चुका है, अन्य स्थलों पर यह कृदन्त आधुनिक बँगला के नियमानुसार प्रयुक्त हुआ है। भविष्य कृदन्त इबा का प्रयोग असमीया में तुम के साथ होता है, बँगला-रामायण में आप के साथ इबा का प्रयोग हुआ है—कहिबा, हइबा-३, आधुनिक बँगला में आप के साथ इबेन एवं तुम के साथ इबे का प्रयोग होता है।

० उड़िया-रामायण में व्याकरण की दृष्टि से बहुत कुछ ऐसी भाषा का

१. सुनीतिकुमार चटर्जी—ओरिजन एण्ड डेवलेपमेंट ऑफ़ बेंगाली लेंग्वेज, पृष्ठ ९८२।
२. असमीया-रामायण—छं० १५१६, १५१७ और ३०६७।

प्रयोग है जो आज तक चली आ रही है। पुरुपवाची सर्वनामों की एकरूपता में प्रायः अन्तर देखा गया है—एक ही अर्थ में तीन-तीन प्रकार के प्रयोग देखे जाते है—**मो, मोर, मोहर** — ३/३५ विपय-प्रवेश में वँगला एवं असमीया भाषाओं के शब्दों की उड़िया भापा के शब्दों से साम्य की चर्चा की गयी है, उस प्रकार का अधिकांश साम्य इस रामायण में मिल जाता है।

उड़िया-रामायण में प्रयुक्त कई शब्द हिन्दी के शब्दों से साम्य रखते है—**गुहारि**—(पुकारकर) १-८६, **हकराइ** (बुलाकर) ५-१०५, **बधाइ** (वधाई) ६-३०५, **मशाहेरि** (मसहरी) २-४६, **शोहइ** (शोभा देता है) ४-१४, **बेटा** ५-११।

कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग है जो संस्कृत के तत्सम अथवा तद्भव होते हुए भी अर्थ कुछ और ही देते है।—**शिष्य** (पुत्र) १-१२७, **शरधा** (इच्छा)—१-१४६, **नियम** (प्रतिज्ञा, शपथ) ६-३६७, **गउरव** (गौरव=आदर) २-५५।

मानस—*तुलसीदास के समय तक तीन प्रकार की भापा-धाराएँ चल रही* थीं। जैन-बौद्ध और निर्गुण सम्प्रदाय के लोग वैदिक परम्परा के विरोधी होने के कारण जनभापा का प्रयोग कर रहे थे। दूसरी ओर केशव जैसे संस्कृताभिमानी कवि भी थे। इधर मुस्लिम-शासकगण हमारी संस्कृति को नष्ट कर अपनी भापा और संस्कृति को हमारे ऊपर थोपना चाहते थे। तुलसीदास ने तीनों के मध्य समन्वय की चेष्टा की है। उन्होंने मानस में वैसवाड़ी अवधी का प्रयोग किया है। जायसी की भाषा ठेठ अवधी थी, किन्तु वह शिष्ट और परिमार्जित नही थी। तुलसीदास ने संस्कृत-गर्भित साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया। उनकी भापा मे गुजराती, राजस्थानी, पंजावी; बंगाली, व्रज, बुन्देलखण्डी और खड़ी बोली आदि के शब्द भी देखे गये हैं। डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने तुलसीदास की भापा का विस्तृत अध्ययन शोध-प्रवन्ध के रूप में प्रस्तुत किया है।

— भविष्य कृदन्त व एवं पूर्वकालिक क्रिया इ अथवा ऐ की दृष्टि से पूर्वाचलीय रामायणों की भापा की तुलना हो सकती है। पूर्वाचलीय-रामायणों का इव कृदन्त मानस में व के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

इसका उल्लेख विपय-प्रवेश में हो चुका है। आधुनिक असमीया मे प्रथम पुरुप का भविष्य कृदन्त इम है—किन्तु इस भापा की रामायण मे इवो अथवा इवोहो का प्रयोग हुआ है।

पूर्वकालिक क्रिया का इ प्रत्यय—

असमीया०	वँगला०	उड़िया०	मानस
करि))छं० ८ जानि)	करि)) १ देखि)	पखालि)) करि) २-१ याइँ)	कहि—५-४०-६ राखि—२-५१-४ सुनि—२-२८-४

इया, ऐया अथवा ऐ एवं उड़िया में इए।

असमीया०	बँगला०	उड़िया०	मानस०
शुनिया—२०६	भाविया—१	वाहुटिआ—२-२	लै—५-४०-६
लैया—६६	लइया—३०	देखिण—२-२	
	लैया ३०		

शब्द-ग्रहण :

रामायणों की भाषा पर प्राकृत-अपभ्रंश की परम्परा का प्रभाव है, जिसके कारण क्रिया एवं कारक के शब्द घिसकर नवीन रूप धारण करते गये। चूँकि सभी का मूल एक है अतएव शब्द-भण्डार में भी बहुत साम्य है। उदाहरण के लिए कर, खा, देख, चल, आ, जा आदि असंख्य धातु-मूल अत्यल्प एवं नगण्य परिवर्तन के साथ चारों भाषाओं में विद्यमान हैं। इसी प्रकार कई पुरुषवाची सर्वनाम एवं शब्द-भण्डार की भी स्थिति है। संस्कृत का मस्तक, प्राकृत का मत्थअ होकर असमीया-रामायण, बँगला-रामायण और मानस में माथा एवं उड़िया-रामायण में 'मथा' बनकर प्रयुक्त हुआ है।[1] ऐसा ही असंख्य शब्दों के विषय में कहा जा सकता है।

रामायण के समय तक देश में अनेक धार्मिक-आन्दोलन प्रारम्भ हो गये थे, लगभग सभी आन्दोलन भक्त-परक थे। सगुण-भक्ति से सम्बन्धित आन्दोलन अपना सम्बन्ध वैदिक-धारा से जोड़े हुए थे। भक्ति पर उपनिषद्, गीता, महाभारत, श्रीमद्भागवत एवं रामायण तथा कई अन्य पुराण-काव्यादि का प्रभाव था। नवीं-दसवीं शताब्दी से ही बोल-चाल की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ होकर १४वीं शताब्दी तक जोर पकड़ गया था। ज्योतिरीश्वर ठाकुर के **वर्णरत्नाकर** एवं विद्यापति की **कीर्त्तिलता** में अनेक तत्सम शब्द मिलते हैं—विशेषतः गद्य में। इससे प्रकट है कि बोल-चाल की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रचार बढ़ रहा था। शंकराचार्य एवं वैष्णव-आचार्यो के प्रभाव से इस प्रवृत्ति को विशेष प्रोत्साहन मिला होगा।[2] भाषाओं में संस्कृत के तत्सम रूपों को अपनाने की विशेष प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है। रामायणों के सभी लेखक संस्कृत भाषा के ज्ञाता जान पड़ते हैं, उन्होंने तत्सम एवं तद्भव दोनों प्रकार के शब्दों का चयन किया है। हमारी सांस्कृतिक एकता भाषा में साम्य प्रस्तुत करती है।

संस्कृत-शब्द—असमीया-रामायण के एक ही पृष्ठ पर ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं—श्रवण, वाक्य-वह्नि, कलेवर, निर्व्वाण, आज्ञा, शीघ्र, सर्व्वजन, विद्यमान, विद्युत-

---

१. अस०—५५६४, बँगला०—५३०, मानस—१-२७-२, उड़ि०—५-२४।

२. तुलनीय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हि० सा० का आदिकाल, तृ० सं० १८-१९।

कान्ति, वैदूर्य्य, सुवर्ण, शुक्ल, वृप, स्कन्ध, सर्व्वेक्षण, रत्न, मुगन्धि, कुञ्जर दिव्य, बिमान, समीप, आदि पृ० १०० ।

बँगला-रामायण—सुधाकर, दिवाकर, भ्रमर, कोकिल, फणि, पदाङ्गुलि, कापट्य, प्रकाशन, निरन्तर, अन्वेषण, आयोजन, दुष्टमति, नीति-शास्त्र-ज्ञान, कल्याण, वक्ता, श्रोता, अनुमति आदि ।[1]

उड़िया-रामायण—त्रिबेणी-सङ्गम, उपगत, सत्यभग्न, प्रशंसा, ऋषि, शाप, भस्म, कष्ट, यज्ञकर्मा, पत्रावली, इङ्गित, स्वर्णरत्न, दर्पण, आलस्य, निद्रा, शयन, अरण्य, अगम्य, शङ्का, नित्यकर्म आदि ।[2]

मानस—कर्म, रहस्य, श्रम, दुर्लभ, दुंदुभि, अस्थि, मित्र, श्रुति, अवलंवन, सुमति, मंगल, पातक, गृह, रिपु, सभीत, रज, मेरु आदि ।[3]

तुलसीदास ने अर्ध-तत्सम शव्दों का प्रयोग अधिक किया है जैसे : कलपतरु, सर्वसु, साप आदि । *पूर्वांचलीय-रामायणों में भी लिखा तो ठीक ही जाता है किन्तु* अनेक शव्दों का उच्चारण अर्धतत्सम हो जाता है ।

तद्भव अथवा देशज—चारों भाषाएँ आर्यकुल की हैं, इसलिए संस्कृत के तद्भव शव्दों का बाहुल्य होना स्वाभाविक था । अनेक जन-जातियों के शव्द भी भाषाओं में स्वीकृत हुए है । इन सभी प्रभावों से समन्वित होकर भाषाओं ने अपने वैशिष्ट्य की रचना की है । प्रत्येक भाषा में शव्द-प्रयोग की कुछ न कुछ विशेषताएँ अवश्य हैं। प्रत्येक रामायण से कुछ ऐसे ही शव्द प्रस्तुत किये जा रहे है—

असमीया०—छाति (छत्र), नेत, (नेत्र वस्त्र), तेति क्षण (तत्क्षण), सहरिष, (सहर्ष), काज (कार्य), वाज (वाह्य), दरिशन (दर्शन), थान (स्थान), ओवारि (अट्टालिका, तेज (रक्त), लोलक (आँसू), मेथोन (गाय-जातीय वन्य पशु) मातिला (वुलाया), मन्यु (असन्तोष, क्षोभ) ।

बँगला०—दाण्डाइया (खड़े होकर), आगुसार (अग्रसर), केमन (कैसा), नारिवे (नहीं सकता), वेड़ान (घूमते है), डाक (पुकार), भेसे (वह कर), कोथा (कुत्र-कहाँ), तरास (त्रास), काड़िया (छीनकर) आदि ।

उड़िया०—मारतण्ड (मार्तण्ड), वत्सि (वत्स), समापत (समाप्त) घेनि (लिए, पास), तिआरिवा (तैयार कराना), पल्ली (ग्राम), भल (भला), किपाँइ (किसके लिए), अटइ (है), पछ (पीछे), माड़िवा (मर्दन करना), वेनि (दो), वोवाली (हाहाकार), पघा दउड़ि (रस्सी हि० पगहा) । उड़िया भाषा की प्राचीन-प्रकृति इन शव्दों में लक्षित होती है—अग्यम (अगम्य), नग्र (नगर) प्राकर्म (पराक्रम),

१. वँगला-रामायण, पृ० ४४३, २०० एवं २०७।
२. उड़िया-रामायण—१-८५,४-३४, ६४, २, ५४—५६ ।
३. मानस, पृ० ९६४, ५९, ६५९ ।

१-६६। पुराने शिलालेखों में आदि-उड़िया-शब्दों का यही रूप मिलता है। उड़िया भाषा के कुछ ऐसे शब्दों का भी रामायण में प्रयोग हुआ है जिनका उद्गम खोज सकना कठिन है। मणोहि=राजा अथवा देवताओं का भोजन। पणन्त=वस्त्र का छोर (पट+अन्त, अथवा पटप्रान्त?) पइड़-कच्चा नारियल (पयः पेटिका?) नड़प=तेल (देशज)।

मानस—अगवानी, अगहुँड़, अगिन, अगुन, अगेह, अग्ग, अचरज, अच्छत, अचंभव, अछोभा, अजान, अनुसासन, अनैसी, अवासू आदि।[1]

विदेशी-शब्द—रामायणों का रचनाकाल १४वीं से १६वीं शताब्दी तक का है। इस काल तक मुसलमानों का भारत के बड़े भूभाग पर अधिकार हो चुका था। हिन्दी-भाषी क्षेत्र तो कई शताब्दी पूर्व ही मुसलमानों के आक्रमणों की चपेट में आ चुका था। बंगाल ने भी १२०० ई० के आसपास महानाश का दृश्य देखा, तबसे लगातार बंगाल मुस्लिम-शासकों के अधीन रहा। उड़िया-रामायण के लेखक के पूर्व ही मुसलमानों को उड़ीसा से खदेड़कर हिन्दू नृपति शासन करने लगे थे। असम देश पर मुसलमानों के आक्रमण कई बार विफल कर दिये गये।

स्पष्ट है कि असम पर मुस्लिम संस्कृति और भाषा का प्रभाव नहीं पड़ा, उड़ीसा पर भी कम ही पड़ा। शेष दो प्रदेश प्रभाव से न बच सके, इसीलिए उनकी भाषा में विदेशी शब्द बहुत हैं। धर्म-संस्कृति के कट्टर समर्थक तुलसीदास ने विदेशी संस्कृति की बाढ़ को रोकने का सुदृढ़ प्रयास किया, उन्हीं की भाषा में विदेशी शब्द सबसे अधिक प्रयुक्त हुए है। कवितावली मे सबील, फहम, खलक, हलक, कहरी, बहरी, दिरमानी आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

तत्कालीन राज-दरबारों में फ़ारसी का प्रचलन था। हिन्दू और मुसलमानों को साथ-साथ रहना पड़ रहा था जिससे कि परस्पर शब्दों का आदान-प्रदान भी चल पड़ा। कुछ मुसलमान कवि भी भाषाओं में रचना करने लगे थे, अथवा भाषा-कवियों को प्रोत्साहन देते थे। इन्ही कुछ कारणों से भाषाओं में विदेशी शब्द ग्रहण किये जाने लगे थे। शासन, वाद्य आदि से सम्बन्धित कुछ विशेष विदेशी-शब्दों का प्रचार समाज में चल पड़ा था। बहु प्रचार से इन शब्दों की अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ गयी। इनकी तुलना में पूर्व-प्रचलित देशी शब्द अब अर्थ-व्यञ्जना में उतने सशक्त नहीं रह गये, अतएव कवियो ने समाज-द्वारा आत्मसात् किये गये इन शब्दों को ग्रहण कर लिया। आज भी बंगाली बच्चा बोलता है 'मुझे कष्ट क्यों देते हो। क्या आश्चर्य है।'[2] हम कहेंगे—'मुझे तंग क्यों करते हो। क्या ताज्जुब है।' कहने का तात्पर्य यही है कि बहु प्रचार से विदेशी शब्दों ने हमारे देशी शब्दों की अभिव्यंजना-शक्ति को पराभूत कर

---

१. तुलसी शब्द सागर (सं० भोलानाथ तिवारी) से संगृहीत।
२. यह अवश्य है कि वह कष्ट को कौष्टो एवं आश्चर्य को आश्चौज्जो की भाँति बोलेगा।

लिया। जहाँ विदेशी-भाषा का प्रभुत्व नही हो पाया वहाँ आज भी देशी शब्द (संस्कृत तत्सम, तद्भव अथवा देशज) धूमधाम से प्रचलित हैं। हम मजबूत एवं सख्त शब्दों के हिन्दी-पर्यायों का प्रयोग नही कर पाते, पूर्वी-भाषाओं मे इनका समानार्थक शब्द 'शक्त' (शक्ति युक्त) बहुत पहले से प्रचलित है।

दो संस्कृतियों के मिलन में कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रचार हो जाता है जो हमारे लिए सर्वथा नवीन होते है। नवीन वस्तुओं अथवा व्यवस्थाओं के लिए विदेशी शब्द ही प्राय: अपना लिये जाते है, जैसे-शहनाई, चौगान एवं आजकल रेल, स्टेशन रेडियो आदि।

हमारी रामायणों में जो विदेशी-शब्द प्रयुक्त हुए है उनका सम्बन्ध प्राय: शासन, न्याय, सेना, वाद्य, व्यापार आदि से है।

असमीया-रामायण :

१. **दोकान**—(अरबी-दुकान) २३६०

२. **बाजार**—(फ़ारसी-बाजार) २३६०

३. **पयदा**—(फ़ारसी-प्यादह=पी+आदह=पाँववाला, अर्थात् पाँव काम में लाने वाला। संस्कृत के पदाति से फ़ारसी का प्यादह साम्य रखता है।) १६७६

४. **चाबुक**—(फ़ारसी) १९६१

बँगला-रामायण :

१. **देवान**—(अरबी दीवान, अरबी में भी कही बाहर से लिया गया है) ३०५

२. **हुकुम**—(अ० हुक्म) १९८

३. **हाकिम**(अ०) १९८

४. **मशाल** (अ० मशअ़ल) ३३६

५. **नफर**—(अ० नफ़र-चाकर) ४६७

६. **पेयादा**—(फ़ारसी-प्यादह) १९८

७. **दामामा**—(फा० दमाम) ४३६

८. **शानाई**—(फा०-शहनाई) २८३

९. **कानात**—(तुर्की-क़नात) ४४७

उड़िया-रामायण :

१. हुकुम—(अ० हुक्म) १-७२

२. मना—(अ० मनअ़) ४-१९

३. कमाण—(फा० कमान) १-१४४

४. चाबुक—(फा०) १-१७२

५. झकमक—(तुर्की-चकमक) ३-२०

मानस :

गनी—(अरबी ग़नी=बेपरवा धनी, उदार) १-२७-६
जमात—(जमाअत—अरबी में किसी भाषा से आगत शब्द है।) १-९२-छन्द
जिनस—(अरबी—जिन्स) ७-८०-५
नफीरि—(अरबी—नफ़ीर) ६-४०-३
गरीब नेवाजू—(ग़रीब—अरबी—नेवाज—फ़ारसी) १-१२-७
दरबारा—(फ़ारसी—दरबार, संस्कृत के द्वार से साम्य) २-७५-६
सजाई—(फ़ारसी—सज़ा) २-१८-५
आजार—(फ़ारसी—बाज़ार) ७-२७-८ छन्द
साहिब—(फ़ारसी—साहब) १-१२-७
सहनाई—(फ़ारसी—शहनाई) १-२६२-१
मजूरी—(फ़ारसी—मजदूरी) २-१०१-६[1]

तुलसीदास से भी बढ़कर भूषण ने विदेशी शब्दों का प्रयोग किया। वे हिन्दू छत्रपति के सभा-कवि थे, फिर भी इतने अधिक शब्दों का प्रयोग देखकर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मुस्लिम-शासन के प्रभाव से विदेशी शब्दों का बहुत प्रचार हो गया था। अंग्रेजी-शासन के पश्चात यह प्रभाव कम होता गया। अब तो यह स्थिति है कि हिन्दी का पाठक ऐसे अनेक विदेशी शब्दों का अर्थ शब्दकोशों की सहायता से ही समझ सकता है।

भाषा-सौन्दर्य

प्राण एवं शरीर की अभिन्नता से ही सौन्दर्य गठित हो सकता है, भाव और भाषा भी इसी प्रकार अभिन्न होते हैं। उनके एकत्व की स्थिति को जल-वीचि के समान माना जा सकता है।

सफल कवियों का भाषा पर अधिकार होता है। वे भाव अथवा पात्र के स्वभावानुकूल भाषा का सहज प्रयोग कर लेते हैं।

० असमीया-रामायण में कोमल भावों के लिए इस प्रकार की भाषा का प्रयोग है—

राजहंस देखा सीता तोमार गमन।
चक्रबाक युगल तोमार दुइ तन ॥ २०८१

हनुमान द्वारा रावण को फटकारते समय भाषा में भी उग्र-भाव आ गया

---

१. उपर्युक्त शब्दों के अर्थ लुगात किशोरी से दिये गये हैं, श्री भोलानाथ तिवारी द्वारा सम्पादित तुलसी शब्दसागर से कहीं-कहीं उद्गम की भिन्नता है।

है। हनुमान रावण के क्रोध को शरद्कालीन बादलों की गर्जना के समान बताकर डाँटते हैं—

हनुये बोलन्त तइ किसक तर्ज्जस।
शरत कालर मेघ सिछात गर्ज्जस॥ ५१९८

पात्र के मन की स्थिति की भी सफल व्यंजना हुई है। सीता एवं लक्ष्मण के प्रति अनुराग-भाव प्रकट करने के लिए राम के मुख से सशक्त भाषा का प्रयोग किया गया है—

लक्ष्मण डाहिन बाहु छाया मोर सीता। १९४५

पात्रों के भावों की सशक्त व्यंजना का वर्णन संवाद-सौन्दर्य के अन्तर्गत हो चुका है। असमीया-रामायण के उत्तरकाण्ड-लेखक शंकरदेव ने सीता के मुख से राम के प्रति अत्यन्त मार्मिक-भाषा का प्रयोग किया है।[1]

० बँगला में सुन्दरियों के रूप-वर्णन में भाषा कोमल एवं मधुर हो जाती है

रतन रञ्जित तार पदाङ्गुलि सब।
राज हंस जिनि ध्वनि नूपुरेर रव॥
करे शङ्ख कङ्कण किङ्किणी कटि माझे।
रतन नूपुर पाय रुणुझुनु बाजे॥[2]

उग्रभाव-प्रदर्शन के लिए भाषा प्रकृति-परिवर्तन करती है—

हुपहाप लम्फे झम्पे कम्पे वसुमती। पृष्ठ १८६
मुखे ते दारुण अग्नि ज्वले धिकिधिकि॥ पृष्ठ २८७

० उड़िया-रामायण में भी माधुर्य-भाव सूचक भाषा कोमल हो जाती है। कहीं-कहीं अनुरणनात्मक भाषा का भी प्रयोग है—

पयरे नूपुर वेनि रुण झुण बाजे। १-१५०

राम के लज्जा-भाव को इस प्रकार की भाषा में व्यक्त किया गया है—

लाज लाज होइण उठिले रघुमणि। १-१४९

बाँसों के झुरमुट में मच्छरों की भनभनाहट एवं मन्दाकिनी के जल-प्रवाह की ध्वनियों को अंकित किया गया है—

बाँउशवण भितरे मशा भण भण॥
मन्दाकिनी नदी ये वहइ झर झर। २-७८

शम्बूक अग्नि प्रज्ज्वलित कर उलटा लटका हुआ तपस्या कर रहा है। अग्नि भक्षण करने से उसके मुख से रक्त प्रवहमान है। उसके नाक, कान, नख, लिंग,

---

१. देखिए, इसी अध्याय का करुण-रस चित्रण।
२. बँगला-रामायण, पृ० २०० । बँगला में 'ण' को न पढ़िए।

आदि दसों स्थानों से गाढ़ा-गाढ़ा रक्त सप्तधाराओं में बहता हुआ अग्नि में गिर रहा है। यहाँ वीभत्स-रस के अनुकूल भाषा का प्रयोग है—

ओहलि पड़िण सेहि भक्षइ अनल।
मुख आटे रकत गलइ खल खल॥
तार दुइ नाक दुइ चक्षु दुइ कान।
नख लिङ्ग गुहा सहितरे दश स्थान॥
सपत धारा रकत झर झर पड़े।
प्रज्वलित अग्निरे पड़इ महागाढ़े॥[1]

० मानस में सुन्दर नारी के अलंकारों की क्वणन-ध्वनि से प्रिय पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण मधुर शब्दों में हुआ है—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥[2]

ओजपूर्ण स्थलों के लिए भाषा में द्वित्व-प्रधान एवं कर्कश शब्दों की योजना है—

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥ १-२६०-८ छन्द

इसी प्रकार की शब्द-योजना युद्ध की भयंकरता के चित्रण के लिए भी है—

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं।
खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं।
सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥[3]

मुहावरे और लोकोक्तियाँ—डा० हरवंशलाल शर्मा मुहावरों एवं लोकोक्तियों को भाषा की प्रौढ़ता एवं प्राञ्जलता बढ़ाने वाला बताकर लिखते हैं—

जन-समाज युग-युगान्तर के संचित अनुभवों को कुछ लाक्षणिक शब्दों के साँचे में ढालकर मुहावरों का रूप देता है, जो लाक्षणिक ही नहीं मनोवैज्ञानिक आधार पर भी टिके होते हैं। यही कारण है कि काल और देश की सीमाएँ भी उन्हें पंगु नहीं बना सकतीं। उनमें चिर-नवीनता एवं शाश्वतता है, समान रूप से मानव-हृदय को छू सकने की क्षमता है।[4]

---

१. उड़िया—रामायण-७-१५१।
२. मानस—१-२२९-१—३।
३. वही—६-८७-९, १०।
४. डा० हरवंशलाल शर्मा—बिहारी और उनका साहित्य, पृ० २७७।

मुहावरों, लोकोक्तियों एवं विशेष-उक्तियों के प्रयोग से भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने में सहायता मिलती है, पाठक पर इनका गहरा प्रभाव भी पड़ता है। साथ ही जनता इन्हें सुगमता-पूर्वक याद रख सकती है। स्मरणीयता के विशेष गुण के कारण ही मानस अन्य ग्रंथों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है।[1]

मानस में मुहावरों, लोकोक्तियों आदि का अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग है। पूर्वांचलीय-रामायणों में भी लोकोक्तियों एवं मुहावरों ने भाषा की अभि-व्यंजना-शक्ति की वृद्धि की है।

० असमीया-रामायण

१. एक ओर बाघ खदेड़ रहा है दूसरी ओर वर्षा की घोर नदी है

एक भिति बाघे, खेदे आरो भिति
नदी घोर वारिधार—८२३

२. मेघनाद के वध से क्षुब्ध रावण को सीता की हत्या से वर्जित कर मंत्री कहता है—साँड ने धान खाये, जुलाहे का चरखा काटते हो। किसी ने चोरी की, किसी का सिर मूड़ते हो—

बाण्डे धान खाइलेक तान्तिर काटे वाटि।
आने चुरि करिलेक आनर चुल काटि॥[2]

३. मीठा बोलने वाला प्रच्छन्न शत्रु पानी के कंटक के समान भयंकर होता है, आघात करने के पश्चात् ही पहचान में आता है। भरत के प्रति लक्ष्मण का कथन है—

पानीर कण्टक येन बिन्धिलेसे जानि। २५१०

असमीया-रामायण में मुहावरों का प्रयोग भी है—दाँत झाड़ना—चवरर चोटे तोर सारि एरो दान्त—३१८३। छाती पीटना—हृदयत मुठि हानि—१८२२। आँखे लाल करना—क्रोधे दशग्रीव भैला रकत नयन, हाथ पीसना—पिशेहाते हात—४१८३।

० बँगला-रामायण—

१. मरनहार चींटी के पर जमते हैं—
पिपिड़ार पाखा उठे मरिवार तरे। पृ १८३

२. अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना, तथा नदी में नाव डुबाना—
आपनि कुठार मारि आपनार पाय।
अहङ्कार करे डिङ्गा डुबालि दरियाय॥ पृ० २७७

---

१. डा० भगीरथ मिश्र—कला-साहित्य और समीक्षा—'काव्य में स्मरणीयता रहनी चाहिए और स्मरणीयता उक्तिचमत्कार के विना नहीं आती',—पृ० ४३।

२. असमीया-रामायण—६००३।

३. सीधे के प्रति सीधा और टेढ़े के प्रति टेढ़ा होना—
सोजा प्रति सोजा हन बाँका प्रति बाँका पृ० । ४६१
४. मन में सात-पाँच करना— विचार में पड़ना
मने सात पाँच भावे रावण विशेष पृ० २२७

बँगला-रामायण के कुछ अन्य मुहावरे ये हैं— अहंकार टूटना— दिने दिने रावणर टुटे अहंकार—२६० । पछाड़ खाना—आछाड़ खाइया पड़े हइया मूर्च्छित, लोटपोट होना—पुत्र शोके कान्दि राजा गड़ागड़ि याय—३७८ ।

० उड़िया-रामायण—

१. दरिद्र की निधि होना—
२. समुद्र में नाव डुबोना—
३. अन्धे की लकुट होना —

दरिद्रर निधि मोर अटुअरे बला ।
अगाध समुद्रे मोर न बुड़ाअ भेला ।
अन्धर लउडि मोते छाड़िले मरिचि ।-२-३८

४. आनन्द में निरानन्द— क्षीर में क्षार—
क्षीर भितरे ये क्षार आणि पुराइला । २-६७
५. गधे के गले में रेशमी सूत— छछूँदर के सिर में चमेली का तेल—
गधकुहिँ येसने वान्धिलेक पाट सुता । २-७१
६. वाई होना—दिमाग खराब होना—
रावण बोइला सखि होइलु कि बाइ । ६-१०१
७. मुँह देखना और दिन काटना—
काहा मुख देखिण हरिबु आम्भे दिन । १-२०७
८. कटाक्ष फेंकना और ठेलना—
आखिछिटा मारि के हुअन्ति ठेलाठेलि । १-१९५

० मानस—

१. उपयुक्त व्यक्ति से छेड़खानी करना—
भले भवन अब बायन दीन्हा । १-१३६-५
२. जो जैसी करनी करै सो तैसी फल पाय—
बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा । २-१५-५
३. दोनों हाथों लड्डू होना—
दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे । २-१८९-६
४. छोटे मुँह बड़ी बात कहना—
छोटे बदन बात बड़ि कहसी । ६-३०-७

५. काला मुँह कर जाना—

करिआ मुह करि जाहि अभागे। ६-४८-२

मुहावरों के सहज प्रयोग को देखते हुए भाषा पर तुलसीदास का महान् प्रभाव सिद्ध होता है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी लगा दी है। मंथरा की निम्न उक्तियों को प्रायः उनकी मुहावरेदार भाषा के उदाहरण के लिए उद्धृत किया जाता है[1]—

एकहिं बार आस सब पूजी।
अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोगु कपारु अभागा।
भलेहु कहत दुख रउरेहि लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई।
ते प्रिय तुमहि करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती।
नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥
करि कुरूप विधि परबस कीन्हा।
बवा सो लुनिअ लहिअ जोदीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥[2]

अलंकार

'पूर्णांग-सुन्दरी नारी को बाह्य सज्जा की अपेक्षा नहीं रहती। जो सौन्दर्य अनिन्द्य नहीं है, वही अपने को बाह्य अलंकरण एवं प्रसाधनों के द्वारा छिपाने का प्रयास करता है। इसी प्रकार जिस काव्य की आत्मा शक्ति-सम्पन्न होती है उसमें स्वतः ही सौन्दर्य की ज्योति फूट पड़ती है, उसके शरीर पर अलंकार भार-स्वरूप प्रतीत होते है। काव्य की आत्मा भाव एवं निरन्तर गति-शील कथावस्तु होती है। जिन कवियों का भाव-पक्ष दुर्बल होता है, कथावस्तु में सतत प्रवाह नहीं होता वे ही अलंकारों का आश्रय लेते हैं।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि काव्य में अलंकारों की आवश्यकता है ही नहीं। अनिन्द्य-सुन्दरी भी केश, नयन, ओष्ठ आदि के प्रसाधन तथा कतिपय आभूषणों के प्रयोग से और भी अधिक सुन्दर हो उठती है,[3] इसी प्रकार सीमा के भीतर अलंकारों

---

१. डा० राजकुमार पाण्डेय—रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ३३९ एवं डा० रामकुमार वर्मा—विचार-दर्शन, पृ० १८।

२. मानस—२-१५-१—६।

३. रुय्यक—हारादिवद् अलंकारः सन्निवेशो मनोहरः। ५-१ (हारादि के समान अलंकार का योग मनोहर होता है।)

का प्रयोग काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि करता है। ऐसा ही काव्य चिरस्थायी एवं ग्राह्य होता है।[1]

अलंकार का महत्त्वपूर्ण उपयोग है अभिव्यक्ति को सशक्त एवं अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर बनाना। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे भाव सरल भाषा में स्वप्रकाशन नहीं कर पा रहे हैं, ऐसी स्थिति में अलंकार की सहायता से पाठकों के समक्ष कोई बिम्ब प्रस्तुत कर कवि अपने भाव या वस्तु को सुगमता के साथ पाठक तक सम्प्रेषित कर लेता है। राम-वियोग में छटपटाते दशरथ कौशल्या के प्रिय प्रबोध-वचन सुनकर दुःसह यंत्रणा के मध्य कुछ शान्ति पाकर आँख खोल देते हैं। तुलसीदास ने पानी के बाहर छटपटाती हुई मछली पर ठण्डे पानी के छींटों की उत्प्रेक्षा द्वारा इसे सफल रूप में व्यक्त किया है—

प्रिया वचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन-मलीन जनु सींचत सीतल वारि॥ २-१५४

पूर्वाचलीय-रामायणें उस समय लिखी गयी, जबकि भाषाएँ अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था से बहुत आगे नहीं बढ़ सकी थी। अभी भाषा को घिस-मांज कर चमकाने का प्रयास नहीं हुआ था। इस प्रकार का प्रयास तो आगे हुआ। लेखकों का लक्ष्य था सुचारु-रूप से कथा-वर्णन। यही कारण है कि पूर्वाचलीय-रामायणों एवं साथ ही रामचरितमानस में भी भाषा की चटक-मटक एवं शाब्दिक चमत्कार की ओर ध्यान नहीं दिया गया। पूर्वाचलीय-रामायणों में शाब्दिक-अलंकार एक प्रकार से प्रयुक्त हुए ही नहीं है। मानस में भी अर्थालंकारों का ही आवश्यकतानुसार प्रयोग हुआ है, किन्तु मानस के रचनाकाल तक हिन्दी-भाषा पर्याप्त परिमार्जित हो चुकी थी, भाषा में अलंकृति भी दिखायी देने लगी थी। तुलसीदास ने भी अनेक प्रकार के असंख्य-अलंकारों का प्रयोग किया है। मानस को ध्यान-पूर्वक पढ़ने पर प्रतीत होता है कि उन्हें इन तीन कवियों की अपेक्षा काव्यशास्त्र का अधिक ज्ञान था। उनके कथन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।[2]

शब्दालंकारों का बहुल प्रयोग मानस में देखा जाता है। अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तवदाभास, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति आदि अनेक अलंकार मानस में प्रयुक्त

---

१. दण्डी—काव्य कल्पान्तरस्थायी जायते सदलंकृति (सदलंकृत काव्य चिरस्थायी हो जाता है)—१-१९।
वामन—काव्यं ग्राह्यमलंकारात् (अलंकार के कारण ही काव्य ग्राह्य होता है।)—१-१-१।

२. आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबन्ध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥ १-८-९-१०

हुए हैं। अर्थालंकारों की तुलना में इनका प्रयोग कम हुआ है और जहाँ हुआ भी है वह सहज अयत्नसाध्य है, चमत्कार के लिए नहीं।[1]

अर्थालंकार के प्रयोग द्वारा भाव एवं वस्तु की सफल व्यंजना ही सभी रामायणकारों की कृतियों में दिखायी पड़ती है। माधव कन्दली एवं शंकरदेव जहाँ भावों के वर्णन में तन्मय हो गये हैं, वहाँ उन्होंने बिना किसी अलंकार के भी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। सीता की परीक्षाओं से सम्बन्धित प्रसंग पठनीय हैं।

असमीया-रामा० में धूम्राक्ष हनुमान से कहता है, आज लंकादाह का प्रतिशोध तुझसे लूँगा। हनुमान उसकी धमकी को थोथा समझकर शरत्कालीन मेघों के गर्जन की उपमा देते हैं। इस ऋतु के बादल केवल गरजते हैं, बरसते नहीं—

शरत् कालर मेघ मिछात गर्ज्जस। ५१९८

रावण-वध के उपरान्त सीता पूर्ण श्रृंगार कर राम के पास लायी गयीं किन्तु राम का अभिप्राय इंगित से समझकर वे डर से काँप गयीं एवं स्वेद-सिक्त हो गयीं। उनके चन्द्र-मुख की शोभा इस प्रकार घट गयी जैसे पूर्णिमा का चाँद बादलों के आच्छादन में तेज-हीन हो जाता है—

राघवर अभिप्राय इंगित ते जानि। घामिला कम्पिला गाव डरिला गोसानी॥
श्रीहानि भैला मुख मलिनता चन्द। मेघ येन ढाकिलेक पूर्णिमार चान्द॥[2]

बँगला-रामा० में जहाँ भावों की प्रधानता है वहाँ भाषा सहज निरलंकृत हो गयी है। कहीं-कहीं एकाध अर्थालंकारों का प्रयोग है। अपने बच्चों से बिछुड़कर कठोर बाघिन भी पागल-सी होकर आकुल-निनाद करती है। राम से बिछुड़कर माताओं की भी यही स्थिति है—

वार्त्ता पेये आइल राजार यत रानी। डम्बूरे हाराये येन फुकारे बाघिनी॥

पृ० ८१

रावण हँसता था तो दस जोड़े दाँत चमक जाते थे। वर्षा-ऋतु के समय बंगाल में केतकी फूल अत्यधिक मात्रा में खिल उठता है। रावण का विपुल हास्य चित्रित करने के लिए इसी की उपमा दी गयी है—

दशमुख मेलिया रावण राजा हासे। केतकी कुसुम येन फुटे भाद्र मासे॥

पृ० ६०

उड़िया-रामा० में क्रोध को मूर्तिमन्त करने के लिए साँप की उपमा दी गयी है। लाठी पटकने पर साँप बड़े जोर से फुफकारता है, इसी प्रकार लक्ष्मण भी क्रोध

---

१. तुलनीय, डा० राजकुमार पांडेय—रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ३७८।
२. असमीया-रामा०—६४७५।

से फुफकार रहे हैं—

यष्ठि प्रहारन्ते येह्ले गर्जइ पन्नग । ४-५६

महासती सीता अत्यन्त पवित्र हैं, दुराचारी-पापी रावण के यहाँ वन्दिनी होकर वे ऐसी प्रतीत हो रही हैं, जैसे कि किसी मद्यप के हाथ वेदपोथी पड़ गयी हो—

मदुश्रा हातरे ये थोइलु वेदपोथि । ५-१७

मानस में एक तो लेखक स्वयं ही मार्मिक अनुभूति के साथ भावों का वर्णन करता है, दूसरे वह हीरे की कनी से कटे हुए ऐसे उपमान जड़ देता है, जिससे कि अभिव्यक्ति अत्यन्त सशक्त हो उठती है। शोकग्रस्त दशरथ की आकुल स्थिति का निम्न प्रकार से विम्ब प्रस्तुत किया गया है—

कंठु सूख मुख आव न वानी । जनु पाठीनु दीन विनु पानी ॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेयी । मनहुँ धाय महुँ माहुर देई ॥
राम राम रट विकल भुआलू । जनु विनु पंख विहंग वेहालू ॥[1]

राजा का कंठ सूख गया है, मुँह से वोल नहीं निकल रहा है। मानो पानी के विना पहिना नामक मछली तड़प रही हो। राजा वैसे ही छटपटा रहे हैं, उस पर कैकेयी वार-वार कुछ-न-कुछ कहकर उनकी वेदना को और वढ़ा देती है, मानो घाव में विष घोल देती है। राजा व्याकुल होकर राम-राम रट रहे हैं। उनकी वही स्थिति है, जो पंख-हीन पक्षी की होती है। पक्षी के प्राण मानो पंख में वसते हैं, विना पंख के वह जीवित है किन्तु जीवन-रक्षा का मुख्य साधन छिन्न होने से वह अत्यधिक व्याकुल है। दशरथ भी जीवित हैं किन्तु प्राणाधार राम से उनका चिर-विछोह हो रहा है।

मनुष्य के शरीर में आँखों का विशेष महत्त्व है। ईश्वर ने आँखों की रचना भी ऐसी की है कि सामान्यतः उस पर आघात नहीं हो सकता। किसी प्रकार के भी आकस्मिक आघात के साथ ही पलक झपक कर उनकी रक्षा करते हैं। राम लक्ष्मण और सीता की वड़े यत्न के साथ सँभाल करते हैं, इस भाव को पलक और आँख के उपमान से तुलसीदास ने स्पष्ट किया है।

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसें । पलक विलोचन गोलक जैसें ॥ २-१४१-१

कहीं-कहीं तुलसीदास ने वड़े-वड़े रूपक वाँधे हैं,[2] यहाँ साहित्यिक सौन्दर्य नष्ट होता है किन्तु पाण्डित्य का परिचय मिलता है। ऐसे स्थलों पर भी अलंकारों का प्रयोग चमत्कार के लिए न होकर वस्तु-व्यंजना के लिए होता है। भक्ति के आदेश एवं स्वमत प्रतिपादन के उत्साह में तुलसीदास ने लम्वे रूपकों एवं उपमा-समूह का

---

१. मानस, २-३४-२,३ एवं ३६-१।
२. रामनाम-माहात्म्य, निर्गुण-सगुण, संत-असंत, ज्ञान-भक्ति, रामचरित-मानस आदि से सम्वन्धित प्रसंग।

प्रयोग किया है। ऐसे स्थल पर भी उनकी अपूर्व प्रतिभा लक्षित होती है, यद्यपि कथा-प्रवाह की एकता की दृष्टि से ये प्रसंग अधिक वांछनीय नहीं हैं।

अप्रस्तुत-योजना— आधुनिक शब्दावली में उपमेय और उपमान को ही प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत कहा जाता है। प्रस्तुत [भाव अथवा वस्तु] के सौन्दर्य एवं स्वरूप-बोध के लिए ही अप्रस्तुत की योजना होती है।

डा० नगेन्द्र ने लिखा है – अब किसी कवि के अप्रस्तुत-विधान की योजना करते समय कौन-सा अलंकार अथवा कितने अलंकार प्रयुक्त हुए हैं? यह खोज करना विशेष अर्थ नहीं रखता और वास्तव में इस नाम-परिगणन से काव्य के कलात्मक स्वरूप पर कोई विशेष प्रकाश भी नहीं पड़ता। उसके लिए तो हमें यह जानना चाहिए कि कवि ने .पने कथन को सप्रभाव बनाने के लिए किस प्रणाली का आश्रय लिया है और उसका मनोवैज्ञानिक आधार क्या है?[1]

प्रत्येक कवि की अप्रस्तुत-योजना उसके देश, काल, समाज एवं संस्कृति से प्रभावित होती है। अन्य भारतीय कवियों के समान हमारे रामायण-लेखकों ने भी जिन उपमानों का संग्रह किया है उन्हें निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

१. प्राकृतिक उपमान — कमल, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, बादल, विद्युत, इन्द्र-धनु, सर्प, सिंह, गज, मृग, कोयल, कपोत आदि।

२. पौराणिक या धार्मिक—शिव, शक्ति, इन्द्र, विष्णु, रोहिणी, शची, कुबेर आदि।

प्रथम प्रकार के भी दो भेद किये जा सकते हैं—१. परम्परानुमोदित एवं २. मौलिक। मौलिक उपमानों में उपर्युक्त दोनों प्रकारों के अतिरिक्त अन्य उपमानों का भी प्रयोग हो सकता है।

प्राकृतिक-उपमानों से युग-युग का साहचर्य होने से वे हमारी अभिव्यक्ति के साथ घनिष्ठता से सम्बद्ध हो गये हैं। इसी प्रकार पौराणिक आख्यान सुनते-सुनते क्रोध-पराक्रम आदि के साकार-स्वरूप देवताओं के सम्बन्ध में हमारी धारणा बद्धमूल हो गयी है, अतएव हम प्रायः क्रुद्ध व्यक्ति के लिए शंकर एवं पराक्रमी के लिए इन्द्र की उपमा देते हैं।

असमीया-रामायण में अप्रस्तुत – इस रामायण में उपलब्ध कुछ उपमानों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—१. पराक्रम के लिए महादेव, इन्द्र और सिंह। २ सौन्दर्य के लिए चन्द्र, सूर्य, तारा, कमल आदि। ३. ऐश्वर्य के लिए कुबेर। ४. सुलक्षणी स्त्रियों के लिए शची, रोहिणी, तिलोत्तमा, पार्वती, लक्ष्मी। ५. स्त्री-पुरुष के लिए गजेन्द्र-हस्तिनी, चन्द्र रोहिणी, कश्यप-अदिति, गौरी-शिव, मेघ-शशि या मेघ-विद्युत, आदित्य-छाया। ६. निस्सार वस्तु के लिए मट्ठा, जगत की

---

१. डा० नगेन्द्र—साकेत एक अध्ययन, पृ० १४०।

निस्सारता के लिए जल-बुद्बुद । ७. प्रतिपक्षी से तुलना के लिए सिंह-शृगाल, सिंह-गज, सिंह-मृग । ८. वत्सला माता के लिए रँभाती हुई गाय । ९. सुन्दरी कैकेयी के कपटी हृदय के लिए अमृत-घट में विष । १०. दुःख-प्रकाश के लिए छिन्न-वृक्ष-सा पतन, शिशिर से नष्ट कमल । ११. नाशोन्मुख के लिए नदीतीर स्थित वृक्ष आदि । लेखक का मौलिक सूक्ष्म-निरीक्षण भी यत्र-तत्र प्रकट हुआ है ।

छिपकर आघात करने वाले शत्रु के लिए पानी का काँटा बताना—पानीर-कण्टक विन्धिले से जानि—२५१० । वानरों की मैत्री की अस्थिरता की तुलना जल में खींची हुई रेखा से करना—जले रेखा दिले येन गुछे तेतिक्षण-२७१२ । अत्यधिक छटपटाते हुए व्यक्ति की स्थिति को वन से ताजा पकड़े हुए हाथी की भाँति बताना—प्रथमे धरिल येन अरण्यर हाती, साथ ही ऐसे व्यक्ति की निःश्वासों के लिए ठठेरे की धोंकनी से तुलना—निःश्वास फोकारे येन ठाठारिर भाटि—२१०९ । व्यर्थ-आस्फालन के लिए क्वाँर के छूँछे बादलों का गर्जन—शरत कालर मेघ मिछात गर्ज्जस—५१९८ । असम में शाक्त-साधना का प्रभाव रहा है । विनाशोन्मुख व्यक्ति के लिए अष्टमी के बकरे की तुलना दी गयी है—अष्टमीर छाग—२१०३ ।

बँगला-रामायण में :

इस रामायण में भी पराक्रम, सौन्दर्य, कोमलता, योग्य-अयोग्य आदि के लिए प्रायः उपर्युक्त रामायणों के समान ही उपमानों का प्रयोग हुआ है । थोड़े से उदाहरण प्रस्तुत हैं—शस्त्र की झंकार के लिए वर्षाकाल में बिजली-७४ । पति-पत्नी, मेघ-बिजली-१८१ । सौन्दर्य के लिए तारों के मध्य चन्द्रमा-१६८ । पराक्रम के लिए सिंह-१७१ । घायल के लिए वसन्त का किंशुक-१६९ । प्रसन्नता के लिए जलधर को देख कर मयूर की स्थिति-२१६ । शोकग्रस्त के लिए कदली की भाँति गिरना-११६ । योग्य-अयोग्य के लिए गरुड़-वायस, सुधा-कांजि, कंचन-लोहा, ब्राह्मण-चंडाल, समुद्र-खाई, सिंह-श्वान, आदि ।

बँगला-रामायण में उपमानों का प्रयोग प्रायः परम्परागत है, नवीनता का और साथ ही निरीक्षण-शक्ति का अभाव है । दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) साँप के विष का जोर रोकने के लिए तागा बाँधकर दूषित-रक्त निकाल दिया जाता है । यदि सिर में सर्पदंश हुआ तो क्या किया जाए, कहाँ तागा बाँधा जाए ! किसी अपराधी के लाइलाज हो जाने पर इसकी उपमा दी है—

शिरे कैल सर्पाघात कोथा बाँधवि तागा—पृ० २७७

(२) छाती पर बाण खाये हुए सैनिक की स्थिति चर्खी के घूमने और पंख-भंग पक्षी के उड़ने के समान बतायी गयी है—

बुके बाण बाजिया नाटाइ हेन घुरे । डाना भाङ्गा पाखी येन उड़े धीरे-धीरे ॥[1]

---

१. बँगला-रामायण—७७ ।

उड़िया-रामायण में :

(१) पराक्रम के लिए—सूर्य, अग्नि, यम, सिंह, इन्द्र । (२) सौन्दर्य के लिए, चन्द्र, कमल, तिलफूल, शंख, चम्पा । (३) कोमलता के लिए शिरीष-पुष्प, कमल । (४) पति-पत्नी के लिए चन्द्र-रोहिणी, आदित्य-छाया, नीलमेघ-बिजली । (५) योग्य-अयोग्य की तुलना के लिए काँच-मणि, पीतल-स्वर्ण (६) पीड़ित के सहारे के लिए, दरिद्र की निधि, समुद्र की नाव, अन्ध की लकुटि होना । (७) नाशोन्मुख व्यक्ति के लिए छिन्न-तरु-२-४३ ।

उड़िया-लेखक ने भी मौलिक उपमानों का प्रयोग कर सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति का भी परिचय दिया है ।

(१) पुत्रों को जोड़कर एक कार्त्तिकेय बनाने की क्रिया के लिए चुम्बक द्वारा खींचे गये लोहे के टुकड़ों के समान बताया है—

चुम्बक पथरे येह्ने लौहरे लागय—१-१०४

(२) राम-भरत के अटूट बन्धुत्व के लिए जल की उपमा दी गयी है । कोई जल को कितना ही क्यों न पीटे किन्तु वह अलग नहीं हो सकता—

पानि कि पिटले कि से वेनि भाग होइ—२-३६

(३) आनन्द में निरानन्द के लिए दूध में नमक की उपमा का प्रयोग—२-६७ ।

उड़िया-लेखक ने नारी-सौन्दर्य के वर्णन करने में अनेक उपमान जुटाये हैं । सन्देह अलंकार का भी प्रचुर प्रयोग है । असमीया-रामायण जैसी सूझ-बूझ का कुछ अभाव है ।

०तुलसीदास की अप्रस्तुत-योजना में उनका सूक्ष्म-निरीक्षण— प्रस्तुत का सफल बिम्ब उपस्थित करने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है—कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति और उसका यथास्थान अनायास प्रयोग । बहुत से लेखकों का निरीक्षण बहुत सूक्ष्म नहीं होता, यदि होता है तो यथास्थान प्रयोग करने की उनमें क्षमता नहीं होती । बहुत से ऐसे व्यापार होते हैं जो सभी की दृष्टि में पड़ जाते हैं, किन्तु काव्य में उनका उपयोग सभी नहीं कर पाते ।

तुलसीदास ने कृषि, विभिन्न जातियों के स्वभाव, जीवों, वनस्पतियों के गुण, नौ-विद्याज्ञान आदि से सम्बन्धित अप्रस्तुतों की योजना द्वारा अनेक सफल बिम्ब प्रस्तुत किये हैं । समस्त मानस उनके इस प्रकार के अनुभवों से भरा पड़ा है । तुलसीदास ने नये प्रयोग भी किये हैं किन्तु प्रयोग के लिए प्रयोग उनका उद्देश्य नहीं है । उनका ज्ञान अपूर्व था एवं उसका सहज उपयोग भी कम अपूर्व नहीं है ।

कृषि-विषयक अप्रस्तुत – धनुष पर डोरी न चढ़ा सकने के कारण रनिवास उदास था किन्तु राम ने धनुभंग कर उसकी निराशा दूर कर इस प्रकार हर्षित किया,

जैसे सूखते धानों में पानी पड़ गया हो—

सखिन्ह सहित हरषीं अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी ॥ १-२६२-३

असमीया-रामायण में भी इस प्रकार का उपमान प्रयुक्त हुआ है—खर लागा धान येन वरिषण जले। (४६३०)

जीव-वनस्पति-विषयक—मानस में मछली से सम्बन्धित कई उपमान दिये गये हैं—किसी दुःखी हृदय के चित्रण के लिए वर्षा के प्रथम जल से व्याकुल हुई मछली[1] अथवा जल से बाहर छटपटाती हुई मछली[2] आदि।

बिच्छू का विष पीड़ा बढ़ाता हुआ बड़ी तीव्रगति से ऊपर की ओर बढ़ता है, इसी प्रकार राम के वनवास का तीक्ष्ण दुःखद समाचार शीघ्र ही चारों ओर फैल गया।

नगर व्याप गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥ २-४५-६

जोंक—राम के सरल वचनों को कैकेयी कुटिल समझती है, जैसे कि जल समान होता है किन्तु जोंक का स्वभाव है कि वह टेढ़ी ही चलेगी—

चलइ जोंक जल वक्रगति जद्यपि सलिलु समान। २-४२

मधुमक्खी—राम के वनवास से नगर-निवासी दुःखी, मलिन-मुख एवं दुर्बल हो गये हैं। उनकी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए उन मधुमक्खियों को प्रस्तुत किया गया है, जिनका अथक-परिश्रम से संचित मधु किसी ने छीन लिया है—

तन कृस मन दुखु बदन मलीने। विकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥ २-७५-४

मयूर—सुवेश किन्तु कपटी व्यक्ति की तुलना मयूर से की है। मयूर देखने में अत्यन्त सुन्दर होता है किन्तु उसका आहार साँप होता है।

तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ॥ १-१६१ (ख)

पाटकीट—पाटकीट से रेशम की प्राप्ति होती है, इसलिए लोग ऐसे अपावन कीट को भी पालते हैं। अपना परम हित जानकर नीच-व्यक्ति के साथ भी मैत्री कर लेनी चाहिए।

पाट कीट तें होइ तेहि ते पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥ ७-९५ (ख)

बाज—शिकारी लोग बाज की आँखों को ढके रहते हैं, जब किसी पक्षी का शिकार कराना होता है तो उसकी ओर संकेत कर उसका आच्छादन हटा देते हैं और वह झपट पड़ता है। इसी प्रकार कैकेयी अपने कठोर वचन-रूपी बाज को छोड़ने के

१. नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी ॥ २-५३-४।
२. कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी ॥ २-३४-२।

पहले शपथ ले लेती है, मानो वचन-रूपी बाज का आच्छादन हटा देती है।[1]

घमोई—कुलकलंक के लिए बाँस की जड़ में घमोइ (कीट) होना—

बेनु-मूल सुत भयउ घमोई। ६-६-३

कदली—नीच डाँटने पर ही मानता है, नम्रता से नही। जैसे कि कदली तभी फल देता है जबकि जड़ से काट दिया जाता है। तभी दुबारा पल्लवित होकर वह फलित होता है—

काटेंहि पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु डाटेंहि पइ नव नीच॥ ५-५८

नौविद्या-विषयक—समुद्र में फँसे हुए जहाज,[2] अनुकूल वायु पाये हुए जहाज[3] आदि के उपमान उनकी इस क्षेत्र की सूझ के द्योतक है। प्रतिज्ञा-पूर्ति न होते देख निराश जनक को धनुभंग से प्रसन्नता हुई, मानो तैरते हुए व्यक्ति ने थाह पा ली हो, पैरत थकें थाह जनु पाई। (१-२६२-४)

राम रात को चुपचाप रथ हाँककर चले गये। प्रातः बेचारे नगरवासियों को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे डूबते जहाज पर बैठे वणिक् जनों को होता है—

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥ २-८५-३

चन्द्र को देख समुद्र में ज्वार आना,[4] नौकारूढ़ व्यक्ति को संसार चलायमान दिखायी पड़ना[5] आदि व्यापारों का भी उन्होंने उपयोग किया है।

उनके अन्य अप्रस्तुतों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है, फूल दायें और बायें दोनों हाथों को समान रूप से सुवासित करते है, इसी प्रकार सज्जन सत्-असत् सभी के प्रति उदार होते हैं।[6] कैकेयी आसन्न-विपत्ति को उसी प्रकार नही देख पा रही है जैसे कि हरे तिनकों को चरने वाला बलि-पशु नही देख पाता।[7] जो पहले से ही भरा हुआ बैठा हो उसे अप्रिय बात ऐसे ही तीव्र कष्ट देगी, जैसे किसी ने पका हुआ बाल-तोड़ छू दिया हो।[8] प्रियतम से बिछुड़ने पर हृदय विदीर्ण होना, जैसे कि नीर के वियोग में पंक में दरारें पड़ जाती है।[9] तुलसीदास ने यह उपमान जायसी से लिया

---

१. बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली। २-२७-८।
२. राम वचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ विकल जहाजू॥ २-२४८-१।
३. सुनि गुरगिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥ २-२४८-२।
४. नौकारूढ़ चलत जग देखा। ७-७२-५।
५. सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर विधु बाढ़इ जोई॥ १-७-१४।
६. मानस—१-३ (क)।
७. लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलि पसु जैसें॥ २-२१-२।
८. दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥ २-२६-४।
९. हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीरु। २-१४६

है।[१] अग्नि सिर पर धूम एवं पहाड़ तिनके धारण करते हैं इसी प्रकार प्रभु भी नीच जनों का आदर कर लेते हैं।[२] पराधीन-स्थिति के लिए दाँतों के मध्य जीभ की उपमा अत्यन्त सुन्दर है, बेचारी को कार्य तो करना ही पड़ता है, जरा भी चूकी कि पिसी, साथ ही वन्दिनी भी रहती ही है।[3] अधिक अपमान ज्ञानी को भी क्रुद्ध कर देता है, जैसे कि अत्यन्त घर्षण से चन्दन में भी आग लग जाती है।[४] विनाशोन्मुख व्यक्ति के लिए कूलद्रुम होने की बात तुलसी ने भी कही है। (६-२२-१)

छन्द

छन्द छद् धातु से बना है, जिसका अर्थ आवृत करने या रक्षित करने के साथ-साथ प्रसन्न करना भी होता है। साहित्य के क्षेत्र में इस अन्तिम अर्थ को ही ग्रहण किया जाता है।

अक्षर, अक्षरों की संख्या, एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छन्द कहलाती है।[५]

जिस प्रकार लौकिक-संस्कृत में अनुष्टुप, प्राकृत में गाथा और अपभ्रंश में दोहा प्रचलित था, उसी प्रकार हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में दोहा-चौपाई एवं पूर्वांचलीय-काव्यों में पयार छन्द का प्रचार रहा है।

पूर्वांचलीय-रामायणों में प्रमुख छन्द पयार या उसी की जाति का १४ वर्णीय छन्द है। मानस के भी प्रमुख छन्द दोहा-सोरठा एवं चौपाई हैं। दोहा-सोरठा में विशेष भेद नहीं है तथा चौपाई से उनकी संख्या भी कम है। इस प्रकार मानस का भी प्रमुख छन्द चौपाई सिद्ध होता है।

दोहा-चौपाई का प्रयोग तुलसीदास के पूर्व सूफी-कवियों ने किया है किन्तु इसके भी पहले पूर्वी बौद्ध-सिद्ध इसका प्रयोग करने लगे थे। दोहा अपभ्रंश का प्रिय छन्द है। अपभ्रंश काव्य कड़वक-बद्ध है। पज्झटिका या अरिल्ल छन्द की कई पंक्तियाँ लिखकर कवि एक घत्ता का ध्रुवक देता है यही कड़वक है।[६] आगे कवियों ने चौपाइयों के साथ दोहे का घत्ता लगाना प्रारम्भ किया। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि दोहा मुक्तक का सफल वाहन है, यह प्रवन्ध या कथानक के उपयुक्त छन्द नहीं है। इसी कथानक सूत्र को जोड़ने के लिए १६वीं शती मे दोहों के बीच-बीच

---

१. सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइकै बिहराई।। नाग० वियोग खंड।
२. प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं।। २-२८४-३।
३. सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।। ५-६-१।
४. अति संघरपन जौं कर कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई।। ७-११०-१६।
५. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २६०।
६. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी-साहित्य का आदिकाल, तृ० सं०, पृष्ठ १०१।

में चौपाई जोड़कर कथानक को क्रम-बद्ध करने का प्रयास किया गया है। चौपाई कथानक छन्द है, इसका पूर्वरूप अरिल्ल है।[1]

दोहा-चौपाई का विकास कालिदास के विक्रमोर्वशीय-नाटक के अपभ्रंश-छंदों में खोजा जाता है।[2] ९-१०वीं शताब्दी तक दोहा का बहु-प्रचार सिद्धों की कविता में देखा जाता है। द्विवेदीजी के मत से दोहा-चौपाई में लिखने की प्रथा पूरब से ही पश्चिम की ओर आयी है।

पयार छन्द :

व्युत्पत्ति एवं लक्षण—डा० सुनीति कुमार चटर्जी के मतानुसार पयार छन्द पूर्वी-मागधी के किसी छन्द से निःसृत है। बौद्धचर्या-गीतों पर बँगला-भाषी भी अपना दावा सिद्ध करते हैं। चर्यागीतों में प्रयुक्त छन्द पादाकुलक १६ मात्राओं का है, डा० चटर्जी इस छन्द से उत्तरी-भारत के छन्द चौपाई का जन्म मानते हुए भी इससे पयार का सम्बन्ध भी जोड़ते हैं।[3] पादाकुलक की १६ मात्राओं एवं पयार के १४ वर्णों का साम्य हो सकता है। चटर्जी महाशय ने एक अन्य स्थल प पयार की व्युत्पत्ति सं० 'पदकार' शब्द से मानी है,[4] बँगला शब्द-कोश भी उनका समर्थन करते हैं। प्रस्तुत लेखक को लिखे गये पत्र में डा० चटर्जी कहते हैं—'पूरी पंक्ति के पढ़ने में लगने वाले समय तथा विरामों का ध्यान रखने पर १६ लघुमात्राओं की उपलब्धि होती है न कि १४ की।' उन्होंने ऐसा ही छन्द भोजपुरी, मैथिली और साथ ही मगही में भी प्रचलित बताया है।

पूर्वांचल के छन्दों में अक्षर की मात्रा एवं छन्दोबन्ध की प्रकृति बहुशः श्वासाघात पर निर्भर करती है। हिन्दी एवं संस्कृत में शब्दों की मात्राओं की संख्या निश्चित रहती है, किन्तु पूर्वांचलीय छन्द की नहीं। संस्कृत के वर्णिक छन्दों में गणों का प्रयोग होता है अतएव उनमें भी मात्रा-वृत्त के गुण आ जाते हैं। पयार छन्द विशुद्ध वर्णिक है, इसकी समानता हिन्दी के घनाक्षरी छन्द से की जा सकती है। कवि या पाठक छन्द को पढ़ाते या गाते समय स्वर के उतार-चढ़ाव के अनुसार वर्णों का दीर्घ या लघु उच्चारण कर लय की रक्षा करता है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बँगला अक्षरों की मात्राएँ बंगाली-स्त्रियों के केशों के समान बतायी हैं, जो कभी लपेटकर जूड़े के रूप

---

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, तृ० सं०, पृ० १०४।
२. महं जाणिअं मिय लोयणी, णिस यरु कोइ हरेइ।
जाव ण णव जलि सामल, धाराहरु वरसेइ॥ वि० ४-८।
रे रे हंसा किं गोइज्जइ, गइ अणुसारे महं लक्खिज्जइ। वि० ४-३२।
३. श्री सुनीतिकुमार चटर्जी, दि ओ० एंड डे० ऑफ़ दि बेंगाली लेंग्वेज, पृ० २८५।
४. वही, पृ० ६६८।

में बाँध लिये जाते हैं और कभी खुले हुए बिखरे रहते हैं।[1]

पयार छन्द दो पंक्तियों का होता है। प्रत्येक पंक्ति में १४ वर्ण होते हैं। प्रत्येक पंक्ति में ८ और ६ की यति पर दो पद (चरण) होते हैं। पद पर्वो और पर्व पर्वांशों में विभाजित होता है। यह विभाजन स्वर-गाम्भीर्य के अनुसार होता है। प्रत्येक पर्व का स्वर-गाम्भीर्य प्रारम्भ में अधिक और अन्त में सब से कम होता है। पर्व में भी शब्द अथवा अक्षरों में विराम रहता है, जिससे पर्वांश बनते हैं। यति के अनुसार विभाजन इस प्रकार होता है---

पंक्ति—पूर्ण यति
पद—अर्ध यति
पर्व—लघु यति
पर्वांश—उपयति

उदाहरणस्वरूप कृत्तिवास के पयार की एक पंक्ति प्रस्तुत है।

चारि : पुत्र / लये राजा // सुखी : बहुतर

| पर्वांश-१ पर्वांश-२ | पर्वांश-३ पर्वांश-४ | पर्वांश-५ पर्वांश-६ |
| पर्व-१ पर्व-२ | पर्व-३ |
पद-१ पद-२

०असमीया-भाषा में पयार को प्रायः पद कहा गया है, जिसका लक्षण हेमकोश में इस प्रकार दिया गया है, दो चरणों का छन्द जिसके प्रत्येक चरण में १४ वर्ण एवं अन्त्यानुप्रास रहता है।[2] इस कोश में पयार शब्द भी है जिसका अर्थ दो चरणों का छन्द दिया गया है। पद एवं पयार छन्द अभिन्न है। असमीया-रामायण में पयार के लिए पद शब्द का ही प्रयोग किया गया है किन्तु माधव कन्दली लंकाकाण्ड के अन्त में स्वीकार करते हैं कि राजा महामाणिक्य के अनुरोध से उन्होंने रामायण को पयार छन्द में लिखा—

रामायण सुपयार श्री महामाणिके ये
वराह राजार अनुरोधे ।। छवि छन्द ६६८५

०बँगला-साहित्य में पयार का प्रयोग साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक देखा जाता है। माइकेल मधुसूदन दत्त एवं रवि बाबू तक ने पयार के सफल प्रयोग किये हैं।

०उड़िया-साहित्य में प्राचीन काल से प्रयुक्त इस छन्द को डा० मायाधर मान-

---

१. श्री अमूल्यधन मुखोपाध्याय, बांग्ला छन्देर मूलसूत्र, पृ० १३-१४।
२. हेमकोश : दुफाँकि कथार प्रति फाँकित चैध्यटा आखर थका आरु ओपरर। फाँकिर शेपर शब्द तचर फाँकिर मिला, एविध असमीया छन्द।

सिंह बंगला का पयार ही मानते हैं।[१] 'सरल ओड़िया अभिधान' में पयार का अर्थ दिया है : 'चतुर्दशाक्षर ओड़िया छन्द:विशेष, संस्कृत श्लोकर पद्यानुवाद।' इसे पहले सारलादास ने, फिर लगभग एक शताब्दी पश्चात् बलराम दास ने प्रयुक्त किया। इन दोनों कवियों ने पयार के प्रयोग में स्वच्छन्दता दिखायी है। सारलादास के किसी-किसी पयार छन्द के प्रथम चरण में १४ तो दूसरे में ३४ वर्ण हैं। उड़िया में इसे दाण्ड-वृत्त कहा गया है। दाण्ड का अर्थ है पथ। पथ में गाये जाने के कारण इसका नाम दाण्ड-वृत्त हुआ और इसी वृत्त में लिखित होने के कारण बलरामदास की उड़िया-रामायण दाण्डि-रामायण कही जाती है।[२] श्री विनय घोष ने लिखा है कि राढ़ से कलिंग जाने वाला पथ दण्ड कहलाता था, यही शब्द उड़िया भाषा के दण्ड अथवा दाण्ड रूपार्थ में प्रचलित है।[3]

ऐसा लगता है कि वर्णों की अनिश्चित संख्या एवं इसके दाण्ड नाम के कारण उड़िया-पंडितजन इसे पयार से असम्बद्ध स्वतन्त्र छन्द मानते हैं, जिसका सृजन किसी पंडित के द्वारा न होकर साधारण जनता द्वारा हुआ है।[४] श्री नीलकण्ठदास कहते हैं कि लोगों में गद्य को भी पद्य की तरह पढ़ने का प्रचलन था, इससे ही हमारा दाण्ड-वृत्त उत्पन्न हुआ है।[५] इसमें सन्देह नहीं कि पयार असम और उड़ीसा देश में परिवर्तित रूप में प्रयुक्त हुआ है, उड़ीसा में उसने कुछ अधिक विकास भी किया किन्तु है यह पयार छन्द ही।

तीनों भाषाओं की रामायणों में प्रयुक्त पयार छन्दों में इन दृष्टियों से समानता है—(१) छन्द में दो पंक्तियाँ होती हैं (२) प्रत्येक पंक्ति में प्रायः १४ वर्णों की योजना का नियम है (३) ८ एवं ६ वर्णों के पश्चात् यति होती है (४) तेरहवें वर्ण पर बलाघात होता है अथवा यह दीर्घ होता है।

प्रस्वर [Accent] के अनुसार तीनों छन्दों को इस प्रकार पढ़ा जा सकता है—

... / ... // .../ .../

प्रत्येक पूर्वांचलीय-रामायण से एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

असमीया—रुचिकर/कर्ण कम्बु // कंठ मनो -/ हर।
नासातिल / फुल जिनि // चिवुक सु -/ न्दर // २८१५

---

१. Called Payar in Bengali and asabari or Kalasa or just 14 lettered metre in Oriya— 45, History of Oriya Literature.

२. 'यह वृत्त या छन्द उड़ीसा के लोकगीतों से अपनाया गया। कुछ लोगों के कथनानुसार यह संस्कृत के 'दंडक' वृत्त से विकसित हुआ।' - कृष्ण चन्द्र बेहेरा—भारती साहित्य, [अक्टूबर ५६] पृष्ठ ६०।

३. पश्चिम बंगेर संस्कृति, पृष्ठ ६१।

४. श्री नरेन्द्रनाथ मिश्र—बलरामदास ओ ओड़िया रामायण, पृ० १५४।

५. श्री नीलकंठदास, ओड़िया साहित्यर क्रम-परिणाम, पृ० २२४।

बँगला—मधुकर / मधुकरी // झंकारे का-/ नने /
अप्सरारा / नृत्य करे // आनन्दित / मने // —पृ० १२८
उड़िया—गंगापाणि / आणि ये खा -// इले तिनि / जण /
बोलन्ति श्री -/ राम गुण // हे वीर ल -/ क्ष्मण // —पृ० २-५०

बँगला भाषा के पयार के बलाघात [Stress] के सम्बन्ध में सुनीति बाबू का कथन है कि बँगला पयार के पहले, पाँचवें, नवें एवं तेरहवें वर्ण पर बलाघात होता है। असमीया एवं उड़िया के पयारों में भी आठवें अक्षर के पश्चात् विराम होकर तेरहवें पर तीव्र बलाघात तो होता है, किन्तु पहले, पाँचवें एवं नवें वर्ण पर बँगला जैसा तीव्र बलाघात नहीं होता। फिर भी उनके मत से पहले एवं नवें वर्ण पर किसी-न-किसी प्रकार का बलाघात रहता है।[1]

रामायणों में प्रयुक्त छन्द :

०असमीया-रामायण में प्रमुख छन्द पयार ही है किन्तु उसमें कुछ अन्य छन्दों का भी प्रयोग है। तीनों असमीया-लेखकों की छन्द-संख्या पद या पयार छन्द के अतिरिक्त इस प्रकार है—

	दुलड़ी	छवि	झुमुर
माधव कन्दली (मुख्य लेखक)	४८	२२	६
शंकरदेव [उत्तर० लेखक)	७	७	—
माधवदेव [आदि० लेखक]	६	५	१

दुलड़ी (अथवा दुलरी)—६-६-८ की यति से बीस वर्णों का वर्णिक छन्द है। इसमें तीन-तीन पर्वों के दो चरण (पंक्तियाँ ?) होते हैं। इसका प्रयोग प्रायः प्रसंग-परिवर्तन, विनय-संस्तुति, माहात्म्य-वर्णन, भक्ति-प्रदर्शन एवं सामान्य तथा आवेशमय वर्णन के लिए हुआ है। किसी-किसी काण्ड की समाप्ति भी इसी छन्द से हुई है। एक उदाहरण—

नमो नमो राम, दूर्व्वादल श्याम
सर्व्वगुणो अनुपाम।
यार गुण नाम, धर्म्म अनुपाम
मुकुति सुखर धाम॥ ६६८८

छवि—यह वर्णिक छन्द ८, ८, १० वर्णों की यति वाला है। इसका प्रयोग भी उन्हीं स्थितियों में हुआ है, जिनका वर्णन दुलड़ी के सम्बन्ध में हो चुका है। इसमें शोक आदि के आवेशमय वर्णन दुलड़ी की अपेक्षा अधिक हुए हैं। कन्दली एवं शंकरदेव ने अपना परिचय भी इसी छन्द में दिया है। कहीं-कहीं दुलड़ी एवं छवि छन्द साथ-

---

१. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, ओ० एंड डे० ऑफ़ बेंगाली लेंग्वेज, पृ० २८६।

साथ प्रयुक्त हुए हैं।

उदाहरण—

सातकाण्ड रामायण, पदबन्धे निवन्धिलो
लम्भा परिहरि सारोधृत।
महामाणिकर बोले, काव्यरस किछो दिलों
दुग्धक मथिले येन घृत॥ ६६८५

हिन्दी में भी छवि नामक छन्द है। इसका अष्टक पद्धरि-लय पर चलता है और इसके अन्त में गुरु-लघु होता है।[1]

अज्ञान चूर्ण,
हो ज्ञान पूर्ण,
मानव समूह,
हो एक व्यूह। (युगवाणी—पन्त)

असमीया के ये दोनों छन्द बँगला के त्रिपदी (अथवा लाचाड़ी) छन्द प्रतीत होते हैं।

झुमरि (अथवा जुमुरी)—केवल माधव कन्दली एवं माधवदेव ने झुमरि छन्द का प्रयोग किया है। बँगला-कोशों में झुमरि को शृंगार-रसात्मक रागिनी विशेष कहा गया है। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी भी इसे एक प्रकार का गीत एवं नृत्य बताते हैं।[2]

श्री टी० एन० शर्मा के मतानुसार झुमुर लघुताल पर गाया जाने वाला समूह-गान है। छोटा नागपुर और उड़ीसा के कुछ अंचलों में यह स्त्रियों का समूह-नृत्य है। असम के चाय-वगीचों में अभी भी उड़िया एवं मुंडा श्रमिकों में इसका प्रचार है। असमीया छन्द झुमरि इसी झुमर राग का अवशेष है। यह छन्द लय और लघुता के कारण झुमुर राग के लिए सुगमतापूर्वक प्रयुक्त हो जाता है।[3]

असमीया-रामायण में प्रयुक्त यह वर्णिक छन्द दो-दो चरणों का है एवं प्रत्येक चरण आठ वर्ण का होता है। माधवदेव द्वारा प्रयुक्त झुमरि में दो-दो चरणों का स्तवक बनता जाता है। कन्दली द्वारा प्रयुक्त झुमरि अथवा जुमुरी छन्द में प्राय: ऊपर से नीचे तक पूरे छन्द में तुकें मिलती हैं, किसी छन्द में चार-चार पंक्तियों की तुकें ही मिलती हैं।

---

१. डा० पुत्तूलाल शुक्ल—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० २४४।
२. श्री सुनीतिकुमार चटर्जी—दि० ओरि० एंड डेव० ऑफ़ बेंगाली लेंग्वेज, पृ० ४८०।
३. श्री टी० एन० शर्मा—एसपेक्ट्स ऑफ़ अर्ली आसामीज लिटरेचर, पृ० १६१।

इस छन्द का प्रयोग वहुत कम हुआ है एवं विस्तार में भी यह लघु है। शंकरदेव ने इसका प्रयोग किया ही नहीं है। माधव कन्दली ने इस छन्द का प्रयोग प्राय: क्रोध अथवा शोक के आवेश के प्रकटीकरण में किया है।

आकाशर पथे यान्ति।
दशदिशे निहालन्ति॥
भये आति चमकन्ति।
क्रन्दन करिया यान्ति॥ ३४२६

०वँगला-रामायण में मुख्यत: पयार का प्रयोग हुआ है। दूसरा छन्द है त्रिपदी, जिसे नर्त्तक, लाचाड़ी अथवा नाचाड़ी भी कहते हैं। पहले लाचाड़ी शब्द ही था, यह लाच (नाच) से बना है।[1] नृत्यकला के एक-दो-तीन संकेत के साथ लाचाड़ि अथवा त्रिपदी की स्पष्ट समानता है। इसी का शुद्ध-रूप नर्त्तक कर दिया गया। तीन पर्व होने के कारण इसे त्रिपदी कहते हैं। डा० दीनेशचन्द्र सेन गीतगोविन्द के छन्दों से इसका गठन मानते हैं तथा इसे लहरी शब्द से विकृत लाचाड़ी स्वीकार करते हैं।[2] यह छन्द भी पयार की भाँति दो चरणों का तुकान्त छन्द है। इसके प्रत्येक चरण के तीन पर्व होते हैं, एवं पर्व में एक और दो की तुकें मिलती हैं।

प्राचीन काल में त्रिपदी के मुख्य दो प्रकार थे—दीर्घ और लघु। दीर्घ-त्रिपदी में पर्व-विभाग ८-८-१० अथवा ८-८-१२ का होता है, तथा लघु-त्रिपदी में ६-६-८ का। कृत्तिवास ने दीर्घ-त्रिपदी में पर्व-विभाग ८-८-१० का माना है।

दीर्घ त्रिपदी—(८-८-१०)

रावणे छाड़िनु आमि, बिनाश करह तुमि
एत बलि हइल अन्तर्द्धान।
नाचे गाये कपि गण, प्रेमानन्दे नारायण,
नवमी करिल समाधान॥ पृ० ४२५

लघु त्रिपदी—(६-६-८)

तवे दुइ दल, कोपे ते पागल,
परस्परे हाराहारि।
अनल निकरे, विरल तिमिरे,
करितेछे मारामारि॥ पृ० ३३७

कृत्तिवास ने एक अन्य प्रकार की त्रिपदी का प्रयोग किया है, जिसे तान-प्रधान त्रिपदी कहते हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त तान-प्रधान त्रिपदी दो प्रकार की है—

१. अमूल्यधन मुखोपाध्याय—वांग्ला छन्देर मूलसूत्र, पृ० १८-१९।
२. दीनेशचन्द्र सेन—बङ्ग भाषा ओ साहित्य, पृ० २६-२८।

प्रथम में ६-६-६ पर विराम होता है और द्वितीय में ८-८-८ पर। किन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त वे छन्द दोषपूर्ण हैं।

तान-प्रधान त्रिपदी—(१)-(६-६-६)

तबे देखि ताहारे, सेइमत द्वारे,
प्लवङ्ग भगन।
तारा तरु शिखरी, करेते धरि,
रहे सुखी मन ॥ पृ० २९५

तान-प्रधान त्रिपदी—(२)-(८-८-८)

अर्द्ध नाभिकूपे लये रे यखन डुबाय
शत शमन आसि तारे
मन कि करिते पारे
पातकी तराते श्रीरामेर नामटि
ओगो एसेछे संसारे ॥ पृ० ४०८

कृत्तिवास ने शोक, प्रसन्नता एवं स्तवन के लिए त्रिपदी छन्द का प्रयोग किया है।

०उड़िया-रामायण में आदि से अन्त तक १४ वर्णों के पयार छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसे दाण्ड-वृत्त भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त किसी भी अन्य छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है। उड़िया आलोचकों का कहना है कि उड़िया कवियों ने प्राय: १४ वर्णों के क्रम का ध्यान नहीं रखा है। यह वचनिका छन्द है, जिसका वाचन हो सकता है, जिसे पढ़ा नहीं जा सकता। इसीलिए इसे लिखा हुआ देखने पर छन्द-विषयक दोष दिखायी पड़ेंगे।

प्रस्तुत लेखक को विशेष दोष नहीं दिखायी पड़े, वर्णों की कम-अधिक संख्या के दोष तो प्रत्येक पूर्वांचलीय-रामायण में मिल जाएँगे। अन्त्यानुप्रास अवश्य ही कहीं-कहीं ठीक प्रयुक्त नहीं हुए हैं—शरीर-आकार, होइ-थाइ, सुत-रेत आदि।[1] डा० मायाधर मानसिंह ने रामायण-पाठ को अशुद्ध बताया है। उनका कहना है कि बलराम दास आदि ने पयार छन्द को स्वतन्त्रतापूर्वक तथा वाचनार्थ प्रस्तुत किया था, अतएव उसमें वर्ण-सम्बन्धी अनियमितताएँ थीं, किन्तु उनके वाचन में कोई व्याघात उत्पन्न न होकर सौन्दर्य ही था। अज्ञान मुद्रकों ने लेखकों का दृष्टिकोण समझे बिना उनकी कविता की विषम-पंक्तियों को लिपिकारों की भूल समझकर पंडितों से संशोधन करा के उन्हें काट-छाँट एवं तोड़-मरोड़ के साथ प्रस्तुत किया है।[2]

---

१ उड़िया-रामायण, १-१३।

२ डा० मायाधर मानसिंह—ए हिस्ट्री ऑफ़ ओरिया लिटरेचर, पृ० ४५।

छन्द के साथ ऐसी तोड़-मरोड़ तो सभी पूर्ववर्तीय-रामायणों के साथ हुई है, किसी का भी पाठ प्राचीनतम पोथी के अनुसार प्रतीत नहीं होता है।

०मानस में मुख्यतः दोहा-चौपाई छन्दों का ही प्रयोग हुआ है किन्तु उनके अतिरिक्त कुछ अन्य मात्रिक एवं संस्कृत छन्दों को भी स्थान दिया गया है।

मात्रिक छंद--चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीतिका, त्रिभंगी, चौपैया, तोमर और डिल्ला (या अरिल्ल)।

वर्णिक वृत्त—अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वंशस्थ, शार्दूल-विक्रीड़ित, स्रग्धरा एवं नगस्वरूपिणी।

सूफी-कवियों ने सात-सात अर्द्धालियों के पश्चात् दोहे का प्रयोग किया है और तुलसीदास ने आठ-आठ के पश्चात्। वे इस नियम का सर्वत्र निर्वाह नहीं कर सके हैं। अर्द्धालियों की संख्या कहीं-कहीं न्यूनाधिक हो गयी है। उत्तरकाण्ड में तो एक स्थल पर ३७ अर्द्धालियों के पश्चात् दोहे का प्रयोग है। कहीं-कहीं एक से अधिक दोहे का भी प्रयोग हुआ है। विषम-अर्द्धालियों के पश्चात् दोहा देखकर तथा कहीं-कहीं यति-गति की अनियमितता आदि देखकर अनुमान किया जाता है कि तुलसीदास को पिंगल-शास्त्र का ज्ञान नहीं था। डा० शम्भूनाथ सिंह का कथन है कि तुलसी ने शब्द, संगीत, लय और भावाभिव्यंजना को ही अधिक महत्त्व दिया है, पिंगल-शास्त्र के नियमों की अवहेलना की।[1]

चौपाई-दोहा-सोरठा छन्दों के पश्चात् हरिगीतिका के प्रयोग का क्रम आता है। 'कवि ने इसके द्वारा मानसी-आख्यान को आगे बढ़ाने का नहीं वरन् व्यापक-रूप से अर्द्धालियों के अंतिम भाग की पुष्टि एवं पुनरावृत्ति का अथवा सारांश देने का कार्य सम्पादित किया है।'[2] मानस के अन्य मात्रिक-छन्दों का प्रयोग कवि की आध्यात्मिक भावना, स्तुति अथवा किसी प्रकार के आवेशमय वर्णन के लिए हुआ है।

संस्कृत-वृत्तों का उपयोग मानस के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ एवं मानस की समाप्ति पर हुआ है। डा० राजकुमार पाण्डेय के कथन का सार निकाला जाए तो संस्कृत-छन्दों के प्रयोग के निम्न तीन लक्ष्य प्रतीत होते हैं—

(१) देवी-देवताओं की प्रसन्नता-सम्पादन के लिए उनकी स्तुति।

(२) आगामी कथा-भाग की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत।

(३) पात्रों के व्यक्तित्वोद्घाटन के लिए उनके शक्ति एवं चरित्र के सम्बन्ध में सूक्ष्म-निर्देशन।[3]

---

१ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूपविकास, पृ० ५५१।

२ डा० राजकुमार पाण्डेय—राम० मा० का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ४०३।

३ वही, पृ० ३९७।

मध्य-मध्य में छन्द-परिवर्तन रस-वृद्धि करता है। पाठक स्तुतियों के लिए अथवा रसभीने-प्रसंगों के लिए इन्हें कंठस्थ कर लेते हैं। तुलसीदास के मंगलाचरण के श्लोक राम, शिवादि की स्तुतियों के लिए विशेष-रूप से प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत-प्रेमियों को भी इन श्लोकों ने आकृष्ट किया है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि सभी रामायण-लेखकों ने लगभग एक मुख्य छन्द का अनुसरण किया है। उड़िया लेखक को छोड़कर सभी ने देवस्तुति, भक्ति-निवेदन, आवेशमय कथन आदि के उद्देश्य से छन्द-परिवर्तन किये हैं। उन्होंने कहीं-कहीं छन्द-विषयक नियमों का उल्लंघन भी किया है, क्योंकि उनके सामने भावाभिव्यंजन मुख्य था। छन्दःशास्त्र के ज्ञान एवं उसके उपयोग की दृष्टि से तुलसीदास को अधिक सफल कहा जा सकता है।

दर्शन और भक्ति

हमारे आलोच्य ग्रंथकारों ने राम की कहानी कहने के लिए रामायणें लिखी थीं। उनके काल तक राम-भक्ति का प्रचार हो चुका था, अतएव उन्होंने भक्तिरस से परिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाकर रामचरित का गान किया। उनके ग्रंथों में 'दर्शन' अथवा 'सम्प्रदाय' ढूंढ़ना व्यर्थ है, किन्तु मानसकार गो० तुलसीदास के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उन्होंने समस्त ग्रन्थ के मध्य इतना अधिक दार्शनिक-विश्लेषण किया है कि काव्य-तत्त्व को हटा दिया जाए तो मानस एक दर्शन-ग्रन्थ ही हो जाए। उसके इसी गुण के कारण खींचतान कर गो० तुलसीदास को कोई अद्वैतवादी, कोई विशिष्टाद्वैतवादी और कोई द्वैताद्वैतवादी बताता है। वस्तुतः तुलसीदास किसी भी सम्प्रदाय के नहीं थे। उन्होंने दर्शनों का अध्ययन किया था, उनकी बुद्धि को जो अच्छा लगा और व्यवहार-पथ में जो सहायक जान पड़ा, उसे ही उन्होंने अपना लिया।

जब पूर्वाचलीय रामकथा-लेखकों ने दर्शन-तत्त्व को विशेष महत्ता नहीं दी, तो उसका गोस्वामीजी के दार्शनिक-सिद्धान्तों से तुलनात्मक-अध्ययन असमीचीन है, फिर भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिन पर विचार किया जा सकता है।

राम-सीता-विषयक धारणाएँ

सगुण-निर्गुण—रामायणकारों के दृष्टिकोणों में एक बहुत बड़ी समानता है शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य के सिद्धान्तों के समन्वय की। शंकर के मतानुसार निर्गुण माया से आवृत होकर सगुण-रूप धारण करता है, अतएव शंकर सगुण को मिथ्या मानते हैं। **रामानुज** भी अद्वैतवादी हैं, किन्तु शंकर से उनका मतभेद जीव और जगत् से सम्बन्धित धारणा के कारण है। वे चिदचित्-विशिष्ट ईश्वर को स्वीकार करते हैं। चित् [जीव] और अचित् [जगत्] ईश्वर के अंग हैं, अतएव वे मिथ्या नहीं हो सकते।[1] वे शंकर के समान सगुण को माया-निर्मित एवं असत्य न मानकर उसे 'निज इच्छा निर्मित वपु' कहकर सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि निर्गुण

---

१ बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ४९०।

ब्रह्म ही भक्ति-वश होकर सगुण-रूप धारण करता है।

ब्रह्म का **निर्गुणत्व** सभी लेखकों ने निम्न शब्दों का प्रयोग कर स्वीकार किया है—

असमीया०—निर्गुण पुरुष, निरंजन, अव्यक्त, अनादि, अनन्त, वेद-विधायक जगत्-नायक, आदि-योगेश्वर आदि ।[1]

बँगला०—ब्रह्म, सनातन, अच्युत, अव्यय, अनाद्य-आद्य ।[2]

उड़िया०—निरंजन, निराकार, अक्षय, अव्यय, अच्युत, अनादि अनन्त, महत्तत्त्व, ओंकार, निर्गुण ।[3]

मानस—निरुपाधि; अविगत, अकथ, वचन-अगोचर बुद्धि-पर, अगुण, अरूप, अलख, अज ।[4]

रामानुज के अनुसार इन लेखकों ने सगुण को माया-निर्मित नहीं अपितु स्वयं **माया** को सगुण की वशवर्तिनी बताया।

०असमीया-रामायण—ब्रह्म निज योग-बल से प्रकृति के तीन गुणों में अपने-आपको सृजित करता है। सभी जीव निरन्तर माया के अधीन रहते हैं। केवल तुम्हीं माया के स्वामी हो।

निज योगवले प्रकृतिर गुण तिनि। आपोनाते आपोनाक सृजाहा आपुनि ॥ ५८०
मायार अधीन आमि जीव निरन्तर। तुमिसे केवल मात्र मायार ईश्वर ॥ ५७०

० बँगला-रामायण लेखक ने ईश्वर को 'मायार मनुष्य', अथवा 'मायाते मनुष्य लीला' कहकर संकेत किया है कि भगवान् स्वयं ही माया करता हुआ मनुष्य का रूप धारण कर लीलाएँ करता है।

०उड़िया-रामायण में भी ब्रह्म जगत् के हित के लिए अवतार धारण करता है—

नारायण पुरुष जगत हितकारी।
अवतार होइछु असुरकुल मारि ॥ ६-२३०

गो० तुलसीदास ने इस सिद्धान्त को भली प्रकार निभाया है। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि जड़-चेतन सभी जीव माया के वश में हैं, किन्तु तीनों गुणों की खान यह माया स्वयं ईश्वर के वश में है।

माया वस्य जीव सचराचर।
माया वस्य जीव अभिमानी।
ईस वस्य माया गुन खानी ॥ ७-७७-४, ६

---

१. असमीया-रामायण, छन्द संख्या ५६७-७४, २६१६, ४७५६।
२. बँगला-रामायण, ४२५, ४१५।
३. उड़िया-रामायण, ३-२२६, २३९ एवं ७-२१६।
४. मानस, १-१४३-५, २-१२६, १-११५-२।

निम्न पंक्तियों में भी रामानुज की छाप है—

परवस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥ ७-७७-७

गोस्वामीजी ने माया के दो रूप बताये हैं—विद्या, अविद्या। प्रथम संसार का निर्माण करती है एवं द्वितीय दुष्ट स्वभाव की है।

संसार को अवश्य ही सभी लेखकों ने शंकराचार्य के अनुसार अनित्य माना है—

असमिया—

अथिर संसार आक जाना महाशय ॥ छं० ६३८६

बँगला—

दारा-सुत मिछा माया सकलि अलीक। ३५३

उड़िया—

संसार चरित जाण दर्पणर छाया। २-८५
ए माया संसार पुणि अटइ अनित्य। २-८५

मानस पर तो स्पष्ट ही शंकर का प्रभाव है—'रज्जौ यथाहेर्भ्रमः', को गोस्वामीजी की इन पंक्तियों में भी देखिए—

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥ १-११७

राम विष्णु—राम वस्तुतः विष्णु की अवतार-परम्परा में आते हैं। त्रिदेवों में विष्णु और शंकर को ही प्रमुख स्थान प्राप्त है। कोई पुराण शिव को परब्रह्म मानता है और कोई विष्णु को। शैव और वैष्णव लोग अपने-अपने उपास्यों की महत्त्व-वृद्धि की चेष्टा करते रहे हैं। जहाँ उन्होंने ऐसी चेष्टा की है वहाँ उन्हें त्रिदेवों से ऊँचा सिद्ध किया है। सभी रामायण-लेखकों ने किसी न किसी रूप में राम को विष्णु माना ही है।

असमीया-रामायण में उन्हें विष्णु और लक्ष्मीपति कहा गया है।५४७-४८

बँगला-रामायण में स्पष्ट ही कहा गया है—राम विष्णु अवतार लवेन सवार भार। (पृ० ६५)

उड़िया-रामायण में शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी कमलापति विष्णु का कई बार उल्लेख हुआ है। जहाँ उन्हें अनादि, अनन्त, अच्युत आदि कहकर उनके निर्गुण रूप का स्तवन है, वहाँ भी लेखक उन्हें पीत-वास भी कहा गया है—

अनादि अनन्त विभु अच्युत अक्षर ॥
नमो नारायण नमो नमो पीत-वास। ७-२१६

मानस में राम का परब्रह्मत्व अत्यन्त कुशलता एवं सजगता से चित्रित है किन्तु कई ऐसे स्थल आये हैं, जहाँ राम की स्तुति करते समय देवताओं के समाज-सहित

शंकर और ब्रह्मा तो हैं, किन्तु विष्णु नहीं है, जैसे कि गोरूप-धारिणी पृथ्वी के साथ जन्म के लिए भगवान् से प्रार्थना करते समय अथवा रावण-विजय के उपरान्त सभी देवताओं द्वारा वंदना के समय। इसके अतिरिक्त उन्हें कई स्थानों पर विष्णु, रमापति आदि नामों से पुकारा भी है।

बिष्णु जो सुरहित नर तनु धारी—१-५०-१
राम रमापति कर धनु लेहू—१-२८३-७

त्रिदेवों में उच्चस्थान—अपने-अपने उपास्य देवों को ऊँचा सिद्ध करने के शैव एवं वैष्णव उपासकों के प्रयास का उल्लेख हो चुका है। रामोपासकों ने भी राम को केवल विष्णु सिद्ध न कर उन्हें तीनों देवताओं में उच्चस्थान दिया है। पुराणों की मान्यता भी यही है कि एक ही ब्रह्म अपने सृष्टि-लय करने वाले गुणों के अनुसार अपने को तीन रूपों में व्यक्त करता है।

असमीया-लेखक इसी दृष्टिकोण से कहता है—

ब्रह्म रूप धरि स्रजा इ तिनि भुबन। विष्णु रूप धरिक करा सृष्टिक पालन॥
रुद्र रूप धरि करा आपुनि संहार।—छं० ५७०

बँगला-लेखक भी कहता है —

तुमि ब्रह्मा तुमि विष्णु तुमि महेश्वर—पृ० ३५२

उसने एक स्थान पर राम को इन तीनों से बढ़कर भी माना है—

तोमार एकांश ब्रह्मा बिष्णु महेश्वर (पृ० ३६०)

उड़िया-रामायण में भी एक ही ब्रह्म—'ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तिनि रूप धरु'[1] की स्थिति में आता है किन्तु ब्रह्म है विष्णु ही, क्योंकि वह चतुर्भुज है एवं उसी ने ब्रह्मा को नाभिपद्म में उत्पन्न किया है और रुद्र को ईश्वर का पद दिया है—

आम्भे ये ब्रह्माकु नाभि पद्म जाति कलुं। आम्भे से रुद्रकु ये इश्वर पद देलुं।
—६-५७

मानस में राम को अवश्य ही त्रिदेवों से ऊपर चित्रित किया गया है। ये तीनों देव राम के एक अंश से उत्पन्न हैं। वे तीनों देवों को नचाने वाले हैं। त्रिदेव राम के द्रोही की रक्षा नहीं कर सकते।

सम्भु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।१-१४३-६
बिधि हरि संभु नचावन हारे। २-१२६-१
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही।५-२२-८

राम का कृष्णत्व—बँगला-रामायण के राम तो त्रिदेवों में श्रेष्ठ विष्णु के अवतार हैं, बस इस लेखक का दृष्टिकोण यहीं तक सीमित रहता है। मानस के

---

१. उड़िया-रामायण—६-२२६।

विस्तृत दृष्टिकोण की चर्चा आगे होगी। इन दोनों लेखकों पर कृष्णभक्ति का प्रभाव नहीं है।

अद्वैत कृष्ण—किन्तु शेष दो रामायणें कृष्णभक्ति से पूर्णतः प्रभावित हैं। असमीया-रामायण के मुख्य लेखक कन्दली का दृष्टिकोण तो बँगला-लेखक जैसा ही है किन्तु इस रामायण के उत्तरकाण्ड और आदिकाण्ड के गुरु-शिष्य लेखक शंकरदेव एवं माधवदेव कृष्ण के कट्टर उपासक हैं। शंकरदेव के ऊपर रामानन्द द्वारा प्रचारित उत्तरी भारत के भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव तो था ही, साथ ही दक्षिण भारत के रामानुज और शंकराचार्य का प्रभाव भी था। उनके कृष्ण बहुत कुछ शंकराचार्य के निर्गुण ब्रह्म जैसे हैं। शंकरदेव ने मूर्तिपूजा का प्रचार नहीं किया। उनके द्वारा स्थापित सत्रों में मूर्ति के स्थान पर भागवत की पोथी होती है। उन्होंने ब्रह्म एवं जीव की पारस्परिक स्थिति को समझाने के लिए जलकुंभ एवं आकाश का रूपक लिया है। माया को उन्होंने अज्ञान कहा है। ब्रह्म को वे कृष्ण कहते हैं। यही कृष्ण राम का अवतार लेते हैं। शंकरदेव एवं माधवदेव अपने-अपने काण्डों की अथ-इति में कृष्ण की वन्दना करते हैं। माधवदेव ने विष्णु के आगे देवताओं के स्तवन के समय भी उन्हें कृष्ण कहा है—कृष्णर आगते, परि दण्डवते, छं० ५५१।

राम पुरी के जगन्नाथ—उड़िया-लेखक बलरामदास ने प्रारम्भ में ही नीलगिरि-वासी, शंख-चक्र-गदा-पद्म-धारी चतुर्भुज जगन्नाथ की स्तुति की है। कथा के मध्य उन्हें जहाँ कहीं अवकाश मिला उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि वे जगन्नाथ के दास हैं और उन्हीं की प्रेरणा से रामायण गान कर रहे हैं।[1] यही जगन्नाथ जोकि विष्णु से अभिन्न हैं और राम के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं।

लंकाकाण्ड में स्वयं राम अपने विषय में कहते हैं—'मैं जगन्नाथ परम पद नाथ हूँ। मैं शंख, चक्र, गदा, पद्म-धारी चतुर्भुज हूँ।"

आम्भे ये जगन्नाथ परम पद नाहा। शंख चक्र गदा पद्म धारी चउबाहा।

—६-५७

उत्तरकाण्ड में लक्ष्मण को सप्तफणधारी अनन्त पुरुषोत्तम बताया है, जो कि हल-मुषल धारण करने पर बलराम हो जाते हैं। सीता सुभद्रा बतायी गयी हैं।

मानस में राम के ब्रह्मत्व का उन्नयन—पूर्वांचलीय-रामायणों के राम अपने ब्रह्मत्व का स्मरण नहीं करते, वे सच ही मानव-लीला करते हैं, किन्तु मानस के राम सदैव अपने ब्रह्मत्व का स्मरण रखते हैं।

बँगला-रामायण में भी राम के विष्णुत्व का उन्नयन करने के लिए उनके विराट्-रूप का दर्शन कराने का प्रयास किया गया है। अनेक लोक, जीवजन्तु, पर्वत

---

१. नीलगिरि जगन्नाथ दया मोते कले। तेवे से ग्रन्थ मोर हृदरे प्रकाशिले।

—६-३७२

नदी आदि उनके रोम-रोम में समाये हुए हैं। किन्तु लेखक ब्रह्म के इस व्यापकत्व को आगे सँभाल नहीं पाया। देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु अवतार लेने को तैयार हुए तो लक्ष्मी रोने लगीं। स्त्री से बिछुड़ने की कल्पना कर कम्बुग्रीव विष्णु भी रोने लगे।[1] हो सकता है पाँचाली-गायकों ने इस प्रसंग को अपनी ओर से जोड़ लिया हो।

मानस के उत्तरकाण्ड में काकभुशुंडि ने राम का विराट् रूप देखा है। उससे ही राम का परब्रह्मत्व प्रकट हो जाता है। शिशु-राम से क्रीड़ा कर उनकी शक्ति की परीक्षा लेते समय काकभुशुंडि खूब छकाये गये। वे राम के मुख में प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने अगणित ब्रह्माण्ड देखे। प्रत्येक लोक में ब्रह्मा-विष्णु-महेश सहित समस्त-सृष्टि अलग-अलग थी। प्रत्येक लोक में अवधपुरी, दशरथ और कौशल्या विद्यमान थे। इन अगणित ब्रह्माण्डों में सभी कुछ भिन्न-भिन्न था किन्तु राम का रूप भिन्न न था।

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरि जान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखउँ आन॥ ७-८१ (क)

मानस के इस वर्णन से निष्कर्ष निकलता है कि सृष्टि में कई ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अलग-अलग त्रिदेव, मुनि और देवतादि हैं। एक ब्रह्माण्ड के देवादि दूसरे ब्रह्माण्ड के देवादि से भिन्न हैं। ये सभी ब्रह्माण्ड राम के उदर में समाये हुए है। अर्थात् राम के ही अंशों से इनका निर्माण हुआ है। राम एक हैं, उनके रूपों में भिन्नता नहीं है। गो० तुलसीदास के इस वर्णन में विष्णु का महत्त्व कहुत कम हो जाता है। राम के ब्रह्मत्व का ऐसा उन्नयन एवं निर्वाह पूर्वांचलीय-रामायणों में नहीं है।

सीता—पूर्वांचलीय-रामायणों की सीता लक्ष्मी-मात्र हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। मानस में भी कहीं-कहीं सीता को लक्ष्मी कहने पर भी उन्हें राम की शक्ति के रूप में ही अधिक देखा गया है। वे ऐसी माया हैं जोकि राम का रुख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं।

श्रुतिसेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥ २-१२५-८। छंद

वे आदिशक्ति हैं। इन्हीं के अंश से अगणित लक्ष्मी, उमा और ब्रह्माणी जन्म लेती हैं।[2]

सीता ब्रह्म से अभिन्न हैं, सदैव उनके वाम-भाग में शोभित रहती हैं। मनु-

---

१. बँगला-रामायण, पृ० ५४।

२. जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। १-१४७-३।
आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरहि मोरि यह माया॥
१-१५१-४।

शतरूपा को दर्शन देते समय भी वे उनके साथ थीं।[1] वेद भी स्तुति के समय राम को संयुक्त-शक्ति[2] कहते हैं। वे राम से 'गिरा अरथ जल वीचि सम'[3] अभिन्न हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने शंकराचार्य के मायावाद का रूप परिवर्तित किया है। शंकर के अनुसार सगुण ब्रह्म मायावशवर्ती है और गोस्वामीजी के मत में माया राम की शक्ति है तथा उनके अधीन है। यह माया 'उद्भव-स्थिति-संहारकारिणी' और साथ ही क्लेशहारिणी तथा श्रेयस्करी रामवल्लभा भी हैं।[4]

अवतार

प्रत्येक महाकाव्य का कोई न कोई उद्देश्य होता है। रामायण-काव्य का उद्देश्य है रावण का संहार—अर्थात् असत् पर सत् की जय। सत् के प्रतीक राम अपने सद्गुणों के कारण नर से नारायण हो गये। गीता में भी सत् की रक्षा और असत् के विनाश के लिए भगवद्-शक्ति का उदय दिखाया गया है। आगे चलकर गीता का उद्देश्य रामायणों पर छा गया। इसके लिए उपयुक्त भूमि पहले से ही तैयार थी।

अवतार का उद्देश्य—इसीलिए अवतार के उद्देश्य में सभी रामायणों में समानता है। गीता में अवतार के उपयुक्त स्थल एवं उद्देश्य के विषय में कहा गया है कि—

(१) जब धर्म की हानि हो और अधर्म का अभ्युत्थान हो।

(२) तब सज्जनों की रक्षा, दुर्जनों के नाश एवं धर्म की संस्थापना के लिए मैं युग-युग में अवतार ग्रहण करता हूँ।[5]

०असमीया-रामायण में भी स्थान-स्थान पर यही उद्देश्य स्पष्ट होता है। आदिकाण्ड (माधवदेव) में कहा गया है —राम ने अवतार लेकर राक्षसों का संहार किया और भूमि का भार हरण किया। उन्होंने ब्रह्मा आदि का प्रयोजन सिद्ध किया। वे सज्जन-रंजन एवं दुष्टजन-विनाशक हैं। वे धर्म-पथ की रक्षा कर महत् जनों का पालन करते और दुष्ट-दुर्जन का विनाश करते हैं।

---

१. वाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबि-निधि जगमूला॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई॥ १-१४७-२,४।

२. जय प्रनत पाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥ ७-१२ ग-छंद।

३. मानस, १-१८।

४. उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ बाल०, ५।

५. गीता, ४-७,८।

हरिला भूमिर भार राक्षस संहरि ॥
ब्रह्मा आदि देवर साधिला प्रयोजन ॥ छं० ३
सज्जन रंजन दुष्ट जन विनाशक । छं० ७१०
महन्तक पाला धर्म्मपथ रक्षा करि ।
कराहा विनाश दुष्ट दुर्ज्जनक हरि ॥ छं० ५७८

अरण्यकाण्ड (माधव कन्दली) में भी धर्म की रक्षा के हेतु अवतार होना बताया गया है—'तेन्ते धर्मरक्षा हेतु भैला अवतार।'[1] आगे भी कहा गया है—तुम्हीं संसार के सेतु हो, उत्पत्ति और प्रलय के हेतु हो, असन्तों का संहार करते हो।

तुमिसि संसार सेतु, उत्पत्ति प्रलय हेतु
असन्तक कराहा संहार। छं० ६४६६

०बँगला-रामायण में भी भक्त का सुखसाधन, संकट का निवारण तथा दुराचारी राक्षसों का विनाश ही अवतार के उद्देश्य हैं—

हयेछेन लोके तिनि सम्प्रति प्रकट।
साधिते भक्तेर सुख नाशिते संकट ॥[2]
मायार मनुष्य तुमि, चतुर्व्बाहु आसि भूमि,
नाशिते राक्षस दुराचार ॥[3]

०उड़िया-रामायण में भी देवताओं के (हित के) लिए एवं ब्रह्माण्ड के शत्रु (रावण) का नाराच से संहार करने के लिए ब्रह्म राम ने सामान्य रूप धारण किया है।

देवतांक पाईं तु सामान्य रूपधरि। ब्रह्माण्ड शत्रुकु ये नाराचरे संहारि॥ ६-३१४

और भी कहा है—

परब्रह्म नारायण स्वयं अवतार।
दुःखी जनंकर वन्धु दुर्ज्जन संहार॥ १-५८

०मानस में भी गीता के इन्हीं सिद्धान्तों को ग्रहण किया गया है, तथा इसे और भी बढ़ा कर प्रस्तुत किया है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़िहिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

१. असमीया-रामायण, छं० २६७५,७१०।
२. बँगला-रामायण, पृ० २५१।
३. वही, पृ० ४२५।

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति-सेतु ।
जग विस्तारहिं विसद जस राम जन्म कर हेतु ॥[1]

अनीति-परायण अधम अभिमानी राक्षसों के वध एवं ब्राह्मण, गाय, देवता, पृथ्वी और सन्तजन एवं वैदिक मर्यादाओं की रक्षा के लिए भगवान् का अवतार दिखाया गया है ।

दशावतार—वामन और नृसिंह आरम्भ से ही विष्णु के अवतार माने गये थे किन्तु मत्स्य, कूर्म तथा वाराह अवतार पहले प्रजापति से सम्बन्धित थे, कालान्तर में जब विष्णु का महत्त्व बढ़ा, वे उनके अवतार माने जाने लगे । नारायणीय में प्रथम बार विष्णु के छः अवतारों --वाराह, नृसिंह, वामन, भार्गवराम, दाशरथिराम एवं वासुदेव कृष्ण का वर्णन हुआ । पुराणों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न स्वीकार की गयी है । वाराह-पुराण में प्रथम बार अधुना-प्रचलित दशावतार का वर्णन हुआ है ।[2] उपर्युक्त छः अवतारों के प्रारंभ और अन्त में दो-दो और अवतार जोड़कर १० अवतार होते हैं—

(१) मत्स्य (२) कूर्म (३) वाराह (४) नृसिंह (५) वामन (६) परशुराम (७) राम (८) कृष्ण (९) बुद्ध और (१०) कलि । रामायण-लेखकों को भी अवतारों की यही संख्या मान्य प्रतीत होती है ।

असमीया-रामायण के उत्तरकाण्ड में केवल ५ अवतारों का उल्लेख है—नरसिंह, वाराह, मत्स्य, कच्छप और वामन । राम और कृष्ण अवतार हैं ही । दसों अवतार गिनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी । स्तुति करते समय केवल इनका ही उल्लेख हो गया है—इसमें क्रम भी नहीं है ।[3]

बँगला-रामायण का क्रम वाराह-पुराण के अनुसार है—

(१) मत्स्य (२) कूर्म (३) वाराह (४) नृसिंह (५) वामन (६) परशुराम (७) राम ।[4]

मानस में भी यही क्रम है—

मीन कमठ सूकर नरहरी । बामन परशुराम वपुधरी ॥ ६-१०९-७

दोनों ने शेष तीन अवतारों का उल्लेख इसलिए नहीं किया कि वे राम के पश्चात् हुए थे ।

---

१. मानस, १-१२०-६-८ एवं १२१ ।

२. देखिए, कलेक्टिड वर्क्स ऑफ़ सर आर० जी० भांडारकर, जिल्द ४, पृ० ५८।५९; तथा बुल्के, रामकथा (द्वि० सं०) पृ० १४७ ।

३. असमीया-रामायण, पृ० ४५४।४५५ ।

४, बँगला-रामायण, ४४२ (लंका०) ।

उड़िया-रामायण में दसों अवतारों का वर्णन है[1]—[१] मत्स्य [२] कूर्म [३] वाराह [४] नरसिंह [५] वामन [६] परशुराम [७] राम [८] देवकीनन्दन [९] बुद्ध (वउद) [१०] कल्कि (कलिकि)। यह क्रम बिल्कुल वाराह-पुराण जैसा है।

चतुर्व्यूह-सिद्धान्त—पांचरात्र-आगम में भगवान् के चार प्रकार के अवतारों की चर्चा की गयी है— व्यूह, विभव, अर्चा एवं अन्तर्यामी। व्यूह के अन्तर्गत आते हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध। विशिष्टाद्वैतवादी सम्प्रदाय एवं पुराणों में भी व्यूहों की चर्चा है। इनका सम्बन्ध कृष्ण से रहा है, आगे राम के भाइयों सहित चार अवतारों में भी चतुर्व्यूह-सिद्धान्त प्रचलित हुआ। विष्णुधर्मोत्तर-पुराण (अ० २१२) तथा नारद-पुराण (उत्त० अ० ७५) में राम के इस व्यूह-अवतार का वर्णन है। सूरदास ने रामचरितावली में वासुदेव-विषयक चतुर्व्यूह-सिद्धान्त के आधार पर राम के चतुर्व्यूह का भी निरूपण किया है।[2] तीनों पूर्वांचलीय-रामायणों[3] में एक ही ब्रह्म के चार रूप धारण करने का वर्णन है। उड़िया-रामायण में इसके साथ ही लक्ष्मण को शेष (साथ ही रुद्र) तथा शत्रुघ्न और भरत को क्रमशः शंख एवं चक्र का अवतार बताया है। अध्यात्म्य-रामायण (१-४-१७-१८) में भी रामादि भाइयों को विष्णु, शेष, शंख एवं चक्र का अवतार बताया गया है। प्रतीत होता है कि पूर्वांचलीय-रामायणों पर चतुर्व्यूह-सिद्धान्त का प्रभाव है। मानस पर प्रभाव है या नहीं, कहना कठिन है। तुलसीदास ने लक्ष्मण को शेषावतार तो माना किन्तु भरत और लक्ष्मण को उन्होंने किसी का अवतार नहीं बताया है, इसलिए डा० उदयभानु सिंह तुलसीदास पर यह प्रभाव नहीं देखते। मानस में अध्यात्म-रामायण का अनुसरण हुआ है। शेषावतार का वर्णन मानस में है ही। 'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा'—१-१८६-२ के अंशों से यदि भरत एवं शत्रुघ्न के शंख एवं सुदर्शन होने की ओर संकेत नहीं है तो मैं भी डा० सिंह का समर्थन करता हूँ।

नाम-कीर्तन

गीता में नाम-जप को श्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। कलियुग में नाम-जप की विशेष महत्ता बतायी गयी है। पुराणों के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है,

---

१. उड़िया-रामायण, ३।४५, ६।१।

२. डा० उदयभानुसिंह—तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ७५।

३. असमीया, चारि भाइ महावीर विष्णु अंशे जात, छं० ३१।
बँगला—एक अंशे चारि अंशे हइला नारायण, पृ० १।
उड़िया—शत्रुघ्न शङ्ख चक्र भरत अटइ।
चारि भाइ श्रीराम अटन्ति एक देही॥ १-२१८।
शुण देव देव तुम्भे अनन्त मुरति। ७-२०१।
महारुद्र मुरति हल मुपल धर॥ ७-२०१।

धर्म के चार पद हैं, किन्तु कलि में धर्म केवल एक पैर पर खड़ा है। इस युग में योग, यज्ञ और तप नहीं किये जा सकते, केवल राम का गुण-गान ही एक आधार है। कलियुग में व्यक्तियों को सुविधा मिल गयी। जीवों को सतयुग में ध्यान का, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में पूजा करने का कष्ट उठाना पड़ता था। कलियुग में केवल कीर्त्तन से ही फल मिलता है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखं।
द्वापरे हरिचर्यायां कलौ तद् हरि कीर्तनात्॥[1]

असमीया-लेखक और मानस-कार ने इसी दृष्टिकोण को निम्न पंक्तियों में प्रकट किया है—

सत्ययुगे पूजे विष्णु धरिया समाधि। महा महा यज्ञ त्रेता युगत आराधि।
येन गति द्वापरत पूजि भक्ति भावे। कलित कीर्त्तन करि सबे फल पावे॥ ७३६७

असमीया-लेखक शंकरदेव ने कलि का परम धर्म हरिनाम बताया है—'कलिर परम धर्म जाना हरिनाम' ७००३। मुख्य असमीया-रामायण-लेखक ने भी इसे सभी शास्त्रों का सार कहा है—'सकलो शास्त्रर सार'—२५३७।

मानस-कार ने भी इन पंक्तियों का पूर्ण समर्थन किया है—

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥ १-२६-३

बंगला और उड़िया लेखक भी नाम-जप को महत्त्व देते हैं किन्तु असमीया-रामायण के परिवर्द्धनकार शंकरदेव के समान उन्हें न तो कोई पंथ चलाना था और न हिन्दी-लेखक गोस्वामी तुलसीदास के समान धर्म-साधनाओं के मध्य समन्वय कर धार्मिक सुधार करना था। इन दो लेखकों की रुचि राम-नाम-जप का फल दिखाने की रही है।

बंगला-लेखक का कहना है कि राम के स्मरण मात्र से मुक्ति पीछे दौड़ पड़ती है। राम-नाम-जप की अभिलाषा रखने वाला व्यक्ति सर्व पाप से मुक्त होकर वैकुण्ठ में वास करता है।[2] यह तो हुई पारलौकिक-सुख की प्राप्ति, इसके अतिरिक्त लौकिक सुख की भी प्राप्ति होती है।[3] रामनाम-जप का ऐसा प्रभाव है कि चारों वेदों के अध्ययन से जितना फल मिलता है उतना फल केवल एक वार के नाम-जप में मिल जाता है।

चारि वेद अध्ययने यत पुण्य हय। एके वारे राम नामे तत फलोदय॥ ५८२

उड़िया-लेखक भी राम-नाम को दुःख-शोक का खण्डन करने वाला एवं

---

१. देखिए, डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—तुलसीदर्शन, पृ० २८८।
२. बँगला-रामायण, पृ० १६२, पृ० ५८२।
३. अपुत्रक शुने यदि पाय पुत्र फल, पृ० ५८२।

चतुर्वर्ग—(धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) दायक बताता है।

श्रीराम नाम गोटि खंडइ दुःख शोक। श्रीराम नाम गोटि चउवग दायक॥ ६-२२३

असम का नाम-कीर्तन—असमीया-रामायण के उत्तरकाण्ड-लेखक शंकरदेव ने असम देश में कई सत्रों एवं गाँव-गाँव में नामघरों की स्थापना कर हरिनाम-कीर्त्तन का प्रचार किया था। असम के घर-घर में कीर्त्तन का ऐसा प्रचार हुआ था कि मुगलों का सेना-नायक रामसिंह अपनी माँ और पत्नी के अनुरोध को न टाल सका और ऐसे प्रदेश पर आक्रमण करने का साहस न कर सका, जहाँ के घर-घर से नाम-जप की ध्वनि आती है।

इनके नाम-जप का हल्का-सा प्रभाव ही रामायण पर दिखायी पड़ता है।

मानस की विशेषता—रामनाम-जप का प्रभाव बताकर तुलसीदास ने पाण्डित्य एवं समन्वय-कौशल का परिचय दिया है। वे रामनाम को आशु-फलदायक एवं इसकी साधना अत्यन्त सरल मानते हैं। चारों युगों एवं चारों वेदों में नाम का प्रभाव है, विशेषतः कलियुग में नाम के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥ १-२१-८

यदि कोई जँभाई लेते हुए भी राम का नाम ले दे तो वह सारे पापों से मुक्त हो जाएगा।

रामनाम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥ २-१९३-५

राम के नाम पर **अछूतोद्धार** की चेष्टा भी देखी जाती है कि जँभाई लेते हुए राम कहने पर जब पाप-पुंज नहीं रहते तो फिर जिसे राम ने स्वीकार कर लिया वह अपवित्र कहाँ रह गया।

सगुण-निर्गुण समन्वय—राम-नाम के माध्यम से तुलसीदास ने सगुण-निर्गुण धाराओं में समन्वय करने का सफल प्रयास किया है। हिन्दी-भाषी क्षेत्र में निर्गुण-सम्प्रदाय के लोगों ने ब्रह्म को राम कहा है। कबीर आदि निर्गुण-उपासक दाशरथि राम को मान्यता देते हुए भी ब्रह्म राम के उपासक थे। समाज में निर्गुण-पंथिओं का कुछ प्रभाव था अवश्य, इनको वे नाम के आधार पर ही निकट लाना चाहते थे। न मानो राम (दाशरथि) को, नाम को तो मानते हो। नाम ब्रह्म के दोनों स्वरूपों से बढ़कर है। वह ब्रह्म-राम से भी बढ़कर है। सगुण-राम नाम के आगे कुछ भी नहीं, क्योंकि राम यदि एक पापी का उद्धार कर सकते हैं तो नाम असंख्य पापियों का।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नामु दुहूँ ते। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
राम एक तापस तिय तारी। नामु कोटि खल कुमति सुधारी॥[1]

---

१. मानस, १-२२-१,२ एवं १-२३-३।

तुलसीदास में यदि समाज-संगठन की भावना न होती और ईश्वर का किसी भी नाम से भजन करने से पुण्य-लाभ हो जाता तो वे राम-नारद-संवाद की उद्भावना न करते। भगवान् को शाप देने की ग्लानि से मुक्त होने के लिए नारद राम से वर माँगते हैं कि यद्यपि प्रभु के अनेक नाम हैं, किन्तु उन सब में राम-नाम का महत्त्व सबसे बढ़कर हो।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एकतें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

३-४१-७, ८

भक्ति

भक्ति शब्द की उत्पत्ति भज् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है भजना। शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र के अनुसार ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है—'भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे।' ब्रह्म की प्राप्ति के कई साधन हैं—कर्म, ज्ञान, योग एवं भक्ति मार्ग। अत्यन्त सुलभ होने के कारण आचार्यों ने भक्ति-मार्ग को प्रमुखता दी है।

ब्रह्म करुणामय—भक्त के लिए भगवान् केवल एक सत्ता नहीं है, अपितु एक शक्तिशाली जीवन्त पुरुष हैं, जोकि साधारण-जनों की अपेक्षा दया, करुणा, प्रेम आदि भावों की गम्भीरतम अनुभूति करते हैं। यदि भगवान् आँख-कान-हृदय हीन बने रहें तो भक्त क्यों उन्हें पुकारेगा! हमारे रामायण-लेखकों ने राम के इसी गुण पर मुग्ध होकर उनका गुण-गान किया है और उनकी शरण माँगी है।

बँगला और उड़िया रामायणों में वर्णन-साम्य है। इन रामायणों में वीरबाहु और तरणीसेन जैसे भक्त-राक्षसों का वर्णन है, जोकि रण-क्षेत्र में आकर राम से युद्ध करने के स्थान पर भक्ति-निवेदन करने लगते हैं। इनसे युद्ध करते समय राम को स्वयं भी पीड़ा का अनुभव होता है।

बँगला-रामायण में राम बोले—भक्त के शरीर पर काँटा लगने पर मेरे हृदय में वह भाले-सा चुभता है—

कंटक फुटिले मम भक्तेर शरीरे। शेलेर समान बाजे आमार अन्तरे॥ ३५२

इधर उड़िया-रामायण में राम जैसे-जैसे ही क्रुद्ध होकर भक्त-राक्षस पर बाण-वर्षा करते हैं, वैसे ही वैसे वे अपने ही अंगों में पीड़ा पाते हैं—

श्रीराम विन्धन्ते येते येते वाण कोपे। पीड़ा पाउछन्ति से आपण अंगे आपे॥

६-२२६

बँगला-रामायण में भक्त पर प्रहार के समय राम का मुख सूख जाता है और हाथ ही नहीं उठता—'शुकाइल मुख चन्द्र नाहि चले बाहु।' इसी प्रकार उड़िया-रामायण में भी उनका हाथ नहीं उठता—शरकि विन्धिवि मोर हस्त न चलइ। (६-२२७)

मानस के राम भी सेवक के दुःख सुनकर विचलित ही नहीं हो उठते अपितु भक्त का दुःख दूर करने के लिए उनकी भुजाएँ भी फड़क उठती हैं—

सुनि सेवक दुःख दीन दयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥ ४-५-१४

करुणामय होने के कारण ही भगवान् भक्तों को अपने से भी अधिक महत्त्व देते हैं[1]—

बँगला—भक्त मोर माता पिता भक्त मोर प्राण।

उड़िया—मोतहुँ बड़ ये अटे मोर भृत्यलोक।

मानस—राम तें अधिक राम कर दासा।

यहाँ यह स्मरण दिला देना अनुचित न होगा कि असमीया-रामायण में भक्ति-परक दृष्टिकोण से कथा प्रस्तुत तो की गयी है, किन्तु कथा-वर्णन की अधिक रुचि होने के कारण भक्ति-विवेचन बहुत कम ही हुआ है। फिर भी इसमें दृष्टिकोण वही है। कन्दली ने एक स्थान पर कहा है—भक्ति के वश में भक्तों के होकर उनकी आज्ञा का पालन करते हो। (२६१३ छंद)

दीनता-प्रकाश—राम-भक्ति में दास्य-भाव का प्राधान्य है। भक्ति में शरणागति को वैसे ही महत्त्व दिया गया है, दास्य-भाव में तो इसे विशेष स्थान ही प्राप्त है। ब्रह्म को अपने से बड़ा मानने के लिए अपने को अत्यन्त लघु मानना होता है, तभी अहंभाव नष्ट होता है एवं साधक आत्मसमर्पण कर पाता है।

०असमीया-रामायण के आदिकाण्ड-लेखक गोस्वामी तुलसीदास की भाँति ही अपने को महामूढ़ एवं मति-मन्द कहते हैं। मुख्य कथाकार कन्दली आत्मसमर्पण करते हुए राम के चरणों में निर्मल-रति माँगते हैं—हेनय तोमार चरण हौक मोहोर निर्म्मल रति। ६६९०। उत्तरकाण्ड-लेखक शंकरदेव तो पूर्णतः तन्मय होकर राम की शरण में हैं—

रामे धर्म्म रामे कर्म्म, रामे से बान्धव मर्म्म,
जानि लैलो रामत शरण॥ ७४५५

०बँगला-रामायण में भक्त के मुख से कहलाया गया है—मैं भक्ति-स्तुति क्या जानूँ मैं अत्यन्त मूढ़ हूँ।[2]

०उड़िया-रामायण के प्रारम्भ अथवा अन्त में प्रायः बलरामदास अपने को अज्ञ, मूर्ख आदि कहकर जगन्नाथ-स्वरूप राम की शरण में जाने की बात कहते हैं।

०मानस में भी लेखक ने विनय-वश अपने को मूढ़ एवं सभी कलाओं से रहित माना है। भक्ति के क्षेत्र में दीनता के वे साकार रूप हैं। उन्होंने महत् राम के आगे अपने अत्यन्त दैन्य का ऐसा सफल चित्रण किया है कि कोई अन्य रामायण-लेखक नहीं

---

१. बँगला ३५२, उड़िया ६-२३८, मानस ७-११६-१६।
२. कि जानि भक्ति स्तुति आमि अति मूढ़, पृ० ३५२ बँगला-रामायण।

कर सका है, किन्तु उनके इस रूप के दर्शन विनयपत्रिका में अधिक होते हैं, जहाँ वे अपने को पापियों का सम्राट् समझते हैं। 'राम सो खरो है कौन मो सो कौन खोटो' पदांश ही मानो उनके समस्त दैन्य-वर्णन का सार है।

इसका अर्थ यह है नहीं है कि तुलसीदास चाटुकार थे। चाटुकारी की जाती है किसी लौकिक सत्ताधारी से जिससे कि सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है। गोस्वामीजी तो प्राकृत-जनों के चाटुकारों की निन्दा करते हैं। राम के विरोधियों को खरी-खरी सुनाने में वे कभी दीनता का परिचय नहीं देते।

निष्काम-भक्ति—डा० बलदेव प्रसाद ने लिखा है—जो किसी सांसारिक कामना की पूर्ति के लिए भक्ति करता है, वह व्यवसायी है, क्योंकि वह निश्चय ही इष्टदेव की अपेक्षा अपनी कामना-पूर्ति को अधिक महत्त्व देता है।[1] आगे भी वे कहते हैं—भक्ति का उद्देश्य है अलौकिक आनन्द, न कि लौकिक वस्तुओं अथवा सुख-साधनों की प्राप्ति।[2] भक्ति में यदि कोई लौकिक वासना छिपी रह गयी तो जीव का आत्म-परिष्कार कहाँ होगा। क्षुद्र स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण से लेकर वह ब्रह्मानन्द का लाभ न कर सकेगा। वैष्णव-भक्त राम की भक्ति के आगे कुछ नहीं चाहता। वह मोक्ष को भी तुच्छ समझता है।

०असमीया लेखक का कहना है मोक्ष की उपेक्षा कर तुम्हारे चरणों का भजन करता है—'मोक्ष को एरिया भजे चरण तोमार।' छन्द, ५७२।

०बँगला ग्रन्थकार राम से प्रार्थना करता है—यह अकिंचन तुम्हें छोड़कर और कुछ नहीं चाहता। अपने चरणों में मेरी मति रखो। तुम्हारे चरणों में सदा भक्ति रहे, यही वर माँगता हूँ। हे गदाधर राम, मेरी मृत्यु के समय अपने चरण प्रदान करना।

तोमा विना अकिंचन नाहि चाहे आर। चरमे ओ-पदे मति रेखहो आमार॥
तव पदे भक्ति सदा मागि एइ वर। मरण चरण दिओ राम गदाधर॥

पृ० २५६

यह भी कहा कि भक्त को कभी विषय-वांछा नहीं रहती है—

भक्तेर विषय वांछा नहे कदाचन। पृ० ३५१

०उड़िया-रामायण का भक्त-राक्षस वीरबाहु भी स्वर्ग की कामना न कर राम के हाथों से अपनी मृत्यु चाहता है।

निष्काम-भक्ति का उत्कृष्ट रूप तो मानस में ही देखने को मिलता है। इन रामायणों में तो कहीं-कहीं स्वर्ग या मोक्ष की वासना दृष्टिगत हो जाती है। मानस

१. डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—तुलसी दर्शन, पृ० ६८।
२. वही, पृ० २३३।

के सगुणोपासक मोक्ष नहीं चाहते, उन्हें राम भी अपनी भक्ति ही देते हैं।

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
६-१११-७

भक्ति करने पर मोक्ष तो स्वयं खिंचा चला आता है, न चाहने पर भी प्राप्त हो जाता है। सयाने भक्त इस तथ्य को समझते हैं एवं इसीलिए वे मुक्ति का निरादर कर भक्ति पर प्रलुब्ध रहते हैं।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥[1]

जब कभी भी भक्त याचना करता है तो धन-सम्पत्ति अथवा मोक्ष की नहीं। वह तो प्रभु की अविचल प्रेम-भक्ति चाहता है—

प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम। ७-३४

सुन्दरकाण्ड के मंगलाचरण में भी गोस्वामीजी ने किसी भी वस्तु की स्पृहा प्रकट न कर निर्भरा भक्ति माँगी है। भक्ति स्वतन्त्र है, उससे ही सकल सुख की प्राप्ति होती है—'भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानी।' (७-४४-५)

इस प्रकार स्वार्थ की वासना के अभाव के कारण तुलसीदासजी की भक्ति में विश्व-हित-साधना का भाव आ गया।[2]

भक्ति में विह्वलता—बँगला-रामायण में राम के पक्ष के पात्र उन्हें ब्रह्म जानकर भी भक्ति से विह्वल नहीं होते। राक्षस पात्र अवश्य ही ऐसे भक्ति-विह्वल दिखाये गये हैं कि दीनेशचन्द्र सेन के शब्दों में युद्धस्थल संकीर्त्तन-भूमि प्रतीत होने लगता है। बँगला और उड़िया-रामायणों के कुछ राक्षस-पात्र युद्ध-स्थल में पहुँच अस्त्र-शस्त्र फेंक कर अश्रु-वर्षा करते हुए राम की स्तुति करने लगते हैं। बँगला-रामायण का रावण तो धनुष पृथ्वी पर फेंककर गले में वस्त्र डालकर राम की स्तुति करने लगता है। वह बीसों हाथ जोड़कर टकटकी लगाये खड़ा है, बीसों नेत्रों से जलधार बह रही है—

हातेर धनुक बाण फेले भूमितले।
कर जुड़ि करे स्तव वस्त्र दिया गले॥
कुड़ि हस्त जुड़ि राजा एक दृष्टे रय।
कुड़ि चक्षे वारिधारा वहे अनिवार॥ ४१५

इन दोनों रामायणों के राम भी भक्तों की विनती से इतने कातर हो उठते हैं

१. मानस, ७-११८, ५-७।
२. राम निरंजन पाण्डेय, रामभक्ति-शाखा, पृ० ७५।

कि अब वे युद्ध कर सीता का उद्धार भी नहीं करना चाहते हैं।[1]

मानस में भी राक्षस भक्त दिखाये गये हैं, किन्तु वे उपर्युक्त ग्रन्थों के राक्षसों की भाँति कभी भक्ति-कातर नहीं होते। वे अन्त समय तक अहंकार से तने रहते हैं, मरते समय भले ही राम-नाम स्मरण कर लें। मानस में मित्र-पक्ष के भक्तों में अवश्य ही विह्वलता है। राम के रूप पर मुग्ध होने वाले तो सभी प्रकार के पात्र हैं किन्तु भक्ति-विह्वल होने वाले पात्र सामान्य बुद्धि के नहीं हैं, वे हैं सुतीक्ष्ण, काकभुशुंडि और शिव जैसे ज्ञान-गम्भीर साधक। ये पात्र ज्ञानी होने पर भी भक्ति में तन्मय होकर अपने तन-मन की सुधि भूल जाते हैं। ऐसे पात्रों अथवा स्वयं गोस्वामीजी की ऐसी भक्ति को देखकर ही सम्भवतः डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने इसे 'बुद्धिवाद और हृदय का सुन्दर सामंजस्य' कहा है।[2] योगिराज शंकर का तुलसीदास ने अत्यन्त भव्य चित्रण किया है। इन शंकर की भी कैसी भक्ति-विह्वल स्थिति हो जाती है—

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिराँ विनय करत त्रिपुरारि॥ ६-११४ (ख)

भक्ति : जनान्दोलन—रामानुजाचार्य ने भक्ति के क्षेत्र में जाति-पाँति की भावना को दूर करने का जो प्रयास किया था, रामानन्द ने उसे और आगे बढ़ाया। उनके शिष्यों में शूद्र और मुसलमान भी थे। 'जात पाँत पूछै नहि कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' का नारा प्रचारित हुआ। अभी तक हमारी संस्कृति की उत्कृष्ट उपलब्धियों का उच्छिष्ट ही निम्न-वर्ग तक पहुँच पाता था। इस्लाम की मतान्धता के कारण समस्त समाज में अस्त-व्यस्तता एवं उथल-पुथल व्याप्त थी। समाज का निम्न-वर्ग भय अथवा प्रलोभन के कारण मुख्य समाज से सम्बन्ध-छिन्न हो सकता था। समाज के उदार सुधारकों ने समस्त भारत को एक-सूत्र में ग्रथित करने के लिए भक्ति का आश्रय लिया।

मध्यकालीन भारत के प्रत्येक अंचल में महापुरुषों ने उदित होकर भक्ति के प्रवाह से समस्त देश को आप्लावित कर दिया। रामानुज, रामानन्द, शंकरदेव, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, गुरुनानक, नामदेव, ज्ञानेश्वर आदि अनेक सन्तों के प्रयास से भक्ति-धर्म पुष्ट हुआ। रूसी विद्वान् बारान्निकोव ने भी मध्ययुगीन वैष्णवता को जनात्मक (डिमोक्रेटिक) माना है।[3]

---

१. कार्य नाहि सीता आमिना याव राज्येते। केमने मारिव वाण भक्तेर अंगेते॥
वं० ३५२।
केतेहें कटाल मोले करु वीरमणि। नाहिँ प्रयोजन मोर जनक-दुलणी॥
उ० ६।२२७।

२. डा० बलदेवप्रसाद मिश्र—तुलसीदर्शन, पृ० ३०८।

३. डा० केसरीनारायण शुक्ल सम्पादित—'मानस की (रूसी) भूमिका', पृ० ६।

रामानन्द आदि सम्प्रदाय के साधु प्रत्येक जातियों के जनों को अपने सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त कर रामभक्ति के माध्यम से जन-जागरण एवं समाज-संगठन कर रहे थे। अब निम्न वर्ग को भी प्रतीत होने लगा कि राम उनके भी हैं, तथा वे स्वयं भी समाज के एक अंग हैं। गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थ ने इस भावना के प्रचार में पर्याप्त योगदान किया।

०असमीया-रामायण में ब्रह्म राम ने जातिपाँति का विचार नहीं माना।

नाहिक तोमात जाति आचार विचार। छं० ७८१

०बँगला-रामायण में भगवान् को भक्तिपूर्वक पुकारने पर वे चण्डाल के घर तक दौड़े जाते हैं—'भक्ति ते डाकिले जाय चण्डालेर बाड़ि।' राम का अवतार ही नीचों का निस्तार करने के हेतु हुआ है—'नीचेर निस्तार हेतु तव अवतार।'[1]

०उड़िया-रामायण में भी गोंड़, कन्ध आदि जातियों तथा हनुमानादि अज्ञ पात्रों की भक्ति-भावना में यही दृष्टिकोण उपलब्ध है।

प्रमुख काव्य-धाराओं, पद्धतियों एवं भाषाओं के माध्यम से जन-जन में राम-कथा का प्रचार कर, पंडित-अपंडित, लोक-शास्त्र, ब्राह्मण-अब्राह्मण और सगुण-निर्गुण में समन्वय स्थापित कर **गोस्वामी तुलसीदास** ने इन सभी रामायण-लेखकों की अपेक्षा समाज-संगठन में अधिक साफल्य-लाभ किया है। अछूतों एवं अज्ञों को राम-भक्ति के नाते अपनाने में भी उन्होंने अपूर्व दक्षता का परिचय दिया है, जिसका वर्णन प्रकारांतर से अन्यत्र हो चुका है।

गोस्वामीजी की विशेषताएँ—गोस्वामीजी का मानस तो मानो धर्म एवं नीति-ग्रन्थों का अत्यन्त सुन्दर निचोड़ है। उत्कृष्ट कोटि के कवि होते हुए भी उनकी रुचि भक्ति-निरूपण, नवधा-भक्ति-चित्रण, सत्संग-वर्णन, संत-असंत-स्तुति आदि विषयों की ओर अधिक रही है। उनके दार्शनिक चिन्तन एवं पाण्डित्य की तुलना इन रामायण-कारों से नहीं हो सकती। यहाँ उनकी केवल दो विशेषताओं का पृथक् वर्णन किया जा रहा है (इनका सम्बन्ध भक्ति से है, केवल इसीलिए)।

(१) ज्ञान-भक्ति—तुलसी ज्ञान का समर्थन करते हैं किन्तु परिस्थितियों को देखते हुए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की अधिक आवश्यकता थी। ज्ञान-मार्ग केवल कुछ प्रबुद्ध जनों के लिए था। भक्ति-आन्दोलन जन-आन्दोलन था। हिन्दू समाज को बाह्य एवं आन्तरिक संघर्षों से त्राण देकर समस्त-समाज के संगठन के लिए उसे भक्ति के स्रोत में बहा देना अधिक प्रयोजनीय था। गोस्वामीजी के पूर्व पुराणों एवं अध्यात्म-रामायण में भी इस प्रकार के प्रयत्न हो चुके थे। पद्मपुराण (उत्तर काण्ड) में भक्ति को ज्ञान एवं वैराग्य की माँ दिखाया है। ये दोनों पुत्र वृद्ध एवं मरणासन्न हैं किन्तु माँ तरुणी है और इनकी अकाल-मृत्यु से दुःखित है। इस प्रकार पुराण मानो कह

---

१. बँगला-रामायण—देखिए, क्रमशः पृ० ३०९ और १६४।

रहा है कि ज्ञान और वैराग्य का युग नहीं रह गया, अब आवश्यकता है उभयकूलों तक आप्लावित भक्ति-सरिता के अबाध-प्रवाह की। पुराण ने यहाँ भक्ति को माँ बताकर उसे ज्ञान और वैराग्य से बढ़कर दिखाया है।

गोस्वामीजी मानते हैं कि ज्ञान मोक्षप्रद है[1] किन्तु वह कृपाण की धार के समान है।[2] ज्ञान का बोध एवं साधन बड़ी कठिनाई से होता है और यदि किसी प्रकार उसका साधन हो भी जाए तो आगे अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ता है।[3] यदि कोई ज्ञान-मार्ग का साधन कर भी ले तो भी राम उससे सन्तुष्ट नहीं होते, क्योंकि भक्तिहीन ज्ञान उन्हें प्रिय नहीं है—

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्तिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥ ७-४४-३,४

भगवान् स्वयं भक्त का पक्षपात करते हैं। इस पक्षपात के लिए तुलसी ने माता-पिता का उदाहरण दिया है। ज्ञानी भगवान् के लिए प्रौढ़ पुत्र के समान है और भक्त शिशु के समान। माँ पुत्र के बड़े होने पर प्रीति कुछ कम कर देती है किन्तु छोटे की रखवाली करती है।[4]

महात्माजी कुशलता के साथ ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व दिखलाते हैं। उनका तर्क है कि यद्यपि ज्ञानी और भक्त में भेद नहीं है, किन्तु कठिनाई यह है कि ज्ञान, वैराग्य आदि पुरुष हैं और माया स्त्री है। कठिन साधना के पश्चात् भी पुरुष नारी के सामने स्खलित हो जाता है। अतएव ज्ञानी किसी समय भी माया-वशवर्ती हो सकता है। परन्तु सृष्टि का नियम है कि स्त्री अन्य स्त्री पर मुग्ध नहीं होती। भक्ति स्वयं स्त्री है, अतएव भक्ति के क्षेत्र में माया के वश में होने की आशंका नहीं है। भक्ति और माया में भी भगवान् को भक्ति अधिक प्यारी है, क्योंकि माया तो साधारण नर्तकी मात्र है।[5]

अन्त में गोस्वामीजी ने ज्ञान और भक्ति का समन्वय कर एक प्रकार से झगड़ा ही समाप्त कर दिया। भक्ति श्रेष्ठ है, वह मणि है। किन्तु उसकी प्राप्ति तभी हो

---

१. ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना। ३-१५-१।
२. ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥ ७-११८-१।
३. कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥ ७-११८(ख)।
४. मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥ ३-४२-८।
सुनु मुनि तोहि कहउँ सह रोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥ ३-४२-४।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥ ३-४२-५।
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता॥ ३-४२-७।
५. मानस—७-११४-१५,१६ तथा ११५-२—४।

सकती है जबकि ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति हो।

भक्ति में सामाजिकता एवं नैतिक आदर्श— गोस्वामी तुलसीदास ने सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए रामभक्ति का प्रचार नहीं किया। भक्ति को स्वयं साध्य बनाकर उन्होंने भक्तों के हृदय में निःस्वार्थ-भाव जाग्रत किया। वे भक्ति की प्राप्ति के लिए स्थान-स्थान पर संत और सत्संग का महत्त्व बतलाते हैं।[1] भक्ति-प्राप्ति के कई साधनों में निष्कपट-व्यवहार, सरलता, परोपकार, सदाचार आदि गुण भी हैं।[2] अयोध्या-काण्ड के राम-वाल्मीकि-संवाद, अरण्य-काण्ड के राम-लक्ष्मण एवं राम-नारद संवादों तथा उत्तर-काण्ड के काकभुशुंडि और गरुड़-संवाद आदि प्रसंगों के अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि राम की भक्ति का सच्चा अधिकारी वही हो सकता है, जोकि तन-मन से सर्वथा शुद्ध हो, जो किसी का अहित न करे, जो पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन करता हुआ सारे कार्य राम के लिए करे।

राम-भक्त के अनेक गुणों में इन गुणों पर स्थान-स्थान पर जोर दिया गया है—

राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल॥ २-२१६।

---

१. भक्ति सुतंत्र सकल गुन खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥७-४४-५,६।

२. निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥ ५-४३-५।
परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥ ७-४०-१।
विषय अलम्पट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥ ७-३७-१।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥ ७-३७-८।
जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी॥ २-१२६-६।

उपसंहार

० प्राय: मगध से पूर्व के प्रदेश को प्राच्य कहा गया है। यहाँ पर किरात, निषाद एवं द्रविड़ जातियों का आधिक्य है। आर्य-संस्कृति का प्रवेश इधर देर से हुआ। इस प्रदेश को व्रात्यदेश कहकर यहाँ की यात्रा वर्जित की गयी थी। आदिम-जातियों के संसर्ग के आर्य-भाषा ध्वनि एवं रूप दोनों ही दृष्टियों से विकार-युक्त होकर मागधी कहलायी थी। संस्कृत ग्रंथों में प्राय: निम्न जाति एवं श्रेणी के व्यक्ति मागधी बोलते हुए दिखाये गये हैं। और आगे विकास करने पर मागधी प्राकृत अथवा अपभ्रंश के तीन भेद हो गये—गौड़-अपभ्रंश, कामरूप-अपभ्रंश एवं उड़-अपभ्रंश। सातवीं शताब्दी तक मागधी के ये तीन रूप विकसित होने लगे थे। इन्हीं तीनों से क्रमश: असमीया, बँगला एवं उड़िया भाषाएँ विकसित हुईं। संस्कृति, भाषा आदि के एक मूल-स्रोत होने के कारण प्राच्य-देश के इन भाषा-भाषियों में पारस्परिक साम्य है। इनके मध्य मुख्यत: प्रचलित रामचरितकाव्यों का मानस के साथ तुलनात्मक-अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

० पूर्वांचल में जैन-बौद्ध साधनाओं का विकास ही पहले हुआ था। शंकराचार्य से पराभूत अनेक बौद्ध पूर्वांचल की ओर एकत्र हुए थे। सातवीं शताब्दी से बौद्धधर्म ने अनेक रूप धारण किये। भिन्न-भिन्न कालों में उत्पन्न स्वतंत्रचेता किन्तु संयम-शिथिल अनेक सिद्धों का उदय हुआ। मैथिली-मिश्रित शौरसेनी-अपभ्रंश में लिखित इनके पदों की एक पोथी मिली है जिसमें पूर्वांचल की आत्मा सस्वर हो उठी है।

पूर्वांचल का आर्यीकरण प्राक् महाभारतकाल से चल पड़ा था, गुप्तों ने इस ओर विशेष प्रयास किया। शासकों ने पूर्वांचल में कई बार मध्यदेशीय ब्राह्मणों को बसाकर शुद्धाचार के प्रसार की चेष्टा की। किराती और निषादी आदिम जातियों, तांत्रिकों एवं बौद्धों के प्रभाव के कारण यहाँ अनेक प्रकार की जटिल साधनाएँ चल पड़ी थीं, जिनमें मांस, मदिरा एवं रमणी का मुक्तसेवन होता था। नरबलि की लोम-हर्षक प्रथा का भी यहाँ प्रचार था। इस ओर लिखित योगिनीतंत्र ग्रंथ में मातृयोनि के अतिरिक्त १२ से ६० वर्ष की कोई भी रमणी संभोग के योग्य बतायी गयी। कामाख्या का मंदिर किराती, शबर एवं आर्य-मिश्रित साधना का प्रतीक है। शबर-

आर्य एवं तांत्रिक प्रभावों का सम्मिलित प्रतीक है जगन्नाथ का मन्दिर। शिव एवं शक्ति की तांत्रिक उपासना के साथ ही रामायण एवं भागवत-अनुमोदित वैष्णवभक्ति का भी यहीं प्रचार हुआ। पूर्वांचल में कृष्णभक्ति का विशेप प्रवल प्रचार रामकाव्योत्तरकाल में हुआ। पूर्वांचल को शुद्ध वैष्णवभक्ति का संस्कार देने में रामचरितकाव्यों का योग महत्त्वपूर्ण है।

० असमीया-रामायण के मुख्य लेखक हैं श्री माधव कन्दली। इनकी असमीया-रामायण के आदि-अन्त हीन पाँच काण्ड प्राप्त हुए हैं। दो काण्डों के लोप होने के कई कारण अनुमानित किये जाते हैं। शेप काण्डों की पूर्ति शंकरदेव एवं माधवदेव कायस्थ द्वारा हुई। ब्राह्मणवंशीय माधव कन्दली ने १४०० ई० के आसपास असम के नौगाँव अंचल में कहीं जन्म लिया, उन्होंने महामाणिक्य नामक अथवा उपाधिधारी किसी वराही राजा के अनुरोध से रामायण रचना की थी। कन्दली ने काव्य-प्रचार के उद्देश्य से वाल्मीकि-रामायण को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। रामकथा के मार्मिक-स्थलों की उन्हें पहचान है। इनका भी दृष्टिकोण भक्तिपरक है। असमीया साहित्य के सर्वोत्कृष्ट लेखक, भक्त, समाजसुधारक, सम्प्रदाय-प्रवर्तक, चित्रकार और अभिनेता श्री शंकरदेव का जीवनकाल १४४९-१५६८ ई० माना जाता है। उन्होंने अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की है। कन्दली की रामायण में उत्तरकाण्ड इन्होंने स्वयं जोड़ा तथा आदिकाण्ड के लिए अपने शिष्य माधवदेव को प्रेरणा दी। दोनों गुरु-शिष्य कृष्ण के राधातत्त्व विवर्जित ऐकान्तिक भक्ति के कट्टर उपासक थे। रामकथा के प्रारंभ एवं अंत में कृष्ण-विषयक स्तुतियाँ भी इन्होंने की हैं। माधवदेव का जीवनकाल १४८९ ई० से १५९६ ई० स्वीकार किया जाता है।

बँगला-रामायण—लेखक कृत्तिवास फुलिया ग्राम के मुखटिवंश ग्राम में उत्पन्न हुए थे। इनका प्रादुर्भाव अनुमानतः १५वीं शताब्दी का मध्यभाग स्वीकार किया जा सकता है। वे स्वाभिमानी ब्राह्मण थे। उनकी रामायण आज मौलिक रूप से प्राप्त न होकर अनेक प्रक्षेपों से समन्वित होकर अपने प्रदेश की अनेक विशेपताओं से अलंकृत हो गयी है।

उड़िया-लेखक श्री वलरामदास ने स्वयं ही लिखा है कि वे शूद्र-योनि में उत्पन्न हुए हैं तथा उनके पिता माता का नाम सोमनाथ महापात्र एवं मनोमाया देवी है। ३२ वर्ष की आयु में इन्होंने उड़िया-रामायण लिखी थी, जिसे जगमोहन अथवा दाण्डि-रामायण भी कहा गया है। वलरामदास वहुज्ञ थे, उनका ज्ञान विस्तृत था। स्त्री-पुरुप के उत्तेजित कामालाप एवं रतिक्रीड़ा के चित्रात्मक वर्णन में लेखक की रसिकता प्रकट होती है। इनका जन्म १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ वताया जाता है।

अन्य अधिकांश लेखकों के समान ही मानसकार तुलसीदास का भी प्रामाणिक

जीवनवृत उपलब्ध नहीं होता। उनका अनुमानित जीवनकाल १५८९-१६८० वि० है। रामायण का रचनाकाल १६३१ वि० है। उन्होंने ब्राह्मणकुल में जन्म लिया था। जन्म के कुछ समय उपरान्त ही उनके पिता-माता का देहावसान हो गया। उनका बाल्यकाल अत्यन्त कष्ट से बीता था। तुलसीदास के जन्म-स्थल के सम्बन्ध में निश्चित मत नहीं है। जन्म के सम्बन्ध में अनेक स्थानों का प्रचार है। इस समय राजापुर, अयोध्या एवं सोरों से सम्बन्धित तर्कों की अधिक चर्चा है। सोरों-सामग्री सबसे अधिक व्यवस्थित किन्तु साथ ही संदिग्ध भी है। रामभक्ति में आकंठ निमज्जित सरल, सात्विक, निरभिमानी भक्त तुलसीदास अत्यन्त कोमल स्वभाव के थे, किन्तु वे चाटुकार नहीं थे, उनका अध्ययन गम्भीर था, उनकी सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति प्रबल थी। वे आदर्श भक्त एवं समन्वयवादी लोक-नायक थे।

० चारों लेखकों की रामायणों के युगीन परिवेश एवं वाल्मीकि के युगीन परिवेश में अन्तर है। प्रत्येक लेखक ने अपने-अपने देशकाल और परिस्थिति का वैशिष्ट्यमय वर्णन किया है। कहीं-कहीं चारों के वर्णन में साम्य भी है। रामायण-रचना काल तक हिन्दी एवं बँगला भाषी क्षेत्रों पर विदेशी आततायी शक्ति के अनेक असहिष्णु अत्याचार हो चुके थे। इन दोनों प्रदेशों के लेखकों ने रावण एवं राक्षसों के चित्रण में तत्कालीन अत्याचारियों की झलक देखी है। उड़िया-लेखक ने दुर्ग की मोर्चाबन्दी, प्राचीर से आक्रमण, शत्रु से सावधानी आदि का वर्णन कर योधन-नीति (Strategy) एवं रणचातुर्य का अच्छा परिचय दिया है।

सभी रामायणों मे शिव, शक्ति, गणेश, कृष्ण आदि की उपासना का वर्णन मिल जाता है। शिव और शक्ति के मंगलमय एवं भयंकर दोनों प्रकारों के रूपों का चित्रण हुआ है। उड़िया-रामायण के शिव अत्यन्त कामुक एवं रसिक प्रतीत होते हैं। बँगला के शिव भी साधारण बंगाली गृहस्थ जैसे है। मानस के योगिराज एवं भक्त शिव जैसा चरित्र पूर्वांचलीय-ग्रंथों के शिव का नहीं है। उड़िया में हठयोग की साधना वर्णित है। चारों रामायणों में अवैदिक उपासनाओं की उपेक्षा की गयी है।

समाज की वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत, ब्राह्मण का महत्त्व आदि का वर्णन सभी रामायणों में हुआ है। चारों लेखकों ने भक्ति के क्षेत्र में जातिपाँति की अवहेलना की है। लेखकों ने नारी के विषय में भारत-प्रसिद्ध दृष्टिकोण अपनाया है—उसे पतिव्रता होना चाहिए, वह अबला है, उसे स्वतंत्रता नहीं देनी चाहिए एवं चंचल स्वभाव की होने के कारण वह विश्वसनीय नहीं है। पूर्वांचल के जनों को स्त्री बहुत प्यारी होती है। यहाँ के लेखकों ने परम्परागत निन्दा करते हुए भी उसकी प्रशंसा भी की है। उड़िया लेखक ने नारी के स्पृहणीय अतिशय मनोरम-रूप का वर्णन करते हुए उसका रमण अत्यन्त सुखकर बताया है। तुलसीदास ने सन्तजनों के अनुकूल भाषा में नारी की घोर निन्दा की है। चूंकि उन्होंने कौशल्या, सीता, सती आदि नारियों का अत्यन्त भव्य चरित्र प्रस्तुत किया है, यह नहीं कहा जा सकता कि वे समस्त नारी-समुदाय के विरोधी थे,

उन्होंने उसके प्रमदात्व की ही निन्दा की है। उड़िया० की सीता, मन्थरा आदि उड़िया स्त्रियों की भाँति हल्दी मलकर मुँह धोती हैं। नारी के अत्यधिक सुन्दर प्रसाधनों का चित्रण पूर्वांचलीय रामायणों में हुआ है। असमीया और वँगला रामायणों की सीता शंखचूड़ी धारण करती हैं और वे 'बासिविहा' नामक पद्धति का पालन करती हैं। वँगला-रामायण में बंगालियों की अत्यन्त प्रिय पद्धति शुभदृष्टि एवं वासरघर का भी चित्रण है। उड़िया प्रदेश की लवण-चउंरी, सहभोजन तथा मानस की लहकौर एवं कोहवर की प्रथाओं का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

ग्रंथों में स्थानीय चित्रण (Local Colour) भी प्राप्य है। प्रायः संस्कार, प्रसाधन, वस्त्रालंकार, भोज्य-पदार्थ, पशुपक्षी, वनस्पति, आदिमजाति, धर्मसाधना एवं स्थान विशेष का वर्णन करते समय कविगण अपने-अपने परिवेश की झलक दे गये हैं। पूर्वांचल के मध्यकाल में नेत्रवस्त्र का प्रचार रहा है, यहाँ की रामायणों के पात्र भी इन वस्त्रों को धारण करते हैं। यहाँ के स्त्री पात्र अपने प्रदेश में प्रचलित उलुध्वनि का मांगलिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं।

० भाषा-रामायणों के **चरित्र-चित्रण** में मूलरामायण से अन्तर का मुख्य कारण राम के ब्रह्मत्व का प्रचार है। भक्तिपरक दृष्टिकोण हो जाने के कारण अन्य पात्रों के चरित्र पर भी प्रभाव पड़ा है। कहाँ वाल्मीकि के लौहदंड सी पुष्ट भुजाओं वाले रक्ताक्ष राम और कहाँ भाषाओं के भक्त-वत्सल दूर्वादल-श्याम कोमल राम। कहाँ वाल्मीकि का आदित्य सा दुष्प्रेक्ष्य एवं उद्दण्ड रावण और कहाँ भाषा-रामायणों का भक्त रावण, जोकि राम से उद्धार पाने के लिए युद्ध करता है। वाल्मीकि के ऋषि तपःपूत और तेजस्वी है, भाषा-रामायणों के युगीन डरपोक ब्राह्मण। असमीया० के दुर्वासा मथुरा के भोजनभट्ट चौबे जैसे हैं। बँगला के विश्वामित्र तथा अन्य पात्र दुर्बल, चिड़िचिड़े एवं अत्यन्त डरपोक बंगाली ब्राह्मण हैं। उड़िया के ऋषि लोग छाता, पोथी, डंडा आदि धारण कर उड़िया ब्राह्मण की भाँति जीवनयापन करते हैं। मानस के ऋषियों में अवश्य ही गांभीर्य है किन्तु नहीं है तो वाल्मीकि के ऋषियों का तपःतेज। मध्यकालीन नारी का सहज कुतूहल, भय, दुराव, छुईमुई होने का भाव आदि गुण इन रामायणों के नारी पात्रों में मिल जाते हैं।

असमीया के पात्रों में मूल से समानता है, किन्तु मंथरा एवं निर्वासिता सीता के चित्रण में नवीनता है। वँगला० के पात्रों में गलदश्रु भावकुता है, उड़िया० के पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। मानस के चरित्रों में संयम एवं महाशयता है। मानस का अंगद जैसा सामान्य पात्र भी संयमी है। पूर्वांचलीय-रामायणों का अंगद तो सीता की खोज न पाकर सुग्रीव एवं राम के विरोध में षड्यंत्र करता है। इन रामायणों के राम भी कई अवसरों पर सामान्य जनों जैसी तुच्छ बातें भी बोल जाते हैं, किन्तु मानस के राम ही क्या अन्य पात्र भी घोर कष्ट पड़ने पर भी किसी के प्रति दुःसह वचन नहीं बोलते।

० सभी रामायणों की मूलकथा वाल्मीकि के अनुसार ही है, किन्तु दृष्टिकोणों एवं अनेक प्रसंगों में अंतर भी पर्याप्त हैं। भाषा-रामायणों के काल तक रामकथा-विषयक अनेक काव्य-नाटकादि की रचना हो चुकी थी। लेखकों ने इस विकसित कथा को भी ग्रहण किया है। कथा की भिन्नता का दूसरा कारण है रामभक्ति का प्रसार। वाल्मीकि के राम थे महामानव, वे अब हो गये परब्रह्म के अवतार। अब राम से सम्बन्धित अनेक पात्रों (जैसे कि कैकेयी, विभीषण आदि) के चरित्रों को निष्कलंक सिद्ध करने के लिए कई कल्पित आख्यान जोड़े गये। ब्रह्म राम के महत्त्ववर्द्धन के लिए अनेक चमत्कारपूर्ण कथाओं, कथा का फल-कथन, भक्ति-निवेदन, स्तुतियों, नाम-जप आदि का भी संयोजन हुआ। असमीया-रामायण में अवान्तर कथाएँ बहुत कम हैं। बँगला-रामायण में कई रोचक, लौकिक एवं पौराणिक आख्यानों को स्थान मिला है। उड़िया-रामायण में अवान्तर प्रसंगों की भरमार है। लेखकों ने अधिकाधिक पौराणिक एवं लोक-प्रचलित आख्यानों को रामायण से सम्बद्ध किया है। मानस में चार-चार श्रोतावक्ता हैं, उड़िया-रामायण भी शिव-पार्वती के संवाद-स्वरूप प्रस्तुत की गयी है। कथा-संगठन में तुलसीदास ने दक्षता का परिचय दिया है। उन्होंने अनावश्यक कथा का बहिष्कार किया है। वाल्मीकि-रामायण की कथा-वस्तु में शैथिल्य है, इसमें अनेक स्थलों पर पुनरुक्तियाँ हैं। जब कभी दो पात्र मिलते हैं पूर्वघटित प्रसंग सुना जाते हैं। पाठक इन प्रसंगों से पूर्व-परिचित होता है, अतएव उसके लिए ये वर्णन रोचक नहीं होते। तुलसीदास कथा की पुनरुक्ति अथवा व्यर्थ-विस्तार नहीं करते, वे प्रायः इस प्रकार की पंक्ति के द्वारा काम निकाल लेते हैं — गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥ १-२११-२। जहाँ उनका भक्त, दार्शनिक एवं समाज-सुधारक रूप उभर आता है, वहीं कथा-प्रवाह बाधित एवं अरोचक हो उठता है।

० लेखकों ने रामकथा के मार्मिक प्रसंगों को पहचाना है एवं रस-विभोर हो कर वर्णन किया है। पूर्वांचलीय लेखकों के राम अपने ब्रह्मत्व का ज्ञान खोकर हर्ष-विमर्ष का अनुभव करते है, मानस में वे जानबूझ कर नर-लीला करते हैं, फिर भी उनके हृदयोद्गारों की मार्मिकता कहीं कम नहीं होती। सभी रामायणों के संवादों की भाषा अत्यन्त सशक्त है। प्रकृति-चित्रण में उड़िया-रामायण कुछ आगे निकल जाती है, वैसे इसके अनेक वर्णन अनावश्यक विस्तार-पूर्ण भी हैं। सभी रामायणों की भाषा में संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का विपुल प्रयोग है। अरबी-फ़ारसी के शब्द सभी भाषाओं में हैं किन्तु असमीया एवं उड़िया-रामायणों में कम हैं, क्योंकि ये प्रदेश मुस्लिम-शासन से बहुत कुछ बचे रहे हैं। वस्तु एवं भाव को स्पष्ट करने के लिए ही उपमान प्रस्तुत किये गये हैं। अप्रस्तुत-योजना में तुलसीदास की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है। पूर्वांचलीय रामायणों का मुख्य छन्द १४ वर्णीय पयार है और मानस का दोहा-चौपाई। उड़िया० को छोड़ शेष ग्रन्थों में कुछ अन्य छन्दों को भी स्थान मिला है।

पूर्वांचलीय-रामायणों में मानस जैसा दार्शनिक विवेचन नहीं है, फिर भी ब्रह्म के स्वरूप एवं भक्ति का परिचय तो मिल ही जाता है। चारों में राम को परब्रह्म का साकार अवतार माना गया है। उन्होंने गीता के उद्देश्य के अनुसार धर्म की रक्षा एवं दुर्जनों के विनाश के लिए लीलावश अवतार ग्रहण किया है। यह सगुण ब्रह्म शंकर के अनुसार मायावशवर्ती न होकर माया का स्वामी है। यहाँ रामानुजाचार्य के दृष्टिकोण से साम्य है। शंकर के अनुसार संसार को सभी ने मिथ्या माना है। सभी ने दशावतारों के एक समान क्रम की ओर संकेत किया है। राम के ब्रह्मत्व को मानसकार ने जिस उच्च-भूमि पर अधिष्ठित किया है पूर्वांचलीय लेखक नहीं कर पाये हैं। असमीया-रामायण के दो काण्डों के लेखकों शंकरदेव एवं माधवदेव ने रामायण पर कृष्णभक्ति का रंग देने की चेष्टा की है। उड़िया-रामायण लेखक ने राम को जगन्नाथ स्वामी से अभिन्न माना हैं। बँगला के राम अत्यन्त भावक गृहस्थ ब्रह्म हैं, जो कि अवतार के पूर्व सीता से वियोग की कल्पना कर रो पड़े हैं। सभी ने राम को त्रिदेवों से उच्च बताया है किन्तु इसे तुलसीदास ही पूर्णतः सिद्ध कर सके हैं। सीता लक्ष्मी की अवतार एवं सामान्या कुलवधू हैं, मानस में वे राम की शक्ति माया भी हैं। कलियुग में रामनाम-जप का सभी लेखकों ने उपदेश दिया है। भक्ति के क्षेत्र में सभी लेखकों ने ब्रह्म के करुणामय सुकुमार रूप का चिन्तन कर अपने दैन्य का प्रकाश किया है। कहीं-कहीं निष्कामभक्ति के भी दर्शन हो जाते हैं। मानस की भक्ति अधिक उच्चकोटि की है। सभी रामायणों की भक्ति जनांदोलनकारी है किन्तु तुलसी की रामायण ने यह कार्य अधिक सुचारु रूप से किया। मानस के माध्यम से उन्होंने साधारण जन को नैतिक शिक्षा दी तथा समाज के अनेक क्षेत्रों के पारस्परिक विरोधों को दूर कर समन्वय स्थापित किया।

समस्त भारतीय-साहित्य के अधिकांश के मेरुदण्ड हैं राम और कृष्ण। पारिवारिक-जीवन के आदर्श होने के कारण राम-कथा का प्रचार समस्त देश के कुटीरों से लेकर प्रासादों तक हुआ। यद्यपि आलोच्य कविजन भिन्न-भिन्न समय में उत्पन्न हुए एवं उनकी प्रतिभा में भी अन्तर हैं, तथापि ये सब कवि अपने-अपने प्रदेश के प्रतिनिधि रामकथाकार हैं, इसी नाते उनका तुलनात्मक-अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सहायक-ग्रन्थों की सूची

हिन्दी-ग्रन्थ

आनन्द प्रकाश दीक्षित	रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेपण, दिल्ली १९६०
उदयनारायण तिवारी	(अनु०) भारत का भापा सर्वेक्षण, १-१ ग्रियर्सन, लखनऊ ५९ ई०
	हि० भा० का उद्गम और विकास, द्वितीय सं० प्रयाग, २०१८ वि०
	भोजपुरी भापा और साहित्य, पटना, १९५४
उदयभानु सिंह	तुलसी-दर्शन मीमांसा, लखनऊ २०१८ वि०
ओमप्रकाश	हिन्दी अलंकार साहित्य, दिल्ली, १९५६
कपिलदेव पाण्डेय	मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, वारा० १९६३
कामाक्षीराव ए० सी०	(सं०) रंगनाथ रामायण, पटना, १९६१
कामिल बुल्के	रामकथा, द्वि० सं० प्रयाग, १९६२
काशीराम दास	महाभारत (सं० रामानन्द चट्टोपाध्याय)
केसरी नारायण शुक्ल	मानस की रूसी-भूमिका (वारान्निकोव) लखनऊ १९५५
के० वासुदेव शास्त्री	संगीतशास्त्र, लखनऊ १९५८
गोविन्द त्रिगुणायत	हिन्दी दशरूपक, कानपुर
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	भारतीय प्राचीन लिपिमाला द्वि० सं०, अजमेर १९१८ ई०
चन्द्रवली पाण्डे	तुलसी की जीवन-भूमि, काशी, २०११ वि०
छगनलाल जैन	चतुर्दशभापा-निवन्धावली (असमीया पर निवन्ध), पटना, १९५७ ई०
जगमोहनलाल चतुर्वेदी	एकनाथ व तुलसीदास, औरंगावाद, १९५४ ई०
जनक अरविन्द	भारत के आदिवासी, अम्वाला, १९५७ ई०

तुलसीदास	रामचरितमानस, गीताप्रेस ११वाँ० सं० २०१६वि०
	कवितावली, गीताप्रेस १६वाँ सं०, २०१६ वि०
	गीतावली, गीताप्रेस ६वाँ सं०, २०१७ वि०
	विनयपत्रिका, गीताप्रेस, १८वाँ सं०, २०१६ वि०
	दोहावली, गीताप्रेस, १५वाँ सं०, २०१६ वि०
	हनुमान बाहुक ,, २२वाँ सं०, २०१८ वि०
देवकीनन्दन श्रीवास्तव	तुलसीदास की भाषा, लखनऊ, २०१४ वि०
देवप्रसाद त्रिवेदी	प्राङ्मौर्य विहार, पटना, १९५४
धीरेन्द्र वर्मा	सम्पा० हिन्दी साहित्य कोश, वाराणसी, २०१५ वि०, हिन्दी भाषा और लिपि, प्रयाग, १०वाँ सं० १९५३
नन्ददुलारे वाजपेयी	महाकवि सूरदास, दिल्ली, १९५२
नगेन्द्रनाथ उपाध्याय	तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, काशी, सं० २०१५
नगेन्द्र	विचार और अनुभूति, दिल्ली, १९९१ वि०
	विचार और विश्लेषण, द्वि० सं०, दिल्ली, १९६१
	साकेत:एक अध्ययन, ८वाँ सं०,आगरा, २०१३ वि०
	रस-सिद्धान्त, दिल्ली १९६४ ई०
नलिनाक्षदत्त (कृष्णदत्त वाजपेयी)	उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म, लखनऊ, १९५६
नामवर सिंह	हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, प्रयाग १९५२ ई०
परमलाल गुप्त	रामचरितमानस और साकेत, दिल्ली, १९६१ ई०
परशुराम चतुर्वेदी	वैष्णवधर्म, प्रयाग, १९५३
पीताम्बर बड़थ्वाल	रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, काशी, २०१२ वि०
पुत्तूलाल शुक्ल	आधुनिक हिन्दी काव्य में शब्द-योजना, लखनऊ, २०१४ वि०
प्रबोधचन्द्र बागची	चर्यागीति कोश, शान्तिनिकेतन, १९५६
बलदेव उपाध्याय	भारतीय दर्शन, काशी, १९४२ ई०
	भागवत सम्प्रदाय, काशी, १९९८ वि०
बलदेव प्रसाद मिश्र	मानस-माधुरी, आगरा, १९५८ ई०
	तुलसी-दर्शन प्रयाग १९९५ वि०
बाबूराम सक्सेना	कीर्त्तिलता (विद्यापति), प्रयाग; १९८६
भगवानदास केला	हमारी आदिम जातियाँ, प्रयाग, १९५०

भगीरथ मिश्र	साहित्य साधना और समाज, लखनऊ, १९५१
	कला साहित्य और समीक्षा, दिल्ली, १९६३
भरत सिंह उपाध्याय	बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, कलकत्ता, २०११ वि०
भोलनाथ तिवारी	(सं०) तुलसी शद सागर, प्रयाग, १९५४
मंगलदेव शास्त्री	भारतीय संस्कृति का विकास (वै० वा०) वाराणसी, १९५६
मन्मथनाथ गुप्त	बँगला साहित्य दर्शन, दिल्ली, १९६०
माता प्रसाद गुप्त	तुलसीदास, प्रयाग, तृ० सं०, १९५३
मिथलेश कान्ति	हिन्दी भक्ति श्रृंगार का स्वरूप, कानपुर, १९६३ ई०
मुन्शीराम शर्मा	वै० भक्ति तथा हि० के भक्तिकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति, काशी, १९५८ ई०
	पद्मावत, संशोधित संस्करण, कानपुर, १९५८
मोतीचन्द	प्राचीन भारतीय वेशभूषा, प्रयाग, २००७ वि०
यदुवंशी	शैवमत, पटना, १९५५
रमानाथ त्रिपाठी	कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस, अलीगढ़ १९६३
	हिन्दी-बँगला-प्रकाश, दिल्ली १९६६
	नूतन रामकथा, दिल्ली, १९६८
राजकुमार पाण्डे	रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अध्ययन, कानपुर, १९६३
राजाराम रस्तोगी	तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, कानपुर, २०२० वि०
राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	रीतिकालीन कविता एवं श्रृंगार रस, आगरा, २०१० वि०
रामकुमार वर्मा	हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास, तृतीय सं० प्रयाग, १९५३ ई०
रामचन्द्र शुक्ल	तुलसीदास, स० सं० काशी, २००७ वि०
	चिन्तामणि, प्रयाग, १९५०
रामदत्त भारद्वाज	गो० तुलसीदास दिल्ली, १९६२
रामनिरंजन पाण्डे	रामभक्ति शाखा, हैदरावाद, १९६०
रामपूजन तिवारी	ब्रजवुलि का साहित्य, पटना, १९६०
राहुल सांकृत्यायन	दोहाकोश, पटना, २०१४ वि०

वासुदेवशरण अग्रवाल	पद्मावत (जायसी), चिरगांव, २०१२ वि०
	हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, १९५३ ई०
	कीर्त्तिलता (संजीवनी टीका) चिरगांव, १९६२ ई०
विमलकुमार जैन	तुलसीदास और उनका साहित्य, दिल्ली, २०१४ वि०
विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	मध्यकालीन हिन्दी काव्य की तान्त्रिक पृष्ठभूमि, इलाहाबाद, १९६३ ई०
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	बिहारी की वाग्विभूति, वाराणसी, २००३ वि०
	रामचरितमानस, काशिराज सं०, वाराणसी, १९६२
विद्या मिश्र	रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, लखनऊ, १९६३ ई०
शंम्भूनाथ सिंह	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, वाराणसी, १९५६ ई०
शरण बिहारी गोस्वामी	पाषाणी, दिल्ली, १९६५ ई०
शिवप्रसाद सिंह	कीर्त्तिलता, प्रयाग, १९५५ ई०
श्यामाचरण दुबे,	मानव और संस्कृति, दिल्ली, १९६० ई०
सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन	अरे यायावर, रहेगा याद ? काशी, १९५३ ई०
सावित्री सिंहा	व्रजभाषा के कृष्णभक्ति काव्य में अभि०-शिल्प, दिल्ली, १९६१ ई०
सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या	ऋतंभरा, इलाहाबाद
	भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, दिल्ली, १९५४ ई०
	राजस्थानी-भाषा, उदयपुर, १९४९ ई०
	भारत की भाषाएँ और भाषा-सम्बन्धी समस्या, इलाहाबाद, १९५१ ई०
सूदन कवि	सुजान-चरित, तृ० सं०, काशी, १९८० वि०
हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई, १९४० ई०
	हिन्दी साहित्य, दिल्ली, १९५२ ई०
	नाथ-सम्प्रदाय, प्रयाग, १९५० ई०
	मध्यकालीन धर्मसाधना, प्रयाग, १९५२ ई०
	सूर साहित्य, बम्बई, १९५६ ई०
	हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पटना, तृ० सं० १९६१ ई०

चारुचन्द्र लेख, दिल्ली, १९६३ ई०

हरवंशलाल शर्मा — बिहारी और उनका साहित्य, अलीगढ

हरिवंश कोछड़ — अपभ्रंश साहित्य, दिल्ली, २०१२ वि०

हेमचन्द्र जोशी — (अनु०) प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, (पिशेल) पटना, ५८ ई०

हरेकृष्ण मेहताव — (सम्पादक) राष्ट्रभाषा रजत-जयन्ती ग्रन्थ, उत्कल राष्ट्र भाषा प्रचार सभा, कटक

बँगला ग्रन्थ

अतीन्द्र मजुमदार — मध्य भारतीय आर्यभाषा और साहित्य, कलकत्ता, १९६० ई०

अमूल्यधन मुखोपाध्याय — बांग्ला छन्देर मूलसूत्र चतुर्थ संस्करण, कलकत्ता, १९४९ ई०

असितकुमार वन्द्योपाध्याय — बांग्ला साहित्येर इतिवृत्त प्रथम खण्ड, द्वि० सं० कलकत्ता, १९६३ ई०

आशुतोष मुखर्जी — सभापतीय भाषण, एन० चटर्जी कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता, १३२२ बं०

गोपाल हाल्दार — बांग्ला साहित्येर रूपरेखा, कलकत्ता, १३६१ बं०

चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय — चण्डीमंगल-बोधनी, कलकत्ता, १९२६ ई०

जयानन्द — श्री चैतन्यमंगल, कलकत्ता, १९०५ ई०

जाह्नवीकुमार चक्रवर्ती — शाक्तपदावली ओ शक्ति साधना, कलकत्ता, १३६३ बं०

दीनेशचन्द्र सेन — कृत्तिवासी (बँगला) रामायण, कल० १३वाँ सं०, १९५२ ई०, बंग भाषा ओ साहित्य, कल० अष्टम सं०, १३५६ बं०

पूर्व बँग-गीतिका-४-२कलकत्ता, १९३२ ई०

नलिनीकांत भट्टशाली — कृत्तिवासी रामायण (आदिकाण्ड) कलकत्ता, १९३६ ई०

नीहाररंजन राय — बांगालीर इतिहास (१) कलकत्ता, १३५६ बं०

पंचानन मंडल — (सं०) साहित्य प्रकाशिका (२) शान्तिनिकेतन, १३६२ बं०

प्रबोधचन्द्र बागची — (सं०) साहित्य प्रकाशिका (१) शान्तिनिकेतन, १३६२ बं०

प्रियरंजन सेन — उड़िया साहित्य, कलकत्ता, १३५८ बं०

भूदेव चौधरी — वांग्ला साहित्येर इतिकथा, कल०, द्वि० सं० १९५७ ई०
मुरारी मोहन सेन — भाषा इतिहास २, कलकत्ता, १९६३ ई०
रामानन्द चट्टोपाध्याय — कृत्तिवासी (बंगला) रामायण, प्रवासी-प्रेस, ८वाँ १३५३ वं०
विनय घोष — वांग्लार नवजाग्रति, कलकत्ता, १९५५ ई०
पश्चिम वंगेर संस्कृति, कलकत्ता, १९५७ ई०
वृन्दावनदास ठक्कर — श्री चैतन्य भागवत, गौड़ीय मठ, द्वि० सं० १९३२ ई०

शशिभूषण दासगुप्त — संसद वांग्ला अभिधान, कलकत्ता, १९६२
शैलेन्द्र विश्वास
सुकुमार सेन — वांग्ला साहित्येर कथा, कलकत्ता, १९५० ई०
वांगाला साहित्येर इतिहास १, कल०, द्वि० सं० १९४८ ई०
सुखमय मुखोपाध्याय — कृत्तिवास-परिचय, कल०, द्वि० सं०, १९५७ ई०
सुबोध मजुमदार — कृत्तिवासी बंगला रामायण, कलकत्ता, च० सं०, १३३७ वं०
क्षितिमोहन सेन — चिन्मय वंग, कल०, द्वि० सं०, १९५८ ई०
हीरेन्द्रनाथ दत्त — कृत्तिवासी रामायण, अयोध्याकाण्ड, कलकत्ता, १३०७ वं०
कृत्तिवासी रामायण, उत्तरकाण्ड कलकत्ता, १३१० वं०

कृत्तिवासी रामायण के कुछ अन्य संस्करणों के सम्पादक— विश्वभर लाहा (१२५७ वं०), दुर्गाचरण गुप्त (१२८९ वं०), हरिदास घोष (१२९६ वं०) सुबलचन्द्र मित्र (१९०८ ई०), पूर्णचन्द्र दे (१३१३ वं०) नटवर चक्रवर्ती (१३१३वि०), योगेन्द्रनाथ वसु (१३१५ वं०), सतीशचन्द्र शील (१३१६ वं०), उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय (१३२१ वं०), नवकृष्ण भट्टाचार्य (१३३३ वं०)।

असमीया ग्रन्थ

उपेन्द्र लेखारू — असमीया रामायण साहित्य, गौहाटी, १९४८ ई०
हरिनारायणदत्त वरुवा — असमीया रामायण नलवाड़ी, १९५३
हेमचन्द्र गोस्वामी — असमीया साहित्यर चानेकी-२, कलकत्ता, १९२४
हेमचन्द्र वरुवा — हेमकोश, शिवसागर, १९५५

डिम्बेश्वर नेओग — असमीया साहित्यर बुरंजि, जोरहाट, च० सं० १९५७ ई०,
वैष्णवधर्मर आंतिगुरि, गौहाटी ६०५ शंकराब्द

वाणीकान्त काकती — पुरणि असमीया साहित्य, गौहाटी, तृ० सं० १९५८ ई०
पुरणि कामरूपर धर्मर धारा, कलकत्ता, १९५५

मनोरंजन शास्त्री — असमर वैष्णव-दर्शनर रूपरेखा, नलबाड़ी, १९५४ ई०

महेश्वर नेओगे — पुरणि असमीया समाज आरु संस्कृति, डिब्रुगढ़, १९५७ ई०

माधवदेव — नामघोषा, सं० हरमोहनदास, गौहाटी, १९५७ ई०

शंकरदेव — चित्र भागवत, सं० हरिनारायणदत्त बरुआ, नलबाड़ी, द्वि० सं०, ५०७ शं०
रामविजय नाट, गौहाटी, १९६२

श्रीधर कन्दली — कानखोवा, गौहाटी

सत्येन्द्रनाथ शर्मा — असमीया साहित्यर इतिवृत्त, कलकत्ता, द्वि० सं०, १९६१ ई०

उड़िया-ग्रन्थ

अनन्त पद्मनाभ पट्टनायक — उपेन्द्रभंज, कटक, १९६२

कुञ्जविहारी दास — पल्लीगीति-सञ्चयन, विश्वभारती, १९५४

कुलमणि दास — सरल ओड़िया अभिधान, कटक, १९५६

गोविन्द रथ — (सं०) दाण्डि रामायण, बलरामदास, कटक

नरेन्द्रनाथ मिश्र — बलरामदास ओ ओड़िया रामायण, शांति निकेतन, १९५५

नीलकण्ठदास — ओड़िया साहित्यर क्रमपरिणाम (१)—कटक

श्रीधरदास — नव अभिधान, कटक, १९६२

उर्दू ग्रन्थ

मो० सैयद तसद्दुक हुसेन रिजवी — लुग़ात किशोरी, लखनऊ

संस्कृत-ग्रन्थ

अग्नि पुराण — आनन्दाश्रम प्रेस, १९५७ ई०

अध्यात्म-रामायण — गीताप्रेस, २००८ वि०

अनर्घराघव	निर्णयसागर प्रेस, वम्बई १९२९ ई०
आचारांग-सूत्र	(प्राकृत) सिद्ध-चक्र-प्रचारक समिति, वम्बई, १९२२ ई०
ऐतरेय आरण्यक	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, १८९८ ई०
ऐतरेय ब्राह्मण	,, ,, ,, १९३१ ई०
कालिकापुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, वम्वई
गीता	गीताप्रेस, गोरखपुर
जैमिनी अश्वमेध	वेंकटेश्वर प्रेस, १८५७ वि०
निरुक्त	वैदिक यंत्रालय, अजमेर, १९७७ वि०
नैषधीय-चरित	नारायणीय टीका-सहित, निर्णयसागर प्रेस, १९४२ ई०
पद्मपुराण	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना १८९४ वि०
प्रसन्न-राघव	निर्णयसागर प्रेस, १९२९ ई०
ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, वम्वई, १९८८ वि०
बौधायन-धर्मसूत्र	चौखम्वा, वाराणसी, १९९१ वि०
महाभारत	चित्रशाला प्रेस, पूना, १८९४ ई०
श्रीमद्भागवत-पुराण	गीताप्रेस, द्वितीय संस्करण २००८ वि०
श्रीमद्देवी भागवत-पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस
योगिनीतन्त्र	,, ,,
रघुवंश	निर्णयसागर प्रेस, १८९८ वि०
राजतरंगिणी	निर्णयसागर प्रेस, १८२२ वि०
रामायण मंजरी	(क्षेमेन्द्र) निर्णयसागर प्रेस, वम्वई
वाल्मीकि-रामायण	(दाक्षिणात्य संस्करण) चतु० द्वारिका प्र० शर्मा, प्रयाग २००६
	(गौड़ीय पाठ समन्वित) लोकनाथ चक्रवर्ती, कलकत्ता।
हनुमन्नाटक	वेंकटेश्वर प्रेस, वम्वई, १९९० वि०

पत्र-पत्रिकाएँ

अवन्तिका, सम्मेलन—पत्रिका, भारतीय-साहित्य, संस्कृति, त्रिपथगा, जन-भारती, हिन्दुस्तान साप्ताहिक, कादम्विनी, तुलसीदल, हिन्दी-अनुशीलन, अजन्ता, कल्पना, विशाल भारत, संगम आदि। **बँगला**—साहित्येर खवर, अमृत-साप्ताहिक, भारत-ज्योति, वसुमती, भारतवर्ष। **असमीया**— राम धेनु। **उड़िया**— झंकार साम्मुख्य। **अंग्रेजी**—सेमिनार ट्राइवल इंडिया (१४-१०-६०)आसाम एकेडेमी। दि जरनलऑफ़ दि विश्वभारती स्टडी सर्किल (१९५९)।

ENGLISH BOOKS

Allchin F.R. — Kavitavali, London, 1964.

Barnett L.D. — Hindu Gods & Heroes, London, 1922.

Barua B.K. — Shankerdeo, Gauhati

Barua Hem — The Red River & the Blue Hill, Gauhati. 1956.

The Fairs and Festivals of Assam, Gauhati, 1956.

Beams Johns — A comperative Grammer of Modern Aryan Languages, London, 1874.

Bhandarkar R.G. — Collected Works of Sir R. G. Bhandarkar Vol. IV, Poona, 1929.

Bhandari M.B. — Mundari English Dictionary, Calcutta, 1931

Blockmann — Ain-I-Akbari, Calcutta, 1939.

Briggs John — History of the rise of Mohemdon Power...Vol. I, II. Calcutta, 1908-9.

Chatterji Sunitikumar — Origin and Development of Bengali Language, Calcutta, 1926.

Chowdhary B.N. — Some Cultural and Linguistic Aspects of Garos-Gauhati, 1958.

Chowdhary N.N. — Dakarnava Tantra, Calcutta, 1935.

Das T.C. — The Purum-An old Kuki Tribe of Assam, Calcutta 1945.

Dasgupta S.B. — Obscure Religious Cults as Backoround of Bangali Literature, Calcutta, 1946.

Elliot & Dawson — Akbarnama (Abul Fazal) Cal. II Ed. 1953

Elliot & Dawson	Chachnam, Calcutta II Ed., 1955. Firozshah-(Afif) Calcutta II Ed., 1953 ; Tarikh-I-Firozshahi (Zia-uD-Din-Barni) London 1871.
Illiot Charles	Hinduism and Buddhism, Vol. II, 1954.
Gokak	Literature In Modern Indian Languages, Delhi, 1957.
Gosh J.C.	Bengali Literature, London, 1948.
Handiqui K.K.	Naishadh Charit of Shriharsha, Lahore 1934.
Harshe R.G.	K.P. Bhathagar Commemoration Volume
Button J.H.	Castes In India, Bomay, 1951.
Hrozni B.	Ancient History of Western Asia, India and Crete, Newyork
Kakati B.K.	Assamese Its Formation and Development, *Gauhati, 1941.*
	Aspects of Early Assamese Literature, Gauhati University, 1959.
	Mother Goddess Kamakhya, Gauhati II Ed. 1961.
Kane P.V.	The History of Dharmasastra I-II, Poona 41.
Majumdar B.C.	The History of Bangali Language, II Ed. Calcutta, 1927.
Majumdar D.N.	An Introduction to Social Anthropology, Bombay, 1956.
Mansinha Mayadhar	History of Oriya Literature, Delhi, 1962.
Mehtab H.K.	History of Orisa, Outtack, 1962.
Pegu N.C.	The Miris, Dibrugarh, 1956.
Riseley H.H.	Peoples of India II Ed.

१२३	२	रांय···नांहीं	रायँ—नाहीं
१३३	फुटनोट	विनय पत्रिका	२-विनय पत्रिका
१३७	फुटनोट	pludcr	plunder
,,	,,	non. muslims	non muslims
,,	फुटनोट	invaders	invaders
१४०	१७	पृ० १३३	पृ० ३३१
,,	फुटनोट	पृ० १३१/२	पृ० १३१
१४२	फुटनोट	रखिकु	रखिछु
१४५	१४	पमम्परा	परम्परा
१४६	१	जाप	जापू
१४८	१७	और वंगला	और वगल
१४६	६	कुल	कुल्
,,	१०	अलपा	अजपा
,,	१६	अष्टांग-युग	अष्टांग-योग
१५१	१४	वसिष्ठी···वसिष्ठी	वसिष्ठ···वसिष्ठ
१५२	फुटनोट	कृषली	वृषली
१५४	३	उसको	उसकी
१५५	६	व्रह्म	ब्रह्मा
१५६	२१	नाना	मनाना
१६०	६	किया	किये
१६१	४	छेले,	,छेले
,,	६	आठकोड़े	आटकौड़े
,,	२५	चूड़करन	चूड़ाकरन
,,	नीचे से ३	समार्तवन	समावर्तन
१६६	१२	उलार	उसार
१६६	३	छांड़े	छोरे
,,	२४	पृ० ६३	पृ० ६२
१७१	१६	उरुति	उरुलि
,,	२०	उलुध्धनि	उलुव्वनि
१७५	२२	रुललु	रुलूलु
,,	२३	उल्लु	उलूलु
,,	२५	विवाद्युतत्सवे	विवाहाद्युत्सवे
,,	२६	उच्चार्यते	उच्चार्यते।
,,	२७	अनर्घरधाव	अनर्घ राघव
१७६	१६	रव	रव

१७६	२२	तिरोलाइ	तिरोताइ
,,	२२	जिमा	जिभा
,,	२२	शब्द	शब्द',
,,	२८	प्रभृति ने	प्रभृति ते
१७७	३	वाय	वाद्य
,,	२७	१४४८	१६४८
,,	३०	१-२०	१-२८
१८५	१४	३३९३	३३९२
	,,	आभार	आमार
१९१	२६	देखिताभ	देखिताम
१९२	१४	विशाद	विपाद
१९४	७	लजि	लाज
१९९	२६	मंह	महँ
२०१	१०	प्रेम	पेम
२०२	७	तुम्हारे···रावन	तुम्हरें···रावनु
२०७	१०	तुम्मे	तुम्भे
,,	२१	वर्णन	वर्जन
२११	१५	तण···सेवक्	तृण···सेवक
२१६	१७	आत्म	आत्मजों
,,	२३	जीवन १०	जीवन ॥
२१७	१४	जव भी	जव
,,	१८	भांगी	भागि
२१९	१९	होही	होंही
२२६	२४	राम से	राम के हाथ से
२२९	२२	तेण	तेणु
,,	२६	वाते	वातें कहता
२३०	फुटनोट	६/२/५१	६-२५१
२३५	फुटनोट	१-९४३	१९४३
,,	,,	कटारत मर	कटारत भर
२३८	फुटनोट	पराधीन नहीं	पराधीन नहों
२४१	१०	जाहि	नाहि
२४२	२३	तुम···कौन	तुमि···कोन
२४५	फुटनोट	धेन थाइ	घेनिथाइ
२५५	फुटनोट	माता	मातां
२५६	२९	ग्लनि	ग्लानि

२५७	२१	केभने	केमने
२६१	१	पिछलगु	पिछलगू
२६७	२६	प्रणय-मक्त	प्रणय-मत्त
२६८	२१	ऊंचल	अंचल
२६९	२७	कुटंवियों	कुटुँवियों
२७५	१	दिखाकर	न दिखाकर
२७६	८	व्रह्म	व्रह्मा
,,	१३	नहीं होगा	वहीं होगा
२८४	५	विष्ट	विष्टा
२८६	फुटनोट में	'वालमीकि-रामायण' के सामने १/२ १/८ १/४ १/८ होना चाहिए	
२८७	८	शेश	शेष
२८९	२८	वर्थन	वर्णन
२९०	२१	सीता राम के	सीता के
२९१	नीचे से ४	नारक	नामक
२९३	१३	प्रारम्भ अथवा	प्रारम्भ
२९५	६	रोगवल	योग वल
२९९	फुटनोट	पृष्ठ ७१	पृष्ठ ७७
३००	२	६१३	११३
,,	२८	और	तोर
३०३	१७	पारिसे	पारिले
,,	१९	भूत्तिरसौ	मूर्तिरसौ
३०४	१४	प्राप्ति से	प्राप्ति के
३०७	सवसे नीचे	पृ० २०	पृ० २०९
३०८	८	कृष्ण भी हैं	कृष्ण हैं
३१९	२९	प्रकट द्वारा होकर	प्रकट होकर
३२१	१	किया कि	अनुमान किया कि
३२२	१५	कटा	काँटा
३३२	१	क्रोद्ध	क्रोध
३३४	६	किष्किन्धा	किष्किन्ध्या
३३८	६	व्यवत्वा	त्यक्त्वा
,,	२६	भविष्यति	भविष्यति
३४३	४	चतुर्मास्य	चातुर्मास्य
३४५	५	वलकधन	वलकथन
३७०	५	पृ० २४६	पृ० ३४६

३७४	२१	रात	राम
३७८	८	२६६	३६६
,,	नीचे से ३	उत्तरकाण्ड	उत्तराकाण्ड
३७९	नीचे से ४	समव	समय
३८२	२८	सीता को	अनावश्यक
३९१	२	सिंहासनारोहण से	सिंहासनारोहण के
,,	१२	मन ने	मन में
३९५	फुटनोट	७-१७४-७५	७-७४-७५
३९७	३२	धारिलन्त	धरिलन्त
३९९	१०	वेनिहस्त	वेनिहस्त
४००	२३	शील	सील
४०१	२	५-७-८	५-८
,,	१०	५-८	५-१३-८
४०८	२४	उपास्य से	उपास्य के
४०९	२	मारसि	मारेसि
,,	२५	क्रोध	क्रोध/क्रोध
४११	५	लागे	लागैं
,,	१०	नाई	नाइ
,,	२३	माने वीर	माने
४२०	फुटनोट	३७०१-१	३७०१-२
४२१	१९	सिम	सम
४२२	१७	परिवार से	परिवार के
,,	फुटनोट	३-१३६-५,६	२-१३६-५,६
४२७	फुटनोट	वेहु	देहु
४३३	२१	लोलक	लोतक
४३६	६	आजार	वाजार
४३८	४	आटे	वाटे
४५१	२४	पढ़ाते	पढ़ते
४५२	फुटनोट	ओपरर/	विराम अनावश्यक
,,	,,	तचर	तलर
४५७	५	भगन	मगन
४६१	फुटनोट	३-२२६	६-२२६
४६२	२५	सवार	सबार
,,	२९	कहा गया	कह गया
४६५	१२	देखउँ	देखेउँ
४६७	२०	पाईं	पाइँ

४७३	१६	ब्रह्मा	ब्रह्म
४७४	४	यह है नहीं	यह नहीं
,,	१३	से लेकर	लेकर
,,	२३	मरण	मरणे
४७६	फुटनोट	आमिना	आमि ना
४८०	५	संसर्ग के	संसर्ग से
४८३	२१	चिड़िचिड़े	चिड़चिड़े

कई स्थलों पर चन्द्र बिन्दु और अनुस्वार तथा व और ब में विपर्यय हो गया है।